http://www.jainkosh.org

र्ति, अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्त-न्याय-साहित्यशास्त्री, अभीक्ष्णज्ञानोपयोगी,
स्वपरकल्याणरत संत



पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक मनोहर जी वर्णी 'सहजानन्द' महाराज

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

समयसारकलशप्रवचन द्वितीय भाग

अथ जीवाजीवाधिकारः

जीवाजीवविवेकपुष्कलदृशा प्रत्याययत्पार्षदानासंसारनिबद्धबंधनविधिध्वंसाद्विशुद्धं स्फुटत् ।
आत्मारामममनंतधाममहसाध्यक्षेण नित्योदितं धीरोदात्तमनाकुलं विलसति ज्ञानं मनो हलादयत् ॥३३॥

३१६—जीवके नाटकके रहस्य—

यह संसार नाटक है । नाटक उसे कहते है जहाँ कोई पात्र भेष बदलकर आवें, लीला, क्रीड़ा होती हो, खेल, बिलास होता हो उसे कहते हैं नाटक । तो देखो हो रहा है ना नाटक । जैसे एक चेतन पदार्थ कैसा भेष बदल बदलकर आ रहा है । चार गतियाँ, पाँच इन्द्रियजातियाँ आदि सब भेषोंको मार्गणाओं द्वारा समझिये, गुणस्थानों द्वारा समझिये । ये जीव किन किन भेषोंको लेकर उपस्थित हो रहे हैं संसारमें । यह है नाटक । अच्छा, और थियेटर, सनीमा वगैरह ये हैं नाटककी नकल । नाटक तो असली चीज है, फिर इसकी नकल की गई है सनीमा । लेकिन देख लो इस नाटकको देखनेमें लोग दिलचस्पी नहीं रखते और नाटककी नकल देखनेके लिए टिकट भी लेते हैं, पैसा खर्च करते हैं अपना सारा समय लगाते हैं । अरे नाटकोंकी नकल देखनेकी बजाय असली नाटक देख लो । तो यों यह जगत में सब नाटक देख लो, इनमें बड़ी भीड़ है । अब इस भीड़में कुछ लोग तो ऐसे हैं कि जिनके सही ज्ञान प्रकट है वे जानते है कि यह जीव है, यह कर्म है, इन दोनोंका सम्बन्ध है, कर्मकी छाया है, जीवमें उदित हुई है । जीव उन्हें अपनाता है । यह सारी बात जिन्हें मालूम ऐसे लोग भी है ससारमें, पर कितने है ? बिरले । और, बहुतायत किन लोगोंकी है । जिनको इसका कुछ पता नहीं । बस नाटक देख रहे । यह ठीक है, यही सर्वस्व है, इस तरहके देखने वालोंकी सँख्या कितनी है ? अनन्त । जैसे नाटक हो रहा शहरमें, हजारोंकी भीड़ जुड़ गई उनमेंसे कुछ ही लोग ऐसे होते है जो ऐसा जान रहे हैं कि यह मेरा लड़का है, अब यह भेष बदल रहा है और ऐसा है । और बाकी लोग ऐसे हैं कि जिनको यह ख्यालमें नहीं है कि यह अमुकका लड़का भेष बदल कर आया । अब नाटक तो हो रहा है मगर उन दर्शकोंमें प्रभाव दो रूपमें बट गया । जिनको यह मालूम है कि यह मेरा लड़का है, सब यह भेष बदलकर आया तो उसपर उस नाटकीय लीलाका प्रभाव नहीं पड़ता । अगर कोई पात्र रोने जैसा पार्ट अदा कर रहा तो उसे देखकर बाकी दर्शक रो पड़ते हैं, और जिनको मालूम है कि मेरा लड़का है, इस तरहका पार्ट अदा कर रहा है तो वह नहीं रो पड़ता । वह तो समझता है कि वाह हमारा लड़का कितनी कलासे पार्ट अदा कर रहा है । ऐसे दर्शकोंको उस करुणाजनक दृश्यको देखकर कुछ कष्ट नहीं होता । जैसे मानलो श्रीपालको धवल सेठने सागरमें गिरा दिया, कोई लहर वाला समुद्र का चित्रित हुआ कपड़ा रख दिया । एकने उसमें धक्का दे दिया, श्रीपाल गिर गया, ऐसा दृश्य देखकर सभी दर्शकोंको बड़ा दुःख हुआ —हाय हाय श्रीपालको समुद्रमें गिरा दिया गया, कितना बड़ा अन्याय किया गया । और जिन्हें पता है कि यह तो मेरा लड़का है, इस तरहसे पार्ट अदा कर रहा है तो वे उस दृश्यको देखकर दुःख नहीं मानते, बल्कि खुश होते और कह उठते हैं कि वाह मेरा लड़का तो बड़े सुन्दर ढंगसे पार्ट अदा कर रहा है, तो इसी तरहसे इस दुनियाँमें दो तरहके जीव है, एक तो वे जिन्हें जीव और अजीवका विवेक है याने खूब भेदाभ्यास है, जानते हैं और दूसरे वे जो लीलाको ही सर्वस्व समझते हैं ।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

३१७—जीव और अजीव तत्त्वमें भेदाभ्यास करनेका अनुरोध—

देखो भेदाभ्यास करो उसकी यह ही तरकीब है कि अपनेमें यह पहिचानें कि मैं जीव हूं, और कर्म द्रव्य भी साथ चल रहे। इन जीवोंने भावोंसे जो कर्मानुभाग बाँधा था वह अनुभाग पड़ा है कर्ममें। जिस कालमें उदय हुआ तो कषाय कर्ममें उठी, उसका अनुभाग उसीमें फूट निकला। उस अचेतनके उस अनुभागकी झांकी यहाँ हुई, तो अब दो जगह कषायें हैं—जीव कषाय अजीव कषाय। आप इससे पहिचान लो, समयसारमें वर्णन है ना विशेष कि मिथ्यात्व दो तरहका, कषाय दो तरहके-जीव कषाय, अजीव कषाय, जीव मिथ्यात्व, अजीव मिथ्यात्व, इससे समझ लो कि पुद्गल कर्ममें कर्मानुभाग प्रस्फुटित हुआ है वह तो है कर्मकी कषायका अनुभाग, और उसकी जो झलक यहाँ हुई है जिससे कि यह उपयोग मलिन बन गया, दर्पणमें प्रतिविम्ब पड़ते ही दर्पण मलिन हो गया, ऐसे ही आत्मामें भी अजीव कषायका प्रतिफलन पड़ते ही जीव मलिन हो गया तो यह जो झलक है, तद्विषयक उपयोग विकल्प है यह है जीव कषाय। भेदविज्ञान करता है ज्ञानी कि यह कषाय, कर्मका प्रतिफलन है, कर्मका निमित्त पाकर हुआ है, यह मेरी चीज नहीं, यह हटनेके लिए है। आप देखो कितना साफ भेदविज्ञान जगाता है यह निमित्त नैमित्तिक भावका परिचय। वहाँ यह बात तो है कि कर्ममें जो कषाय अनुभाग फूटा वह कर्मका है। उस कर्मानुभागका यहाँ प्रतिफलन हुआ है, सो जीव ऐसी योग्यता वाला है तब ही तो यह प्रतिफलन हुआ है। और अज्ञानी, जीवकी ऐसी योग्यता है कि वह उस प्रतिफलनको अपना लेता है अब यहाँकी ओरसे देखो, जीवकी ओरसे देखो, दो पर दृष्टि न दो। निश्चयनय एक द्रव्यको दिखाकर बात करता है, यह जीव देखो अपनी परिणतिसे, अपनी योग्यतासे ऐसी मलिन अवस्थाको प्राप्त हुआ। अगर निमित्त नैमित्तिक भाव न मानो और केवल इस ही का एकान्त करो तो निरपेक्षतया यही अर्थ बनेगा कि कर्मकी क्या बात है, निमित्तकी वहाँ क्या बात है ? यह जीव है अपनी योग्यतासे क्रोध रूप, विकार रूप, जब जैसी योग्यता हुई परिणमता रहता है। तो अब यह योग्यता अटपट हुई ना, कदाचित् सिद्धके क्यों नहीं बन बैठती ? जब निरपेक्ष रहती है, यह बात, तो सिद्धके भी योग्यता आ जायगी। फिर तो मुक्तिका कोई महत्त्व न रहा। तो यह देखनेकी कला है। जैसे हम एक ही भींटको देख रहे तो उसे देखकर वर्णन कर रहे हैं तो एक भींटको देखते समय एक भींटकी कुछ बात कह रहे हैं, पर यहाँ हम मना करके कहें कि दूसरी भींट तो है ही नहीं, एक भींट है तब तो फिर छत गिर जायगी। फिर क्या हालत होगी ? और बात ठिकानेसे श्रद्धामें हो कि एक भींट और है, पर यहाँ तो एक भींट देखकर वर्णन कर रहे, इसी तरह वर्तमानमें संयोग भी है और जहाँ संयोग है वहाँ वह भी है, आखिर संयोग हुआ है तो एक एक है, उसी का संयोग है, संयोग शब्द ही बतलाता है कि अलग अलग द्रव्य है। जब हम केवल एक द्रव्यको ही निरखकर बात करें तो एककी ही बात होगी। वहां दूसरेकी बात विधि रूपमें न होनी चाहिए। और निषेध रूपमें भी न होनी चाहिए। केवल एककी ही बात विधि रूपसे करते रहो। तो एकको देखो निश्चयनयसे देखो, एककी बात कर लो, मगर जो संयोगको असत्य कहे, संयोग है ही नहीं, ऐसी बात रखकर कहे तो उसीको तो कहते हैं ब्रह्माद्वैत एकान्त। फिर तो यह प्रसंग हो जायगा फिर तो अपरिणामी रहा। किन्तु कोई सत् अपरिणामी नहीं होता। यहाँ तो विकार परिणाम भी है, संयोग है और संयोगके प्रभाव भी चल रहे। अभी चर्चा करो, किसीने अगर विरुद्ध बात कही तो वहीं झट तमतमा उठे, बताओ यह तमतमाना क्या है? वह कर्ममें हो रहा है मगर उसका प्रतिविम्ब है यह बेग जिससे यह उपयोग भी ढका गया है, अब हमने उसे अपना लिया है। कर्तव्य यह है कि यह भेदविज्ञान बनायें कि

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ये रागद्वेष विकार विकल्प, ये सब क्लेश सुख दुःख, यह सब कर्मोंकी छाया हैं, मेरा स्वरूप तो एक विशुद्ध चैतन्य मात्र है।

३१८ तत्त्वोंके परिचयका प्रयोजन—

तत्त्वोंके परिचयका प्रयोजन क्या लेना है ? विभावोंसे हटना, स्वभावमें लगना। अब निरखते जावो कि विभावोंसे हटनेकी जहाँ बात बना तो इस तरहके प्रयोगसे, सोयों विभावसे हट लो। और, विभावोंसे जब हटते हैं तो इसमें उस समय यह बात बनती है कि यह स्वभावको निरखता है। तो जिसने यह भेदविज्ञान किया कि यह कर्मरस मेरा स्वरूप नहीं, मेरा स्वभाव तो चिदेकज्ञायक भाव है, चैतन्य स्वरूप, एक चैतन्य महाप्रभु, मेरा स्वरूप तो यह है और यह सब कर्म जाल यह मैं नहीं हूँ, ऐसा ही सब जीवोंमें तक रहा ज्ञानी। तो तक रहा है तो एक यह विश्वास बना हुआ है और अधिकतर उस सहज स्वभावकी ओर देखता है। जो पुरुष किसी भी जीवको निरखकर पर्यायकी मुख्यतासे तो निरखे और स्वभावकी बात ही उसमें न सोचे तो क्या अंदाज लगाना चाहिए ? ये दिखने वाले जीव भी स्वयं इस पर्याय बुद्धिसे ही रहा करते हैं रात दिन तब तो अन्य जीवोंमें एक पर्याय निगाहमें आयी। स्वभाव क्यों नहीं निगाहमें आया ? जैसे किसी मनुष्यके बैठने उठनेके कमरेको देखकर उस मनुष्य की प्रकृति बतायी जा सकती है। कमरेमें क्या देखा ? फोटो देखा, उससे ही जान लेंगे कि इसमें रहने वाला जो मुख्य आदमी है वह किस नेचर का है। तो ऐसे ही समझिये कि जिस पुरुषके चित्तमें किसी प्राणीके प्रति स्वभावकी दृष्टि तो होती नहीं और पर्यायमें ही दृष्टि होती है तब ही तो यह बुरा है, यह तुच्छ है, यह दुर्भग है ऐसा जानते हैं। जिसमें अधिक गुणका विकास नहीं उसे घृणाकी दृष्टिसे देखे तो भी समझो कि उसने स्वयंका स्वभाव दर्शन पाया नहीं। जब स्वयंका स्वभाव दर्शन नहीं हुआ तो फिर दूसरेके स्वभाव को देखेगा कैसे ? और, मानो जिन गुरुजनोंमें गुण भी कुछ हैं, दोष भी है, दोष तो रहेंगे साधुमें अन्यथा उसका नाम साधु क्यों ? जिसमें दोष नहीं रहे वह तो सिद्ध हो गया। तो वहाँ केवल एक अवगुण ही दीखे या घृणा करे, यह बात ठीक नहीं। अवगुण न दीखे तो भी इसने अपने आपके बीच एक ऐसा निर्णय बना लिया है। तो घृणाकी दृष्टिसे देखें तो क्या ऐसा कहा जा सकता है कि वह अपनी स्वभाव दृष्टि भी कर पाता है ? प्रत्येक प्राणीको निरखकर पहले उसके स्वभावकी दृष्टि होनी चाहिए, फिर पर्याय भी समझ लो यह ऐसी पर्यायमें है। साथमें स्वभाव दर्शन भी आये।

३१९ स्वभावदृष्टि करके प्राप्त विश्वासकी हितरूपता—

अन्तः स्वभावदर्शन जिसको हुआ ऐसे ज्ञानी पुरुषोंको बड़ा विश्वास है कि जीव और अजीवके भेदकी जो दृष्टि बनती है उस दृष्टिसे यह ज्ञान इन दार्शनिकोंको एक विश्वास उत्पन्न कराता है, बस यह ही एक है। अनादि कालसे बँधे आये हुए इन कर्मोंका विध्वंस हो गया अन्यथा यह दृष्टि आती कैसे ? यह काम एक विशुद्ध स्फुरायमान हुआ है। अब यह ज्ञान इस तरह विलास कर रहा है, ज्ञानमें ज्ञान वर्त रहा है, इस जीवको कष्ट कब होता है, जब यह ज्ञान अपने ज्ञान ज्ञानरूप बर्तनेकी वृत्तिको तज देता है और कर्मके उदयसे जो यह कर्मरसका प्रतिफलन हुआ है उसमें यह जुट जाता है, लग जाता है तद्रूप अपनेको मानता है, बस कष्ट वहाँसे प्रारम्भ होता है। यहाँ जिसने भेदविज्ञान किया, अन्दरमें स्वभाव विभावमें उसका सब ओरसे भेदविज्ञान सही है। जिसने स्वभाव विभावका भेदविज्ञान नहीं पाया उसके बाहरमें यह जुदा है, यह जुदा है ऐसा कह कहकर भी रंच भी भेदविज्ञानका भाव नहीं उत्पन्न होता। तो एक प्रत्यक्षभूत तेजसे उदित, धीर, उदार, अनाकुल, यह ज्ञान प्रकट होता है उन दार्शनिकोंको

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जिन्होंने जीव और अजीवके भेदकी दृष्टि दृढ़ कर ली है।

३२० भेदाभ्यासके प्रतापसे प्रकट हुए ज्ञानकी धीरताका दिग्दर्शन—

कैसा प्रकट होता विवेकियोंको ज्ञान ? धीर, उदार, अनाकुल। यह नाटक ही तो है, मगर यह शान्त रसका नाटक है जितने भी लोग नाटककी नकल कर रहे उसमें ऐसा प्रवाह है कि यह शान्त रसका नाटक या लीला देखनेका उनके उद्देश्य ही नहीं रहता। कहाँसे दिखाये ? यहाँ जो ज्ञान प्रकट हो रहा है, जो इस अनुभागको सही रूपमें निरख रहा है, यह हो रहा है नाटक, उनका ज्ञान धीर है। धीर का अर्थ है–धीं बुद्धि राति ददाति इति धीरः, जो बुद्धिको दे, विकसित करे बुद्धिको न बिगड़ने दे ऐसे पुरुषको कहते हैं धीर और धीर की वृत्तिको कहते हैं धैर्य। जब लोगोंको समझाते है कि धैर्य रखो तो उसका अर्थ यह है कि तुम इस स्थितिमें आवो कि तुम्हारी बुद्धि बिगड़े नहीं और बुद्धि सही काम करे और तुम्हारा दुःख छूटे। जिन जिनको दुःख होता है उनको बुद्धिमें बिगाड़ होनेसे दुःख होता है। दुःख और किसीका नाम नहीं। बुद्धिके बिगड़नेका नाम दुःख है। अभी किसी कम दिमाग वाले पुरुषको देख कर, जिसका दिमाग चलता ही नहीं या सीधे पागल है, लोग बड़ा खेद करते हैं कि इसकी जिन्दगी क्या जिन्दगी है ? बुद्धि बिगड़ गई, दिमाग खराब हो गया, इसका जीवन क्या जीवन है, अच्छा अब जो पागल नहीं हैं इस ढंगके और इस ढंगकी बुद्धि नहीं बिगड़ी किन्तु चतुर बन रहे, जो कुछ सोचा अपने आपमें उसमें कुशल बन गए, व्यापारमें कुशल, परिवारके लिए, कुशल पार्टीके लिए कुशल, और अनेक बातोंके लिए बड़ी चतुराई कर रहे और उसमें आकुलता पा रहे, जब कोई एक आत्मानुभूतिका मार्ग नहीं मिलता और वह ज्ञायक स्वरूप जब अपने लक्ष्यमें आ ही नहीं पाता तो वहाँ तो आकुलता मचेगी ही। ऐसी स्थिति वालेको आप क्या कहेंगे ? अपनी ओर दृष्टि देकर क्यों नहीं कहते कि हाय मेरी बुद्धि बिगड़ गई ; अगर बुद्धि न बिगड़ी होती तो आत्माका जो एक विशुद्ध ज्ञान स्वरूप है, जो कि स्वयं है वह क्यों नहीं मान बैठते, उसमें रत क्यों नहीं होते उसमें क्यों मग्न नहीं होते ? क्यों बाहर उचक रहे, क्यों उपयोग गड़ा रहे, क्यों बाहर इष्ट अनिष्टकी बुद्धि कर रहे ? कह दो कि बुद्धि बिगड़ गई। शायद कहनेमें यों हिचक होगी कि कुछ अपने आपको चतुर समझने वाले लोग स्वयं भी उस नम्बरमें आ जायेंगे, मगर नम्बरमें आयें या न आयें, किन्तु कष्ट अगर हो रहा तो समझो कि बुद्धि बिगड़ गई। जहाँ धीरता हो, सत्यको सत्य मान रहा हो वहाँ कष्टका क्या काम ?

३२१—धीर उदात्त अनाकुल ज्ञानकी उपलब्धिका कर्तव्य—

जो ज्ञान धीर होगा वही उदार होगा। मेरा कुछ नहीं, मैं केवल एक ज्ञायक स्वरूप हूं, और कदाचित् पुण्यवश कोई बड़ी सामग्री मिले तो उसमें भी उसे ममता होती ही नहीं है, मिले तो क्या करता परोपकारके लिए खर्च करता। सबका भला हो। खुदका भी जीवन चले। जहाँ ऐसा धैर्य होता वहाँ उदात्तपना है, जहां धैर्य और उदात्तपना है वहां अनाकुलता है, ऐसा ज्ञान यहाँ प्रकट होता है। तो मुख्य बात क्या ? जीव और अजीवमें भेदविज्ञान करे। इस बाहरके अजीवसे तो जो चाहे शब्दोंमें भेद-विज्ञानकी बात कर लेता। कोई और कुशल हो तो शरीरसे भी भेदविज्ञानकी बात कर लेता है। मगर अपनी कषायोंमें, इच्छामें विकल्पमें और अपने स्वरूपमें स्वरूप और विभाव इनमें भेद विज्ञान करने वाला ही कहलाता है कि सूक्ष्म अंतः संधिपर इसने प्रज्ञाकी कुल्हाड़ी मार दी। भिन्न हो गए दोनों। अजीव अजीबमें जावो, जीव जीवमें रहो, ऐसा यहां एक ही भीतर दृढ़ रहना और उसके प्रतापसे फिर अपने आपके स्वभावमें, स्वरूपमें अपने आपको लगाना। बस यह अन्तः कार्य करने को है, इसका मुख्य

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ध्यान रहना चाहिए, जीवनमें अपनी घटनामें, औरबाहरी घटनामें योग्य व्यवहार करना, क्योंकि रह रहे हैं गृहस्थीमें तो उचित व्यवहार रहे, जिससे कि अपने मार्गमें कोई बाधा न आये। ऐसा निर्णय किये हुए यह ज्ञानी निरख रहा है जीव और अजीवके इस नाटकमें, इस भेषमें कि जीव तो यह है और अजीव यह है। जैसे जिसको पता है कि यह मेरा लड़का है तो वह उस पार्ट अदा करते हुए लड़केको उस भेष के रूपमें देखता है ऐसे ही जिसको जीव तत्त्वकी पहिचान है वह सर्व जीवोंमें, खुदमें भी सर्वत्र समझ रहा है कि परमार्थ तो यह है और बाकी यह कर्मका लगार है। ऐसा समझने वाले दर्शकोंको वह ज्ञान मन को प्रसन्न करता हुआ उदित होता है।

विरम किमपरेणाकार्यकोलाहलेन, स्वयमपि निभृतः सन् पश्य षण्मासमेकम्।
हृदयसरसि पुंसः पुद्गलाद्भिन्नधाम्नो ननु किमनुपलब्धिर्भाति किंचोपलब्धिः।३४।

३२२—देह और कर्ममें स्वत्व अनुभवने वालोंके परमार्थ विश्रामकी अपात्रता—

आत्माके बारेमें अनेक प्रकारके लोग अनेक तरहके ख्याल किया करते हैं। जैसे कोई तो अपने शरीरको ही कहते कि यही जीव है। उन्हें शरीरसे निराला कुछ जीव समझमें नहीं आया। तो कोई थोड़ा विचार करके बताता है कि नहीं, शरीर जीव नहीं किन्तु कर्म जीव है। यहाँ शरीरको जीव मानने वालोंने यह तका था कि सब शरीरकी हरकत है, शरीरका ही काम है, यह ही कर रहा है सब। तो कर्मको जीव समझने वालोंने यह समझ लिया कि यह सब कर्म ही करता है। कर्म ही जीव है, तो बात वहाँ तथ्यकी यह है कि कर्मके उदयका निमित्त पाकर जीवमें जीवकी उस प्रकार विकार परिणति होती है। मगर वहाँ कर्ता कर्म भाव तो नहीं कि कर्मने जीवकी परिणति कर दी हो। यह तो पदार्थका स्वरूप ही है ऐसा कि पदार्थ जो कुछ कर पायगा वह अपनेमें ही कर पायगा, दूसरे पदार्थमें कुछ नहीं करता। यह जीव अपने ही कारण अपनी ही योग्यतासे राग बनाता है और वहाँ कर्म निमित्तके सन्निधानकी बात ही न समझे तो वह स्वभाव बन बैठेगा, फिर उसका विनाश किया जाना कठिन है। और यहाँ कितना विशिष्ट भेद जच रहा है। जीवमें तो राग है ही नहीं। जीव तो अपने एक शुद्ध चैतन्यरस को लिए हुए है। राग तो असलमें मूलमें पुद्गल कर्ममें है, अर्थात् राग प्रकृतिका अनुभाग उस कर्म प्रकृति से ही तो अनन्य है। उसका उदय आया, उस समय यह झलक हुई। अब उस झलकको क्या कहेंगे। दर्पण में जिस बाह्य वस्तुका प्रतिविम्ब है तो प्रतिविम्बको समझते हैं ना कि यह दर्पणके स्वरूपमें नहीं है, स्वरूपसे बाहर है, ऐसे ही यह राग मेरे स्वरूपसे बाहर है। यह समझ तब ही तो बनी है जब यह जाना जैसा कि आचार्य संतोंने बताया है, इस ही कलशकी गाथामें बताया है कि ये सब भाव पुद्गल कर्मसे निष्पन्न हैं। और, ऐसा देखनेमें अपने आपको शुद्ध बनाये रखनेका एक अवसर मिला हुआ है। देख रहे हैं मेरा चैतन्य तो एक अविकार सत्य है। और विकार कर्मरसकी झाँकी है। मात्र ऐसा निमित्त नैमित्तिकभाव है पर यह नहीं कि जीवका कर्मने राग भाव बनाया हो। कर्म अपना ही राग बनाता है तब ही तो अनुभागका उदय कर पाता है। कर्मकी बात कर्ममें ही चलती, कर्मसे बाहर कहीं जीवमें नहीं चलती, पर यह निमित्त नैमित्तिक योग है कि कर्मकी यह रसधारा चलती है तो उसका सन्निधान पाकर जीवकी ऐसी छाया, माया प्रतिफलन होता है। अब यह संज्ञी जीवके विवेककी बात है कि ज्ञान कर लें कि यह मैं हूं, यह परभाव है। और, विवेक नहीं है, तो इस रूप ही अपना अनुभव करता कि मैं तो यह ही हूँ जो कर्मरस है तद्रूप ही अज्ञानी अपनेको अनुभव करता है, तो कोई लोग हैं ना ऐसे जो समझते हैं कि जो कर्म है, कर्मरस है (उसमें ही अभेद करके) सो ही मैं हूं।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

३२३—सुख दुःख शुभभाव अशुभभाव जीवविकार आदिमें स्वत्व अनुभव न करके सहज स्वभावमें स्वत्व अनुभवनेमें शान्ति पथका प्रयोग—

अब कोई कहते कि देखो कर्म और कर्मरस मैं न सही, सुख और दुःख बस यह ही हूं मैं। लोग जब आत्माके स्वरूपके बारेमें बड़ा विवाद मचाने लगे तो एक विषाद खड़ा हुआ, कोई कुछ कहता कोई कुछ। कोई कहता कि सुख दुःख भी क्या चीज है। वे तो शुभ अशुभ भावके फल है। तो शुभ भाव होना, अशुभ भाव होना, बस यही आत्मा है। इनको छोड़कर आत्मा और कुछ जुदा नहीं मालूम हो रहा। तो कोई कहता है कि भीतर उस जैसा रूप निरन्तर रहता ही है रागद्वेष रूप, यह है जीव। जो राग द्वेष तो नहीं है, पर रागद्वेषमें जो घटाव बढ़ावकी शक्ति है यह हैं जीव। जीवके स्वरूपको न जानने वाले कितने ही लोग जीवके स्वरूपमें विवाद उठाते हैं, अरे विवाद करने वालो व्यर्थ क्यों कोलाहल करते हो, व्यर्थ क्यों विवाद करते हो? जो करनेका काम है सो तो करते नहीं और विवादोंमें कितना अपना समय गमाते? क्या है भाई करनेका काम कि पर पदार्थोंका ख्याल छोड़कर स्वयं ही गाढ़ दृढ़ एकचित्त होकर ऐसा अपनेको बनाओ कि चित्तमें कोई बात ख्यालमें ही न रहे और एक अपने आपमें यह कोशिश हो कि मैं क्या हूँ। कोशिश भी क्या करें? बाहरके सारे ख्यालात छोड़ दो और आरामसे बैठ जावो। दर्शन मिलेगा आपको अपने सहज स्वरूपका, सत्याग्रह करने वाले विजयी होते हैं अन्तमें। सत्यका आग्रह लोकमें विजयका बीज बनता है तो हम इन आत्मीय कार्योंमें अपने सत्यका आग्रह करके चलें, कषाय न हो मुझे तो यों ही करना। धर्मका रूप लेकर भी जब चित्तमें कषाय बन जाता, कोई पक्ष बन जाता तो वहाँ भी रास्ता नहीं मिलता। वहाँ भी भटकना चलती है। धर्मके लिए मुक्तिके लिए पक्षका क्या काम? केवल एक शुद्ध भावना रहे कि मुझे तो संसारके संकटोंसे छुटकारा चाहिए, हमारे न पार्टी है, न कोई पक्ष है, न कषाय है, और अपनेको तो यह देह भी भुला देना है। यह जो देह साथ लगा यह भी मैं नहीं हूँ। या मैं अमुक कुलका हूँ या अमुक मजहबका हूँ। एक सत्यका आग्रह कर रहा जैन धर्म, पर मैं जैन हूँ, इस धर्मका मानने वाला हूँ, इतने तकका विकल्प भी आत्मानुभूतिमें बाधक होता है। हालाँकि जैन दर्शनने इस आत्मानुभवका मार्ग दिखाया, पर उसका हो ध्यान रहे तो आत्मानुभूति तो नहीं मिलती। जैसे कोई वैद्य है और वह अपने कुछ शिष्योंको लेकर पहाड़पर घमने गया जहाँ बहुतसी जड़ी बूटी थीं। एक हाथमें डंडा लेकर शिष्योंको बताता जाता था कि यह अमुक रोगकी दवा है, यह अमुक रोगकी। शिष्य लोग उस डंडेके इशारेसे सब जड़ी बूटियोंको देखते जाते थे और समझते जाते थे। समझदार शिष्य कहीं डंडेपर अपनी दृष्टि नहीं गड़ाते थे, डंडेमें ही नहीं उलझ जाते थे बल्कि डंडेके सहारेसे उन जड़ी बूटियोंपर अपना लक्ष्य रखकर हर बातको समझते जाते थे। जैसे वे शिष्य कहीं उस डंडेको ही जड़ी बूटी नहीं समझते ऐसे ही प्रमाणनय ये हैं बूटी। प्रमाण और नयके द्वारा बताया गया यह आत्मतत्त्व है। अब हमें प्रमाण और नयका विकल्प त्यागकर एक अखण्ड अनुभवमें ही तो उतरना है।

३२४—व्यर्थका कोलाहल तज कर कुछ समय अन्तः सहजसिद्ध अन्तस्तत्त्वके अनुभवनेका अनुरोध—

अखण्डके अन्तस्तत्त्वका अनुभव होवे इसके लिए एक प्रयोग करें। जब इतना जान गए कि संसारका जितना संग है, परिग्रह है मेल मिलाप है, पर वस्तुका सम्बंध संयोग जो कुछ है वह सब इस चिद्घन आत्मारामके लिए बेकार है। यह तो एक अपने चैतन्य स्वरूपमें तन्मय अमूर्त स्वयं आनन्दका पिटारा, स्वयं ज्ञानस्वरूप जो कृतार्थ है, जिसमें कष्टका नाम नहीं, केवल एक लखनहार ऐसा ही स्वरूप,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है,इसके अतिरिक्त जितने भी और कुछ भाव हैं, पदार्थ हैं, मुझको सब बेकार है। तो जब कर्मरस उमड़ता है और यह व्यग्र तिरस्कृत हो जाता है, कुछ सूझ बैठती नहीं ऐसी हालतमें बाह्य पदार्थोंको हापड़ धूपड़ होकर अंगेजता है कि यह लावो, वह लावो, यह मेरा यह फलानेका। यह सब क्या है? विपत्ति। यह विपत्ति क्या है? केवल कर्मरस, कर्म-छाया, कर्म प्रतिफलन। तू अपने इस चित्स्वरूपको क्यों नहीं अपने में अनुभवता कि मैं जो अपने आपमें हूँ बस उसीमें तृप्त हूँ। मुझे आगंतुक कुछ न चाहिए जो मैं स्वयं हूं और जिसका जो स्वयं सहज जो कुछ वृत्ति बनती हो बस वही इष्ट है, वही बनो, इसके अतिरिक्त और कुछ न चाहिए, यह ध्यान दो, यहाँ भीतर प्रवेश करो, यहाँ आवो। बाहरमें क्यों इष्ट अनिष्ट, रागद्वेष मोह जाल इन सबको अपना रहे हैं। इन्हें त्यागें, अपनी ओर आयें, आराम करें। व्यर्थ कोलाहल न करें। जितने झगड़े होते हैं वे व्यर्थके कोलाहल है। चाहे घरेलू झगड़े हों, चाहे धर्मके मामलेके झगड़े हों, आरामसे विश्राम कर देखें तो सही, कुछ समय अभ्यास तो करें ऐसा। यहाँ ६ माह तक अभ्यास करनेके लिए कह रहे। स्वयंमें अपने आपकी ओर झुकता हुआ स्वदृष्टिका अभ्यास करें निरखें कि मैं एक चिदेक ज्ञायक केवल चैतन्यरससे भरपूर सहज अंतस्तत्त्व हूँ। इसके अतिरिक्त बाहरी बातोंमें ही तो विवाद तू कर रहा है, उन विवादोंको छोड़ और एक इस चैतन्यरसमय अपने आपको मानकर अपनेमें रहो। देखो ६ माहकी बात क्यों कहो? अनन्तानुबंधी कषायका संस्कार ६ माहसे भी अधिक रहता है और अप्रत्याख्यानावरण कषायका संस्कार ६ माहसे अधिक नहीं चलता। अनन्तानुबंधीका ६ माहसे भी अधिक चलता। प्रयोग करें, ६ माहकी बात क्या? सारी जिन्दगी भर करें।

३२५—जीवनभर करणीय एक मात्र अन्तर्योग—

करनेका काम पड़ा है इस मनुष्यभवमें एक यही बुद्धिमानीका काम, समझदारीका काम। वास्तविक काम और है ही क्या? लोग तो सोचते कि इस कामके करनेकी मुझे फुरसत ही नहीं मिलती, पर फुरसत क्यों नहीं मिलती? उस ओर लक्ष्य नहीं है, नहीं तो फुरसत सारी जिन्दगी भर है। यह मनुष्य बाहरमें कुछ कर ही नहीं सकता। जो इस स्वरूपको न जानता हो और इन बाहरी कार्योंको ही सब कुछ समझता हो उसे फुरसत नहीं। पर इसको तो सारी जिन्दगी फुरसत है, क्योंकि यह जीव बाहरमें कुछ नहीं करता, केवल भाव भर करता है जब भावका ही कर्ता है तो फिर यहाँ कोई बाधा नहीं, इसे दूसरा काम कोई अटका नहीं। कोई यों चलता है, चलने दो, कोई यों नहीं चलता, न चले, मेरा किसीकी प्रवृत्तिसे क्या संबंध। जो जैसा चलता सो ठीक है, कोई किस प्रकार व्यवहार करता कोई कैसा ही करता, यह तो उनकी अपनी अपनी योग्यताकी बात है। बाहरमें जो होता है होने दो बाहरमें अपना उपयोग गड़ा कर फुरसत तो नहीं बनती। ज्ञानमें ज्ञानको समाये जावे, रमाये जावे, यह ही जानता जावे बस इसके लिए तो सारी फुरसत है। यहां देखो और सोचो—है ना सबको फुरसत। बाहरके काम संसारके काम, ये सब कर्मोदयके अनुसार अपने आप चलते हैं। इनको चलानेवाला तू नहीं। तू तो वहाँ भी सिर्फ भाव ही भाव कर रहा है। भावोंके सिवाय अन्य कुछ नहीं कर रहा। जब भाव ही भाव करता है तो जरा भावोंको सम्हाल। भाव ही तो सम्हालना है कि इसका काम बन गया। व्यर्थका कोलाहल मत मचा कि आत्मा यों है, यों है, रागद्वेषकी शक्ति आत्मा है, शरीर आत्मा है, सुख दुःख आत्मा है, शुभ अशुभ भाव आत्मा है, इस विवादमें क्यों पड़ रहा। तुझे यदि समझमें नहीं आता तो तू एक ही तो उपाय बना ले कि सब कुछ छोड़ और आरामसे बैठ। तब पता पड़ेगा कि इस हृदयरूप तालाबमें क्या क्या उपलब्ध होता है, क्या नहीं। पर पदार्थोंका राग, पदका लगाव, परकी बात तज कर एक विश्रामसे बैठ जा, कुछ न सोच। इतनी बात अगर ख्यालमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आती है तो बोल इससे तेरा क्या बिगाड़ ।अरे अन्तस्तत्त्वका ख्याल तो तुझे पार कर देगा ! इन परपदार्थोंसे तेरा कुछ सम्बंध नहीं, इनसे अपना सम्बंध छोड़कर विश्रामसे बैठ जा । ऐसा एक क्षण भी अगर पूरा विश्राम मिल जाय इस आत्माको तो, जो श्रम कर रहा है विकल्पका, यह यों, यह यों, एक मनसे आत्मामें खौल बखौल कर रहा, भीतरमें बड़ी व्यग्रता मचा रहा, अरे इस बातको छोड़कर अपने आपमें जरा स्थित हो, तो तुझे पता पड़ेगा कि इस हृदय तालाबमें क्या तो उपलब्धि होती है क्या नहीं । जैसे तालाबमें कमल हैं, सुगंध है, भवरे उसका रस लेते हैं, यहाँ तो बात जुदा जुदा है । मगर ज्ञानीका तालाब कैसा है कि ज्ञानका ही कमल है जानन ही उसकी सुगंध है और जाननहार ही यह भवरा है, यहाँ जुदा जुदा क्या है, तू तो ज्ञानमय है, अपने ज्ञानका आनन्द लूट और ऐसा निष्पक्ष रहकर अपने आपका भला कर ले । मरेके बाद कोई साथी नहीं । साथी है तो एक सच्चा बोध, सम्यग्ज्ञान, सत्यकी प्रीति यह ही तेरा साथी है । अन्य कोई तेरा साथी नहीं ।

३२६—अनात्मतत्त्वसे विविक्त आत्मतत्त्वकी रुचिमें कल्याणमार्गका लाभ—

यहाँ आचार्य संत यह ध्यान दिला रहे हैं कि आत्माके बारेमें अनेक दार्शनिक अनेक प्रकारका भाव रखकर विचित्र बोल बोलकर परस्पर कुछ विवाद कररहे हैं सो इन अनर्थक बाह्य बातोंके विवादको तू छोड़ और एक यह निर्णय कर कि "एए सव्वे भावा पुग्गलदव्वत्तकम्मणिप्पण्णा" जिनेन्द्र देवने बताया कि ये सब भाव जिनका भी ख्याल आया राग, द्वेष, प्रीति अप्रीति, डर, ग्लानि आदि अनगिनते भाव हैं । जितनी तरहके भी भाव हैं सब पुद्गल परिणामसे निष्पन्न हैं देखिये निमित्त नैमित्तिक भावसे बढ़कर कर्तृकर्मत्वबुद्धि करें तो दोष है । कर्मने ही राग किया तो मैं क्या कर सकता हूँ कर्मकी दया हो तो राग हमें छुट्टी देंगे । देखो यह विवशता कर्तृकर्मत्वबुद्धिमें आती है, सो यह त्रिकाल नहीं है कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य रूप परिणम जाय । कर्म कर्ममें परिणम रहे, पर यह जीव स्वच्छ है, उपयोगमयी है और उसका उदाहरण ये बाहरी पदार्थ जितना जाननेमें आ रहे है उतना प्रतिफलन हो रहा हैं ना ? यह कैसे ज्ञानमें आ रहा कि यह इतनी दूर है ? ज्ञानमें आ रहा ना ? यह तो साक्षात् सब परख सकते हैं । तो जीवमें एक क्षेत्रावगाह कार्माण वर्णणायें बनती हैं और उनमें अनुभाग पड़ा हुआ है । वह अनुभाग आजका नहीं है, वह तो सागरों पर्यन्त पहले पड़ा था । अब वह सामने आया । आकर अपनेमें वीभत्सरूप रख लेता है । जीवने कुछ नहीं किया कर्ममें । कर्मने कर्ममें एक बड़ा डरावना रूप रख लिया, वह चेतन नहीं है इसलिए अनुभव नहीं कर सकता । उसमें एक बड़ी भयानकता आयी इसीको कहते हैं कर्मरसका उदय । जब एक क्षेत्रावगाह है तो ये वाह्य पदार्थ झलकते हैं ये नहीं झलकेंगे क्या ? इनका झलकना इतना बड़ा है कि यह ज्ञानस्वभाव तिरोहित हो जाता है । असंज्ञी जीव तक कर क्या सकते ? जो संज्ञी हैं, जिन्होंने इस अविकार सहज चैतन्य स्वरूपका अनुभव किया है वे पुरुष ऐसा भिन्न जानते है इन रागादिक परिणमनोंको कि ये मेरेसे भिन्न हैं, मेरे चैतन्य रसमें ये होते ही नहीं, यह तो छायामात्र है । है मुझमें क्योंकि मैं स्वच्छ हूँ, यह छाया आयी, लेकिन मैं तो चैतन्यरससे निर्भर हूँ । यह पुद्गल द्रव्यके परिणामसे निष्पन्न है मेरी कुछ भी बात नहीं है । जब कुछ नहीं तो इन सारी बातोंको छोड़ दो विवादको छोड़ो और आरामसे बैठो । अपने आपसे पूछो । पूछो क्या ? बाहरके सारे विकल्प छोड़कर विश्रामसे स्थित होनेका ही नाम है पूछ लेना और जवाब ले लेना । अपने आप बतावेगा यह ही भगवा अन्तरात्मा कि यह क्या है । और यों ही न बतावेगा अनुभवके साथ बतायेगा । तो देखो ऐसा विश्राम करनेसे परख लो कि पुद्गलसे भिन्न पुद्गलकेगुणसे भिन्न, पुद्गलकी पर्यायसे भिन्न औरपुद्गल अनुभाग

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

रसका सन्निधान पाकर होने वाले प्रतिफलनसे भिन्न केवल मैं स्वयं अपने आपके कारण जो चैतन्यरस-निर्भर हूँ, यह हूँ मैं, यहाँ दृष्टि दें यहां विवाद न करें, यहाँ कोलाहल मत मचा और एक अपने आपके इस निज सहज स्वरूपमें ही तू थोड़ी दृष्टि दे तो तू स्वयं समझ लेगा कि मुझे उपलब्धि हुई कि नहीं, सहज आत्मीय आनन्दका अनुभव, बस यह बता देगा कि हमको सत्य ज्ञान हुआ कि नहीं । कोशिश करें, सहज चैतन्य स्वरूपका ध्यान करें ।

३२७—शरीर समय स्थान संग प्रसंग सबसे उपयोग हटाकर आत्मामें ही आत्मत्वका अनुभव करके इन अमूल्य क्षणोंको सफल बनानेका अनुरोध—

देखो आचार्य संतोंकी वाणीमें कहा जा रहा है—हे जगवासियो ज्ञानमें बढ़ो और उसका प्रयोग ज्ञान द्वारा बनाओ । कभी बैठो एकान्तमें, रात्रिमें या सुबह, आसनमें बैठो या कैसा ही बैठो जरा एक ध्यान तो लावो अपने आपमें चिद्घनका । मैं स्वयं क्या हूँ ? प्रत्येक पदार्थ स्वयं है वह अपने असली स्वरूपमें है, केवल एक जीवकी ही बात नहीं । रंग कर दिया, रोशनी कर दिया, छाया कर दिया वह तो अन्य उपाधिसे है, मगर पदार्थका स्वयं अपना स्वरूप कुछ होता ही है । इसी तरह मैं भी अपने आप अपने ही स्वभावकी बजहसे क्या हूँ, बस इसकी पहिचान कर लेना इसीको कहते हैं सम्यक्का दर्शन कर लेना । बस यही सम्यग्दर्शन है । यह सम्यक्त्व पूज्य है, आदरके योग्य है, । मेरा शरण, मेरा सर्वस्व इस सम्यक्में इस ही के अनुरूप सम्यक् परिणति द्वारा सम्यक् चलना है । सम्यक्में इस सम्यक्को देख लेना यह सम्यग्दर्शन है । यहाँका आग्रह बनाइये बाहरका नहीं । बाहरमें लोगोंसे ग्राहकोंसे तो बड़े-बड़े विवाद हो जाते, फिर भी उनसे प्रेम नहीं छोड़ा जाता । लड़ाई हो गई फिर भी दूसरे दिन ग्राहक आयगा तो उससे तो बड़ा प्रेम बतावेंगे । कहो भाई क्यों नाराज हो गए ? आवो, बैठो, यों बहुत बहुत मनायेंगे, सेवा भी करेंगे और यहाँ धर्मके मामलेमें विरुद्धतापर कितना हठ । यह हठ बड़ी बुरी चीज है, इसे कुछ सूझता नहीं और यह बात विदित होती है कि जो मैंने जाना बस वही ठीक है, मै बड़ा बुद्धि-मान हूँ, बड़ा चतुर हूँ, नेता हूँ, बस सब कुछ हो गया, बाकी संसारके सब जीव तुच्छ हैं । भैया सबके स्वरूपको निरखो, यहां तुच्छ कोई नहीं । सबके स्वभावको देखो, सबमें प्रीतिका विस्तार करो—सत्त्वेषु मैत्रीं, सब प्राणियोंमें मित्रता हो, ऐसी बुद्धि तब ही तो जगती है जब एक अपने आपके उस सहज चैतन्य स्वरूपका अनुभव बन जाय । जब तक उसको चैतन्यस्वरूपका अनुभव नहीं बनता तब तक बाहरमें इष्ट, अनिष्ट, घृणा, प्रीति आदिकका कोलाहल मिट नहीं सकता। इस कोलाहलको मिटाना है। इस कोलाहल से कुछ लाभ नहीं । इसके लिए क्या करें कि अपना यह बाह्य उपयोग त्याग कर अपने आपमें शाश्वत अन्तः प्रकाशमान इस सहज चैतन्यरसका पान करें । तुझको तू ही एक देख, तुझको तू ही एक अनुभवमें आ, उस समय न शरीरका ध्यान, न समयका ध्यान, न स्थान का ध्यान। ये तीनों विकल्पमें नहीं रहें । ध्यान होता है । आत्मानुभूति होती है उनको तीन प्रकारका ध्यान नहीं रहता । न शरीर का ध्यान, न जिनको उत्तम समयका ध्यान और न स्थानका ध्यान । हे आत्मन् तू इस चैतन्यरसका पान कर, इस ओर उद्यम कर, कितने दिन लगूँ ऐसा प्रश्न मत कर । यह काम तुझे जीवन भर करना है । तेरे करने को अन्य कोई दूसरा काम पड़ा ही नहीं, अभी बना कर कर रहे तो बना कर करते रहो, फिर यह काम सहज होता रहेगा । सिद्ध भगवानमें यह काम सहज चल रहा है । यहाँ हम आपमें यह काम कुछ प्रयत्न से होता । कुछ थोड़ा ही होता मगर जीवके करनेका काम केवल एक ही है । जो समझदार हो, ज्ञान-वान हो उसका काम एक सहज चैतन्यरसस्वरूप अपनेको मानना हैं कि मैं यह हूँ, मैं अन्य नहीं हूं । यह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अन्य यह तो पर क्षेत्रकी चीज है, पर द्रव्यकी बात है, और यह कर्म यह तो पर द्रव्यकी बात है, कर्म रसकी जो झांकी है यह भी पर है, इसको भी अनुभवना नहीं। ज्ञाता द्रष्टा रहो। यह रागद्वेष परिणति यह सब कर्मछाया यह मैं नहीं। मैं तो शुद्ध चैतन्यघन हूँ, चैतन्यरससे परिपूर्ण हूँ। इस प्रकार अपनेको सहज स्वरूपसे अनुभव कर, तो अपने आप समझ जायगा कि इस पुद्गलसे भिन्न एक इस अंतःपरम पुरुष की उपलब्धि हुई।

सकलमपि विहायाह्नाय चिच्छक्तिरिक्तं, स्फुटतरमवगाह्य स्वं च चिच्छक्तिमात्रम्।
इममुपरि चरंतं चारु विश्वस्य साक्षात्, कलयतु परमात्मात्मानमात्मन्यनन्तम्। ३५।

३२८—सकल अनात्मतत्त्वको त्यागनेका आदेश—

चैतन्य शक्तिके सिवाय, जितने भी भाव हैं उन सब भावोंको छोड़कर एक चैतन्य शक्ति मात्र निज अंतस्तत्त्वमें ही प्रकाश करते हुये भव्य जीव सारे विश्वके ऊपर प्रवर्तने वाले इस ज्ञायक स्वरूप अंतस्तत्त्वका अनुभव करें। यहां यह बात बतलाई गई है कि चैतन्य शक्तिके अतिरिक्त जितने भी भाव हैं उन सब भावोंका परित्याग करें। चाहे वे परद्रव्य रूप हों चाहे वे परद्रव्यभाव रूप हों, सबको त्यागें, क्या क्या त्यागना है, किस किसको त्यागना है ? तो सीधे यह बात समझ लीजिए कि जीवके अष्ट प्रकारके कर्मोंका बन्धन है और उनका जब उदय होता है उस कालमें जो जीवमें अध्यवसान जगते हैं, प्रत्येक सूक्ष्म, स्थूल भावोंका पुद्गल उपादान वाले भी सब भावोंका परित्याग करनेको कहा है, क्योंकि आठों ही प्रकारके कर्म पुद्गल द्रव्य हैं और जब वे विपाकमें आते हैं तो उनका जो भी फल है वह सब दुःख रूप है। देखो यहाँ विभावोंको पर मानकर ही तो त्यागा जा सकेगा। देखो रागद्वेष विकार जो भी भाव होते हैं वे पर है—जब तक यह बुद्धि न जगे कि इनसे निराला मैं चैतन्यरस शक्ति मात्र स्व हूँ, जब तक यह ज्ञान न जगे तब तक विभावोंका त्यागना कैसे बन सकता है ? तो ये रागादिक विभाव पर हैं, ऐसी तथ्यकी बात करने वाले आचार्य महाराज इस समयसारमें यह बात कह रहे हैं कि ये रागादिक अध्यवसान, ये हास्य, रति, अरति, आदिक भाव, ये विकल्प, ये विचार, ये तरंग सब पुद्गल कर्मसे निष्पन्न हैं। सीधे शब्द लिखे हैं उसमें और कुछ तोड़ मरोड़की गुंजाइस नहीं है। और फिर देखिये—यहाँ यह बात बतायी गयी कि यहाँ जीव और कर्म दो चल रहे हैं। कर्ममें कर्म हैं, जीवमें जीवहै, कर्ममें कर्म की परिणति है, जीवमें जीवको परिणति है, मगर जो विभाव जग रहा उसमें निमित्त नैमित्तिक योग है कर्मके उदयका सन्निधान पाकर जो एक छाया हुई, प्रतिफलन हुआ, बस वह है अध्यवसाय मूल उसे कोई अपनाये तो वह है मिथ्या अध्यवसान। ये पर हैं क्योंकि कर्मोदयका निमित्त पाकर हुए है ऐसी दृष्टि रखकर ही परका ज्ञान होगा और जब पर जान लिया गया तो परसे असहयोग बन जायगा और उस निज चैतन्य शक्तिमें प्रवेश करेगा। यह ही विधि सीधे शब्दोंमें कही गई है।

३२९—विकार विधिका परिचयन—

अब विकार होनेके सम्बंधमें तीन बातें समझियेगा। जीवमें विकार जगे, रागद्वेषादिक भाव जगे, उसमें तीन कारण है—उपादान कारण, निमित्त कारण, आश्रयभूत कारण। उपादान कारण कौन? यह जीव, अशुद्ध जीव, ऐसी पर्याय वाला जीव, जिसमें रागादिक उठ रहे हैं यह जीव है उपादान कारण, निमित्त कारण क्या है कि उस प्रकारके अनुभाग रस उदय वाला कर्म उसके विपाकका सन्निधान पाना यह है निमित्त। और आश्रयभूत कारण क्या है ? यह सब ठाठ बाट धन वैभव पुत्र, मित्र, स्त्री, इज्जत आदि पञ्चेन्द्रियके विषयभूत जो अर्थ हैं जिनमें प्राणी उपयोग फसाते हैं वे सब कहलाते है आश्रयभूत

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कारण । अब अन्दाज कर लो—अगर मानो ये रागभाव मात्र जीवकी योग्यतासे होते हैं, निमित्त तो मुफ्तमें खड़ा हो जाता है तो अब इसके मायने हुआ कि यह सब रागादिक ढाचा मात्र निरपेक्ष होकर जीवकी ओरसे ही चल रहा है । तो जीवकी ओरसे चल रहा केवल निरपेक्ष होकर तो कभी सिद्धमें भी चल बैठे । जब कोई विकारमें साधन नहीं, हेतु नहीं तो फिर वह सिद्धमें चल बैठे । क्यों नहीं चलता ? केवल यह बात कहना कि उनमें योग्यता नहीं इसलिए नहीं चलता, योग्यता है इस कारण चलता यह तो उत्तर नहीं है, क्यों ? ऐसी यहाँ योग्यता रही वहाँ क्यों न योग्यता रही इसका भी जवाब दें । यहाँ योग्यताकी योग्यता मानोगे तो अनवस्था दोष होगा और फिर क्यों यहाँ योग्यताकी योग्यता है इसका भी जवाब दो याने जो बात प्राचीन धवल, जयधवल, महाधवलमें कही गई जो ग्रन्थ बड़े पूज्य माने जाते हैं, जिससे श्रुतपंचमी पर्व तक निकला है वह चूँकि व्यवहारसे कहा है तो उसे कहना कि यह सब झूठा है ऐसी अनर्गल बात कहना युक्त नहीं, क्योंकि व्यवहारनय झूठा नहीं होता, उपचार झूठा होता है कारण यह पड़ गया कि उपचारको भी शास्त्रोंमें व्यवहार कहा और व्यवहारको भी व्यवहार शब्दसे कहा, तो अब उपचार तो निकला असत्य और उसका नाम धरा व्यवहार, तो जिनवाणीके भक्तोंको इतना विवेक होना चाहिए कि व्यवहारका दो जगह प्रयोग होता है—उपचारके लिए भी और व्यवहार नयके लिए भी । उनमेंसे उपचार वाला व्यवहार असत्य है और व्यवहारके लिए कहा गया व्यवहार असत्य नहीं, जैसे कि गाय, भैंसके दूधका भी नाम दूध है और आकके पत्तोंसे जो दूध निकलता है उसका भी नाम दूध है । अब विवेकियोंको यह समझना चाहिए कि आकके दूधको भी दूध कहते हैं, गाय भैंसके दूधको भी दूध कहते हैं इसलिए ऐसी घोषणा न करनी चाहिए कि दूध मनुष्यके प्राणोंका घात करता है क्योंकि आकका दूध तो मनुष्योंके प्राण मिटा देता है इसलिए आकके दूधकी बात रखकर कोई सब दूधों को कहे कि सब दूध मनुष्यकी जान लेते हैं तो यह कहना युक्त नहीं । इसी प्रकार उपचार वाला व्यवहार जिस भाषामें बोला गया उसी भाषामें उपादानके ढंगसे समझे तो झूठ । ऐसी बात एक उपचार वाले व्यवहारमें पायी गई, इससे सारे व्यवहारोंको असत्य कह देना यह तो द्वादशांग वाणीका अपलाप है ।

३३०—व्यवहारनय और निश्चयनयका उपकार—

अब देखो यहीं नजरमें कर लो, हम परिचय दो दृष्टियोंमें करते हैं १—केवल एक द्रव्यको देखकर और २— संयोगको देखकर । संयोग है यह बात क्या झूठ है? इस समय हम आपके साथ कर्मका बन्धन है यह बात क्या झूठ है ? पर संयोगकी बात व्यवहारनयसे बतायी जाती है । झूठा तो नहीं है मगर स्वरूपदृष्टिसे देखें, निश्चयसे देखे तो वह एक ही द्रव्यको देखेगा, जीवमें जीवको ही देखेगा निश्चयनय, कर्ममें कर्मको ही देखेगा निश्चयनय। तो जब एक द्रव्यको ही निश्चयनयसे देखा तो इस दृष्टिसे संयोग नहीं पर संयोग सर्वथा ही नहीं है ऐसा एकान्त हो तो असत्य है । संयोग तो है, रोज खाते हैं, पीते है, अपनी कषायके प्रतिकूल कोई बात कर बैठता है तो यहाँ तिलमिला उठते है, यह सब क्या है ? यह संयोगकी बात है । उपाधिके सम्बंधसे बात चा रही है, पर विवेक यह करना है कि इस उपाधि सम्बंधको देखकर तो कल्याण न कर सकेंगे । हमें तो इसे हटाना है इसलिए एक द्रव्यको देखें । देखो यह निश्चयनयका विषय है बाकी सब व्यवहारका है । अगर व्यवहारनय मिथ्या हैं तो समयसारमें ७५ प्रतिशत व्यवहारनय का वर्णन है, केवल २५ प्रतिशत निश्चयनयका वर्णन है तो क्या हम समयसारके तीन हिस्सोंको झूठा करार कर देंगे ? यह व्यवहारनय तो हमारा बड़ा उपकारी है । यह व्यवहारनय निश्चयनयके एक द्रव्य

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

के विषयको दृष्ट कराने योग्य बनाकर स्वयं मर जाता हैं। भला जो माता अपने पुत्रके लिए मर जाय और पुत्रको ही एक जीवित रखनेके लिए अगर मा अपने प्राण गवाये तो वह तो एक लौकिक हिसाबसे दयालु है, उपकारिणी है, ऐसे ही व्यवहारनय समझने योग्य बनाकर व्यवहारनय स्वयं मर जाता है और इसी तरह निश्चयनय भी इस आत्माको अनुभवके योग्य बनाकर स्वयं मर जाता है। और, फिर दोनों नयोंसे अतीत स्थिति हो जाती है।

३३१—जीव प्रकट जीवविकारके कारणत्रयका विश्लेषण—

अब देखो प्रकट विकारके तीन कारण—अशुद्ध जीव उपादान कारण, कर्मोदय निमित्त कारण और ये धन वैभव नौकर चाकर आदिक ये सब आश्रयभूत कारण हैं। बात क्या होती है? कर्मरस उदयमें आता है, उसकी छाया यहां उपयोगमें होती है, उससे उद्विग्न होकर अज्ञानी पुरुष आश्रयभूत कारणोंमें उपयोग करता है। ज्ञानी उद्विग्न नहीं होता, उसे समझ है कि यह कर्मलीला है, यह मेरा स्वरूप नहीं, पर अज्ञानीको इसका पता नहीं, वह तो इस कर्मरसको ही समझता कि यही मैं हूँ, और जो नोकर्म हैं, आश्रयभूत कारण हैं उनमें यह उपयोग फसाता है। जब इन आश्रयभूत कारणोंमें उपयोग फसता है तो इसमें व्यक्त रागद्वेष चलते है। अब इन तीन कारणोंमें क्या बात समझना कि जीवने ऐसा परिणमन किया है तब तो यह अध्यवसान जगा। इस परिणमनको बदलकर शुद्धतत्त्वके उपयोगका परिणमन चाहिये यह उपादान कारणसे शिक्षा मिली। कर्मोदय है उसीका तो यह प्रतिफलन हुआ। यह निमित्तकी बात है उसमें मैं क्यों बह जाऊं। और आश्रयभूत कारण, इनमें उपयोग जुटाये तो व्यक्त राग हो गया, इनमें उपयोग न जुटायें तो राग प्रकट नहीं होगा तो आश्रयभूत कारणका विकारके लिए कारणपना नहीं। कारणपना तो बनाया गया है आश्रयभूत कारणमें, जिसको सब निमित्त शब्दसे बोलते हैं। आश्रयभूत कारणको बहिरंग कारण कहा है शास्त्रोंमें बहिरंग कारणको भी निमित्त शब्दसे लिखा है और कर्मोदय कारणको भी निमित्त शब्दसे लिखा है। अब विवेक बिना तथ्य समझमें नहीं आयगा। तो वहाँ यह विवेक करना चाहिए कि यदि आश्रयभूत कारणके लिए कहा गया है कि इसमें उपयोग जुटायें तो ये कारण होते तो बात यहाँ यह ठीक बैठ गई, पर निमित्त कारणमें यह बात नहीं बैठ पाती, क्योंकि वह कर्मानुभाग कर्मरस अपनी स्थिति पूरी करते ही अनुभागमें आता है, उसकी यहाँ झाँकी होती है और उसको फिर अज्ञानी आत्मसात् करता। अज्ञानी यह तो नहीं समझ पा रहा कि मैं ही तो एक चैतन्य स्वभावमात्र हूं। मैं तो एक सबसे पृथक अपने आपके सत्त्वके कारण अत्यन्त निरपेक्ष परमपारिणामिक भावरूप यह मैं हूं, इस बातको अज्ञानी तो नहीं समझ रहा यों कि यह जो कर्मोदयका कर्मरसरूप प्रतिविम्ब हो रहा, बस यह मैं हूं। इस निमित्तका तो इस कार्यके साथ अन्वय व्यतिरेक सम्बंध हैं, जिसका समयसारमें भी जगह जगह संकेत किया है, पर आश्रयभूत कारणके साथ इस विकारका अन्वय व्यतिरेक सम्बंध नहीं, इसलिए निमित्त कारण नहीं कहलाते। ये जो जगतके समस्त पदार्थ हैं, अन्य सब जीव, सारे पुद्गल सब कुछ ये मेरे विकारके लिए निमित्त नहीं हैं। इनमें इसने उपयोग जुटाया तो ये आश्रयभूत कारण कहलाते हैं।

विकारविधिपरिचयसे विभावके हेयत्वका प्रतिबोध—

कर्मानुभाग जो अपने भावोंसे ही बाँधा हुआ था वह जब अपनी विपाकीय ताँडव लीलामें आता है, उसका अनुभाग उदयमें आता है उस समय यहाँ क्या होता है? वही प्रतिविम्ब है जिसको चिद्विलासमें बताया है कि कर्म हँस रहा, रो रहा यह अज्ञानी न होना चाहिए कि मैं हँस रहा।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जैसे दर्पणके आगे लाल चीज रखी तो लाल तो है मूलमें कपड़ा। दर्पणमें प्रतिविम्ब मात्र है। दर्पण तो एक समझा देने वाला है कि कपड़ा लाल है सब जानते हैं। एक दर्पण आगे किया, पीछे कुछ लड़के खेल खेल रहे, कोई बालक टाँग फैला रहा, कोई हाथ फैला रहा, कोई जीभ निकाल रहा, कोई सिर मटका रहा, तो उस दर्पणमें प्रतिविम्बको देखकर कहते जाते हैं कि देखो अमुक बालकने यों किया, अमुक बालकने यों किया। तो यह बात यह सिद्ध करती है कि लड़के जुदे हैं और वह दर्पण जुदा है। दर्पण तो एक झलक कराने वाला है। जुदेपनेकी झलक। ज्ञानी पुरुषोंके लिए यह जो कर्मरस झलका है यह तो जुदा करा देनेको समझाने वाला है कि यह कर्मरस है, कर्ममें खुद स्वयं रस ही है, वही तो झलका है यहाँ। अब इस झलकमें हमको न फसना चाहिए। ये परभाव हैं, विभाव हैं, हेय हैं।

३३३—आत्मानुभवार्थीको निमित्तनैमित्तिक योगके सुपरिचयकी भी आवश्यकता—

निमित्तनैमित्तिक योगका सही परिचय जिन्होंने नहीं पाया वे अभी आत्मानुभव नहीं कर सकते। हाँ अगर कोई व्यवहारका एकान्त करके यह माने कि कर्मने राग किया तो यह मिथ्या है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्यका कुछ नहीं करता, यह वस्तुका स्वरूप है। तब ही तो आज तक ये अनन्तानन्त पदार्थ टिके हुए हैं। अगर एक पदार्थ दूसरे पदार्थका कुछ कर देता होता तो यह न रहा, कोई एक रहा दो में से। उसे किसी दूसरेने किया तो एक क्या रहा ? यों गड़बड़ होते होते शून्य हो जाता। यह जगतकी सत्ता यह बात जताती है कि प्रत्येक पदार्थ अपने-अपने ही द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे परिणमता है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्यका कर्ता नहीं इसलिए कर्म रागादिक परिणतिको करते हैं यह बात तो अयुक्त है, लेकिन यह बात युक्त है कि कर्मोदयका निमित्त पाकर जीव अपनी योग्यतासे अपनेमें ऐसी कला खेल बैठता है। जीवने कर्मको नहीं किया। कर्मने जीवको नहीं किया। जैसे हम (प्रवक्ता) चौकीपर बैठे हैं तो यह कहना युक्त नहीं कि इस चौकीने हमें बैठा लिया, पर यह बात कहना युक्त है कि इस चौकीका निमित्त पाकर हम अपनी कलासे उसपर इस प्रकारसे बैठ गए। ठीक ऐसे ही सर्वत्र जान लो। निमित्त उपादानकी परिणतिको कभी नहीं करता, यह ध्रुव सत्य है, और, यह भी सत्य है कि निमित्तका सन्निधान पाये बिना पदार्थ अपनेमें विकार भाव नहीं कर पाता। अब देखिये निमित्तनैमित्तिक योग व वस्तुस्वातन्त्र्यकी इस दृष्टिमें हमको स्वभावके दर्शनके लिए कितनी प्रेरणा मिली ? यह प्रतिविम्ब तो कपड़ेका है दर्पणका नहीं। प्रतिविम्ब तो दर्पणके प्रदेशोंमें झलक रहा है। यह झलक ही यह बात बतला रही है कि यह दर्पणकी चीज नहीं है, यह पर है। यह पर पदार्थ इस दर्पणसे जुदा है। वह झलक तो एक ज्ञापक है, इसी प्रकार ये विभाव ये रागादिक भाव ये तो ज्ञापक हैं, ये कर्मरस हैं और कर्म मुझसे जुदे हैं।

३३४—दृष्टान्तपूर्वक विकार निरखकर विकारविविक्त चैतन्यकी परिज्ञप्ति—

जैसे कोई एक कमरा बंद है, एक खिड़की भर खुली है, उस कमरेके कोनेमें बिजलीका एक लट्टू (बल्ब) जल रहा था। उस खिड़कीसे बिजलीका प्रकाश दिखा तो उससे झट ज्ञान कर लिया कि इस कमरेमें बल्ब जल रहा है। देखो बल्ब नहीं दिखाई पड़ता मगर उसके ज्ञानमें आता है ना कि बिजली जल रही ? तो जैसे खिड़कीसे प्रकाश देखकर यह ज्ञान कर लिया कि कमरेमें बिजली जल रही ठीक ऐसे ही जीवमें जो झलक है, चाहे इस ज्ञेय पदार्थकी झलक हो, यह झलक यह ज्ञापन कराती है कि यह द्रव्य जुदा है, इसी तरह कर्मरसकी भी झलक आती है। ये ज्ञेय पदार्थ तो बहुत दूर हैं, वहाँ विषयरूपसे झलक है और ये कर्म इस जीवके प्रदेशोंमें एक क्षेत्रावगाह है और उनके जिन निषेकोंका

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अनुभाग फूटता है उनकी यह झलक है। यह झलक इस बातको सिद्ध करती कि आत्माके स्वरूपसे कर्म रस जुदा है। भेदविज्ञान यहाँ उत्पन्न हुआ। कहते हैं ना–सूक्ष्म अंतः संधिपर इस प्रज्ञाका निपातन करना वह सूक्ष्म अंतः संधि क्या ? कर्मरस व जीवत्व। कर्मरसका प्रतिफलन और जीवका निजस्वरूप। जीवका निज स्वरूप जानें, सहज भाव, चैतन्य शक्ति मात्र यह मैं अंतस्तत्त्व हूँ, और यह प्रतिफलन, यह कर्मधारा है, इससे मैं निराला हूँ, इसीलिए कहा गया है कि चैतन्य शक्तिके अतिरिक्त जितने भी भाव हैं वे परभाव हैं, उनका परित्याग करें। उनसे असहयोग करें, तुम मुझमें मत रहो। अच्छा परभाव तो दुनियामें और भी बहुत हैं, उनसे हटनेकी क्यों शिक्षा नहीं लेते ? अरे जिनमें लगे ही नहीं हैं उनसे हटनेकी क्या शिक्षा दें ? और ये परभाव जो कर्मरस है, छाया है, ये परभाव, ये उसके एक क्षेत्रमें हैं और इनमें आत्मबुद्धि करके मैं अपने जन्म मरणकी परम्परा बढ़ाता हूँ, यह है, अनिष्ट सब समागम यह विदेशी माल है, इससे असहयोग करें, यह मेरे निज स्वभावका माल नहीं है। जो अपना निजी माल हो उसमें रुचि करें।

३३५ जीवमें परिणामके तीन कारणोंका परिचय–

यहाँ बात चल रही थी तीन कारणोंकी। जीवमें जो विकार होते हैं उनमें इन तीन कारणों की पहिचान बनावें। उपादान कारण, निमित्त कारण और आश्रयभूत कारण। ग्रन्थमें आश्रयभूत कारण को भी निमित्त शब्दसे लिखा है, कहीं कहीं नहीं भी लिखा है, पर अक्सर करके लिखा रहता है। तो निमित्तकी बात सुनकर पहले तो यह निर्णय बनायें कि यह आश्रयभत कारणकी बात कही जा रही है निमित्त शब्दसे या अन्वय व्यतिरेक वाले निमित्तकी बात कही जा रही है। यदि आप यह छटनी करें तो कभी आप भ्रम न पायेंगे। यह छटनी करनी होगी। जैसे कि लोग कहते हैं ना कि देवदर्शन, वेदनानुभव, ऋद्धिदर्शन, हितोपदेशादिक ये सम्यक्त्वके निमित्त कारण हैं। और यह भी तो कहते कि सम्यक्त्व घातक ७ प्रकृतियोंका उपशम, क्षय, क्षयोपशम ये सम्यक्त्व होनेके निमित्त कारण हैं। अब इन दोनों वाक्योंमें देखिये–आगममें दोनों लिखे हैं। धवलका जहाँ छठे भागका अंतिम चूलिका आयी है वहाँ बताया है कि नरक गतिमें सम्यक्त्वके कितने निमित्त हैं ? वेदनानुभव, देशना आदिक और देवगतिमें सम्यक्त्वके कितने निमित्त हैं ? ऋद्धिदर्शन, जिनबिम्बदर्शन, पंचकल्याणक आदिक। पर वस्तुतः ये सम्यक्त्व निमित्त कारण हैं ही नहीं। आगममें तो लिखा है, पर वहाँ यह विवेक बनायें कि निमित्त शब्दका प्रयोग दो के लिए होता है, आश्रयभूत कारणके लिए और अन्वय व्यतिरेक रूप निमित्तके लिए। तो जहाँ ७ प्रकृतियोंका उपशम, क्षय, क्षयोपशम निमित्त कहा है वह तो है अन्वय व्यतिरेकी निमित्त और जहाँ देव–दर्शन, पंचकल्याणक, समवशरण इनको निमित्त कहा है, सम्यक्त्व का वह है सम्यक्त्व के अनंतर पूर्व परिणामका आश्रयभूत कारण आश्रयभूत कारणके साथ यह नियम नहीं है कि आश्रयभूत कारण होवे तो सम्यक्त्व हो ही और इसीलिए यह शंका न करनाकि देखो जीव समवशरणमें अनेक बार गया और उसे सम्यक्त्व न हुआ, तो यह कारण कहाँ रहा ? अब कहते हैं कि ये देवदर्शन, समवशरणमें जाना आदिक सम्यक्त्व के निमित्त नहीं हैं किन्तु आश्रयभूत कारण हैं, तो सम्यक्त्वका निमित्त क्या है ? सम्यक्त्वघातक ७ प्रकृतियाँ–मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक् प्रकृति, अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, इन ७ प्रकृतियोंका उपशम हो, क्षय हो, क्षयोपशम हो तो ये सम्यक्त्वके निमित्त कारण हैं कर्म प्रकृतियोंका कैसा उपशम, कैसा क्षय, क्या उनमें बात बीतती इतनी सूक्ष्म बातें करणानुयोगमें वर्णित हैं, मगर अब ऐसी हवा बदल चुकी कि किसी भी अनुयोगसे प्रेम न रहा। सिवाय जीव, और देह, बस इनकी माम्मूली सी चर्चा समाजमें रह गई, करणानुयोगकी ओर किसीकी दृष्टि नहीं रही। अब वह निधि लुप्त हो गई।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जो जैन दर्शनके ज्ञाता रहे सहे लोग हैं वे कब तक ठहरेंगे? जब करणानुपयोगका अध्ययन हो तब ग्रंथ कर्ता प्रति और सर्वज्ञ महात्म्यके ति अपूर्व भक्ति उमड़ती है। एक एक समयमें अनन्तानुबंधीका अन्य प्रकृतिका किस किस तरह का संक्रमण, निक्षेपण, गुणश्रेणी आदिक अनेक ढंगोंसे इन कर्मोंकी दुदशा बनी है। फिर उसका उपाय बताया कि यह जीव अपने विशुद्ध परिणामोंकी सम्हाल करे तो इसका समस्त कर्मोंसे छुटकारा हो जायगा। देखिये यह विषय निर्विरोध जैन शासनमें ही पाया जाता है, और आजकलके कुछ मनचले लोग इसे झूठा करार कर रहे, ठीक ही है। उन्हें इसके मर्मका क्या पता ? देखो—बात तीन कारणोंको कह रहे हैं—समयग्दर्शनका कारण केवल ७ प्रकृतियोंका उपशम, क्षय, क्षपोपशम हैं। समवशरणमें जाना, देवदर्शन करना आदिक ये है सम्यक्त्वपूर्वभा ी शुभभावके आश्रयभूत कारण।

३३६– **देवदर्शन आदिकी सम्यक्त्वपूर्वमाषी भावको आश्रयभूत कारणता—**

एक सूक्ष्म बात और देखिये–समवशरणमें जाना, उपदेशका सुनना, देवदर्शन होना, ये सम्यक्त्व के आश्रयभूत कारण भी नहीं है। अच्छा तो फिर किसके कारण है। देखिये जिस—जिस वक्त सम्यक्त्व उत्पन्न हो रहा है उस समय इस जीवकी क्या स्थिति है ? निर्विकल्प। उस स्थितिमें, उस कालमें क्या कोई समवशरणका ध्यान है ? क्या कुछ देवदर्शनका ध्यान है ? तो सम्यक्त्वके आश्रयभूत कारण कैसे हो जायेंगे ? अच्छा ग्रन्थोंमें तो लिखा हैं कुछ और अपना दिल भी कह रहा है सो कैसे। कह रहा है तो समझो सम्यक्त्व उत्पन्न हुआ जिस कालमें उस कालसे पहले जो शुभोपयोग हुआ उस शुभोपयोगका आश्रयभूत कारण है यह समवशरणमें जाना, देवदर्शनादिक करना। अशुभोपयोगके बाद कभी सम्यक्त्व नहीं हो सकता। जब भी होगा तो शुभोपयोगके बाद ही हो सकेगा इसी प्रकार जब भी होगा तो शुभोपयोगके बाद ही हो सकेगा। इसी प्रकार जब भी शुद्धोपयोग है वह शुभोपयोगके अनन्तर ही हो सकेगा, अशुभोपयोगके बाद नहीं हो सकता। एक भी उदाहरण आपको ऐसा न मिलेगा कि जो अशुभोपयोगके अनन्तर शुद्धोपयोग हुआ हो। हो ही नहीं सकता। शुभोपयोगके बाद ही शुद्धोपयोग होता है। तो जो सम्यक्त्व जगा उस सम्यक्त्वसे पहले जो शुभोपयोग था, जो सम्यक्त्वके लिए प्रेरक भाव था, जो सम्यक्त्वके विषय की ओर दृष्टि करानेके लिए भाव थे उन भावोंके समय, उस शुभोपयोगके समय समवशरण आश्रयभूत कारण बन रहा, देवदर्शन आश्रयभूत कारण बन रहा,। ये जितने सम्यक्त्वके बाह्य निमित्त कहे गए। ये सब सम्यक्त्वके पूर्व समयमें हुए शुभोपयोगके आश्रयभूत कारण हैं। सम्यक्त्वके लिये आश्रयभूत कारण नहीं होता। सम्यक्त्व तो केवल चित्शक्तिमात्र स्वके आश्रयसे ही होता है, परके आश्रयसे सम्यक्त्व नहीं होता। तो समझना चाहिये कि इस जीवके विकारमें तीन प्रकारके कारण है और जीव अजीवके प्रसंगमें दो कारण है, वहां आश्रयभूत कारण नहीं होते। उपादाननिमित्त। जैसे रोटी सिकी तीं अग्नि निमित्त कारण, रोटी, उपादान कारण। यहाँ जो रोटी सिकी या जो भी कार्य बना वहाँ आश्रयभूत कारण नहीं होता। आश्रयभूत कारण तो केवल जीवके व्यक्त विकारके प्रसंगमें होता है, निमित्त कारण भी होता है। निमित्त दोनों को कहते है। वहाँ विवेक करना चाहिए कि यह आश्रयभूत कारण है, यह निमित्त कारण नहीं। आश्रयभूत कारणोंमें कारणपना उपचारसे है, पर जो अन्वयव्यतिरेक संबंधी निमित्त है वह सही है, उपचारसे नहीं है, निमित्तकारणकी परख होनेपर नैमित्तिक भावकी भी परख होती है, इनसे हटना है, इन्हें परभाव मानों। निमित्त मेरेमें कुछ नहीं करता। उनका सन्निध न पाकर फोटो उतर रही। ये मेरेसे हटो, मै तो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अपनी चित्चैतन्यमात्र शक्तिमें जुटूंगा ।

चिच्छक्तिव्याप्तसर्वस्वसारो जीव इयानयम् ।
अतोतिरिक्ताः सर्वेऽपि भावाः पौद्गलिका अमी ।३६।

३३७—जीवकी चिच्छक्तिव्याप्त सर्वस्वसारता—

मैं इतना ही नहीं हूं और चैतन्य शक्तिसे अतिरिक्त जितने भी भाव हैं वे सभी भाव पौद्गलिक हैं । यहाँ यह बताया गया कि अनादि अनन्त अहेतुक असाधारण जो एक निरपेक्ष स्वभाव है, चैतन्यस्वरूप है वह तो है जीव और बाकी जितने अतिरिक्त भाव हैं, विचार, तर्क, वितर्क, रागद्वेष, कषाय इच्छा ये सब पौद्गलिक है । देखो इसी प्रकरणमें बड़ी घोषणाके साथ कुन्दकुन्दाचार्य देवने बताया कि गुणस्थान, जीव समास, मार्गणा, संयम स्थान, लब्धि स्थान सब पौद्गलिक हैं । ये शब्द अमृतचन्द्राचार्य और कुन्दकुन्ददेव सभी आचार्योंके हैं । वे यह घोषणा कर रहे हैं, यहाँ हर एक बातको ऐसा मत मान लेना कि यह कथन व्यवहारनयसे है सो झूठा है । अरे जिनेन्द्रवचनोंमें और उस तथ्यमें अनास्था होनेसे मार्ग न पायेंगे । नयके जितने भेद हैं सभी नय सम्यक् माने गए हैं, कोई झूठ नहीं माना गया । नयोंसे बाहर उपचार है वह है एक लोक व्यवहार । इस भाषामें जो बोला जाय तो उसके प्रयोजनको न समझकर उन्हीं शब्दोंमें समझें तो वह झूठ है । देखिये आपको आत्मानुभवका मार्ग कैसे मिलेगा ? उसके लिए सबसे बड़ी बात यह है कि अपना एक ऐसा ध्येय बनायें कि मुझको विभावों से हटकर स्वभावमें मग्न होना है, इसके अतिरिक्त मेरे में और कोई कला नहीं, क्योंकि बाकी तो सब बातें ससारमें रुलनेके ही साधन हैं, तो आपको दो बातें रहीं सामने ? विभावोंसे हटना और स्वभावमें लगना । बस यह ही बात यहाँ कह रहे हैं कि स्वभाव में तो यों लगें कि वह चैतन्य शक्ति करके सर्वस्वसार जिसमें भरा बस इतना ही जीव है, इतना ही मैं हूं अन्य रूप मैं नहीं हूं । यहाँसे मुख उठाकर अन्य-अन्य रूपमें अगर कहने लगे, मानने लगे कि यह मैं हूँ, बस उसकी ही संसारमें मिट्टी पलीत है । विचार, वितर्क, कषाय, इच्छा ये सब मैं नहीं, मैं तो एक चैतन्य शक्तिमात्र हू, अच्छा मैं तो यह हूँ और बाकी सब सो सब । मैं क्या ? यह धन वैभव, यह घर, ये कुटुम्बीजन ये सब क्या हैं? मैं अन्तस्तत्त्व हूं ये पौद्गलिक चीजें हैं । देखो जो इस भीतरी तथ्यको पहिचान लेता है उसके लिए यह आत्मा, यह अनात्मा स्पष्ट दिखते लगता है और उसके मोह नहीं रहता । अच्छा और यह शरीर पौद्गलिक है और कर्म जो सुनते आये, आगममें बांचते आये, युक्तिसे उतारते आये, क्या कि कोई भी पदार्थ अकेला है तो वह विकृत नहीं होता साइससे पूछो, युक्तिसे पूछो केवल एक ही पदार्थ जिसका दूसरेसे कोई सम्बंध नहीं, संयोग नहीं, कोई उपाधि नहीं, अकेला ही है कुछ, तो वहाँ विकार नहीं होता, और विकार सो यहाँ हो रहा है, राग, द्वेष, मोह कल्पना, पक्षपात, अन्याय, अत्याचार न जाने क्या क्या विकार है, ये सब हो ही रहे हैं । एक भी उदाहरण ऐसा न मिलेगा कि जहां कर्मानुभागका तो नाटक चल रहा हो और विकार न होता हो, और हो सो रहे विकार तो युक्ति बतलाती है कि इस जीवके स्वभावके विरुद्ध स्वभाववाला कोई दूसरा साथ अड़ा हुआ है । उसीको कहते हैं कर्म । अब देखना ये दोनों बातें भिन्न भिन्न हैं । कर्म भिन्न है, जीव भिन्न है । कर्मका परिणाम, परिणमन, द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव कर्ममें ही हैं । कर्म से बाहर एक सूत भी आगे नहीं है । भले ही एक क्षेत्रावगाह है । जैसे पानी और दूध मिल गए गिलासमें, पर पानीके अणु पानीमें हैं और दूध के अणु दूधमें हैं । ये तो पुद्गल हैं । कदाचित दूध पानीरूप परिणम सकता है,पर जितना दृष्टांत दिया उतनेके लिए समझें । भले ही एकक्षेत्रावगाहमें है जीव और कर्म, मगर कर्मका सब कुछ कर्ममें

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है जीवका सब कुछ जीवमें है, यहाँ अनेक द्रव्य हैं।

३३८—जीवकी स्वच्छताका विकार—

अब जीव है स्वच्छ उपयोग वाला, जानने देखनेकी शक्ति वाला सो इस उपयोगमें जैसे ये बाहरी ज्ञेय पदार्थ झलक जाते हैं ऐसे ही कर्मका उदय, कर्मोंका अनुभाग जो एक इतना विशाल सिद्धांत जैन ग्रन्थों में, कर्मसिद्धान्त सम्बंधित विषय और नहीं तो ९० प्रतिशत ग्रन्थोंमें पाया जाता है। जो महान ग्रन्थ सिद्धान्तग्रन्थ है, अवधिज्ञानियोंने जाना, सब अवधिज्ञानियोंने नहीं, किन्तु परमावधि ज्ञानिधयोंने जाना। केवलज्ञानियोंने जाना, युक्ति और आगमसे, श्रुतसे हम आपने भी जाना। वह ज्ञानानुभव यहाँ प्रतिफलित होता है। वही प्रतिफलन, क्रोध, मान, माया, लोभ, रागद्वेष ये सब कहलाये। यह है कषायका स्वरूप। अब अज्ञानी तो उसमें मुग्ध हो जाते कि यह ही मैं हूं क्योंकि उस प्रतिफलनसे यह जीव स्वभावदृष्टिमें नहीं किया गया ना? सो तिरोहित हो गया। ऐसी स्थितिमें अज्ञानी उस ही रूप अपनेको अनुभव करता। उससे निराला मैं कोई चैतन्यशक्ति मात्र हूं, इसका मोहियोंको पता नहीं। अब देखना इस सम्बंधमें बात दो चल रही हैं। कर्मोदयका सन्निधान पाया और जीवका प्रतिफलन हुआ। क्यों जी उसकी फोटो अन्यमें क्यों नहीं हो जाती? अजीवमें वह क्यों नहीं प्रतिफलित होता? इसमें योग्यता ही नहीं है। अच्छा शुद्धता क्यों नहीं होती? उनमें यह भी योग्यता नहीं। क्यो योग्यता नहीं? उस प्रकारका बन्धन सम्बंध बना ही नहीं है वहाँ। जो अशुद्ध जीवकी योग्यतासे यह कषायका प्रतिफलन हुआ। कौनसी कषायका? पौद्गलिक कषायका। पुद्गलमें होनेवाले उस कर्मानुभागका यह प्रतिफलन हुआ। अब देखना—प्रमाण किसे कहते? एकको देखा, सयोगको देखा, घटना देखी, सब तरहसे निर्णय करें उसे कहते हैं प्रमाण, और नय किसे कहते? केवल संयोगको देखकर बात कर सो नय, एक पदार्थको देखकर बात करे सो नय। अच्छा एक जीव पदार्थको ही देखक जब हम बात कर रहे तब यह दिख रहा कि जीव है, जीवकी योग्यतासे यह परिणमन चल रहा, ये परिणतियाँ चल रही हैं। जब सँयौगको देखा तो यह नजर आया कि कर्मके अनुभागका निमित्त पाकर इस जीवमें यह कषायका प्रतिफलन हो रहा, परिणमन हो रहा। देखिये—व्यवहारका एकान्त तो एक नितान्त गलत बात है, जो ऐसा माने कि कर्मने जीवको कषायरूप परिणमा दिया, जीवने कर्मको अमनी परिणतिसे परिणमाया, एक द्रव्यकी परिणति दूसरेमें नहीं होती, पर निमित्त पाकर जोव अपनी कलासे इस रूप परिणम गया। निमित्त बिना, सन्निधान बिना विकार नहीं हो सकता। यह है निमित्त नैमित्तिक योग।

३३९—निमित्तनैमित्तिक भाव व वस्तुस्वातन्त्र्यके परिचयसे विभावसे उपेक्षा करके स्वभावमें लगनेके पौरुष की जागृति—

भैया यहाँ दो बातें सामने आयीं कि कर्मोदयका सन्निधान पाकर कितने विकार प्रतिफलन इस जीवमें हुए। यह है व्यवहारनयका कथन। निश्चयनय-जीवमें जोवके परिणमन ये होते चले जा रहे हैं, यह है निश्चयनयका कथन। मगर इसमें यदि एकान्त कर लिया जाय कि जीवमें जीवकी योग्यतासे परिणाम होते जा रहें हैं, जीवमें बंधे है, निकल रह हैं और विभाव होनेमें अनवारित उपाधिसम्पर्कका तथ्य गोल कर दिया जाय, निमित्तयोगका विरोध किया जाय कि और तरह है ही नहीं, और बात है ही नहीं, सो कुछ संयोजन नहीं, उपाधि नहीं, नैमित्तिक भाव नहीं, और जीवकी योग्यतासे ही होते जा रहे तो बस अब क्या है? विकार भी, योग्यता भो स्वभाव हो गया। जीवसे ही उठ रहे विभाव। और जब कहा जाय कि विकार इसमें बसे नहीं हैं, पर पदार्थका निमित्त पाकर यह बात क्षणिक हो जाती है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

तो अब इसके मेटनेका कुछ उपाय बन जायगा। यदि कहा जाय कि पर निमित्त नहीं, जीवमें विकार भरे और वे प्रगट हो रहे, तो ऐसो एकान्त दृष्टि रखनेसे इससे निराला कोई चैतन्य शक्तिमात्र अंतस्तत्त्व है इसकी दृष्टि नहीं बन पाती। देखो शुद्धनयः-शुद्धनयसे तो एक चैतन्यशक्तिस्वरूप ही अनुभवमें होता है। वह नहीं ज ननेमें आ रहा उसका ही परिणाम संसारभ्रमण है तो शुद्धनय तो एक ऐसा तथ्य है कि निश्चय उपादेय है। मगर जब तक इस शुद्धनयको प्राप्ति नहीं है तब तक अशुद्ध निश्चयनय, शुद्ध निश्चयनय, सद्भूत व्यवहार, असद्भूत व्यवहार इन सबसे समझना। ये भी सब सच बात बतलाते हैं। उपचार ही एक ऐसा है जो एक निमित्तको कर्तारूपमें पेश करता है और निमित्त कभी परका कर्ता होता नहीं, परंतु निमित्त नैमित्तिक भाव सहो समझे बिना यह भाव नहीं भर सकता कोई कि दूर हटो, दूर हटो, हे कर्मानुभाग, हे मलिनताओं दूर हटो, तुम मेरे स्वरूप वहाँ। तुम मेरे ही कारण मात्रसे उत्पन्न हुए नहीं, यह तो परके झलक है। दर्पणमें परको झलक तो है, पर स्वाभावतः दर्पण को नहीं फर्क यह पड़ गया किवहाँ तो निमित्तको हटा दो, दर्पणमें से प्रतिबिम्ब हट गया। यहाँ कोई ऐसी कला नहीं है कि उस कर्मको हटा दे जीव कममें कुछ नहीं कर सकता, कर्म जीवमें कुछ नहीं कर सकता। जीव अपने भावोंको सम्हाले कि यह तो कर्मका प्रतिफलन है, मेरा स्वरूप नहीं, मैं तो चेतन्यशक्ति मात्र हूं। तो एक निज भावके सम्हालते ही कर्मोंको बेड़ियाँ तड़ातड़ टूटने लगती है।

३४०—अज्ञात कर्मानुभागान्धकारसे आच्छन्न प्राणीका अज्ञात आश्रयभूत कारणमें उपयोग जुटाकर व्यक्त विकार मुद्रा बनानेका प्रयोग—

यहाँ निरखना है कि मैं तो एक चैतन्यशक्ति मात्र हूं। इसके अतिरिक्त जो कुछ भाव है वह सब पौद्गलिक भाव है अर्थात् पुद्गलका निमित्त पाकर उत्पन्न हुआ भाव है। देखो सम्मति बैठा लो, सही समझो। चिद्भावके अतिरिक्त समस्त भावोंको पौद्गलिक कहा तो उ का तात्पर्य क्या? उसका तात्पर्य यह है कि जैसे जैसे रंग कपड़ोंमें है वैसा ही प्रतिबिम्ब दर्पणमें है। दर्पणका प्रतिबिम्ब यह बताता है कि ऐसे ऐसे रंगवाला कपड़ा है। यह नहीं कि पहले प्रतिविम्ब बन गया। पीछे प्रतिविम्ब के आगे कपड़ा आया। वह समकाल है। निमित्त कारण समकाल होता, उपादान कारण पूर्व समय में होता हैं अर्थात् पूर्व पर्यायसंयुक्त द्रव्य उत्तर पर्यायका उपादान कहलाता और निमित्त उसी कालमें, वह बाहरी क्षेत्रमें पड़ा है। पड़ा रहने दो, तो प्रयोजन क्या है? जैसे आम खाना है तो प्रयोजन आम खाने का है ना, न कि पेड़ गिननेका। तो ऐसे हैं प्रयोजन तो है विभावोंसे हटनेका और स्वभावमें आनेका। दुनियाँ कहीं जावों, कैसे हो रहो, विवाद न करो, जहां अपने प्रयोजनको लेकर आगे बढ़े ज्ञानमें वहाँ विवाद नहीं उत्पन्न होता। जहां प्रयोजन छोड़ दिया और बाहरी बातोंमें ही आकर्षण किया वहाँ विवाद उठने लगता हैं? मैं कौन हूँ? चैतन्य शक्ति व्याप्त जिसका सर्वस्व सार है वह मैं हूँ और बाकीं भाई पौद्गलिक हैं पौद्गलिक उपादान वाले व पुद्गलिकका निमित्त पाकर हुआ राग। पौद्गलिक दोनों अर्थ है पुद्गल उपादान वाला है, शरीर वर्ण, रस, कर्म कर्मका खुदमें अनुभाग। और जो प्रनिफलन रूप है वह है पौद्गलिक कर्मका निमित्त पाकर होने वाला भाव। इस कारण ये सारे भाव पौद्गलिक कहलाते हैं। नैमित्तिक भावका अर्थ है कि जो निमित्तका सन्निधान पाकर उपादानमें होते, उपादानके परिणमनसे, पर निमित्तका सन्निधान पाकर हो उसे कहते हैं नैमित्तिक। नैमित्तिककी यह व्याख्या नहीं कि यह जीव निमित्तमें जुटकर यह भाव बनाये सो नैमित्तिक निमित्त क्या? कर्म उसमें भाव जुटाना कहा। देखिये आश्रयभूत पदार्थ ज्ञात होकर झलका करते हैं और निमित्तभूत

Version-1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कर्मकी दशा, यह अज्ञात होकर झलका करती है। यह झलक अन्धकार है इसमें जुटाव तो नही होता है, जुटाव होता है आश्रयभूत कारणमें। कर्मोदयमें जुटनेसे विभाव बनते हैं कर्मोदयमें उपयोगको जुटानेसे विभाव बनते हों तो बताओ। कर्मोदय मायने कर्मकी परिणति। तो यह ध्यान एकेन्द्रियको है क्या, दो इन्द्रियको है क्या ? अरे अनेक मनुष्योंको भी पता नहीं कि ये कर्म हैं, इनमें मैं जुट जाऊँ। ऐसे कोई नहीं जुटता, पर वह तो अज्ञात ही उसका एक आक्रमण है प्रतिफलन। ज्ञेय पदार्थका ज्ञात होकर प्रतिफलन है, पर कर्मदशावोंका अज्ञात होकर प्रतिफलन है। होता क्या है ? कर्मका ज्ञान हुआ प्रतिफलन उससे हुआ ज्ञानस्वभावका अभिभव, क्योंकि ऐसे ही भावोंसे पुद्गल बँधा था, वैसे ही पुद्गलका उदय आया, वैसा ही यह अभिभव हुआ। घबड़ाकर यह उसके अनुकूल आश्रयभूत पदार्थमें जुट गया, यहाँ उपयोग जुटानेकी बात है। जो चीज ज्ञात हो जाय उसमें ही उपयोग लगता है, अज्ञातमें उपयोग नहीं लगा करता। कर्मानुभाग ज्ञात नहीं, फिर भी उसका निमित्त पाकर उपयोगविकल्प बन गया, वहाँ ज्ञात आश्रयभूत कारणोंमें उपयोग जुटाये, विकारकी व्यक्त मुद्रा बन गई तो नैमित्तिक यों कहलाया। पुद्गल कर्मानुभाग तो स्वच्छतामें झलक गया। अज्ञानी उसे स्वीकार करता है।

३४१—नैमित्तिक भावोंसे निवृत्त होकर चैतन्यमात्र अन्तस्तत्त्वमें लगनेकी भावना—

हे नैमित्तिक भाव ? दूर हटो तुम मेरे स्वरूप नहीं। देखिये—प्रतिविम्ब तो दर्पणकी परिणति है प्रतिविम्ब जो दर्पणमें हुआ वह सामने रहने वाले पदार्थकी परिणति नहीं, लेकिन सामने रहने वाले पदार्थोंके अनुरूप प्रतिविम्ब है, इसका कारण क्या कि उसका निमित्त सन्निधान पाकर यह दर्पण अपनी योग्यतासे प्रतिविम्ब रूप परिणम गया तब ही यह प्रतिविम्ब परभाव है, दर्पणका स्वभाव नहीं। ऐसे ही यह सारा ऊधम, यह सारी कर्मलीला, यह सारा कर्मरस यह मेरा स्वरूप नहीं, मुझसे पृथक् है। दूर हटो, दूर हटो परकृत परिणाम। परका निमित्त पाकर होने वाले परिणामसे दूर हटो। सहज आनन्द स्वरूप ही रहूँगा मैं ; कैसे ? अभिराम मायने यह आत्मा इसके सर्व प्रदेशोंमें सहज आनन्दस्वरूप रहेगा हटो और लगो यही है असहयोग और सत्याग्रह। असहयोग जब तक नहीं बनता तब तक जिससे असहयोग करना है उसमें परत्वकी बुद्धि न जगे। सत्याग्रह तब तक नहीं बन सकता कि जिस सत्यका आग्रह करना है उसमें जब तक स्वत्वबुद्धि न जगे, मायने जब तक बाहर किसीमें स्वपरत्व न देखे, अंतरमें देखे स्व चैतन्यशक्ति मात्र, अनादि अनन्त निष्कारण सत्त्वके स्वरूपमें जो एक चैतन्य शक्ति है वह हूँ मैं। मैं इस गाँव वाला नहीं, इस शरीर वाला नहीं, इस जाति वाला नहीं, इस पार्टी वाला नहीं, इस पक्ष वाला नहीं, अमुकका मित्र नहीं, अमुकका विरोधी नहीं, व्यापारी नहीं, मैं सुखी दुःखी मैं रंक राव, सभी प्रकारकी ये बातें मैं नहीं। मैं हूँ एक अखण्ड ज्ञायक स्वरूप, अच्छा तो यह मैं हूँ और बाकी ? बाकी पौद्गलिक हैं। पुद्गलमें होने वाली बात तो उपादानतया पौद्गलिक है और पुद्गलका सन्निधान पाकर होने वाली इस स्वच्छतामें प्रतिफलन, यह पुद्गलका निमित्त पाकर होने वाला परिणमन है, अतएव पौद्गलिक है। इससे मैं दूर हटूं और एक अपने आपके स्वरूपमें रहूँ। इस छंदमें कहा गया है कि मैं चैतन्य शक्ति मात्र हूँ और इस चैतन्य शक्तिसे अतिरिक्त जितने भाव हैं ये सब पौद्गलिक हैं।

वर्णाद्या वा रागमोहादयो वा भिन्ना भावाः सर्व एवास्य पुंसः
तेनैवान्तस्तत्त्वतः पश्यतोऽमी नो दृष्टाः स्युर्दृष्टमेकं परं स्यात् ।३७।

३४२—वर्णादिक व रागादिक भावोंका आत्मासे पार्थक्य—

वर्णादिक भाव हों अथवा मोहादिक भाव हों, ये सभीके सभी इस पुरुषसे अर्थात् आत्मद्रव्यसे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

न्यारे हैं, इस अंतस्तत्त्वसे जुदे हैं इस कारण तत्त्वदृष्टिसे अपने अन्तरमें देखने वाले ज्ञानी पुरुषके लिए ये सब दृष्ट ही नहीं होते। मात्र एक चैतन्य स्वभाव ही दृष्टिगत होता है। जगतमें सर्वोपरि तत्त्व क्या है? बस यही समयसार, कारण समयसार जो अपने आपके अन्तः जैसा है, उसकी निरखन तो करो। सर्व-सिद्धि सर्व समृद्धि इसीको दृष्टिमें, इसीके आलम्बनमें है। बाहरका पहले भ्रम छोड़ दो। मुझको घरसे सुख है, कुटुम्बसे सुख है, पार्टीसे सुख है, मित्रोंसे सुख है, ये सब बातें ये सब विकल्प त्याग कर जरा हृदयको स्वच्छ बनाओ। हृदयमें अन्य कोई बात न बसे। मैं आत्मा हूँ, मेरेको कल्याण चाहिए। मेरेको मुझमें कल्याण मिलेगा। केवल एक आत्मत्वका नाता रखकर सुनो, देखिये—अपने आपमें एक बार तो उस विशुद्ध अंतस्तत्त्वका अनुभव तो कर लीजिए। अच्छा लो चलो—आज एक यह ही आग्रह करो कि मुझको अपने आपके इस सहज स्वरूपके दर्शन करना है। एतदर्थ अन्य सबका कितना अपोहन करना होगा, विकल्पोंका कितना बलिदान करना होगा, उपयोगमें कोई दूसरी बात न समा सके। अगर कोई दूसरी बात चित्तमें आती है तो "यह बेकार है, असार है, झंझट है" इस तथ्यका पहले निर्णय कर लीजिये। बाह्य समस्त भावोंके झंझटपनेका निर्णय होनेपर उनमें उपयोग न बसेगा। ये जगतमें दिखने वाले वर्णादिक, शरीर हैं, कुटुम्बी हैं ये क्या तेरे आत्मामें गड़े हुए हैं? तेरा सत्त्व तुझमें है, इनका सत्त्व इनमें है। इनके द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावका परिणमन इनमें चल रहा। अरे ये तो तेरे रागादिक विकार के लिए कारण भी नहीं हैं। तू कारण समझ रहा। इस परिवारके कारण मुझको कष्ट है, इसने मुझे क्रोधी बना दिया, अरे ये तो कारण भी नहीं होते। इनमें कारणपनेका उपचार होता। जितने ये बाह्य आश्रयभूत कारण हैं ये निमित्त नहीं, निमित्तके नोकर्म हैं, नैमित्तिकके बाह्य साधन हैं, विषय है। सो बाह्य साधन भी कब बने, जब हमने इनमें उपयोग जुटाया तब बाह्य साधन बने। ये सारे बाह्य प्रसंग, ये तो मेरे लिए कुछ भी नहीं है। इनसे चित्त हटावे। मेरेको यात्रा भविष्यकी बहुत पड़ी है, उस यात्रामें कोई काम देगा क्या? बोलो है कोई साथी जो हमारी भावी यात्रामें साथ रहे? जब हमारे भविष्यकी यात्रामें साथ रहनेको कोई है ही नहीं तो थोड़े जीवनके इन समयोंमें इन भिनभिनोंको, भिन्न भिन्नोंको अपना साथी, अपना सर्वस्व मानकर क्यों यह जीवन व्यर्थ गमाया जा रहा है? जरा उन सबसे अपना उपयोग हटाओ।

३४३—अन्तर्निरीक्षण—

अब जरा अन्दरमें बिहार करो। अन्तः क्या परिस्थिति है? अन्तः परिस्थिति यह है कि अनादिकालसे जीव कर्मसे बँधा हुआ चला आ रहा है, और जब-जब कर्म बँधे तब तब इनमें प्रकृति, स्थिति, प्रदेश, अनुभाग ऐसा चार प्रकारका बन्धन बन गया था। जब इनका उदय होता है, स्थिति पूरी होती है तो ये कर्म अपने आपमें अनुभागको खिलाते हुए एक भयंकर अवस्थाको रखते हुए ये निषेक उदयमें आते हैं, मायने एक भयंकर अवस्थाको रखते हुए ये निषेक उदयमें आते हैं मायने एक भयंकर अवस्थाको धारण कर बिखर जाते हैं। उस समय होता क्या है? इस आत्मामें उसका प्रतिफलन होता। इसके बाहर रहने वाले ये ज्ञेय पदार्थ इनमें उपयोग जुटाते तब यह ज्ञानमें आते, मगर निमित्त नैमित्तिक बन्धन यहाँ ऐसा है कि ये कर्म अज्ञात है, इन्हें एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय कहाँ जानते? और बहुतसे मनुष्य भी कहाँ जानते कि ये ज्ञानावरण हैं, ये दर्शनावरण हैं, ८ कर्म हैं, दर्शन मोह, चारित्र मोह, इनका कुछ पता है क्या? अरे अज्ञात होकर भी ये प्रतिफलित होते हैं। यहांकी विशेषता ही यह है ये बाहरी पदार्थ तो ज्ञात होकर प्रतिबिम्बित होते, और यह कर्मरस, कर्म अनुभाग, ये अज्ञात होकर भी प्रतिफलित

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

होते । यह ही तो जीवकी विवशता अब तक रही, नहीं तो अनादि कालसे क्यों भटक रहा इस संसार में ? क्यों नहीं इसने पहिलेसे ही अपनेको जाना ? क्यों नहीं इसने अपना सुधार कर लिया । आज हम आप जो कर्मरसको निराला देख रहे हैं और अपने इस चैतन्यस्वरूपको अपने स्वभावमें निरख रहे हैं, यहाँ विवशता कैसे रहे ? मिट गई ना ? क्षयोपशमलब्धि मिली, विशुद्धलब्धि हुई, देशनालब्धि हुई, प्रायोग्यलब्धि हुई और अधःकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्ति करण हुए और इन भव्योंने केवल निजस्वरूप को ही उपयोगमें रखा था, इन करण किरणोंमें तपन ऐसी विशिष्ट हुई कि ये अनन्तानुबंधी आदिक बड़े-बड़े अनुभाग वाली प्रकृतियाँ तड़तड़ करके टूटी । उनमें कैसा हलचल मचता, यह जिनेन्द्र देवकी वाणीमें भली प्रकार दर्शाया गया है । कैसी कैसी बात है, यह लम्बा विस्तार है, उसे यहां न कह कर यह जानें कि उनमें जो हलचल हुई, अनुभागखण्डन हुआ, स्थितिखण्डन हुआ, बंध कम रहा, प्रकृतियां बदल गईं, उपशान्त हो गईं, यह काम वहाँ हुआ, यहाँके इस विशुद्ध परिणामका निमित्त पाकर और वहाँ यह हुआ उपशम, तो उसका निमित्त पाकर जीवने अपने आपमें एक ऐसी निर्विघ्न अलौकिक अवस्था पायी कि स्वानुभूति हुई, जाना सहज सिद्ध अपने आपको ।

३४४ ज्ञान प्रकाशमें अन्तर्बाह्य जगतकी असारताका प्रतिभास—

जहाँ केवल एक चैतन्य मात्र अंतस्तत्त्व ही दृष्टिमें रहा उस समय जो इसे अद्भुत आनन्द जगा उसका अनुभव करनेके बाद यह सारा जगत प्रकट असार बेकार नजर आने लगता है । किसको देखना ? किसमें लगाव रखना ? सब एक समान पर द्रव्य हैं । मैं एक यह चैतन्यस्वरूप, यह ही अंतस्तत्त्व हूँ, जब तक मिथ्यात्वका अनुभाग था तब तक उसके प्रतिफलनमें यह जीव एकत्व बुद्धि रखता था कि मैं यह हूँ, कैसी एकत्व बुद्धि ? जैसे कहा जाय—घड़ा किसे कहते हैं ? जो ऐसा कम्बुग्रीव नीचे कम, बीचमें चौड़ा, ऊपर कम, फिर मुख उठा हुआ, वहाँ बढ़ा हुआ ऐसा जो कम्बुग्रीव आकार जिसमें पाया जाय वह घड़ा । अच्छा जरा आकारको यहीं रखा रहने दो, घड़ा ले आवो तो ला सकते क्या ? अच्छा, घड़ा वहीं बना रहने दो और उसका आकार मेरे हाथपर रख दो, तो रख सकते क्या ? अरे घड़ा और घड़ेका आकार ये दोनों कोई भिन्न-भिन्न चीज नहीं । यह तो कोई समझदार ही बता रहा कि घड़ेमें ऐसा आकार है, नासमझ तो इतना भी विश्लेषण नहीं करता, आकारमें अभेद जैसे घड़ा, ऐसे ही मिथ्यात्वके प्रतिफलनमें अभेद उपयोग वाला यह है मिथ्या दृष्टि, वहाँ यह नजर नहीं आता था कि यह जीव भिन्न है, कर्मरस भिन्न है, मैं वहाँ कोई जुदा अंतस्तत्त्व हूँ । अब ५ लब्धियोंके प्रसादसे मिथ्यात्व क्षीण हुआ । आज यह जान रहे हैं, जो कुछ बचा खुचा चारित्र मोहका उदय चल रहा है, यह चारित्र मोहका उदय उसका भी प्रतिफलन हो रहा है, यह कर्मरस है, कर्मरसकी झाँकी है, मैं तो ज्ञायक हूँ ।

३४५ निमित्त नैमित्तिक भाव और ज्ञान वैराग्यका प्रभाव—

देखिये-जब जब कर्म प्रकृतिका उदय है तब तब उपयोगमें प्रतिफलन है उसे कोई दूर नहीं कर सकता, अनिवारित है, निमित्त नैमित्तिक भावसे हो रहा है, अब यह सम्यग्दृष्टि है । चारित्र मोहका प्रतिफलन उतने पूरे रूपमें सफल न होने देना सम्यग्दृष्टिके कमालकी बात है, उसमें ऐसा ज्ञान और वैराग्य जगा कि चारित्रमोहका प्रतिफलन हो रहा और उस प्रतिफलनको यह जान रहा कर्मरस, मेरा स्वरूप नहीं । मैं इससे अत्यन्त पृथक् हूँ । जैसे ज्ञानी जान रहा है कि दर्पणमें सामनेकी रंगीन चीजके आने पर दर्पणमें प्रतिफलन हुआ, मगर वह प्रतिफलन जुदा है, निराला है. नैमित्तिक है, दर्पणके ही स्वभाव स्वच्छतासे केवलसे निकला हुआ नहीं है, ऐसे ही ज्ञानी जानता है कि चारित्र मोहका उदय है, अनुभाग-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

रस खिला है, प्रतिफलन हुआ है, यह जुदा, मैं जुदा, ऐसा ज्ञान कर रहा है और उस ज्ञान वैराग्यके कारण जितने अंशोंके अनुभागमें आकर ये कर्म प्रतिफलित हुए उसके पूरे अनुरूप भी बन्धन नहीं, जितनेमें तथा स्वभावघाती होना चाहिए था उस प्रतिफलनके अनुरूप, सो अनुरूप हो तो रहा मगर इसके ज्ञान और वैराग्य परिणामोंमें ऐसी बाधा डाली कि वहाँ नवीन कर्म कम बँध रहा। अब यहाँका संघर्ष एक आदर्श संघर्ष है, चारित्र मोह प्रतिफलित होता है, चारित्र मोह जूझता है, बंध तो होता है मगर अनुरूप बंध नहीं होता। ऐसी छाँट होते-होते स्थिति आती हैकि उदीरणा निर्जरा अधिक और बंध कम होने लगता है। रही सही सत्ता भी इस संघर्षमें दूर हो जाती है। करणानुयोगके अध्ययनमें जब श्रद्धा सहित अध्ययन चलता,, सर्वज्ञकी वाणी, सर्वका ज्ञाता, आचार्यजन जब इतना ज्ञान बखान रहे है तो एकदम विशिष्ट श्रद्धा बनती है। स्वभावस्पर्शी ज्ञान भी बनता है, कर्मोंमें बड़ी हलचल मचती। वहाँ कर्मोंका नाश होता है। यहाँ कहीं दयाकी बात नहीं हैं वे सब कर्म अजीव हैं, अपने आपके स्वभावकी ओर आओ। देखो जिस विशुद्धिके प्रतापसे वहाँ अपने आप कर्मरस सूख गया, सूख रहा, उस विशुद्धि का उपयोग न बिगाड़ो, जरा अपनी ओर आवो, थोड़ी देर भी देखो ना अपने आपके अन्दर, देखो यह कर्म-रससे निराला एक चैतन्य शक्तिमात्र अंतस्तत्त्व हूँ। बाहर जो है सो वह भी है। व्यवहारका विरोध करके अंतस्तत्त्वके दर्शनमें जाननेकी सूझ वाला दर्शनका विरोधक है ऐसा विरोधक आत्मानुभवका पात्र नहीं, क्योंकि उसके सम्यग्ज्ञान भी नहीं। वह तो एक अंधेरेमें पड़ा हैं वहाँ ज्ञानी जब बाहर देखता है, बात यों हो रही है परस्पर निमित्त नैमित्तिक भावमें, पर मुझको प्रयोजन वहाँ नहीं जच रहा। मेरी दृष्टि तो यहाँ ही गड़ रही है। बाहर तो सब निपट जावेगा जो हो जिसकी परिणति।

३४६—ज्ञान प्रकाशमें निमित्तनैमित्तिक भावका मोड़—

देखो भैया पहिले निमित्तनैमित्तिक भावसे बँध गए थे कर्म, किंतु अब यहाँके निमित्त नैमित्तिक भावका मोड़ दूसरा हो गया। निमित्तनैमित्तिक भाव यहाँ भी हटा नहीं। जगतमें निमित्तनैमित्तिक भाव अनादिसे अनन्तकाल तक समस्त द्रव्योंमें प्रवर्तमान है, पर मोड़की बात समझिये, अब यहाँ मोड़ दूसरा आ गया। पहला मोड़ था दर्शन मोहके उदयसे मिथ्यात्वका उदय आया और यह उसमें एकत्व बुद्धि करता था, मैं यह हूँ, जैसे आकार जुदा नहीं, घड़ा जुदा नहीं, वे एक हैं, इसी तरह अज्ञानी जीव दो पदार्थोंको एक नहीं बना रहा, किन्तु उसे दो की खबर नहीं, अपने आत्माकी सुध ही नहीं वह तो उस अंधेरेको मानता मैं। झट कोई बात हुई कोई दोस्तसे लड़ने लगा तो कहता देखिये घबड़ाइये नहीं, मैं आया। क्या उसकी दृष्टिमें यह है कि यह चैतन्य स्वरूप मैं आया, अरे वह तो उस अंधेरेको ही समझ रहा "मैं" अपनी दृष्टि नहीं की कि मैं क्या हूँ। अच्छा, गई, बिगड़ी बातको छोड़िये। स्वतत्त्वपर अब दृष्टि दें। अब यहाँका आलम्बन बनावें, इस परमार्थ अखण्ड विशुद्ध निरपेक्ष चैतन्यशक्तिमय अंतस्तत्त्व की दृष्टि बढ़ावें। बनावें ईमानदारीसे एकरस होकर अपना काम।

३४७—निमित्तनैमित्तिकभाव होनेपर भी वस्तुस्वातंत्र्य—

कर्मरस, कर्मलीला यह पर है नैमित्तिक है, औपाधिक है, आ गया, झलका है, यहां यह बात नहीं है कि जब राग होता है तो उदय खड़ा हो जाता है। ऐसा नहीं हैं कि जब दर्पणमें प्रतिविम्ब होनेको होता है तो लाल कपड़ा खड़ा हो जाता है। दुनिया जानती है। ऐसा जाननेमें हम उस प्रतिविम्बसे न्यारा दर्पणको कभी नहीं समझ सकते। दर्पणमें दर्पणकी योग्यतासे प्रतिविम्ब आया, आ रहा, बाहरी चीजें खड़ी हों तो, न खड़ी हों तो, वह तो आ रहा। खड़ी हुई, ऐसी जीव भी क्यों

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हिलाई जा रही है ? क्या कुछ डर लग रहा ? एकदम नाम कैसे मिटा दें ? अरे घबड़ानेकी बात नहीं जब ऐसा योग जुड़ता है कि दर्पणके सामने पदार्थ आता है, रंगीन कपड़ा आता है, निमित्त नैमित्तिक योगवश स्वयमेव ही यह दर्पण अपने आपकी योग्यतासे अपने आपमें प्रतिविम्बके आकाररूप परिणम जाता है, उस कपड़ेने नहीं परिणमाया उस दर्पणके प्रतिविम्बको। मगर योग ऐसा ही हुआ करता जैसा कि हम आँखों देखते। तो देखो निमित्त उपादानकी कभी किसी अवस्थाका कर्ता नहीं है, पर निमित्तका सन्निधान पाकर दर्पणने अपनी कला खेल डाली। दर्पणणने अपनी इस तरहकी कलाको सामनेकी चीजका सन्निधान पाये बिना नहीं खेला। किया किसीने कुछ नहीं, सब द्रव्य अपने-अपने स्वरूपमें हैं, मगर यह एक उपादानकी विशेषता है। वह निमित्त तो अपने आपमें जैसा है। वैसा उपस्थित भर है, यह परमें कोई क्रिया नहीं कर रहा। वह अपने द्रव्य क्षेत्र कालमें बना हुआ केवल हाजिर मात्र है वह दर्पणमें कोई परिणति नहीं कर रहा, मगर निमित्तनैमित्तिक योग ऐसा है कि उसको सामने पाकर यह दर्पण अपनी लीलासे, अपनी कलासे, अपनी योग्यतासे यह खेल खेल बैठा, पर जरा देख तो लो, जरा उस कपडेको हटावो तो इसका खेल मिट गया। अब यह दर्पण अपना खेल नहीं खेल रहा। देखो इस तरहसे समझनेपर यह भी तो ज्ञानमें आ रहा होगा कि दर्पणमें जो प्रतिविम्ब है वह दर्पणकी निजकी चीज नहीं है। जाननेका तो यह प्रयोजन है कि ये रागादिकभाव जो कुछ भी उट रहे हैं ये मेरे आत्माको चीज नहीं हैं, यह समझमें आये ताकि इन विभावोंसे हटकर हम अपने स्वभावमें निर्विघ्न रूपसे लग जायें और अपनेको स्वभावरूप अनुभव करें। तो यह ज्ञानी निरख रहा है, हँस रहा है, कर्मरस है यह। औरकी तो बात क्या, कितना सावधान है वह ज्ञानी, चरित्र मोहनीयके उदयमें वह विषयोंमें प्रवृत्त भी होता है, प्रवृत्त हो रहा, तथापि प्रवृत्तिके समय भी सावधानी रखता है। अरे कर्मरस है यह, लग रहा मगर हृदय यह कह रहा कि हमको स्वभावदृष्टि मिले, इन भोगोंका भोगना छूटे, मगर इसके सामने परिस्थितियाँ कुछ ऐसी हैं कि वह अरत है तो भी छोड़ नहीं सकता। उनके बीच रहना पड़ता। जैसे कोई रोगी पुरुष दवाई पी रहा है, दवाई समयपर न आये तो वह झुंझला भी जाता है, मगर वह दवाई पी रहा इसलिए कि यह दवाई मेरी जल्दी छूट जाय, दवाई कब छूट जाय उसके चित्तमें यह बात बसी है। इसलिए इस परिस्थितिमें उसे दवा भी पीनी पड़ रही है। उसका यह भाव नहीं है कि ऐसी दवा मुझे जिन्दगी भर मिले। दो समय मिले, चार समय मिले। उस दवाके प्रति उसे रूचि नहीं है मगर पीनी पड़ती है उस दवाको छोड़नेके लिए। यह बात अपनी ईमानदारीकी है। भैया, गप्प करनेसे सिद्धि नहीं मिलती। अगर अपने ज्ञानस्वभावका दर्शन हो जो कि विभावोंके असहयोगपूर्वक हो सकता तो ही अपने क्षणोंकी सफलता समझिये।

३४८—विभावोंसे असहयोग व स्वभावके आग्रहका पाठ लेकर शेष समय उपयोग भूमिको अध्यात्म शाला बनाने का सुझाव—

विभावोंका कुछ भी सहयोग लाभदायक नहीं हो सकता और विभावोंका असहयोग तब ही जीव कर सकता है जबकि कर्मोंका यथार्थ निमित्तनैमित्तिक योगका परिचय पाये। ये विभाव ये मेरे चैतन्य रससे उठे हुए भाव नहीं है, यह कर्मकी झलक है। और, बड़ी बिकट झलक तो बिलकुल खतम हो गई जिससे कि मोह उत्पन्न होता था, लेकिन अब यह झलक, इसका सन्निधान पाकर कुछ क्षोभ तो हो रहा, पर यह क्षोभ भी डगमगाता हुआ क्षोभ है, क्योंकि ज्ञान और वैराग्यका इस ज्ञानीमें ऐसा विशिष्ट बल है कि इस क्षोभसे भी अन्तरमें आकुलित नहीं होता। हो तो रहा, पर ज्ञान, वैराग्य, श्रद्धा इनके बलसे अन्दरमें अकुलित नहीं होता। भाई असहयोग करें। समझो यह है पाठशाला, मनन करने

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

की जगह होगी आपका घर, अध्यात्मशाला आपकी दूकान, आपका गुशलखाना, आपके टहलनेका क्षेत्र आदि सभी चीजें। वे सब हैं अध्यात्मशाला। कहीं भी स्थिर आसनसे बैठ गए और भावनायें भा रहे, अन्तः दृष्टि बना रहे, अन्तःदृष्टि बनानेके साधन जुटा रहे, कदाचित् नहीं भी बन पा रही अन्तःदृष्टि और देखो घरमें पड़े हैं, मगर कहो किसी दिन अचानक ही आपको वह दृष्टि बन जाय, आपका सारा समय कहो अध्यात्मशालाका बन जाय। पता नहीं कब किस क्षण अपने आपकी दृष्टि जग सकती है। देखो यह सब कर्मरस, सब कर्म लीला मुझसे भिन्न है। मैं हूँ एक चित्शक्तिसे व्याप्त है सर्वस्व सार जिसका ऐसा यह निरपेक्ष अंतस्तत्त्व। अन्य सब कुछ मेरा नहीं, वर्णादिक मेरे नहीं, और रागद्वेषादिक मेरेकुछ नहीं।

३४९—आत्माके रूपादिकत्वका तथा रूपादिक गुण रूपत्वका अभाव—

थोड़ी कुछ शंका सी होती है कि ये रूप, रस, गंध, स्पर्श आदिक मेरे कैसे नहीं है? तहसीलमें तो रजिस्ट्री भी है मकानकी, देखें इसे कौन छुड़ा लेगा, वह तो मेरा ही है। कैसे मेरा नहीं? अरे भैया प्रभुके ज्ञानमें रजिष्ट्री करा सको तो आपका काम पक्का हो पायगा। यहाँकी रजिष्ट्री काम न देगी। जबरदस्ती करो, लड़ो, कुछ करो, जब तक यह भव हैं तब तक मजा लेते रहो, उसका निर्णय हो जायगा मरनेके बाद। यह रजिष्ट्री कुछ नहीं है। ये रूपादिक मेरे कुछ नहीं लगते। क्यों नहीं लगते मेरे ये रूपादिक? रूप क्या? पुद्गल द्रव्य। अभेददृष्टिसे देखें तो रूप मायने क्या है? पुद्गल। क्या मैं पुद्गल द्रव्य हूँ जो मैं यह समझूँ कि रूप मैं हूँ, शरीरका रूप देखकर झट विचार बना लेते कि रूप मैं, यह मैं गोरा, यह मैं काला, यह मैं साँवला आदि, यही मैं हूँ। अरे यह तो पुद्गल द्रव्य है, तुम पुद्गल द्रव्य नहीं हो, तुम रूप गुण वाले नहीं हो। तुम रूप गुणसे न्यारे हो। अपने चैतन्यरसको देखो—मैं चैतन्य स्वरूप हूं, मैं पुद्गल नहीं। अच्छा, भाई न सही पुद्गल, पर मैं रूप तो हूँ खुद। मैं रूप वाला न सहो, पर मैं रूप तो हूँ। अरे क्यों भ्रम करते, जब रूप वाले तुम नहीं हो तो रूप कैसे? रूप वाला तो पुद्गल होता। तुम पुद्गल ही नहीं तो रूप कैसे बन जावोगे?

३५०—इन्द्रियोंके आलम्बनसे रूपणादि हेतु की रूपादिकसे सम्बन्ध सिद्ध करनेकी अशक्यता—

शंकाशील पुरुष भीतर उत्सुकता मचा रहा है—अरे अरे रूप कैसे नहीं हूँ? देखो मैं इन इन्द्रियों के द्वारा देखा करता हूं, तो इन रूपी इन्द्रियों ने ही तो दिखाया, रूपी ही ने दिखाया। रूप देखा, मैं कैसे रूप नहीं हूं? ऐसे शंकालुको आचार्य समाधान देते हैं—अरे अरे वही पहली वाली गल्ती अब भी कर रहे। अरे द्रव्येन्द्रिय तुम नहीं हो, और जो यह भ्रम लगा रखा है कि इन द्रव्येन्द्रियों के द्वारा मैं रूप देख रहा हूं तो यह बात नहीं है। ये इन्द्रियां तो एक खिड़कीका जैसा काम करती है। जैसे एक मकानमें खिड़की हो, अब कोई पुरुष बाहरकी चीजोंको जान पाता है तो खिड़कीसे देखकर जानता है, तो बतावो वह जानने वाला उस खिड़कीसे चिपक जाय क्या? उसे गलेसे लगा ले क्या कि ऐ खिड़की तुम बड़ी प्रिय हो, तुमने हमें बाहरकी चीजोंका ज्ञान करा दिया? अरे ज्ञान करने वाला तो पुरुष है, वह चारों ओरसे देख लेता, मगर यह कारागारमें बँधा पड़ा है, ऐसा कारागार है कि वह सब ओरसे देख नहीं पाता, ऐसी बेड़ी है कि वह चारों ओरसे चीजोंको जान नहीं पाता। खिड़की कोई मिल गई तो जान लिया कि ऐसी चीजें पड़ी है। ऐसे ही यह जीव इस शरीर कारागारमें बद्ध है। और यही क्या? वह जो ज्ञानावरण आदिकका उदय, क्षयोपशम है, उसमें जितना जो कुछ ढंग बन रहा वैसा उस कारागारमें बद्ध है, वह सब ओरसे नहीं देख सकता। जो कारागारसे मुक्त है भगवान वे सब ओरसे देखते, हम आप सब ओरसे नहीं देख पाते। अभी हमारी कैद पूरी होनेकी स्थिति नहीं है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कैद जब छूट जायगी तो मैं सब ओरसे जानूंगा, इस समय जहाँ खिड़की मिली उससे ताक लेता हूँ। ये भिन्न—भिन्न खिड़की। देख लिया। इस द्रव्येन्द्रियके द्वारा तुम जानते नहीं, उससे रुचि छोड़ो, ये तुम नहीं। अरे इस तरह भी तो हम रूपसे सम्बंध रखने वाले नहीं हुए। "अच्छा, चलो, इसे छोड़ दो लेकिन हम अन्तरमें इस भावेन्द्रियके द्वारा तो जान रहे। द्रव्येन्द्रिय जड़ हैं, इनके आलम्बनसे जानना नहीं होता उस रूपका, रसका, मगर ये जो भावेन्द्रिय हैं, जो अभी प्राण है मेरा, उस भावेन्द्रिय द्वारा तो मैं सब कुछ रूपादिकको तो देख रहा हूँ। कैसे कहते कि तुम्हारा रूपसे जरा भी सम्बंध नहीं? अरे सम्बंध तो है क्यों बहकाते हो? देखो ना इस ज्ञानके द्वारा भीतरमें, इस भावेन्द्रियके द्वारा हम इन सबकी परख कर रहे हैं" अरे भाई नहीं है ऐसा तुम अपने घरसे बहुत ज्यादह दूर निकल गए, बाहर भटक रहे, सो तुम जगह—जगह भ्रम बना रहे। यहाँ भावेन्द्रियके द्वारा भी तुम्हारे जाननेका काम नहीं। तुम्हारेमें क्षायोपशमिक भाव होना स्वभाव नहीं, यह एक परिस्थिति है, और उस परिस्थितिमें यह काम करना पड़ रहा। कैदी भी तो परिस्थितिमें चक्की भी पीसता, खेत भी तो जोतता, दरी भी बुनता, रस्सी भी बटता, और बिजलीके पंखे न थे तब कचहरीमें जजके ऊपर लगे हुए लंबे पट्टपटके पंखेकी रस्सी भी खींचता, उसकी वे सब परिस्थितियाँ हैं, ये सब काम बन रहे मगर ये तेरे स्वरूप नहीं, स्वभाव नहीं, इस तरह भी तू रूपको नहीं जान पाता, रूपसे तेरा सम्बंध नहीं।

३५१—रूपादिसंवेदनसे रूपादिकका आत्मासे सम्बन्ध सिद्ध करनेकी अशक्यता—

अच्छा चलो, इससे भी सम्बंध न सही, मगर इतना तो अनुभव है ना कि मैं तो रूपको जान तो रहा हूँ। रूपको जाननेके कारण तो मुझमें रूप आयगा ना? कैसे तुम कहते कि रूपसे सम्बंध नहीं" अरे चैतन्यरसकी सुध भूलकर बाहरमें दिमाग लगाने वाले पुरुषो! जरा यह तो जानो कि क्या केवल तुम रूपको ही देख रहे हो? अरे तेरेमें तो सर्व कुछ ज्ञात हो रहा। तू तो सर्वका जाननेवाला है" तो क्या मैं यह कह दूं कि मैं विश्वात्मक हूँ। "हाँ कह दो कुछ परवाह नहीं। थोड़ी दृष्टि दो। अपने ज्ञानके विश्वात्मक होनेमें खराबी नहीं, भगवान भी तो ऐसा बन रहे। समस्त द्रव्य आक्रमण करते हुए की भाँति सब झलक रहा है, मगर ऐसे कालमें सारा विश्व ज्ञानमें आ जाय यह कैसे हो सकता? जैसे कोई पुरुष मात्र एक अपनी स्त्रीमें राग कर रहा, बाकी सबका राग छोड़ दिया। अब यदि वह कहे कि मैं तो अब सच्चा सम्यग्दृष्टि बन गया, सिर्फ एक खुदकी स्त्री भरका राग रह गया, जिस दिन उसका भी राग छूट गया, बस मेरा कल्याण हो जायगा तो उसका यह कहना केवल कहना मात्र है। यही सम्भव है कि जब एक स्त्रीमें राग है तो वह अधिक तीव्र राग रहेगा और जब रागको अनेक जगह फैला दिया तो खुदकी स्त्रीमें भी कम राग रहेगा। राग फैलकर सूख भी सकता। अरे कल्याण चाहिए तो सबका राग छोड़ो। अभी तुम उस एकको ही तो नहीं जान रहे, तुम एक रूपको ही तो नहीं समझ रहे। तुम तो सबके ज्ञाता हो। सब कुछ जान सकते हो। सकल साधारण सम्वेदन है, इसमें तुम रुचि करो न कि "मैं रूप हूँ क्योंकि मैं रूपको जानता हूँ"। "अच्छा ऐसा न सही, मगर जिस समय मैं रूपको जान रहा हूं, यही जान रहा हूँ, तब उस रूपके ज्ञानमें परिणत हो गया ना मैं, ज्ञान बन गया ना यह सारा रूपाकार ज्ञान बन गया। जब जान रहे तब जब जिस चीजको जान रहे, तब इस प्रदेशमें ज्ञानमें ज्ञेयाकार परिणति हो गई ना। अरे अरे यहाँ भी समझो इतनी बात। यहाँ मेरा कुछ है ऐसी बात मुखसे मत निकालो। समस्त ज्ञेय और यह एक ज्ञायक इनका त्रिकाल भी तादात्म्य नहीं होता। और प्रसंग चलते चलते भी वह जानन प्रतिपर्यायमें जुदा जुदा चलता है। उससे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

समस्त ज्ञेयोंके साथ भी रंच भी तादात्म्य नहीं बन रहा। तू इस कल्पनाको छोड़ दे कि मेरा रूप, मेरा कुछ, पुद्गल मेरा कुछ, अन्य मेरा कुछ। किसीका नाम लेकर कह दिया कि फलाने लाल बहुत अच्छे हैं तो देखो रुचि हो गयी शब्दमें। अरे यह शब्द तू नहीं है। उसमें तू क्यों बहक रहा? तू तो इन सबसे रहित एक चैतन्यशक्तिमात्र उस अंतस्तत्त्वको देख और कुछ क्षण अन्य कुछ दृष्टिमें न रख, एक इसी अंतःस्वरूपको दृष्टिमें रख। जब कि और कुछभी दिखे ही नहीं केवल वही वही दृष्टिगत हो, बस ऐसे क्षण मेरे सदाकाल व्यतीत हों, भीतरसे आवाज हो।

निर्वर्त्यते येन यदत्र किञ्चित्तदेव तत्स्यान्न कथंचनान्यत्
रुक्मेण निर्वृत्तमिहासिकोशं पश्यंति रुक्मं न कथंचनासिम् ।३८।

३५१ वर्णादिक भाव व रागादिक भावकी अनात्मीयताका प्रकरण—

प्रकरण चल रहा है कि जीव तो एक ज्ञान मात्र, सर्व पदार्थोंसे निराला, परभावोंसे निराला, अपने आपमें ज्ञानघन आनन्दमय है, जिसको अति संक्षेपमें कहें तो जीव तो ज्ञानघन है, इसके वर्णादिक, रागादिक भाव ये कुछ नहीं हैं, क्यों नहीं है? ऐसा एक प्रश्न होता है तो यों समझिये कि जिसका रूप रस गंध स्पर्श है, शरीर है, उनका तो उपादान ही भिन्न है, पुद्गल द्रव्य हैं। वे मेरे कैसे हो सकते? और, उनके अनुभागका निमित्त पाकर जो आत्मामें प्रतिफलन, छाया, झाँकी होती है जिससे जीव राग कर सके वह कर्मका निमित्त पाकर हुई, वह मेरे स्वरूपमें नहीं पड़ी इसलिए मेरी नहीं है। जो चीज मेरे साथ शाश्वत रहे वह मेरी चीज, और जो मेरे साथ शाश्वत न रहे वह मेरी चीज नहीं। हां अब परखिये एक कुञ्जी है। जो चीज जिसके द्वारा रची गई है वह उस समय होती है। जैसे सोनेका आभूषण अंगूठी सोनेके द्वारा रची गई है इसलिए वह स्वर्णमय है, पर अंगूठीके बीचमें पड़ा हुआ जो हीरेका नग है वह तो स्वर्णमय नहीं, क्योंकि वह स्वर्णके द्वारा रचा गया नहीं है। तो ऐसे ही जो मुझ द्रव्यके द्वारा रचा गया है वह तो पुद्गल है, पर यह जीव यह पुद्गलके द्वारा रचा गया नहीं, यह पुद्गल नहीं। यह जीव इस शरीरसे निराला है, ऐसे ही रागभावको भी लीजिए। रागादिक भाव ये पुद्गल द्रव्यके द्वारा रचे गए हैं इसलिए पौद्गलिक हैं। एक दृष्टान्त लो—जैसे दर्पणके सामने पड़ा है तीन रंगोंका रंग-विरंगा प्रतिविम्ब है। अब रंग विरंगापन दो जगह मिला ना। कपड़ेमें है और दर्पणमें है। दो जगह देखा है ना। अच्छा तो दीनों ही दर्पणसे भिन्न हैं, यह बात समझना है। तो कपड़ेका रंग विरंगापन कपड़ेमें है, इसके समझनेमें तो ज्यादह कष्ट न होना चाहिए। दुनिया जानती है कि कपड़ेका रंगविरंगापन कपड़ेमें है, दर्पणमें जो रंगविरंगापन आया सो यह दर्पणसे न्यारा है कि नहीं? उस कालमें तो न्यारा नहीं मगर स्वरूपसे न्यारा है वह रंगविरंगा प्रतिविम्ब कि वह स्वरूपकी चीज नहीं। स्वरूपकी चीज नहीं तो कैसे यहाँ आ गई? तो उस रंग बिरंगे कपड़ेका सन्निधान पाकर दर्पणमें ही ऐसी योग्यता है कि अपनी कलासे रंगविरंगे रूप प्रतिविम्ब परिणम गया। ये नैमित्तिक भाव हैं, इसलिए दर्पणकी चीज नहीं। ये रागद्वेष मोह, ये विभाव, ये कषायें आत्माकी चीज नहीं। इसको समझाने वाला कौन? निमित्त नैमित्तिक भाव। इनका परिचय बड़े बड़े आचार्यों ने सही रूपसे कराया।

३५३ निमित्तनैमित्तिक भावकी यथार्थ समझमें आत्महित का दिग्दर्शन—

भैया! सोचनेकी ऐसी आदत न रखना कि करणानुयोगके ग्रन्थोंमें व्यवहारनयसे वह सब कथन है इसलिए झूठ है, ऐसी आदत निःशंकित अंगके खिलाफ है। समझो प्रयोजन है स्वभाव दृष्टि, जरा तुलना कर लो। यदि कोई ऐसा ही एकान्त करके चले कि जीवमें जब राग आग है तो अपनी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

योग्यतासे राग आया, ऐसा ऐसा हो गया, इस तरह जीवको देखना, और एक इस तरह देखना कि राग प्रकृतिका उदय है सो उस रागका प्रतिफलन है यहाँ यह रागका प्रतिफलन जीवके स्वरूपसे निकला हुआ नहीं है, यह तो अन्यकी छाया है। तो आप सच्चा भेदविज्ञान बनाकर स्वभाव दृष्टिमें लगनेकी बात किस उपायमें कर सकेंगे? विभावकी परभावता समझनेके लिये जरा निमित्त कारणकी खोज कीजिये, अच्छा दो बातें रखो। जब जीवके राग होता है तो कर्मोदय खड़ा हो जाता है, एक इस तरहसे निरखना, और एक यों निरखना जैसे कि यहाँ आगममें सभी जगह लिखा है कि जब कर्मोदय होता है तो जीव रागपरिणत होता है, दृष्टान्त लो—यों निरखना कि जब दर्पणमें प्रतिविम्ब आता है तो कपड़ा सामने खड़ा हो जाता है, एक यों निरखना कि जब कपड़ा सन्निधानमें होता है तो दर्पण अपने प्रतिविम्ब रूप परिणमन करता है अथवा और दूसरा दृष्टान्त लो-एक यों निरखना कि जब कमरेके पदार्थ प्रकाशित होते हैं तो दीपक खड़ा हो जाता है, तथा यों निरखना कि जब दीपक प्रज्वलित होता है तो कमरेके सारे पदार्थ प्रकाशित हो जाते हैं। कितना अन्तर आया? जब यह माना कि कमरेके पदार्थ जब प्रकाशमें आते हैं तो दर्पण खड़ा हो जाता है। इसका अर्थ यह बना कि पदार्थोंका प्रकाशित होना निमित्त है और दर्पणका खड़ा हो जाना नैमित्तिक है, ऐसी भाषा दिगम्बर जैन ग्रन्थोंमें एक भी जगह न मिलेगी। यद्यपि पदार्थोंका प्रकाशित होना उसी समय है जबकि दीपकका प्रकाशित होना बन रहा। समय एक है। निमित्त नैमित्तिक भावोंमें समय एक होता है फिर भी निमित्त नैमित्तिक विधिसे कार्य कारण भावका विचार करें तो पदार्थोंके प्रकाशित हो जानेका निमित्त पाकर दीपक बना कि दीपकके उजलनेका निमित्त पाकर पदार्थ प्रकाशित हुए? सही निमित्त नैमित्तिक भावसे सोचियेगा। वस्तु दोनों स्वतंत्र हैं। दीपक पदार्थोंमें जाकर प्रकाशित नहीं करता, पदार्थ दीपकमें घुसकर प्रकाशित नहीं होते। दीपक अपनी जगह जल रहा, पदार्थ अपनी जगह प्रकाशित हो रहा, लेकिन विज्ञानसे, युक्तिसे विचारें कि दीपकका जलना कारण है पदार्थके प्रकाशित होनेमें या पदार्थका प्रकाशित होना दीपकके जलनेमें कारण है? अब यहाँ विचारो एक यों देख कि जब जीवमें राग आया तो कर्मोदय खड़ा हो गया। अरे खड़ा हो चाहे न हो, यह तो आ रहा, खैर खड़ा भी सही। अब जीवसे इतना चिपटाव लगा कि बिकार जीवमें भरा है, जीवमें से आया है, जीवमें अपनी योग्यतासे हुआ उसको सहेतुक करार नहीं किया तो वह स्वभाव बनाना। जब चाहे जीवमें राग आ सकता है ना? कभी सिद्धमें भी आ बैठ। कहते कि सिद्धमें ऐसी योग्यता नहीं है, यहाँ जीवमें ऐसी योग्यता है। क्यों है? सहेतुक माने बिना कोई उत्तर नहीं हो सकता। चाहे जो चाहे कहे जावो। तो इस राग विकारको नैमित्तिक मानो कि भाई जैसे रंगबिरंगे कपड़ेका सन्निधान पाकर यह दर्पण रंग बिरंगा बना, यह हट सकता है, क्योंकि नैमित्तिक है, ऐसे ही समझो पुद्गल कर्मका विपाक उदयमें आया-उसकी यह झाँकी है, मेरेमें तो विकार नहीं। मैं तो चैतन्य हूँ, मेरी बान तो चेतना हैं 'ज्ञाता' द्रष्टा रहना है। ये विकार प्रासंगिक हैं नैमित्तिक हैं, इनसे मेरा मतलब नहीं।

३५४ नैमित्तिक भावसे विविक्त सहज ज्ञान स्वभावके दर्शनका महत्त्व—

ज्ञान की पूज्यता किस बातसे है, ज्ञानी निरखता है कि ये नैमित्तिक भाव मेरे स्वरूप नहीं, ये विकार मेरे स्वरूपमें नहीं, ये एक्सीडेन्टल भाव हैं, मेरी चीज नहीं, मेरा स्वरूप तो केवल ज्ञान चेतना है, कल्याणके लिए क्या चाहिए? स्वभावमें मग्न होना, ज्ञान स्वरूपमें मग्न होना। ज्ञान स्वरूपमें मग्न होनेका उपाय जो आचार्य संतोंने बताया उसके अनुसार चलेंगे तो अपना उपाय बन जायगा, और अपने मनसे कुछ भी सोचकर चाहें कि हम यह उपाय बनायें जो दिगम्बर जैन संतोंकी वाणीसे मेल न खाये तो उसके उपायमें यह सामर्थ्य नहीं कि वे विभाव मिट सकें, स्वानुभाव जग सके। बहुत सीधी सी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बात है, समयसारमें कहा गया है कि मिथ्यात्व दो तरहके हैं, (१) जीव मिथ्यात्व, (२) अजीव मिथ्यात्व। कषाय दो तरहके (१) कर्म कषाय (उ) जीव कषाय। हुआ क्या? कर्मकषाय बाँधनेमें जीवकषाय कारण था, अब जीवकषाय बननेमें कमकषायका उदय कारण बना। जब तक क्षयोप-शमलब्धि, विशुद्धि लब्धि आदिक ५ लब्धियाँ नहीं प्राप्त होतीं, मिथ्यात्वका अपकर्षण नहीं होता तब तक जीव बेहोश है। वह इस आत्मस्वरूपकी सुध नहीं कर पा रहा है, और जो प्रतिविम्ब है, रागद्वेष मिथ्यात्व दर्शनमोह उसकी जो झाँकी है उसमें ही यह तन्मय बन गया है और बाह्य पदार्थोंका सम्बंध मानकर अपने आपके जन्म मरणकी परम्परा बढ़ा रहा है। अब बुद्धि जगी, इतना तो सब अनुभव करलें कि हमको अब विवेक जगा है, हम समझ सकते हैं कि पदार्थ वास्तवमें कैसा है? यह मैं आत्मतत्त्व परमार्थतः क्या हूं। इसमें विकार भरा नहीं। यह तो जैसे कोई मुसाफिर चलता जा रहा है तो रास्तेमें पेड़ोंकी छाया पड़ती है, आगे बढ़ा तो वह छाया छूटती गई, दूसरी छाया आती गयी। तो जैसे वह छाया अध्रुव है, वह छाया मनुष्यके शरीरमें प्रविष्ट नहीं है, ऊपर—ऊपर लोटती है ऐसे ही ये सब विकार जीवके ऊपर लोटते हैं, स्वरूपमें इनका प्रवेश नहीं। ये नैमित्तिक हैं। इनसे मैं निराला हूं। ज्ञानमात्र अंतस्तत्त्व, उसकी प्रीति करें। उसकी रुचि करें और प्रयत्न बनावें। ध्यान बनावें।

३५५—संयमकवचसे सुरक्षित निर्विघ्न स्थितिमें अन्तर्दृष्टि करनेका प्रताप—

चरणानुयोगमें जो चारित्रकी विधि बतायी है वह कोई कूड़ा कचरा नहीं है किन्तु इस जीवको अपने आपके स्वरूपमें रमनेके लिए निर्विघ्नताकी स्थिति पैदा करती है। जो विषय कषायके भाव उमड़ते हैं, खोटी जगह हमारा उपयोग लगता है तो क्या करना? बस व्रत, तप, संयम, शुभभाव, भक्ति, प्रभुपूजा आदिक कार्य करते हैं तो उसका फल इतना है कि विषय कषाय व्यसन पाप ये भाव रुक जाते हैं। अब वहाँ एक निर्विघ्न स्थिति हमारी बनी, उसमें रहकर हम इन सर्व बाह्य क्रिया कलापोंको भूलकर एक अपने विशुद्ध ज्ञानमय अंतस्तत्त्वकी सुध लें और इस ज्ञानके अनुभव द्वारा अपना आनन्द पायें। कर्म तो तड़ातड़ अपने आपके कारण कटेंगे।

३५६—वर्णादि गुणस्थानान्त भावोंकी अनात्मता—

ये वर्णादिक भाव हमारे नहीं। गुणस्थान आदिक भाव ये सब पौद्गलिक हैं। अहा देखो ना, कैसा रुचिया संत है, कैसा यह ज्ञानका प्रेमी है, भव्य जीव, जो इस तरह निरख रहा है कि ये गुणस्थान भी पौद्गलिक है। जैसी जैसी कर्ममें बात है वही बात यहाँ चल रही, जैसा जैसा रंगबिरंगापन कपड़ेका है वैसा यहाँ चल रहा कपड़ेने दर्पणको रंगबिरंगा नहीं किया, कपड़ा भिन्न पदार्थ है, दर्पण भिन्न पदार्थ है पर ऐसा योग है कि वहाँ सामने रंग बिरंगा पदार्थ आया कि दर्पण अपनी कलासे अपनेमें वैसी कला खेल लेता है। यहाँ एक बड़ी आशंका हो सकती है। सयोग केवली भगवान, अरहंतभगवान, जिनकी हम मूर्ति रखकर पूजा करते, क्या सयोगकेवली गुणस्थान भी पौद्गलिक है? देखो सयोग केवली गुखस्थान किसे कहते है? जहाँ योग है, वह सयोग है। सयोग केवली याने केवली होकर सयोग हैं तो योग जो बना वह एक दोष है और वह बना कर्मोदयका सन्निधान पाकर ही। तो इतना दोष रह गया इस कारण सयोग केवली कहलाये, नहीं तो शुद्ध आत्माकी दृष्टिसे तो वे शुद्ध कहलाते। तो ऐसे ही समझिये कि कमीके कारण गुणस्थान भी अन्य है। सयोग केवली भी कितना पवित्र आत्मा, सिद्ध होनेवाले फिर भी जब तक इनमें चार अघातिया कर्मोंका सम्बंध है तब तक उस बाह्य सम्बंधको निरखकर यह गुणस्थानका नाम बना ना? यह जीवका स्वरूप नहीं है। जहाँ इतनी सूक्ष्म दृष्टि दी है वहाँ क्या इस मोटी बातको भी नहीं समझ सकते कि ये रागादिक विकार मेरे नहीं? यह तो पुद्गलकी छाया है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

३५७—आत्मस्वरूपमें विकारका अभाव—

अज्ञानी जीव उस पुद्गलकी छायामें एकत्व मानकर, अपनेको भूलकर, परम्परा बढ़ाता है। निगाह रखो और दर्पणके दृष्टान्तसे अपने दृष्टान्तकी दृष्टि बढ़ाते चलो तो सब बात यथार्थ विदित हो जायगी। दर्पणके स्वरूपमें विकार नहीं। दर्पणके ऊपर विकार आकर भी इसे बाहर लोटने वाला समझियेगा। दर्पणके स्वरूपमें आया नहीं। बात देख लो वह रंगीन कपड़ा हाजिर माना है। उसने कुछ किया नहीं दर्पणमें। निमित्त सब हाजिर मात्र होते हैं निमित्त उपादानमें कुछ करता नहीं, मगर ऐसा सम्बंध देखें कि जब दर्पणमें प्रतिविम्ब आया तो कपड़ा हाजिर हुआ। सब अपनी-अपनी परिणमिसे परिणमते। हैं और जो पदार्थ विकार रखनेकी योग्यता रखता है वह अनुकूल निमित्तसन्निधानको पाकर अपनी कलासे उपयोगरूप खेल जाता है। यह तथ्य जिन्होंने पहिचाना उन्होंने अपने स्वभावका स्पर्श किया। ओह मेरा स्वभाव विशुद्धचैतन्यमात्र है। जो कर्मरस झलक रहा है, यह मैं नहीं, इससे मुझे रुचि नहीं। इसकी प्रीतिसे अनादि कालसे अब तक मैं इस संसारमें डोलता रहा।

३५८—मुक्त्यर्थ धीरज करनेका अनुरोध—

भैया अब ऐसा काम करो कि संसारमें फिर जन्म मरणके संकट न सहना पड़े। अपने आपके विशुद्ध स्वरूपका अंतः दर्शन करो, विकारोंको न चिपकावो, ये तो मेरी ही योग्यतासे हुए, अहेतुक हैं ये मेरे हैं। ये मेरी योग्यतासे तो हुए, पर यह सब इन कर्मोंकी छाया है। जैसा कर्म उदयमें आया उसकी छाया पड़ रही। हाँ ज्ञान और वैराग्यमें इतना बल है कि इस छायासे लगाव न रखनेके कारण अनेक स्थितिखण्डके, अनुभागखण्ड, बंधावदर्पण हो हो कर ये कर्म दूर हो जाते है। ज्ञानमें अत्यन्त बल है। तो ये वर्णादिकभाव जिसके द्वारा रचे गए हैं वे वे ही हैं, मैं आत्मा नहीं। कितना आदर्श, कितनी स्वच्छताका यहाँ परिचय हो रहा कि यह सब कर्मरस है, कर्मलीला है। हे ज्ञानी, हे चेतन, तू ज्ञानानन्द स्वभावी होकर कर्ममलमें चिपकेगा क्या, तू व्यर्थके नोनै कर्मोंमें अपना उपयोग जोड़ेगा क्या ? तू कर्मलीला मात्र अपनेको अनुभवेगा क्या ? अगर यह ही आग्रह है तो बस तुम संसारका बड़ा उपकार कर रहे हो। सँसारकी वृद्धि कर रहे। सँसारी जनोंमें से नम्बर न कटाकर इस संसारकी पार्टीको मजबूत कर रहे। अब तक ऐसा ही करने आये। अब अगर चित्तमें यह आया है कि मुझे आत्माका हित चाहिए तो इस कर्मरससे चित्त हटावो। ये विभाग हैं, परभाव हैं, कर्मरसकी झाँकी है, मैं अपने चैतन्यरससे निर्भर हूं, यह बात मनमें आये तो कटाव कर किजिए उन बाहरी बातोंसे, चित्तमें ऐसा समा जाय कि ये मेरे कुछ नहीं हैं। जब ये कर्मरसही मेरे कुछ नहीं तो कर्मरसके नौकर्म मेरे क्या बन सकेंगे ? छूटेंगी तो ये सभी चीजें ना एक दिन ? जब ऐसी बात है तो कुछ पहलेसे ही उन समस्त चीजोंके प्रति चित्तमें ऐसी बात ठान लें कि ये समस्त बाह्य चीजें मेरी कुछ नहीं। इन सब बाहरी संगप्रसँगोंका कटाव कर देनेसे और अपने आपकेस्वरूपके अनुरूप होनेसे यह जीव कल्याण कर लेगा, अगला अब भी धर्मप्रसंग वाला मिल जायगा और वहाँ रही सही कमीकी पूर्ति करेगा और सम्भव है कि निःसँग होकर केवल ज्ञानमात्र आत्मसत्त्वमें यह मैं हूँ इस प्रकारका अनुभव करनेसे सर्व बंधनोंसे मुक्ति पा लेगा।

३५९—अन्तः केवलत्वके दर्शन बिना कैवल्यके लाभकी असंभवता—

मुक्तिके मायने क्या ? केवल रह जाना। खालिस रह जाना। यदि यहाँ खालिस न समझ सके तो किसके बल बूतेपर केवली बन सकेंगे ? चौकी पर गद्दा चढ़ी है तो उसका साफ करने वाला यह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जानता है कि चौकी अपने आप गर्दासे रहित है चौकी अपनेमें केवल स्वरूप रख रही तभी तो वह चौकी पर पानी डालकर उसे कपड़ेसे साफ करता है। कोई अगर ऐसा समझ बैठे कि गर्दा चौकीसे बाहर कोई चीज नहीं है, वह तो चौकीमें चौकीकी शक्तिसे चौकीकी योग्यतासे चौकीमें प्रवृत्त हुई है तो वह कैसे उस गर्दाको धो सकेगा ? तो जिस ज्ञानीको स्पष्ट दिख रहा कि यह सब कार्माण प्रसंगकी छाया है, कर्म लीला है, कर्मरस होना यह मेरी कोई परिस्थिति नहीं। इस मेरे विशुद्ध चैतन्य स्वरूपका कोई पहिचान करने वाला नहीं है। कोई पहिचान कर रहा हो तो वह अपने आपमें संत है, फिर उसका यह व्यवहार क्या रह सकेगा ? इसको कोई जानता ही नहीं। यह कर्मरस लीला तो उसके लिए एक बंधन है जो लाखकी तरह बन गया। जैसे पेड़में लाख लग जाय तो वह पेड़को बरबाद कर देती है ऐसे ही मुझमें कर्मरसका यह प्रतिफलन यह मेरेको बरबाद कर रहा है, इससे हटना चाहिए। प्रज्ञा छेनी द्वारा इस ही सूक्ष्म संधिको तोड़ना है। मैं चैतन्यमात्र हूँ। मैं कर्मरस भार वाला नहीं हूँ, मैं निर्भार हूँ। मेरे स्वरूपमें अन्यका प्रवेश नहीं है। ऐसा निर्णय करके केवल एक ज्ञानस्वरूपको दृष्टिमें लो और आनन्द पावो। ज्ञानमात्रका अनुभव करो। मैं ज्ञानमात्र हूँ, ज्ञानघन हूं वही सहज ज्ञानानन्द स्वरूप। अब जरा बाहर निरखो—ये वर्णादिक भाव जिनका सीधा प्रसंग चल रहा है ये पौद्गलिक हैं। जैसे चाँदीके म्यानमें तलवार पड़ी है, म्यान चाँदीमय है, तलवार चाँदीमय नहीं, तलवारसे निराली है यह म्यान ! म्यानसे निराली है यह तलवार। ये वर्णादिक समस्त भाव जो कुछ जच रहे, दिख रहे, प्रतिभासमें आ रहे, जिसके द्वारा बने उस ही मय हैं, वहां ही जावो। देखिये—मोटी दृष्टि यह बना लो कि ये परतत्त्व कुछ तो पुद्गल उपादान वाले हैं और कुछ पुद्गलका निमित्त पाकर उत्पन्न हुए हैं, सो इनका सम्बंध पुद्गलमें लगाकर इनको मिटा दो, इनसे अपना सम्बंध मत जोड़ो। ये नैमित्तिक भाव हैं। यहाँका भेद विज्ञान बाहरके भेद विज्ञानको सच्चा बनायगा। यहाँ का भेद विज्ञान हुए बिना पाछसे कितनी ही भेद की बातें करते जायेंगे मगर बाहरी पदार्थोंसे लगाव हट न सकेगा। कहते तो सभी लोग हैं—आबाल गोपाल बच्चोंसे लेकर बड़े तक देहाती गंवार भी कि यह धन दौलत किसका ? ये मकान महल किसके? ये कुटुम्ब परिजन किसके ? कोई किसीके नहीं। ये सब एक दिन सबसे छूट जाते हैं····, मगर इतना ज्ञान हो जाने मात्रसे कहीं उन्हें आत्मानुभव तो नहीं हो गया।

३६० नैमित्तिकभाव भूमिमें गुप्त अन्तस्तत्त्वके दर्शनका यत्न—

यह आत्मा इन नैमित्तिक भावोंमें गुम गया। अपनी सुध भूल गया। तो जैसे इस पृथ्वीके अन्दर गड़ी हुई निधि है वह अदृश्य हो गई है, पृथ्वीको खोदकर निधिको निकालें तो निधिके दर्शन होते हैं, ऐसे ही इन रागद्वेषादिक विभावोंमें, इस कर्म छायामें यह जीव अटक गया, और अपने स्वरूपको भूलकर दर दर का भिखारी बना। अरे अपने अन्दर गड़े हुए उस ज्ञानस्वरूप चैतन्य स्वरूपकी निधिको निरख इन विभावोंको हटा, ज्ञानसे विचार, ये विभाव, ये झांकियां मेरा स्वरूप नहीं, इनको हटाकर फेंके और एक अपने आपमें ज्ञानस्वरूपका बल प्रकट करें। ज्ञानसे ज्ञानको निहारो, दर्शन हो जायगा। आवरण हटे कि दर्शन हो गया, विभाव हटावो, दर्शन हुआ। तो ये विभाव सहयोगके आधार पर ही हैं, व्यवहारनय समझा रहा यह सब कि पुद्गल कर्मका निमित्त सन्निधान पाकर विभाव हुए। क्यों समझा रहे हैं ? क्या पड़ी हैं उन्हें ? अरे वे बड़े दयालु हैं। वे मेरे पर कृपा कर रहे हैं किस ढंगसे कि इन विभावोंसे हटें। विभावोंसे उपेक्षा करनेके लिए व्यवहारनयका प्रयोग है। विभावोंसे बिल्कुल मुख मोड़ देनेके लिए यह व्यवहार द्वारा निमित्त नैमित्तिकका परिचय है। काम आया ना। इन विचारोंको, इस

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कूड़ा करकटको, इन विपत्तियोंको हटानेके लिए उसने दृष्टि दी । तेरा यह स्वरूप नहीं है, इनसे अब तू बिराम पा, अब आगे बढ़, शुद्धनयकी दृष्टिसे मैं अपने आपको निरख रहा हूँ । विभावोंसे हटनेके कारण, ज्ञानस्वरूपकी ओर रुचि रखनेके कारण मौका मिला शुद्धनयके प्रयोगका । मैं परिपूर्ण अखण्ड चैतन्य एक रूप चिदेक ज्ञायक हूँ, गुण भेद नहीं है । पर्याय अनिवारित है फिर भी पर्यायभेद नहीं । गुण और पर्याय दोनोंका भेद छोड़कर इतना ही नहीं, द्रव्यका भी भेद छोड़कर द्रव्य, गुण, पर्याय इन तीनों प्रकारके भेदोंसे अतीत होकर अभेद एक परम निज अर्थमें आना है । वहाँ न पर्यायका विकल्प, न गुणका विकल्प न द्रव्यका विकल्प, किन्तु द्रव्य गुण पर्याय इन तीनोंमें जो समवस्थित है ऐसा जो कोई परमार्थ है बस वही एक ज्ञानका विषय बन रहा है । ऐसा केवल यह चैतन्यमात्र आत्मा मेरे ज्ञानमें आवो और इसी तरह की दृष्टिमें यह मेरा काल व्यतीत होवो ।

वर्णादिसामग्र्यमिदं विदंतु निर्माणमेकस्य हि पुद्गलस्य ।
ततोऽस्त्विदं पुद्गल एव नात्मा यतः स विज्ञानघनस्ततोऽन्यः ।३९।

३६१ वर्णादिक रागादि भावोंकी पुद्गलनिर्माणरूपताका दिग्दर्शन—

वर्णादिक समग्र भाव, इनमें अध्यवसान, रागद्वेषादिक, गुणस्थान आदिक सभी भाव आ गये, यह सब पुद्गलका निर्माण है । इतना स्पष्ट आचार्य महाराज कह रहे हैं और इतने स्पष्ट वर्णनको भी कुछ अगल बगल तोड़ मरोड़कर कुछ अर्थ किया जाय तो जिन शासनके अर्थको तोड़ना यह एक अपने लिए बड़े अकल्याणकी बात है । पुद्गलका निर्माण है, ये वर्णादिक समग्र । यहाँ अन्तः पुद्गल कर्म है । उसका अनुभाग उदयमें आया कि उसका प्रतिफलन होता है इस उपयोगमें क्योंकि यह स्वच्छ है ना । जैसे दर्पणमें समक्ष स्थित रंग विरंगी चीजका प्रतिबिम्ब होता है, प्रतिफलन होता है । अज्ञानी यह समझता है कि मैं यह ही हूँ, अन्तरमें जो अंतस्तत्त्व है ज्ञानघन चैतन्य अविकार अपने आपके स्वरूपसे सहज इसकी तो सुध नहीं रह पाती और जो यहाँ छा गया वह अंधकार, वह प्रतिफलन, उसको मानता कि यह मैं हूँ । देखिये—आत्माके विशुद्ध चैतन्य स्वरूपकी तब दृष्टि जगती है जब विभावोंका असहयोग बन जाय । ये मेरे कुछ नहीं, और यह बात तब बनती है जब किसी ओरका एकान्त न करके निमित्त नैमित्तिक भावका सही परिचय हो जाय कि ये विभाव क्या हैं ? यह तो पुद्गल कर्मकी झाँकी है । मैं तो अपने आपमें विशुद्ध ज्ञान दर्शन स्वरूप हूँ, बल्कि अचरज करना चाहिए कि यह मैं ज्ञानस्वरूप आत्मा जिसका काम जानना देखना, उसमें यह विकल्प और गड़बड़ी कैसे हो जाती ? होना तो न चाहिए । मैं जब एक ज्ञानघन हूँ, सहज ज्ञानस्वरूप हूँ तो क्या गुंजाइश है कि मेरेमें सहज अपने आपके भीतरसे रागद्वेष निकलते रहें । कोई गुंजाइस नहीं । यह सब एक निमित्त नैमित्तिक योगवश बन रहा है, जिसमें इसका कोई स्वत्व नहीं । मेरा इसपर कोई मालिकपना नहीं । मैं इससे अत्यन्त निराला मात्र शुद्ध चैतन्यस्वरूप हूँ । अनादिकालसे संसारमें भटकने वाले पुरुषो! जिन वाणीमें बताये हुए ढंगसे समझ बूझकर इस अविकार चैतन्य स्वरूपका एक बार तो अनुभव कर लो, एक बार भी अगर इस चैतन्यस्वरूपका अनुभव बना सम्यक्त्व हुआ तो पीछे चाहे चरित्रमोहके प्रतिफलनोंसे गड़बड़ियाँ होकर फिरसे चाहे परम्परा थोड़ी बन जाय मगर यह जन्म मरणकी परम्परा चिरकालके लिए कभी नहीं रह सकती । अनुभव करो अपने आपके चैतन्य स्वरूपका, एक दृष्टि रखो कि हमें आत्मकल्याण करना है । मैं आत्मा हूँ, ज्ञानस्वरूप हूँ, मुझे आत्महित चाहिए, अन्य सब बेकार है, अन्य सबका साँग प्रसाँग मेरे लिए कुछ महत्त्वकी चीज नहीं । एक अपनी ही दया करना है, अपनेपर कृपा कर लो अपने लिए ।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

३६२ भेदविज्ञान और स्वभाव दृष्टि—

भेदविज्ञान करना होता है दो में, जैसे चावलमें कूड़ा पड़ा है तो भेदविज्ञान दो में बनाना, चावल, अचावल। जो चावल है उसे ग्रहण करो और जो अचावल हैं उन्हें छोड़ो। चावलको ग्रहण कर लो,शोधन क्रिया हो गई। ऐसा ही अपने आपमें जानना है चैतन्यस्वरूप और अचैतन्यरूप अर्थात् अनात्म-तत्त्व, रागद्वेषादिक भाव आत्माके कुछ नहीं लगते। ये आत्माके इस पूज्य स्वरूपसे निकले हुए नहीं है, यह सब पुद्गल कर्मकी छाया मात्र है। तू इसे सच क्यों समझता कि ये मेरे स्वरूपकी चीज है और मेरे स्वरूपसे निकले हैं और ये निरपेक्ष होकर बनते हैं, सब मेरा ही मेरा मामला है। अरे ऐसा सोचकर तू क्यों रागसे चिपक रहा है ? यह राग छाया है, तेरा स्वभाव नहीं, तेरा स्वरूप नहीं, तू अविकार स्वरूप है, यहाँ तो इसको इस दृष्टिसे निरखिये कि समझनेमें कुछ हैरानी या कुछ अचरज सा हो जाना चाहिए कि मैं तो चैतन्यस्वरूप हूँ, (अपने स्वरूपको निरखकर) मैं चिन्मात्र हूँ, जिसकी तरंग, विशुद्ध अर्थपर्याय वस चिद्द्रव्यमें अगुरुलघु गुणके प्रतापसे हो रहे, इस चित्में ये रागद्वेष कहाँसे उठ खड़े हुए ? ये स्वरूपसे हैं ही नहीं और यही बात है भेदविज्ञानकी। जो सम्यग्दृष्टि ज्ञानी पुरुष इस तरहसे निरख रहा है इन रागादिक भावोंको कि ये रागद्वेष भाव यहाँसे तो उठे नहीं, और पुद्गलकी परिणति है नहीं। है कर्मगत राग अनुभाग पुद्गलकी परिणति, मगर पुद्गल परिणामकी झाँकी जो यह है, यह जीवकी स्वच्छताका विकार है। यह स्वच्छताका विकार पुद्गलकी परिणति नहीं। पुद्गल कर्ममें रहने वाला अनुभाग रस पुद्गल कर्मका हैं, पर उस अनुभाग रसकी यह झलक, यह झाँकी प्रतिफलन स्वच्छताका विकार यह कर्म का नहीं है, जैसे दर्पणके सामने कोई चीज रखी है, प्रतिविम्ब सामने आ गया तो प्रतिविम्ब भी उसी रंगका वह चीज भी उसी रंगकी, और दर्पणको देखो तो दर्पणके स्वरूपसे यह प्रतिविम्ब नहीं उठता। दर्पण इस लायक है, इस योग्य है कि बाह्य पदार्थोंका साँनिध्य पा ले तो यह दर्पण अपने आपकी कलासे योग्यतासे, अपनी स्वच्छताकेविकाररूप परिणम जाता है। इस स्वच्छताका विकार रूप दर्पणमें है, पर निरपेक्षतया दर्पणसे उठा हुआ नहीं है, यह एक नैमित्तिक भाव है, ऐसे ही आत्मामें जितने रागद्वेष विरोध आदिक जो गड़बड़ियाँ होती हैं, विकल्प तर्क विचार जो भी हलचल होती है, यह हलचल पुद्गल कर्ममें हो रही है। कर्मके अनुभागमें चल रही।

३६३ अन्तस्तत्त्वकी विविक्तता—

करणानुयोगके सिद्धान्तसे समझें तो एक-एक बात बिल्कुल स्पष्ट समझमें आयगी कि जो हलचल जो अनुभाग पहले हमने अपने अज्ञानसे बाँध रखा था। कटते-कटते जो कुछ भी रह गया वह अनुभाग उदयमें है और उसका यह प्रतिफलन है, जिससे आत्माकी स्वच्छताका विकार बन गया। यह विकार मेरा नहीं है, मेरे स्वरूपसे उठा हुआ नहीं है। मैं तो एक आधार बन गया, पिस गया मैं एक आधार बन-बनकर और अज्ञानसे मैं ऐसा आधार बन रहा कि मानो मैं कुछ रहा ही नहीं। जो कुछ है सो यह कर्मरस। भेदविज्ञान कर लो, यह निरखनेमें आता रहे कि यह कर्मरस, ये विभाव, ये कषाय, ये विषय मुझसे ऐसे ही न्यारे हैं जैसे कि अन्य ज्ञेय पदार्थ झलकते हैं, वैसा ही न्यारा यह पुद्गल कर्मका विपाक है। अपनेको स्वच्छ ज्ञानमात्र निरख लो। नयोंका प्रयोग किस प्रयोजनके लिए है कि विभावोंसे हट लें, स्वभावमें लीन हो जावें ; तो बस यह कुंजी, यह लक्ष्य, यह बात जिसके निर्णयमें है वह तत्त्व कौतूहली वह खिलाड़ी सब नयोंके प्रयोगमें अपनी ही ज्ञान-लीलाका विस्तार करता है। उसे कहीं विवाद, संदेह कुछ नहीं ! स्पष्ट ये कर्मरस विभाव हैं उसके लिए कर्मरस भिन्न नजर आते हैं, यह है

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कर्मरस। झाँकी भर हैं, तू तो यहाँ स्वरूपमें अन्य कुछ बना ही नहीं विकृत रूपमें। तू अज्ञानसे क्यों उसे अपना रहा ? आचार्य महाराज यह कह रहे हैं कि वर्णादिसामग्र्यमिदं विदंतु निर्माणमेकस्य हि पुद्गलस्य। ये वर्णादिकसे लेकर 'गुणस्थान पर्यन्त कषाय इच्छा वितर्क विचार आदि यह पुद्गलका निर्माण है, तू अपनी चीज क्यों समझ रहा है ? तेरे में यह प्रतिविम्ब होता है, तेरी स्वच्छताका विकार होता है सो यह तेरा अनिष्ट है, यह तेरी बरवादी है। तू अपनी ही बरवादीसे प्रीति रखता है, बालक किसे कहते ? अज्ञानी किसे कहते ? जिसे हित अहितका विवेक नहीं, बालक तो जलते हुए उस कोयले को भी कहो पकड़ लें, उसे हित अहितका क्या विवेक ? जो उस बालककी बरवादीका हेतुभूत है कहो उसे भी अपना ले। तो इसी तरह यह उपयोग, यह अज्ञानी, इसको यह भेदविज्ञानकी बात दृष्टिमें नहीं आती कि ये सब पौद्गलिक हैं, जैसा कि आचार्य स्पष्ट शब्दोंमें घोषणा कर रहे, । अहो मोहका उदय आया, कुछ कला समझनेकी आ गई तो यह व्यवहारनयसे कहा इसलिए झूठ है, तब तो फिर सिर्फ़ २० गाथायें ही सत्य रह गईं। बाकी समस्त जैन ग्रन्थ असत्य हो गये। अरे अन्याय न करो तुम कला बनाओ। अगर अंगूरके फल नहीं पा सकते तो खट्टा कहकर भाग जानेकी बात तो लोमड़ियोंमें होती है। यदि ग्रन्थोंमें बुद्धि नहीं चलती तो उन्हें झूठ कहकर पाप तो न कमाओ। करणानुयोगके माध्यमसे हर बातको समझो। यह सब कर्मरस है, यह सब कर्माक्रमण है। ये सब शास्त्र एक आत्मानुभूतिके ही पोषक हैं, मिथ्या नहीं, पर कला आनी चाहिए। निष्पक्षताका भाव आये तो वह सब यहीं स्पष्ट है। यहीं परख लो, विभाव स्वभावको जुदा-जुदा करना है, ये सारे वर्णादिक समग्र विषय कषाय यह सब पुद्गलका निर्माण है, ऐसा विदन्तु जानो।

३६४ विभावोंसे हटनेमें विभावोंकी नैमित्तिकताके परिचयका सहयोग—

स्वच्छताके विकारको नैमित्तिक समझो अच्छा फिर क्या करो? यह जानो कि ये सब पौद्गलिक हैं, पुद्गल हैं, आत्मा नहीं, जैसे दर्पणमें आये हुए प्रतिविम्बसे भेद करनेमें आपकी क्या बुद्धि जगती है ? आप कैसे समझ पाते हैं कि यह प्रतिविम्ब दर्पणका स्वरूप नहीं, जरा यह ही तो बतलावो ? इस तरह तो नहीं कि दर्पण जब लाल कपड़ेकी ओर देखता है तब प्रतिविम्ब आता। अरे झुकना बेझुकना क्या, ऐसा निमित्त सन्निधान पाकर यह दर्पण अपनी कलासे ऐसी योग्यता रख रहा है, भींटमें तो योग्यता नहीं दरीमें तो योग्यता, नहीं वहाँ तो झलक नहीं होती। यह अपनी अपनी योग्यताकी बात है। इस दर्पणने अपनी कलासे अपनेमें खेल खेल लिया, इसको निमित्तने नहीं खेला दिया। निमित्तकी कोई परिणति उपादानमें नहीं आयी, लेकिन यह योग स्पष्ट तो हो रहा है, अन्यथा यह प्रतिविम्ब दर्पणसे जुदी बात है इसके निर्णयका और क्या साधन है ? जो जब है वही तो सही साधन बन सकेगा। यह सब जानकर करना क्या है ? भेदविज्ञान। जिससे विभावोंसे असहयोग हो जाय और अपने स्वभावमें मग्नताका मार्ग निकल आये। यह कर्मरस है, कर्मलीला है, यह मैं नहीं हूँ, मैं तो ज्ञाता द्रष्टा चैतन्यस्वरूप मात्र हूँ, इसमें यह विज्ञानघन अन्दर है। कहते हैं कि प्रज्ञा छेनीसे इस सूक्ष्म अन्तः संधि पर प्रहार कर दें, दो टूक हो जायें, जीव अलग, अजीव अलग, ज्ञानमें दो टूक हो जावें, वह अन्तः सँधि है कहाँ ? वह अन्तः सँधि यहाँ है कि जिसका निमित्त नैमित्तिक भाव अच्छी तरहसे परिचय करा रहा है। हाँ अज्ञान तब है जब निमित्त नैमित्तिक भाव मात्र तक न रहे और निमित्तका कर्तृत्व अंगीकार कर ले कि इसने इसकी परिणति की, याने यह निमित्त ही इस परिणमन रूप बन गया जो उपादानमें विवक्षित है। यह तो अज्ञानकी बात है, मगर विशुद्ध निमित्त नैमित्तिक योगका परिचय हमको भेदविज्ञानमें सहायक हो रहा,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उसीका प्रयोग आचार्य कुन्दकुन्द देवने समयसारमें बहुत-बहुत जगह समझा कर वर्णन किया है। इस कलशमें कह रहे हैं कि वर्णादिकसे लेकर गुणस्थानपर्यन्त भाव सब पुद्गलका निर्माण है। देखिये—जो शुद्धता है वह तो उपाधिके अभावसे उत्पन्न हुई और जहाँ जहाँ जितनी—जितनी भी बात रह गई वह सब एक पुद्गल कर्मदशाका निमित्त पाकर है। इसी कारण ये भी पौद्गलिक हैं और पुद्गल कर्ममें तो तो अनुभागबंधपरिणतिका विस्फोट है सो पुद्गल है। मैं ज्ञानघन उससे अन्य हूं।

२६५—सब अनुयोगोंसे ज्ञान बर्द्धनकर अविकार ब्रह्मस्वरूपका परिचय पानेमें आत्महित—

भैया अपना उत्साह बने ज्ञानबर्द्धनका माध्यम बनावें चारों अनुयोगोंको। आपको निश्चित रूपसे ऐसा प्रकाश प्राप्त होगा आत्महित वाञ्छासे स्वाध्याय करनेपर कि सब बातें जुदी—जुदी मालुम होगीं। यह भी स्पष्ट हो जायगा कि इननी गड़बड़ होनेपर भी इतना निमित्तनैमित्तिक योगका प्रवाह चलनेपर भी अणु—अणु प्रत्येकका अपने अपने उत्पाद व्ययसे चल रहा है। किसीका उत्पाद व्यय कोई दूसरा नहीं करता, यह है एक उत्पादव्ययसामान्यकीबात। अब जो विशेषता आती, जिसे कहते विकार, यह विकार किसी भी पदार्थके स्वरूपमें नहीं बसा। क्या विकार जीवके स्वरूपसे होता? जैसे कि बंदर बहुतसे चने चबा लेते और अपने मुखमें भर लेते, उनके मुखमें एक ऐसी थैली है, फिर एक निर्विघ्न स्थानमें जाकर धीरे—धीरे चबाता है। विकार कहीं ऐसे भरे नहीं हैं कि यह जीव अपनेमें विकार कर रहा है ऐसा इस जीवको शौक नहीं है, ऐसा इस जीवको बरबादीका प्रेम नहीं है कि अपनी बरबादीकी बात स्वरूपमें रखे। और स्वरूपमेंसे निकलकर अपनी बरबादी थोपे। यह स्वरूप अविकार विशुद्ध है। द्रव्यदृष्टिसे देखिये शुद्ध चैतन्यमात्र। उसपर दृष्टि दीजिए। यह आत्म दृष्टि जब बनेगी तब यह ध्यानमें आयगा कि ये सब पुद्गलके परमाणु हैं। देखिये—यह बात दो जगह है। जैसे कि समयसारमें ही खुद बताया गया है कि कषाय, जीव, अजीव, अज्ञान, मिथ्यात्व अविरति सब दो दो प्रकारके हैं—जीवरूप, अजीवरूप। अजीवरूप कषायका तादात्म्य उस अजीव पुद्गल कर्ममें है। एक द्रव्यका तादात्म्य दूसरेमें हो नहीं सकता। अन्यथा तत्त्व ही खतम हो जायगा। तो अजीव पुद्गल कर्ममें जो कषाय है, राग है, अनुभाग है उसका तादात्म्य उस कालमें, पुद्गल कर्ममें है, जीवमें नहीं है। और उस अनुभागका जब उदय हुआ, मायने उस पुद्गल कर्ममें ही वह अनुभाग खिल गया, उसका सन्निधान पाकर है ना यहींका यहीं। चाहे उसे प्रतिविम्ब कहो, स्वच्छताका विकार कहो, यह जीवकी उस कालकी परिणति है, पर जैसे दर्पणमें लोग बड़ी अच्छी विधिसे समझ डालते हैं कि यह प्रतिविम्ब दर्पणका नहीं, इसके स्वरूपसे, इसके स्वच्छ स्वभावसे उठी हुई बात नहीं, ये तो नैमित्तिक हैं औपाधिक हैं, इन सबके समझनेका प्रयोजन मात्र एक है। पर जानें, हेय जानें, अपने लिये अहित जानें और उससे हटें, इन विभावोंको, राग-द्वेषादिक भावोंको हेय जतानेके लिए भिन्न जतानेके ऋषि यह आचार्योंका यह निरूपण जो समझ ले उसके लिए वे विभाव प्रकट भिन्न हेय, दूर नजर आयेंगे। यह एक मैं चेतना मात्र हूं, इन सबसे निराला विज्ञानघन हूँ।

घृतकुम्भाभिधानेपि कुम्भो घृतमयो न चेत्।
तथा वर्णादिमज्जीवजल्पनेपि न तन्मयः ॥४०॥

३६६—चित्स्वभावमात्र अन्तस्तत्त्वका स्मरण—

अपने आत्महितके लिए प्रयोजनीभूत निष्कर्ष यह है कि हमको दृष्टिमें ज्ञानमें यह समा जाना चाहिए कि मैं एक चित्स्वभावमात्र परम पदार्थ हूँ। मेरेमें अपनेमें, अपने ही स्वभावमें अन्य कोई बात

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

नहीं है। किसी अन्य पदार्थका मेरे स्वरूपमें प्रवेश नहीं है। मैं शाश्वत चैतन्य स्वभाव मात्र हूँ, मैं यह हूँ और कुछ नहीं हूँ। जैसे परीक्षक उस मलिन स्वर्णके अन्दर समझता है कि स्वर्ण यह है, यह नहीं और कोई आभूषण हो ड़ला हो, जिसमें मल ज्यादह है उसे कह देता कि इसमें सोना नहीं है, और कोई पुनः कहे कि भाई यह क्या कहते हो, अच्छी तरहसे पहिचानो, कुछ तो सोना होगा तो वह अच्छी तरहसे समझकर बता देता है कि इसमें इतना तो सोना है और बाकी सब मैल, ठीक ऐसे ही अपने आपको समझना है कि मैं तो यह चिन्मात्र हूँ और बाकी जो मुझपर छा गये-अंधेरा, विकल्प, रागद्वेष, कषाय, ये सब मैं नहीं हूँ। जो मैं हूँ उसीमें मेरी रुचि रहेगी अब, जो मैं नहीं हूँ उसमें अब मेरी रुचि नहीं है। लोकमें क्षोभ करनेसे लाभ क्या ? एक अपने आपके इस ज्ञानघन स्वरूपको पहिचानें और उसमें ही रमण करें। सँसार सँकट, जन्म मरण टल जायेंगे, भवरहित हो जायेंगे। बस सदाके लिए शान्ति हो गई। तो समझना क्या है ? सर्वविशुद्ध अविकार सहजसिद्ध अपने स्वरूपको, क्योंकि जो भी पदार्थ है उसका अपना निजी स्वरूप उसमें अवश्य है। उस स्वरूपमें किसीकी अपेक्षा नहीं, किसीकी दया नहीं, किसीका प्रवेश नहीं, वह तो अपने ही सत्त्वसे सम्बंधित है, ऐसा चित्प्रकाश रूप अपने आपका अनुभव करना। और जो अन्य अन्य रूप अनुभव बनते हैं—मैं घर वाला हूँ, पुत्र हूँ, पिता हूँ, दूकानदार हूँ आदि जो जो भी यहां विकल्प विचार उठते हैं वे इस ज्ञानानन्द रूप परमात्मतत्त्वकी बरबादी स्वरूप हैं, एक क्षण भी तो इस अनात्मतत्त्वका कटाव करके अंतःस्वरूपमें अहंपनेका अनुभव तो कर लो। यह काम इस जीवनमें करनेको पड़ा है। जैसे लोग कामको बात कहते ना, तो वहां आँखें खुलती है, कमर कस-कर तैयार होते हैं, यह काम तो करना ही है, ऐसे ही अब मोड़ खाकर अन्तःदृष्टि बनायें कि मुझको अविकार निज सहज चैतन्य स्वरूपका अनुभव करके ही रहना है। क्या हूँ यह मैं। समस्त अध्यवसानों से निराला। इस चैतन्य शक्तिसे अतिरिक्त जितने भी विभाव हैं, सम्बंध हैं वे सब अध्यवसान हैं और उन्हें पौद्गलिक कहते हैं, क्योंकि वे पुद्गलके अनुभाग हैं और यहाँ यह अंधेरा उस अनुभागके प्रतिविम्ब रूप हैं देखो अन्तः वे आत्माकी स्वच्छताके विकार रूप हैं, वे सब मैं नहीं हूं अपने आपके स्वरूपका दर्शन करें तब समझमें आयगा कि ये मेरे स्वरूपके भाव नहीं। इस प्रकार एक अपनी दृष्टि करनेका स्वहितकारी कर्तव्य है।

३६७—अजीवमें जीवसंगमवश जीवत्वका उपचार—

अब थोड़ा बाहरी निर्णयमें आवो, विशुद्ध अंतस्तत्त्वके ख्यालात तो किसी विरले के ही होते है बाकी जगत यह मान रहा है कि यह स्थावर है, यह त्रस है, यह वादर है, यह एकेन्द्रिय है, यह दो इन्द्रिय है, तो क्या ये जीव नहीं कहलाते ? शुद्धनयकी दृष्टिसे परखें कि ये जीव नहीं है। जीव तो एक चैतन्यमात्र है। यों समझिये कि जैसे कोई स्वर्णका डला लाये जिसमें मानो आधी खोट है, आधा सोना है तो उसे हाथमें लेकर देखकर सर्राफ कहता है—अरे यह सोना नहीं हैं—अच्छा कोई जिद्द करे कि जरा सोचकर बात करो तो वह भली प्रकार देखभाल कर कहता है कि इसमें आधा सोना है, तो ऐसे ही इन सब प्राणियोंमें जो एक शुद्ध चैतन्यरस सहज ज्योति आत्म स्वरूप है, जिसके कारण इसका सत्त्व है वह तो जीव है और बाकी जितने औपाधिक भाव हैं और उपाधियां है वे जीव नहीं है। बात ऐसी ही है लेकिन कोई कहे कि शास्त्रोंमें तो ये सब जीव बताये गए। जीवके भेद हैं त्रस, स्थावर और यदि ऐसा एकान्त कर लिया जाय कि ये सब जीव नहीं है तो इनपर पैर धरकर चले जानेमें भी हिंसा न लगना चाहिए, बंध न हो फिर, किन्तु ऐसा तो नहीं है। तो भाई बात यह है कि यहाँ उस जीवका प्रसंग तो है, मगर

Rajkumar Jain Shastri Vidyalaya, Gohana

http://www.jainkosh.org

जीवका यह विशुद्ध स्वरूप नहीं है, ये तो असमान जातीय विभाव द्रव्यपर्यायें हैं, सर्वथा एकान्त तो नहीं है कि यह जीव है ही नहीं, किन्तु इसमें जीवत्व भाव यह है और बाकी यह सब प्रासंगिक मैल है। इसमें जो जीव कहा गया है सो यों समझिये कि जो जीवके परमार्थ स्वरूपसे परिचित नहीं हैं उनको परमार्थ स्वरूपका परिचय करानेके प्रसंगमें बताया जाता है कि देखो ये त्रस जीव हैं ना, जो ये मनुष्य हैं ना. तो इनमें जो एक चैतन्य शक्ति है वह तो जीव है और यह वर्णादिमान् कुछ जीव नहीं है, मात्र उस सम्बंधके कारण इन सबको जीव कहा गया है। पर इसका अर्थ यह न होगा कि यह शरीर जीव-मय हो गया। उपचारका कोई प्रयोजन होता है। बिना प्रयोजनके उपचार भी नहीं किया जाता। जैसे कहा घी का घड़ा, अब यहां उपादान दृष्टिसे कोई अर्थ लगाकर सुने घी का घड़ा याने जैसे मिट्टी का घड़ा, लोहेका घड़ा, तांबेका घड़ा वैसे ही घी का घड़ा, तो उसकी यह बात गलत हो जायगी ना। अरे वह घीका घड़ा घीसे बना नहीं है, उसका उपादान घी नहीं है। तो जो कोई उपादान भाषामें अर्थ समझे तो उसका समझना झूठा ? प्रयोजन अवश्य इतना है कि जिसमें घी रखा गया है वह घड़ा। प्रयोजनसे बात कह रहे हैं, घरमें भी तो कहते हैं-जरा घीका डिब्बा उठा लाओ, तो क्या कहने वाला इतना मूढ़ है कि वह यह समझ रहा हो कि यह घीसे निर्माण किया हुआ डिब्बा है ? अगर ऐसा समझता होता तो अग्निपर क्यों रखता ? घीसे बना हुआ डिब्बा तो अग्निपर रखनेसे भष्म हो जायगा। प्रयोजन है वहाँ, जिस प्रयोजनसे उपचार किया गया, पर वहाँ यह न समझना कि जो यह आकार है सो घी है। उपादान दृष्टि वाला अर्थ घटित न करना, तो घी का कलश है, ऐसा कहनेपर भी कहीं वह कलश घीमय नहीं बन गया। वहां पदार्थ भिन्न दो हैं, ऐसे ही इन संसारी जीवोंको, त्रस, स्थावर जीवों को, वर्णादिक भावोंको जानो और की तो बात क्या, कर्मानुभागका झलक रूप जो जीवकी स्वच्छताका विकारहै वह भी जीव नहीं है, जीव कहीं विकारमय नहीं हो गया। तो जो जीव नहीं है उनको जीव बताया गया है वह व्यवहारनयसे, बताया गया है और यदि उपादान भाषामें समझो तो उपचारसे कह लो जो उपचार कि मिथ्या है।

३६९—सर्व कथनोंका प्रयोजन तत्त्वकी खोज—

उपचारसे जो बताया गया है सो यह प्रतिबोधनके लिए बताया गया है। कहीं यह न जानना कि जड़ हो गया जीव, यह शरीर ही जीव हो गया। जीव तो निज चैतन्य ज्ञानरसनिर्भर एक अमूर्त बस ज्ञान ज्योति मात्र है, उसमें अनुभव करें कि यह मैं हूँ, यह बहुत बड़ा काम है, और उसके कार्यके लिए पहले हृदयकी शुद्धि अति आवश्यक है। यहाँ किसी भी प्रकारका भ्रम न हो, भ्रमरहित जीव ही इस अंतस्तत्त्वके दर्शनका पात्र बनता है, मायने वह आत्मा इस अंतस्तत्त्वका दर्शन करता है। अब इस अंतस्तत्त्वके दर्शन करनेके लिए जितने जितने तरीकोंसे ज्ञान बताए गए हैं उन सबका उपयोग ठीक बनना चाहिए। जब एक द्रव्यकी दृष्टिसे देखें तो उस दृष्टिमें तो केवल एक ही द्रव्य नजरमें आयगा। पर्याय दीखा, स्वरूप दिखा, गुण दिखा, एक द्रव्यकी दृष्टि करनेके मूडमें अर्थात् निश्चयनयकी दृष्टिमें एक ही पदार्थ आया-जीव। लो यह जीव अभी यों परिणम रहा, अब यों परिणम गया, ये जीवकी पर्यायें हैं। इन पर्यायोंमें जीव अनुगत है, यह दृष्टिमें आया। इस दृष्टिका प्रतिलोम क्या है कि अन्य पदार्थ हमारी दृष्टिमें नहीं। न अन्य पदार्थोंके हां करनेकी दृष्टि है, न अन्य पदार्थोंको न करने की दृष्टि हैं, केवल एक जीवतत्त्व या जिसका विचार चल रहा हो निश्चय दृष्टिमें, केवल वही दृष्टिगत है, वहाँ यह सब बात आ रही कि ये सब इसके हो रहे, इसके चल रहे, तो उस दृष्टिमें अन्यका, आश्रयभूत

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

का ख्याल न होनेसे इसके उपयोगकी मुद्रा व्यक्त नहीं हो पाती। अबुद्धिपूर्वक विकार रह जाता है, बुद्धिपूर्वक विकारमें अनुभाग अधिक हुआ करता है। अच्छा यों देखो-पर यों देखनेमें यह तो बात सही नहीं है कि जीवमें जो रागद्वेष आये वे यों ही आ गए। उसमें कोई पर पदार्थके सन्निधानकी बात नहीं है, विकार यों ही आ गए। जैसे हम आप जब मार्गमें चलते हैं तो पेड़ोंकी छाया बीच बीच पड़ती जाती है, तो उस छाया रूपसे परिणमा यह शरीर उस कालमें जितनी देर वह छाया है। वह छाया केवल उस मुसाफिरसे चलनेके ही कारण उसीके निमित्तसे नहीं हुई किन्तु वहाँ उस वृक्षका सन्निधान है, जिसका निमित्त पाकर छाया हुई है, यह बात असत्य नहीं है, मगर दो तरहकी बात कही जा रही है इस कारण यह व्यवहारनयसे है। यह असत्य नहीं, इस ही बातको तब यों कह दीजिए कि यह तो वृक्ष की ही परिणति है तो यह सत्य नहीं। तो यह उपचार बन गया।

३६९ व्यवहारैकान्त व निश्चयैकान्तको त्यागकर सत्य विज्ञान करनेमें हित—

यह समझना चाहिए कि तत्त्वकी बात एक निष्पक्ष चिन्तनमें मिलेगी। न व्यवहार एकान्तमें है तत्त्वकी बात, न निश्चय एकान्तमें तत्त्वदर्शन, किन्तु व्यवहार निश्चय दोनोंको समझकर प्रमाण रूप ज्ञान बनाकर फिर यथार्थ बात जाननेके बाद समस्त नय पक्षोंको छोड़ने पर इस अंतस्तत्त्वके दर्शन होंगे। अब रही यह बात कि उपयोग सबका करना, व्यवहारनय यह बता रहा है कि उस मुसाफिर पर जो छाया आयी है तो वृक्षका सन्निधान पाकर इस शरीरकी ही ऐसी योग्यता है कि छाया आ गई, ऐसे ही यहाँ समझना है कि ये जो रागादिक विकल्प विचार वगैरह गुजर रहे सो ये कर्मानुभावका उदय, यह तो सन्निधानमें है, और जीवमें ऐसी वर्तमान योग्यता है कि ऐसा सन्निधान पाये तो जीव अपनी कलासे इस प्रकार खेल खेलने लगा, मगर यहां निमित्तका कर्ता मान लिया वह हो गया व्यवहार एकान्त और यहाँ यदि द्रव्य निरपेक्ष वृक्षके सन्निधानका निमित्त बिना ही इस मनुष्य पर छाया आ गयी, ऐसा मानो तो वह कहलाता है निश्चय एकान्त। और, प्रमाणकी बात यह है कि उस वृक्षका सन्निधान पाकर देहने, देह पर, देहकी योग्यतासे इसका छाया रूप खल खेल लिया। ऐसा जानकर हमको क्या लाभ मिलेगा ? विभावोंसे हटना और स्वभावमें लगना। बस काम करनेकी यही एक है आत्मकला। अब इस ही कुंजी से सब जगह निर्णय स्वयं कर सकते हैं कि किस प्रकारका ज्ञान, कैसा कौन यथार्थ गुण इस काममें मदद दे कि विभावोंसे हटें और स्वभावमें लगे ? शुद्धनयसे देखो-स्वभाव अविकार है, स्वभावमें विकार नहीं होना। वह तो अपने आपमें शाश्वत चैतन्यरस निर्भर है। यह देखा शुद्धनयसे, जिससे स्वभावकी दृष्टि की प्रेरणा हम पा सकेंगे विभावोंसे असहयोग करके, क्योंकि अनादिसे यह जीव विभावोंमें रत रहा आया है। तो जब तक यह परिचय न मिल जायगा कि ये विभाव मेरे स्वरूपकी चीज नहीं, ये औपाधिक भाव हैं, मेरेमें आगंतुक हैं, नैमित्तिक हैं। जैसे दर्पणमें रंगीन वस्त्रका प्रतिबिम्ब हो जाय तो यह मान रहता है कि यह दर्पण प्रतिबिम्बका है वस्तुतः प्रतिबिम्ब दर्पणका नहीं। दर्पण आधार है, दर्पणकी स्वच्छताका विकार है, उस कालमें दर्पणकी परिणति है, मगर दर्पणके स्वरूपसे निकला हुआ वह प्रतिबिम्ब नहीं, किन्तु उस समक्ष निमित्तकासन्निधान पाकर दर्पण अपनी स्वच्छताके कारण उस प्रकार विकार रूप परिणम गया है। परिणमन दोनोंका अपनेमें अपना अपना है, तो ऐसे ही जब यहाँ यह निरखना बनता कि यह मैं चैतन्य स्वरूपतः निरपराध हूँ, इसका स्वरूप तो चेतनेका है, इस पर यह कर्मरस लद गया है, क्योंकि कर्मानुभागका उदय है, लद गया है, यह मेरा स्वरूप नहीं। साक्षात् उसे समझमें आने लगता है कि यह सब कर्मकृत है, मैं तो अपने आपके स्वरूपमें कर चैतन्यरस

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

निर्भर हूँ।

३७० वस्तु स्वातन्त्र्य और निमित्तनैमित्तिक भावका एकत्र दर्शन—

जहाँ ज्ञाताको स्वभाव विभावके भेदकी बात समझमें आयी कि इस विशुद्धिके प्रतापसे, इस ज्ञान और वैराग्यके प्रतापसे सत्त्वमें पड़े हुए कर्मोंमें गुण श्रेणी निर्जराकी विधिसे बहुत बड़ी हलचल मच जाती है, आगेके निषेक खिच खिचकर नीचे समयके निषेकोंमें परिवर्तित होते, उस समय कितना गड़बड़ होता है ? जैसे मानो चूहोंकी सभा लगी हो और उसमें आ जाय कोई व्यापुत मनुष्य तो वहाँ कितनी गड़बड़ मच जाती है। कर्मोंकी इन सब हलचलोंको परमावधि ज्ञानी और सर्वावधि ज्ञानी तो साक्षात् जानते हैं और हम आप अपनी युक्तिसे और अनुभवसे जानते हैं। जैसे नदीमें बाढ़ आ गई तो हम जानते हैं कि ऊपर बहुत तेज वर्षा हुई है, अन्यथा यह पूर यहाँ न आ सकता था। ठीक ऐसे ही जब हमने यह देखा कि मैं तो एक विशुद्धचैतन्यमात्र हूँ, स्वतः केवल एक चैतन्यकी ही तरंग आना चाहिए लेकिन यहाँ जो ये ठाठ आ गए, अंधेरा छा गया, विकल्प हो गए, इस चेतनमें ऐसा विकल्प करनेकी क्या बात थी ? लेकिन स्वभावके विपरीत जो कुछ भी यह अंधकार आ गया यह अंधकार उपाधिके सम्बंधसे है, जब उपाधिका उदय आया, यहाँ तब अंधकार आया अन्यथा कैसे आया ? स्वयं तो परिणमन स्वभाव वाला है किन्तु स्वयं विकारकानिमित्त नहीं होता। अगर यह आत्मा स्वयं विकारकानिमित्त हो जाय तो देखो निमित्त सदा, उपादान सदा। विकार कभी मिटना ही न चाहिए। ये विकार भी तब तो स्वभाव बन जायेंगे। विकारमें भी परिणति उदादान की है, पर इसमें कोई दूसरा उपाधिका सम्बंध है। अगर उस उपाधिको कर्ता रूपमें देखेंगे तो वह अज्ञान है। कर्म चैतन्य स्वच्छतासे विकार रूप नहीं परिणम सकेगा। वह तो अपने आपमें पुद्गल सीमामें जैसा हो सकता है वैसा परिणमेगा, तो किसीके भी स्वभाव विभाव पर्यायरूप कोई दूसरा पदार्थ नहीं परिणम सकता, यह बात अमिट है अन्यथा यह सारा जगत शून्य हो जायगा। किसीने इस पदार्थका परिणमन दिया तो यह रहेगा या वह उस रूप परिणम गया तो यह न रहा। कहीं अन्य रूप न परिणम जायगा, इस तरह तो अव्यवस्था होगी, जगत शून्य हो जायगा पदार्थका यह अकाट्य नियम है कि एक पदार्थ दूसरे पदार्थके द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव रूपसे नहीं परिणमता। यह बात तो साधारण गुणोंने ही स्पष्ट कर दी। विशेष आगे हैरानीकी चीज नहीं है, वस्तुत्व गुण और अगुरू लघुत्व गुण ये ही पहिलेसे वस्तु स्वातँत्र्यकी घोषणा कर रहे हैं। वस्तुत्व गुण बतला रहा है कि प्रत्येक द्रव्य अपने स्वरूपसे सत् है, पर रूपमें असत् है और इसी कारण वस्तुमें अर्थ क्रिया होती है, परिणमन होता है। अगुरुलघुत्व गुण जता रहा है कि कोई भी पदार्थ किसी दूसरेके स्वरूपको कभी नहीं परिणमा सकता। तो यहां जीव और कर्मका सम्बंध है तो कर्म अपनेमें परिणम रहा जीव अपनेमें परिणम रहा, मगर जितना विभावोंका प्रसंग है वह कर्मोदयका सन्निधान पाकर ही प्रकट होता है। होता है जीवकी स्वच्छताके विकार रूपसे।

३७१ वस्तु स्वातंत्र्य व निमित्तनैमित्तिक भावका यथार्थ परिचय करने वालोंका यत्न—

वस्तु स्वातंत्र्य व निमित्तनैमित्तिक भाव का तत्त्व जिसने जान लिया वह यह संयत्न करता है कि हे कर्मरस, हे अंधकार, हे अध्यवसानो, तुम मेरे कुछ नहीं लगते। तुम मेरे कुछ स्वरूप नहीं हो, यह सब परख रहा। अपने स्वरूपको निर्विघ्न तिरख रहा। मैं तो शुद्ध चैतन्यमात्र हूँ, रागादिक भाव, ये विषय कषाय तुम मेरेसे दूर हटो, तुम पर हो। जैसे दर्पणमें प्रतिबिम्ब रूप, इनमें यह जीव अपना उपयोग लगाता था, इनको अपना मानकर इन आश्रयभूत पदार्थोंमें जुटा करता था। अब तथ्यकी बात

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

इतनी समझ लो कि मैं एक चैतन्यस्वरुप मात्र हूँ। इस ज्ञानके बलसे उन विभावोंसे सहज विरक्ति हुई है, और इस सहजवैराग्य और इस ज्ञानके प्रतापसे उन कर्मोंकी गुणश्रेणी, निर्जरा, असंख्यात गुणी क्रमसे निषेकोंका, नीचे की स्थिति वाले निषेकोंमें मिलना और ऐसा सहज बढ़ते चले जाना और स्थिति खण्ड, अनुभाग खण्ड होना यह कर्ममें आटोमेटिक चल रहा, जीवके विशुद्ध परिणामोंका निमित्त पाकर और जब यह उदयमें आयगा तो वह चूकि पुद्गलकर्म विपाक भवेम्यो भावेम्य आत्मानं निवर्तयति बताया है, इसी समयसारमें कि यह जानो जीव पुद्गल कर्मकेउदयसे होने वाले भावोंसे अपनेको हटाता है। मैं यह नहीं हूं। मैं चैतन्यस्वरुप मात्र हूँ। सो यह बात ज्ञानीमें बन रही ना। इसी बल पर जितना अनुभाग उदयमें है और जो एक प्रतिफलन है, ज्ञान और वैराग्यके बलसे, अब उसके बंध इतना भी नहीं चल रहा, कम बंध होता जा रहा और वह मौका पा लेता है, इस चैनन्यरस निर्भर ज्ञानघन चैतन्यस्वरूपकी उपासनाके प्रतापसे निकट कालमें यह जीव सर्व बंधनोंसे मुक्त हो जायगा।

३७२—स्वैकत्वके प्रति खरतर दृष्टिकी आवश्यकता—

निजके एकत्वकी दृष्टि हो, और ऐसी हो, जैसे एक कथानकमें बताया है कि एक बार पाण्डवों के गुरू द्रोणाचार्यने अपने पाँचों शिष्योंको अर्जुन, भीम, युधिष्ठिर, नकुल और सहदेवकी धनुर्विद्याकी परीक्षा हेतु बुलाया। एक पेड़पर काठकी चिड़िया टाँग दी और शिष्योंको बुलाकर उनकी धनुर्विद्याकी परीक्षा करते गए। जब एकको धनुष बाण दिया, चिड़ियाँकी आँखमें निशाना लगानेको कहा तो निशाना लगाकर खड़ा हुआ। द्रोणाचार्यने पूछा-बताओ तुम्हें क्या दीखता? तो वह बोला-महाराज मुझेतो धनुषबाण दीखता, पेड़की पत्तियाँ दीखती, चिड़ियाँ दीखती, आप दीखते। बस बस परीक्षा हो गई तुम बैठ जावो। टीक यही बात शेष तीनने कही, पर जब अर्जुनकी बारी आई तो पूछा—आपको क्या दीखता? तो अर्जुन बोला-बस तीरकी नोक और चिड़ियाकी आँख। बस बस धर दो धनुष बाण, हो गई तुम सबकी परीक्षा। अर्जुन एक तुम ही इस परीक्षामें उतीर्ण हुए। तो ऐसी ही बात तो ज्ञानी के पास होती है जिससे वह सर्व परीक्षावोंमें उतीर्ण होती है जिस ज्ञानीको इस शुद्ध चैतन्यस्वरुपका अनुभव होता वह संसारके किसी भी दुःखसे घबड़ाता नहीं। देखो इस बातको पानेके लिए समयसारमें अनेक जगह बताया गया हैं कि देख भाई तू ऐसा अध्यवसान मत कर कि मैं इसको सुखी करू, मैं इसको दुःखी करूँ. मैं इसको बरबाद करूं। अरे उनका यह सब कर्मोदयके अनुसार होता है। इस बातको बहुत-बहुत विवरणसे समझाया।

३७३—निमित्तनैमित्तिक भावके सही परिचयका प्रयोजन विभावसे उपयोगका हटाव

प्रियवर इन तीन बातोंका सही-सही परिचय कर। तेरेमें जो उपयोगकी विकार वाली व्यक्त लीला है सो इसमें तीन कारण हैं। उपादान कारण, निमित्तकारण, और आश्रयभूत कारण। उपादान कारण तो जीवद्रव्य है, याने पूर्वपर्याययुक्त द्रव्य उपादान कारण है। याने वह चीज, वह कार्य, वह नैमित्तिक तो उपादेय है, याने ग्राह्य नहीं, किन्तु उपादानमें परिणति आने योग्य है, सो बस यही आधार उपादान कहलाता है। वह अगर नहीं है तो चीज आयगी कहाँ- और कहाँसे? और यह पंचेन्द्रिय व मनका विषयभूत पदार्थ समुदाय है आश्रयभूत कारण, जिसको दृष्टिमें लेकर तू अनेक तरहसे उथल पुथल करता। यह दृश्य पदार्थ विकारका निमित्त नहीं है और स्वयं आश्रयभूतकारण भी नहीं बनता, तू उपयोग जुटाता है तो कारण बनता, उपयोग नहीं जुटाता तो यह कारण नहीं बनता। निमित्त कारण तो कर्मका उदय है, वह अनुभाग दशा हुई। यहाँ प्रतिविम्ब हुआ, स्वच्छताका विकार हुआ। यह हुआ नैमित्तिक। अब जो जीव ज्ञानी है वह ज्ञान और वैराग्यके बलसे स्वच्छताके विकारसे उपयोग हटा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कर एक चैतन्यरसमें अपना उपयोग जुटाता है। मैं यह हूँ, ऐसे इस चैतन्यस्वरुपकी समझ रखने वाले ज्ञानी जन बतलाते हैंकि दृष्टि यह लावो फिर सब जीवों में देखो तो प्रथम यह ही नजरमें आयगा। यह तेरे इस अंतस्तत्त्वकी दृष्टिके अभ्यासका परिचय है कि अगर जगतके जीवोंको देखकर वहाँ एकदम सहजचैतन्यरस निर्भर अंतस्तत्त्व दृष्टि में आता है कि यह सब यह है तो समझे तूने अपने आपअपनी परीक्षा करली कि मैंने इस ज्ञायक भावकी दृष्टि को अपना दृढ़ बना पाया है। अपराध पीछे दिखेंगे कर्मोदय है ऐसा ही कर्मरस है, उसमें यह एकत्व कर रहा है। यह बेचारा स्वरूपतः निरपराध है, मगर परिस्थिति होनेसे यह सापराध है। यह उदय में आया। तो मतलब यह है कि अपने आपमें आत्मत्व का ही नाता रखियेगा धर्म के प्रसंगमें।

३७४ पार्टीकी शल्य छोड़कर मात्र आत्मत्वके नाते धर्मपालनका पौरुष करनेका संदेश

हमें आत्महित करना है इस प्रकारके प्रसंगमें अपनेको मात्र आत्माका नाता रखें पार्टीका नहीं, पक्षपातका नहीं। मैं आत्मा हूँ, मुझको अपना भला करना है और उस भले के लिए आचार्यसंतों ने जो जो उपाय बताये उन सब उपायों को एक ज्ञानस्वभावकी दृष्टिसे समुचित बनाने का प्रयत्न किया, क्योंकि अभी असहयोग बिना सत्याग्रह काम न देगा। विभावोंसे हटना और स्वभावमें लगना यह काम करना है। तो विभाव पर है यह बात जैसे स्पष्ट ज्ञान में आये वह उपाय बनावें। स्वभाव मेरा स्वरूप है, यह बात जिस दृष्टिसे दृढ़ बने वह उपाय बनावें। सो है, विषयों से हटना स्वभावमें लगने के उपाय वैसे बनाये। और देखो यह मनुष्य जन्म बड़ा कठिन है, एक अपना ऐसाही संकुचित भाव न बनायें कि हमने थोड़ी सी बात जान ली कि जीव जीव है और शरीर अजीव है, तो इतने से स्पष्टता न आयगी। करणानुयोग, चरणानुयोग, प्रथमानुयोग और द्रव्यानुयोग इन चारों अनुयोगों में अपना प्रवेश रखें तो बड़ी प्रेरणा मिलेगी। अत्यन्त स्पष्टता नजर आयगी और भेदविज्ञान सही होगा व अपने आपके स्वरूप की प्राप्ति होगी।

अनाद्यनन्तमचलं स्वसंवेद्यमबाधितम्।
जीवः स्वयं तु चैतन्यमुच्चैश्चकचकायते ।। ४१ ।।

३७५ बाह्यमें सर्वत्र आनन्द लाभका अभाव—

हम आप सभी प्राणी चाहते यह है कि सच्चा आनन्दरस भरपूर सदाकाल रहे और प्रयत्न भी इसलिये करते है हर एक काम करके, दूकानकरके, घर बसाकर, झगडा करके, इतना तक कि आत्महत्या भी करके चाहते तो वे यही हैं कि मेरा दुःख मिट जाय और आनन्द हो। लेकिन ये सब उपाय आनन्द के नहीं है। आनन्द का उपाय बहुत सुगम साफ, स्पष्ट, सीधा, है। थोड़ा ही उपयोग लगायें, थोड़ाही दिल से सोचे तो उपाय मिल जायगा और वह उपाय इतना सुगम है कि उसको फिर यह कभी भल नहीं सकता। वह उपाय क्या है? अपने आपको जानलेकि मैं क्या हूं। सब उपाय मिल जायगा। जो आनन्द चाहता है जब उसका ही पता नहीं है कि कौन चाहता है आनन्द तो फिर जिसने जैसा बहकाया वैसा बहक गए, यह में चाह रहा हूं। भीतरमें जो विकल्पकर रहा उस रूप जानकर सोच रहे कि यह हूं, मैं और मुझे आनन्द चाहिए, तो इससे आनन्द नहीं मिलता। यही कारण है कि हर एक पुरुष अपने जीवन में बहुत—बहुत सुविधायें बनाने की सोचता हैं कि इतना धन कमालें, इतना काम बढ़ालें फिर आनन्द से रहेंगे, पर होता क्या है कि उतना सब कुछ हो जाने पर तृष्णायें और आगेकी बढ़ जाती हैं जिससे उन्हीं समस्याओंमें फिर उलझ जाते हैं। बैचेनी और बढ़ जाती है। आनन्द नहीं मिल

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पाता । अरे आनन्द इन बाह्य पदार्थों में कहाँ धरा है ? मोही जीव बड़े परेशान हैं बाहरमें आनन्दकी तलाश करके, पर वहाँ कहाँ धरा है आनन्द ? और तृष्णामें आनन्द रखा है क्या ? सबका अपना-अपना अनुभव बता रहा होगा कि तृष्णा करनेके फलमें सदा बैचेनी ही बैचेनी रही, मानलो किसी ने अपने मनमाफिक सुविधायें बना ली तो उसके सामने कोई न कोई असुविधाकी दो बातें सामने खड़ी ही हो जाती हैं, और नहीं तो कोई इष्टका वियोग हो या अनिष्टका संयोग हो, कोई न कोई बात दुःखकी सामने आ खड़ी होती है । तो आनन्द पाने की जगह नहीं वह धाम नहीं जहाँ कि मोही रात दिन घूमा करते हैं ।

३७५ प्रभुमूर्तिके दर्शनसे आनन्दधामका दिग्दर्शन

मन्दिरमें आते ही मूर्ति के दर्शन करते ही आपको पता पड़ जाता है कि ओह आनन्द तो इस मार्गमें है, खूब परख लो, और जिसको बहुत चोटें नहीं लगी वह बहुत चोटोंकी मार सहकर बादमें सीख लेगाकि आनन्दका मार्ग तो यह है । बात उस मूर्तिको देखकर यह शिक्षा मिलती कि बड़े बड़े महापुरुषों ने यही पंथअपनाया । आनन्द तो इसी पदमें है, और जगह आनन्द नहीं । उस मूर्ति को देखकर यह सब शिक्षा मिलती है, जगतमें ऐसी कोई जगह नहीं जहाँ आत्माका लाभ हो, सुख हो । इसलिए कहीं आने जाने की जरूरत नहीं रही, यह वह मूर्ति बतला रही है । बस पैर में पैर फसाकर यहीं बैठ गए । जगतमें कहाँ जाना ? जगतका कोई काम करना योग्य नहीं है, कि जिस काम को कर लिया जाय तो आत्मा को लाभ मिले । कोई काम बाहरमें कर सकनेमें समर्थ भी नहीं हैं, यहाँ, हाँ पुण्ययोगसे बन जाय वह बात और है । आत्मा तो अपनेमें अपने भाव बनाता है, इसके अतिरिक्त बाहर में कुछ नहीं करता । यह जानकर प्रभु देखो हाथ में हाथ रखकर बैठे हैं । क्या करना है बाहर में ? कुछ करने योग्य ही नहीं । लोग तो अपने-अपने मनमें बात बहुत विचारते है और शेखचिल्लीकी भाँति मनमें खुश भी होते हैं । बाहरकी चीज दिखी, खुश हुए, मौज माना, अरे बाहरमें कोई चीज देखने योग्य नहीं । कोई चीज यहाँ ऐसी नहीं जिसे देखकर आत्मा का मोक्षमार्ग बने, सच्चे आनन्द का उपाय बने । बाहरकी कोई वस्तु ऐसी नहीं इसलिए वे प्रभु नासाग्र दृष्टिसे बैठे है, और ध्यान ऐसा लगाया है कि मानों उन्हें कहीं कुछ बाहरमें देखनेकी आवश्यकता ही न रही । यही उपाय बने हम आपका तो वहाँ हम आपको आनन्द मिलेगा । तो कम से कम इतनी बात समझकर, अपना व्यवहार ऐसा रहे कि किसी के प्रति विरोध न हो, किसीके प्रति घृणा न जगे, किसीके प्रति द्वेष न जगे, सब जीव है, सब कई कई भवोंमें अपने भाई बंधु हुए होंगे । न जाने कितने ही भव अब तक पाये । यहां कौन मेरा साथी, कौन मेरा मित्र ? बस जान देख लिया, अगर ऐसी वृत्ति रहेगी तो यहाँ आपका भला है और ऐसी वृत्ति न रहेगी तो आपका भला नहीं हैं यहाँ बाहरमें सारभूत चीज कुछ नहीं । सारभूत चीज अपनेआपके अन्दर देखो

३७६ स्वयं सहज आत्मपरीक्षण

देखो एक उपाय करके अपना आनन्दधाम । इतना निर्णय बना लेनेके बाद यत्न करो । क्या ? कि जगतमें एक परमाणु मात्रको ग्रहण करनेमें इस आत्माको शाँति नहीं ऐसा निर्णय परिपक्व बना लेवें । फिर असार है सब इसलिए अबमें किसी भी बाह्य वस्तुका चिंतन न करूंगा, विकल्प न करूँगा ऐसा एक बार तो सब बातका निश्चय करें । यह धर्मके प्रसंगकी बात कह रहे हैं । छोड़ दीजिए सब ख्याल, कहाँ फसना ? आप कहेंगे कि मेरी स्त्री आज्ञाकारिणी है, पुत्र आज्ञाकारी है, मेरी स्त्री तो बहुत ही सुन्दर है उसका स्नेह तो मेरे से छूट ही नहीं सकता . . अरे भाई काहे की सुन्दरता ? उन

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

देवाँगनाओं से तो सुन्दर नहीं है जिनके शरीर में न पसीना, न खून, बड़ा तेजस्वी शरीर वैक्रियक शरीर, और मान लो सुन्दर भी है तो वह सुन्दरता भी काहे की सुन्दरता? वह कोई सारभूत चीज तो नहीं। जो विवेकी देव होते हैं वे उन सुन्दर देवांगनाओं से भी विरक्त रहते हैं तो सब तो बाहरी चीजें है। यह गृहस्थी तो आपके लिए एक फसाव है, हाँ एक जीवनका निर्वाह अच्छी तरह से चलता रहै और प्रभुकी भक्ति करके, आत्माकी उपासना करके, आत्माका उद्धार करने का पौरुष करलें, इसके लिए एक सुविधा कमेटीका निर्माण किया है गृहस्थ ने। कोई जीव यहाँ किसी का लगता नहीं, सब जीव कोई किसी भवसे आये कोई किसी भवसे, जैसे चारो ओर से चलते हुए मुसाफिर किसी एक चोहट्टे पर आकर एक दूसरे से मिलते हैं, बस एक दो मिनट को मिले, राम राम किया और सब अपने—अपने निर्दिष्ट स्थान को चले जाते हैं, ठीक ऐसे ही इस परिवार में जिन जिनका समागम हुआ वे कोई किसी गति से आये कोई किसी गतिसे, सब थोडे से समय के लिए एक जगह इकट्ठे हुए, यह १०-२०-५०-१०० वर्ष का जीवन इन अनन्त काल के सामने कुछ है, यह समुद्र में बूंद बराबर भी गिनती रखता क्या? नहीं रखता। तो फिर इस थोडे से समय के लिए क्यों इनमें मोह ममता करना, मोह ममता करनेका फल तो दुर्गतियों में जन्ममरण करना है। अब अपने जीवनकी कुछ दिशा मोड़ें, ज्ञानबर्द्धन करके स्वाध्याय द्वारा, पढ़ने से, सुनने से, सत्संग से एक बना लीजिए अपना वास्तविक प्रोग्रांम। घर में हैं, समय पर सब कुछ करना पड़ता है, करें, मगर धर्म के हेतु, धर्म के ढंगका एक ज्ञान-प्रभावक प्रोग्राम बनायें। आनन्द बाहर कहीं कुछ न मिलेगा। आत्मा स्वयं आनन्दस्वरूप है। अपने आत्मा को देखो इस समय अशुद्ध है आत्मा, रागद्वेष विकल्पादि करनेवाला बन रहा, मगर स्वरूप तो देखो क्या आत्मा का स्वरूप ऐसा है कि वह विकार करे। किसी भी पदार्थका स्वरूप अपने आपके ही मात्र निमित्त से विकार करनेका काम नहीं करता। जो जिसका स्वभाव है वह उसीके अनुसार चलेगा। तो जब मैं हूं तो मेरा काम मेरे स्वभावके अनुसार रहनेका है, मगर ये विकार आये हैं, विकल्प उठते हैं, कषाय उठते हैं, यह सब कर्म उपाधिकी झलक है। तुम तो पवित्र हो। ऐसा अपने आप में निरखें कि मैं वास्तव में क्या हूँ।

३७७—आत्मस्वभावकी परख के उद्यम में अनाद्यनन्तता का परिचय—

वास्तव में आत्मा क्या है, इसकी पहिचान यों बनेगी कि शरीर न हो मेरे में, कर्म न हों मेरे में, ये राग-द्वेष विचार विकल्प आदि के उपद्रव ये चित्त में न आयें तो उस समय यह जीव किस स्थिति में रह सकता? उससे स्वभाव की परख बनती है कि यह तो ज्ञातादृष्टा रहेगा, चैतन्यमात्र रहेगा। अपने आपको जानलो—अच्छा बतलावो यह आत्मा कब से है? किस दिनसे बना? अगर मानो कि अमुक दिनसे बना तो कोई चीज बनती है तो किसी चीज से ही तो बनती है। जैसे यहां घड़ा बना तो किसी चीज से ही तो बना, चाहे मिट्टी से बना चाहे लोहा तांबा वगैरह से बना, किसी दिन से किसी चीज से बना। यह आत्मा भी किसी चीज से किसी दिन बनाया गया है क्या? अरे आत्मा स्वयं सत् है, अनादि अनन्त है, यह सारा लोक भी अनादि से है, अणु—अणु अनादि से हैं। किसी का कोई निर्माण नहीं करता। केवल पदार्थ में परिणति दशा, अवस्थायें बनती हैं, बिगड़ती हैं, नई होती है पुरानी होती है मगर चीज वही की वही सदा रहती है। तो आत्मा को किसी ने बनाया नहीं। मैं अनादिकाल से हूँ। यह ज्ञान प्रकाश, ज्ञानज्योति यह अनादिकाल से है। यद्यपि विषय कषायकी हवासे डगमग हो ज्ञानप्रकाश और इसी की धूल से इसका प्रकाश मंदा सा हो रहा। मगर वह ज्ञानज्योति अनादि से स्वरूप में है, यह कब

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तक रहेगा। अपने अपने आत्माकी बात सोचो-मैं आत्मा ज्ञानज्योति रूप हूँ, और यह ज्ञानज्योति, यह आत्मा कब मिट जायगी? कभी नहीं। जो भी चीज है वह कभी मिटती नहीं। जैसे मानो एक घड़ा मिट गया, कपाल बन गया, या बहुत बारीक बन बनकर मिट्टी रूप बन गया फिर भी उसका सत्य नहीं मिटा, वह मिट्टी समय पाकर कपास का पेड़ बन गई, फिर कपास रूप बनी, फिर कपड़े रूप बनी, कुछ भी परिणति बने पर उसका सत्त्व तो नहीं मिटा। जो भी चीज है वह कभी मिटती नहीं। जो आत्मा है वह कभी मिटता नहीं, अनन्त काल तक रहेगा। लोग मरण का भय करते हैं। भला बतलावो-जो पुराना घर है उसमें रहना पसंद नहीं आ रहा। नया मकान बनाया, अब पुराने मकान को छोड़कर नये मकान में जाते समय तो लोग उद्घाटन करते, खुशियाँ मनाते, बताओ नये मकान में कोई रोता हुआ भी जाता है क्या? नहीं। हँसता हुआ जाता। तो जब यह शरीर पुराना हो गया, वृद्ध है, कभी मरे. इसे छोड़कर एक नये शरीर में ही तो जाता है, वहाँ रोने की क्या बात? जो जायगा उस पर ही जब दृष्टि नहीं है, दृष्टि लगा रखा है बाहरी रूपरंग आकार वाले शरीर में, तब तो फिर रोने के सिवाय और कोई चारा नहीं, रोना ही पड़ेगा, और जिसे अपने आपकी सुध है वह क्यों रोवेगा? पुराना मकान छोड़ा नये मकान में जा रहा, इसमें रोने की बात क्या? देखो मरण समयमें सोच सोचकर दुःखी मत होवो कि मेरा यह कितना अच्छा भला परिवार था, हमसे छूटा जा रहा हैं...., अरे तुम तो जिस नये शरीर में पहुंचोगे वहाँ नया परिवार फिर हाजिर हो जायगा। और फिर उन परिजनों की चिन्ता क्या करना, उनका जैसा भाग्य होगा वैसा उन्हें होगा। बस हम तो अपने ज्ञानस्वरूप में ही रम रहे हैं, बस यह ही सारभूत काम है, इसको छोड़कर अन्य कोई सारभूत काम नहीं।

३७९—आत्मा के अचल स्वभाव की परख—

यह आत्मा की बात चल रही कि मैं अनादि हूँ, अनन्त हूँ, अचल हूँ, मेरा स्वरूप कहीं चलित नहीं होता। देखो कभी कीड़ा मकोड़ा की पर्यायों में भी थे, पृथ्वी, जल, अग्नि आदिक थे, निगोद जैसी दशावों में भी थे। बड़ा अंधेरा छाया था। वहाँ खुदका भी इस आत्माको कुछ पता न था, बड़ी निम्न दशा थी, पर अब कुछ सुयोग हुआ सो एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीनइन्द्रिय आदिक की पर्यायों से उठ-उठकर आज इस मनुष्य की पर्याय में आ गया। कुछ बाद यह पर्याय भी मिट जायगा, पर मैं आत्मा कभी मिटने वाला नहीं। मैं अपने स्वरूप से कभी चलित नहीं होता हूँ, और फिर इस आत्मा को कोई लोग ऐसा सोचते हैं कि हमें कोई समझा जाय, मुझे ज्ञान नहीं है मेरे आत्मा का, अरे किसी के समझाने से न समझेंगे अपने आत्मा को, आप दूसरे से थोड़ी बात चलायेंगे, बड़ा दिमाग भी लगायेंगे, पर समझ बनेगी तो अपने आपमें ही बनेगी। जब कुछ आत्मा में तेज जगता है, आत्मा का अनुभव होता है तो अपने आपका ज्ञान होता है, दूसरे में नहीं, तो ऐसे इस चैतन्यमात्र आत्मतत्त्व को जो अन्तरंग में निरन्तर जगमग हो रहा चकचकायमान है निरन्तर प्रकाशित है उसको देखें।

३८०—तृष्णा से दूर होकर आत्मज्ञान में बढ़ने के पौरुष का संदेश—

अन्तस्तत्त्व में यह मैं हूँ, यह बात बन सके तो जीवन सफल है और यह बात यदि न बन सके तो फिर किस काम का जीवन? कुछ भी बात बना दी जाय तो भी अपने आपका तो मार्ग निकला नहीं। लोग तो कह बैठते कि साहब हमें तो अपने काम से ही फुरसत नहीं मिलती, तो ठीक है, खूब रात दिन धन कमाये रहो, जोड़-जोड़कर रखे रहो, कम से कम गरीबों के, दूसरे के, धर्म के कार्यों में तो वह आयगा ही। मगर २४ घंटे काम कर कौन सकता? कमाई का काम सरकार ने खुद सिर्फ ८ घंटे का बाँध दिया

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है, जब ऐसी बात है तो ७—८ घंटे रोज काम सम्हाल लो, मगर बाकी समय बहुत सा बचता है कि नहीं ? बचता तो है मगर उसे गप्प सप्पमें, चुगली, निन्दा आदिकमेंनिता देते । ये सब व्यर्थके काम छोड़ दो । जिसको कल्याण चाहिए उसे इन गप्पके कामोंका परित्याग करना होगा । कल्याणार्थी जनोंका अगर कभी गप्प करनेका जी भी चाहता है तो वे ऐसी गप्प करेंगे कि जिसमें कोई न कोई धर्मकी बात होगी । समयका सदुपयोग करो, ज्ञानवर्द्धन करो । तो यहाँ आत्माको समझना है, मेरा आत्मा स्वयं चैतन्यस्वरूप है, और भीतरमें जगमग हो रहा है । मेरेमें जब मेरा है तब कोई विचार विकल्प नहीं होता । इस उपयोगको यहाँ फिट करें । यह उपयोग बाहरी पदार्थोंमें फिट नहीं हो पा रहा, क्यों कि बाहरमें उपयोग लगनेसे वह बाहरी पदार्थ मिट जाता । उपयोग बेचारा यों ही बाहर लौट आता । अव्वल तो यह उपयोग बाहर भी नहीं लगा पाते । इसमें ऐसी चंचलता है कि छूटकर रहता थोड़ा इसे जाना थोड़ा उसे जाना, इस तरह । इस उपयोगको आत्मामें लगाओ । अपने आत्माका स्वरूप समझिये कि मैं एक आत्म पदार्थ हूं । शरीरसे निराला हूँ, शरीरसे जुदा हूं, उन कर्मोंका जो रस यहाँ बिखर रहा है, अंधेरा छा रहा है, झाँकी जग रही है, रागद्वेष बन रहे है ये भी मैं नहीं हूँ । मैं तो जो अपने स्वरूपमें हूँ सो हूँ । सो क्या हूँ ? एक चैतन्य मात्र ।

३८१—लोकोत्तम अन्तस्तत्त्वके प्रकाशनका महत्त्व—

यह चैतन्यतत्त्व बड़े उत्तम तेज रूपसे अंधेरेमें प्रकाशमान है । तीन लोकका नाथ ईश्वर तो खुदके अन्दर दबा पड़ा है उसका कुछ भी ख्याल नहीं कर रहे, यह कितना बड़ा पापका काम है । यहाँ ही जब कोई किसीको दाबकर रखता है तो वह पापका काम समझा जाता, फिर तीन लोकका नाथ जो परमपवित्र है । भगवान आत्मा है, इसे दबा रखा है तो इसमें कितना बड़ा पाप कहा जाय ? यह तो एक महान पापका काम है । इसके फलमें इस जीवको कीटपतिंगा, पशु पक्षी आदिकको नाना योनियोंमें जन्ममरण करना पड़ता है । यह है महापाप, मिथ्यात्व । इसमें तो अपने आपकी कुछ सुध भी नहीं हो पाती कि मैं क्या हूं । तो हे आत्मज्ञानी, पुरुष आत्तासे अतिरिक्त कार्य बुद्धिमें कुछ मत लावो । है क्या ? हाँ करने पड़ते हैं तो वह बात एक दूसरी है । वे तो एक विवशतासे करने पड़ते हैं । कैदी लोग भी तो कैदके अन्दर कोई काम करना नहीं चाहते मगर पुलिसके डंडोंके बलसे उन्हें सब काम करने पड़ते हैं । उस कैदमें रहते रहते कुछ कैदी ऐसे भी पाये जाते हैं जो कि कैदमें रहते, परिस्थितिवश सब काम करने पड़ते फिर भी वे उस कैदमें ही रहना पसंद करते हैं । कैदसे बाहर होना उन्हें पसंद नहीं, क्योंकि कमसे कम उन्हें समयपर रोटियाँ तो मिल जाती हैं, या कैदीजनोंमें परस्परमें ऐसा प्रेम व्यवहार बन जाता कि वे वहाँसे जाना पसंद नहीं करते । तो ऐसी ही प्रकृतिके लोग तो यहाँ संसारमें बस रहे हैं । मूर्खजन मोहरूपी कारागारमें, कुटुम्बरूपी बेड़ीसे खूब जकड़े हुए हैं, रात दिन बड़े-बड़े पराधीनताके दुःख उठा रहे हैं फिर भी वे उन्हींके अन्दर रहना पसंद करते, क्योंकि उन्हें भी कमसे कम समयपर खानेको तो मिल जाता, मौजके कुछ प्रसंगोंमें रहनेको तो मिल जाता । ....अरे यह अज्ञानता भरी बात क्यों की जा रही ? यह काल तो निरन्तर सिरके ऊपर मंडरा रहा, न जाने कब दबोच दे फिर भी यहाँ मौज मानते ? ये सब कष्टके कारण है, इनमें क्या रमना ? यहाँ तो आत्मज्ञान ही एक श्रेष्ठ कार्य है, दूसरा और कोई श्रेष्ठ कार्य नहीं । आत्मज्ञानके सिवाय बाकी जो काम करने पड़े सो कर तो लीजिए मगर इनमें मग्न मत होवो ।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

३८२ चैतन्यप्रतपनकी भावना

इस मनको लगावो इस त्रिलोकीनाथ सहजस्वरूपके प्रतापमें उस आत्माका परिचय करें और जब चाहे तभी दृष्टि बंद करके इन्द्रियका व्यापारबंदकरके भीतरमें ही उस ज्ञानज्योतिके दर्शन करें और यह देखें कि ये काम,क्रोध, मान, माया, लोभ आदिक विकार जो आये हैं ये सब मेरे नहीं, ये महिमान हैं। यदि ऐसी बातध्यानमें आगई तो वे अपना उपद्रव न छा पायेंगे। यह ही तो भेदविज्ञानकी कला है, अपनेको सबसे निराला जाने। तो यहां यह बताया जा रहा कि इन सबको तुम अपना आत्मा न मानों, इन देह, कषाय, इच्छा, आदिकको कलक समझो। ये मैं नहीं हूं। मैं तो बस यहां सब कुछ देखन जाननहार रहूं। जैसे सड़क में चलते हैं तो कितने ही लोग मिलते हैं ना—बालक, वृद्ध, जवान सभी लोग मिलते हैं, पर वहाँ किसीको देखकर आप रम तो नहीं जाते। बस देख लेते और उपेक्षा करके आगे बढ़ जाते तो जैसे यहां दूसरोंको देखकर रमनेकी बात नहीं बनती ऐसेही घरके लोग भी जिस ज्ञानीको दिख जायें, समझो वह पुरुष अपने आत्मज्ञानकी सही धुन बना पाया। कुछ लगता होगा। ऐसा कि यह कोई बात ही बात हो रही है, होने की बात नहीं है तो ऐसी बात नहीं तबही तो तीर्थंकर निर्वाणको प्राप्त हुए अनेक केवली हुए वे भी तो हम आपकी तरह जीव थे, मनुष्य थे। और और भी अनेक लोग हुए, आखिर उनका उद्धार कैसे हो गया ? तो जीवका उद्धार निश्चित है अगर रत्नत्रयका मार्ग पा ले तो। अपनेको बस आत्माको जाननेकी यह धुन लगाना चाहिए कि मैं इसे समझूं, इसकी समझमें अन्य कुछ बात समझ में न आवे तो श्रद्धा अपनी ऐसी बनायें कि हमें तो सुनना है, जानना है तब ही तो ज्ञान बनेगा। वही बात सुन-सुनकर कभी ज्ञान बनता है और पहले से ही कठिन जानकर एक रईसी जैसी छांटे तो उसे आत्मज्ञान नहीं हो सकता। कल्याणार्थीको इस आत्मज्ञानकी ओर एक विशेष प्रयत्न करना चाहिए।

वर्णाद्यैः सदितस्तथा विरहितो द्वेधास्त्यजीवो यतो नामूतोतत्वमुपास्य पश्यति जगज्जीवस्यं तत्त्वं ततः।
इत्यालोच्य विवेचकैः समुचितं नाव्याप्यतिव्याप्ति वा व्यक्तं व्यज्जित जीवतत्त्वम चलं चैतन्यमालम्ब्यताम् ।४२।

३८३—आत्मस्वरूपकी दृष्टि तजकर बाह्यार्थ के आलम्बनमें हितकी असंभवता—

जगत में कोईभी बाह्य पदार्थ इस जीवको आश्रय लेने योग्य नहीं है बाह्य पदार्थोंके उपयोगका रमाना, फसाना इस जीवके भलेके लिए नहीं है। युक्तिसे सोच लो, अनुभवसे सोचलो अब तक जीवने क्या किया इन पञ्चेन्द्रियके विषयभूत साधनोंमें ही अपना उपयोग रमा रमाकर अपने आपको कायर बना लेता। जरा—जरासी बातों में हर्ष होना, खेद होना, ये कायरताके लक्षण है या वीरताके? सो यह कायरता देखो कैसी बीत रही जीव में। रंच बात हुई तो हर्ष माना, रंच बात हुई तो खेद माना। इसने वास्तव में किया किया ? इसने किया पर पदार्थोंका विषयकरण द्वारा आलम्बन। अब क्या करना चाहिए ? भाई इन पर पदार्थोंका आलम्बन छोड़ो और एक निज पदार्थका आश्रय लो। अच्छी बात। लो आश्रय। अरे आश्रय कैसे मिलेगा ? पहले जीव तत्त्वको पहिचाने कि जीव क्या? उसका लक्षण जान लें। हाँ तो लक्षण हम जानें क्या ? जाने क्या भाई जो देहवाला है, नारकी है, तिर्यञ्च है, मनुष्य है, देव है, जो पर्याप्त हे, अपर्याप्त है, एकेन्द्रिय दो इन्द्रिय आदिक ये सब जीव है, अच्छा अच्छा अब हम जान गए।र्य आचादेव समझाते है कि अभी तुम कुछ नहीं जाने। समझो परखो जीवका लक्षण क्या है ?

३८४ अव्याप्ति अतिव्याप्ति असंभव दोषसे रहित लक्षणकी निर्दोषिता—

पहले तो यह ही जानेकि यही पहिचान कर सकतें वह लक्षण कैसा होना चाहिए ? यह बात

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

चल रही हैं जीवको पहिचाननेके प्रकरणमें उपयोग लगाकर सुनोतो कठिन न मालूम होगा और कुछ कठिन हो तो उस कठिनसे बचकर रहना ऐसी बात बनाकर क्या कभी समझी जा सकती है बात ? इस जीवके लिए जगतमें कुछ भी कठिन न जानना। सर्वज्ञ बनता है तो यह ही जीवतो बनता है, इसी की तो कला है। जब अपने आपकी बात है तो समझना कैसे कठिन होगी ? यहाँ बतला रहे हैं जीवका यथार्थ लक्षण, जिससेकि जीवकी पहिचान बने। तो देखो पहिचान उस चीजसे बनेगी जो सही हो। झूठी पहिचानसे जीवकी पहिचान नहीं हो सकती। तो वही तो कहा जा रहा है कि सही बात है यह तुमने कैसे जाना ? यह लक्षण निर्दोष है यह तुमने कैसे जाना ? तो सुनो। सही पहिचानकी तरकीब यह है कि उसमें यह देख लो कि जिसकी पहिचान कही जा रही है वह पहिचान उस सबमें मौजूद है या नहीं ? अगर सबमें मौजूद नहीं है, कुछ में मौजूद है कुछ में नहीं तो वह सही पहिचान नहीं कहलाती। जैसे कोई कहे कि भाई हम पशुओंको नहीं जानते कि कैसे होते हैं पशु ? जरा पहिचान तो बताओ जिससे हम समझ जायें ऐसे होते हैं पशु। तो उसने कहा भाई पशुओं की पहिचान सींग है। जहाँ सींग मिले जो जानलो पशु। तो अब वह देखने चला जहाँ सींग हों—सो पशु तो उसने देखा-चूहा बिल्ली, कुत्ता, गधा, घोड़ा आदि, मगर जब इनके सींग न दिखे तो कहा—ये पशु नहीं। तों बतावो पशुकी पहिचान सींग कहना गलत रहा कि सही ? गलत है, क्योंकि यह लक्षण सभी पशुओंमें घटित नहीं होता। यह कहलाता है **अव्याप्ति दोष**। अ मायने नहीं, व्याप्ति मायने रहना, मायने जिसकी पहिचान करायी जा रही उसमें थोड़ेमें उसे कहते अव्याप्ति। कोई ऐसा आदमी आया जो कहताकि हमको गायकी पहिचान बताओ, गाय कैसी होती है ? तो उसने कहा देखो—गायकी पहिचान है सींग। जहाँ सींग सो गाय। अब वह पहिचानने चला। बकरी को देखा तो कहा यह गाय है, भैंस देखा तो कहा यह गाय है। भैंस देखा तो उसे भी कहा कि यह गाय है। अब उसी ढंगसे वह देखने चला तो देखो बहक गया कि नहीं ? क्यों बहका कि उसकी पहिचान सही नहीं, क्योंकि सींग गायके अलावा और बहुत से जीवोंके भी पाये जाते। इसे कहते हैं **अतिव्याप्तिदोष**। लक्षण के दोषको बात कह रहे याने लक्ष्य से भी अधिकमें रहना, अलक्ष्यमें रहना, तो यह पहिचान ठीक नहीं हुई। अच्छा, कोई कहे कि भाई हमें आदमीकी ही पहिचान बता दो। हम झट जान जायें कि आदमी है, तो वह बोलाकि आदमी की पहिचान है सींग। वह देखता है तो सींग किसी मनुष्य के नहीं दिखते तो बताओ यह लक्षण बताना सही रहा कि गलत ? सही तो न रहा क्योंकि वह लक्षण एक भी आदमीमें नहीं मिल रहा। जिसकी पहिचान बता रहे उसमें एकमें भी नहीं। इसको कहते है असम्भव दोष। मायने पहिचान वही सही हैं जिसमें अव्याप्ति, अतिव्याप्ति और असम्भव दोष न हों।

३८५ वर्णादिक रागादिक जीवका लक्षण न हो सकनेका कारण

अब ऐसी ही पहिचान बताओ जीवकी जिसमें न अतिव्याप्ति दोष आये न अव्याप्ति, मायने जीवकी वह पहिचान सबमें मिले। कोई जीव खाली न रहे। अच्छा और देखो इतनी ही बात नहीं ऐसी पहिचान बताओ जीवकी जो जीवके अलावा अजीवादिकमें हों ही नहीं। तो हम मानेंगे सही बात और देखो—कहीं ऐसी बात न धमक देना कि वह पहिचान जीवमें एकमें न मिले तो तीन दोषोंको बताकर जीवकी पहिचान बताओ कि जीव कहते किसे हैं ? अच्छा एक भाई साहब आये तो बोलेकि हम बताते हैं जीवकी पहिचान। हाँ बतलावो। जीवकी पहिचान है रागादिक भाव। जो प्रेम करे द्वेष करे, विचार करे वह कहलाता जीव। जो खावें—पीवे, बैठे उठे उसे कहते हैं जीव, माने जिसमें

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

रागद्वेष पाये जायें उसका नाम है जीव। बतलावो सही कह दिया ना उसने? सही नहीं कहा, गलत है, क्योंकि रागद्वेष मोह ये सब जीवोंमें नहीं मिल रहे। भाई किसमें नहीं मिल रहे? सिद्धमें नहीं मिल रहे। वह कहता है कि तुम्हारी यह झूठ बात है। हमें तो टटोलकर बता दे कि ये हैं सिद्ध इनमें राग नहीं, तो हम मानेंगे। अरे सिद्धमें टटोलकर नहीं परीक्षा करना है। यहाँ ही समझ लो कि जब जगतके इन जीवोंमें किसीमें राग ज्यादह किसीमें कम। किसीमें और कम? जिसमें ज्ञान बढ़ रहा उसमें राग कम है, जिसमें और अधिक ज्ञान बढ़ा उसमें तो और अधिक राग कम हो गया। इस तरह ज्ञानके बढ़ते-बढ़ते कोई जीव ऐसे भी होते कि जिनके राग बिल्कुल नहीं होता। अच्छा और राग न रहे बिल्कुल तो ज्ञान कितना बढ़ जायगा? पूरा। अच्छा यह भी जान लो, और यह बताओ कि जब राग राग रहा नहीं, ज्ञानबल बढ़ गया तो वह शरीर कब तक रहेगा। नया शरीर तो न मिलेगा। हाँ नया शरीर तो न मिलना चाहिए, क्योंकि नया शरीर मिलता है रागवश। तो नया शरीर न मिलेगा तो बस जान गए कि यह है सिद्ध। जिसको नया शरीर मिले नहीं, राग रहे नहीं, ज्ञान पूरा हो उसे कहते हैं सिद्ध प्रभु। देखो उन सिद्धप्रभुमें राग तो नहीं है। जो कुछ कहा हो कि वर्णादिक रागादिक कषायादिक कम हों सो जीव, यह पहिचान सही तो न रही।

३८६—अमूर्तपना जीवका लक्षण न होनेका कारण—

अब दूसरा भाई उठा, वह बोला—बताओ जीव क्या है? तो देखो जीव वह है जिसमें रूप नहीं, रस नहीं, गंध नहीं, स्पर्श नहीं। देख लो अपने मनमें। आत्मामें रूप है क्या? रस है क्या? गंध है क्या? नहीं है। तो देखो यह बात ठीक है क्या? जिसमें रूपादिक न हों वह जीव है। याने जो अमूर्त हो सो जीव है। अमूर्तिक कहते हैं रूप, रस, गंध, स्पर्श न होनेको। अब बोलो कोई हमारी बातमें फर्क डाल सके तो। ऐसा एक गर्वके साथ एक भाई ने कहा। तो आचार्य बतलाते हैं कि सुनो-सुनो क्या कह रहे हो तुम कि जिसमें रूप, रस, गंध स्पर्श नहीं सो जीव याने अमूर्तिक हो सो जीव। अब तुम अपनी बातपर डटे रहना, फिसलना नहीं, क्या बोल रहे कि जो अमूर्तिक है सो जीव। अच्छा चलो, तुम्हारे जीवमें यह बात तो छट गई। बोलो धर्म द्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य, कालद्रव्य ये अमूर्त हैं कि नहीं? हाँ अमूर्त तो हैं? कोई कहे कि नहीं-नहीं अमूर्त नहीं, हमें तो आकाश नीला-नीला दिख रहा। हमें तो खूब दिख रहा। यह नीला है। अरे भाई आकाश नीला नहीं होता। अरे बाबा दिख तो रहा। वह दिख यों रहा कि आँखें जहाँ तक देख पाती। वहां तक तो देखती है और आँखोंसे देखनेका जहाँ क्षेत्र नहीं रहा वहाँ कुछ न दीखा, कुछ न दीखा तो उसका रूप अंधेरा है। नीला नहीं, अंधेरा नहीं, काला नहीं, किन्तु आँखकी कला ऐसी है कि जहाँ तक दिखे सो दिखे और जहां कुछ न दिखा वहाँके बाद नीला-नीला आ गया, एक बात। दूसरी बात कह सकते हैं कि मेरु पर्वतके चोटीके ऊपर एक विमान है, वह इस रंगका है कि जिसकी आभासे यहाँकी चीजें इस तरह दिख जायें। कुछ भी हो आकाशमें रूप नहीं है। अब तक इस बातमें अड़ रहे थेकि अमूर्त है सो जीव। अब देखो धर्म, अधर्म, आकाश, काल ये भी तो अमूर्त हैं। तो क्या ये भी जीव हो गए? ये जीव तो नहीं हैं। तो फिर यह लक्षण कहना सही तो न रहा कि जीवका लक्षण अमूर्त हैं। क्यों सही न रहा? इसलिए वह लक्षण तो जीवके अतिरिक्त अन्य चीजोंकी में पाया गया।

३८७—सदोष लक्षणसे लक्ष्यका पहिचान न हो सकनेकी स्वीकारता—

अब जैसे यहाँ कहा मानो कि अमुकचंदको बुला लावो। कहा कि अमुकचंदकी पहिचान क्या? ....अजी जो नंगे सिर बैठे हैं वे हैं अमुकचन्द। अब वहाँ नंगे सिर वाले कई लोग थे, इसलिए वह भी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सही लक्षण न बना। कोई कहे कि फलाने मोहल्लेवालेको बुला लावो। .... भाई उनकी पहिचान क्या ? .... टोपी लगाये है। .... अब उनमेंसे बहुतसे लोग टोपी नहीं भी लगाये थे तो वे छूट गए ना। जो लक्षण सबमें मिले अन्यमें याने अलक्ष्यमें न मिले वह लक्षण सही कहलाता है। इस तरहसे प्रकरणमें अपनी अपनी बात बोल बोलकर सब थक गए और आचार्यदेवसे बोले कि अब तो आप ही जीवकी सही पहिचान बतावो।

३८७—जीवके निर्दोष लक्षणका आख्यान—

आचार्य महाराज कहते हैं कि सुनो-जीवको लक्षण है चैतन्य याने एक ऐसी शक्ति कि जिसे चेतता है, जानना है देखता है, समझता है। एक विलक्षण पदार्थ है यह। विलक्षण तो सभी होते हैं, क्योंकि सभी पदार्थ अन्य पदार्थोंसे जुदे है। क्या धर्मद्रव्य विलक्षण नहीं जो धर्मकास्वरूप है वह अन्यमें है क्या ? अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल ये विलक्षण नहीं है क्या ? विलक्षण तो सभी द्रव्य होते मगर यह कितना पूज्य महत्त्वशाली है कि यह सभीको जानता है। ऐसी महिमावाला जीव है हम आपके देहमें, घट—घटमें, कैसा महिमाशाली, पवित्र चैतन्य स्वरूप लिए है और इसकी क्या से क्या दशा हो रही है। क्या दशा हो रही ? दुःखी हो रहा। कोई कहे कि यह तो अपनी योग्यतासे दुःखी होता, तो जीवकी योग्यता है तो बताओ, क्या योग्यता अहेतुक है अहेतुक हो तो वह कभी मिट नहीं सकती। मिटता वह है जो नैमित्तिक है। जो सहेतुक है वह मिटेगा, जो अहेतुक है, निरपेक्ष है, स्वभावकी चीज है वह कभी न मिटेगा। आप कहेंगे कि सिद्ध भगवान तो क्षण—क्षणमें नये नये केवलज्ञान आनन्दसे परिणम रहे हैं। उत्तर—भाई इस प्रसंगमें परिणमनेका अर्थ है विषमता होना। अर्थात् ऐसा परिणमन यह न था और हो गया, और कुछ होना यह सहेतुक होता है अहेतुक नहीं। वहाँ और कुछ तो नहीं हो रहा, केवलज्ञान, केवलज्ञान चल रहा। जिस क्षणकी जो पर्याय है वह उसी क्षणमें है, मगर अहेतुक परिणाममें विषमता नहीं आया करती है। जो जो पर्याय अनैमित्तिक हैं उनमे अन्यथापन नहीं आया करता। तो हम आप लोगोंमें एक चैतन्यशक्ति है, चित्स्वभाव है, जिसका अर्थ जानना समझना है। यहा चिद्वर्तन नहीं हो रहा और बड़ी गड़बड़ बातें हो रही। कभी क्रोध, कभी मान, कभी कुछ, कभी कुछ यह सब कुछ हो रहा है कर्मोदय निमित्त पाकर। इन दोनोका अनादि सम्बंध है कर्म और अशुद्धताका तभी आ रहा है ऐसा, लेकिन कोई पूछे कि इस कर्मोदयका असर जीवमें ही क्यों होना मानते ? कर्मोदयका निमित्त पाकर यह जीव ही क्यों भ्रान्त हुआ ? यह देह क्यों नहीं भ्रान्त हुआ ? तो भाई देहमें योग्यता नहीं जीवमें योग्यता है। तो देखो योग्यता माने बिना भी उत्तर नहीं आया और निमित्तसन्निधान माने बिना भी उत्तर नहीं आया। किसका ? विकारका। तो क्या हालत हो रही है ? आज तो यह हालत जो है यह नैमित्तिक है। ज्ञानप्रकाश बने तो ज्ञानबल द्वारा इस हालतको दूर किया जा सकता है।

३८८—सदाके लिये दुःख मिटा देनेवाले उपायका चिन्तन—

देखो काम वह करें जिससे हमेशाके लिए दुःख मिट जाय। बोलो यह बात पसंद है कि नहीं ? बात तो पसंद है। काम वह करें जिससे सदाके लिए दुःख मिट जायें। कोई कहे कि यह ही तो काम कर रहे। देखो मैने फैक्ट्री खोल रखा है तो इसीलिए ना कि जिससे दुःख सदाके लिए मिट जायेंगे। अरे उसमें दुःख ही दुःख है। अच्छा और काम बताओ ऐसा कि जिस कामके कर लेनेसे हमेशाको दुःख मिट जायें। अजी अपनी समाजमें लीडर बन जावें अथवा राष्ट्रका कोई बड़ा नेता बन जावे,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तो ठीक है, मानलो हो गए समाजके लीडर, हो गए देशके कोई महान नेता, पर उससे जिन्दगी भरको दुःख मिट जाएगा क्या ? अरे वहाँ पर कितनी कितनी ही वेदनायें बीच—बीच आती रहती हैं। अच्छा और कोई बात बताओ जिससे दुःख मिटता। भाई दुःख मिटनेकी बात अनेक नहीं है। जो उनमें छाँटकर कहा जाय कि यह काम करलें तो दुःख मिट जाएगा। दुःख मिटनेका उपाय केवल आत्माका जो सहज स्वरूप है उस रूप अपना विश्वास बन जाय कि मैं जो यह हूं, यह ज्ञान बन जाय, इसीकी धुन बन जाय, यह उपाय है जो सदाके लिए संकट छूट सकते हैं, जिनका दिल बाह्य पदार्थोंमें है उनको विश्वास नहीं हो रहा। यह तो कुछ भी नहीं कहा जा रहा। क्यों नहीं विश्वास हो पा रहा, क्योंकि इस समय वे संसारिक सुखमें मस्त है। सुखमें आत्माकी सुध नहीं होती। हाँ दुःखमें तो भला एक बार प्रायः सबको भगवानकी याद आ ही जाती है। तो सुखसे तो दुःख अच्छा हुआ ना। अगर मान लो अच्छा नहीं मान सकते तो कमसे कम समान तो मान लो। एक निगाह से तो यों समझ लेना चाहिए कि सुखसे दुःख कहीं अच्छा है और एकान्ततः न समझना यह बात है प्रसंगकी। लेकिन इतना भी समझनेको चित्त नहीं चाहता। तो इतना तो जरुर मान लीजिए कि सँसारमें सुख दुःख दोनों एक समान हैं, इनमें छटनी न करें कि मुझको सुख मिले और दुःख मिटें। यहाँ का सुख भी दुःख है और दुःख भी दुख है। यों तो जब स्वप्न आता और स्वप्नमें आप हीरा, जवाहरात, रत्नोंका ढेर पा जाते तो वहाँ कितना खुश होते। मगर वहाँ कुछ सत्य है क्या ? सत्य नहीं है। जरा सी निन्द्रा भंग हुई कि सब खेल खतम। वहाँ यदि स्वप्न देखने वाला अविवेकी है तो वह तो जगानेवालेसे झगड़ भी जाता है। और यदि कोई विवेकी हुआ तो वह समझता कि अरे मैं व्यर्थ ही स्वप्नमें सुख मान रहा था, वह तो कुछ भी न था। ऐसे ही यहाँ भी जीवोंके प्रकार हैं। कोई तो परिग्रहके पीछे खूब लड़ाई करता है, लड़ करके भी लेता है और कोई यों सोचता है कि अरे परिग्रह चला गया तो क्या चला गया, मेरा तो कुछ था ही नही। तो जब इन असार बाह्य पदार्थोंमें उपयोग न फँसेगा तो यह अच्छे ढंग पर आयगा, शान्तिके मार्गपर आयगा, उसको यह समझमें आयगा कि जीवका स्वरूप चैतन्य है और इस चैतन्यस्वरूप अंतस्तत्त्वकी श्रद्धा होने पर ही सँसारके ये सारे क्लेश दूर हो सकते हैं।

३८९—एक अन्तस्तत्त्वकी उपासनामें सर्वमंगलरूपता का अभ्युदय—

भैया ! चिद्विलासका एक ही काम जितना करते बने करें, मगर श्रद्धामें च्युत न होवें। मैं सहजचैतन्यस्वरूप मात्र हूँ। अन्य कुछ नहीं हूँ। अन्य कुछ यहाँ क्या देखो—मुझमें एक कर्मरस प्रतिविम्बित हो रहे हैं और उनकी छायासे यह ज्ञान तिरस्कृत हुआ है, मगर यह ज्ञान, ज्ञानी पुरुष चरित्रमोहसे दबे दबेमें भी यह सोच रहा कि मैं तो यह हूं, यह नहीं। तो यह जीवके लक्षणकी बात चल रही है कि जीवका क्या लक्षण है जिससे पहिचान करके एक इस जीव राजाकी ही हम उपासना करें। तो जीवका लक्षण कहा गया चैतन्य अन्य कुछ नहीं, रागादिक भाव जीवके लक्षण नहीं। तो कहते हैं कि रागादिक भाव संसारी जीवके लक्षण हो जायेंगे। हाँ सँसारके तो लक्षण हैं मगर संसार अवस्थामें भी जीवका लक्षण नहीं। सँसारी लक्षण तो है राग होना, पर संसारी अवस्थामें भी जीवका लक्षण राग नहीं, क्योंकि जो जिसका लक्षण है वह कभी मिटता नहीं। जीवका लक्षण अगर यह राग बन जाय संसार अवस्थामें तो न यह राग मिट सकता, न सँसार मिट सकता। संसारका लक्षण है राग पर संसार अवस्थामें रहनेवाले इस जीव द्रव्यका लक्षण राग नहीं। हमें तो यही पहिचानना जीवका लक्षण। हम मुक्त

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जीवोंमें जीवका लक्षण पहचान कर क्या करें ? मुक्त जीवोंका लक्षण उनकी महिमा जाननेका प्रयोजन तो यह है कि हम अपने अंतःस्वरूपका प्रताप समझ सकें : निश्चय उपासना मुक्त जीवकी, अन्य जीवकी कोई कर ही नहीं सकता, करना तो हमें उपासना है ना और हम हैं संसारमें। तो सन्सार अवस्थामें जीवके लक्षणके पहिचाननेकी बात कही जा रही है। देखो देखो बीचमें आये हुए इस अवस्थामें न अटक कर जीवका जो सहज लक्षण है, चैतन्य स्वरूप उस तक निःशंक पहुंचो। ऐसे पहुचो जैसे हड्डीका फोटो लेने वाला एक्सरा यंत्र न तो वस्त्रोंमें अटकता, न रोममें अटकता, न चाममें अटकता, न खून, माँस, मज्जा आदिमें अटकता, सीधे हड्डीका फोटो ले लेता है। ऐसे ही यह ज्ञान दृष्टि है, इस तरह निशंक ले जावो ज्ञानको अन्दरमें कि जो देहमें न अटके, कषायमें न अटके और एक सहज निर्विकल्प चेतन स्वरूप को ज्ञान विषय करले। ज्ञानमें जब यह सहज चैतन्य स्वरूप, सहज ज्ञान स्वरूप भाव, यह ज्ञानप्रकाश जब ज्ञानमें आता है तो ज्ञान वहाँ ज्ञान ज्ञेयकी एकता हो जानेके कारण जानने वाला ज्ञान क्या जानेगा ? ज्ञान और ज्ञेयकी एकता होनेके कारण जो एक अद्भुत आनन्द प्रगट होता है उस आनन्दका अनुभव करके यह जीव जो सम्यक्त्वका प्रकाश पाता है, उस प्रकाशके कारण अब यह किसी भी पर तत्वमें बहकता नहीं है। जानो कि मैं जीव हूं। मेरा चैतन्य स्वरूप मेरा सर्वस्व है। यही सर्व आनन्दका निधान है।

जीवादजीवमिति लक्षणतो विभिन्नं, ज्ञानी जनोऽनुभवति स्वयमुल्लसन्तम्।
अज्ञानिनो निरवधिप्रविजृम्भितोऽयं, मोहस्तु तत्कथमहो बत नानटीति। ४३।

३९० जीवका अनेक अपेक्षाओंसे परिचय होनेपर परमार्थ जीवस्वरूपके अनुभवकी सुयोग्यता—

कलके कलशमें यह जान लिया होगा कि जीव और अजीवका लक्षण परस्पर भिन्न है। अजीव का लक्षण अचेतना है, जहां चेत है चेतना है वह जीव है। जहां चेत नहीं, चेतना नहीं-प्रतिभास नहीं वह अजीव है, मुख्यतया शरीरसे इस जीवको न्यारा परखना है, यह तो बात है ही, पर मुख्यतया पुद्गल कर्मके उदयसे उत्पन्न हुआ जो उपयोगमें झाँकी हुई, अंधेरा हुआ जिस अंधेरेसे दबकर यह जीव उसे अंधेरे रूप अपनेको मानता है या उस अंधेरेके, अनुरूप क्षोभ मचाता है। उस अंधेरेसे भी अपनेको न्यारा समझ ा, यह है एक प्रखर भेद विज्ञान। तो जान लिया जीव चैतन्य मात्र है और अजीव सब भिन्न-भिन्न हैं। जीवके बारेमें जिसको हर तरहका परिचय है उसके भेदविज्ञान और विशद होता है, जैसे कोई नया आदमी आया और आपने उससे पूछ लिया कि भाई तुम क्या काम करते हो ? तो उसने कह दिया कि हम तो इंजीनियर हैं सर्विस करते हैं, तो बस इतना ही पूछकर वह रह गया, मन ही मन में जान लिया कि यहाँ कोई पास पडोसके किसी गांवका होगा, इतना जानने मात्रसे उसका परिचय तो नहीं बना कहाँ घर है, घरमें कितने आदमी हैं, क्या काम होता है इसका कहां—कहां सम्बन्ध है, ये सब बातें अगर और ज्ञात हों तो भला उसका अधिक परिचय कहलाया ना ? तो ऐसे ही जीवके बारे में जीवका लक्षण चेतन है, इतना भर जाननेसे स्पष्टता नहीं आती और जब यह जीव जान जायगा कि जीव कितना बड़ा है, कितने प्रदेश हैं, इसके कितने गुण हैं, इसकी क्या क्या अवस्थायें हुई, क्या क्या और हो सकती हैं, और वर्तमानमें यह जीव क्या कर रहा है, इन बातोंका परिचय हो को चैतन्यलक्षण समझकर और अच्छा ज्ञान परिचय बनता है। तो चैतन्य है जीवका स्वरूप, इतना तो सब बोल बोल देते हैं, पर मतलब क्या? चेतना क्या? ऐसी और-और बातोंमें यथार्थता न हो तो जीवके लक्षणका सुपरिचय नहीं होता।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

३९१—जीवके स्वरूपास्तित्वका यथार्थ परिचय न होनेपर जीवलक्षणके सुपरिचयका अभाव—

जैसे कोई मानता है कि यह जीव चेतन तो है, पर सर्वव्यापक है, सब जगह फैला हुआ, है और जैसे घड़ा रखा है उल्टा, तो वहाँ घड़ेके प्रदेश घड़ेमें है, आकाशके प्रदेश आकाशमें है, पर वहां घड़ा रखा है तो कहीं ये दोनों अला-अलग तो नहीं दिखाई पड़ते कि यह घड़ेका आकाश, यह आकाशका आकाश, यह जेबका आकाश । तो जैसे आकाश ये जुदे जुदे कहलाते हैं पात्रोंके भेदसे, ऐसे ही ब्रह्म तो एक है, पर जिस-जिस शरीरमें जीव है ना उसमें जो आ गया वह जुदा-जुदा जीव कहलाता। ऐसा कोई कोई लोग मानते हैं अन्यथा जब तक यह न, बतायें कि कोई कोई ऐसा मानते है तो ऐसा मान लेना होगा कि बड़ा ठीक कह रहे। आकाश तो एक है और शरीर जुदा-जुदा हैं तो इसमें जुदे-जुदेआकाश कहे जा रहे, मगर यह बात बतलावो कि आकाश एक है और घड़ा यहां धरा है मंदिरमें, और यह घड़ा उठाकर अगर यहाँ जैनबागके मंदिर में पहुचा दिया जाय तो बताओ यहाँके मंदिरका आकाश उठकर जैन बागके मंदिर तक गया या जैन बागके मंदिरका ही आकाश उस घड़के अन्दर आया ? अरे यहाँके आकाशप्रदेश यहीं है— वहाँके आकाश प्रदेश वही है, आकाश तो वस्तुतः एक है । तो इसी तरह दुनियाँमें जीव अगर एक ही होतो पहली आपत्ति तो यह आती कि अगर एक जगह किसी जीवको दुःख हो तो सभी जगहके जीवोंमें उसी जगह दुख हो जाना चाहिए जैसे बाँस एक है, यदि एक जगह हिलाया तो सब हिलता, ऐसे ही एक जीवका देह अगर दुःखी हो तो सब जगहके जीव दुःखी हो जाने चाहिए । एक बड़ा स्थूल दृष्टान्त दे रहे—जैसे मानों आपने कहा कि बाँसमें एक जगह आग लग गई तो वह उसी जगह जलता, एकदमसे सभी जगह तो नहीं जलता । जो एक चीज है उसमें यह द्वैत न बनेगा कि कुछ प्रदेशोंमें तो दुःख होवे, कुछमें सुख होवे, अन्य परिणमन होवे, बाकी प्रदेशोंमें न होवे यह एक चीजमें बनता । तो जीवका लक्षण चैतन्य है, इतना कह कर भी जब जीवके बारेमें और और तरहके परिचयोंमें झूठपना है, यथार्थता नहीं है, तो मोही चैतन्यरस कहकर भी जीवका अनुभव नहीं कर पाता ।

३९२—जीवके क्षेत्र परिचयमें भूल होनेपर जीवलक्षणके सुपरिचयका अभाव—

कोई कहता है कि देहमें जीव है, कितना बड़ा है जीव ? तो कहता है कि इतना बड़ा है जीव कि जैसे बड़का बीज । अर्थात् एक सरसोंके दानेसे भी बहुत छोटा, मगर वह बीज तो उतने बड़े बरगदके वृक्षमें निरन्तर बड़ी तेजीसे चक्कर चलाता रहे ऐसा नहीं है किन्तु यह जीव जीवके सरीरके सारे प्रदेशोंमें निरन्तर तीव्र गतिसे चक्कर लगाता है, कोई लोग तो जीवको इस तरहका अणु प्रमाण मानते हैं । और, कोई लोग कहते हैं कि जीव इतना बड़ा है कि सारे संसारमें फैला है, वह हिल डुल ही नहीं सकता । जैसे घड़ेमें खूब पानी भर दिया तो वह घड़ा अब हिल डुल नहीं सकता । ऐसे ही जीव इतना बड़ा है कि वह हिल डुल नहीं सकता । तो जीवके बारेमें अनेक तरहकी धारणायें लोगोंकी हैं जो विभिन्न धारणायें हैं । वे इतना भी बोल जायें कि जीवका लक्षण चेतन है फिर भी वे पहुंच नहीं पाते। क्योंजी, किसीने एक पहिचान कर लिया, नया आदमी है । बोला—भाई हमें ठहर जाने दो । ···हाँ ठहर जावो । ···आप क्या काम करते । ····हम एक जगह क्लर्क हैं ··· बस यदि संतोष हो गया वह नया पुरुष वहाँ ठहर गया और उसकी यह धारणा बनी कि होगा यहीं कोई पासके गाँवका, लेकिन पूरा परिचय न करनेके फलमें हुआ क्या कि वह कुछ सामान लेकर चम्पत हो गया । अब आप इधर उधर उसका पता लगाते फिर रहे तो जैसे उसका पूरा ज्ञान न करनेका यह फल सामने आया ऐसा ही फल जीव द्रव्यकी गुण पर्यायों आदिका ज्ञान न होनेपर मिलता है ।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

३९३ जीवका अनेक अपेक्षावोंसे परिचय होने पर जीव लक्षणका सुपरिचय—

देखो इस जीवमें श्रद्धा, दर्शन, ज्ञान, चारित्र और आनन्द आदिक शक्तियाँ है। तो जिसमें इतनी शक्तियाँ पायीं जायें वह जीव, और जितनी शक्तियाँ है उनकी शक्तियोंकी अवस्थायें हैं ना, जैसे जानता है, रमता है, विश्वास रखता है, सुखी होता है, तो ऐसा गुण और पर्यायोंका जो पिण्ड है वह जीव है, अच्छा भीतरका परिचय हो गया, अब क्षेत्रका परिचय करो। यह जीव असंख्यात प्रदेश वाला है, जीव है एक, मगर वहाँ गुण यह भीहै कि फैले तो फैल जाय बहुत और सिकुड़े तो सिकुड़ जाय बहुत, और चीज एक है। आपको यह उदाहरण अन्य किसी द्रव्यमें न मिलेगा। आप कहेंगें कि वाह रबड़ तो है ऐसीं चीजकि फैलावो तो बहुत फैल जाय और फिर वह बहुत सिकुड़ जाय? तो भाई वह रबड़ एक चीज कहाँ है? वह तो अनन्त परमाणुओंका पिण्ड है। जो एक हो और फैले तो बहुत फैले, सिकुड़े तो बहुत सिकुड़े, यह कला सिर्फ जीवमें ही है। धर्म, द्रव्यमें यह कला है क्या? अधर्ममें, आकाशमें है क्या? ये तो एकप्रदेशी है। जीव ही एक ऐसा अद्भुत पदार्थ हैं कि जिसमें यह कला पायी जाती है। वह जीव हैं खुद ही जिसकी चर्चा चल रही मगर उसके भी समझनेमें बड़ी हैरानी चल रही, यह कितने अंधेरकी बात है? एक पुरुष पहुचा, किसी सन्यासी से बोला—महाराज मुझे आत्माका कुछ भी ज्ञान नहीं है, ज्ञान करा दो। तो वह सन्यासी बोला—देखो तुम अमुक घाटपर चले जावो वहाँ एक मगर रहता है, वह देगा तुम्हें आत्मज्ञान। वह पहुंच गया मगरके पास, बोला मगरराज, मुझे एक बड़े ज्ञानी सन्यासीने आपके पास भेजा है। मुझे जीवका, आत्माका कुछ भी ज्ञान नहीं है सो आप मुझे ज्ञान करा दें। तो वह मगर बोला— अरे भाई ठीक है हम तुम्हें आत्मा का खूब ज्ञान करायेंगे, पर पहले एक काम करो—तुम्हारे हाथमें जो लोटा है हमें बहुत प्यास लग रही है, पहले एक लोटा पानी लाकर पिला दो फिर तुम्हें ज्ञान देंगे। तो वह पुरुष बोला—हे मगरराज तुम तो बड़े मूर्ख मालूम होते हो। तुम स्वयं लबालब समुद्रमें डूबे हो फिर भी कहते कि हमको प्यास लगी हैं। तो मगर बोला—बस यही उत्तर तो मेरा तेरे लिए है। अरे तू स्वयं ज्ञान—स्वरूप है, ज्ञानसे लबालब भरा है फिर बाहरमें उस ज्ञानकी तलाश कहाँ करता फिर रहा। यह ज्ञान क्या है? खुदके जीवकी परिणति ही तो है। यह जीव अनन्त आनन्दस्वभावी हैं, लेकिन इसकी यह दशा चल रही है। देखो किसी भी जीवके बारेमें यह समझना हो कि इस जीवके पास वास्तवमें उसका वैभव क्या है? तो उसके लिए बताया है कि मौलिक चार चीजोंको परिचय करना चाहिए अच्छी तरह से, बस आत्माका (जीव का) परिचय बहुत अच्छी तरहसे बन जायगा। तो पहले जान लेवे वे चार बातें। कौन सी हैं वे चार बातें? एक तो—यह जीव क्या है, दूसरा—कहां रहता है? तीसरा-क्या करता है और चौथा—इसके पास धरा क्या है? बस ये ही चार बातें समझना है, जीव का ज्ञान हो जायगा, तो क्या जबाब आया? जीव क्या है? गुण पर्यायोंका पिण्ड। जीव कहाँ रहता है? अच्छा बुरा जानन देखन। कुछ जीवके पास धन भी है कि नहीं? हाँ है। जीवके पास ज्ञान दर्शन आदिक शक्तियां है। तो जीवका सब ओरसे परिचय होनेपर समझो कि जीवका वह लक्षण दिखेगा जिसकी परिणगति से आत्माका विभव, आत्माका चैतन्यरस समझमें आता है। जान लिया, अजीवसे भिन्न जीवको जान लिया।

३९४ ज्ञानियोंको अज्ञानी जनोंके मोहनाट्यपर आश्चर्य

अब यह स्वयं ही स्पष्ट विकासमें, विलासमें ज्ञान प्रतिभासकी दृष्टिमें है। इसे ज्ञानी जनो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अनुभव करते हैं, ज्ञानीने अनुभव किया कि मैं हूँ और थोड़ा अपनी पहली अज्ञान दशाका ख्याल किया तो उसे अचरज होता है कि अहो, इसका स्वरूप तो चेतन है, जिसको सही जानना परखना है उसको यह मोह कैसे बनेगा ? ज्ञानी पुरुषको आश्चर्य होता है कि अरे मोही जनोंको यह भ्रम क्यों हो गया ? जैसे एक आदमीको यह भ्रम हो गया कमरेमें आनेपर कि रस्सीको साँप समझ बैठा, कुछ अंधेरासा भी हो गया था। दूसरा बालक खूब अच्छी तरह समझ रहा था कि यह रस्सी पड़ी है तो इधर एक बालक तो भ्रम होनेसे घबड़ा रहा और एक बालकको आश्चर्य हो रहा कि अरे यह तो देखो कैसा व्यर्थ ही घबड़ा रहा। तो जैसी दशा यहाँ इन दो बालकोंको है ऐसी ही दशा यहांके मोहीजनोंकी और ज्ञानी पुरुषोंकी है। तब ही तो जरा जरा सी बातमें मोही घबड़ा रहे, मोह ममताका दुःख भोग रहे, पर ज्ञानी पुरुष जानता है कि अरे यह सब कर्मलीला है, यह सब कर्मोदय झलक रहा है। उस रूप विकल्प बनाकर मैं क्यों अपनेको दुःखी करूं। ज्ञानी पुरुषको मोही जनोंकी क्रियायें देखकर बड़ा आश्चर्य होता है। वह आश्चर्य करता कि अरे ये मोही जन इस तरहका मोह नृत्यमें क्यों नाच रहे ? जैसे कोई मूर्ख व्यक्ति हठ कर जाय कि २ और २ मिलाकर तो ६ होते हैं, तो उसकी इस हठपर तो लोग कुछ हँसेंगे और कुछ आश्चर्य भी करेंगे—अरे क्या हो गया इसके दिमागमें। ठीक ऐसी ही बात मोहियोंकी और ज्ञानियोंकी है। मोह जन पर द्रव्योंके संग्रह विग्रहमें, उनकी सम्हाल करनेमें, उनके पीछे रात—दिन कुटने पिटनेमें ही खुश होते हैं, मिथ्यात्वभरी बातोंमें ही अपनी वीरता समझते हैं, पर ज्ञानीजन उनसे विरक्त रहनेमें ही खुश रहते हैं। अज्ञानी जनोंकी मोहभरी वृत्तियाँ देखकर वे बड़ा आश्चर्य करते हैं, ज्ञानी पुरुष अपनेको जानता कि मैं चैतन्यस्वरूप हूँ। मेरा काम केवल जानन भर है, मोह करना, विकल्प करना, ममता करना नहीं, कषाय करना नहीं। ये सब अज्ञानभरी चेष्टायें हैं। ये दशायें मेरी कुछ नहीं लगतीं। मैं तो अपने स्वरूपका ही अनुभव करूं।

अस्मिन्ननादिनि महत्यविवेकनाट्ये, वर्णादिमान् नटति पुद्गल एव नान्यः।
रागादिपुद्गलविकारविरुद्धशुद्ध—चैतन्यधातुमयमूर्तिरियंच जीवः ॥ ४४ ॥

३९५—मोहका नाट्य होनेके स्थलमें विशुद्ध पात्रके निरखनेका पौरुष—

इससे पूर्व छंदमें यह बात आयी थी कि ज्ञानी जीवको यह आश्चर्य और खेद होता है कि इस जीवके उपयोगमें यह मोह नच क्यों रहा है ? कैसे नच रहा ? क्यों नच जाता ? जब पुद्गल कर्म जुदा है, जीव जुदा है, पुद्गलका पुद्गलमें परिणमन हो रहा है। वह हो रहा है और जीवका उपयोग स्वरूप है. तो इसकी स्वच्छतामें वह कर्मका नाच दिख रहा है, अब यह क्यों माना जाता है कि मैं नच रहा हूं, यह मेरा नाच है, यही मैं हूँ, यह मेरा निज है, यही मैं हूँ, यही मैं हूँ, यही कर रहा हूँ, । ज्ञानमें, विकल्पमें, पर रूपसे क्यों परिणम रहा हूं ? ज्ञानीको खेद और आश्चर्य था। अब यहाँ यह बात कह रहे हैं कि वह नच रहा है तो नचो, किन्तु इस महान अज्ञानके नाटकको मैं अपना कैसे मानूं ? वास्तवमें नच तो रहे हैं ये वर्णादिकवाले पुद्गल। जरा इस बातको इस दृष्टान्तसे समझो कि एक दर्पण है, दर्पणके सामने हाथ किए हुए हैं। हाथका हिलना हुआ है तो दर्पणमें प्रतिविम्ब भी हिलता हुआ झांकीमें आया ना ? दर्पण अजीव है, सो थोड़ा इस बातमें कमी है दृष्टान्तकी तुलनामें कि एक दर्पणके प्रतिविम्बको यह मैं हूँ, ऐसा मानकर दर्पण क्षोभ नहीं कर पाता। हाँ मालिनता अवश्य आ गई। पर जानने वाला दूसरा आत्मा जान रहा है कि दर्पणमें प्रतिविम्ब है तो सामने आयी हुई चीजके अनुरूप प्रतिविम्ब है। यह द्रव्यका स्वतः काम नहीं। दर्पणका काम तो अपनी स्वच्छतामें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्रवर्तनेका है, पर उसमें योग्यता है ऐसी, स्वच्छता है ऐसी कि निमित्तभूत पदार्थका सन्निधान पाकर यह अपनी स्वच्छताके विकारमें आ गया। यह ही बात हम आप सब जीवोंके साथ चल रही है कि पहले बाँधे हुए कर्मोंका उदय आया, उस उदय कालमें, उस अनुभागका रसका प्रभाव निश्चयसे कर्ममें पड़ा, क्योंकि कर्मोंका वह अनुभाग है, पर ऐसे फूटे हुए अनुभागका इस उपयोगमें झाँकी हो, अंधेरा छाया और उस समयमें अज्ञानी जन मानते हैं कि मैं यह हूँ, अपनी सुध नहीं, जिसको सुध नहीं उसकी स्थिति कर्मरूप अपनेको मानने की होती ही है। तो इसपर खेद प्रकट करके यह बतला रहे हैं कि वहाँ वास्तव में नृत्य तो कर्मका हो रहा है, उन कर्मके नृत्यकी यह झाँकी चल रही है, और उस झाँकीके कारण इस में भीतरमें ज्ञान विकल्प जगा है तो वह जो ज्ञानका एक मिथ्यात्व रूप विकल्प है, वह विकल्प इस जीव को परेशान किए हुए है। कर्म तो पर द्रव्य है, उसने नहीं किया इसको परेशान। यह निमित्तनैमित्तिक योग से जीवमें विपरिणन हो रहा है।

३९६ आत्मस्वरूपके बोध विना उपयोगमें कर्मनाट्यके विचित्र प्रतिफलनका प्रभाव—

जिसने अपने क्षेत्रकी वर्तनाकी बात नहीं जानी. अपने आत्माका वास्तविक निरपेक्ष स्वरूप क्या है यह नहीं समझा वह बाहरी बातोंमें कितनी ही चतुराई करे उस चतुराईसे कुछ लाभ नहीं होनेका। चतुराई किसको दिखाना ? लोकमें ऐसा मिथ्या अंधेरा है कि लोग यह चाहते हैं कि मैं दूसरोंको जता दूँ कि मैं बहुत समझदार हूँ, सुहावना हूँ, ढंगका हूँ और मेरे बराबर दुनियामें बहुत कम लोग हैं, अपनी अपनी हृदमें सब जीवोंके चित्तमें यह बात जग गई, क्योंकि कर्मका उदय है ना सबके, कभी अपने को हीन भी मान लिया मगर चतुराईमें कोई अपनेको हीन नहीं मानता। कोई एक छोटा भिखारी भी अपनी कलासे जब किसी ध्वनिसे दो एक कपड़े मांग ले, भोजन पा ले तो वह अपनेको बड़ा चतुर समझता है। कोई भी जीव हो, चतुराईमें कोई अपनेको कम माननेको तैयार नहीं होता, हाँ कुछ ज्यादह अन्तर हो तो भले ही चतुराईमें अपनेको कम माने। मगर भीतरमें सबके मनमें यह कला पड़ी है कि मैं समझदारीसे काम करने वाला हूँ, यह सब क्या है ? यह सब कर्मका नाट्य है जीव तो स्वयं अपने आप स्वरूपतः निरपराध है, पर यह नाट्य हो रहा है जो कुछ तो इसमें वर्णादि वाला पुद्गल ही नच रहा है क्योंकि मैं तो रागादिक विकारसे जो पुद्गलके विकार हैं उनसे तो मैं एक दम निराला हूँ। एक द्रव्यका दूसरे द्रव्यमें अत्यन्ताभाव है। मैं तो चैतन्य धातु रूप हूँ, मेरेमें से जो निकलेगी सो चेतनकी बात निकलेगी, सो चेतनकी बात तो निकलेगी, अब उसमें अगर पुद्गल विकारकी, झाँकीका सम्पर्क बना है तो यह प्रतिविम्ब बन गया। जैसे उजेला हो गया, बल्ब जल गया। बतलावो उस प्रकाशका रूप क्या है ? हरा बल्ब लगा तो हरा प्रकाश हो गया नीला कागज या कपड़ा लगा तो नीला प्रकाश हो गया। उस प्रकाशमें भेद करें क्या? प्रकाश लाल होता है या नीला होता है ? अरे प्रकाश तो एक तेज है। अब उसके साथ नीलेका सम्बंध हो गया तो क्या वहाँ जैसे भेद कर सकते हैं कि प्रकाशमें नीला पन नहीं, प्रकाशमें तो केवल एक ज्योति है। यह नीलापन तो उपाधिसे है, ऐसे ही अपने ज्ञानमें भेद करना कि मेरे ज्ञानमें जो यह विकल्प चल रहा, यह अच्छा, यह बुरा, इसने यह बुरा काम किया, धर्ममें बाधा दी, इसने धर्म की साधनाकी, अमुक यों अच्छा बुरा, प्रिय, अप्रिय यह जो जाननेकी बात अपनेमें चल रही तो यह तो कर्मविपाकरसकी लीलासे हो रहा है, पर जो केवल मात्र जानन है सो तो ज्ञान है और बाकी यह सब रागरस है ऐसा भेद कौन कर सकता ? सम्यग्दृष्टि, ज्ञानी पुरुष, जिसने कि अपने आत्माका निरपेक्ष स्वभाव बराबर परखा है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

३९७ अज्ञान भावसे हटकर ज्ञान स्वभावमें उपयुक्त होनेपर ही शान्तिकी संभवता—

जो सहजसिद्ध अपने ज्ञानको नहीं समझ सकता। उसको उपमा दी है हाथीके भोजनकी। हाथीके सामने हलुवा रखा है। घास भी रखी हो तो वह कहीं हलुवाको अलगसे उठाकर अलगसे स्वाद न लेगा, वह तो उसे घासमें लपेटकर खा जायगा इसी प्रकारकी बात ज्ञानीकी ज्ञानरसकी बन रही। जान रहा, प्रतिभास कर रहा। पर उसका जो कर्मविपाकरस लगा है उससे विविध हो जानेसे यह अपने शुद्ध विकाशको प्रकट नहीं कर पा रहा है। इस जीवनमें करनेका काम तो भीतर यह है, लेकिन प्रगट कुछ कर ही नहीं पाता। यह जीव राग कषायके आवेगमें बन बन कर अपनेमें अभिमान रखता है कि मैं यों कर दूंगा, पर बिगाड़ सुधार तो जीवोंके भाग्यके अनुसार है। यहाँ व्यर्थ ही विकल्प करके विभाव बनाकर पाप बाँधते हैं और उनके हाथ कुछ नहीं लगता। भला नचे यह पुद्गल, नच रहा, पर उसके सम्बंधसे जीव भी नाना रूपोंमें बन गया। तब फिर यह जीव मानता है कि मैं सुखी हूं, दुःखी हूं, चतुर हूं, मूर्ख हूँ, नाना प्रकारकी अवस्थावों रूप यह अपनेको मानता है। प्रमुदर्शनसे लाभ क्या लेना चाहिए। जैसे प्रभुकी मुद्रा देखी तो यह निरखो—यह एक ज्ञानपुञ्ज बैठा है। जिसकी छटनी करनी है उसपर दृष्टि ले जाकर सोचो कि यह तो एक ज्ञानघन है। यहाँ विकारका नाम नहीं है। शुद्ध शुद्ध, ज्ञान ज्ञान मात्र, बस इसीका नाम है परमात्मा हो जाना ऐसे स्वरूपके पानेकी मैं कोशिश करूं, अपने स्वरूपको देखूं, अपने स्वरूपमें रत रहूँ। ये कर्म कलंक जल जायेंगे। और, मेरा भी ऐसा स्वरूप हो जायगा। यही ही बात करनेके लिए देवदर्शनकी बात आचार्य देवने कही है। इसलिए नहीं है देवदर्शनकि मुझे संसार ये सुख मिलें, अरे ये तो जीवोंको मिल ही रहे हैं पुण्य पापके अनुसार, और फिर क्या कोई यह नई बात है? कीई जीवको सुख देने वाली बात है क्या? जीवका हित जीवकी शान्ति केवल एक आत्माकी उपासनामें है।

३९८—तृष्णावश शान्तस्वभावी आत्माको स्वयं अशान्तिका उपभोग—

जब तृष्णाका दौड़ होता है तो यह जीव विह्वल हो जाता है। जैसे शरीरमें कोई कोई दौड़ा पड़ता है मिर्गीका, दिलका, खूनका तो यह बेचैन हो जाता, ऐसे ही जब कषायोंका दौड़ा पड़ता, कषायें तो निरन्तर चल ही रहीं, पर कभी बेग आ जाता है तो उस कषायके बेगमें यह अपने आपको अपनेमें नहीं रख पाता। आपेसे बाहर हो जाता और प्रदेशतः भी देहसे बाहर भी फैल जाता। कषायसमुद्घान होता ना, जब यह जीव कषाय करता है तो उस कषायमें जीवके प्रदेश तेज कषायके कारण देहमें रहकर भी देहसे कुछ दूर फैल जाते हैं। तभी तो यह कहावत चली है कि आप तो आपेसे बाहर होते चले जा रहे हैं। इस जीवमें चल रहे हैं कषाय, और वह कषाय है कर्मका फोटो और इस जीवको संस्कार लगा है ऐसा कि उस कालमें जब कि कर्मविपाकरसका फोटो यहाँ आया, झाँकी, हुई, स्वच्छतामें विकार हुआ तो यह जीव क्षुब्ध हो जाता है, अपनी शान्तिको छोड़ देता हैं और स्वरूपसे भी च्युत हो जाता है। शान्ति और अशान्ति कहाँ है? इसका निर्णय बनाओ—मेरेसे बाहर नहीं है मेरी शान्ति और अशान्ति। मेरा ही क्या, किसी भी पदार्थकी कोई बात गुण या पर्यायमें उस पदार्थके प्रदेशसे बाहर नहीं। तो यहाँ भी कहीं शान्ति अशान्ति रखी हो अन्यत्र, यह त्रिकाल असम्भव है। मेरी शान्ति अथवा अशान्ति बाहर नहीं है। तो कोई कहे कि बाहर न सही, पर बाहर से अशान्ति तो जायेगी, वह सो यह भी बात नहीं है। मेरेमें अशान्ति बाहरसे आये सो बात नहीं, क्योंकि वह कहाँसे आयगी? कल्पना करो अजीव पदार्थसे आवेगी। तो सोचो जो अचेतन पदार्थ है उनमें न

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

शान्ति है न अशान्ति है। और जितने भी पदार्थ देखनेमें आ रहे हैं वे सब हैं अजीव पुद्गल। हमे दिखते थोड़े ही हैं। यह माया दिख रही है देहकी तो इसमें न शान्ति है न अशान्ति, और मानो किसी जीवमें शान्ति है तो कहीं वहाँसे निकल कर मेरे में न आयगी। कोई शान्त पुरुष ऐसा नहीं जो अपनी शान्ति किसी दूसरेको दे डालें और खुद अशान्त हो जाय। और, फिर तीसरी परख यह बनी कि जो मुझमें नहीं है वह मुझमें आ नहीं सकता। अगर शान्तिका स्वरूप मुझमें नहीं है। तो कितने ही उपाय कर लो-मेरेमें शान्ति कहीं बाहरसे आ ही नहीं सकती। जैसे बालूमें तैल नहीं है तो कितना ही उसे कोल्हूमें पेला जाय पर उससे तैल नहीं आ सकता। शान्ति मेरा स्वरूप है, आनंद मेरा स्वरूप है, ज्ञान मेरा स्वरूप है, जब इस निज स्वरूपको यह जीव भूल जाता है तो बड़ी व्यग्रता छा जाती है। विपत्ति कहीं बाहरसे नहीं आती, किन्तु बाहरके लोगोंको या अन्य जीवोंको या किसी पुद्गलके ढेरको जब यह मान लेता है जीव कि यह मेरा, है बस उसी समय श्रद्धा बिगड़नेके कारण व्यग्रता, व्याकुलता उत्पन्न हो जाती है।

३९९ मोहोच्छेदके उपदिष्ट उपायसे लाभ लेनेका अनुरोध—

मोह छुटानेका उपाय जैन शासनमें कितनी सच्ची विधिसे बताया है और हम लोगोंने जैन शासन प्राप्त किया और उसका एक बाल बराबर भी उपयोग नहीं करना चाहते तो इससे भारी मूर्खता और क्या होगी। जो तीनों लोकको जाने ऐसा ज्ञानका निधान जिसमें आकुलता रंच भी नहीं है, ऐसा स्वच्छ स्वरूप जिसका सहज स्वभाव स्वरूप ऐसा यह भगवान आत्मा व्यर्थकी बातोंसे दुःखी हो रहा है। यह खुद खुदपर दया क्यों नहीं करता? होनहार खोटा है तो खुद पर दया कैसे कर सकते। यह स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि मेरा आत्मा सहज विशुद्ध है। कोई कमी नहीं, कृतार्थ है, कष्ट का काम नहीं, ऐसा पवित्र स्वरूप है निजका। बस यहाँ की सुध छोड़ा कि सारे संकट इस पर आ गए। अपनी सुध छोड़ देनेका ही नाम संकट है और अपनेकी सुध हो लेनेका ही नाम आनन्द है। बाहरमें सोच तो जरूर रखा होगा कि इतना धन बढ़ जाय तो सुख होगा, ऐसा मकान बन जाय तो सुख होगा पर यह बात त्रिकाल नहीं हो सकता। शान्तिका आधार है आत्माकी सुध होना और अशान्तिका आधार है आत्मा की बेहोशी। यह तो जान लें कि कोई जीव क्या मेरे साथ मर कर जायगा? कोई क्या कभी मेरे साथ मेरी परिणतिसे जन्म लेगा? कोई न लेगा। कोई भी जीव मेरे सोचनेके अनुसार क्या कोई काम कर लेगा? कभी नहीं करता। वस्तु स्वरूप हीं नहीं ऐसा। मुझे सुख हो तो क्या दूसरा भी उस सुखमें सामिल हो जायगा? नहीं, मुझे दुःख हो तो क्या दूसरा भी उस दुःखमें सामिल हो जायगा? नहीं, तो फिर बताओ, कोई भी जीव मेरा कैसे? स्वरूपास्तित्व जुदा। सब कुछ मेरा मुझमें ही परिणमता है, मैं ही अपनी कलासे अपनेमें उत्पाद व्यय करता रहता हूँ। व्यक्तविकार इसका नाम है कि पञ्चेन्द्रियके विषयोंमें उपयोग जुटाता हो और यह प्रकट हर्ष विषाद मानता हो, मेरा कुछ नहीं इतना भर जरा एक तगड़ी विधिसे जान लें ताकि फिर इस श्रद्धामें फर्क न आये। एक भी जीव जैसे मेरा कुछ नहीं ऐसे ही घरमें यह जो जीव है यह मेरा रंच मात्र भी नहीं है, घरमें रहना पड़ता है इसलिए रागपूर्वक व्यवहार करना पड़ता है और तभी कुछ सुविधा बनानी पड़ती है, गुजारा चलाना पड़ता है। तो गुजारेकी गाड़ी चलानेके लिए एक राग व्यवहार है, एक दूसरेकी हम बात पूछते हैं, परंतु वस्तुस्वरूपकी दृष्टिसे कोई जीव मेरा नहीं, कोई परमाणु मेरा नहीं। मैं अपने आपके अकेले सत्वमें ही रहा करता हूँ, यह श्रद्धा रहेगी तो व्यग्रता रहेगी शान्ति मिलेगी, कर्म कटेंगे, और एक इस श्रद्धाको छोड़ दिया, बाह्य वस्तूमें ही उपयोग जमा दिया तो इस जीवको बस संकट नजर आयगा। संकट न होकर भी यह संकटमें अपनेको

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

फसा लेगा ।

४०० कर्मरसरूप स्वको अनुभवनेमें संसारविडम्बना—

स्पष्ट भेद समझो । मैं चेतन हूं, यह कर्मरस विपाक मैंनेही बाँधा था अज्ञानमें, । अशक्त होकर । अपनेको भूलकर वैसा ही उन कर्मोंमें रत पड़ गया था । वह वहां बैठा हुआ था । अब समय पाकर वह उदय में आया है । उनका अनुभाग फूट रहा है, बस मैं चूंकि एक विलक्षण स्वच्छ पदार्थ हूं यह ऐसा झलकता है जैसी कि ये दुनियाकी सब चीजें झलकती हैं ना याने इनका जानन हो रहा कि नहीं ! तो ये बाहर ही बाहर पड़े हैं, इनका तो अनुभाग चल रहा है और जो कर्मरस सत्तामें चल रहे हैं उनका जब अनुभाग उदय होता है तो उनका कोई प्रतिफलन हो यह कैसे मान लेंगे । दर्पणमें काँचमें दूसरे काँचका प्रतिबिम्ब नहीं पड़ता । यह एक काँच है, उसके सामने दूसरा काँच रख दें तो उस दूसरे काँचका प्रतिबिम्ब नहीं पड़ता । बाहर कपड़ा रख दें तो प्रतिबिम्ब पड़ जाता, यह सब पदार्थोंके प्रति अपनी अपनी बात है । जब तक ये कर्म बंधे हुए हैं, उदयमें नहीं आये, तब तक इनका प्रतिफलन नहीं, अंधेरा नहीं छा पाता । बहाँ बंध सर्वत्र है । मगर जो सत्तामें पड़े हैं उनके कारण अंधेरा नहीं । उदय आया, अंधेरा छा गया, जीव तिरस्कृत हो गया, जीव दब गया, अधीर हो गया, क्षुब्ध हो गया, बाहरी पदार्थोंमें लगने लगा, इसकी चक्की चलने लगी । यहाँ यह निपटारा बना लें कि मैं क्या हूं । जो कुछ गुजर रहा है वह मैं नहीं । यह सब कर्मरस है । मैं तो एक जाननहार हूं । मैं राग-रसनिर्भर नहीं हूँ ऐसा इन सब बाहरी पदार्थोंसे न्यारा अपनेको देखें और यह जानें कि यह सब कर्म का ही नाच है । मैं तो एक चैतन्यरसको ही लिए हुए हूं, पर उस कर्मरसके साथ यह जुटकर याने बाहरी पदार्थोंके माध्यमसे ख्याल कर अपनेको पर रूप मानकर मोह ममता करता रहा । जब भीतरमें यह अपनेको चैतन्यस्वरूप मान नहीं पाता, और और रूप मानता तो यह अशान्त हो जाता है और जब कभी यह अपनेको चैतन्यस्वरूप अनुभव करता है तो शान्ति पाता है ।

इत्थं ज्ञानक्रकचकलनापाटनं नाटयित्वा, जीवाजीवौ स्फुटविघटनं नेव यावत्प्रयातः ।
विश्वं व्याप्य प्रसभविकसद्व्यक्तचिन्मात्रशक्त्या, ज्ञातृद्रव्यं स्वयमतिरसात्तावदुच्चैश्चकाशे । ४५ ।

४०१ ज्ञानके परिणमनमें ही सर्वदशाओंका व्यवहार—

जीवको चाहिए क्या ? अनाकुलता किसी प्रकारकी आकुलता न होनेके लिए इसे करना क्या चाहिए ? जीव ऐसा ज्ञानका परिणमन करे कि जिससे अपनेको आकुलता न हो । सभी लोग करते क्या है ? अपने ज्ञानका परिणमन । और इस ज्ञानके परिणमनमें ही वे सब बातें समा जाती हैं जैसे कोई कहे कि इसको बड़ा दुख है इसको बड़ा सुख है तो उसका अर्थ क्या ? सुख किसे कहते हैं ? कोई सुखका स्वरुप बताओ कहाँ धरा सुख ? कोई कहे कि हमें थोड़ा सा सुख दे दो तो कोई सुख कहां से लाकर दे देगा । कोई सुख नामकी चीज अलग धरी कहाँ है सुख नाम तो उसका हैं जिस ज्ञानके परिणमनमें यह जीव राजी होता हो । जैसे मोहके प्रसंगमें मोहमिश्रित दशामें जीव ऐसा ज्ञान करता है कि मेरे इतने मकान हैं, मेरे इतना वैभव है, मेरी इतनी प्रतिष्ठा हैं, मेरा इतना कुटुम्ब है । इस तरहका जो ज्ञान किया है और उस ज्ञानमें यह मौज मानता तो ज्ञानका ही सुख कहलाया किस तरह ज्ञान बने कि वह सुख कहलाये, सो कोई देख लो कोई अलगसे नहीं बता सकता कि इसका नाम सुख है मगर ज्ञानके माध्यमसे इसका निर्णय बतासकताहै किसुख इसे कहते हैं ज्ञानका ऐसा बंधन बाह्यविषयों

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

में दृष्टि देकर, यह बड़ा भला है, बड़ा अच्छा है, कुछ रचा है, आनन्द गुणका कुछ एक सुख रूप विकार हुआ। और कुछ नहीं है। तो ज्ञानसे जो कल्पना बनी बस उस कल्पनामें ही सुख माना गया और ऐसेही दुःख भी कही बाहर नहीं हैं। अपने आपमें से कल्पना बनाया हाँ मेरा विरोधी सामने आ गया, मेरा इष्ट गुजर गया, मुझको ऐसी ऐसी बेदना हो गई, यह रोग हो गया आदिक रूप भी ज्ञान द्वारा जो कल्पना जगती है बस वही दुख है। तो यह जीव करता क्या है? अपने ज्ञानका परिणमन। वही बन जाना सुखरूपसे अथवा दुःख रूपसे परिणमन

४०२ स्वपरिणामके अतिरिक्त अन्यभावके करनेका जीवमें असामर्थ्य—

क्या किसी बाह्य पदार्थको यह नहीं कर सकता? हाँ नहीं कर सकता। क्या जीव किसी परमाणुकी रचना कर सकता है? नहीं, देहकी रचना कर सकता है? नहीं, फिर यह देह एकदम बन कैसे गया? बन गया निमित्त नैमित्तिक भावोंसे। जिसके उस प्रकार नामकर्मका उदय है वह ऐसी ही आहार वर्गणाओंको ग्रहण किए हुए है जिससे यह देह बना हुआ है, पर जीव जो चैतन्यस्वरूप है उसके संबंधका निमित्त पाकर तो बना, मगर जीव देहका कुछ नहीं कर सकता। क्योंकि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य रूप कभी नहीं परिणम सकता। यह वस्तुका स्वरूप है। जो कुछ यह कर पाता है वह अपने स्वरूपमें ही कर पाता है। धन कमाना अथवा किसीको सुखी करना किसीको दुःखी करना, किसीके काममें बाधा डालना, किसीके खोटके काममें सामिल हो जाना आदि, इन कामोंको क्या जीव करता है? यह जीव तो मात्र ज्ञानपरिणाम करता है। ज्ञानका बुरा ढंगसे परिणमन हो रहा तो वह बुरी बात है, वह जीवकी बरबादीका कारण है। सुख दुःख न करे और मोक्ष जाय तो वहां यह कौन कर सकता है? यह ज्ञान ही कर सकता। ज्ञानका ही नाम सम्यग्दर्शन, ज्ञानका ही नाम सम्यग्ज्ञान, ज्ञानका ही नाम सम्यक्चारित्र। ज्ञानमें इस तरहकी दृढ़ताकी जानकारी रखना, कुछ विश्वास लेकर जीवादिक ७ तत्वोंके श्रद्धानरूपसे ज्ञानके परिणमनका नाम है सम्यक्त्व और, सभी पदार्थोंमें जिसका जैसा स्वरूप है उस प्रकारसे जाननेका नाम सम्यग्ज्ञान और आत्माका जो स्वरूप है उस स्वरूपमे ही स्थिर होवे इसका नाम सम्यक्चारित्र। ज्ञानगुण एक ऐसा प्रधान गुण है असाधारण गुण है कि इस ज्ञानसे ही इस अंतत्त्वाव को जान पाते हैं कि मैं इस ज्ञानरूप हूं और इस ज्ञानभावसे अतिरिक्त जो भी मेरेमें भाव होता है वह सब अजोब है। में नहीं हूं। कर्म बंध होता, उसका उदय आ रहा, अनुभाग खिला। जीवपर एक अज्ञात आक्रमण हुआ, प्रतिफलन हुआ। अब यह अज्ञानी जीव कर क्या रहा है? उस कर्म दशामें अपने आपका अनुभव कर रहा है?- मैं यह हूं। ज्ञानी जानता है मैं ज्ञानस्वरूपका ही ज्ञान कर रहा हूं। ज्ञानका काम तो कर रहा है ज्ञानी और ज्ञानका ही काम कर रहे है भगवान। ज्ञान भी एक व्यापक तत्त्व है कि सर्वत्र इस ज्ञानके अनुरूप ही सब कुछ हो रहा है। तो मुझे दुःखसे हटना है और शान्तिमें आना है तो कोई ज्ञानका ही प्रयोग करना हैं। इसका कारण यह है कि ज्ञान सिवाय हम अन्य कुछ नहीं कर पाते।

४०३ ज्ञानकरोंतसे ज्ञानरस व कर्मरसको भिन्न करनेका संदेश—

ज्ञान का ही प्रयोग करके अपने स्वरूपको जान लें। मैं यह ज्ञानमात्र हूं। अन्य कुछ नहीं हूं अन्य सब कुछ ये कर्मके नाटक हैं। ये मैं नहीं हूं। मैं तो एक सहजशुद्ध चैतन्यरसस्वरूप हूं। ऐसी ज्ञान की करौंत नचाई जावे, इस जीवमें और इस कर्मानुभाग अजीबमें, इन दोनोंके बीच प्रज्ञारूपी करौंत चलायी जाय और स्पष्ट कर दिया जाय कि यह मैं जीव हूं। यह मैं अजीव नहीं हूं सो देखो जब यह

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जीव और अजीब स्पष्ट रूपसे बिघट जाता है तो तुरन्त ही इस जीवको सम्यक्त्व प्रकाश मिलता है। उसके बाद ही इस ज्ञानसे ही ज्ञानको रगडते चले जाते। लोग कहते हैं कि हम फालतू नहीं हैं, हमारे पास फुरसत नहीं है, काम बहुत लगा है, और जरा यथार्थतासे देखें तो इस जीवनमें हरदम फुरसत ही फुरसत है। कैसी फुरसत? जिसने वस्तुस्वरूप जान लिया। जीव पर वस्तुमें कुछ नहीं करता। जो कुछ कर रहा हूं सो अपने भाव। परन्तु देखो भैया अन्यके भाव करनेके जो प्रसंग हैं इनमें तो सब फुरसत है। अगर फुरसत नहीं है तो खोटे कामोंके लिए भी फुरसत न रहे, तब तो जाना जाय कि फुरसत नहीं है, पर अपने ज्ञानसे इतना विमुख हो रहे हैं कि ज्ञानकी ओर दृष्टि देने भरकी भी इसे फुरसत नहीं। ज्ञानरूपी करौंतसे ज्ञानमें दो टूक कर दिया जाना चाहिये जीव और अजीव। मैं यह हूँ। जिसको शान्त होना है उसको यही करना होगा, सुख शान्तिका उपाय दूसरा हो ही नहीं सकता। सबको एक इस ही घाटमें आना होगा, तो सुख शान्ति होगी। हाँ तो यह सब ज्ञान द्वारा भेदकरें जीव और अजीव पृथक पृथक हैं। मैं चेतन हूँ। क्या स्थिति चलती है? मेरा चेतनेका कार्य है। मैं सहज हूँ। क्या स्थिति चलती है? पहले तो इस ज्ञानस्वरूप आत्माने अपने सहज ज्ञानस्वरूपको परखा और इसके अतिरिक्त जो भी उपद्रव क्रोध आये, मान आये, माया, लोभ सताये ये सारे उपद्रव ये कर्मके नाच हैं, ऐसा जानकर उससे नहीं चिपटता और अपने ज्ञानस्वरूपकी ओर आता है ज्ञानी।

४०४—ज्ञानीकी स्वरूपसे अविचलता—

ज्ञानी पुरुषके ऐसा साहस जगता है कि वज्र भी गिरे, कोई उपद्रव आये तो भी उसका दृढ़ निर्णय है कि चैतन्य स्वरूप तो अविकार है। इस स्वरूपमें कभी भी कोई विकार नहीं। सहज ही मैं स्वयं ज्ञानमात्र हूं। बस इसका ही अभ्यास होनेके लिए, धर्मपालनके लिए अन्य सबकी उपेक्षा की जाती है। जो अज्ञानी जन होते वे विभावोंकी उपेक्षा नहीं कर पाते और यही कारण है कि ज्ञान—भावकी सुध नहीं रख पाते और न जीवनमें कभी तृप्ति होती, न कभी विश्राम मिलता, न निर्विकल्पता का अवसर आता। पर जब ज्ञानी हुआ जीव। जब जीवके मैं ज्ञानमात्र अंतस्तत्त्व हूं, बस इस ही ज्ञानमें संयत होता, इस ही स्वरूपमें समुचित होता है, तब सब ओरसे ज्ञानरश्मियोंको समेट कर ज्ञानस्वभावमें संग्रहित करता है, ज्ञान प्रकट होता है। जीवको ज्ञान और आनन्द ये दो बातें पानेकी बात चित्तमें बसा करती है। धनका लोग मोह तो इसी कारण करते है कि उन्हें यह भ्रम लगा है कि धनसे आनन्द मिलता है। और ज्ञानसे इस जीवको अन्तः प्रीति रहती है। सभीको यह उत्सुकता रहती है कि मेरा ज्ञान बढ़े और आनन्द बढ़े। शेष जो कुछ हो सो हो। तो जब यह ज्ञान अपनी भूली हुई याने विपरीत जानकारियोंको मिटाता है अर्थात् ख्याल छोड़ता है और अपने ज्ञानको करता है तो यहाँसे एक ऐसा प्रताप छूटता है कि जो कर्मोंका विध्वंस कर देगा। कर्मोंका विध्वंस ज्ञान नहीं करता, पर ऐसा ही निमित्तनैमित्तिक योग है कि जहाँ ज्ञान अपने ज्ञानस्वरूपको सम्हाले वहाँ कर्मोंसे कर्मत्व दूर होता है, यों आवरण दूर होने पर यह ज्ञान लोकालोकको जानने लगता है। ज्ञानका प्रताप बनता है, ज्ञानमें ज्ञानको सभा लेनेसे। कोई बाहरकी जानकारी बढ़ाबढ़ाकर सर्वज्ञ होना चाहे तो कैसे हो सकता? ऐसी सर्वज्ञता भी मांसक जनोंने चाही कि बस जान—जानकर ज्ञानका संग्रह बन जाय, ज्ञान अपने स्वभावसे ही उस प्रकारका बर्ताव रखता है, ऐसी वृत्तिसे बर्ताव है कि जगतमें जो भी सत् हैं वे स्वयं ज्ञेय होते। उपयोग लगानेकी आवश्यकता नहीं होती वहाँ ज्ञानकी स्वच्छता ही ऐसी है कि समस्त लोका लोकामें ज्ञान प्रतिबिम्बित होता है। तो ऐसा ज्ञान कब प्रकट होता? जब ज्ञानमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ज्ञानका सम्वेदन कर दिया। आत्मा जब वीतराग हो, निर्मल हो, रागद्वेषके संस्कार समाप्त हो जाते, जीवमें ऐसा ज्ञान प्रताप प्रकट होता है। जैसे आक्सी काँचमें सुर्यकी किरणें संचित हो जाती हैं, सूर्यकी किरणोंके सामने आक्सी काँच रखा हो तो किरणोंका तेज प्रकाश पड़नेसे काँचके नीचे पड़ी रुई या कागज जलने लगता है। ऐसे ही जब यह ज्ञान मात्र अपने ज्ञानस्वरूपको जान रहा हो, जिस कालमें निर्विकल्पनाकी स्थिति बनती हैं इसे कुछ बाहरका पता नहीं, यह कुछ अन्दरमें निरखनेका यत्न करता नहीं, स्वयं ही एक ऐसा परिणाम बना कि जो ज्ञानमय परिणाम है। यह प्रयोग अब तक जीवने नहीं किया और इसीसे यह संसारमें घूमता रहा।

४०५—निज सहज स्वभावमें उपयुक्त होनेका प्रताप—

जो जीवके स्वरूपको जान लेता है उसमें क्षमा मार्दव आदिक भाव स्वयं प्रकट हो जाते हैं। इन दस धर्मोंकी पूजा करनेसे या केवल पढ़ जानेसे, उसकी एक कार्यवाही कर लेनेसे क्या धर्मके प्रसादसे होने वाला गुण प्राप्त किया जा सकता? वह तो प्रयोगकी चीज थी। भैया, जीवनको क्षणिक जानें जब कभी भी यह जीवन नष्ट हो सकता है। तो ऐसी स्थितिमें उसका कर्तव्य क्या है? मोहरागद्वेष छोड़ें और आत्म स्वरूपमें विश्रामसे बैठ जायें। उसमें कोई ज्यादह ज्ञान नहीं, तो कमसे कम इतना तो परिचय कर ही लेना चाहिए कि जगतमें जो कुछ संग समागम है वह मेरे लिए हितरूप नहीं। उनसे मेरा सम्बंध नहीं। देखो जब जीवपर कर्माक्रमण होता है अन्य क्षण होता है नवीन आयुका उदय होता है तो जीव किस तरह निकल जाता है—काचसे न छिड़ेगा, लोहेसे न छिड़ेगा। पता नहीं पड़ता कि जीव कैसे निकल जाता? जो शरीरसे निकला है वह शरीरमें रहकर भी शरीरसे निराला स्वरूप रखता था। ऐसा नहीं कि जब शरीरमें रह रहा था तब तो वे दोनों एक थे। एक मेक तो परसे कोई होता नहीं। जो एक एक है, वह हमेसा एक एक हैं। चाहे कितना ही सम्बंध हो, कितना ही बन्धन हो फिर भी प्रत्येक द्रव्य एक एक है, ऐसे ही अपने एकका ध्यान बनायें कि मैं क्या हूँ, बेकारकी बात सुनकर समझकर घर पर दूकानपर चलते फिरते, सत्संगमें बैठकर, इन्द्रिय व्यापारको बंद कर किसी बातका ख्याल न रख, अपनी ऐसी स्थिति बनाकर एक परम विश्रामसे बैठ जाये उसके सब दोष दूर होंगे और वह अपने आपमें परम सहज आनन्दका अनुभव करेगा।

४०६—बाह्य पदार्थोंसे विरक्त हो कर स्वमें रत होनेमें कल्याण—

बाहरी विश्वास न रखें। बाहर सब धोखा है, जो मिला है वह बिनाशीक है जितना जो भी समागम आज मिला है वह हमारे पापका तो कारण बन जायगा, पर भलेका कारण न बनेगा। जैसे कोई बालक सूपूत हो या कोई कुपूत हो, दुःख दोनोंमें है। कुपूतसे तो दुःख प्रकट ही है कि उसके पीछे पिता ही क्या, सभी दुःखी रहते। कहीं धन चुरा ले गया, कहीं व्यसनी हो गया, कहीं जुवां सट्टेमें जाकर लुट पिट कर आता है, पागलोंकी नाँई वृत्तियाँ करता है, कुछ सही ढंगसे काम नहीं करता, कितने ही लोगोंकी शिकायतें आती हैं तो वहाँ दुःख कुपूतसे प्रकट ही है, लेकिन यदि कोई एक बार यह ऐलान करवा दे कि अब हमारा इससे कोई वास्ता नहीं इसे जो कोई जो कुछ ले दे सो वह जाने हम इसके कोई जिम्मेदार नहीं, तो लो एक बारमें ही उस कुपूतका दुःख मिट गया, मगर बालक सपूत निकला तो वहाँका दुःख तो बहुत ही बड़ा होता है। अरे पिताको उस बालकसे इतना मोह हो जाता है कि वह रात दिन उसके लिए सुख साधन जुटाता फिरता हैं। वह चाहता है कि मैं इसके लिए इतना धन जोड़कर धर जाऊँ कि यह अपने जीवनमें फिर कभी भूखा न रहेगा। तो कुपूतसे भी ज्यादह दुःख सुपूतसे मिला।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

वस्तुतः तो न कुपूतसे दुःख है न सुपूतसे । वह ज्ञानकी एक कल्पना है । वह सदा नहीं टिक सकती, क्योंकि विषयभूत स्थितियाँ बदलती रहती है । अपने आपके ध्रुव स्वभावका ध्रुव ज्ञान मात्र तत्त्वका आश्रय लीजिए, जिसके प्रसादसे हमको शान्ति प्राप्त हो । शान्तिका उपाय सब जगह डोल-डोल कर कहीं बाहरमें न मिलेगा । वह मिलेगा अपने आपके स्वरूपमें, अपने आपके अन्दर । यह बात अपने ही घर की कही जा रही है । मैं ज्ञान मात्र हूँ, मैं निरन्तर परिणमता रहता हूं । जब, ज्ञानरूप हूँ तो ज्ञान का ही परिणाम न पूरे रूपसे, यथार्थ रूपसे अथवा भले रूपसे ही तो चला करता है तो अपना ज्ञान सम्हालें । अपनी सम्हाल किया तो जैसे अटपट चलने वाली बस गाड़ीका एक पेंच बंद कर दिया तो वह गाड़ी एक जगह झट खड़ी हो गई, सम्हल गई ऐसे ही ज्ञानमें चलते चलते कर्मानुभाग तो ज्ञेय था मगर उसमें अपनेको मिला लिया ज्ञानमें और एक अपने को । मेरा कहा था वह मैं चैतन्य मात्र हूँ बाकी सब कर्मका नाच है । ये कर्म नचो, मैं इन्हें भी न अपनाऊँ, मैं उससे भिन्न अपनेको चैतन्यमात्र अनुभव करूं ऐसा सहज चैतन्यमात्र शक्तिका विकास होते होते केवल ज्ञानी सदाके लिए इनसे दूर हो जाते है । इस तरह जीव और अजीव अभेद होकर बहाँ सब अलग हो गए । यहाँ साधक के ज्ञानमें यह दिख रहा कि यह जीव अलग यह जीव अलग ।

४०७—जीवोंकी रूचिकी द्विविधता—

जीव दो प्रकारकी रूचिके होते हैं एक तो वे जिनको कषायोंसे प्रेम है, और एक वे जिनको आत्मकल्याणमें प्रेम है । कषायमें प्रेम रखनेवाले अज्ञानी चिरसंसारी कहलाते हैं और आत्मकल्याणसे प्रेम रखने वाले ये भव्य मोक्षमार्गी हैं, इनके निकट कालमें समस्त संकट दूर होंगे, ऐसे वे ज्ञानी कहलाते हैं । जैसे अध्यात्मके रुचियाको कषायोंसे प्रेम नहीं होता, ऐसे ही कषायके प्रेमियोंको अध्यात्म से प्रेम नहीं होता । यह सब मिथ्यात्व प्रकृतिका जब उदय चलता है तो आत्मकल्याणकी भावना नहीं रहती । जब मिथ्यात्वका वेग कम होता है तो आत्मकल्याणकी भावना होती है, और जब मिथ्यात्व नही रहता तब आत्म कल्याणमें रूचि होती है । जैसे किसी कामको करनेके लिए उस ही कामसे प्रीति हो और काम करते हुएमें फिर कितनी ही बाधायें हों, उनका ख्याल न करें तो वह अपने काममें सफल होता है । ऐसे ही अध्यात्ममें प्रीति रखकर जो आत्मकल्याणके मार्गपर चलता है उसे बाहरी किन्हीं बातोका ख्याल न रखकर एक आत्मासे ही प्रीति होती है, पर ऐसा सब कुछ बननेके लिए सर्व प्रथम बात यह हैं कि कुछ ज्ञान प्राप्त करो और कषायको कम करो । इसके लिए बिना धर्मकी बात करना बिल्कुल ढकोसला है । यह अपनी अपनी परीक्षा करनी और उस तरह अपनेको उतारना है । हमने कुछ ज्ञान सम्पादन किया था ? हाँ उसकी पहिचान क्या है ? उसकी पहिचान यह है कि घर गृहस्थी कुटुम्ब पार्टी मित्रादिकमें पक्ष नहीं रहता । उसका पक्ष धर्मकी ओर होता है और अन्य कार्योंकी अपेक्षा धार्मिक कार्योंको महत्त्व देता है । यह तो ज्ञानीकी पहिचान है । कुटुम्बी मित्र जनोंकी अपेक्षा धर्मात्माजन, साधर्मी, गुरुजन इनको महत्व देता है । यह है एक भीतरका परिचय, जिससे यह समझ सकते कि क्या हम सन्मार्गमे लग पाये या नहीं ? यह इसकी एक कुञ्जी है । भीतर परख करके जाना जा सकता है । अगर कमी है तो कोशिश करना चाहिए कि मेरेको ऐसा सत्संग मिले, मेरेको ऐसा कोई उपाय बने कि यह ममता दूर हो और सच्चे ज्ञानका प्रकाश मिले । भीतरकी सफाई होने पर धर्मकी बात आना सुगम होता है । जब तक भीतर सफाई नहीं रहती तब तक धर्मकी बात आना कठिन होता है और धर्म बिना इस जीवकी रक्षा करने वाला लोकमें कोई नहीं है ।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

४०८—धर्मरुचिके प्रारम्भका साधन अपने एकाकित्वका निर्णय—

कोई सोचता हो कि मेरा तो यह अमुक दोस्त है, यह मेरी रक्षा कर देगा। यह तो मेरा कुटुम्बी है, यह रक्षा कर देगा या मेरा तो बड़ा चला है, मैं खुद अपना रक्षक हूँ, ये सारी बातें मिथ्या हैं। जीवको रक्षा करनेवाला धर्मके सिवाय और कोई नहीं, क्योंकि जहाँ धर्मका वास नहीं है वहाँ राग विरोध, आकुलता और बाहरमें दोष दृष्टि ये सब हैरान कर रहे हैं और ये जीवनको झकझोरते रहते है। और जहाँ धर्मसे प्रीति हैं याने भीतरमें यह भावना जग रही कि मैं अपने आपमें उस विशुद्ध ज्ञान प्रकाशका ही अनुभव करूँ, अन्य कुछ अनुभव न करूँ, ऐसी जिसको रुचि जग जाय उसको बाहरमें कहीं भी आस्था नहीं होती। बस आत्मामें या गुरुजनोंमें, भगवानमें, तीन जगह आस्था समझो। सर्वस्व है यह ही मेरा इनके अलावा अन्य जगह आस्था आदर नहीं। भीतर हार्दिक भाव ही मेरा हितकारी है, इस तरह अन्य पुरुषोंमें, अन्य स्थानोंमें आस्था बनाना बस यह ही इस जीवको दुःखका निदान बन जाता है। तो जब तक यह बात ध्यानमें न आये कि मैं अकेला हूँ, अकेला ही रह जाना है, भव छोड़कर जाना है, अकेला ही वहाँ रहूँगा, जब तक ऐसी अकेलेपनकी बात चित्तमें नहीं आती तब तक धर्ममार्गमें नहीं आ पाते। सबसे पहले इतना ज्ञान करना हर एकको आवश्यक है। मुखसे बोलने भरसे काम न चलेगा, किन्तु भीतर ऐसा चिन्तन हो कि एक बार चीख सी आ जाय—ओह इस मुझ अकेलेकी जिम्मेदारी अकेले पर ही तो है, दूसरा मेरा जिम्मेदार नहीं। तो अब कौनसा उपाय ऐसा है कि जिससे यह भगवान आत्मा प्रसन्न रह सके, शान्त रह सके, उसका उपाय है बाहरकी दृष्टि न हो। उसका उपाय है अपने अन्तरकी शुद्धि करना, और यह शुद्धिका प्रारम्भ तबसे होता है जब यह ध्यानमें आ जाय कि मैं तीन लोकमें अकेला ही पड़ गया। मेरा कोई दूसरा नहीं। मेरा मात्र केवल मैं ही। अनादिसे मेरे अपने आपपर अकेला ही सबकुछ गुजरा। सब कुछ बीता, अच्छे बुरे धक्के खाये, जन्म मरण किया, जगह—जगह डोला, यही अकेला घूमता चला गया। इसका कोई साथी भी हुआ क्या? जगतमें जितने जीव हैं प्रायः सभी जीवों से अनेक बार कुटुम्बी रिस्ता हुआ होगा, मगर आज कोई कुछ याद है क्या? भूल गए तो जो दो चार जीव घरमें आ गए, जिनसे कषाय मिल गई उनको मान लिया कि ये मेरे सर्वस्व है इससे क्या पूरा पड़ेगा।

४०९—अलौकिक मित्रकी आवश्यकता—

इस जगतकी मित्रतामें क्या दम है? कषायसे कषाय मिल गई तो मित्र कहलाने लगे। जहाँ कषायसे कषाय न मिली तो शत्रु कहलाने लगे। यह ही है एक लौकिक मित्रका लक्षण। और अलौकिक मित्र कौन होते हैं जो कषायको छोड़नेकी बात या प्रसंग बनते हों वे अलौकिक मित्र है। मगर जब तक मोहका उदय है तब तक उस अलौकिक मित्रकी ओर दृष्टि नहीं होती, किन्तु उस लौकिक मित्रकी ओर जो कषायको पुष्ट करें जो हमको भुलावेमें डाले बस दुनियामें वही दोस्त कहलाता है, वही बंधु कहलाता है। तो यह जगतका जितना समागम है, जिसमें यह जीव मौज मानता है वह सब अनर्थका आयतन है। धर्मायतन तो भगवान, गुरु, शास्त्र और आत्मस्वरूप ये चार स्थान धर्मायतन कहलाते हैं। आत्मा स्वयं धर्मरूप है, किन्तु उस धर्मस्वरूपका परिचय न होनेसे यह इस धर्मका आदर नहीं कर पाता। अधर्मका आदर करता है। अधर्म मायने विषय और कषाय जो आत्माका अकल्याण करने वाले हैं, उन विषय कषायोंमें जीवका आदर रहना और जो आत्माका भला करने वाले हैं, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र ये रत्न, ये धर्म जिसके आधार है उसको भगवतस्वरूप प्रकट

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

होनें वाला ही होता है । ऐसी स्थिति है । दो प्रकारकी रूचि वाले लोगोंकी । अब यहां अपने हित की बात छांटों कि कषायोंमें प्रेम रखने से हमारा भला होगा या धर्ममें प्रीति रखने से हमारा भला होगा? थोड़ा ही विवेक रखने रर यह ध्यानमें आ जायगा कि धर्मकी प्रीतिसे भला है या कषायकी प्रीतिसे कषाहकी प्रीतिसे भला नहीं । इतनी बात जब ध्यान में आये तब अब आगे बढ़े चलो अध्यात्म बोध में ।

४१० अध्यात्म विकासके मूल साधक आत्म परिचयके बिना विकल्प विडम्बनायें—

अध्यात्म विकासार्थ अपने आपको निरखना है कि मैं क्या हूँ और मुझ पर गुजर क्या रहा है? मैं क्या हूँ ? मैं हूँ एक चैतन्य पदार्थ, जिसका काम जानना देखना है और जानने देखनेमें किसी प्रकार की तकलीफ नहीं होती, कोई कष्ट नहीं होता, पर गुजर क्या रहा ? तकलीफ, कष्ट । क्या कष्ट है भाई ? कष्ट है । कोई कहता कि मेरे अमुकका वियोग हो गया, कोई कहता कि मेरे को धनकी कमी हो गई, कोई सोचता कि मेरे को आज इज्जत (जैसी चाह रखी है वैसी) नहीं मिल रही । अनेक लोगोंके अनेक अनेक तरहके उत्तर है और सभी जीव अपनेको कष्टरूप अनुभव कर रहे हैं । जो पुत्रों वाला है वह पुत्र अधिक हो गए उनके निपटानेमें लगा हुआ कष्ट मानता है,जिसका फल तुरन्त यह होता कि मोह उसका इतना बढ़ता कि वह आत्मा की कुछ सुध नहीं कर पाता । और जिन्दगी भर उसके सुख की आशासे तृष्णामें बँधा है । किसी का पुत्र कुपूत हो गया तो अनेक उलाहने अनेक उत्पात होते रहनेसे दुःख मानते तो सब एक अपने अपने ख्यालातके अनुसार और ऐसे ही नाना ख्यालोंमें अनेक विषय बन जाते हैं । तो यह जो आज हम आप सबकी बहुत बुरी स्थिति चल रही है तो क्या ऐसी ही स्थिति चलाते रहना चाहिए ? कितना ही काल गुजर गया इन खोंटे भावोंमें, फिर भी खोटा खोंटा ही कहलाता । राग हटानेमें ही सार है, वे हटेंगे किस प्रकार ? बस आत्म ज्ञानसे सबसे निराला मैं आत्म तत्त्व हूँ । मैं किसी दूसरे पदार्थको करता नहीं, दूसरे पदार्थको भोगता नहीं, दूसरा पदार्थ मेरा कुछ बनता नहीं । मैं कहीं दूसरा बन नहीं गया । मैं ज्ञानस्वरूप हूँ । ज्ञान ही मेरा सर्वस्व धन है । ज्ञानको ही मैं मैं करता हूँ, ज्ञानको ही भोगता हूँ, ऐसा जो अपने ज्ञानमात्र तत्त्वमें दृष्टि रखता है उसको मुक्तिका मार्ग मिलता है । अब तक संसारमें यह जीव रुलता आया तो इन चार बातोंके कारण जो मैं नहीं हूँ उसको माना, मैं याने देहमें नहीं, उसको माना कि यह मैं हूँ । जो मेरा नहीं, उसको माना मेरा । धन वैभव परमाणु मात्र भी मेरा नहीं है, उसे मान रहा मेरा । जो मैं कर नहीं सकता, कभी किया ही नहीं गया, उसके विषयमें मानता है कि मैंने किया, मैं करता हूँ, मैं करूँगा । पर पदार्थके बारेमें मकान हो, वैभव हो, कुटुम्ब हो, पढ़ाना हो, व्यापार हो, हर जगह मैंने ऐसा किया, मैं ऐसा करता हूँ, मैं ऐसा कर दूंगा । जो किया नहीं जा सकता कभी, आत्मा अपने प्रदेशोंसे बाहर कुछ भी नहीं कर सकता, पर पदार्थोंमें मानता कि मैंने किया, मैं करता हूँ, मैं करूँगा, बस इस मिथ्या बुद्धिके कारण यह जीव जगत मे अब तक रुलता चला आया । मूल बात पर आइये । पदार्थको अपना स्वरूप मानना, परको अपना मानना, परको करना मानना, परका भोक्ता मानना, बस ये चार गल्तियाँ इस जीवको संसारमें रुलाती हैं । ये चारों गल्तियाँ कैसे छूटें ? उसका बोध करानेके लिए समयसारमें एक कर्तृ कर्म अधिकार बहुत स्पष्टताके साथ प्रकाश देता है ।

४१० अजीवके विकारमें कारण द्वय तथा जीवके व्यक्त विकारमें कारणत्रय का संकेत—

इस प्रकरणमें यह निर्णय किया है कि जीव क्या करता है । कर्म क्या करता है ? जीवके द्वारा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

क्या किया जाता है ? कर्मके द्वारा क्या किया जाता है ? यह बात बतायी जाती है संसार अवस्थामें, क्योंकि संसारी जीवोंको ही इन कर्मोंसे छूटना है। तो कर्मजाल कैसे हुआ ? इस तथ्यका निर्णय किए बिना कैसे कदम बढ़ाया जा सकता है ? तो उस ही बातको समझनेके लिए कुछ बातें ज्ञातव्य है। जिनका ज्ञान किए बिना यह विषय भली भाँति न समझ आयगा। जैसे उपादान कारण निमित्तकारण और आश्रयभूत कारण। इन तीनका रहस्य समझना है। इसके अतिरिक्त अन्य भी बातें हैं। उपादान कारण क्या कहलाता है कि जिस पदार्थमें कार्य हो, जो पदार्थ कार्य रूप परिणम रहा हो उसे उपादानकारण कहते हैं। निमित्त कारण किसे कहते हैं कि उल्टा परिणमन जो होता है उपादानमें वह किसी पदार्थका सान्निध्य होने पर होता है—जिसके न होने पर नहीं होता, ऐसा जो पदार्थ हो उसे कहते हैं निमित्त कारण और आश्रयभूत कारण क्या ? जीव रागद्वेषमय कुछ परिणमन कर रहा हो तो उस समयमें ख्याल किसका रख रहा है ? जिनका यह ख्याल करके कषाय करता होवे वे पदार्थ आश्रयभूत कारण होते हैं। इन तीन कारणोंमें से केवल जीव और अजीव की ही जहाँ बात कही जा रही हो वहाँ दो ही कारण होते हैं। (१) निमित्त कारण (२) उपादान कारण। आश्रयभूत कारण क्यों नहीं होता क्योंकि वे दोनों अजीव हैं, और कोई सा भी अजीव किसी पदार्थका उपयोग नहीं कर सकता, किन्तु जीवके जो विकार होता है, कषायें जगती हैं उन कषायोंके होनेमें तीन कारण होते हैं।

४१२ विकारके साधनभूत कारणद्वय व कारणत्रयका दिग्दर्शन—

उदाहरणके लिऐ देखो—मशीने चलती है। किस पुर्जेका किस पुर्जेसे सम्बन्ध है ? यह पुर्जा घूमे तो दूसरा पुर्जा किस तरह घूमे जैसे एक घड़ी ही ले लो—चाभी भरी है। अब चाभी की कमान स्वभावतः उठनेकी ओर रहती है। तो उठनेसे जितना मौका मिलता उतना एक चक्केके अंशका घुमाव बनता है। प्रथम चक्का एक घुमाव होनेपर दूसरेका घुमाव प्रारंभ होता उससे दूसरा चक्का पूरा घुमनेके बाद बड़ा चक्का घुमता उसके घुमनेके बाद तीसरा थोड़ा घूमता। इस तरह तीन सुई चलती हैं। सब काम अजीव अजीवमें हो रहे। यहां जीवका कुछ काम नहीं। जो चल रहा है वह उपादान और जिसके होनेपर चलता है वह निमित्त। यहां आश्रयभूत कारणकी जरूरत नहीं, क्योंकि कौनसा पुर्जा किसका ख्याल करे ? ख्याल करने वाला बात अजीवमें नहीं इस कारण अजीव में आश्रयभूत कारण नहीं हुआ करते। अब जीवकी बात लो-मनुष्यको क्रोध आया तो जीवको क्रोध आया तो उस क्रोध का उपादान कारण कौन ? यह जीव, जो मलिन है, जिसकी योग्यता है ऐसी और निमित्त कारण कौन कहलाया ? उस क्रोध प्रकृतिका उदय। १४८ प्रकार के कर्मका बंधन है जीवके साथ। उनमें से क्रोध प्रकृति भी है। तो क्रोध प्रकृतिका उदय न हो तो जीव क्रोध नहीं कर पाता। तो जीवका क्रोध करने में क्रोध प्रकृति निमित्त हुई, और आश्रयभूत कारण कौन हुआ ? जिस पदार्थका ख्याल रखकर जिसके विषयमें क्रोधका भाव जगा वह आश्रयभूत कारण होता है। अब यहाँ यह बात समझना है पहले कि वास्तविकता है क्या यहाँवास्तविकता यह है कि पहले बाँधे हुए कर्मों कोप्रकृतिका उदय हुआ याने उसमें अनुभाग पड़ा था। वह अनुभाग फूटा, प्रगट हुआ। बस यह तो एक निमित्त कारणहै। उसका हुआ प्रतिफलन बस और इस जीवने उस समय किसी पुरुषपर, स्त्री पर, पुत्र पर या वैभव पर दृष्टि रखकर अपना भाव बिगाड़ा तो यहां चेतन अचेतन मेंपरिणमन हुआ आश्रयभूत कारण। और कर्म उदय हुआ निमित्त कारण तथा उपादान कारण हुआ यह स्वयं जीव।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

४१३ ज्ञान और कर्मरसके मिलित आस्वादनके अविवेकमें रागद्वेषादि विकारोंकी मुद्राका रूपक—

अच्छा यह बताया था एक दिन कि रागद्वेष विकार क्रोध ये हैं क्या चीज ? उनकी सकल है क्या ? क्या उनकी मुद्रा है ? ये कषाय कोई चीज नहीं हैं । यह एक भ्रान्त उपयोगकी दशा है । ये इच्छा विकार आदिक क्या वस्तु हैं ? अब जैसे पूछा जाय कि दर्पणमें प्रतिविम्ब पड़ा किसी चीज का, जो सामने हो तो यह प्रतिबिम्ब क्या वस्तु है ? वहाँ तो थोड़ा कहा भी जायगा, कि प्रतिविम्बमें उस प्रकारकी स्वच्छता का विकार है । तो ऐसे ही यहाँ समझिये कि जब कर्मका उदय होता है तो उस कर्मका अंधेरा अनुभाग यहाँ प्रतिफलित होता, मायने ज्ञानपर उसका आक्रमण चलता, एक प्रतिविम्ब जैसा समझिये उस समय दशा क्या बन जाती जीवकी कि जीव जो ज्ञानस्वरूप है, जिसका ईमानदारीके काम केवल जाननहार रहता है सो अपने स्वरूपके कारण यह वृत्ति तो चली मगर उस कालमें उस कर्मानुभागहै प्रतिफलनका मिश्रण हो गया । अब जैसे हाथी हलुवा और घास दोनोंको एक साथ मिलाकर खाता है । उसने कभी यह बात नहीं सोची कि चलो एक बार खाली हलुआका स्वाद ले लें, । वह तो दोनों को मिलाकर खाता है ऐसे ही अज्ञानी जीव इस अपने ज्ञानको और इस ज्ञानमें मिश्रण हुआ है कर्मरसका सो उस कर्मरस को मिलाकर यह अपनेमें स्वाद लेता है, अर्थात मैं ज्ञानरस का स्वाद लेता हूँ। इसको तो बिल्कुल भूल जाता है और । जो कर्मरस स्वादमें आया उसका ही ध्यान रहता है कि मैं तो यह स्वाद ले रहा हूं, मैं तो यह कर रहा हूं । फिर आप यह पूछेंगे कि फिर मिश्रण क्या रहा ? ज्ञान रसका तो स्वाद इसने माना नहीं और कर्मरसका स्वाद इसने माना तो अलग ही तो रहती बात । मिश्रण कैसे हो ? यह मिश्रण अपने आप हो गया याने ज्ञानरसको भूल तो गया यह जीव मगर उस ज्ञेयको कर्मरूपसे भी जो स्वाद रहा वह ज्ञानके आधारसे ही स्वाद रहा । इसलिए ज्ञानरस तो छूटा या भी नहीं छूटता और उसके साथ कर्मरस और लिया तो यह एक मिश्रण हो गया । यहाँ यह बात भेदके लिए समझनी होगी कि मैं चेतन तो केवल जाननेका काम करता । अब इसके साथ कर्मानुभागका प्रतिफलन है सो जाननेकी दशा मुड़ जाती है, जानना चाहिए हमें उपेक्षा रूपसे ज्ञेयरूपसे प्रतिभास मात्र मगर ज्ञानकी दिशा मुड़ जाती है उस कर्मरसके मिश्रणमें, तो यह ज्ञान विकल्प करता है, यह अच्छा है, यह बुरा है बस ज्ञानका इस ढंगसे जाननेका ही नाम विकार है । विकार यहाँ आ कैसे सकता है ? एक द्रव्यमें दूसरे द्रव्यकी कोई परिणति आती नहीं । बस यह जीव ही अपने ज्ञानमें उल्टा चलता, भ्रम कर गया बस यह कहलाता है विकार और इस विकारके प्रकट होनेमें ये चेतन अचेतन सब वैभव परिग्रह संग समागम जिस जिसपर दृष्टि गई वह उसमें आश्रयभूत कारण होता है ।

४१४—बरबादीके कारणोंमें राग मोहकी प्रधानता—

विकार स्थितिमें जितनी द्वेषके कारण बरबादी होती है जीवकी, उससे अधिक रागके कारण बरबादी है । अज्ञानीजन रागमें मस्त रहते हैं, उन्होंने बरबादीका ख्याल ही नहीं कर पाया और चूंकि द्वेषमें परवस्तु रुचती नहीं है सो यहाँ समझो चित्त बड़ी कठिन स्थितिमें आ गया, पर रागमें जो विकट बन्धन बनता है उससे इस जीवकी बहुत बड़ी बरबादी है । तो चूंकि राग है न, प्रेम है न, वहाँ यह नहीं सोचता कि मैं अन्याय कर रहा हूँ । क्योंकि, अपने आपपर इसकी दृष्टि हो नहीं गई और अन्याय तो कर ही रहे जगतके सभी जीव । कहाँ तो अनन्त चतुष्टयका धारी भगवतस्वरूप यह आत्मा और कहाँ रागद्वेष मोहके वश होकर बाह्य पदार्थोंमें हो रहा है इसका उपयोग लिपटान, बेसुधी । तो यह अपने आपपर अन्याय है कि नहीं ? मोह बस इसीका ही नाम है । अन्याय करके यह अपनेको

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

न्यायवान समझता है। कोई भी मोही जीव एकेन्द्रियसे लेकर पञ्चेन्द्रिय तक जो जो कार्य कर रहे है, रागवश, मोहवश उसको करते हुए चतुराई समझते हैं कि नहीं ? घरमें बस रहे, कमाई हो रही, धन आ रहा, बच्चोंको खिला रहे, उन्हें देख देखकर खुश हो रहे, ऐसा करते हुई चतुराई मानता है कि नहीं यह जीव ? बस इसीके मायने है मोह। गल्ती करते हुए भी गल्ती न मानकर चतुराई समझना इसे कहते हैं मोह और राग करे, द्वेष करे तो इसे कहते हैं गल्ती। मोह मायने महा गल्ती और, रागद्वेष मायने गल्ती।

४१५—गल्तीको चतुराई माननेके व्यामोह का सोदाहरण संकेत—

कोई पुरूष किसी गांव को जा रहा था, वह एक गाँव में पहुच रहा था। रास्तेमें उसने गांवके पहिले घर के मालिक से इष्ट गांव का रास्ता पूछा। उसने बता दिया कि अमुक गाँव को यह रास्ता जाता है। वह बढ़ई था मजाकिया। रास्ता तो गया पूरब को, पर बता दिया दक्षिण को, और साथमें यह भी कह दिया कि देखो इस गाँवके सभी लोग मजाकिया हैं, वे गलत रास्ता बता देंगे, उनकी बात मानना नहीं। अब वह मुसाफिर पूरब दिशाके बजाय दक्षिण दिशाको चल पड़ा। गाँवके कई लोगोंसे उस मुसाफिरने रास्ता पूछा तो सभीने पूरबको बताया, पर उसने तो यही बात मनमें ठान लिया कि देखो बढ़ई ठीक ही कहता था कि इस गाँवके सभी लोग मजाकिया हैं, सब गलत रास्ता बताते हैं। आखिर वह किसीकी न मानकर दक्षिण दिशाको बढ़ता गया। खैर आगे क्या हुआ यह बात अलग हैं, पर यहाँ देखो कि वह गलत रास्ता चल रहा फिर भी वह यह जान रहा कि हम बिल्कुल सही चल रहे, ऐसे ही ये संसारके जीव इस ज्ञानको राग मिश्रित करके स्वाद ले रहे और यह जानते है कि मैं बिल्कुल ठीक काम कर रहा हूँ। बहुत चतुराईका काम करता हूँ। मैने इतना धन जोड़ लिया, बच्चों को इतना पढ़ा दिया, समाजमें इतना रोब भी जमा लिया। मैं बड़ा चतुर हूं। ऐसा वह समझता है। उसे यह पता नहीं कि यह सब कषायरस हैं, मेरा स्वरूप तो ज्ञाता दृष्टा रहना है। जब तक मैं अपने स्वरूपमें न आऊँगा तब तक मुझको संसारके संकटोंसे विराम न मिलेगा। तो यह बात समझानेके लिए इस अधिकारमें ये सब बातें आयेंगी और ऐसी कुञ्जी मिलेगी जैसे कि किसी समुद्रकी भवरमें कोई नाव फस गयी हो और वह नाव उस लहरके बीच डगमग करती हो, एकदम डूब जाने वाली हो, पर अचानक ही भवरसे बाहर निकल जानेका रास्ता मिल जाय, निकल जाय। इसी तरह भीतरके इस सब मननसे ऐसा मार्ग मिलता है कि यह जीव अपने आप ही एक अद्भुत प्रकाश पा लेता है जिस प्रकाशके पान पर इसे तुरन्त संतोष होता है और वह अपनेमें फिर आनन्दका अनुभव करता है।

४१६—निरुपाधि अन्तस्तत्त्वके मिलनमें ही शान्तिकी संभवता—

प्रत्येक जीव अपना हित चाहता है। सही शान्ति मिले, आकुलता रंच न हो, है सब बात सुगम अवश्य। ऐसी स्थिति आयगी कि जहाँ रंच भी आकुलता न रहे, पर इसके लिए जरा विधि—पूर्वक अपनेमें तैयारी करनी होगी। उसमें सबसे पहले तो यह समझना होगा कि मैं एक ज्ञानमय पदार्थ हूँ, और कुछ नहीं हूँ। मैं मनुष्य नहीं, पुरुष नहीं, स्त्री नहीं, व्यापारी नहीं, बुद्धिमान नहीं, मूर्ख नहीं, गृहस्थ नहीं, साधु नहीं, यह सारी बाहरी दृष्टि छोड़नी होगी और अन्दरमें यह निगाह करनी होगी कि मैं तो ज्ञानपुञ्ज पदार्थ हूँ। जिस निगाहमें सब जीव एक समान जचने लगें। बस उस आत्मस्वरूपका नाता रखकर सुनो, करो, खोजो तो आत्मकल्याणका मार्ग मिलेगा और जो देहकुल

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जाति परम्परा रूढ़ि सम्प्रदाय किसी भी प्रकारकी बुद्धि रखे तो वहाँ धर्ममार्ग न मिलेगा, क्योंकि देखो जो बात उपाधिके सम्बंधसे मिले वह बात सही नहीं. और उपाधिके बिना जैसा वह स्वरूप है, वैसा सही मूल रूप है। मनुष्य होना क्या मेरे जीवका स्वरूप है? जिसका जो स्वरूप होता है वह कभी मिटता नहीं। मेरा स्वरूप नहीं है मनुष्य होना। तो पहले तो यह ही बुद्धिमें आये कि मैं मनुष्य नहीं, मैं तो ज्ञानमात्र हूँ तो धर्मका रास्ता मिलेगा। चूंकि मनुष्य पर्यायमें हूँ इसलिए मनुष्यको ही कह रहे।

४१७—पर्यायात्मबुद्धिमें शान्तिविरुद्ध कदमोंका वेग—

कल्याणका मार्ग और दुनियाकी लीला, ये दोनों परस्परकी जुदी-जुदी बात हैं। लोगोंसे कहें कि मैं मनुष्य नहीं हूँ लोग इस बात पर हँसेंगे, और ज्ञानियोंमें बात करे और कहे कि मैं मनुष्य हूं तो ज्ञानी मूर्ख समझेंगे इसे। इसे अपने स्वरूपका पता नहीं, बेचारा अज्ञानी है और जब देहको मान लिया कि यह मैं हूँ, मनुष्य हूँ तो सारी क्रियायें जो भी की जायेंगी सो गलत होंगी। जो बोलेंगे सो गलत, सही बात न आ पायगी। भले ही जैसे चोरों चोरोंमें किसी चोरको कौन बुरा कहता? झूठों झूठोंमें किसी झूठेको कौन बुरा कहता? ऐसे ही अज्ञानी पुरुष किसी अज्ञानीको कैसे बूरा कहेगा। ज्ञानी ही इस बातका निर्णय रखता है कि ऐसी स्थिति तो अज्ञानीकी होती है और यह स्थिति ज्ञानीकी है। जो मानता है कि मैं मनुष्य हूं, ऐसा जिसको श्रद्धान है उसे अज्ञानी कहते हैं, क्योंकि ये उपाधिके बिना नहीं होते। कर्म साथ हैं, देह साथ है, उस सब सम्पर्कमें यह मनुष्य पर्याय बनी। मैं आत्मा हूँ, ज्ञानमय पदार्थ हूँ। मेरा स्वरूप केवल एक ज्ञान ज्योति है। यह नाता अगर अपना ले मनुष्य परस्परमें फिर झंझट विवाद न रह सकेगा।

४१८—सम्यग्ज्ञानमें विसंवादका अभाव—

धर्मके नामपर जो आज इतनी कटुता है उसका प्रमुख कारण धर्मके मर्मको न समझकर अज्ञान होना है। सम्यग्ज्ञान जगनेपर कटुता नहीं आती। सम्यग्ज्ञान क्या? अपने आपको अपने अन्दर देखना सम्हालना, मैं क्या हूं। मैं ज्ञानमय पदार्थ हूँ। देखो थोड़े ही दिनोंका जीवन है। थोड़े समय बाद गुजरना है। गुजरे बाद यहाँका क्या काम देगा? तब क्या करना। जितना जीवन है उस जीवनमें अपनेको आत्माके नातेसे सोचना, विचारना, बोलना करना। एक नाता रखा कि मैं ज्ञानमय पदार्थ हूं। बस इसको दृष्टिमें रखकर वृत्ति बनेगी तो कल्याण होगा। कल्याणके मार्गमें पक्षपात नहीं है। कल्याणका मार्ग किसी मजहबके आधीन नहीं है। कल्याणमय आत्मा है। स्वयं आनन्दस्वरूप है और स्वयंको सम्हाल लें तो आनन्द मिलेगा, कल्याण मिलेगा। केवल एक अद्वैत ब्रह्मस्वरूप अंतस्तत्त्व ज्ञानज्योति जिसके बारेमें इतना भी विकल्प न हो कि यह मैं हूँ और इसका ही अनुभव चले। यह मैं एक हूँ, इतना भी विकल्प न हो और सोऽहं होनेका अनुभव चले, ऐसी स्थिति बने उसे कहते हैं, ज्ञानी, मोक्ष-मार्गी। ऐसा भव्य जीव संसारके संकटोंसे अवश्य छूटेगा। तो अपनी बात सोचना है कि मुझमें परिणतियाँ होती हैं, श्रद्धा बनती है, पर यह तो देखो कि मेरा स्वभाव क्या है? मेरा स्वभाव केवल एक ज्ञानज्योतिमात्र। केवल प्रतिभास चैतन्यस्वरूप है। और कुछ मेरा स्वभाव नहीं, बाकी बातोंपर अहंकार नहीं. बल्कि खेद होना चाहिए। क्यों और बातें चित्तमें आती हैं? मैं एक ज्ञानमय पदार्थ हूं। तो आत्माका स्वभाव, उपादानका स्वभाव, मेरा स्वभाव एक प्रतिभासस्वरूप जानन देखनहार यह मैं हूं। जहाँ मात्र देहको निरखकर यह मैं हूं वहीं राग और द्वेष, इष्ट और अनिष्ट, मेरे और पराये सारेके सारे उपद्रव घर करने लगते हैं और जहाँ यह देखा कि मैं देहसे निराला, कषायोंसे निराला, शान्तिका

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

निधान ज्ञानमय पदार्थ हूं, जैसे मैं वैसे सब, जैसा मैं वैसा प्रभु, जैसा प्रभु वैसा मैं। किसकी दृष्टि रखकर बात की जा रही है ? बाहर नहीं भीतर स्वरूपमें। मैं वह हूं जो हैं भगवान, जो मैं हूं वह हैं भगवान, यह स्वरूप देखकर निहारो। ऐसा नहीं कि जो बाहरी रूप है उससे अपनी तुलना की हो कहीं-अन्तः स्वरूपसे तुलना करें प्रभुकी, क्योंकि बाहरी स्वरूपमें तो अन्तर है। भगवान तो वीतराग हैं अनन्त आनन्दके निधान हैं, प्रकट विशुद्ध चिदानन्द रूप है और यह मैं चौरासी लाख योनियोंमें घूमकर आया हुआ,विकल्प करने वाला, मेरी और प्रभुसे क्या तुलना हो सकती है ? बड़ा अन्तर है। पर स्वरूप देखा जाय तो स्वरूपमें अन्तर नहीं। मैं भी ज्ञानस्वरूप, प्रभु भी ज्ञान स्वरूप। यहाँ विषय कषाय उमड़ते हैं तो संसारमें रुलना होता है। प्रभुमें विषय कषाय रंच नहीं हैं, इसलिए वें आनन्दघन रहा करते हैं।

४१९—उपादानका स्वभाव और वर्तमान परिणमन

हमें अपनेमें यह सोचना है कि मैं हूं क्या और बन क्या रहा हूं ? ये दो निर्णय बनाना है, मैं हूं क्या ? मैं निरपेक्ष स्वरूप ; अपने सत्वके कारण हूं एव ? एक ज्ञानमय पदार्थ। और, हो क्या रहा हूं? नाना विकल्प, नाना कषाय, इष्ट अनिष्ट बुद्धि, मेरे तेरेके परिणाम। तो यहाँ एक प्रश्न होता कि मेरे स्वरूप में नहीं है विकार, मेरे स्वरूप में नहीं है कषाय, मेरे स्वरूपमें नहीं है उलझन, तो यह उलझन बन कैसे गई ? देखो जितनी विषमतायें होती हैं, जगतमें वे किसी पर पदार्थका निमित्त पाकर होतीं हैं। अपने आप सहज तो निरपेक्ष तथा स्वयं विशुद्ध रहता है। पर गड़बड़ी जितनी होती है वह परका निमित्त पाकर होती है। यहाँ पर भी इस बात का ध्यान रखना कि हममें रागादिक विकार जो भी जगते हैं वे निमित्त पाये बिना नहीं जग सकते, निमित्त पाकर ही जगते हैं, फिर भी निमित्तभूत पर पदार्थ इस विकार रूप परिणति को नहीं करता। प्रत्येक वस्तु स्वतंत्र है। एक थोड़ा सा उदाहरण मोटा समझ लो श्रोता और वक्ता। वक्ता श्रोताकी कोई परिणति करता है क्या? अगर वक्ता श्रोताकी परिणति कर देता होता तो सभीकोज्ञानी बना दे,सभीकोसन्मार्गी बना दे तो वक्ता नहीं करता कुछभी श्रोताओंको। तोक्या श्रोता वक्ता मेंकुछ करता है।वह भी कुछ नहीं करता मगर श्रोताओंमें जो चेष्टा चल रही हैं, जिसका जैसा उपादान है, कोई अच्छे भावसे सुनता है, कोई अन्यभाव लेकर सुनता है, कोई ज्ञानकी दृष्टि कर लेता है कोई दूकान मकान मोह चक्करमें अपना दिमाग उलझाये हुए है। यह जो परिणति श्रोताओंकी है वह उनकी योंग्यता से है और वक्ता जो कह रहा, बोल रहा वक्ता की योग्यतासे है वह, पर निमित्तनैमित्तिक सम्बंध तो देखिये-वक्ताका निमित्त न हो तो श्रोता लोग इस स्थितिमें कहीं जुड़े बैठे मिलेंगे और क्या ऐसी चेष्टा करते मिलेंगे और श्रोता न हो तो वक्ता क्या ऐसी चेष्टा करता हुआ दिखेगा ? एक दूसरेंका कुछ न करके भी निमित्त नैमित्तिक योग से यह सब चल रहा है। ऐसे ही इस आत्मामें कर्म कुछ नही करते , कर्म अजीव है, कर्म की परिणति कर्ममें है, कर्म जो कुछ करेंगे वे अपने अचेतन रुप ही करेंगे, जीव जो कुछ करेगा वे अपने अचेतन रूप ही करेगा, दोनोंका काम अलग अलग अपने अपनेमें है फिर भी जब कर्मका अनुभाग उदयमें होता तो जीवमें ज्ञानकी दिशा मुड़ जाती है और और ढ़ंग से ज्ञान उपचरित होता है तेरा मेरा इष्ट अनिष्ट। यह सब निमित्तनैमित्तिक वश होता।

४२०—वस्तुस्वातंत्र्य व निमित्तनैमित्तिक योगके यथार्थ परिचयका फल ज्ञानमात्र अन्तरतत्त्व के दर्शनका लाभ

यहाँ वस्तुस्वातंत्र्य व निमित्तनैमित्तिक योगकी बातें ध्यानमें इस वक्त रखी जानी हैं, किसमें विकार होता है? जीवमें विकार रागद्वेष विभाव होता है, तो हो मगर ये स्वभाव नहीं हैं। स्वभाव तो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जीवका वह है जो प्रभुका स्वरूप है, पर हो रहा है यह निमित्तनैमित्तक योगसे । इस प्रसंगमें यह भी जानना कि उस प्रकार का निमित्त हो तो रहा है । कर्म बाँध रखे, सत्तामें पड़े हैं । वे कुछ भी कष्टके कारण नहीं होते, जब कर्मका विपाककाल आता है तब विकार बनते है । उदाहरण दिया गया है एक । जैसे किसी पुरूषका विवाह ७–८ वर्षकी कन्याके साथ हो गया तो वह कन्या पुरुष के विकारका कारण नहीं बन पाती । जब स्वयं वह जवानी पर होती है तो वह पुरुषके उपभोग्य होती है विकारका कारण बनती है । ऐसे ही कर्म बाँध रखा जीवने, वे कर्म बंधे है, सत्ता में पड़े हैं, उनसे जीवका बिगाड़ नहीं होता । जब वे कर्म अपनी जवानी पर आते, उदयकाल होता, अनुभाग खिलता उस समयमें यह जीव अपनेमें विकार परिणाम करता है । प्रत्येक पदार्थका परिणमन खुदका खुदमें है, मगर विकारभाव जितने भी होते हैं, वे निमित्त पाकर ही होते हैं, निमित्त पाये बिना नहीं होते । इसमें हमको मार्ग दिखेगा । मेरेमें राग मेरे स्वरूपसे नहीं है, यह तो कर्मका प्रतिविम्ब है । यह मैं नहीं, मैं ज्ञानमात्र हूं । देखिए हर एक विधिसे हर अनेक ढंगोंसे समझकर बात यह चित्तमें लाना है कि यह मैं नहीं । मैं ज्ञानमात्र हूं केवल ज्ञानज्योति ।

४२१ मनुष्यभवमें प्राप्त उत्कृष्ट मन आदि साधनोंका सदुपयोग कर सहज परमात्मतत्वकी उपासनासे जीवनकी सफलता—

यह मनुष्यभव बड़ी कठिनाईसे मिला । सब लोग जानते हैं जगतके जीवोंपर दृष्टि पसारकर देखो एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय कीड़ामकोड़ा पतिंगें, पशुपक्षी, इन सबसे मनुष्य कोई श्रेष्ट जीव है या नहीं । और मनुष्य बहुत होते नहीं । अन्य जीव अनन्तानन्त हैं । पर्याप्त मनुष्य गिनतीमें होते है । इतना कठिनभव हमने पाया और इस भवको पाकर यहाँ आवरण बना रहे हैं कि मैं यह हूं, मैं अमुक हूं, व्यापारी हूं, अमुक हूं । यह बड़ा भारी अंधकार है । बड़ा अज्ञान है । ऐसी श्रद्धा रहते हुए कल्याण नहीं हो सकता । या यों कह लीजिए कि जिसको यहा यों समझा जा रहा उसकी सारी पोजीशनकी बिदाई करनी पड़ती है, तब यह अंतः एक विशुद्ध ज्ञानज्योति रूपमें अपने दर्शन करता है तब ही कल्याणका मार्ग मिलता है । तो मूल बात यह है कि अपने आपकों ऐसा अनुभव करें कि में ज्ञानमात्र हूं । जाति, कुल, देह, रूप, विद्याबल, ऋद्धि सम्पदा इन सबका नाता तोड़ना पड़ेगा । तब ज्ञान उत्पन्न होता है । जिसको ज्ञान है उसको आनन्द है । उसे कभी आकुलता नहीं होती । तब ही तो कहा है कि "गेही पै गृहमें न रूचे" याने जो ज्ञानी गृहस्थ है, श्रावक है वह घरमें रह रहा, पर घरमें आशक्त नहीं होता । एक तो यों सोचना कि घर मेरा नहीं हैं यह तो भगवानका है । भगवानकी लीला है । प्रभुका बाग है इसलिए रति न करना, ऐसा सोचकर उसका घरसे मोह नहीं हट सकता, क्योंकि खुद को तो जाने पहले कि मैं खुद क्या हूं । जब खुदके स्वरूपका परिचय होगा तब यह बोध होगा कि ओह मेरा कुछ नहीं, यहाँ तो ये सारी बातें कीचड़ हैं । उससे तो हम बचना चाहते हैं और उसमें भगवान को लपेटना चाहते हैं । भगवान भी निर्लेप मैं भी निर्लेप । भगवान भी अलखनिरञ्जन, मैं भी अलखनिरञ्जन, स्वरूपको देखो, स्वरूपदर्शन करनेसे यह विदित होगा कि मेरा तो परमाणुमात्रभी कुछ नहीं है । और तब भगवानके प्रति सच्ची भक्ति उमड़ेगी और भगवानके स्वरूपकी महिमा विदित होगी । ओह तीनों लोकके जाननहार, तिसपर भी अपने आनन्दमें सदा मग्न । कभी किसी प्रकार की जहाँ व्यग्रता नहीं । ऐसा प्रभुस्वरूप जयवंत हो ।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

४२२—आत्मस्वरूपके निर्णयमें भगवत्स्वरूपके निर्णयकी सुगमता—

अपने स्वरूपका निर्णय होने पर प्रभुस्वरूपका सच्चा निर्णय होता है और प्रभुस्वरूपका निर्णय होने पर अपना निर्णय होता। इसमें थोड़ी सी जरा असुविधा है, क्योंकि जितना पर पदार्थोंका परिचय चलता है वह खुदके अनुभवके आधार पर चलता है। जहाँ अपनेमें कैवल्य स्वरूपके दर्शन हुए ज्ञानद्वारा भगवानके आनन्दका अनुमान होता है। अपनेमें आनन्द हुए बिना भगवान अनन्त आनन्द—स्वरूप हैं, यह विश्वास नहीं बन सकता। खुद तो हों दुःखी और किसी भी प्रकार खुदके आनन्दकी झलक कर न पायें तो भगवानके आनन्दका अनुमान नहीं किया सकता। जैसे कोई चौबेजीकी पेड़ेकी मशहूर दूकान है। उसके नामी पेड़े हैं। उन पेड़ोंमें खोवाकी मात्रा अधिक, बूरेकी मात्रा कम, सिकाई अधिक, बड़े स्वादिष्ट, ऐसे पेड़े हैं। तो कोई धनिक पुरुष उन पेड़ोंको रोज-रोज एक किलो खरीदकर छक खाता है, और कोई गरीब उस दूकानमें एक दिन आधी छटाक ही मिठाई (पेड़ा) खरीदकर खा सका। तो भले ही वह आधी छटाक ही खा सका पर स्वाद तो वही आया जो छककर खाने वालेको आया और फिर उससे रोज रोज छककर खाने वालेके स्वादका अनुमान तो कर लिया कि यह ऐसा स्वाद रोज रोज लिया करता है। यह एक मोटा आदमियोंकी समझमें आनेवाला दृष्टान्त मात्र है। ऐसे ही खुदमें थोड़ा भी आनन्द न जगे तो भगवानके आनन्दका अनुमान नहीं किया जा सकता। वह केवल बात ही बात रहेगी कि भगवान आनन्दमय हैं। खुदमें कुछ आनन्द जगे तो भगवानके आनन्दका अनुमान बनेगा। वह आनन्द कैसे जगे, उसकी दृष्टि बनाना है। थोड़ी देरको बनेगी, थोड़ी बनेगी मगर, उससे यह भान तो हो जायगा कि प्रभु इस स्थितिमें रहते हैं जिससे वे आनन्दमय रहा करते हैं, उसका उपाय यह ही है कि अपने आत्माके स्वभावका ध्यान करें। मेरा स्वभाव क्या, स्वरूप क्या ? मैं चेतन हूँ। मेरा काम चेतन भरका है। केवल जानने भरका है। प्रतिभास होना, इससे आगे मेरा काम नहीं। अच्छा, जो मेरा काम नहीं वास्तवमें और उस काममें मैं हाथ दूं, उस काममें मैं दखल दूं। उस काममें मैं अधिकार समझूं तो इसमें व्यग्रता रहेगी या शान्ति ? वह अनधिकार चेष्टा है। मेरा अधिकार नहीं है कि मैं परमें कुछ कर लूं, क्योंकि मेरा स्वरूप तो केवल शुद्ध प्रतिभासका ही है। हाँ पड़ गया बीच कर्मोदयमें विकार मुझमें ही बन रहा, लेकिन इस विकारपर मेरा अधिकार नहीं। स्वभावपर अधिकार है मेरा। स्वरूपपर मेरा वश है, विकार पर मेरा वश नहीं, विकार पर तत्त्व है। तो विकार हटेगा कैसे ? स्वरूपको सम्हालें तो विकार अपने आप हट जायेंगे। जैसे दर्पणके सामने हाथ हिलाता गया तो दर्पणमें प्रतिविम्ब आया। दर्पणमें निजकी ओरसे ऐसा अधिकार नहीं कि वह प्रतिविम्ब बना ले। बना वह दर्पणमें हा लेकिन सामने हाथका सन्निधान पाकर दर्पणमें प्रतिविम्ब आया। दर्पण जानकार नहीं है अन्यथा वह अपनेस्वरूपकी ओर मुड़ता तो प्रतिविम्ब मिट जाता, वह हाथ भी हट जाता, लेकिन यहाँ आत्मामें जो विकार हुआ, प्रतिविम्ब हुआ वह कर्मरसका प्रतिविम्ब है। आत्मा जाननहार है, ज्ञानवान है, वह अपने स्वरूपको सम्हालता है। मैं ज्ञानमय हूं, यह कर्मरस, कर्म कलंक, विकार ये मेरे कुछ नहीं। जहाँ अपने ज्ञानस्वरूपका अनुभव किया वहाँ ये विकार झड़ जाते हैं। कर्म भी हट जाते हैं और मुक्ति निकट हो जाती है।

४२३—आत्मस्वरूपकी सम्हालमें आत्मविजय—

हमआपकी विजय है तो एक अपने आपके स्वरूपका वास्तविक ध्यान करनेसे ही है, औरप्रकारसे विजय नहीं है। बाकी काम तो गोरखधंधा है। जैसे बच्चोंके खेलनेका एकगोरखधंधा होता है। उसमेंछल्ले एक दूसरेसे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

इस तरह फसे रहते हैं कि उन्हें ज्यों ज्यों निकालो त्यों त्यों फसते जाते हैं, वे सुलझ नहीं पाते । ज्यों ज्यों उनके सुलझानेका प्रयत्न करो त्यों त्यो ही वे उलझते जाते हैं। तो ऐसा ही गोरखधंधा यहाँ संसारमें चल रहा है । लोग ऐसे गोरखधंधेमें फसे हैं कि एक समस्या सुलझाते तो दूसरी समस्या फिर उलझ जाती है । ज्यों ज्यों उन समस्यावोको सुलझानेका प्रयत्न करते त्यो त्यों वे और भी उनमें उलझते जाते हैं । परिणाम यह होता है कि वे उस गोरखधंधेसे कभी छुटकारा नहीं पाते । उन समस्यावोंके सुलझाने सुलझानेमें ही सारा जीवन बीत जाता है । जैसे कभी किसीने सोचा था कि इतना धन इकट्ठा करलें फिर आरामसे धर्मध्यानमें अपना समय बितायेंगे, पर होता क्या है कि उतना धन हो जानेपर कहीं सरकारके भय, कहीं चोर डाकुओंके भय, कहीं और कोई उलझन सामने खड़ी हो जाती है, परिणाम यह होता है कि उससे निकलना नहीं हो पाता है । तो भाई यहाँके ये बाहरी काम, ये बाहरी संग्रह, विग्रह हमारा मार्ग साफ न करेंगे । हमारा मार्ग एक ज्ञान ही साफ करेगा । ज्ञानबलसे ही अपने आपको सम्हाल कर पायेंगे । सो ज्ञानोंमें लोकोत्तम ज्ञान, सर्वोत्तम ज्ञान यह है कि हम अपनेमें यह अनुभव करें कि मैं ज्ञानमात्र हूँ, ज्ञानघन हूं, आनन्दमय हूं, और कुछ रूप मेरा नहीं । इस बातकी दृढ़ता जितनी जितनी बढ़ती जायगी उतना उतना ही हमारे आत्मामें आनन्दका विस्तार बढ़ता जायगा ।

४२४ आत्मविज्ञानसे अध्यात्मिक हल करनेका अनुरोध—

कुछ भी बात सुनना है तो, शास्त्र हो रहा है, सुनना चाहिए, ऐसा भाव बनाकर न सुनें किन्तु कोई मेरी बात है, मेरा कोई कष्ट दूर होगा । कोई हमको शान्तिका मार्ग मिलेगा, मुझे अपनी बात सुनना है, ऐसा ध्यान बनाकर सुने । और जगतमें पहला काम क्या ? जो लोकमें बहुत एक महत्व का भी कहलायें ऐसा यश बढ़ाना, धन बढ़ाना, लोकोपकार करना । सब तरहके कार्य किया सब तरह के कार्य करनेपर भी चित्तमें यह अनुभव करके रहे होंगेकि शान्ति तो मिली नहीं और अशान्तिके काम कितने ही और सामने खड़े हैं। तो आज एक दृढ़तापूर्वक ऐसा उपयोग बनायें कि हम को तो हल निकालना है कोई कि जिससे मेरा दुःख सदाके लिए टल जाय । ऐसा चित्त बनाकर अपनी बात सुनना है । देखो लोग मानते हैं कि जो बात विज्ञानपर उतर जाय वह एक तथ्य बात है । अच्छा तो विज्ञानसे ही शुरू करो । कोई वस्तु है अकेली, केवल, प्योर । तो केवल मात्र वही वही हो, जिसमें दूसरी वस्तुका कोई मिलाप न हो तो वह किस प्रकार रहता है, यह भी जानना होगा, और उस एक वस्तुके निकट कोई दूसरी वस्तु रखी जाय, उसमें मिला दिया जाय तो फिर उस मूल वस्तुका क्या परिणमन होता, क्या परिस्थिति होती ? यह भीं जानते होंगे विज्ञानसे । बस यहीं विज्ञान अपने आपमें घटित हो । फिर होने का विधान सब लोग घटित कर लेगें कि मैं हूं क्या और गड़बड़ मुझमें क्या व क्यों हो रही है ।

४२५ अपनी केवलताके बोधमें कल्याणमार्गका दर्शन—

मैं जो कुछ भी हूं थोड़ा बहुत तो समझ है ही कि मैं ज्ञानमय पदार्थ हूं । जो भी मैं हूं वह यदि मैं अकेला ही होऊं, मेरे साथ कुछ न लगा हो । कोई भी दूसरी वस्तु न लगी हो तो जैसे वर्तमान समयमें क्या क्या दूसरी चीज लगी है ? शरीर लगा है, कर्म लगे हैं, बाहरी संग परिग्रह लगा है, ये ये चीजें मैं कुछ नहीं हूँ । केवल खालिस प्योर मैं ही हूँ । अकेला ही मात्र में जो कुछ हूं अपनी सत्ता से वही वही होऊं, रहूं तो मेरी क्या स्थिति होती है । और मेरे साथ कोई दूसरी चीज लगी तो मेरी क्या परिस्थिति बनती है ? बस वही एक विज्ञान है भीतर जो समझ बनेगी ज्ञान द्वारा उससे सब निर्णय

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बनेगा और फिर एक हल निकलेगा ऐसा कि इस जीवको त्वरित कल्याणका मार्ग मिलेगा। अब यह ही बात एक मानो सुननेमें कुछ कठिन सी लगे या उस ओर चित्त न लगे तो अपने बारेमें यह निश्चय बनालो कि फिर इसका होनहार आगेका कोई शान्तिका उपाय न बन पायगा बाहरी पदार्थोंमें ही उपयोग लगा लगाकर हम क्या लाभ पा लेंगे। अब तक अनादिसे यह ही तो करते आये। अनादिकी बात छोड़ो, जबसे इस भवमें आये तबसे लेकर इस उम्र तक क्या क्या नहीं किया। क्या क्या बात नहीं हुई पर उसका फल क्या रहा ? आज अगर कोई ध्यानमें भरा पूरा सा है, लोकदृष्टिसे बड़ा है, धनिक है, चला है, यश प्रतिष्ठा है, तो ऐसी स्थितिमें चाहे यह बात कम समझमें आये लेकिन संसारके ये साधन ये स्थिर साधन नहीं है। दुःखके बाद सुख, और सुखके बाद दुःख, यह चक्र संसारमें परिवर्तित होता रहता है, तो बाहरमें तो कोई सारकी बात है ही नहीं। बने सहज व ठीक है मगर मुख्यता तो देना है अपने आपकी ओरके लिए। अपनी केवलता ध्यानमें लो अवश्य कल्याणका मार्ग मिलेगा।

४२६—अपनेमें गुजर रहे विभावोंकी समालोचना—

भैया इतना तो परख लो कि मुझपर गुजर क्या रहा है, और जो कुछ इस समय गुजर रहा है, वह भार मिट कैसे सकता है ? बस यह ही बात अध्यात्मग्रन्थोंमें बतायी जाती है। पहिले देखो मुझपर गुजर क्या रहा है ? यह बात भी तब समझमें आयेगी जब यह मालूम पड़े कि मैं हूं क्या ? तब यह ध्यानमें आयगा कि यहाँ यह गुजर रहा है बीत रहा है मुझपर, तो मैं हूं अपने स्वरूपसे, सत्त्वसे केवल जाननहार एक पदार्थ, बड़ा महत्त्वशाली तीन लोकमें श्रेष्ठ पदार्थ। जो समस्त लोकालोकको जान सके, जिसको एक ज्ञान कला पड़ी हुई है वह इस निज भगवानकी महिमा बता सकता है। पर खुद ही अपने स्वरूपसे उल्टें चलें, विषय कषाय परिग्रह चित्तमें आयें तो हालत तो बिगड़ ही रही। तो कुछ अपनेको अपना ही अकेला जिम्मेदार समझकर यह बात समझना है, यह हल निकालना है कि मुझपर गुजर क्या रहा है और यह गुजर कैसे मिटेगी ? तो इसके लिए दोनों बातें समझनी होंगी कि आखिर मैं सहज क्या है और जो बात मुझ पर गुजर रही है, बीत रही है वह हुई कैसे ? यह बात समझने पर अनुभव करना आसान रहेगा। मुझपर गुजरते हे रागद्वेष, विकल्प, कल्पना, उपयोगका भटकना यहाँ वहाँकी बात सोचना, लेना, कहाँ कहाँ चित्त जाना, किस-किस ओर अपने आपको लगा देना और अपनेमें अपनेको रीता कर देना, ये बातें गुजर रही हैं अपनेपर, जिससे कि बहुतसी विपत्तियाँ हम आप पर चल रही हैं। तो यह गुजर कैसे कर रहा है ? मेरा स्वरूप तो आनन्दका है, फिर मैं ऐसा विह्वल होता फिरूं ? कोई परका सम्बंध है, जिसका निमित्त पाकर यह मैं अपनेमें अपना गलत प्रभाव बना लेता हूं, बस यह बात चल रही है। वह चीज क्या है दूसरी, जिसका सम्बंध होने पर मैं अपने आपमें अपना गलत प्रभाव बनाया करता हूँ। वह दूसरी चीज बताया है कर्म। उस कर्मके बारेमें सभी लोग कुछ न कुछ अपना अभिप्राय बताते हैं। कर्म, तकदीर, रेखा, भाग्य, मगर कर्म क्या है ? उसका स्पष्ट दर्शन, और वस्तुका वर्णन, समय-समयकी हालतका वर्णन, जैन दर्शनमें जो बात की गई है उसकी जानकारीके बाद, प्रभुमें श्रद्धा इतनी दृढ़ होती है कि अवश्य कोई प्रभु थे, जिनकी दिव्य ध्वनिसे, जिसकी परम्परासे यह वाणी चली और आज भी बहुत कुछ नष्ट किए जानेके बाद भी जो थोड़ा बचा है जैन दर्शन साहित्य वह एक अनूठी चीज है। और, एक कर्मके बारेमें, जीवके बारेमें, पुद्गल अणुवोंके बारेमें, चरित्रके बारेमें और और प्रकारसे व्याकरण छंद साहित्य आदिक सभी विषयोंमें जो वर्णन है उसका कोई निष्पक्ष विद्वान अध्ययन करे तो सहसा उसके मुखसे निकल जायगा कि अगर जैन साहित्य

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

नहीं तो साहित्यकी कोई पूर्ति नहीं। सो इस आर्षका अध्ययन करें, उसीमें ही कल्याणकी बात प्रकाशमें आ सकती है।

४२७—कर्मपरिकर—

ये कर्म क्या चीज हैं और कैसे साथ लगे हैं, ये कोई नाम मात्रकी चीज नहीं हैं, ये कोई परिणामरूप वस्तुगत चीज हैं। जो यहाँ हम देखते हैं काठ पत्थर वगैरह ये हैं वास्तविक, जिस प्रकारसे भी हैं, जिस पर्यायमें भी हैं, ऐसे ही ये कर्म वास्तविक हैं कि मेरे जीवमें, समस्त प्रदेशोंमें अवगाहित होकर चलते रहते हैं, और उनका एक आच्छादन बना हुआ है। मगर वे हैं सूक्ष्म। इतने सूक्ष्म हैं कि जीव एक भव छोड़कर दूसरे भवके लिए जाय, जन्म ले तो यह जीवतो जीव ही है, बड़े वेगसे उस जन्मस्थानपर पहुँचता है, और उसके साथ कर्म भी। जहाँ वज्र आड़े आये, पर्वत आड़े आये तो जैसे जीव नहीं रुकता उसमेंसे भी निकलकर चला जाता है तो साथ ही कर्म भी नहीं रुक सकते। इतने सूक्ष्म कर्म हैं जो इस जीवके साथ लगे हैं, उनमें क्या गुण हैं, क्या अनुभाग है, कैसी शक्ति है, कैसी प्रकृति पड़ी है, इस सबका विस्तार जैन दर्शनमें है। अध्ययन करनेसे ऐसा साक्षात् लगता कि लोक कर्मकी फैक्ट्री चल रही, उसकी बातउसमें चल रही और उसका सन्निधान पाकर मेरेमें यह गड़बड़ी बन रही, तो यह गड़बड़ी मिटे कैसे ? यह गड़बड़ी हम उस प्रभावमें आते हैं और उसकी महिमा गाते हैं व्यवहार में बोलकर उसके रसमें आनन्द मानते हैं। इसीलिए तो कर्म हामी हो रहे है। तो मैं अपने स्वरूपको सम्हालूँ और वहाँसे उपेक्षा कर दूँ और जैसे मैं कर्मरसका स्वाद लेकर अब तक भटका, न लूं स्वाद कर्मरसका और ज्ञानरसका ही स्वाद लूँ, मेरा जाननमात्र ही स्वरूप है, केवल जाननहार ही मैं हूं, ऐसा मैं अपने इस ज्ञानप्रभु भगवानका अगर सहारा लूँ तो यह कर्मरस निष्फल हो जायगा। ये संसारकी बाहरी बातें इस जीवके लिए कुछ नहीं हैं, बल्कि आफत हैं, मेरे लिए, मैं ही अपना सर्वस्व हूँ, भगवंत हूँ, ज्ञानानन्द निधान हूँ, इस अद्वितीय जगतमें मेरे कोई कुछ नहीं। जो मेरा सहज स्वरूप है परके सम्बंध बिना अपनी सत्ताके कारण जो कुछ मेरी विभूति है, वैभव है, सर्वस्व है, स्वरूप है बस वही मेरा परम पिता, मेरा सर्वस्व मेरा भगवान है, दूसरा कोई मेरा रक्षक नहीं। ऐसा जब ध्यानमें आयगा तब अपनी अभिमुखता होगी, दृष्टि बनेगी, उस ओर लगन चलेगी, उसका ही बनेगा मानो उपयोगमें भगवान अंतस्तत्त्वका ही बनकर रहेगा तब संसारमें उसके लिए कोई संकट न सतायेंगे।

४२८—संकटोंकी मुद्रा और निःसारता—

भैया शान्तरूपसे देखे हम पर संकट क्या है ? सभी लोग सोचें—संकट सब मान रहे, कोई किसी ढंगसे मान रहा कोई किसी ढंगसे। दूसरा जिस क्रमसे मान रहा उसकी कोई कीमत नहीं कर रहा। दूसरा भी अपनी धुनमें है। बाह्य पदार्थोंमें जिसको न साथ लाये हैं, जो न मेरे साथ जायेंगे। यहाँ दो दिनका खेल तमासा है, कुछ दिनोंका संगम हुआ है। अनन्त कालके सामने यह १००—५० वर्षका जीवन कोई की मत रखता है क्या ? कितना काल गुजर गया। उस कालकी कोई आदि थी क्या ? क्या कोई समय था ऐसा जिसके पहले कोई समय न हो ? किस दिनसे समय शुरु हुआ है, ऐसी कोई कल्पनामें बात आ सकती क्या ? समयकी आदि नहीं। अनादिकालसे समय चला आ रहा है और अनादिसे ही हम चले आ रहे हैं, और अनादिसे ही संकट चले आ रहे हैं, अनन्त काल हमारा व्यतीत हुआ। उस अनन्त कालके सामने ये १००—५० वर्ष कोई कीमत रखते हैं क्या ?

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आज इस १००—५० वर्षके कालके लिए ही अपना उपयोग सर्वस्व बाहर ही बाहर लगा रहे हैं। अपनी सुध नहीं कर रहे। भैया बड़ा तो वह है कि जो अपने आपके भगवान आत्माकी सुध लेवे, बड़प्पन उसीका है। ऐसा बड़ा बने, महान बने, वास्तविक महान बने और सर्व संकटोंसे मुक्त हो जाय, ऐसा महान बने। यह केवल बात ही बात नहीं है, गप्प नहीं है। यह सुगम बात है। हो सकती है यह बात, पर थोड़ा सा उस ओर ध्यान रखनेकी जरुरत है। थोड़ा कुछ उपयोग लगानेकी जरुरत है। इतनी बात हमको कठिन रहे, इतनी बात हमको मिल न सके यह बात असम्भव है। मिलेगी अपनेको बनेंगे सब काम, पर थोड़ा इस ४०—५० वर्षके इस बीचमें जो कुछ सामने आया है बस उसको मायारूप जानें, उसे सत्य न समझें, उसको अपना न जानें। ये सब मेरे लिए कर्तव्य नहीं हैं। थोड़ा इतना भी ख्याल करलें कि मरण तो निश्चित है। उसके बाद फिर क्या है? जब फिर इस जीवनमें भी उसके प्रति उपेक्षा हो, उसके बाबत उस तथ्य बातकी जानकारी बन रही तो इसमें बड़ा सुधार है और बड़े संकटोंकी निवृत्ति है।

४२९—विभाव और संकटोंकी अमौलिकता—

हाँ, तो बात क्या कही जा रही है? हम पर गुजर क्या रहा है? दुःख कष्ट। किस बातके? विकल्प करनेके। अन्यथा जरा अन्दरमें खोजें तो सही कि वह दुःख नामकी चीज है क्या? कहाँ पड़ा है वह दुःख? और, उस दुःखकी मुद्रा है क्या? यहाँकी चीजोंको हम पकड़ते हैं, देखते हैं और बताते जाते कि यह अमुक चीज है यह अमुक चीज। जरा दुःखके बारेमें भी तो बताओ, दुःखके मायने क्या है? क्या ढंग है? यह बड़ा दुःख मान रहा। क्या मान रहा? वह दुःख क्या है? दुःख ही समझमें नहीं आता। कह सब देते हैं कि हमको दुःख है, मगर क्या दुःख है सो नहीं बता पाते कि यह है वह दुःख। दुःख नामकी चीज कुछ नहीं। दुःख नाम है ज्ञानमें उल्टी जानकारी बननेका। दुःख नामको कोई वस्तु नहीं। ज्ञानमें विपरीत ज्ञानकी मोड़ बनाना दुःख है। ज्ञान तो अपना काम करता ना जाननेका. बस जानना ही उल्टे ढंगका होने लगे इसीके मायने है दुःख।

४३०—ज्ञानकी सही वृत्ति बनाकर आत्मकरूणा करनेका अनुरोध—

अहा, जब ज्ञान अपनी चीज है तो फिर यह प्राणी क्यों नहीं अपनेको समझता? क्यों इस ज्ञानकी उल्टी जानकारीके रूपमें इसकी घुड़दौड़ लगती? क्यों नहीं हम ठंडे दिलसे, शान्त भावसे अपने आपकी करूणाकी बात करते? बाहर ही बाहर क्यों रम रहे? क्या मिलेगा इस बाहरके कूड़ा करकटसे? जो कुछ भी है वह मेरा आत्मा भगवान, इस निधिके समक्ष मेरे लिए तो कूड़ा करकट है। आखिर दूसरे भी जीव है, उनके लिए सब कुछ है पर उसके लिए मैं मोह करुं, राग करुं कल्पनायें करुं तो बस वह तो मेरी बरबादीकी बात है, और फिर कितने दिनोंके लिए? थोड़ा अपनी ओर आना चाहिए और बड़ी रुचिपूर्वक रोज रोज अपने बारेमें अपनी बात सुनना चाहिए। जो बात आज कठिन लग रही वह एक दिन अत्यन्त सरल लगेगी, क्योंकि वह मेरी खुदकी बात कही जा रही है। अपने ही घरमें पड़ी हो चीज और अपनेको मिलना कठिन हो जाय तो उस चीजका उपयोग क्या। घरमें तो सब प्रकारकी चीजें रखी हों और दिमाग खराब हो जाय तो वह उन चीजोंका उपयोग तो नहीं कर सकता। ऐसे ही मेरे आत्मामें, भगवानमें अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त वैभव मेरे स्वरूपमें पड़ा है पर मैं उन्मत्त बन जाऊँ, मोहसे बेहोशी हो जाय, पागल हो जाऊँ तो मेरे घरमें पड़ा हुआ जो सर्वस्व है उसका तो मैं उपयोग नहीं कर सकता। क्यों पागल होऊँ, क्यों उन्मत्त बनूँ, क्यों बाहरमें इतना

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

आशक्त होऊं, सब कुछ देख डाला, अनन्त काल घूमकर अथवा इस जीवनमें बाहरी बातें देख ली फिर मैं क्यों बेहोश होऊँ, कोई बाहरी चीज मेरी नहीं, इतना अपनेमें अपनेको देखूँ तो कष्टका नाम नहीं। यह पूरा भगवान है यह आनन्दनिधान है। यह वही तो हैं जिनकी हम मूर्ति बनाकर पूजते। वे कोई दूसरे नहीं है याने वे कोई दूसरी जातिके नहीं हैं। एक ही वे चैतन्य जो कभी पहले संसारमें रुल रहे थे, उन्होंने अपने आत्माकी सम्हालकी सो ये संसारके सर्व संकटोंसे पार हो गए।

४३१ मन्दिरमें आनेका प्रयोजन निजानंद रसलीनताका दर्शन—

मन्दिरमें क्यों आना चाहिए ? अरे रात दिन उन परिग्रह प्रसंगोंमें, लगावमें दुःखी रहे ना, व्यग्र बने रहे, जगह जगह विकार किया। क्रोध, मान आदिक कषायें जगती रही। मैं कष्ट मानता रहा। तो प्रभुके स्वरूपका चिन्तन करनेके लिए कि प्रभु निर्लेप, निरञ्जन, एकाकी, अपने ही आनन्दमें तृप्त, ज्ञानरसका स्वाद निरन्तर ले रहे ये प्रभु, यह हैं सर्व सुखी, यह हैं अलौकिक, यह हैं आदर्श और यह मेरी ही जातिके हैं। जैसे ये बनें वैसा गुण मुझमें भी प्रगट हो सकता है। बस यही तो एक नाता हैं प्रभुसे हमारा, जिसके कारण यह भक्तका व्यवहार चल रहा। मानो प्रभु तो खूब बड़े हैं, अनन्त ज्ञान हैं, अनन्त आनन्द वाले हैं, सर्वोत्कृष्ट हैं सब कुछ बात है और यह नाता हम अपना नहीं समझ पाये कि ऐसा ही चैतन्यस्वरूप तो मैं हूं, यह नाता भर ध्यानमें नहीं आया तो भगवान बहुत भी बड़े बने रहें तो मेरे लिए क्या, और क्यों फिर मैं भगवानको पूजूँ ? क्या धरा है, लोग तो यह भी कह उठते हैं कि अजी क्या जरुरत पड़ी है किसी बड़े के पास जानेकी ? तो यह ही बात यहाँ भी हो जायगी कि ये भगवान बड़े हैं तो बने रहें, मुझे क्या जरुरत पड़ी उनके पास जानेकी ? बड़े हैं तो अपने घर रहें। लेकिन चूंकि उनसे हमारा स्वरूपका नाता है, यह बात समझमें आयी है कि आखिर चैतन्यस्वरूप हो तो वह हैं, चैतन्यस्वरूप ही हम हैं। यह ही बात जब निरूपद्रव हो जाती है तो यहाँ ही तो प्रकट होता है यह रूप। यह नाता जब ध्यानमें है तो भगवानके प्रति हमारी सही भक्ति बनती हैं, नहीं तो भगवानके बड़े होनेके कारण वे हमारे पूज्य नहीं, वे बड़े बने रहें अपने घरमें, पर हमारे चैतन्य जातिकी बात है और यह ही हमारा स्वरूप है, ऐसा बन जाता है, यह सब ध्यानमें आनेके कारण भगवान हमारे पूज्य बने हैं। तो उस स्वरूपको निरख कर हमें अपनेमें एक चैतन्यस्वरूप ही तो पाना है।

४३२ संकटोंसे छुटकारा पानेके उपायभूत ज्ञानकी गवेषणा—

जैसे प्रभु निजानन्द रसलीन हैं वही स्वरूप तो हमारा है। निर्णय करने के लिए चलें अब, कि हम किस तरह अपने अन्दरमें अपने प्रयोगसे प्रवेश करा सकें और एक अलौकिक बातमें जहाँ अनन्त गुणोंके वृक्ष हैं, फूल हैं, फल हैं, महक रहे हैं, बड़ा आनन्द जाग रहा है, इस एक अलौकिक उद्यानमें मेरा उपयोग कैसे प्रवेश करे ? बस रही-सही आयुमें यह ही काम करनेका है। दूसरी बात लक्ष्यमें न रहे। करना पड़े सब कुछ परिस्थितिवश तो वह बात अलग है। उसमें भी आप निर्लेप रहें। मगर मुख्य काम करनेका यह है कि अपने अन्तः बसे हुए भगवान आनन्दनिधान अपने आत्मतत्त्वको मैं सम्हालूं, वहाँ मैं रहूं, और भव भवके बाँधे हुए कर्मोंको जला डालूं मैं अपनेको भार रहित करूं, संकटोंसे मुक्त कर लूं बस एक यह ही जीवनमें लक्ष्य रखना है और इसके अनुसार चलना है। तो यही चीज इस प्रकरणमें बतायी जायगी कि मैं इन झंझटोसे किस ज्ञानद्वारा छूट सकता हूं और मुझे अपनेको किस ज्ञानद्वारा निरखना है कि हमारे संकट दूर हों ? इसके लिए दो बातें यहाँ ध्यानमें लावो। उपादान और निमित्त। उपादान तो यह कि जिसमें बातें बनती हैं, रागद्वेष शान्ति अशान्ति, जिसमें ये बातें बनती हैं,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

मेरे लिए यह मैं उपादान हूं और निमित्त क्या ? इस बातके बननेका, उस प्रकारके कर्मका उदय, उस प्रकारके कर्मका हटाव तो बनता है भलेके लिए निमित्त और उदय बनता है बुरेके लिए निमित्त। इतनी ही बात जब ध्यानमें आती है तो एक स्वभावदृष्टिके लिए प्रेरणा मिलती है कि ओह यह मैं नहीं। यह तो नैमित्तिक है। औपाधिक है, ऐक्सीडेंटल है। मैं तो यह बाह्यरूप हूं। ये अणु-अणु तैर रहे हैं उसके ऊपर मैं तो स्थिर ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मतत्त्व हूँ। जैसे किसी चौहट्टे पर एक बड़ा दर्पण लगा है, उस चौहट्टेसे अनेकों कार गुजरती हैं, अनेकों लोग गुजरते हैं, तो दर्पणमें भी वैसा ही प्रतिबिम्ब आता रहता है। वह प्रतिबिम्ब बाह्य है, नैमित्तिक है। दर्पणकी चीज नहीं। निमित्त नैमित्तिक योगका परिचय पा लेनेपर स्वभाव दर्शनमें बड़ी सुगमता मिलती है। जैसे दर्पण अपने आपकी ओरसे बिल्कुल स्वच्छ है ऐसे ही यह मैं भगवान आत्मा अपने आपमें अपनी ओरसे अपने ही कारण मैं तो एक स्वच्छ हूं। कष्टरहित हूं। भवभ्रमणरहित हूं। जैसे यह दर्पण अनुकुल सामनेका निमित्त पाकर नाना प्रतिबिम्बरूप हो रहा है ऐसे ही यह भगवान आत्मा पहले बाँधे हुए कर्मोका उदय पाकर जैसा जैसा वहाँ अनुभाग फूट रहा है उस उदयक्षणमें ऐसा यहाँ प्रतिफलन चल रहा है और उस प्रतिफलन के समय मैं ज्ञानी अपनी जानकारीकी उल्टी दिशा बना लेता हूँ। बस यह हो कष्ट है।

४३३ अन्तर्गत कष्टकी पराभावरुपता जानकर उससे निवृत्त होनेके पौरूषके प्रयोगका अनुरोध—

कष्ट कष्ट की तो सब बात करते हैं मगर कष्ट असलमें है मुझपर क्या इसकी जानकारी ही नहीं है लोगोंको। अरे जो कष्ट है ही नहीं उसको कष्ट बखानते हैं जैसे हमारा इतने धनका नुकसान हो गया। मेरा अमुक गुजर गया, या अमुक से मुकदमा लगा है, न जाने उसमें क्या होगा। मुझपर यह जाल रचा गया, मैं इसमें फंस गया, इन-इन बातोंको तो लोग कष्टका नाम देते हैं, पर ये तो कष्ट जरा भी नहीं, किसीका धन यहाँ न रहा, कहीं और जा रह चला गया, उसमें मेरे आत्माका क्या गिर गया ? अमुक था, न रहा, दूसरे भव चला गया तो उससे मेरेमें क्या गुजर गया ? या किसी चीजमें किसीने कुछ बात कर दी तो वह उसकी परिणति है, हो गई। उससे मेरे आत्मामें क्या गुजर गया। मेरेमें जो ज्ञानकी दिशा बदल गई, जानकारीकी दिशा उल्टी हो गई। स्वका ज्ञान नहीं कर पाया, स्वका जानन न रखा, बाहरी पदार्थोंके विषयमें नाना कल्पनायें बना बैठा हूं यही मुझपर दुःख है। इस निजकी विडम्बना आत्मा पर तो कोई अफसोस करता नहीं और बाहरी चीजोंके संग्रह विग्रह पर अफसोस करते हैं, तो भला ऐसी उल्टी जानकारी रखनेसे गुजारा न चलेगा। और, जैन शासनका इतना अपूर्व समागम पाने से लाभ कुछ न मिलेगा। तो यों समझिये कि जैसे कोई हाथी पाले और उसको कूड़ा करकट ढोनेके काममें ले या कोई रत्न पा ले और अपने पैर साफ करनेके काममें ले या कोई बर्तन मांजनेके लिए चंदनकी लकड़ीकी राख बनाकर काममें ले, तो जैसे यह मूढ़ता कहलायगी इसी तरह इस बड़े मनुष्यभवको पाकर जिसमें बड़ा ऊँचा ऊंचा ज्ञान मिला है, व्यापार धंधोंमें बहुत ऊंचाऊंचा ज्ञान मिला है यह ज्ञान आत्मा के बारेमें नहीं चल सकता ? ज्ञान तो है ना ? अनेक बातोंको तो हल कर सकते तो क्या अपने आपका हल नहीं कर सकते ? बस रुचि बदल दीजिए और चित्तमें यह ठान लीजिए कि मुझे तो इस आत्माको समझकर रहना है और अन्तः प्रकाशमें अधिकाधिक समय हमको इस मनन लगाना है। बस हमारा तो यह ही लक्ष्य रहा, अन्य हमारा कोई लक्ष्य नहीं। चूंकि घरगृहस्थीमें हैं तो करना सब पड़ेगा, किया जायगा, मगर लक्ष्य यह रहे कि हमारा अन्य कुछ नहीं। आत्मामें प्रकाश पाकर उसमें ही रमूं, बस यह ही मेरा एक लक्ष्य रहेगा।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

४३४ आध्यात्मिक विज्ञान द्वारा अध्यात्म निर्णय की हितकारिता—

जगतके काम किस तरह हो रहे हैं और मेरे आत्मामें काम किस तरह हो रहे हैं, ये सब परिचय विज्ञान द्वारा होते हैं, और जैसे भौतिक पदार्थोंका विज्ञान भौतिक बिज्ञान हैं, भौतिक विज्ञानसे ऐसी आश्चर्यकारी बातोंका निर्णय और निर्माण होता है ऐसे ही आध्यात्मिक विज्ञान द्वारा अपने आपकी बुराई भलाईका निर्णय और निर्माण होता है। तो जैसे भौतिक विज्ञानमें हम बुद्धि द्वारा कुछ समझते हैं और प्रयोग करते हैं ऐसे ही यहाँ भी विज्ञान द्वारा अपनेमें कुछ समझें और प्रयोग करें। बाहरी बातों मेंभौतिक विज्ञान चाहे कितना ही बढ़ चढ़ जाय आत्माके लिए, उसका फल शून्य है, और अपने आपमें विज्ञान द्वारा निर्णय और प्रयोग बनायें तो उसका फल बहुत हितकारी है। तब देखिये भौतिक विज्ञानमें निर्णयका आधार क्या रहता है ? मूल बात वहाँ दो हैं—उपादान और निमित्त। उपादानका अर्थ है कि जिस पदार्थमें काम बन रहा है वह होता है उपादान और निमित्त वह कहलाता है कि जिस दूसरे पदार्थके सन्निधान होनेसे उपादानमें वह काम बन रहा है उसे कहते हैं निमित्त कारण, जैसे कि आँगनमें इतनी छाया है तो धूपमय यह आँगन बना, प्रकाशमय यह आँगन बना तो यह भूमि तो उपादान है और निमित्त कारण सूर्य है। जैसे भूमि पर पुरुष की छाया पड़ी तो छाया की जगह छाया है, छायाका जो भू भाग है जहाँ परिणाम है वह उपादान और वह मनुष्य जिसका सन्निधान पाकर नीचे छाया बनी वह है निमित्त कारण। बड़े-बड़े रसायनोंमें मेल होता है और मेल करके कोई एक प्रभाव बनता है, तो जिस वस्तुमें प्रभाव बना वह तो कहलाता है उपादान और जिसका सम्बंध होने पर प्रभाव बने उसे कहते हैं निमित्त कारण। कोइ कठिन बात नहीं, घर की बातमें देखो रोटी सेंकी जाती है, पकती है तो रोटो एक कच्ची अवस्थाको छोड़कर पक्की अवस्थामें आयी तो उस पकनेका उपादान है वह आटा और निमित्त कारण है अग्नि ताप।

४३५ निमित्तका उपादानमें अप्रवेश—

यहाँ एक बात और समझें कि निमित्तनैमित्तिक का कुछ भी अंश उपादानमें जाता नहीं फिर भी ऐसा सम्बंध है कि निमित्त हो तो उपादानमें उसका प्रभाव बने, निमित्त न हो तो प्रभाव न बने। जैसे आदमी खड़ा है और नीचे छाया पड़ी है तो आदमीके शरीरका कोई भी हिस्सा रूप रस, गंध, स्पर्श, कोई भी चीज उस जमीनमें न आये, आदमी आदमी की जगह है, मगर ऐसा सम्बंध है कि आदमी के होने पर छाया होती न होता आदमी तो छाया न होती। ऐसे कुछ दृष्टान्त हैं, ऐसे ही जीव और कर्म इन दोनोंके परस्पर की बात है। जो पहले कर्म बाँधे उनका विपाक हुआ याने उन कर्मोंमें फल शक्ति हो गई थी, जब उस फल शक्तिका विस्फोट हुआ, उस कालमें जीवनमें विकार जगा तो विकार कहाँ जगा, रागद्वेष कहाँ हुए ? जहाँ हुए वह तो है उपादान कारण याने विकारका उपादान जीव है और कर्मोदयका सन्निधान पाकर हुआ तो कर्मोदय निमित्त है। यहाँ यह बात पायेंगे कि कर्म की कोई चीज आत्मामें गई नहीं, पर ऐस ही सम्बंध है कि उस कर्म विपाक सन्निधानमें ही विकार हो सका है। अब देखिये—जिस जीवको इस तथ्यका परिचय नहीं है जो यह सच्चाई है कि कर्मोदयका सन्निधान पाकर जीवके ज्ञानमें विकल्प जगा, तो यह विकार कर्म विपाकका प्रतिविम्ब है, जीव तो अपने आपमें अपनी सत्तासे विशुद्ध है, इस तथ्यका जिन्हें परिचय नहीं है उनका ज्ञान यह सोचता है कि मैं तो यह ही हूँ। और विकल्प जगा, रागद्वेष हुए, जो भी विकार हुए वही मैं हूं, जहाँ उसने कर्मरसको अपनाया, यह अज्ञानी, मिथ्यादृष्टि, मोही व्याकुल व्यग्र हो गया और अनेक कर्मोंका बंध किया और संसार में जन्म

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

मरण की परम्परा बढ़ाया। यहाँ भी कर्मका काम कर्ममें हुआ, जीव परिणाम जीवमें हुआ, मरणकी परम्परा बढ़ाया। आप यह देखें कि अपनी भलाई होनेकी तरकीब कितनी सी है ? जरा सी बात अपनेमें अपनेको सोचने की बात है, किन्तु इतनी बात न हो सकने से संसारकी इतनी बिडम्बना सिर लगा ली। अब भव भवमें घूमें, एकेन्द्रिय दो इन्द्रिय आदिक अनेक भवोंमें जन्म मरण हुए, कुछ कठिन उपद्रव. उपसर्ग ये इस जीवको मंजूर हैं, पर अपने आपके भीतरकी सच्चाईका परिचय करना इसे मंजूर नहीं हो रहा। कितना सुगम काम है। सारे संकटोंसे छूट जाना, और साथ ही यह भी विचारें कि सम्यग्ज्ञान प्रकाश है तो जितना जीवन हमारा अभी है वह जीवन भी तो शान्त रहेगा, यहां भी तो कल्पनायें न सतायेंगी, तो सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन एक ऐसा अमृत है कि जिसके पानसे अब भी लाभ है और आगे भी लाभ है।

४३५ भावक भाव्य योगमें निमित्त व्यापार होने पर भी निमित्तका उपादान में अप्रवेश—

यहां एक बात और समझानेकी है कि कर्म हमने पहले बाँधे थे हजारों करोड़ों वर्ष पहले और कर्म वे बँध गये थे और उसी समय उन कर्मोंमें फल देनेकी शक्ति भी निश्चित हो गई। लेकिन जब तक उनका उदय नहीं है तब तक उन कर्मोंके कारण इसको कष्ट नहीं होता। और और उदय वाले हैं कर्म प्रति समय, सो उनके कारण दुःखी हैं, पर जो कर्म बँधे हैं उदयमें नहीं आ पाये उनके कारण विकार नहीं होता। जब उदय होता तो उस कर्ममें बड़ा व्यापार चलता, उस कर्ममें बड़ा क्षोभ होता। तो निमित्त कारण यह व्यापार है इसी कारणसे इसे प्रेरक निमित्त कह देते हैं। वस्तुतः निमित्तकी कोई बात उपादानमें नहीं आयी।

४३६ वस्तुस्वातंत्र्यके परिचयकी मोहविध्वंसकता—

देखिये आध्यात्मिक विज्ञानको याने उपादान और निमित्त इन दो शब्दोंका अधिक प्रयोग होगा, उसकी परिभाषा खूब निश्चित रख लीजिए। जिसमें काम बने वह उपादान, जिसका कार्य हो वह उपादान, जिसकी अवस्था बने वह उपादान, बाकी वह दूसरी चीज जिसके होने पर विकार बनता है। जिसके न होनेपर विकार नहीं बनता वह दूसरी चीजनिमित्त कहलाती है। तो भौतिक बातोंमें यह बात घटा लो, आत्मामें घटित कर लो। आत्मामें एक बात और अधिक है कि चूँकि यह ज्ञानमय पदार्थ है, यह उपयोगस्वरूप है। उपयोग चलता हैं तो इसका एक आश्रयभूत कारण और लग जाता है। मायने जगतमें पड़े हुए जितने पदार्थ हैं, पञ्चेन्द्रियके विषयभूत जितने भी ये परिग्रह है ये निमित्त नहीं किन्तु हम इनका ख्याल करते हैं और कष्ट पाते हैं, विकार करते हैं तो ये आश्रयभूत कारण हैं। वस्तुतः देखो तो जगतमें प्रत्येक पदार्थ अपने ही स्वरूपसे है, पर रूपसे नहीं है। वस्तुस्वातंत्र्य ऐसाकि एक एक अणु अपनेमें पूरा है। किसी भी अणुकी कोई भी बात, शक्ति, परिणति किसी भी दूसरेमें नहीं जाती। प्रत्येक जीव स्वतंत्र है। किसी जीवकी चेष्टा, परिणति, स्वरूप किसी दूसरे जीवमें नहीं लगता। प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूपसे परिपूर्ण है। स्वतंत्र है। बाकी जो बिगम विकार हो रहा है वह निमित्त नैमित्तिक योगका फल हैं। वस्तु तो अपनेमें अपने स्वरूपसे शुद्ध है। यह निरख बनेगी तो मोह मिटेगा धर्मका रास्ता मिलेगा। मोहके मिट बिना धर्मका रास्ता मिलना असम्भव है। धर्म और मोहका परस्पर पूरा विरोध है। जहाँ धर्म हैं वहाँ मोह नहीं ठहरता, जहाँ मोह है, वहा धर्म नहीं ठहरता।

४३२ अनन्त संसारसंकटोंसे छुटकारा पानेके लिए पौरुषप्रयोगका महत्त्व—

सारा जगत प्रायः मोही है। यहाँ इस जीवको कभी कुछ मनमें आ भी जाय कि अब सत्संगमें

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

रहना चाहिए तो इनका एक घंटेके सिवाय बाकी समय मोहियोंके बीच गुजरता है तो कमजोर तो यह हैं ही, इसका ज्ञान पुष्ट नहीं तो उस मोहके प्रसँगमें यह अपने स्वरूपसे स्खलित हो जाता है बस लग जाता है पर पदार्थमें। तो मोहियोंके संगमें अधिक समय न देकर निर्मोही ज्ञानी, विरक्त पुरुषोंका संग अधिक करें तो इसकी आदतमें भी फर्क हो सकता। प्रयोग किए बिना कुछ नहीं होता। शान्ति चाहिए तो खुदको प्रयोग करना पडेगा, हमेशाके लिए, अनन्तकालके लिए सँसारके संकटोंसे छुटकारा चाहिए तो बहुत बड़ा पुरुषार्थ करना पडेगा, पर मोहियोंको नहीं रुचता, और रुचता क्या है कि जिसका कल्पित फल ५ वर्ष बाद मिल पायगा, कोई फैक्ट्री या मिल बनानेका प्रोग्राम है तो उसमें परिश्रम बड़ी खुशी खुशीसे करेंगे और निरन्तर पुरुषार्थ करेंगे, कष्ट सहेंगे, धीर रहेंगे, यह काम बहुत बड़ा है, इसका लाभ ५ वर्ष बाद मिलेगा, ऐसी आशा रखकर, श्रद्धा बनाकर मेहनत खूब करते हैं और भला बतलावो कि अनन्त कालके लिए अनन्त आनन्द मिल जाय, कर्म शरीर जो हमारी बरबादीके जन्म—मरणके एक कारण बने हुए हैं ये सदाके लिए हट जायें और आत्मामें जो ज्ञायक स्वरूप है स्वभाव है समस्त लोकालोकको जाननेका, इसके लिए अगर एक जिन्दगी, एक ही भव पूरा लगा दें और अपने आत्माकी ओर पौरुष अधिक करें तो भलाको यह कोई टोटेकी बात है? पर कमसे कम इतनी दृष्टि हो कि में अकेला ही उत्पन्न हुआ, अकेला ही इस भवको छोड़कर जाऊँगा और अकेले ही अपने किए हुए कर्मोंका फल भोगूँगा, कोई दूसरा साथी नहीं। यह बात चित्तमें बैठ जाय तो धर्मकी ओर प्रीति बढ़ सकती है।

४३८—अध्यात्म विशुद्धिके पौरुषके लिये ज्ञातव्य १६ तथ्योंमेंसे उपादान कारण, निमित्तकारण, आश्रयभूत कारण, उपादानका स्वभाव, निमित्तकारणका व्यापार, वस्तुस्वातंत्र्य, निमित्तकारणका उपादानमें अकर्तृत्व, निमित्तनैमित्तिक योग इन ८ तथ्योंके परिचित कराये जानेका संकेत—

समयसारका यह कर्तृकर्मत्व अधिकार जो अभी शुरु तो नही हुआ है पर उस अधिकारको समझनेके लिए जो बात ज्ञातव्य है उनके विषयमेंही कहा जा रहा हैं ऐसा निरखना चाहिए कि प्रत्येक पदार्थ अणु—अणु स्वतंत्र है, उसमें किसी दूसरेका प्रवेश नहीं है, और जिन कारणोंको निरखकर हम अच्छा बुरा मानते है, दुःखी हो जाते है वह कारण तो कारण भी नहीं है। उनको सोचकर विकल्प होता सो उनके कारण यह आश्रयभूत कारण हुआ। तो आपने अब तक इतना जाना होगा कि उपादान कारण क्या हैं, निमित्त कारण क्या है, आश्रयभूत कारण क्या है और उपादानका स्वभाव क्या है याने मेरे आत्माका वास्तविक स्वभाव क्या है? और जब विकारमें होता हूं तो निमित्त कारण किस हालनमें उपस्थित होता है। उसका व्यापार क्या है? इतना सब कुछ होने पर भी प्रत्येक वस्तु स्वतन्त्र स्वतंत्र है। किसीकी सत्ता किसी दूसरेकी दयासे नहीं है। यहाँ जो लोग कहा करते हैं कि हमारे तो तुम शरण हो, तुम्हारी दयापर हमारा गुजारा है, सो वह गुजारा एक भौतिक गुजारेकी बात है। आत्मीय गुजारा किसी दूसरेके आधीन नहीं। वैसे तो यह जीव स्वतंत्र है याने किसी वस्तुका, किसी निमित्तका उपादानमें कोई करतब नहीं, कोई कर्तृत्व नहीं, उपादान खुद ही उस उस रूप परिणमता रहता है और साथ ही यह भी जान लिया होगा कि जगतमें जितनी नई—नई बातें होती हैं विषमभाव होते हैं, अपूर्व—बात होती हैं वे सब किसी निमित्तको पाकर होती हैं, ऐसा यहाँ निमित्त नैमित्तिक योग है।

४४०—उपादानमें गुजर रहे विभावका परिचय—

उक्त तथ्य समझकर अब खुद अपने घर आइये और अपना निरीक्षण करें कि मेरे पर क्या

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

गुजर रहा है। मेरे पर गुजर रहे हैं रागद्वेषके विकल्प विचार। वे रागद्वेष क्या हैं? हमारे ज्ञानकी दौड़ मुड़कर उल्टी हो रही है। हमारे ज्ञानको जानना तो इस तरह चाहिए था कि इस जगतको बस जान लिया, जैसे कि रास्ते पर जा रहे और हजारों आदमी मिलते और हजारों आदमियोंको जानते हुए चले जाते हैं और हम किसी भी आदमीसे अटकते नहीं, न किसीसे हम रुकते हैं, अपने कामसे चलते जाते हैं, मगर रास्तेमें कोई बुआका लड़का मिल गया, माना हुआ कल्पनाका कोई मित्र मिल गया और रुककर बात करने लगे, हँसी भी किया, कुछ रंज भी हो गया, जैसी जो कुछ घटना हुई, इस ज्ञानने कोई मोड़ खाया थापहले ज्ञान कैसा अच्छा चल रहा था कि हजारों आदमी दिखनेमें आ रहे, जानने में आ रहे, जानना चल रहा और आप प्रसन्न होकर अपनी यात्रा कर रहे, जहाँ कोई इष्ट मिला और उसकी कोई इष्ट अनिष्ट घटना ज्ञात हुई कि हर्ष विषाद हो लगा। ज्ञानका ज्ञानमें कैसे मेल खाये। बस यह आपत्ति है इस जीवपर। और कुछ नहीं है तो हम पर क्या गुजर रहा है। ज्ञानका जो ऐसा विचित्र मिलान है, बस ये विडम्बनायें हम पर गुजर रही हैं। इन पदार्थोंके कारण मुझपर कोई विडम्बना नहीं। जगतमें जो बाहरी पदार्थ हैं ये आश्रयभूत कारण है, मायने इस ज्ञानसे इनका ख्याल करें कि इनका आश्रय बने तो ये कारण बनते हैं। इनका आश्रय न करें तो ये कोई कारण नहीं बनते। तो इन सब पदार्थोंमें कारणपनेका तो उपचार है, यह विडम्बना नहीं। घर गिर गया या कोई गुजर गया या कोई शत्रु आ गया, किसी प्रकारकी देहमें चोट लग गई या कुछसे कुछ हो गया, कोई टोटा पड़ गया तो ये बातें जीवकी विडम्बना नहीं हैं, ये तो बाहरी पदार्थ हैं। अपनेमें वे विराजे हैं। मेरे आत्मामें उनका प्रवेश नहीं होता, फिर मुझपर विडम्बना क्या? तो इन आश्रयभूत पदार्थोंमें दुःखके कारण हैं, ऐसी बात उपचारसे कही जाती है, अथवा उस जगहका कोई पदार्थ या कोई प्रसंग ये दुःखके कारण नहीं होते। तो जब अपने आपमें अपनेको सम्हालें, चेतें तो उसकी ये सब व्यग्रतायें, और भ्रान्ति दूर होती है। यहाँ तक कई बातोंका निर्णय अपने आपमें किया है।

४४१—उपादानमें योग्यता होनेपर विभावकी संभवता—

यहाँ एक यह भी निर्णय रखें कि निमित्तको पाकर उपादान विकार तो करता है मगर योग्य उपादान हो वही विकार कर पाता है। जैसे दर्पणके सामने कोई रंग बिरंगी चीज आयी तो दर्पणमें प्रतिविम्ब हो जाता है। उस रंग बिरंगी सामने वाली चीजने दर्पणमें कुछ नहीं किया। वह तो १० हाथ दूर खड़ी है, वस्तुतः न उसका रूप इसमें गया, न रस, न गंध, न स्पर्श न कोई अंग गया। वह रंग बिरंगी चीज १० हाथ दूर पड़ी है, उसका सन्निधान पाकर यह दर्पण खुद प्रतिविम्बरूप बन गया। तो योग्यता थी तब ही प्रतिविम्बरूप बना। भींटके सामने वही चीज खड़ी कर दी तो उसमें तो प्रतिविम्ब नहीं आता, क्योंकि भीटमें प्रतिविम्ब होनेकी योग्यता ही नहीं। जैसे एक बात सुनकर लोग अचरज करेंगे कि लोग तो कहते कि यह धूप, यह दिखने वाला प्रकाश सूर्यका है, मगर यह सूर्यका कतई नहीं है। सूर्यकी जो भी चीज है, सूर्यका जो पिण्ड है, कुछ कम दो हजार कोंशका, करीब ५ हजार मीलका वह एक पृथ्वी कायिक विमान है, उसकी जो भी चीज है वह उसीमें है। उससे एक सूत भी बाहर नहीं जा सकती। समस्त वस्तुओंकी ऐसी ही प्रकृति है कि जिस वस्तुका जो कुछ भी है उसका सर्वस्व उस वस्तुके प्रदेशमें ही रहेगा। उसके बाहर न रहेगा। अगर आप कहें कि यह तो बात जरा ठीक जल्दी जचती नहीं। दुनिया कहती है कि आँखों देखते हैं, सूर्यका प्रकाश चल रहा है तो बात वहाँ क्या है तो सुनो—सूर्य भी एक भौतिक पदार्थ है, पुद्गल है वह खुद प्रकाशरूप है मगर जैसे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

वह भौतिक पदार्थ सूर्य है ऐसे ही ये पदार्थ ईंट, भींट, जमीन वगैरह ये भी भौतिक हैं, पुद्गल हैं, जाति तो एक है। पुद्गल जाति सूर्यविम्बकी है पुद्गल जाति इन ईट भींट आदिककी है, फर्क यह है कि सूर्य खुद प्रकाशमान है और ये ईट भींट आदिक चीजें सूर्यका सन्निधान पाकर प्रकाशमान होती हैं, अन्तर इतना है। अब अगर यह कहा जाय कि हाँ साहब यह प्रकाश तो सूर्यका ही है तो आप यह बतलावो कि सूर्यका प्रकाश जहाँ जहाँ होगा वह सब एक समान होगा कि कुछ कम बढ़ भी होना चाहिए? अगर यह प्रकाश सूर्यका है तो यहाँ सब जगह प्रकाश बराबर होना चाहिए। कम और अधिक न होना चाहिए। अगर कोई रंग रोगन अच्छा किए हुए चमकदार तखत पर सूर्यका प्रकाश पड़ता है तो वहाँ कुछ तेज जचता है, भींट पर प्रकाश कम तेज जचता है। और कोई काँचका टुकड़ा पड़ा हो तो वहाँ प्रकाश बहुत अधिक रहता है और दर्पण पड़ा हो तो बहुत अधिक प्रकाश उसका होगा। तो अगर सूर्यका ही यह सब प्रकाश है तो इस प्रकाशने भेद क्यों पड़ गया? अब कारण तो आप बतायेंगे। तो उसका उत्तर यह है कि ये पदार्थ स्वयं जो प्रकाशमान हो रहे वे ही नाना योग्यताको लिए हुए हैं और जिस पदार्थकी जैसी योग्यता है वह पदार्थ उस अनुरूप प्रकाशमान हो रहा है। तो यह प्रकाशमें हुए पदार्थकी योग्यता है नाना तरहकी, यहाँ कहीं अधिक प्रकाश हैं कहीं कम।

४४२—सूर्यविम्बका सान्निध्य पाकर प्रकाशित वारीक स्कंधोंको सूर्य तक देखनेमें रश्मियोंका निर्माण—

अच्छा फिर एक प्रश्न और आयगा। आप कहेंगे कि लोग तो सूर्यकी किरणें बतलाते है और शास्त्रोंमें भी सूर्यकी किरणोंका जिकर है, सूर्यमें १६ हजार किरणें है, ऐसे ही चंद्रमें भी किरणें हैं, कहा जा रहा कि सूर्यकी कुछ भी चीज सूर्यके पिण्डसे दूर नहीं होती, फिर इसका समन्वय क्या है? इसका समन्वय यह कि है सूर्य और जहाँ हम खड़े हैं, इस बीचमें बहुतसे सूक्ष्म मैटर स्कंध भरे पड़े हुएमें हैं, और जैसे सूर्यका सन्निधान पाकर यहाँके ये पदार्थ प्रकाशित हुए हैं ऐसे ही इस बीच खण्डमें भी जो सूक्ष्म स्कंध हैं वे सब प्रकाशमान हो गए और जब हम आँखोंके द्वारा देखते हैं तो आँखों द्वारा देखनेकी तारीफ यह है कि हमें इस तरहकी रश्मियाँ नजर आने लगेगी। और यह लाइन फिर यह बताती है कि ये सूर्यकी किरणें हैं, सूर्यकी किरणें इस तरह जुदे—जुदे रेखाओंमें नहीं हैं किन्तु इतने गगनमंडलमें भीप्रकाश, मैटरोंकी योग्यतानुसार चल रहा है और जब आँखोंसे देखा तो देखने वालेकी कलासे, देखने वालेकी योग्यतासे, वे सूक्ष्म मैटर स्कंध १६ हजार भागोंमें जिसके नेत्रमें जैसी योग्यता है, उसके अनुसार न्यूनाधिक हिस्सेमें वे सब नजरमें आने लगते हैं। यह उदाहरण इसलिए दिया कि आप यह जानें कि जगतमें जितने पदार्थ हैं वे सब अपने अपने मालिक है। कोई भी पदार्थअपने से बाहर किसी दूसरे पदार्थमें कोई क्रिया नहीं करता। कोई बात नहीं बनाता। यह तो इस पदार्थमें ही ऐसी योग्यता है कि निमित्त सन्निधान पाकर इसमें इस तरहके प्रभाव बन रहे हैं।

४४३—नवीन कर्मबंधके निमित्तभूत उदयागत कर्मविपाकमें निमित्तत्वके निमित्तभूत रागादिभावका उदाहरणपूर्वक परिचय—

अच्छा इसी सम्बंधमें एक बात और समझें। कभी कोई बालक आँगनमें खड़े होकर एक दर्पणको इस तरह करता कि कमरेमें खूब उजेला पहुंचता है। लड़के लोग ऐसा करते ही हैं। सूर्यसे तो हो गया दर्पण खूब प्रकाशमान और दर्पणको ऐसा टेढ़ा किया कि इस कमरेमें टार्चकी लाइटकी तरह वह रोशनी चली जाती है। अब आप यहाँ यह जानेंगे कि कमरेमें जो इतनी तेज लाइटकी तरह एक रोशनी चली जाती है होता है तो उसका उपादान क्या है। प्रकाश

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कमरेकी चीज जो प्रकाशमान हुई है, उसका निमित्त कारण वह दर्पण है, न कि सूर्य। साक्षात् निमित्त क्या है? वह दर्पण, जिसकी किरणोंके प्रकाशका निमित्तपाकर कमरा प्रकाशितहोता है उस दर्पणके प्रकाशमान होनेका निमित्त सूर्य है। तो कमरेमें जहाँ प्रकाश पहुंचा है उस निमित्तक निमित्तत्वका निमित्त है सूर्य। यद्यपि यह बात सत्य है कि सूर्य न हो तो दर्पण भी उस कोठेके प्रकाशका कारण नहीं बन सकता। मगर निर्णय यह है कि बन गया मानो दर्पण प्रकाशमान तो अब उस कमरेमें प्रकाश पहुचानेका निमित्त दर्पण है और दर्पणके ऐसे प्रकाशित होनेका निमित्त सूर्य है, सो वह निमित्तका निमित्त है, और वह योग इतना प्रबल है कि अगर सूर्यबिम्बसान्निध्य न हो तो दर्पणका निमित्त पाकर कमरेमें प्रकाश भी नहीं हो सकता। देखिये यह बात एक तथ्य समझनेमें काम आयगी। जीवके साथ नये कर्म बँधे हैं, वे नये कर्म बँधनेका निमित्त है उदयमें आये हुए कर्म। मगर उदयमें आये हुए कर्मोंका निमित्तपना तब ही आता है कि जब यह जीव रागद्वेष करे तो जीवका रागद्वेष तो हुआ सूर्यकी तरह और उदयमें आये हुए कर्म हुए दर्पणकी तरह। और कमरेमें प्रकाश हुआ, नये कर्मोंके बंध की तरह। निमित्त कर्मके निमित्तत्वका निमित्त है यह रागद्वेष और इतना प्रबल निमित्तका निमित्त है कि अगर रागद्वेष न हों तो नये कर्म बंध नहीं सकते। इस तरह जैसे भौतिक विज्ञानसे सब निर्णय और प्रयोग बनाये जाते हैं ऐसे ही आध्यात्मिक विज्ञान द्वारा भी अपने आपमें हर तरहके निर्णय और प्रयोग बनते हैं और वहाँ जो मोक्षमार्गके अनुरूप प्रयोग होता है उसका परिणाम यह है कि यह जीव कर्मोंसे, शरीरके सब बंधनोंसे दूर होकर अपने विशुद्ध ज्ञान प्रकाशमय हो जाता है। तो अपनी भलाई चाहिए तो कुछ रूचि बनायें ज्ञानार्जनकी, आत्माके परिचयकी, और सत्संगकी। तो यह सब प्रकार हमारे लिए हितकारी होगा, सँसारका यह संग समागम इसका लगाव, यह हमारे लिए हितकारी न होगा।

४४४—उपादानके कार्यपर विचार—

यह जीव क्या करता है, क्या नहीं करता है? कब तक करता है कबसे नहीं करता आदिक परिस्थितियोंका निर्णय इस अधिकारमें किया जाने वाला है। इस अधिकारके प्रारम्भसे पहिले बहुत कुछ ज्ञातव्य बातें है, जिनके १२ ज्ञातव्य तथ्योंका वर्णन हुआ। अब दूसरे तथ्यकी बातें और निरखियेगा। इसके बाद यह अधिकार प्रारम्भ होगा। बताना क्या है कि यह जीव क्या करता है? इस जीवका कार्य क्या है? तो देखिये जीवको जिसका कार्य बताना है उसको उपादान ही तो कहेंगे। जिसमें कार्य बताया जाय, जिसका कार्य कहा जाय उसे उपादान कहते हैं। तो उपादान जीवका कार्य है क्या? तो इसको इस तरह समझना होगा। यह जीव स्वयं एक अकेला ही रहे, इसके साथ किसी वर्गका देहका, उपाधिका सम्बंध न रहे, ऐसी स्थितिमें निरखे कि इस उपादानका कार्य क्या है? तो उत्तर मिलेगा ज्ञाता दृष्टा रहना, जाननहार रहना। ज्ञानका प्रतिभास मात्र काम चलना यह उपादानका विशुद्ध कार्य है, इस आत्माका यह एक अपनी ही सत्ताके कारण होने वाला कार्य है। तो देखो प्रत्येक वस्तु उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य युक्त होती है। तो इस आत्माका यह जानन काम तो निरन्तर चलता आया, चलता रहेगा, इसी कारण इसका नाम आत्मा है, "अतति सतत गच्छति जानाति इति आत्मा", जो निरन्तर जानता रहे उसे आत्मा कहते हैं। तो इसका काम निरन्तर जानते रहनेका है, किन्तु जैब उपाधिका सम्बंध साथ है और कर्मविपाकका जब विस्फोट होता हैं तो यहाँ उसकी छाया हुई, कर्मरस, जो यहाँ प्रतिबिम्बित हुआ सो ज्ञानकी दिशा मुड़ जाती है। ज्ञानको एक सही विधिसे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जानने भरका काम करना चाहिए था सो वह तो हो रहा मगर उसमें कर्मरसकी एक छाया आनेसे ज्ञानकी दिशा बदल जाती है । और यह रहता तो ज्ञाता दृष्टा मगर यह विकल्पक बन जाता है । तब यह विकल्पका कार्य करता है । इस कार्यमें भी इस तरह यह ध्यान रखें कि इसमें जानन तो है पर उस जाननमें कर्मरसका मिश्रण है सो उसका विकल्परूप बन गया ।

४४५—उपादान के कार्य का सोदाहरण वर्णन—

जैसे कोई सफ़ेद बल्ब है, एक साधारण बल्ब । साधारणतया सफेदके ही रंगमें ज्योति हुआ करती है । बल्ब है, उजेला है, सफेद, है अब वहाँ एक हरे पीले कागजका सम्बन्ध बन गया, उपाधि बन गई, प्रकाश हरा पीला हो गया तो जो अज्ञानी जन हैं वे इस विधिको नहीं जानते । वे तो कहेंगे प्रकाश हरा है, जो समझदार हैं वे कहेंगे कि प्रकाश तो प्रकाश है और इसमें हरापन यह उपाधिका, कागजका प्रभाव है । इसी तरह इस उपादान आत्मामें जो विकल्प केकाम चल रहे हैं उसमें ज्ञानी जानता है कि आत्माका काम तो जानन है और उसमें यह कर्म रसका मिश्रण है जिससे इसकी विकल्परूप स्थिति हुई है । तो अब जाना कि उपादानका कार्य क्या है । विशुद्ध कार्य और प्रभावित कार्य, इन सब कार्योंको एक संक्षेपमें लें तो यह कह लीजिये कि यह आत्मा ज्ञानके सिवाय और कुछ नहीं करता । अज्ञान दशामें ज्ञानका विकल्परूप से उपयोग करता है और ज्ञान होने पर इस ज्ञानका जाननहार स्थितिमें उपयोग करता है, पर ज्ञानके सिवाय न जीव कुछ कर सका अब तक न कभी कुछ करेगा । जो कुछ करता है वह ज्ञानका ही काम करता है । बाहरके पदार्थोंसे इसका कुछ मतलब नहीं । यह है एक इस आत्माका कार्य, अब इस विधिसे जानना होगा कि आत्मामें जो विभाव, जो विकल्प उत्पन्न हुएहैं वे किस ढंगसे बने । एक मोटा उदाहरण लें मशींनका कोई चक्का बड़ा तेज चल रहा है । वह इतना तेज चल रहा है कि यह पता नहीं पाता कि वह चल भी रहा । बड़ा सौम्य चक्का है । कहीं ऊंचा नीचा नहीं, सही ढंगका है । बहुत फिट है। उसमें तीन चार आरे लगे हैं, खूब तेजीसे चलता पर पता नहीं पड़ता कि यह चल रहा है और उस चक्के पर कोई चीज कपड़ा वगैरह पड़ जाय, या कोई रग पड़ गया तो जो चल रहा था चक्का सो चल रहा । उस ही चलते हुए चक्के पर वह मैल दिखने लगा, वह रंग चारों ओर दिखने लगा, ऐसे ही आत्मा जाननेका काम निरन्तर करता रहता है, उसमें तो बाधा नहीं है, क्योंकि पदार्थका स्वरूप हैं कि पदार्थ है तो उसमें अवस्था बनती रहेगी। उसके साथ-साथ जो उपाधिकी छाया है वह उस प्रकाशमें मिश्रण बन गया ।

४४६—विभावोत्पत्ति विधान के परिचयका प्रभाव—

जब यह दशा बनती कि यह जीव विकल्प कर रहा तो इन विभावों की उत्पत्ति का क्या विधान है? कैसे बन गए, रागद्वेष क्रोधादिक कितने ? इस विधिका जिसको परिचय है उस परिचयका यह प्रभाव होता है कि वह उस विभावमें संलग्न नहीं होता और वह जानता है कि मैं ज्ञानरूप हूं, ज्ञान चेतना लिये हूं । ज्ञानको ही करता हूँ, ज्ञानको ही भोगता हूं । ज्ञान ही मेरा सर्वस्व है । ज्ञान ही साथ आया ! जो ज्ञानस्वरूप स्वयं है । ज्ञान ही चलता जायगा । ज्ञानका ज्ञानके सिवाय और कुछ नहीं है । अपनी ज्ञान चेतनाकी सुधि कर लेता है ज्ञानी ।

४४—परके अकर्तृत्वका दर्शन—

यह सब बात जो विभावोंकी उत्पत्ति में बतलाया है उससे सही पद्धतिमें आप यह निरख लेंगे कि यह जीव परका तो अत्यन्त अकर्ता है, पर पदार्थका कर्ता तो त्रिकालमें होता ही नहीं । चाहे कोई मोही पुरुष घरके किसीके गुजर जाने पर, इष्टके गुजर जाने पर सारा हल्ला मचा रहा अथवा किसीके

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उत्पन्न हो जाने पर वह सारी चेष्टामें कर रहा, और बड़े समारोह भी कर रहा और बड़ी फैक्टरी इंडस्ट्री खूब सम्हाल रहा और दुनिया देखती कि यह बहुत बिजी हैं, और लोग कहने भी लगते कि भाई हम तो इतनी काममें बिजी हैं कि मरनेकी भी फ़ुरसत नहीं। खैर मरनेकी फुरसत तो निकल ही आती है मगर कहनेका ढंग है। कुछ काम करते हुए भी बात क्या हो रही है कि जीव परमाणु मात्रमें भी कुछ नहीं कर रहा है। बस अपने ज्ञानके विकल्पकर रहा, यह कर रहा, वह कर दूँगा, बस ज्ञानके विकल्पोंका चक्र चल रहा। बाहरमें कुछ नहीं कर रहा तीव्र मोही भी हो, वह भी बाहरमें कुछ भी करनेमें समर्थ नहीं, क्योंकि यह तो वस्तुस्वरूपकी सीमा है। कोई भी वस्तु किसी दूसरे पदार्थमें कुछ भी करनेमें कभी समर्थ न था, न है, न हो सकेगा। जैसे कभी देहातोंमें पास पासके दो घर वाली औरतें जिनके एक लाइनमें अलग अलग दरवाजे हैं वे अपने अपने दरवाजे पर खड़े होकर लड़ती हैं और वे ऐसा तेज हाथ फटकार फटकार गाली गलौज करती हैं कि देखनेवाले कह उठते हैं कि अरे कहीं इनमें तेज भिडंत न हो जाय, मगर वे एक कदम भी आगे नहीं बढ़ पाती, वे वहाँ ही चिल्लाती रहती जहाँ कि एक सीमा बना रखी, उससे आगे नहीं हटती। यह तो उनकी एक मोटी बात है हँसी। सब वस्तुओंने ऐसी अपनी सीमा बना रखी है कि चाहे वे मिल जायें, केमिकल रसायन मिल जायें, कुछसे कुछ उनमें प्रभाव बन जाय, रूखी-रूखी चीजें मिला दीं और कहो उसमें चिपक जाये, इतना बड़ा प्रभाव भी बन जाय, कितना ही तेज मिश्रण हो रसायन वस्तुमें भी तो प्रत्येक अणु केवल अपना ही उत्पाद कर रहा है दूसरेका नहीं। इसका प्रमाण यह है कि जगतमें सब पदार्थोंकी सत्ता अब तक बनी हुई है। यदि एक पदार्थ दूसरे पदार्थका कुछ करने लगे तो अब तक यह जगत शून्य हो जाता, इसका यह कर दिया, यह न रहा, उस कर दिया, वह न रहा। फिर क्या रहे, क्या न रहे ? जो अब तक पदार्थकी सत्ता है वही यह सिद्ध कर रही है कि कोई वस्तु किसी दूसरे पदार्थका परिणमन नहीं करता। हाँ तो मोटी बात है यह कि कोई पदार्थ किसी दूसरे पदार्थ रूप नहीं परिणमता। एक तो यह निरखना है। देखिये-मोह दूर होगा, तो प्रकाश मिलेगा वह कि जिसके बलपर संसारके संकट छूट जायेंगे। उस मोहके दूर होनेके लिए इस अधिकारमें दो बातोंका दर्शन कराया है-एक तो यह कि कोई भी पदार्थ किसी पर पदार्थमें उसका कोई परिणमन नहीं करता, अगर दाहिने हाथने बाँयें हाथको मोड़ दिया तो यहाँ पर भी दाहिने हाथने नहीं मोड़ा किन्तु दाहिने हाथने अपनेमें मोड़नेकी क्रिया की और उसका सम्बंध पाकर बाँया हाथ अपनेमें मुड़ा ऐसा प्रत्येक पदार्थ अपने आपका कर्ता है दूसरेका नहीं।

४४८—विभावके अकर्तृत्वका दर्शन—

दूसरा दर्शन यह है कि जीव रागद्वेष विकारका कर्ता तो हो रहा मगर वस्तुतः कर्ता नहीं है। जैसे दर्पण प्रतिविम्बका करने वाला तो हो रहा, सामने कोई चीज आयी, दर्पणमें प्रतिविम्ब आया तो दर्पण ही तो प्रतिबिम्ब रूप परिणमा, सो दर्पणने प्रतिविम्बको किया तो है पर उसका स्वरूप नहीं, स्वभाव नहीं। परिस्थिति है। सामने पदार्थ आया, स्वभाव नहीं, परिस्थिति है। सामने पदार्थ आया, कि वह बर्पण जो स्वच्छ था वहाँ झलक गया, मगर वह दर्पणके ऊपर ही लोट गया है। दर्पणके निजी स्वरूपमें प्रतिविम्ब नहीं गया। अगर प्रतिविम्ब दर्पणके निजी स्वरूपमें पहुंच गया होता तो वह कभी मिट ही न सकता था ऐसे ही आत्मामें जब तक अज्ञान है, तब तक इसको ज्ञान स्वच्छतामें कर्मरसका प्रतिविम्ब होता है। और यह अपने ज्ञानस्वरूपकी भावनाको तजकर इस कर्मरसरूप मानने लगता है, सो अज्ञानमें कर्ता तो हुआ अपने विकल्पोंका, मगर इसका स्वरूप नहीं, स्वभाव नहीं। यह अपने

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

स्वभावको, रागद्वेषको नहीं करता। तो यह जीव सब परभावका अकर्ता है। यह तो वस्तुतः अपने ज्ञानभावका कर्ता है, ऐसे ज्ञातव्य इन १६ तथ्योंको पहिचान कर अब अधिकारमें प्रवेश करें।

४४९—जीव और अजीवका कर्ता कर्मके वेशमें प्रवेश—

इस अधिकारका नाम है कर्तृकर्माधिकार। यहाँ निर्णय क्या करना है कि जीव कर्ता नहीं है, तो जीवका कर्म क्या है? जीव किसका करने वाला है। इस बातका हर विधिसे निर्णय दिया गया है। इससे पहले था जीवाधिकार। जीवाधिकारमें स्वतंत्र जीव स्वरूपका वर्णन था। अजीवाधिकारमें यह अजीव नहीं, इस तरह सब अजीवकों हटानेका वर्णन था। अब इस नाटकमें इस उपयोग भूमिमें अब वे ही जीव और अजीव कर्ता और कर्मका भेष रखकर आये याने अब उपयोग जीवके कर्तृत्व और कर्मत्वका निर्णय करेगा कि जीव करता किसे है और जीवको होता क्या है और अजीव भी करता किसे है और अजीवका कर्म है क्या? इस तरह कर्ता कर्मके भेषमें अब जीव और अजीवको देखनेकी प्रक्रिया चल रही है।

एकः कर्ता चिदहमिह मे कर्म कोपादयोऽमी इत्यज्ञानां शामयदभितः कर्तृकर्मप्रवृत्तिं।
ज्ञानज्योतिः स्फुरति परमोदात्तमत्यंतधीरं साक्षात्कुर्वन्निरूपधि पृथग्द्रव्यनिर्भासि तत्त्वम् ॥ ४६ ॥

४५०—जीव अजीवका कर्तृकर्मवेशमें प्रवेश और सहज ज्ञानज्योतिके अभ्युदयमें कर्तृकर्मवेशका मिटाव—

कर्तृकर्माधिकारका यह प्रथम कलश है। अज्ञानी जीव यह सोचता है कि यह मैं कर्ता हूं और ये रागद्वेष विषय कषाय ये सब मेरे काम हैं। अब आप देख लीजिए जगतके सभी मनुष्यों पर दृष्टि डालकर प्रायः इसी ख्यालके प्राणी मिलते है और इसी पर ही शान रखते हैं कि मैने ऐसा किया, मैं ऐसा कर दूँगा, मैं ऐसा कर रहा हूं। तो इन विषय कषायोंके कर्तृत्वका जब तक भाव है, तब तक जीवको अज्ञान बताया गया है। देखिये यद्यपि लोग इतना भी नहीं समझ पाते हैं कि मैं कषायको कर रहा हूं, इच्छा कर रहा हूं, क्योंकि जो व्यामूढ़ प्राणी हैं वे तो सीधे पर पदार्थोंमें करनेकी बात किया करते हैं, भीतरमें वैभवके कर्ताकी भी चर्चा नहीं करते किन्तु मैने मकान बना लिया, दूकान बना ली, फैक्ट्री बनाली, मैंने लोकोपकार कर लिया, इस प्रकार इन बाहरी पदार्थोंमें ही कर्तापनेकी बुद्धि रखते हैं। लेकिन तथ्य वहाँ यह ही है इस ढंगसे कहा जा रहा है, भीतरमें यह महसूस होता ना कि मैंने बड़ी चतुराई की, मैने बड़ा उत्तम कार्य किया। तो जो अपनेमें विभाव परिणमन जग रहा, शुभ अथवा अशुभ भाव बन रहे, तो दोनों प्रकारके (अच्छे, बुरे) भावोंका यह अपनेको कर्ता मानता है, ऐसी कर्ता, कर्मकी प्रवृत्ति चल रही थी तो कर्ता कर्मकी प्रवृत्तिको शान्त करना है। देखिये नाटकमें भी यह ही ढंग रहता है। नाटकका जो मुख्य पात्र है वह धीर हो, उदार हो, गम्भीर हो, ऐसा ही पात्र बनाया जाता है। किसी भी नाटकका मुख्य पात्र आदर्श रूप बनाया जाता है और इसीके नाम पर नाटकका नाम चलता है। चलते हैं ना नाटक—श्रीपाल, अकलंक निकलंक, मैनासुन्दरी आदिक, इनके जो मुख्य पात्र हैं, जिनके सदाचार और जिनके प्रभावका दुनियामें प्रकाश फैलता है वही तो मुख्य पात्र होता है सो वह धीर होगा, गम्भीर होगा, सर्वगुणसम्पन्न होगा। तो अब देखिये नाटकमें तीन बातें अभी तक आयी है। जीव कर्ता कर्मका भेष रखकर आया, अजीव कर्ता कर्मका भेष रखकर आया और दुनियाको आंखोंमें धूल झोकने जैसा आडम्बर बनाया। पर वहाँ बहुत-बहुत कुछ अपना आडम्बर बना ही था कि एकदम ज्ञान प्रकट हुआ और यह दोनोंके दोनों स्टेजको छोड़कर निकल भागे कि अब ज्ञानज्योति जो बहादुर धीर बीर है इसके सामने हमारा कर्ता कर्मका नाटक न चल सकेगा।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

इस तरहका रूपक दिखाया है इस कलशमें कि जीव और अजीब कर्ता कर्मके रूपमें नच रहे थे। शुद्ध ज्ञान प्रकट हुआ कि कर्ता कर्मका भेष दूर हो जाता है।

४५१—क्रोधादिक भावोंमें तादात्म्य बुद्धि होनेसे क्रोधादि चेष्टाओंकी उद्भति—

अच्छा अब यह परखे कि यह जीव कर्ता बन कैसे रहा है? तो बात यह हुई कि ज्ञानी जीव तो निःशंक अपनेको ज्ञान रूपसे प्रवर्तन कराता है, क्योंकि उनका यह निर्णय है, विश्वास है कि मैं और ज्ञान एक ही चीज हूं, ज्ञानका मुझमें तादात्म्य सम्बंध है, अर्थात् ज्ञान है सो ही मैं हूं ऐसा जो जानता है सो ही तो ज्ञानके अनुरूप चेष्टा करेगा। जैसे यहीं कही जिसको यह श्रद्धा है कि यह मेरा बेटा है वही तो उस बेटेके अनुरूप अपनी चेष्टा करेगा। मारेगा, डाटेगा, खिलायेगा, प्रीति करेगा, ये चेष्टायें किस आधार पर हुई? यह मेरा बेटा है इससे मेरा सम्बंध है, इसी प्रकार संस्थाओंके सम्बंधमें जब यह मान लिया जाता कि मैं इसका मंत्री हूं, अमुक हूं तो वह उस प्रकारकी चेष्टा करता है ना? अभी तक उस संस्थाके कुछ न थे तो कुछ उसकी चेष्टा भी थी क्या? आज बन गए अधिकारी तो आज कल उसकी मंत्रीपनेकी चेष्टा हुई कि नहीं? तो जितनी वृत्तियाँ है वे सब विश्वासके अनुरूप होती है। ज्ञानीको अपनेमें ज्ञानस्वरूपका विश्वास है सो वह ज्ञानरूपसे ही निशंकप्रवृत्ति करता है। अज्ञानी जीवको मैं क्रोध हूँ, मान हूँ, कषाय हूँ, जो मलिनता है उस मलिनता रूप ही अपनी श्रद्धा है कि मैं तो यह हूँ, अज्ञानरूप हूँ। तो अज्ञानीने कषायोंसे जब अपना तादात्म्य सम्बंध मान लिया तो वह क्रोधरूप ही तो बर्तेगा, मान आदिक रूप ही तो चलेगा। इस तरह उसमें एक पना माननेसे कर्ता कर्मकी प्रवृत्ति हुई। तो यहाँ यह निर्णय देखिये कि क्रोधादिक भाव कर्मविपाकका एक प्रतिबिम्ब है, मेरे आत्माका स्वरूप नहीं है, पर भाव है। यह तो हटनेके ही है और निरन्तर हटते ही रहते हैं, पर अज्ञानी क्रोधादिकोंमें निरन्तर लगता ही रहता है। यह क्रोधादिक निषेधके योग्य है, आस्रव हैं उसमें प्रवेश न करें ऐसे यह प्रतिषिद्ध है तो भी, चूंकि मान लिया कि यह मेरा है तो यह क्रोध करता है, राग करता है, मोह करता है, सारी चेष्टायें करता है।

४५२—परमें अहंकार ममकारके फलमें भ्रान्त चेष्ठावोंकी वृत्ति—

जैसे जिस पुरुषको स्त्रीसे अत्यन्त मोह है, यही मेरा सर्वस्व है ऐसा मानता है तो स्त्रीका मरण होने पर यह भी तुरन्त जान छोड़ देता है। अब मुझे जीकर करना क्या? मोहकी लीला है ऐसी। एक बार ऐसी घटना हुई बनारसमें। इस देहकी चाची कहाँ पर चिरोंजाबाईजी (गुरु गणेश—प्रसादजी को पालने वाली धर्ममाता) थीं जो कि एक जगह ठहरी थीं। वहीं पासके कमरेमें कोई एक गणितका प्रोफेसर भी ठहरा था तो वह फोटो लिए था अपनी स्त्रीकी। उसकी स्त्री मर चुकी थी। तो वह उस फोटोसे ही बातें कर रहा था अरे क्या तुम अभी सोती ही रहोगी? उठो, नहावो धोवो, मंदिर जावो, फिर खाना बनाना हैं। देखो था वहाँ कोई नहीं, वह सब उस फोटोसे ही कह रहा था। तो चिरोंजाबाईजीं उससे बोलीं—अभी आप किससे बाते कर रहे थे? था तो आपके पास कोई नहीं, पर आप बातें किससे कर रहे थे। तो उस प्रोफेसरने बताया कि देखो मैं बम्बईका एक बहुत बड़ा गणितका प्रोफेसर हूं। मुझे अपनी स्त्रीमें बड़ा मोह था, यहाँ तक कि वह कभी घरसे बाहर निकलती तो मैं उसके ऊपर छाता लगाकर चलता था। यद्यपि वह मुझे बहुत समझाया करती थी कि मेरेसे इतना अधिक मोह न करो, नहीं तो मेरे मर जाने पर तुम्हें बड़ा कष्ट होगा, पर मेरा मोह उससे न मिटा, वह मर गई तो उसके पीछे अब मैं पागल सा बना फिर रहा हूँ। इसलिए मैं उसकी फोटोसे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बातें कर रहा था। तो जब यह जीव दूसरेको अपना लेता है—यह मैं हूं, यह मेरा है तो उसके अनुरूप उसकी वृत्ति बन जाती है। यह ही बात इस आत्मामें हो रही कि आत्मा तो है ज्ञानमात्र केवल ज्ञाताद्रष्टा, जाननहार, पर इसमें कर्मरसकी झाँकी आयी। जो पहले कर्म बाँधे थे उनका अनुभाग उदयमें आया और वह हमपर मलिनता आयी और उस मलिनताको हमने मान लिया कि यह मैं हूं तो जैसे कोई मानता है कि मैं व्यापारी हूं तो वह व्यापारीके अनुरूप अपनी प्रवृत्ति करता कि नहीं ? करता है। कोई मानले कि मैं किसी संस्थाका मंत्री हूं तो वह उस विधिसे प्रवृत्ति करता है। तो ऐसे ही जब अज्ञानसे यह मान लेता कि मैं क्रोधरूप हूँ तो फिर यह क्रोधरूप ही तो प्रवृत्ति करेगा।

४५३—अज्ञानके विनाशसे बंधविकल्प परम्पराके विनाशकी संभावना—

अज्ञानताके कारण जो यह जीव कर्ता कर्मके भेषमें अनादिकालसे चला आ रहा है मैं यह एक कर्ता हूं कह भी देता कि मैं जीव हूं और क्रोधादिक करना मेरा काम है। इस प्रकार अनादिकालसे कर्ता कर्मकी प्रवृत्ति चली आ रही, क्यों चली आ रही है कि अज्ञानभरी कर्तृ कर्मत्वकी बुद्धि रखनेसे कर्मबंध हुआ और उसका विपाक आनेपर उदय होनेपर फिर जीवने विकल्प किया और विकल्पके निमित्तसे फिर कर्मका बंध हुआ, विकल्प हुआ, तो फिर नवीन बंध हुआ, ऐसा अनादिकालसे चला आ रहा है। जैसे कि बीज और वृक्ष इनकी संतान अनादिकालसे है। जैसे बताओ आमका पेड़ बीजके बिना होता क्या ? और बीज आमके पेड़के बिना होता क्या ? फिर वह पेड़ बीजके बिना होता क्या ? यों संतति बीज और वृक्षकी चलाते जाओ तो इसका कभी अन्त आयगा क्या ? क्या कभी यह उत्तर मिल सकेगा कि सबसे पहले क्या पैदा हुआ—बीज या वृक्ष ? कोई सही उत्तर न दे पायगा। यह एक अनादि संतति चली आ रही है यह काल भी अनादि है और अनादिसे ही यह सब व्यवस्था हो रही है तो ऐसी ही जीवकी बात लगा लीजिए। बीज मानलो कर्म और वृक्ष मान लो विकार तो यों लगावो कि बंध था तो विकार बना, विकार था तो बंध हुआ, या विकारको बीज मानो। कर्मबंधको वृक्ष मानो। कुछ भी मानो संतान बताये जा रहे हैं। तो ऐसा जो यह जीव अनादिकालसे विकार मोह करता चला आया आया है उसका कारण अज्ञान है। उस अज्ञानको नष्ट करनेके लिए ज्ञान प्रकट होता है। ज्ञान स्वयं धीर होता है: गम्भीर होता है, उदार होता है, क्योंकि वहाँ रागद्वेष नहीं। केवल जानन देखनहार स्थिति होती है, तो अपनेमें वह धारणा बनायें कि मैं ज्ञानस्वरूप हूं, ज्ञानको ही करता हूं, ज्ञानको ही भोगता हूं, ज्ञान ही मेरा सर्वस्व है। इस ज्ञान ज्ञानको ही चेतते रहें तो वह प्रकाश मिलता है कि जिससे संसारके सारे संकट नियमसे छूट जाते हैं।

४५४—विचित्र दशाओंमें भेषकी प्रसिद्धि—

भेष धरना किसे कहते हैं ? भिन्न—भिन्न सकलोंको रखना, भिन्न—भिन्न स्थितियाँ बनाना इसका नाम भेष है। वैसे प्रत्येक गृहस्थ भी दिन भरमें दो चार भेष बना लेता है। कभी पैंटका भेष बनाया, कभी धोती पहिननेका बनाया, पर देर देरमें बनता है और मामूली परिवर्तनमें बनता है। इसे कोई भेष धरना नहीं कहा और उस नाटकमें ५-५ मिनट बाद नये-नये भेष बनाते हैं और विचित्रता बनती है, एकदम परिवर्तन बनता है तो लोग उसको भेष कहते हैं, अब यह भेष बनाकर यह आया। अच्छा आत्मामें भी देखो दो मिनट पहले कुछ भाव, दो मिनट बाद ही कुछ भाव, कोई सा भी परिणाम। अभी कोई प्राणी मनुष्यकी हालतमें है, फिर बन गया कीड़ेकी हालतमें, जरा जरा सी देरमें विचित्र विचित्र परिवर्तन होते हैं, क्या इसको भेष धारक न कहेंगे ? यह जीव भेष धारण करता चला आ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

रहा है, अच्छा और इस भेष में अज्ञान भरा भेष देखिये मैं करने वाला हूँ ये क्रोधादिक भाव मेरे कर्म हैं या पद्गल मैं उत्पन्न हुए क्रोधादिक भाव ये मेरे कार्य हैं। या बाहरी मकान आदिक ये मेरे कार्य हैं। मैं करने वाला हूं मैंने किया सो लो अब यह कर्तकर्म भेष मैं उपस्थित हुआ।

४५४ ज्ञान ज्योतिका अभ्युदय होनेपर कर्तृकर्मभेषका हटाव—

यहाँ मूलमें देखो यह भेष धरनेवाला जीव पदार्थ मूलमें कैसा है? चेतन ज्ञान दृष्टा, विशुद्ध प्रतिभाष मात्र। जिससे किसी को विसम्वाद नहीं होता, जहाँ कोई हलचल नहीं, ऐसा यह विशुद्ध चेतन पदार्थ यह तो हूँ मैं और जो भेष बनाता है तो यह भेष है कर्मरस। यह जीव कर्मरस को अपना कर इस नाटक में, उपयोग भूमि में आकर नाना तरह का नाटक रचता है, रच रहा नाटक मगर जैसे ही भीतर से ज्ञान ज्योति आ धमकी इस उपयोगके स्टेज पर, यह विशुद्ध ज्ञान प्रकाश जैसे ही आया वैसे ही जीवके और अजीव के दोनों ही भेष गायब हो जाते हैं। ऐसा क्या प्रताप है इस ज्ञान ज्योतिमें कि इन जीवोंका भेष धरना खतम हो जाता है। वह ज्ञान ज्योति कैसी है? इस प्रसंगमें एक बात याद आ गई कि मनुष्य प्रभु से बहुत बड़ी भक्ति कर रहा था। स्तवन करते हुए एक बार बोल उठा कि हे प्रभो, देखो हमने आपको कैसा कैसा नाटक दिखाया याने भगवानके ज्ञानमें सब झलकता है ना? भगवानका ज्ञान सब कुछ जानता है तो मैंने अनादि से अब तक जो जो भेष धरा नाटक किया, समय समय की सब बातें प्रभु के ज्ञानमें गुजरती हैं सो यहाँ कह रहे कि हे प्रभु देखो मैंने कैसा नाटक किया, कितने कितने नाटक दिखाये आपको। जैसे कोई नाटक करने वाला पुरुष या खेल दिखाने वाला नट बड़े आराम से नाटक (खेल) दिखाता है ना? कितनी ही तरह की बातें दिखाता है, और खेल दिखाकर फिर इनाम माँगता है। इनाम चाहता है। सो हे भगवान हमने देखो आपको कितने खेल दिखाये, चारों गतियों का भ्रमण और ऐसे ऐसे विचित्र नाटक दिखाये। अब आप हमारा नाटक देखकर खुश हुए कि नहीं? प्रभु आप यह बता दें। अगर आप हम पर प्रसन्न हो ती जो हम चाहते हैं वह हमको इनाम दीजिए। शायद कोई कह उठे कि हाँ हाँ तुम्हारा नाटक अच्छा हुआ, कहाँ निगोद, कहाँ पृथ्वी, अग्नि, झट झट परिवर्तन, कीड़ा मकोड़ा मनुष्य देव विचित्र विचित्र नाटक दिखाया तुमने भगवान को। सो अगर भगवान आप हम पर प्रसन्न हों तो मुझे मुंह माँगा इनाम दीजिए। ... ... अच्छा माँगो क्या चाहते हो?....भगवान मैं मोक्ष चाहता हूँ अगर मेरे खेल देखकर आप प्रसन्न हों तो बस हमें मन चाहा इनाम दीजिए, मुक्ति दे दो। अच्छा नहीं देते आप मुक्ति, नाराज हैं आप, हमसे प्रसन्न नहीं हैं, हमने इतने नाटक (खेल) आपको दिखाये पर आप उन्हें देखकर हम पर प्रसन्न नहीं हुए सो आप मुझे मुँह मागा इनाम नहीं दे रहे हैं तो फिर आप मेरा नाटक (खेल) मिटा दीजिए याने आप मेरा संसार परिभ्रमण मिटा दीजिए। देखो यह प्रभु का स्तवन है, इस स्तवन में प्रभु से दोनो तरह से मुक्ति चाही जा रही है। अगर सीधे सीधे आप हमपर प्रसन्न हों तो मैं माँगता हूँ कि मैं मुक्त हो जाऊँ सो इसकी पूर्ति करें और अगर आप हमपर खुश नहीं होते तो हमारा यह सब नाटक (खेल) खतम कर दीजिये, क्यों? जब आप हमारे खेल से प्रसन्न नहीं, तो खेल मिटा दो। हाँ प्रकरण यह चल रहा है कि इस जीव ने कितने तरह के नाटक अब तक किये और इस समय भीतर से ही अपना ही ज्ञान प्रकाश जब इस उपयोग में आता है तब यह ऊधम मचाने वाला, यह भेष, यह नाटक ये नाना विडम्बनायें सब भाग जाते हैं।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

४५६—कर्तृकर्मत्वभेषविध्वंसक ज्ञानज्योतिका प्रताप—

हाँ तो ऐसा क्या प्रताप है इस ज्ञानमें कि यह भेष खतम हो जाता है। यह ज्ञान ज्योति सारे विश्वको साक्षात् करता हुआ, साक्षी होता हुआ समस्त द्रव्योंको भिन्न भिन्न रूपसे देखने वाला बन रहा है। उसका यह प्रताप है कि यह नाटक सब उसका दूर हो जाता है। कैसे ? कितना कठिन भेद विज्ञान अथवा बड़ा सुगम भेद विज्ञान। अपनेमें स्वभावको और विभावको भिन्न-भिन्न समझनेकी बात। स्वभाव क्या ? शुद्ध ज्ञान, जाननहार बनना। केवल जानन और विभाव क्या ? विकल्प रागद्वेष इष्ट अनिष्ट वुद्धि ये सारे विकल्प। तो क्या करना ? वि..ल्पमें और ज्ञानके स्वरूपमें भेद डालना। जैसे चावलोंमें कूड़ा करकट मिला है तो क्या करना कि उनमें पहले भेद समझना कि यह तो चाँवल है, यह हितकारी है, यह मेरे कामको चीज है, यह कूड़ा है, यह उपाधि है, यह बुरी है, इसे हटाना है, ऐसा ही अपने आपमें मिश्रण चल रहा है स्वरूपका और विकारका जिससे कि हम अनादिसे अब तक नाटक धरते आये, अब यहाँ भेद करना है कि यह विकार यह कूड़ा करकट यह अहितकारी हैं और यह मेरा स्वरूप ज्ञान यह मेरा हितकारी है। कैसे करें भेद विज्ञान, भेद विज्ञान तो कर सकते हैं।

४५७—स्वभाव और विभावमें अन्तरज्ञान करनेके लिये हरे उजालाका भेदकरणका दृष्टान्त—

देखो एक बल्ब जल रहा है उजेला हो रहा है और उस पर लगा दिया हरा कागज तो उजेला बन गया हरा। अच्छा देखो यहाँ दो बातें समझमें आ रहीं कि नहीं ? क्या ? हरा होना और बात है, उजेला होना और बात है। जरा उपयोग लगाकर सुनो एकाग्र चित्त होकर तो ये सब बातें ध्यानमें आयेंगी। पहले दृष्टान्तमें देखो उजेला हो रहा और उसपर लगी हरी उपाधि या बल्बपर ही रंग पोत दिया तो हरा उजेला हो गया। यहाँ देखो दो स्वरूप है कि नहीं ? हरा होना अलग बात है, उजेला होना अलग बात है। अब कोई अगर यह कहे कि यदि ये दोनों बातें अलग-अलग हैं, हरा होना असग स्वरूप है, तो आप कृपा करके हरा हरा तो ला दीजिए, हमारे हाथ पर रख दीजिए और खाली प्रकाश वहाँ रहने दीजिए, ऐसा करना तो बड़ा मुश्किल हो रहा। एक बल्ब पर हरा रंग पुता है और वह उजेला सारा हरा हो रहा है तो समझमें तो आ रहा है कि हरा होना और कुछ बात है। और उजाला होगा कुछ और बात है। किन्तु ऐसा करना बड़ा कठिन हो रहा कि हरा हरा उठाकर बाहर धर दो और उजेला कमरेमें रहने दो, ऐसा होना तो बड़ा कठिन लग रहा, किया नहीं जा सक रहा। हाँ इस समय तो नहीं किया जा सक रहा मगर समझमें आ रहा कि नहीं कि हरा होना और बात है, उजेला होना और बात है। समझमें आ रहा क्योंकि ज्ञानमें यह बसा है कि हरा हुए बिना भी उजेला रहता है, ऐसा ध्यानमें है इसलिए झट समझमें आ रहा कि हरा होना और बात है, उजेला होना और बात है।

४५८—हरा उजालामें भेदकरण दृष्टान्तकी भांति स्वभाव विभावमें भेदकरणकी प्रक्रिया—

जरा उक्त दृष्टान्तकी भाँति अपने आत्मामें देखो ज्ञान तो उजेला है, जानना प्रतिभास हुआ। ज्ञान तो एक प्रकाश है, और पहले बाँधे हुए कर्मोका अनुभाग उदयमें आया। वह अनुभाग, वह अंधकार वह कर्मोकी विडम्बना इस उपयोगमें झलकी, प्रतिविम्ब हुआ, प्रतिफलित हो गया, छा गया कर्मरस हमारे उपयोग पर। तो अब यह जीव जो काम सीधा था केवल मात्र जानन सो उसके साथ अब विकल्प लगने लगे। अच्छा बुरा, इज्जत अपयश ऐसे अब विकल्प चलने लगे ज्ञानमें तो बात क्या बन रही ? यहाँ, जैसे हरा उजेला वैसे ही यह है विकल्प वाला ज्ञान। तो जैसे हरे उजेलेमें हरा होना और बात, उजेला होना और बात। ऐसे ही यहाँ पर विकल्प चलना और बात ज्ञान, रहना और

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बात। ऐसा जो अन्तरमें भेद पहिचान लेता है और भेद पहिचान कर फिर उस विकल्पसे हटकर केवल एक ज्ञानकी शुद्ध वृत्तिमें रहता है उसका यह भेष सब खतम हो जाता है। हाँ हरा और उजेला, जैसे इन दो बातोंको हम जानते हैं अलग अलग ज्ञानमें, इसी तरह जरा ज्ञानके कामोंको और रागद्वेषको परखिये तो सही कि ये न्यारी—न्यारी बातें हैं या नहीं। रागद्वेष कषाय। कषाय और बात है और जानना और बात है। लोग कहते हो है, अरे आप तो कषायमें आ गए, आप तो जैसे थे वही रहो। कषायमें क्यों आते। तो इसीसे ही जाहिर हो रहा ना कि कषाय करना और बात है और जानना और बात है, क्योंकि जाननेमें तो जानना जानना ही रहता है। और कषायमें गुस्सा, घमंड, विकल्प, तड़फन, व्यग्रता ये सारी बातें यह तो स्वरूप हैं कषायका, और मात्र जानना यह है स्वरूप ज्ञानका। यह अपने अन्दरकी ही बात कही जा रही है। जैसे हरा उजेला-यहाँ दो बातें हैं—उजेला प्रकाशका स्वरूप है और हरा मलिनता है। देखो भी जरा हरा होनेसे उजेलेमें कुछ कमी भी आ गयी, ऐसे ही यहाँ ज्ञानका जितना व जैसा प्रकाश प्रभुमें होता है उस ही ढंगका मुझमें हो सकता वह जानन प्रकाश यह तो है ज्ञान और जो इष्ट अनिष्ट बुद्धि हुई, विकल्प जाल चले, व्यग्रता हुई चिन्ता हुई, आशा हुई, इच्छा की, ये सारी गड़बड़ियाँ ये हैं कर्मरस। विकार तो विकारमें है और ज्ञान ज्ञानमें हैं। जैसा ही स्वरूपका प्रकाश मिला, अन्तरका परिचय हुआ कि फिर यह जीव और अजीव यह कर्ता कर्मके भेषको छोड़कर अलग खड़ा हो जाता है।

४५९—स्वभाव परिचयसे च्युत प्राणियोंको संकटोंको उपहार—

हाँ जरा देखिये—अपने आपमें, मैं आत्मवस्तु हूँ, स्वभाव मात्र हूँ, यह प्रभुके उपदेशमें कितना अपूर्व अमृत मिल रहा है। इसका कोई पान करे तो उससे संकट सब दूर हो जाते हैं। और जो स्वभाव परिचयसे च्युत हैं उनके संकट सब अदूर हो जाते हैं, क्योंकि संकट क्या? कुछ भी सँकट, भ्रमसे संकट मान लिया। जिस लड़केको आप अपना मानते हैं और हम समझायें कि भाई तुम अपना न मानो, किसी दूसरेके लड़केको अपना मान लो तो कहाँ माना जाता? यह तो मेरा ही है, यह दूसरेका कैसे हो सकता है? दूसरा कैसे हो सकता है। अरे अपना जो न था, न है, न होगा, जिससे कुछ लाभ भी नहीं, सबकी परिणति अपनी अपनी जुदी जुदी है, वहाँ मोह रखना, अज्ञान रखना, इसको कितना बड़ा अंधकार कहा जाय? मगर कोई पक्षी होते हैं ऐसे कि उनको अंधेरेमें ही उजेला नजर आता। तो ऐसे ही मोहियोंको मोहमें ही उजेला नजर आता। किसीसे पूछो—क्यों भाई साहब, आपका मिजाज कैसा है? हाल चाल कैसा है? तो कहते कि बहुत बढ़िया खूब हरे भरे हो रहे। हरे भरेके मायने जैसे पेड़ हरा भरा होता, फूल निकल आये, ऐसे ही इसमेंसे भी फूल निकल आये, फल निकल आये, मायने यह यह सब लड़का लड़कीका झमेला आ गया, इसको लोग हरा भरा मानते, पर उसे यह ध्यानमें नहीं है कि जितना हम आत्माके स्वरूपके ध्यानसे चिगकर किसी भी बाह्य पदार्थमें रम रहे हैं, इसका फल बहुत बुरा भोगना पड़ेगा, कर्मबन्ध होगा, दुर्गति होगी।

४६०—मनुष्यको उलझनसे प्राप्त सुयोगका निष्फलीकरण—

आज तो कुछ पूर्व तपश्चरणका प्रताप समझिये कि जो अच्छे संगमें उत्पन्न हुए हैं, प्रभुके दर्शन भी किया करते हैं, उत्तम बात है, मगर ऐसे समाजको पाकर जिनका चित्त मोहमें उलझे तो उनको अपने आपपर कुछ करुणा जरूर करना चाहिए कि आखिर ऐसा कब तक चलेगा। कैसे हम पार होंगे। एक बार चार ठग लोग किसी गाँवमें पहुँचे। वे कुछ खास जानकार न थे, लेकिन जहाँ चाहे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जाप दें, जाप करें, और और प्रलोभन दें और कहें कि आप पर इतने ग्रह चढ़े हुए हैं, और इस जाप करने के बदलेमें वे कुछ धन लिया करते थे। सो उस गाँवमें भी एक सेठने अपने पर ग्रहों की शुद्धि के लिए जाप कराया। तो वे चारों व्यक्ति जाप करने बैठ गए-एक व्यक्ति बोलता ॐ विष्णु-विष्णु स्वाहा, दूसरा बोलता—तुम जपा सो हम जपा स्वाहा, तो तीसरा बोला–ऐसा कब तक चलेगा स्वाहा, तो चौथा बोला—जब तक चले तब तक चले तब सही स्वाहा। सो ऐसा जाप चल रहा था। मोहमें अटपट काम यहाँ भी तो हो रहे, कैसे जाप चल रहे और दूसरे को भी देखकर जैसा तुम करते सो हम करते-स्वाहा। और कोई अगर पूछ बैठा कोई वक्ता, त्यागी सँन्यासी कि ऐसा कब तक चलेगा ? तो उसका जवाब है कि जब तक चले तब तक सही, स्वाहा ऐसे पूरा थोड़े ही पड़ता।

४६० भेद विज्ञान व स्वरूपदर्शनसे प्राप्त सुयोग का सदुपयोग करके जीवन सफल करने का अनुरोध—

भैया ! प्रखर भेद विज्ञान करिये अन्तरमें, मैं जो हूँ सो ही हूँ, इस भेद के कारण इतना कठोर बनना पड़ेगा कि जरा भी गुन्जाइस नहीं कि विकार रंच मात्र भी मेरेमें आये, मेरा बने। मैं लेश भी विकार नहीं चाहता। मुझमें विकार है ही नहीं। मैं तो अविकार स्वरूप हूँ। स्वभावको देख रहा ज्ञानी, जैसे दर्पणमें प्रतिविम्ब आया तो सब कोई जानते हैं कि यह प्रतिविम्ब दर्पण से अलग है। अगर उसे कोई मिटाये तो मिट जायगा। हां मिटेगा अपनी विधि से, मगर उस समयमें दर्पणमें प्रतिविम्ब होकर भी सब लोग यह जानते हैं कि दर्पणका स्वरूप तो न्यारा है और प्रतिविम्ब का स्वरूप तो न्यारा है, ऐसे ही अपनेमें पहचानना पड़ेगा कि मेरा ज्ञान स्वरूप तो न्यारा है वही प्रभु है, वही रक्षक है, परमपिता है और कर्मरस जो आ धमके हैं विकार राग द्वेष सुख दुःख ये सब मेरे स्वरूप से न्यारे हैं, ऐसा ज्ञान जगे तो समझिये कि अब हमें रईसी मिली, अमीरी मिली, कृतार्थ हुए, और लोकोत्तम तत्त्व पाया। यदि सब सुविधाएँ मिली है, चिंतायें अधिक नहीं करनी पड़तीं, जैसे कि लोग कहते हैं कि बस हम तो अब बहुत अच्छें चल रहे हैं, रोजिगार भी ठीक, घर भी ठीक, कुटुम्ब ठीक, मित्र भी ठीक, खूब मौज बरष रही। अरे तो इस मौजका सदुपयोग करो। अगर इसका दुरुपयोग किया तो आगे कुछ गति अच्छी गति न मिलेगी। अगर आज सुविधायें मिली, मौज मिली तो उसका सदुपयोग कैसे करना ? सत्सँगमें रहना, स्वाध्यायमें चित्त देना, रात दिनमें कमसेकम एक बार सामायिक करना और वहाँ ऐसी बात भावना, जाप करके भीतरमें मनन करना, मैं वास्तवमें क्या हूँ और मुझपर आ धमका क्या है, इसका निर्णय करें।

४६१—आत्मविश्राम द्वारा मोहकी थकान दूर करने का संदेश—

बाहरी सब बातोंको भूलकर विकल्पोंसे विराम पाकर कुछ देर सच्चा आराम लें। कोई पुरुष शरीरसे बहुत मेहनत करनेके बाद अपने शरीरको ढीला ढाला छोड़कर पड़कर, चित्त लेटकर ढीले अंग से आराम लेता है और उसे कुछ मौजभी मिलता है तो यह तो है शरीर की बात, पर भीतरमें तो देखो कि इस जीव ने नाना विकल्प करके, राग द्वेष सुख दुःख, चिन्ता शल्य, हर्ष विषाद, ईर्ष्या प्रमोद करके, सारे विकल्पोंको करके थका डाला, मानने इस जीवने अपनेको थका डाला, और यह इसकी थकावट कुछ थोड़े समयकी नहीं अनादिकालसे यह थका हुआ रहता है और मोहकी शराब ऐसी पी रखा है कि थके होनेपर भी थकने का ही काम करता है। जैसे यहाँ कुछ ट्रक के ड्राइवर या अन्य लोग परिश्रम करने वाले कहते हैं कि शराब पी लें तो और दुगना कामकर लेंगे। तो काम करनेमें थकते नहीं क्या ? थकते हैं पर यही धुन बनी है कि थकेमें थकेका ही काम करते जा रहे,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ऐसे ही इस जीव ने मोह की मदिरा पी लिया तो निरंतर यह थक तो रहा, पर थक थककरभी इस मोहमें, बेहोशीमें थकनेका ही काम करते हैं। थका बहुत। अब जरा भीतरी थकानको मिटानेकी इच्छा है कि नहीं ? चौबीसों घंटे जो विकल्प चलते हैं, अनेक बातें चलती हैं उनसे जो आत्मा थक गया, भकझोरा गया, इसको आराम देनेकी भावना अगर है तो आराम दीजिए। कैसे आराम मिलेगा ? उन सब विकल्पोंको, व्यायामों को छोड़कर अपने को छोड़कर अपने को ढीला ढाला रखकर मायने सरल बनाकर कुछ क्षण कुछ चिन्तवनमें न आयें और विना विचार के कोई अनुपम स्थिति आये उस क्षणमें परमात्म तत्वके दर्शन होते हैं, सारे संकट दूर होते हैं। जहां अलौकिक सहज आनन्द का लाभ होता है वह है सच्चा विश्राम। इस विश्रामसे भव–भवके बांधे हुए कर्म कट जाते हैं, इस प्रसंगमें पूर्ण समता भाव जागृत हो जाता है। स्वरूपमें एकरस बन जाता है, ऐसी है यह ज्ञान ज्योति जो इस उपयोग भूमिपर, स्टेजपर आयी है।

४६२—ज्ञान ज्योतिसे हुल्लड़वाजियों का विनाश—

जिसके प्रतापसे हुल्लड़वाजियाँ खतम हो जाती हैं वे सब हुल्लड़बाजी क्या थी ? यह ख्याल बनाया, वह ख्याल बनाया, इसे भला माना उसे बुरा माना, किसी को देखकर दुःखी हो गए, ये जो नाना प्रकारकी गड़बड़ियाँ हैं ये सब तुरन्त समाप्त होती हैं। जैसे मास्टर थोड़ी देरको कक्षा से बाहर चला जाय तो लड़के लोग खूब हुल्लड़बाजी मचाते हैं और जब मास्टर आ जाय कक्षा में तो लड़के लोग शान्त होकर बैठ जाते जैसे मानो सब बड़े भक्त हों और प्रभुके ध्यानमें लीन हो गए हों। तो जैसे मास्टरके आते ही बालकों को सारी हुल्लड़बाजी खतम हो गई ऐसे ही इस विशुद्ध ज्ञानप्रकाशमें आते ही इस मनकी यह गड़बड़ी, ये सब ऊधम दूर हो जाते हैं, अपने पर ऐसी दया करने के लिए कम से कम दो तीन बातों का ध्यान रखें, एक तो स्वाध्याय अवश्य करें। जो ग्रन्थ समझमें आयें, जिनसे तुरन्त लाभ मिले उनका स्वाध्याय नियम से करना चाहिए। सत्संगमें भी बैठना, सँबंध रखना और तीसरी बात २४ घंटे में एक बार जाप सामायिक करना, उसमें चिंतन चलाना कि मैं क्या हूँ, मुझे क्या करना, क्या इसी रफ्तार से जीवन गुजारना है ? वहां विचार करना और कुछ देर सच्चा विश्राम लीजिए स्थिर आसन करके सबको भूलकर, चित्त को ऐसा स्वच्छ बना लें कि यहाँ कुछ विचार ही न चले। यह बात चुटकी बजे इतनी देर भी होना कठिन है, पर इतनी देर भी अगर चित्त ऐसा बन जाय कि चित्तमें कोई पर चीज न आये तो अपने आप उमड़कर भीतर बसा हुआ भगवान आपको दर्शन देगा। यही है वह ज्ञान ज्योति जो कि इस जीवन के नाना नाटकों को समाप्त कर देती है।

परपरिणतिमुज्झत खंडयद्भेदवादानिदमुदितमखंडं ज्ञानमुच्चण्डमुच्चैः
ननु कथमवकाशः कर्तृकर्मप्रवृत्तेरिह भवति कथं वा पौद्गलः कर्मबन्धः ।।४७।।

४६३—आत्माका भेदभावसे परिचय—

वस्तु को पहिचानने के चार उपाय होते हैं। किसीभी प्रकार पदार्थ का परिचय करना हो तो चार दृष्टियों से परिचय किया जाता है, जिन चार का नाम है द्रव्य, क्षेत्र काल और भाव। मतलब ? द्रव्य मायने वह वस्तु पिण्ड पदार्थ और क्षेत्र मायने वह कितनी जगहमें फैला हुआ है। काल के मायने उसकी क्या हालत हो रही है, भाव के मायने उसमें क्या गुण है। आज एक प्रारम्भिक सब बात कह रहे हैं, उपयोग लगाकर सुनो, सब चित्तमें उतरेगा। जैसे मानो एक घड़ी का परिचय कराना है तो इस घड़ी को चार दृष्टियोंसे जानेंगे— एक तो पिण्ड जिसे आप देख सकते हैं, यह तो हुआ द्रव्य।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

क्षेत्र—यह घड़ी, कितने क्षेत्रमें फैली हुई है, कितनी एरियामें घड़ी रखी है। तो जो कुछ उसका आकार है वह इसका क्षेत्र है और काल—इस घड़ीकी वर्तमान दशा क्या है, नई है, पुरानी है, ठीक है, ये सारी बातें कहलायी काल। काल मायने दशा और भाव—मायने इसमें क्या क्या गुण हैं वे कहलाये भाव। किसी मनुष्यका परिचय करना है तो जो मनुष्य सामने दिख रहा वह है क्या? द्रव्य, और जितना लम्बा चौड़ा फैला आकार है मनुष्यका वह उसका कहलाया क्षेत्र और उस मनुष्यकी दशा कैसी है? जवान है, बूढ़ा है, क्रोधी है, यों भीतर बाहरकी जिन दशाओंकी जानकारी करते हैं, यह काल है, और उसमें क्या क्या गुण है उन गुणोंकी पहिचान करना सो भाव है। अब आत्माको देखो द्रव्य, क्षेत्र, काल भावसे द्रव्यसे देखो, जो यह एक पुञ्ज है चैतन्यपुञ्ज, नाना पर्यायोंका पिण्ड, जो कुछ एक वस्तु है, जिसपर कषायका आवरण हैं जिसको हम अपने वस्तुरूप समझ रहे हैं वह क्या हुआ? द्रव्य। क्षेत्र क्या? यह आत्मा कितनेमें फैला है, सो सब जानते हैं कि देह प्रमाण है जीव, जितना फैलाव देहका है उतना ही फैलाव इस जीवका है। तो इसको जो निजी प्रदेश है, फैलाव है वह हुआ आत्माका क्षेत्र और काल क्या हुआ? आत्माकी जो दशा बन रही है, तृष्णा करता है, मायाचार करता है, सरल रहता है, क्षमा रखता हैं, आदिक जो भी चीजें है वे कहलाती है काल, और भाव क्या कहलाता है? इस आत्मामें क्या—क्या शक्तियाँ है, क्या क्या गुण हैं? यह तो सब जानते हैं कि आत्मामें जानने देखनेकी भक्ति है, विश्वास करनेकी शक्ति है, तो ऐसी जो इसमें शक्तियाँ हैं वे कहलाये गुण। तो अब जानें, आत्माको भी पहिचानें। चार दृष्टियोंसे बताना यह एक परखकी बात कह कह रहे हैं। इसे कह रहे हैं अध्यात्मका प्रकाश करनेके लिए शुरु शुरुकी बातमें जब इस तरह से जान रहे हैं हम तो आत्माके बारेमें किसी एक पर तुम स्थिर नहीं हो रहे। द्रव्यसे ऐसा, क्षेत्रसे ऐसा, कालसे यों, भावसे यों यह हुई भेदवादकी एक बात।

४६५ आत्मामें पर परिणिति की आलोचना—

दूसरी बात कालकी देखिये कि हम पर क्या अवस्थायें गुजर रही हैं, दशायें बन रही हैं, मगर वह दशा व्यग्रताकी है, चिन्ता की है, अस्थिरताकी हैं, शुद्ध परिणति की नहीं है तो उसका कारण क्या है? उसका कारण है कि साथमें जो कर्म लगा है उसका विपाक उदय होता है, उससे यह मलिनता जगती हैं। तो दो बातें परखना, पहली बात यह समझना कि जैसे दर्पणके सामने रखी हुई रंग बिरंगी चीजका प्रतिविम्ब आया तो वह प्रतिविम्ब जो दर्पणमें आया वह दर्पणके निजी स्वभावसे आया क्या? नहीं आया, किन्तु सामने स्थित रंग विरंगी चीजका सन्निधान होने पर प्रतिविम्ब आया तो वहाँ एक तरह यों कह लीजिए कि यह प्रतिविम्ब दर्पण की एक परिणति है और एक तरह यों कह लीजिए कि दर्पणमें जो यह प्रतिविम्ब है यह पर द्रव्यकी बात है, परिणति है, पर परिणतिके दो अर्थ होते हैं—एक तो खुदकी परिणति और एक परका निमित्त पाकर होने वाली परिणति। सब जानते हैं कि प्रतिविम्ब हट जाता है, प्रतिविम्ब मिट जाता है, दर्पण तो स्वच्छ है, तो ऐसे ही आत्मा पर कर्मोदयका एक अंधकार आता है, कर्मरस आता है और वह ज्ञानमें जाना गया और ज्ञान उस रूप मानने लगा तो यह जो मलिनता है कषाय की यहपर परिणति कहलाती है याने आत्मामें अपने स्वभावसे तो ऐसी स्वच्छता है कि वह केवल जानता रहे, उसमें कोई गड़बड़ी न आये प्रभु भी जानते हैं तीनों लोकालोक को तो उसकी ओर से तो बात ईमानदारी की यह है कि यह केवल जानता ही रहे, मगर जो कोई इन अनेक ढंगोंमें जानता है, मायने ज्ञान की उस तरहसे जो वृत्ति जगती है यह मलिनता है, और यह कर्मरस परिणति है तो इस

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

परिणति को जब तक यह जीव अज्ञानी है और जब यह मानने लगता, समझमें आ गया कि यह तो कर्मरस है, मैं तो स्वच्छ ज्ञानस्वरूप हूँ तो अज्ञान हट जाता है।

४६६ पर परिणतिको त्यागता हुआ व भेदवादको मिटाता हुआ सर्वविशुद्ध ज्ञानका अभ्युदय—

यहाँ जो ज्ञानीके एक ज्ञान प्रकट हो रहा है तो वह दो बातोंको करता हुआ हो रहा है, एक तो परिणति को छोड़ता हुआ और एक भेदभाव की बातोंको मिटाता हुआ। दो बातें समझना है ज्ञानके लिए, जिसकी भूमिकामें अभी कुछ भूमिका दी। भेद क्या किया था ? द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव इन चार तरहसे आत्मा को परखना, यह है भेद, और, परिणति क्या बताती कि जो कर्म उदयमें आये, कर्मरस इस ज्ञानमें आया और यह ज्ञान गड़बड़ा गया। यह गुस्सा, घमंड, लोभ आदिक रसोंको जानने लगा, घमंड करने लगा तो यह है परपरिणति। तो अब ज्ञानमें जो ज्ञान प्रकट हुआ है उस ज्ञानने पर परिणतिको दूर किया कि यह मैं नहीं, जैसे प्रतिबिम्ब दर्पण नहीं इस प्रकार ये कषाय मैं नहीं। यों पर परणतिको छोड़ा इस ज्ञानने और फिर भेदको भी मिटाया। जैसे अभी भेद करके समझाया था कि आत्माको जाना द्रव्यसे, क्षेत्रसे, कालसे, भावसे। द्रव्यसे कैसे जाना था कि यह मैं आत्मा पदार्थ हूं, द्रव्यसे कैसे जाना था कि यह इतना लम्बा और चौड़ा ५ फिट, ६ फिटके विस्तारमें जितना देहका विस्तार है उतने रूपमें इस ज्योतिका भी विस्तार है, कालसे क्या जाना था ? दशा, परिणति। यह इस तरह परिणम रहा, यह इस तरह गमन कर रहा जीव और भावसे क्या जाना था ? इस जीवमें देखो ज्ञानकी शक्ति है, दर्शन की शक्ति है, श्रद्धा की शक्ति है, सब गुणोंको सम्हालने की शक्ति है। गुण जाने जा रहे यह जानना बहुत काममें आता है, पर ज्यों यह ज्ञानी अपने ज्ञानस्वरूपमें बढ़ता है तो यह जानना भी मिट जाता है, वहाँ एक अखण्ड ज्ञान जिसमें ये विकल्प न चलें कि यह द्रव्य है, यह क्षेत्र है, काल है, भाव है, उदित हुआ है।

४६७—अभेदानुभवका अनुमान करानेके लिये मोहीजनोंके प्रतिबोधनार्थ मोहप्रयुक्त एक दृष्टान्त—

जैसे जब कभी एक अंदाजके लिए बतला रहे आप कोई बहुत बढ़िया मिठाई खा रहे हों जो आपको सुहाती हो—मानो एक बहुत अच्छा हलुवा बनाया, आप उसे खा रहे हैं। तो जब तक उसको खाते हुएमें यह ध्यात रख रहे कि इसमें भी अच्छा पड़ा है, बूरा अच्छा पड़ा है, सेंका अच्छा गया है तो उस समय उस हलुवेके स्वादका जो अनुभव होता है वह भी आप लोग समझ रहे होंगे और एक उस समयके भी स्वादका आप अनुभव करते होंगे जब कि ये कोई प्रकारके विकल्प नहीं उठ रहे, बस एकतान होकर आँखें मींचकर बड़े आरामसे बैठे हुए खा रहे। बताओ उसका बढ़िया स्वाद कब मालूम होता ? जब कि कोई उसके प्रति विकल्प नहीं उठ रहा, बस एकतान होकर आँखें मीचकर खा रहे। तो जिस पदार्थको भोग रहे हैं उसकी चर्चा कुछ समझमें आ रही है उसका अधिक स्वाद या कुछ चर्चा न करके आँखें मीचकर केवल एक हड़पके साथ केवल उसी स्वाद पर एक ध्यान देकर स्वाद ले रहे तब स्वाद अधिक आता है। भाई क्यों ऐसी स्थितिमें अधिक स्वाद आया ? वहाँ यह भेद मिटा दिया कि इसमें यह चीज पड़ी, इतनी पड़ी, ऐसे बनी आदि। यों आप एक अभेद जैसी स्थिति बना बैठे। अभेद कुछ नहीं हुआ, गड़बड़ वह भी है मगर मुकाबलेमें दृष्टान्तमें बता रहे हैं कि आपने एक अभेद जैसी स्थिति बनाया तो आप स्वाद अधिक पा रहे, अनुभव और अधिक हो रहा है। तो यह तो एक मोटी बात कही। चूँकि विषयके प्रसंगोंमें ही अधिक समय गुजारता है इसलिए उसका दृष्टान्त किया।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

४६८—भेदवादको खंडित करु अभेद निज अन्तस्तत्वके अनुभवमें ज्ञानकी अखण्डता—

बात यह बताते हैं कि आत्माके बारेमें भी जब जब आप यह ध्यान करके सोचे कि आत्मामें तो अनन्त गुण हैं, आत्माकी तो ऐसी पर्याय चल रही है, आत्मा तो इतने बड़े देहमें ऐसा फैला हुआ है, इस तरहके भेद वाली बातको ध्यानमें रखकर जब आप आत्माको जान रहे तबका ज्ञान, इसको एक जगह रख दीजिए। अभी तुलना की जायगी और एक द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावका भेद मिटाकर याने इन दृष्टियोंका कुछ विचार न रखकर और एक परम विश्रामके साथ एक ज्ञान इसका ही ज्ञानमें स्वाद लिया जा रहा हो, सारे व्यापारोंको रोककर, सब इन्द्रियोंका व्यापार रोककर अपने ज्ञानमें केवल जानस्वरूपको ही निरखें, केवल उस सहज ज्ञान स्वभावको ही जाने उस स्थितिमें जो आत्माका परिचय अनुभव होता है। सो हम दो बातोंमें तुलना करके पूछ रहे हैं कि पहले वाला ज्ञान जो कि भिन्न भिन्न तरीकोंसे, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी पद्धतिसे जानकारी बताया था उसमें अद्भुत अनुभव है, आत्मानुभूति है या उन सब भेदोंको समाप्त कर केवल एक ज्ञानरसका ही ज्ञानमें ज्ञान किया जा रहा हो उस समयके ज्ञानमें अनुभूति है बस इस अखण्ड ज्ञानमें अनुभूति जगती है, खण्ड-खण्डके ज्ञानमें अनुभूति नहीं जगती, हालाकी जरूरत उसकी भी है। जैसे कोई बालक अ आ इ ई न पढ़, ए. बी. सी. डी. न जाने, प्राइमरी न पास करे तो आगे बढ़ कैसे सकता है? इसलिए कभी आवश्यक तो है लेकिन जब ऊँचे ओहदेके कामपर पहुंच गए तब फिर वहाँ उस प्राइमरी पाटशालाकी चीजका कोई उपयोग तो नहीं करता, और पायीं हुई योग्यताका उपयोग करता है हर एक कोई ऐसी ही प्रारम्भिक अवस्थाओंका खण्ड-खण्ड करके आत्माको समझ सकता है क्योंकि ऐसे भिन्न भिन्न रूपसे समझे बिना हम उस अखण्ड आत्मतत्त्वको नहीं जान सकते। इसलिए उस विशुद्ध अनुभूतिके लिए आवश्यक है, यहाँ हर तरहसे आत्माको समझें, मगर जो ज्ञान कर्मकी काट छाट करे, जो ज्ञान अपनेमें अद्भुत आनन्द रसका पान कराये, जो ज्ञान सारे अज्ञान अंधेरेको तुरन्त खतम करदे, ऐसा ज्ञान तो बस यह है जहाँ अखण्ड ज्ञान ज्योतिका अनुभव हो रहा है। तो ऐसी प्रचण्ड तेज वाली सहज ज्ञान ज्योति जहाँ प्रकट होती है वहाँ अज्ञानको अवकाश नहीं रहता। जैसे जहाँ निरावरण होकर मेघ पटलसे हटकर सूर्यका उदय होता है वहाँ अंधेरेको स्थान नहीं मिलता।

४६९—स्वभाव और परिणति दो रूपोंमें आत्माका परिचय—

हाँ देखो कुछ थोड़ा और आत्माको परखनेकी पद्धति पर दृष्टिपात करिये। आत्माको दो तरहसे परखो, तीन तरहसे परखो, चार तरहसे परखो, ५ तरहसे परखो, कई पद्धतियोंमें परख बतला रहे हैं ताकि परख बननेके बाद फिर हम एक अखण्ड ज्ञानस्वरूपको समझ सकें, दो तरहसे परखें आत्माको, स्वभाव है और पर्याय है। दो बातें दिख रही इस जीवमें। जीवका कोई निजी स्वभाव है और उसकी कोई दशा बन रही है। बोलो है ना यह बात सही? स्वभाव न हो तो वस्तु क्या रही? जैसे अग्निमें गर्मीका स्वभाव नहीं है तो फिर अग्नि किसका नाम? और कोई कहे कि स्वभाव तो है, मगर उसका नाम कुछ होता ही नहीं है तो फिर स्वभाव किसका नाम? अग्नि किसका, नाम, स्वभाव प्रयोजन भी क्या? ऐसे ही आत्मामें स्वभाव है क्या? चैतन्य चित्स्वरूप चेतनामात्र कहलो, इससे अधिक शब्द नहीं हो पाते, और परिणति क्या है? पर्याय जो गुजर रही, हम पर गुजर रही खोटी परिणति। प्रभुपर है चित्परिणति। अच्छासे भी अच्छा विचार चले तो भी ज्ञानीकी दृष्टिमें यह है कि यह हमारी खोटी परिणति है, ऐसा सुनकर अचरज हो रहा होगा कि अच्छा विचार, अच्छी भावना,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

परोपकारके भाव, तीर्थयात्रा, वंदना, सेवा, वैयावृत्ति ये भाव चल रहे, ये तो अच्छे भाव हैं, इन्हें खोटी परिणति, विभाव परिणति क्यों कहते ? अरे इनसे भी और ऊँचे उठकर रहना था, अगर इसीका नाम अच्छी परिणति है तो फिर प्रभु भी ऐसा ही करे। वे क्यों वीतराग विज्ञान बन गए ? जो अच्छा काम है वह छोड़ना तो न चाहिए ना ? क्यों वे छोड़ते है ? अरे उससे ऊपर जो एक प्रभुस्वरूप मिलता है तो उसके सामने अच्छे विचार शुभ भाव, यह भी हमारी गल्ती हैं, और जो शुभ भावोंमें गल्ती समझमें आयी वहाँ अशुभ भावोंमें कौन चतुराई करेगा ? वह तो उससे भी अधिक गल्ती है।

४६९—शुभ और अशुभ दोनों कर्मोंकी पापरूपता का आभास—

ज्ञानी की दृष्टिमें पाप तो पाप है ही मगर वह तो पुण्य को भी एक प्रकार से पाप समझ रहा है। क्योंकि उसका प्रवेश विशुद्ध तत्त्व में हुआ है, और वैसे भी इस पुण्यका करे क्या ? पुण्य से हम क्या लाभ उठा पायेंगे ? अगर पुण्य हुआ तो धन सम्पदा मिली, इज्जत प्रतिष्ठा मिली, चला बढ़ा, भाव स्वच्छंद हुए, अन्याय भी करने लगे, दूसरों को दबाने भी लगे, विषयोंमें भी प्रवृत्ति हुई और मनने जो चाहा सो काम किया, पाप का बंध हुआ और उसके फलमें नरक जाना पड़ा, पुण्य से क्या लाभ उठाया ? पुण्य तो तब भला है जब यह धर्म कार्यमें कुछ सहायक बने। वास्तविक धर्ममें सहायक नहीं बनता अन्य कुछ धर्म कार्यको तो यह जीव अपने आप निरपेक्ष होकर अकेला ही करता है, मगर कुछ अधिक सम्पदा है, कुछ चिन्ता नहीं है, नहीं तो जिन मनुष्यों को खाने पीने की ही चिन्ता लगी है उनको तो कुछ कठिनाई है। यहां सब साधन हैं तो उसका सही उपयोग करना चाहिए। सत्संगमें अधिक समय दें, धर्म कार्योंमें अधिक समय दें—ज्ञान—वृद्धिमें अपना उपयोग लगावें, ऐसा कार्य बने तो जो पुण्य मिला है, उदयमें है वह भी एक काममें आ जायगा और यदि यहाँ ज्ञान की ओर रुचि नहीं है, अपने धर्मकी ओर दृष्टि नहीं है, तो यह पुण्य को गिरा देगा। जो जितना अधिक ऊँची चोटी से गिरेगा वह उतनी ही अधिक चोट खायगा। इसी तरह पुण्यकी बड़ी विभूति पाकर जो गिरेगा उसको बहुत अधिक चोट आती है।

४७०—निज अन्तस्तत्त्व में स्वत्वके अनुभवकी ज्ञानीके वृत्ति—

मतलब स्थिति कुछ हो, परिणाम एक होना चाहिए कि मुझे सत्य ज्ञान मिले, और मैं निज ज्ञान स्वरूपमें रमूं, यह मेरी दुनिया है, यह ही मेरा सर्वस्व है, इसीमें मेरा कल्याण है, अन्य कोई बात लक्ष्य में न रहे, अन्य उद्देश्य न बनावें, बस एक ऐसा ही दृढ़ भाव होना चाहिए, तो ज्ञानी पुरुषके एक सहज ज्ञान का उदय होना चाहिए सो वह ज्ञान दो बातों को समाप्त कर रहा, एक तो जो कषाय परिणति हैं उस पर परिणतिको छोड़ रहा हैं। मतलब नहीं इससे कुछ, मेरे लिए तो कलंक हैं, ये कषाय। मैं तो प्रभुकी जातिका हूं, मैं तो बड़े पुरुषोंके कुल का हूँ, तीर्थंकरों की संतान हूँ, चैतन्य कुलका मैं एक पदार्थ हूँ, मुझको न चाहिए विकार, मुझे न चाहिए कषाय। कषायों से बुद्धि समाप्त होती है। तब ही तो न्यायालयमें पेश हुए दो वकीलोंमें वादी और प्रतिवादीमें, जो चतुर वकील होता है वह अपने प्रतिवादी वकीलसे ऐसी बात छेड़ देता है कि जिससे उस दूसरे वकील को गुस्सा आ जाय। उसने क्यों ऐसी बातकी कि गुस्सा आ जाय ? यों की कि गुस्सासे उसकी बुद्धि मारी जायगी और यह कुछ अपने बयान सही ढंग से पेश न कर पायगा। गुस्सामें बुद्धि खराब हो जाती है और कुछ सूझता भी नहीं है, सच्चाई की बात जब चित्तमें आती है तो उन्नति का मार्ग बन पाता है। जब तक भीतरमें गुस्सा भरी रहती है तब तक न लौकिक उन्नति की बात सही चित्तमें आ पाती और

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

न अलौकिक उन्नति की बात सही चित्तमें आ पाती । यह कषाय रस मेरी चीज नहीं, ये सब परिणतियाँ हैं, इन पर परणतियोंका मुझसे प्रयोजन नहीं, मैं तो जाननहार ही रहूंगा, कषाय न करूँगा, ऐसा एक दृढ़ संकल्प बनाता है ज्ञानी पुरुष ।

४७१—समस्त भेदवादों को ध्वस्त करता हुआ अखंड उच्च प्रचंड तेजका अभ्युदय—

दूसरा कदम ज्ञानीका क्या बना कि जो नाना विधियोंसे आत्माको परखा था, यह स्वभाव है यह पर्याय है, तीन रूपसे परखा था यह द्रव्य है, यह गुण है, यह पर्याय है, चार रूपसे परखा—द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे भावको दो रूपमें और परख लीजिये । भेद रूप, भाव, अभेद रूप भाव । गुण और स्वभाव सब तरहसे पहिचाना । सो सब पहिचाना तो था, मगर जब यहाँ प्रचण्ड तेजस्वी सहज ज्ञानका उदय हुआ वहाँ भेद कुछ नहीं रहता, एक अलौकिक ज्ञान रसका अनुभव ही चलता है । जहाँ ऐसा प्रचण्ड तेजस्वी ज्ञानरूपका ही एक स्वाद आ रहा हो वहाँ "यह करता है यह किया जा रहा है, मैंने इसको किया" इस बातका तो अवकाश ही नहीं होता । कर्तृकर्मत्व बुद्धिकी तो सम्भावना ही नहीं रहती । और जब कर्तृकर्म बुद्धि न रही, भीतरमें अज्ञान न रहा, किसी पर पदार्थके प्रति मोह न रहा, कहीं लगाव न रहा, एक ज्ञान घन अंतस्तत्त्वका ही स्वाद लिया जा रहा है वहाँ फिर पुद्गल कर्मका बंध कैसे हो सकता है ? जीव खोटे भावकरे तब ही तो विजातीय अलौकिक मायने पुद्गल कर्म इस पर हामी हो जायेगे । यह है घर की फूट, मायने मेरा घर है चैतन्यस्वरूप, उससे हम जुदे हो गए, अलग हो गए और कर्मरसमें हम शामिल हो गए तो ऐसे निज गृहकी फूटमें दूसरे लोगोंको मौका मिलता ही है, सो यह पुद्गल कर्मका बन्धन इस जीव पर आ धमका, तो इतना विकट जो पौद्गलिक कर्मका परिणमन हुआ तो उसका कारण क्या रहा ? यह कर्तृकर्म बुद्धि, यह अज्ञान भाव सो ज्ञान ज्योति प्रकट होती हुई अज्ञानको मूलतः ध्वस्त कर रही है । यों सहज ज्ञानका आनन्द अनुभव यह सम्यग्दृष्टि लेता है और भव-भवके बाँधे हुए कर्मोंका क्षय कर रहा है, दूर कर रहा है । कर्म सबके साथ लगे हैं और इससे ही कष्ट उठाना पड़ रहा है और कर्मोंको हटाने का कोई उपाय दूसरा हो ही नहीं सकता है। कर्मोंको मैं हटाऊँ ऐसे भावसे कर्म नहीं हटते, किन्तु कर्म हैं क्या ? या नहीं हैं, या क्या हो रहा है, कुछ ख्याल न रहे वहाँ और एक अपने सहज ज्ञान स्वभावकी ही उपासना रहे तो इस उपासनाके प्रसादसे कर्म अपने आप दूर हो जाते हैं, लोग मिलने आयें और यह उनसे पीठ फेर लें, अपने घरके कामोंमें लग जाय तो वे अपने आप ही भाग जाते हैं, ऐसे ही कर्मरससे पीठ फेर कर ज्ञानके अभिमुख हुए ज्ञानी पुरुषको कर्म नहीं सताते ।

इत्येवं विरचय्य संप्रति परद्रव्यान्निवृत्तिं परां । स्वं विज्ञान घन स्वभावमभयादास्ति ध्रुवानः परं ।
अज्ञानोत्थित कर्तृकर्मकलनात् क्लेशान्निवृत्तः स्वयं । ज्ञानीभूप इतश्चकास्ति जगतः साक्षी पुराणः पुमान

४१३ परविवित्त अन्तस्तत्त्वका लक्ष्य किये बिना धर्म मार्ग गमन की अशक्यता—

अपने आप पर दृष्टि देकर विचारिये, यह जीव वर्तमानमें, ज्ञानमें नाना विकल्प उठाकर, नाना तरंगे उत्पन्न कर, बाहरी पदार्थोंकी बहुत याद रखकर विकल हो रहा है । क्या जरूरत पड़ी इसे कि इन बाहरी पदार्थोंको यह अपनेमें उनके लिए घर बनाये उनका ध्यान रखे और फिर मरण होने पर तो स्पष्ट है कि कुछ भी साथ नहीं जाता । जब उत्पन्न हुए थे तब स्पष्ट है कि कुछ साथ नहीं लाये और जिस समय ये बाहरी पदार्थ संगमें हैं उस समयमें भी ये आत्माके कुछ नहीं होते । ये पर पदार्थ हैं, इनमें जो विकल्प हैं, फसाव है बस यह इस परमात्म स्वरूपको प्रकट नहीं होने देता ।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आत्माका अन्तः स्वरूप पवित्र और उत्कृष्ट है, उसकी ओर तो जीवका ध्यान नहीं, क्योंकि मोह मदिरा का यह ही असर है और बाहरमें जो कुछ बन रहा, हो रहा और उसकी ओर ध्यान है तो जब तक पर द्रव्योंसे निवृत्ति नहीं हुई है तब तक जीवकी दयनीय दशा है और जब द्रव्योंसे निवृत्ति हो लेगी तब यह जीव प्रभुकी तरह बहुत ही जल्दी इस विश्वका साक्षी बन जायगा। देखो कोई निर्णय करके चले थोड़ा थोड़ा भी चले तो इष्ट स्थान पर पहुंच सकता, पर कोई निर्णय ही न रखे और चाहे कितना ही तेज यहाँ वहाँ चले फिरे तो भी उस स्थान पर नहीं पहुंच सकता, कितना ही चलने वाला हो। शिखर जी पर बड़े बूढ़े, बुढ़िया सभी जाते हैं, पर उनका संकल्प है कि हमें शिखर जी की बंदना करना है तो वे धीरे-धीरे चल पाते हैं रात्रिके १२ बजे चलते हैं तो १४ घंटेमें तो आ ही जाते हैं, और लोग तो ८ घंटेमें ही आ जाते हैं, मगर ये १४ घंटेमें तो आ ही जाते हैं क्योंकि लक्ष्य अपना सही बनाया। और अगर कोई अपना सही लक्ष्य न बनाये वह कितना ही दौड़ मचाये, कभी इधर जाये कभी उधर तो वह वहाँ कभी नहीं पहुंच सकता। ऐसे ही अपने आत्मामें एक लक्ष्य तो बना लो। बात जब बने तब सही, मगर सच्ची बात समझनेमें क्यों कृपणता करते ? यथार्थ बात तो समझ लो।

४१४ धर्म मार्ग पर पहुंचनेके लिये अपने एकाकित्वका आद्य निर्णय—

मैं आत्मा अकेला हूँ और बाकी समस्त पदार्थ मुझसे अत्यन्त भिन्न हैं। इतनी बात समझ तो लेना चाहिए। कैसा हूँ मैं अकेला ? सबसे निराला चैतन्यमात्र। एक ज्योति स्वरूप वे जो अनादिसे अनन्त काल तक नित्य अन्तः प्रकाशमान है, विज्ञानघन है, केवल ज्ञानमात्र स्वभाव वाला, मैं एक हूँ, अकेला हूँ, मैं ऐसा अकेला हूँ कि जो देहसे भी न्यारा, कर्मसे भी न्यारा अन्य सब होने वाली परिस्थितियों से भी न्यारा केवल सहज ज्ञान स्वभावमय हूँ, ऐसा अपनेमें अकेले पनका निर्णय तो हो पहले। धर्म नाम तो प्यारा लग रहा है और धर्मके जो बाहरी काम हैं, मंदिर है, पूजा है, विधान है, उत्सव समारोह, ये सब अच्छे लग रहे और इनमें आगे आगे भी रहना चाहते हैं सो यह सब एक साधन तो है, मगर वास्तविकता तो समझो। पहले मैं अकेला हूँ यह ही विश्वास बना लीजिए। जब तक यह विश्वास न बन पायगा कि मैं अकेला हूँ तब तक धर्मके पंथमें जरा भी गमन नहीं हो सकता। तो अपनेसे पूछो तो सही कि हे आत्मन ! तूने यह समझ पाया है या नहीं कि अकेला हूँ, कह तो बैठता है हर कोई कि मैं अकेला हूँ, मगर जिस तरहका अकेला समझा उस तरहके अकेले की समझसे बात न निभेगी। यों समझ लेना कि यह मैं मनुष्य, यह मैं पुरुष सबसे अलग अकेला हूँ, ऐसे अकेले पनकी बात नहीं कह रहे, मैं वह अकेला हूँ जो केवल ज्ञान ज्योति स्वरूप है। केवल ज्ञान ज्ञान, ज्योति ज्योति, सर्वका जाननहार जिसका नहीं है यहाँ कोई पहिचाननहार, ऐसा यह मैं केवल चैतन्यस्वभाव मात्र एक ज्योति हूँ, ऐसा निर्णय तो करें अपने बारेमें। इस निर्णयके बिना मंद कषाय तकसे भी धर्मकी बात रंच न होगी। हाँ पुण्यकी बात होती रहेगी। पुण्यसे कुछ आगे लाभ की आशा तो है कि अच्छी बात मिलेगी, धर्मका प्रसंग मिलेगा, फिर धर्म की बात आ जायगी, मगर पुण्यका विश्वास भी तो नहीं। पुण्यके फलमें सम्पदा मिलें, सब कुछ अच्छा मिले, मगर ज्ञान कुज्ञान मिले, व्यसनों की प्रीति रहे, विषयोंमें रुचि रहे तो उस पुण्यका फल बुरा हो जायगा, फिर तो पाप बंधेगा, नरक गतिमें जायगा। वर्तमानमें पुण्य की आशा मत रखो, पुण्य की रुचि न रखो, पुण्य होगा तो सब कुछ स्वयमेव होता रहेगा मगर रुचि बनाओ धर्म की, मैं ज्ञानमात्र अंतरतत्त्व हूँ, ऐसी एक अन्दर भावना करें, यह अकेलापन देखिये।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

४१५ अपने परमार्थ एकाकित्वके परिचय में सहज विशुद्धताका परिचय—

जब अकेलापन सही समझमें आयगा तो पर द्रव्योंसे मैं न्यारा हूँ, पर द्रव्योंसे मुझे अलग रहना है, यह बात भी बन जायगी। तो पहले अपनी बात समझो मैं एक हूँ, और असलमें मेरा स्वरूप बस एक रूप शुद्ध है। यह कौन करता है, किसके लिए करता है, किसमें करता है, ऐसी भी यहाँ कोई दृष्टि नहीं थमती। यह तो केवल ज्ञान ज्योति मात्र है। यह मैं आत्मा शुद्ध हूँ, कैसा शुद्ध हूँ कि जो मुझ पर बीत रही है उससे भी मैं न्यारा हूँ, जैसे दर्पणमें जो प्रतिविम्ब गुजर रहा है बाहरी चीजें सामने होने से, तो उस गुजर रही बातमें दर्पणका स्वरूप न्यारा है यह बात ध्यानमें आती कि नहीं? इसी प्रकार जो मुझमें गुजर रही है विकल्प, कल्पना, इष्ट अनिष्ट बुद्धि, इससे भी मैं निराला हूं। केवल शाश्वत ज्ञानस्वरूप हूं यहाँ दृष्टि नहीं गई कभी जीवकी, और बाहरमें कहीं भी दृष्टि गई हो, फिर भी यह सारा मेरा कार्य नहीं है। वह तो एक मोहकी बेहोशीमें जैसा कर्मने बकवास किया वैसा यह भी बकवास कर रहा। तो पहले पहचाने उस आत्मस्वरूपको तब धर्मकी बात बनेगी।

४१६—स्वरूपागमकी सुगमताका स्मरण—

भैया। अपना स्वरूप जाने बिना धर्मकी बात न बनेगी। स्वरूप ही तो जानता है, उसका बड़ी आसानीसे जानना होता है। भला बतलावो बैल, घोड़ा, हाथी, शेर, नेवला, बंदर, सुअर, मेढक आदिक जो जो भी संज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव हैं उनको कौन समझाने गया? कहाँ वे इतने उपदेश सुनते, कहाँ मंदिर जाते, कहाँ वे किसीकी बात सुनते हैं मगर उनमें भी किसी किसीको अपने आपमें ज्ञान—ज्योतिके दर्शन हो जाते हैं और सम्यग्दृष्टि हो जाते हैं। तो यहाँ प्रत्येक मनुष्य चाहे संस्कृत न पढ़े, धर्मकी परिभाषा शब्दोंसे कभी न सुने और आत्माका कर्मका व्याख्यान भी समझमें नहीं आवे, मगर स्वयंकी गाँठमें भी तो कुछ धन है, आपके पास ज्ञान है, स्वयं ही तो ज्ञानस्वरूप है। जरा बाहरी पदार्थोंके विकल्प छोड़ें, सबको भिन्न जानकर असार जानकर एक विश्राम ले, और अधिक समझ नहीं है तो कमसे कम उन पशु पक्षियोंकी ही भाँति सही, अपने आप अपनेमें उस सहज ज्ञान ज्योतिका उदय करें और फिर पशु पक्षियोंकी पर्यायसे तो हम आप बहुत ठीक हैं, सही हैं, समझते हैं, तो अपने अकेलेपनका विचार बनायें और जो हमेशा रहनेवाला एक स्वरूप है चेतन, उसकी दृष्टि बनायें।

४१७—सहज विशुद्ध अकेलत्वके निर्णयसे सहज विरक्तिका अभ्युदय—

कैवल्य स्वरूपका निर्णय हो तो यह भी निर्णय बन जायगा कि कर्मका उदय होने पर जो कुछ यहाँ गुजर रहा है यह गुजर मैं नहीं। यह मेरा नहीं, रागद्वेष कषाय ये कुछ भी मेरे नहीं है। अपने स्वरूपको जाननेपर द्रव्योंसे हटनेकी बात सहज आयगी। यह मैं कैसा हूं? चैतन्यमात्र, जिसमें जानन देखन निरन्तर चल रहा है। सो यह वास्तविक चीज हूं मैं, आकाशकी तरह। आकाशमें रूप नहीं, रस नहीं, गंध नहीं, स्पर्श नहीं, फिर भी आकाश कोई वस्तु है कि नहीं? आकाश एक पदार्थ है, अमूर्तिक है, अनन्त प्रदेशी है, इसमें एक एक पदार्थ है, अमूर्त हैं, असंख्यात प्रदेशी है, वास्तविक वस्तु है, और चूँकि यह स्वयं खुद है इसलिए खुदकी बात खुदमें बड़ी आसानीसे समझ में आती है। तब ऐसा जाने कि यह मैं वास्तविक पदार्थ हूँ तो अब मुझे समस्त परद्रव्योंकी प्रवृत्ति छोड़ देना चाहिए, पर द्रव्योंका आकर्षण, परद्रव्योंको ममकारकी बुद्धि ये सब त्याग देना चाहिए तब एक निश्चल होकर ठहरा हुआ हो जाना सुगम है। मायने पर द्रव्योंके निमित्तसे जो मुझमें कल्लोल उठ रही है बस यह सब खतम हो जायगी। कैवल्यकी झाँकी कठिन नहीं है, मगर जब चित्त दूसरी जगह है मोहके संस्कारमें तब यह बात

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

होती है कि बड़ा कठिन लग रहा। समझमें न आये तो वहाँ अपना अपराध स्वयं तकना चाहिए। मगर इस समय में कोई बात चित्तमें न लाये हों और आत्मा की बात समझनेके लिए ही यत्नशील हो रहे हों और फिर समझमें न आये तो सोचना चाहिए कि कठिन बात है, पर ऐसा कभी हो ही नहीं सकता। चाहे वक्ता भी न बोले और आपका ऐसा यत्न हो कि किसी बाहरी पदार्थ में ख्याल नहीं जा रहा है तो आपको अपने आप मैं इस परमात्म प्रभुके दर्शन होंगे। दर्शन क्या? एक अलौकिक आनन्द का अनुभव वही है, सहज परमात्मा का रूप।

४१८—ज्ञानीकी पर द्रव्यसे निवृत्तिकी विरचना—

भैया! इन पर तत्त्वोंसे विरक्त होइये। जो बाहरी पदार्थ मिले है धन मकान पैसा आदिक ये तो प्रकट पराये हैं। सबसे बड़ा राग लगा है यहाँ इन जीवोंके। तो क्या? जगतके अन्य संसारी जीवों को निरखकर उनकी स्थिति को उन्नति समझता है, खुदमें भी क्या इसी प्रकार चाहता है कि मुझे भी ऐसा ही होना चाहिए। जैसा लोगों को देखा कि अमुक धनी है, अमुक परमेश्वर है, अमुक इस तरह की इज्जत में बस रहा है। अरे लोग इज्जत करते हैं सो तो ठीक, इसको तो लोग जानते हैं, किन्तु करते कहाँ, जिनकी इज्जत चल रही है दुनियाँमें, अज्ञानमें रहते हुए भी, वहाँ उनका दिल खुद जानता है कि वे अन्दर में कितने दुःखी रहते हैं, और अभी ही सभी से अलग अलग पूछ लो, जिसको बड़ा से बड़ा समझा जा रहा हो उससे भी अलग बात करलो वह अपना कितना कष्ट बतायेगा। तो फिर ऐसे मोहमें क्या लाभ है कि कष्ट भी सहते जाते और उस कष्ट से विरक्त नहीं होना चाहते। तो पर द्रव्योंसे बहुत अधिक निवृत्ति होनी चाहिए। पर द्रव्योंमें क्या क्या आया? धन वैभव कुटुम्ब मित्र परिवार और यह शरीर, यहाँ सब तो कुछ कुछ पहले से ही लोग जानते हैं। मगर यह भी जल्दी समझ में आता है, किसीके कि यह देखो जीव निकल गया, शरीर रह गया, उससे यह बात समझमें बैठी हुई है कि शरीर न्यारा है, जीव न्यारा है, मगर पर द्रव्य क्या इतनी ही बात है। अन्दर में चले, जो जीवके साथ सूक्ष्म कार्माण वर्गणायों के स्कंध लगे हुए हैं, जो इसके भीतर पड़े हुए हैं, सूक्ष्म से सूक्ष्म जो साथ बन्धे हैं, मरने पर साथ जाते हैं, ऐसा ही सम्बंध है, निमित्त, नैमित्तिक बन्धन है, वे कर्म भी बिल्कुल पर द्रव्य हैं, फर्क इतना है कि ये पर द्रव्य तो बाहरमें हैं और ये कर्म इस आत्माके प्रदेशोंमें एक क्षेत्रावगाह हैं, मगर हैं वे न्यारी चीज कर्मोंका स्वक्षेत्र कर्मोंमें हैं। यहाँ यह समझते जाइये कि कोई क्या मुझसे न्यारा है और किस किससे मुझे अलग होकर अपनेमें विश्राम करना है। कर्म पर द्रव्य हैं और देखिये मैं जीव अपने चैतन्य स्वभावके कारण चेतता रहूं, मात्र ज्ञाता दृष्टा रहूँ यह तो मेरी ईमानदारी का काम है मगर यहाँ कितना भब्बड़ मचाकर जो कर्मोदय है, जो कर्मविपाक है वह सब यहाँ छा गया, प्रतिफलित हो गया, झलक गया और अन्धेरा छा गया, सो यह अन्धेरा भी मेरी चीज नहीं, यह तो परद्रव्य की झाँकी है। जैसे दर्पणमें रंग विरंगी चीजका प्रतिबिम्ब हो गया तो कहते हैं ना कि प्रतिविम्ब भी दर्पणकी चीज नहीं है, वह तो बाह्यवस्तु का फोटो मात्र है, ऐसे ही मुझमें जितने विकल्प उठ रहे हैं, राग द्वेष कषाय जगा रहे वे सब विषय कषाय वे भी मेरी चीज नहीं हैं, कर्ममें फल देने की जो शक्ति है वह कहलाता है अनुभाग। तो ये विकल्प भी मेरे में नहीं। तो मैं जो जानता रहता हूँ, कभी अमुक पदार्थ जाना गया, कभी अमुक जाना गया, राग द्वेष भी मानों नहीं कर रहे मगर जानने मैं तो आ रही हैं भिन्न भिन्न बातें, तो ये जानने में जो भिन्न भिन्न बातें, आ रही हैं ये भी स्वभाव से न्यारी हैं याने

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

इन परिणतियोंसे भी मैं न्यारा हूँ, मैं तो ज्ञानस्वभाव मात्र हूँ।

४७९ एकत्वविभक्त विज्ञानघन स्वभाव अन्तस्तत्वकी आस्थामें अज्ञान भाव कर्तृकर्मत्व बुद्धिके क्लेशसे निवृत्ति—

एकत्वविभक्त ज्ञान स्वभावको जो ग्रहण करता है, मैं यह हूँ, ऐसे जीवके अज्ञान तो न रहा, मैं अपने लिए स्वरूपमें आ गया। जब अज्ञान न रहा तो कर्ताकर्म बुद्धि जो अज्ञानसे ही उठ रही थी। वह भी समाप्त हो जाती है। कैसे मैं करने वाला हूं ? इस कामको किया मैं क्रोधको करता हूँ ? अरे बाहरी पदार्थमें करनेकी बात तो बहुत दूरकी है, वह तो अत्यन्त अनुचित है, ठीक है ही नहीं, मिथ्या है लेकिन आत्मामें जो क्रोधादिक कषायें जगती हैं उसका भी करने वाला मैं नहीं, क्यों कि मैं तो सहज ज्ञानस्वरूप हूं। यह तो नैमित्तिक भाव हैं, ये तो पुद्गल कर्मको झाँकियाँ हैं, मैं ये नहीं हूं, मैं तो केवल ज्ञानको ही करता हूं, जानना चलता रहे बस यही मेरा भोग हैं, बाकी विकारोंका भी मैं करने वाला नहीं। तो अज्ञानसे जो कर्ताकर्म बुद्धि जग रही थी, उससे क्लेश हो रहा था, उस क्लेशसे यह ज्ञानी दूर हो जाता है। जब तक मोह है तब तक क्लेश है और ऐसा डबल क्लेश है कि फिर भी क्लेशको भोगते जाते और उसी क्लेशको पुकारते जाते कि मुझे मिलो। भला राग जब करते हैं, प्रीति जब की जाती है किसी विषय साधनमें तो इस जीवको कष्ट होता है कि नहीं ? विह्वल हो गया, अपनेमें अपना महत्व सब भूल गया। बाहरी पदार्थोंमें आशक्त हो गया। बड़ा कष्ट भोग रहा मगर यह चाहता उस ही कष्टको है कि यह ही मिले, ये सब बातें अज्ञानसे होती थीं। अब अज्ञान रहा नहीं। मैंने अपने आपके सही स्वरूपको पहिचान लिया कि मैं यह हूं, अन्य कुछ नहीं हूं। वह क्लेश से दूर हो जाता है।

४८० ज्ञानी की साक्षिता—

जो ज्ञानी हो जाता है वह पुराण पुरुष, अनादि अनन्त अस्तित्व जगतका साक्षी हो जाता है मायने गवाह। क्यों जी गवाहका दर्जा बड़ा है या वादी प्रतिवादी का ? यहां तो गवाहका दर्जा कुछ भी बड़ा नहीं मानते। अगर कोई वादी न्यायालयमें पहुंच गया और जज पूछे कि तुम्हारा कोई गवाह है क्या ? तो वह कहता है कि साहब १० मिनट की छुट्टी दीजिए, मैं गवाह अभी पेश करता हूं, वह शहर गया, किसी पुरुषसे कह दिया भाई हम तुम्हें १०) इनामके देंगे, हमारी यह बात इस तरहसे कह दो वह उसी प्रकार हो जाता। इस तरहके गवाहकी कीमत कुछ न रही साक्षी की आज कल तो कुछ कीमत न रही मगर साक्षीका बड़ा महत्व है। जो वास्तवमें उत्कृष्ट साक्षी हो उसे कहते हैं भगवान। अरहंत सिद्ध भगवान ये जगके साक्षी हैं। साक्षीमें राग नहीं, द्वेष नहीं, पक्ष नहीं। साक्षीको किसका कहना और फिर लोग ही उल्टा बोलते—तुम्हारा गवाह कौन ? इसका अर्थ क्या कि तुम्हारी जैसी बात कहे, ऐसा कौन ? यह शब्द ही गलत हो गया। कहना यह चाहिए था कि इस घटनाका गवाह कौन ? अब तो न्यायाधीश या सिरताजे भी ऐसे ही गलत शब्दोंका प्रयोग करते—तुम अपना गवाह लावो, तो उसने तो खुद ही समझा दिया कि जो तुम्हारी जैसी बात कहे ऐसा आदमी बुलाकर लावो। और अगर ऐसा प्रयोग होवे कि इस घटनाका गवाह लावो तो यह बात सही है। गवाह तो गवाह है, वह तो प्रभुवत निष्पक्ष है, घटनाका गवाह होता है, न कोई हमारा गवाह न तुम्हारा गवाह। तो जगतका साक्षी प्रभु है उस ही तरह यह जीव साक्षी हो जाता है जिसके उपयोगमें रागद्वेष नहीं रहता। जगता साक्षी प्रभुः। एक सेठने किसी आदमी को १००) उधार दिए, और कहाँ दिया ? उस गाँवके बाहर किसी एक बटके पेड़के नीचे, जो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

करीब गाँव से एक मील दूर था। खैर वहाँ उसने उधार तो दे दिया १००) पर वह पुरुष रुपये वापिस करने में नट गया, बोला कि हमने रुपये लिया ही नहीं। तो उसने दावाकर दिया। पहुंचे दोनों जज के पास। जज बड़ा बुद्धिमान था। दोनों की बात सुना। अच्छा तो सेठ कहता है कि साहब हम गवाह क्या बतायें हम और ये अकेले थे और उस बरगदके पेड़के नीचे दिया था हमने। तो जज सेठसे कहता है कि अच्छा तुम जावो और जल्दी उस बरगदके पेड़ को हमारे पास ले आवो। उससे कह देनाकि चलो जज साहब ने गवाही देने को बुलाया है। तो वह सेठ बोला—साहब वह पेड़ यहाँ कैसे आ सकता ? तो जज बोला—अजी वह आवे या न आवे, पर फौरन जावो और उससे कहो कि चलो तुम्हें जज साहबने बुलाया है। तुम्हें उससे यह बात कहने जाना जरूर पड़ेगा। खैर जब सेठ चला गया उस बटके पेड़के नीचे तो काफी देर हो गई। १०–१५ मिनट बीतनेपर जज बहुत झुझलाया उस सेठके ऊपर। अजी वह सेठ अब तक न आया। वह तो बड़ा झूठा निकला, उसकी बात हुमें ठीक नहीं मालूम होती, वह सब बातें बनाता है। उस बरगदको लिवाकर बह अभी तक क्यों नहीं आया ? तो वह पुरुष बोल उठा—साहब वह इतना जल्दी कैसे आयेगा ? वह पेड़ तो यहाँसे कोई मील भर दूर है। तो बस बताओ फ़ैसला हो गया कि नहीं ? यह एक साक्षी की बात कह रहे। वह पेड़ साक्षी हो गया। एकेन्द्रिय भी साक्षी हो गया तो गवाह का दर्जा बहुत उत्कृष्ट होता है, वह निष्पक्ष होता है।

४८१—विश्वसाक्षिताके उद्यममें अलौकिक पौरुष की आवश्यकता—

सकल परमात्मा मायने अरहंत, शरीर सहित परमात्मा और सिद्ध निकल परमात्मा, जिनके शरीर नहीं है, ये दोनों सारे विश्व के साक्षी हैं, मायने समस्त विश्व तीनों लोक, तीनों कालके सब पदार्थ उनके ज्ञानमें झलक रहे हैं, लेकिन राग द्वेष रंच मात्र भी नहीं हैं और अपने उस विशुद्ध ज्ञानके कारण अनन्त आनन्दरसमें मग्न हो रहे हैं। बताओ आप यह स्थिति चाहते कि नहीं ? अगर चाहते तो अपना मूड बिल्कुल बदलना होगा, अपनी श्रद्धा बिल्कुल सही करनी होगी, कि बाहरी पदार्थ मेरा कहीं कुछ नहीं है। मेरा मात्र यह मैं ज्ञान स्वरूप तत्त्व हूं। अरे भव-भवमें कुटुम्ब मिला, भव-भवमें सम्पदा मिली वह कुछ भी तो नहीं रही, आज जो कुछ सम्पदा मिली उससे लाखो गुना सम्पदा अनेक बार मिली होगी पर वह कुछ भी तो न रही। यही हालत यहाँ की है, तो ऐसा जानकर यहाँ भीतर से ममता त्याग दें, धन त्यागने की बात नहीं कह रहे, गृहस्थावस्थामें सारा धन कुवे में फेंक दो, मगर भीतरमें यह प्रकाश लावो कि धन सम्पदा वैभव ये सब कुछ रंच मात्र कुछ भी नहीं लगते। मैं तो सब निराला विज्ञानघन सहज आनन्दमय एक चैतन्य मात्र तत्त्व हूं। उसकी दृष्टि जगे, उसकी उपासना बने तो ये सारे संकट, कर्मजाल, आकुलतायें ये सब दूर हो जायेंगीं। कहाँ दृष्टि देना कि सारे काम बनेंगे ? अपने अन्दरमें, अपने उस विशुद्ध चैतन्य स्वभावमें दृष्टि देना और यह मानना कि मैं तो यह हूं, मुझे अन्य कुछ जो मिला है यह सब कर्मोंका टाठबाठ है, ये सब पौद्गलिक बातें है, इनसे मेरा रंच मात्र भी सम्बन्ध नहीं, उसकी उपासना तो करें। मिनट दो मिनट अथवा आधा मिनट, उसमें एक झलक तो आ जाय, क्या हर्ज है, आपका कल्पित घर आपके घरकी जगह है, परिवार परिवारकी जगह है, कहीं कुछ भाग नहीं रहा। एक अपने इस चित्तको विशुद्ध बनाकर कुछ ऐसा अनुभव करें कि मैं सबसे निराला केवल ज्ञान ज्योति मात्र अन्तस्तत्त्व हूँ, मेरा अन्य किसीसे कोई सम्बन्ध नहीं. ऐसा एकाकीका ध्यान जगे तो धर्म-मार्ग में प्रवेश होता है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

व्याप्यव्यापकता तदात्मनि भवेन्नैवातदात्मन्यपि, व्याप्यव्यापकभावसंभवमृते का कर्तृकर्मस्थितिः
इत्युद्दामविवेकघस्मरमहो भारेण भिदंस्तमो, ज्ञानीभूय तदा स एष लसितः कर्तृत्व शून्यः पुमान् ॥४६॥

४८२—निर्मूल कलहको आलोचना—

जैसे कभी घरमें, पड़ोसमें कोई झगड़ा खड़ा हो गया हो और उसकी कोई जाँच करने लगे तो जाँच करने पर यह पता पड़ता है कि जड़में बात तो कुछ न थी, कोई खास बात न थी मगर यह सब इतना बड़ा झगड़ा बन गया, ऐसे ही जब यथार्थ दृष्टिसे अपना आत्मामें देखो तो यद्यपि झगड़ा इतना बढ़ गया कि यह जीव जन्ममरण कर रहा, भव-भवमें भटक रहा, नये-नये शरीर पा रहा, नाना संकल्प विकल्प हो रहे, दुःख ही दुख, जिसको सभी लोग कहते-संसारमें दुःख तो हैमेरू पर्वत बराबर और सुःख है सरसोंके दाने बराबर। इतना बड़ा झगड़ा हो गया है, पर कोई ज्ञानी पुरुष इसकी जाँच करने बैठे कि बात क्या है, क्यों इतना झगड़ा, इतनी विडम्बना बढ़ गई। तो यही अध्यात्म दर्शनमें दिखाया जा रहा है कि आत्मामें बःत क्या है ? क्या गुजर रहा, किस तरह गुजर रहा, तो देखिये यहाँ प्रसँग यह बताना है कि कौन किसका कर्ता है ? बस इतनी आलोचनामें, इतने ही परीक्षणमें सब निर्णय बन जायगा कि कौन किसका कर्ता है। पहले कर्तापने की परिभाषा निर्धारित करे। असलमें कर्ता वह हैं जो तन्मय हो और उस परिणति का स्वामी हो।

४८३ व्याप्यव्यापक भावकी संभवताके बिना वास्तविक कर्तृकर्म स्थितिकी चर्चा करना उपहास मात्र—

जैसे घड़ा बनाया गया कहते ना कुम्हारने घड़ा बनाया, अब इस समयमें दो बातें सामने आती हैं–मिट्टीका घड़ा बना या कुम्हारका ? उस घड़ेका कर्ता मिट्टी है या कुम्हार ? देखिये-उत्तरतो दोनों हैं, सो उपादान व निमित्तकी दृष्टिसे दोनों आते यह भिन्न–भिन्न प्रकारसे समझना है, घड़ेका करने वाला कुम्हारको कहा गया है, सो वह निमित्त रूपसे है। कहीं कुम्हार ही घड़े रूप नहीं परिणम गया। तो जो अलग-अलग दो चीजें हों और उनका सम्बंध बताया जाय उसे कहते हैं व्यवहारनय। घड़ा एक कार्य है जो एक मिट्टीसे बना है, मिट्टी है, कुम्हार एक अलग है, और उन दो का बताया जा रहा है सम्बध कि कुम्हारने घड़ा बनाया, कुम्हारका निमित्त पाकर घड़ा बना तो इसमें अलग अलग चीजोंका सम्बंध बताया जाय किसी भी प्रकारका, उसे कहते हैं व्यवहार नयका कथन, तो व्यवहारसे निमित्त दृष्टिसे कह दिया कि हाँ कुम्हारने घड़ा बनाया, मगर इस बातको उपादानसे देखना चाहिए, क्योंकि उपादान की दृष्टिसे कुम्हार ने घड़ा नहीं बनाया, याने वास्तवमें कुम्हारने घड़ा नहीं बनाया उपादान मायने उप आदान उप मायने अपनेमें, आदान मायने ग्रहण करना, जो अपनेमें ग्रहण करे उसे उपादान कहते हैं। घटको किसने ग्रहण किया ?घड़ाके परिणमनको, पर्यायको, घड़ेकी दशाको किसने ग्रहण किया ? कुम्हार ने या मिट्टीने ? मिट्टीने। तो एक ही द्रव्यमें बात कहनेका नाम है निश्चय और दो भिन्न-भिन्न द्रव्योंमें सम्बंध बतानेका नाम है व्यवहार। तो यही बात आयी ना कि निश्चयसे घड़ेका कर्ता मिट्टी है क्योंकि मिट्टीका व्याप्य व्यापक सम्बध घड़ेमें है। घड़ेका सम्बंध मिट्टीमें व्याप्य व्यापक भावका है, व्याप्य मायने जो व्याप जाय, ठहर जाय, लीन हो जाय उस रूप बने, और व्यापक मायने है कि जो उस रूपको व्याप ले, अंगीकार करे, व्यापक होता है बहुत बड़े क्षेत्रमें और व्याप्य होता है जरा सी जगह में, मायने मिट्टी तो रहती है हमेशा, बहुत काल तक और घड़ा जैसे मिट्टी की और और चीजें बनीं वैसे ही कुछ समयको घड़ा बन गया। व्याप्य रहता है थोड़े समयको और व्यापक कहलाता है बहुत समय रहनेवाला, तो मिट्टी है व्यापक याने बहुत समय रहता है। घड़ा न बना था तब भी मिट्टी थी घड़ा बन गया तब

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भी मिट्टी, घड़ा बन गया तब भी मिट्टी, घड़ा फूट गया तब भी मिट्टी । तो मिट्टी हुई व्यापक और घड़ा हुआ व्याप्य, तो व्याप्य व्यापक भाव घड़ेका मिट्टीसे है न कि कुम्हारसे । कुम्हार तो अत्यन्त भिन्न पदार्थ है और उसका व्याप्य व्यापक भाव नहीं । तो निश्चयसे कर्ता वही कहलाता जिसका व्याप्य व्यापक सम्बंध हो । यह है निश्चयकी बात । तो व्याप्य व्यापक भाव किसमें होगा ? तदात्मामें, याने जो तन्मय हो, एक ही चीज हो, उसमें होगा । जैसे मिट्टीमय है वह घड़ा इसलिए घड़ेका व्यापक मिट्टी हुई और मिट्टी घड़ेका वास्तवमें निश्चय कर्ता कहलायी । मिट्टी पर्यायको पा रही है, उसमें पर्याय आ रही हैं तो निश्चयसे घड़ेका करने वाली मिट्टी, घड़ेका व्याप्य व्यापक भाव कुम्हारमें नहीं । कुम्हार तो आदमी है, मिट्टी थोड़े ही है, और घड़ा तो मिट्टीमय है, कुम्हारमय नहीं हुआ तो जब व्याप्य व्यापक भाव नहीं है घड़ा कुम्हारके साथ तो कुम्हार घड़ेका कर्ता न कहलायगा । वह तो केवल निमित्त कारण कहलायगा ।

४८४ अध्यात्म निरखन—

आत्मामें निरखिये अब, आत्मा और कर्म दो बातें कही जानी हैं । यह प्रकरण बहुत उत्तम विधिसे भेद विज्ञान कराता हैं । जीवको अपनेसे ही काम पड़ता है और अपनेसे ही सुख दुःखकी वृत्ति निकलती है, किसी दूसरे पदार्थसे सुख दुःख नहीं होता, न दूसरे पदार्थ पर हमारा कुछ निर्भर है । यह तो अनेक विकल्पोंका झंझट बना रखा है. नहीं तो परद्रव्योंका इस आत्मासे ताल्लुक क्या ? और यह ताल्लुक जब तक बना रहता है तब तक संसारमें रुलना चलता है और जब ताल्लुक न रखेगा तो इसको मुक्ति प्राप्त होगी । तो कैसे भेद विज्ञान बने उसका यह बहुत उत्तम प्रसंग है । लोग भेद विज्ञान की बात करते हैं बाहरमें, मकान मेरा नहीं है ऐसा जान लिया तो समझ लिया कि हम बड़े ज्ञानी बन गए । मगर अभी भेद विज्ञान नहीं जगा और अच्छे रूपमें मकानसे भी न्यारा अपने को समझ पाया । देह न्यारा, मैं न्यारा, यों कुछ बात भी कह दिया और कुछ अन्दाजसा बना लियाकि बहुतसे मनुष्य मर जाते हैं, देह यहीं पड़ा रह जाता हैं, जीव निकल गया तो देह न्यारा, जीव न्यारा, मगर इतने मात्र ऊपरी कथनसे भेद विज्ञान नहीं बना । और असली मायनेमें इसने देहसे भी अपनेको न्यारा नहीं समझ पाया । वह तो कहनेकी बात है । जैसा कहते है तोता रटंत । सुनते जायें, बोलते जायें, भाषा बन गई—सब जुदे, यों आत्मा जुदा । वास्तविक भेद विज्ञान कैसा होता है ? कहाँ इसका प्रयोग करना है उसका प्रकरण है आज ।

४८५—तोतारटंत भेदविज्ञानसे सन्मार्गलाभकी अशक्यता—

भैया ! तोतारटंत जैसी बातसे काम नहीं बनता । एक ब्राह्मण के घर तोता पला हुआ था । एक दिन वह मौका पाकर पिंजड़े से उड़ गया । अब वह ब्राह्मण दूसरा तोता खरीदने चला । एक पंजाबीकी दूकानपर एक तोता पला हुआ था । उस पंजाबीसे ब्राह्मणने कहा—भाई क्या यह तोता बेचोगे ? ...हाँ, बेचेंगे ।... कितनेमें दोगे ?....१००)में देंगे ।....अजी तोते तो १—१ रू. में मिलते हैं, जितने चाहे ले लो । इसमें ऐसी क्या खास बात जो इसकी इतनी कीमत कह रहे ?..अजी हमसे क्या पूछते, इसी तोते से पूछ लो कि तुम्हारी कीमत १००) है या नहीं ? तो ब्राह्मण ने कहा—कहो तोते क्या तुम्हारी कीमत १००) है, तो तोता बोला—इसमें क्या शक । बस इतने ही शब्द उस तोते को पंजाबी ने रटा दिया था सो तोता बोल रहा था । तोता तो दोहे तक बोल जाते हैं । तो उसका उत्तर सुनकर ब्राह्मण बड़ा खुश हुआ और यह समझकर उसे खरीद लिया कि वास्तवमें तोता बुद्धिमान

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

मालूम होता है। अब खरीदकर अपने घर लाया, अच्छा अच्छा खिलाया पिलाया। दूसरे दिन वह ब्राह्मण रामायण लेकर बैठ गया और श्रीराम की कथा तोते को सुनाने लगा—श्रीरामको १४ वर्षोंका वनवासे हुआ, लक्ष्मण साथ गए, बताओ कैसा न्यायका काम किया। कहो तोता ठीक है ना ? तो तोता क्या बोला ? इसमें क्या शक। ब्राह्मणने समझा कि यह तो एक साधारणसी बात कही—यह तो तोते को दिलचस्प न लगी होगी, कोई ऊँची बात कहना चाहिए। सो ब्राह्मण ने ब्रह्माँड की बड़ी—ऊँची बातें कही—बादमें पूछा—कहो तोते ठीक है ना ?...तोता बोला—इसमें क्या शक। फिर ब्राह्मणने सोचा कि यह तोता तो बहुत ही समझदार मालूम होता है, इसके सामने ब्रह्म स्वरूपकी चर्चा करें—सो कहा ब्रह्म एक अद्वितीय, प्रकृतिसे परे शाश्वत अद्वितीय तत्त्व है, कहो तोते ठीक है ना ?....इसमें क्या शक ? अब तो ब्राह्मण को भी शक हो गया कि यह तो बस वही-वही शब्द बार—बार बोलता है और कुछ बोलता ही नहीं है। सो कहा—कहो तोते हमने जो तुम्हें १००)में खरीदा तो वे रुपये पानीमें चले गये ? तो तोता बोला—इसमें क्या शक ? तो केवल तोतारटंत से कुछ लाभ नहीं होनेका। पूजा कर लिया, वही रटे हुए शब्द बोल लिया, एक दिनचर्या सी बना लिया, इससे काम नहीं चलने का।

४८६—कर्मरस को आत्मसात् करनेमें विडम्बना—

आत्मा वास्तवमें क्या है, कितना है, ऐसा सही स्वभाव जाने बिना पर पदार्थोंके बारेमें कुछ भी कहा जाय वह ठीक नहीं। तो वास्तविक भेद विज्ञान कहाँ करना है उसकी चर्चा आज है यहाँ। जिसकी कुन्जीमें इतनी बातका निर्णय रखलें पहले कि जहाँ व्याप्यव्यापक सम्बंध नहीं, तन्मयताका सम्बंध नहीं, उन दोनों का परस्परमें कर्ता कर्मपना न बन सकेगा, निश्चयनय से। व्यवहारसे, निमित्त दृष्टिसे तो सब बात व्यवहारमें चल ही रही है जिसे दृष्टान्तमें कहा गया अभी कि घड़ेका निश्चयसे करनहार मिट्टी है, क्योंकि मिट्टीमें ही वह घड़ा बना। एक ही द्रव्यमें कर्ता कर्म देखा और व्यवहारसे, उपचारसे कहो तो कुम्हार घड़े का कर्ता है, तो ऐसे ही आत्मामें कोई बात समझना है ? पहले तो घटना जानें कि आत्मामें किस ढंगसे क्या बात चल रही है ? इस समयभी, सब समयभी बात यों चल रही है कि दो पदार्थ है-जीव और कर्म, जीव तो है एक और कर्म है अनन्त परमाणुओंका पिण्ड। और जीवमें तो चेतना है, जानन देखन है, ऐसे गुण हैं जीवमें और उन कर्मोंमें प्रकृति पड़ी है यह किस तरह कि जीवमें फलदान की प्रकृति पड़ी। उनमें प्रदेश तो हैं ही। स्थिति पड़ी है कि ये कर्म इस जीवमें कितनी देर तक ठहरेंगे, और अनुभाग बंधा कि ये कर्म कितनी डिग्री तकके बेहोशी के कारण बनेगे। तो कर्मोंकी बात कर्ममें है, जीवकी बात तो जीवमें हैं। कर्मका सब कुछ कर्ममें हो रहा है, जीवका सब कुछ जीवमें हो रहा है, पर हो रहा है इस तरह कि कर्मका आक्रमण है, कर्मका अनुभाग फूटा, कर्ममें एक विडम्बना हुई। उदयकालमें ऐसा होता है, और उस समय इस जीवमें यह बात चलेगी, पर इसको उसका ज्ञानसा नहीं है. योंकि मेरेमें झलका कर्मरस, अन्धेरा है, एक तरह का उस समय यह जीव सुख दुःख मानता है, इष्ट अनिष्ट भाव करता है। तो मूलमें तो इस तरह की बात कर्ममें है, पर कर्मका वह प्रतिविम्ब है जिसे यह जीव मान लेता कि यह मेरा काम है। जैसे दर्पणके सामने रहने वाली चीजका फोटो आया और कोई समझ ले कि यह दर्पण ही इस तरहका फोटो बन रहा दर्पणही यह सब कुछ कर रहा, इसी तरह से कर्मका फोटोसा आता है जीवमें और यह जीव समझ लेता है कि यह सब मेरा ही काम है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

४८७ ज्ञेय परतत्त्वको आत्म सात् करनेमें विडम्बना—

देखिये उस समयमें जानना तो आत्माका काम है, पर वे कर्म अपनेमें ही अपना सब कुछ नाच नच रहे हैं। इस स्थितिमें यह निर्णय करना है कि आत्मा करता किसको है और किसको नहीं करता। अच्छा यह बात जरा कठिन सी लग गई है तो थोड़ी एक सरल सी बात और लीजिए। यह कर्मकी बात थी, अब लीजिए कि बाहरमें जितने ये पदार्थ हैं भींट, किवाड़, लोग, पेड़, बगीचा दूकान धन वैभव आदिक ये बाहरी पदार्थ, इन बाहरी पदार्थोंका जानना बन रहा ना ? बन रहा, अच्छा और जैसे मानो कोई चक्र चल रहा तो चक्र चल रहा, रेल चल रही, कोई चीज दौड़ रही, तो इस तरहका जानन हो रहा है ना यहाँ ? हो रहा है, पर यहाँ कोई भी ऐसा मूर्ख नहीं है जो रेलको दौड़ती चलती हुई जान कर यह कहे कि मैं इतना तेज दौड़ रहा हूँ, इन पदार्थोंका अद्भुत नाच चल रहा है और एक यह आत्माको जान रहा हैं तो जाननेमें क्या जान रहा ? जिस जिस ढंगका यहाँ नाच चल रहा है, ये काठ की पुतलियाँ जिस जिस तरहसे नच रही हैं उस उस तरहसे आत्मामें ज्ञान बन रहा है, ठीक दोनों एक समान जैसे वहाँ नृत्य है, जैसा वहाँ परिवर्तन है, वैसा यहाँ जाननेमें समझ बन रही है उस ही प्रकारसे मगर कोई मूर्ख ऐसा न मिलेगा कि जो यह कह रहा हो कि मैं नच रहा हूँ, मैं चल रहा हूँ, मैं दौड़ रहा हूँ, यहाँ तो सही बात चलेगी कि मैं जान रहा हूँ, यह नच रहा है यह दौड़ रहा है और मैं जान रहा हूँ, देखो दो दृष्टान्त आये। कर्मका दृष्टान्त दिया और ये ज्ञेय पदार्थ जो बाहरमें जानने योग्य हैं, इनका दृष्टान्त दिया।

४८८ शीतानुभवमें भूलका दिग्दर्शन—

अच्छा अब जरा तीसरा दृष्टान्त लीजिए बहुत ठंडा पानी रखा है, जाड़ेके दिनोंमें जबकि बर्फ पड़ रही हो, जब ठड पड़ रही हो उस ठंडे पानीमें एक पुरुषने हाथ डाला, हाथ डालते ही अपनेमें अनुभव करता, ओह ठंडा हो गया मैं। अच्छा यह बतलावो कि ठंडा जीव बन सकता है क्या ? कभी ? जीवमें रूप नहीं, रस नहीं, गंध नहीं, स्पर्श नहीं, कभी जीव ठंडा हो सकता है क्या ? वह तो ज्ञानमय पदार्थ है, या पूसके महीनेमें तेज ठंडी लहरें चल रहीं और उस बीचमें कहते हैं ना लोग कि अरे रे रे बड़ी ठंढ लग रही। मुझे बड़ी ठंढ लग रही, तो बताओ क्या उस समय जीवको ठंढ लग रही ? जीव को कभी ठंड लग सकती है क्या ? जो अमूर्त है, जिसमें रूप, रस, गंध, स्पर्श आदिक नहीं हैं, उसमें कहीं शीतपना आ सकता है ? आ तो नहीं सकता ? फिर क्या हो रहा ? लग तो रही ठंड। बात यह हो रही है कि जितना ठंडा है इस वक्त, उस समय ये पुद्गल स्कंध और उसके सम्बन्धसे यह शरीर भी ठंडा हुआ, यह ठंडा स्पर्श हुआ, उसके द्वारा जीवने ठंडका ज्ञान भर किया, पर उस समय उसे इतना मोह है इस शरीरसे कि कर तो रहे हैं ठंडेका ज्ञान और मान रहे हैं कि मैं ठंडा हो गया, बस यह हो रहा है भीतर।

४८९ ज्ञेयाकारोंको आत्मसात् करनेमें विडम्बना—

और भी देखिये इस ज्ञेय पदार्थकी मकानकी एक भींट गिर गई, ईंट निकल गई तो जिसको मकानमें मोह है वह ऐसा अनुभव करता है कि जैसे मानो आत्मामें से ही ईंट निकल गई हो। हुआ क्या ? इसने तो ज्ञान किया कि यह ईंट निकली मगर उसके साथ जो उस मकानमें मोह पड़ा हुआ है उसकी वजहसे ज्ञानकी मोड़ उल्टी बन गई है और यह इस तरहसे मानने लगा कि मेरी ही बरबादी हो गई। कभी कोई झोपड़ी या दूकान जल रही हो तो जल रही यह वहाँ, पर उसका ज्ञान भर हो रहा कि

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

इसे जाना, और लोगोंको भी हो रहा, बाहर के गांव के लोगोंको भी हो रहा। ज्ञान सबको बराबर चल रहा, जिसकी दूकान है उसे भी ज्ञान हो रहा, जिसकी नहीं है उन आदमियों को भी ज्ञान हो रहा, मगर ज्ञानमें फर्क क्यों आ गया? जिसने यह माना कि मेरी दूकान है, हाय जल गई तो वह रोता सा ऐसा अनुभव करता कि हाय मैं ही जल गया और जो जाननेवाले लोग हैं उनको तो ऐसा अनुभव नहीं बन रहा बतलाओ विडम्बना कहाँ है, अन्दर में या बाहरमें ? बाहरमें तो कोई विडम्बना नहीं, बाहरमें कोई आफत नहीं, बाहरमें इसका कुछ बुरा नहीं, बुरा है यहाँ अन्दरमें। कैसा बुरा कि यह मैं करता हूँ। एक जाननका रोजगार हर समय, मैं ज्ञान स्वरूप हूँ, जानता रहता हूँ, जानन ही चल रहा है, सो मैं कर तो रहा हूँ हर समय जाननेका ही काम। ठन्डा पानी छू लिया तो ठन्डका ज्ञान हो गया, मकान दिख गया तो मकान का ज्ञान हो गया, यों ही कर्मों का अनुभाग, फोटो, कर्मरस बनता उसका ही ज्ञान। मगर योग्यता ऐसी मलिन है कि कुछ ज्ञान, ज्ञान तक नहीं रह पाते, किन्तु जाननेसे बढ़कर कुछ अपनी कदम बढ़ाने लगना, उसका विकल्प करना, इष्ट अनिष्ट मानना, बरबादी और आबादी मानना, इस प्रकारके जो विकल्पनायें चलीं बस यह इसमें विडम्बना है।

४९०—भेदविज्ञानके प्रतापसे निराकुलताका अभ्युदय—

आत्मस्वभाव और कर्मरसमें जब तक भेद विज्ञान न जागेगा कि मैं तो इस कर्मप्रक्रिया का जाननहार भर हूँ, मैं नहीं नच रहा, मैं न सुखी हूं, न दुःखी हूं। यह सुख दुःख वगैरह सब कर्मका नाटक है। यहाँ झलक आती है। मैं क्यों मानूँ कि यह मेरा है। भेदबिज्ञान जगे बिना आकुलता दूर न होगी। जो इस तरह अन्तरमें भेदविज्ञान करता है और उन विभावोंसे अपना हटाव कर लेता है बस उसे कहते हैं ज्ञानी। और ज्ञानीको आकुलता नहीं है। बताया गया है कि नरकोंमें जो ज्ञानी नारकी है, सम्यग्दृष्टि जीव है, यद्यपि वह भी मारकाट के बीच है, अनेकों नारकी उसे मारते हैं, काटते हैं, तो वह भी वहाँ दूसरे को प्रतिक्रिया करता है। विरोधी हिंसा तो यहाँ मनुष्य (ज्ञानी गृहस्थ) भी कर डालते हैं। कोई डाकू चढ़ बैठे हथियार लेकर उस गृहस्थको मारने और उसका धन घर्म लूटने को तो चूंकि अभी ऊँची प्रतिमा नहीं है, वह भी मुकाबला करेगा। उसके ऊपर शस्त्र का प्रहार भी करेगा, वह डाकू मर भी सकता तो ऐसा ज्ञानी गृहस्थ भी कर डालता है। नारकियोंने भी ऐसा ही किया। ज्ञानियों को तो कोई असम्भव बात नहीं, मगर उस बीच रहकर ज्ञानी अन्तरंगमें निराकुल रहता है। क्या बूटी पाया उसने ? कौनसा अमृतपान किया उसने जिससे कि नरकोंके बीच भी वह ज्ञानी नारकी निराकुल रहता है ! किया यही, कि उसे अपने स्वरूपका निर्णय बन गया। मैं ज्ञान मात्र हूँ, चैतन्य स्वरूप हूँ, जानन प्रतिभास होना, झाँकी लेना, झलक होना, जिसका काम है इससे आगे यह सब कर्मरस है, यह मेरा काम नहीं, जैसे दर्पणका निजी ईमानदारीका काम क्या है ? झिलमिलाना, बस भीतर उजेला रूप रहना। प्रतिबिम्ब आना, रंग बिरंगा बन जाना यह दर्पण का, ईमानदारी का काम नहीं, वह तो नैमित्तिक है, जैसा बाह्य पदार्थका सन्निधान, उस रूप यह परिणमन बना, यह अन्तर मे भेदविज्ञान है नारकी को। इस कारण नरकमें भी रहकर ज्ञानी निराकुल रहता है, पशु पक्षियोंमें भी ज्ञानी निराकुल रहता है, देवगतिमें और मनुष्यगतिमें भी ज्ञानी निराकुल रहता है। किस ज्ञानके प्रतापसे ? यह मैं आत्मा ज्ञान मात्र हूँ और यह सब कर्मरस है, कर्मरसका कर्ता कर्म है, ज्ञानका कर्ता मैं हूं, ऐसा भीतरमें निर्णय होनेसे यह कहलाता है भेद विज्ञान यह भीतरमें प्रकट हो तो बाहर की वे सब बातें संच हो गईं। मकान मेरा नहीं, देह मेरा नहीं, उसे सब

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सच प्रतिभासमें आ रहा है, जिसे सच्चा ज्ञान जगा वह संसारसे पार हो जाता है।

४९१—भववासियोंमें जीव, देह व कर्मका मिलन—

अपने आपके बारेमें निर्णय किया जा रहा है, देखिये—यहाँ दो बातें तो प्रकट मालूम हो रही हैं—शरीर और मैं जीव। जिसमें मैं हूं, इस प्रकारका अहंका बोध हो रहा है वह तो है जीव और जो प्रकट बाहर में स्पष्ट दिख रहा है हाथ पैर वाला यह शरीर, यह है अजीव। इन दो बातोंमें तो संदेह होगा नहीं। मैं हूं जीव जो जानने वाला है और आनन्दका भोगने वाला है याने ज्ञानानन्द स्वरूप यह हूं मैं जीव, और यह देह जिसमें रूप, रस, गंध, स्पर्श हैं, यह है एक अजीव। तो दो बाते लगी हैं, जीव और देह। पर एक बात बताओ कि जीव तो एक स्वतन्त्र चीज है, चैतन्य स्वरूप पदार्थ है, देह पौद्गलिक पिण्ड है, ये दो बातें बिलकुल अलग अलग हैं, जब ये अलग अलग हैं तो ये दो एक जगह क्यों आ गए? और, इस देहमें जीवका बन्धन क्यों बन गया? क्यों ऐसा हो रहा अभी कि देह बिना जीव कहीं नहीं जाता, जीव बिना देह भी नहीं चलता। ऐसा जो देहका और जीव का बंधन बना वह किस कारण से बना? बस इसका उत्तर है कर्म। कर्म एक ऐसा सूक्ष्म स्कंध है जो आँखों नहीं दिखता, पर है वह अजीव, पुद्गलकी चीज, और, उसमें ऐसी ही प्रकृति है कि जीव कषाय करे तो कर्म बँध जायें, कर्मका उदय हुआ तो जीवमें कषाय हो जाय, ऐसा कोई एक कर्म पुद्गल है। तो अब यहाँ ये तीन बातें निरखियेगा, जीव, कर्म और देह। यद्यपि कर्म और देह दोनों ही पुद्गल हैं, एक जाति है, मगर यहाँ भी बड़ा फर्क देखा जाता एक ही जातिमें। जैसे पत्थर और सोना दोनों यद्यपि पृथ्वी हैं, फिर भी लाखों वर्षों तक मिट्टी न बन पायगा, पत्थर न बन पायगा। उसमें ऐसी प्रकृति पड़ी है कि वह सोना अपने सोने रूपमें चमके, तो ऐसे ही पुद्गल दोनों हैं—कर्म और देह, मगर दोनों की प्रकृति जुदी है। कर्म तो प्रकृति, प्रदेश, स्थिति, अनुभाग (फल देनेकी शक्ति) इन चार बंधोंमें है, कब तक यह जीवमें बंधा रहे ये सब बातें कर्ममें हैं किन्तु देह प्रकट मूर्ति है।

४९२—कर्मकी चार प्रकारकी मूल प्रकृति—

देखो उस कर्मका निमित्त पाकर दो तरह की बातें हो रही हैं, किसी कर्मका उदय पाकर जीवमें कषाय जग रही, किसी कर्मका उदय पाकर देह बन रहा। काम तो दोनों हो रहे ना—शरीर का बनना और जीवमें कषायका होना। ये दो काम भिन्न-भिन्न हैं कि नहीं। शरीर शरीरमें है, कषाय जीवमें है, आधार भी दो न्यारे हैं, उपादान भी अलग हैं, तो देखो कर्मका कितना काम चल रहा है। किसी कर्मका उदय आनेपर जीवमें सुख दुःख रोग द्वेष विषय कषाय आदिकका विकल्प बनता, किसी कर्म प्रकृतिका उदय आनेपर शरीर नाना तरहका बनता, कोई बौना हो गया, कोई लम्बा हो गया, कुरूप है, सुरूप है और पशु पक्षी है, मनुष्य है, नाना देहोंका बनना, ये दो तरह के काम तो नजर आ रहे! अब दो तरहके काम और हैं। कर्मका निमित्त पाकर दो तरहकी बातें और होती हैं—क्या। जीवका शरीरमें बना रहना, शरीर शरीर है, जीव जीव है, और जीवका शरीरमें बना रहना यहभी कर्म प्रकृतिका कार्य है, और एक कार्य और होता है। जब यह जीव एक भव छोड़कर दूसरा भव धारण करनेके लिए जाता है मोड़ा लेकर जाता है तो रास्तेमें इस जीवको पुराने देहके आकार रहना और अगले भवका कर्म उदयमें आना और उस कर्मकी स्थिति ऐसी होती है, जिसे कहो चार्ज सम्हालना। यह भी एक कार्य है। कर्मके चार प्रकारके काम होने हैं, अब आप सोच लो इन चारमें से कोई एक

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बात कम रह जाय तो बात तो भवकी फेक्टरीमें बनेगी। तो ये चार प्रकारके कार्य चल रहे हैं उन्हींके बारेमें निर्णय हो रहा है कि कौन सा काम किसमें होता है और उसका कर्ता कौन है? इस तरहका निर्णय चल रहा है, तो अब पुनः दृष्टिपात करें।

४६३ कर्मरस प्रतिफलनका अनुभव—

जीव है, कर्म है, और देह है, देहकी बात अभी कुछ देरबाद कहेंगे। कर्मकी बात अभी कुछ कर रहे। कर्मकी बात देखिये क्या होता है कर्मसे। कर्ममें स्वयं एक विष सा भरा हुआ है जिसे कहते हैं विपाक, अनुभाग, फल देनेकी शक्ति। जैसे दर्पणके आगे कोई बच्चा खड़ा होकर मुख बनाये, जीभ निकाले, आँखें निकाले, बुरा आकार बनाये तो दर्पणमें भी उसी तरहका आकार बन गया जिस प्रकार का वह अपने मुखमें हलचल कर रहा। तो ऐसे ही जीवमें कैसा रागद्वेष विकल्प हुआ जैसा कि कर्ममें कर्मका हलचलहो रहा। यह तो वैज्ञानिक बातहै कि किसी एक पदार्थमें किसी प्रकारकी खोटीबात आयी, विषम बात आयी,विकारकी बात आयी जबदो भिन्नपदार्थोंका संबन्धहुआ, केवल वही वही पदार्थहो दूसरे का सँबंध न हो तो विकार नहीं आता। हर जगह उदाहरण देख लो। यद्यपि जीवने जो रागका विकल्प किया वह जीवकी परिणति है फिर भी कर्मोदयका निमित्त पाकर हुआ। तो अब यहाँ चार बातें समझिये-कर्म, जीव, कर्मरस और कर्मरसकी झलक। देखो-जीव वह है जिसमें अहं अहंका ज्ञान चल रहा है—मैं मैं। कर्म एक पुद्गल, जड़, बहुत सूक्ष्म चीज है और उन कर्मोंमें पड़ा है रस, फल देनेकी शक्ति। सो जिस समय कर्ममें फल देनेकी शक्तिका उबाल आता है, विस्फोट होता है, उस समय जीवमें उस विस्फोट की झलक होती ज्ञान विकल्प होता, यहाँ निरखिये जीव और कर्म दो। तो ये हैं मूल वस्तु, कर्ममें कर्मरस है और जीवमें विकल्प रस है। कर्मरसका नाम क्या है? मोह रागद्वेष कषाय आदि ये सब कर्मरस हैं, और उनकी जो झलक होती है तो वह बन गया जीवमें विकल्प याने ज्ञानका अब विकल्पके रूपमें मूड बन गया। यह अच्छा है, यह बुरा हैं, इस तरह सोचना होता है और उस सोचनेमें, मग्न हो जाता है यह है कर्मरस की फोटो। इस जीवमें जो विकल्प आया उसका कर्ता है जीव, क्योंकि वह विकल्प जीव में ही व्याप्य है, जीवकी ही तो दशा है, जीवकी ही परिणति है, इसलिए विकल्प रूप सुख दुःख का रागद्वेषका करने वाला जीव, सो वह है ज्ञान रूप याने जीवने ज्ञानकी दशाको किया। ज्ञानकी दशा ही जीवमें तन्मय नहीं, कर्मकी दशा तन्मय नहीं। तो कर्ममें जो मोह रागद्वेष जगा है, कर्ममें खुदमें चूंकि कर्म अजीव है इस कारण वह अनुभव नहीं कर सकता। अगर दर्पणके सामने वाली चीजमें रंग विरंगा-पन है तो दर्पण भी रंग विरंगावान हुआ। तो रंग विरंगापन मूलमें कपड़ेका है, ऐसे ही जीवमें जो राग द्वेष झंझटका विकल्प जगा सो ये विकल्प मूलमें कर्मके हैं, कर्मरस का प्रतिफलन हुआ सो वह संकल्प विकल्प रूपमें उभरा! अच्छा दृष्टान्तमें चार बातें लो। एक दर्पण है और उस दर्पणके सामने एक कबूतर बैठा है और दर्पणमें कबूतरका फोटो आया तो अब यहाँ चार बातें देखो-दर्पण, कबूतर, कबूतर का रंग चित्र विचित्र, सफेद है, नीला है, कत्थई है। और वहाँ दर्पणका प्रतिविम्ब है। तो कबूतर और कबूतरका रंग और दर्पण और दर्पणका प्रतिविम्ब ये चार बातें हुई अब यहाँ देखो कि वह प्रतिविम्ब किसमें तन्मय है? दर्पणमें, दर्पणकी वह दशा है। अच्छा, और कबूतरका रंग किसमें तन्मय है? कबूतर में। वह कहीं कबूतरसे बाहर नहीं आया। तो ऐसे ही समझिये कि अन्दरमें जो मोह रागद्वेष उठ रहे हैं यह कर्मकी दशा है और उस कर्मदशाका जो विचित्र ज्ञान बन रहा, विकल्प बन रहा अच्छा बुरा इस तरहका जो ज्ञानमें व्यायाम चल रहा है यह है जीवकी दशा। तो कर्मकी दशाका करने वाला कौन? यह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

यहाँ प्रश्न रखा है। कर्मकी दशा करने वाला कर्म, जैसे कबूतरके रंगका करने वाला कबूतर, दर्पण तो नहीं, क्योंकि उसका वहाँ ही तन्मय सम्बन्ध है। ऐसे ही जो रागद्वेष सुख दुःख विकल्प जाल जो कुछ हो रहे हैं उनका करने वाला पुद्गल कर्म है उनका उपादान कार्माण स्कंध है और फिर उसकी जो झलक हो रही है, जो ज्ञान विकल्प कर रहा है बाहरी पदार्थोंके प्रति आकर्षित हो रहा हैं, ऐसा जो ज्ञानका परिश्रम चल रहा है उसका करने वाला है जीव, अर्थात् प्रत्येक कार्यका कर्ता उसका उपादान होता है। जिसमें कार्य हो निश्चयसे वह उसका कर्ता है। जीवमें ज्ञान हुआ विकल्प रूपसे उसका तो व्याप्य-व्यापक सम्बंध है जीवके साथ, मगर जो कर्मरस है मोह रागद्वेष, इसका व्याप्य व्यापक सम्बन्ध है कर्मके साथ। उसका निमित्त पाकर जीव भी गड़बड़ा गया। गड़बड़ाया ज्ञान रूपसे, जैसे दर्पणमें रंग आया, पर किस ढंगसे रंग आया? इस ढंगसे नहीं आया जैसे कबूतरमें है, कबूतर उड़ गया तो भी रंग उसके साथ है मगर दर्पणमें वह रंग दर्पणके साथ तो नहीं रह पाता। वह ऊपरी रंग है, केवल एक तैरनेका रंग है, दर्पणमें समाया हुआ, दर्पणसे ही उठा हुआ रंग नहीं है, किन्तु वह केवल एक तैरने वाला रंग है, ऊपर-ऊपर आया हुआ रंग है, बस ऐसा जिसने बोध किया कि मैं चेतन हूं, मैं ज्ञानके कामके सिवाय और कुछ काम नहीं करता, कर्म भी आड़े आता है, उसका निमित्त पाकर उसका ज्ञान बदल जाता है, गड़बड़ा जाता है, यह बात तो हो जाती है मुझमें मगर मैं ज्ञानको ही करता हूं, कर्मरस का करने वाला नहीं हूं।

४९४—जीवमें देह कर्तृत्वका अभाव—

अब देहकी भी बात समझिये यहाँ भी दो बातें हैं—देह और जीव, जीव तो है चेतन और देह है अचेतन। अब देहमें जो बात बन रही है, जैसे रंग होना, इसका आकार होना, मजबूती होना, गंध होना, स्पर्श होना, इसमें रस भी है तो ये सब बातें देहमें उठ रही हैं तो वे रूप, रस, गंध आदिकका जिसे सुन्दरता भी कहो, कुरूपता भी कहो, टेढ़ा मेढ़ा आकार बन गया, यह किसमें तन्मय है-जीवमें या देहमें? देहमें, जीवमें नहीं। जीव तो अमूर्तिक है, जो यह आकार है, रूपादिक है, सो वह [illegible] तन्मय है। तन्मय मायने व्याप्य व्यापक सम्बंध वाला, देह तो व्यापक है और रूप व्याप्य है जो कुछ बतला रहे हैं वह इसमें समाया हुआ है, समाया हुआ और समा लेने वाला याने व्याप्य और व्यापक, समाया हुआ क्या है? रूपादिक। और समाने वाला कौन है? किसमें समाया है? देहमें, तो जिसमें समाया नहीं है जो समाया नहीं है उसका कर्ता कर्म सम्बन्ध नहीं है। जीवमें रूपादिक नहीं है सो जीव रूपादिवान देहका कर्ता नहीं याने जीव देहके रूपका करने वाला नहीं। देहके रूपका कर्ता निश्चयसे देह है। हाँ देह विषयक जो मैं ज्ञानकर रहा हूं, कि मेरा यह रूप है और इतना तक मान लेता हूं कि मेरा गोरा रूप है, काला रूप है या मुझमें ऐसी गंध है उतना भर ज्ञान कर रहा, कहीं गंध या रूप जीवमें नहीं आता। तो जीव कर्मकी बात का कर्ता नहीं, जीव तो सब जगह ज्ञानका ही कर्ता है, और कुछ नहीं करता।

४९५ सर्वत्र प्रत्येककी क्रियाका उस ही प्रत्येकमें दर्शन—

अच्छा जरा लौकिक प्रसंग ले लीजिए—आप किसी कारखानेमें गए तो इसे सम्हाला उसे सम्हाला, यह देखा वह देखा, प्रयोग किया, ये सारे काम आप कर रहे हैं, मगर निश्चयसे तो बताओकि उस फैक्टरीके ये सब काम करते हुए भी आप वास्तवमें क्या कर रहे हैं? आप केवल ज्ञान ही ज्ञान कर रहे हैं, जब आप कोई पुर्जा चला रहे हैं, प्रयोग करनेके लिए तो वहाँ आप जो जीव हैं वह केवल बोध

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कर रहे हैं और उस ज्ञानको इच्छारूप से कर रहे हैं, मैं ऐसा बना हूं, आप भावकर रहे हैं, उस भाव करनेसे जीवमें ऐसी हलन चलन हुआ, उस हलनके माफिक शरीरकी वायु चली और शरीरमे जैसी वायु चली उस माफिक ये हाथ हिले और जैसे ये हाथ हिले उसमें फसा था कोई पुर्जा तो उसी प्रकार वह पुर्जा चला। देखो कितना निमित्त के अन्तर के बाद वह पुर्जा चला, अगर अज्ञान है तो यह जीव सोचता है कि मैंने इस पुर्जेको चला दिया। किया तो केवल जीवने ज्ञान ही ज्ञान। ज्ञानके सिवाय और कुछ नहीं कर सकता वहाँ, मगर ज्ञान हुआ इच्छा जगी और आत्मामें उस तरहका परिस्पंद हुआ, हलन चलन हुआ, तो उस ढंगसे देहमें वायु चली, अंग चले, फिर जो हाथमैं आया हुआ पुर्जा था वह चला और उसका निमित्त पाकर चक्का चला। चक्केका निमित्त पाकर डंडा चला। तो क्या से क्या चलने लगे वे सब एक दूसरेका निमित्त पाकर चलने लगते हैं। पर वस्तुतः प्रत्येक पदार्थ अपना काम अपनेमें कर रहा है, कोई दूसरेका काम नहीं कर रहा। स्पष्ट देखो डंडा अगर बराबर चल रहा और चक्केमैं चक्का चल रहा, पुर्जे में पुर्जा चल रहा, हाथमैं हाथ चल रहा है, जीवमें जीवका काम चल रहा है। कैसा नंगा नाच है, एक पदार्थ दूसरेका परिणमन करने वाला है ही नहीं, फिर जो कुछ हो रहा है यह सब निमित्त नैमित्तिक योग वश हो रहा है। तो यहाँ यह ही बात निरखना है कि जगतका अणु-अणु प्रत्येक जीव अपने आपकी सत्तामें है, अपने आपमें अपना परिणमन करने वाला है। एक दूसरेका स्वामी नहीं, एक दूसरेका कुछ लगता नहीं।

४९५—देह और कर्मके साथ जीवके कर्तृकर्मत्वकी वास्तवमें असिद्धि—

देखिये-अनादि कालसे जो कर्मचक्रमें चले आ रहे, कर्मबन्धनमें बन्धे आ रहे, उनका इतना प्रभुत्व है कि हम आप बड़ा ज्ञान लगाये तो भी फिसलते रहते हैं। हम उद्यम करते हैं, श्रद्धान करते हैं, ज्ञान करते हैं, प्रयत्न करते हैं, मेरे मोह न उठे, मेरे में व्यग्रता न आये, मेरे में झुझलाहट न आये, मेरे में राग मत जगे, विरोध मत जगे। मनको समझाते हैं, मन कुछ कामपर लगता है फिर भी फिसल जाते हैं। तो ये जो स्थितियाँ बन रहीं ये क्या हैं! यह बड़ा संघर्ष है, और यह संघर्ष मूलसे तब तक नहीं मिट सकता जब तक हम अपने इस सहज स्वरूपको न पहिचान लें, जो संघर्षसे बिल्कुल अछूता है जिसका स्वभाव संघर्ष रूप नहीं है, यह स्वयं शान्त है, निराकुल है, पावन है परमात्मा की तरह पवित्र स्वरूप है जब तक इस स्वरूपका हम ध्यान न करलें तब तक हमारा यह संघर्ष मिट नहीं सकता। तो इस प्रकरणमें बतलाया जा रहा है कि देखो जो कुछ भीतरमें कर्मकी चक्की चल रही है वह कर्ममें समायी हुई है, इसलिए उसका कर्ता कर्म है, ज्ञान नहीं है। तू तो उनका निमित्त पाकर जो अपना ज्ञान बुरे प्रकारमें बना रहा है अच्छा है, बुरा है, कुछ सुख रूप महसूस किया, बस इस ज्ञानकी दशाओंका ही तू करने वाला है, इसके आगे तू और कुछ करने वाला नहीं। इसी तरह शरीरमें जो कुछ हो गया, फोड़ा फुन्सी हो गया, बुखार हो गया, रोग कोई हो गया, ये सब बातें देहमें हो रहीं। यद्यपि यह सम्बन्ध तो है कि जब तक जीवका यह निवास है देह, और प्रतिकूल आहार विहार हो गया, ठीक न खा सके, अपथ्य खा लिया, अधिक खा लिया, तो रोगादिक हो गए मगर रोगका उपादान शरीर है, जीव नहीं, रोग शरीरमें समाया है, जो चीज जिसमें समायी हो निश्चयसे उसका करने वाला वह है। यह यहां कुञ्जी कही जा रही है। तो देहकी जो दशा हो रही है, इसको करने वाला देह है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

४९५—धर्माश्रयसे च्युत न होनेके लिये सब परिस्थितियोंमें धर्मकी आस्था—

देखो जहाँ कर्म और देह इनसे भी न्यारा होना यहाँ निरखा जा रहा है तो वहां इस बातका जरा भी महत्व न देना चाहिए कि घर मेरा है, कुटुम्ब मेरा है, मित्र मेरे हैं, अमुक मेरा है, अरे ये प्रकट पराये हैं। यहाँ एक बुद्धिमानी तो आपने की है कि कहीं धर्ममार्गसे बिल्कुल च्युत न हो जाँय पापके उदयमें, कर्मके प्रभावसे, इसलिए एक गृहस्थी बसा ली कि अब देखो परस्त्रीमें वेश्यामें अनर्गल कहीं पर मेरा भाव न लग जाय इस प्रयोजनसे आपने एक स्त्रीसे विवाह किया। गृहस्थीमें विवाह विषयोंके भोगके लिए नहीं किया किन्तु दुनियामें जो और स्त्रियाँ हैं वेश्यायें हैं उनमें दिल न जाय, इसके लिए। स्त्रीका प्रसंग ही करते रहें, इसके लिए भी विवाह नहीं। वह घटना आधार है, और काम क्या करना आपको कि सब स्त्रियोंसे हमारा चित्त हट जाय, यह काम किया, गृहस्थने। ऐसी ही सबकी बात है। जो-जो कुछ भी समागम रखा गृहस्थने वह धर्ममें सहायक बननेके कारण से रखा हुआ है। कहीं उसमें क्लेश होनेके लिए नहीं रखा। इतनी बात तो है गृहस्थीमें, सो समझना चाहिए कि कुछ गुजारा करनेके लिए घरकी कमेटी बनाये हुए है, जिसे गुजारा कमेटी कह लो, जिससे कि कोई व्यग्रता न आये और धर्मके कार्योंमें हमारा चित्त बना रहे। अब बतलावो धर्मके कार्य क्या हैं? मूलमें तो धर्म यह है कि अपनी सुध बनी रहे कि यह मैं सबसे निराला ज्ञान ज्योतिर्मय तत्त्व हूँ। यह साहस बना रहे तो सबसे ऊँचा धर्म यह है।

४९६—सहज ज्ञान स्वभाव स्थितिरूप धर्ममें न ठहरनेपर श्रावककी ६ प्रकार की वृत्तियां—

जब हम निश्चय धर्ममें नहीं ठहर पाते हैं तो ६ कर्म बताये गए हैं—देव दर्शन करना, देव पूजा करना, इससे प्रभुके स्वरूपका स्मरण होगा, कुछ अपने आपकी सुध आयगी। भाई, गुरुवोंकी सेवा करो, गुरुवोंका सत्संग करो, कुछ थोड़ा बहुत उनके प्रति भक्ति अनुराग रखो, उनके निकट बैठो उनके भीतर जो ज्ञान प्रकाश जगा है, जो एक दृष्टि मोक्ष मार्ग को बनाती है उसका भी कभी कभी ध्यान करो। अच्छा तीसरा कर्म है—स्वाध्याय। निराकुल रूपसे १५—२० मिनट बैठकर स्वाध्याय करे, इस ढंग से करें कि चाहे दो लाइन ही पढ़नेमें आयें मगर उनको अपने पर घटावें, मायने यह सब मेरेको ही कहा जा रहा है। अपना जीवन संयममें बिताओ। ऐसी आदत छोड़ो कि जब खोन्वा वाला आया तब कुछ चाट पकौड़ी लेकर खा लिया, जब सामने कुछ खाने की चीज दिखी तब ही खा लिया। हालाँकि ऊपरसे ऐसा लगेगा कि क्या हुआ, उसका दिल रख दिया मगर जो खाने खाने की इच्छा चल रही है, और उसका सँस्कार बसा हुआ है रात दिन उसके कारण इस आत्माके स्वरूपकी सुध नहीं है, इसी कारण कुछ समय पहले गृहस्थीमें यह रिवाज था कि जैसे ही भोजन करके उठे कि यह ठान लिया कि अब हमारा ४ घंटे का, या ६ घंटेका या ८ घंटेका भोजनका त्याग रहेगा। इसके लिए तो आप अपने ही घरके पुराने लोगोंकी याद करलो। उनमें खानेका ही सँस्कार नहीं बना रहता था, आत्माकी सुध आने के अवसर आते थे। तो यहां संयम बड़ा जरूरी है। जीवोंकी रक्षा करना क्या सोचकर कि ये भी मेरे ही समान स्वरूप वाले जीव हैं। मेरे जरासे प्रभाव से यदि इनका सँक्लेश मरण हो गया तो वे जिस गतिमें थे उससे नीची गतिमें जन्म होगा। जैसे मनुष्य है और मोहमें मरण हो गया, तो उसको खराब दशा मिलेगी कोई तीन, चार इन्द्रियका जीव बन जायगा। याने इससे भी नीचे की इन्द्रियका जीव बन जायगा। सँक्लेश मरण का यह प्रभाव होता है। तो मेरे जरासे प्रमादके कारण यदि किसी जीवका सांक्लेश मरणहो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जाय तो वह कितना विकाससे दूर हो गया । तो यह कितना बड़ा पाप लगा । तो संयमसे रहना यह हमारा एक परम कर्तव्य बताया है । तप याने इच्छावोंका निरोध करना । आजके समयमें लोग ऐसा सोचते हैं कि बढ़िया टिपटाप हो, बढ़िया बाहन हों, बढ़िया सौन्दर्य हो और अनेक प्रकारके देखनेके साधन हों। होता क्या है कि उनमें इच्छा पड़ी रहती है, उनमें भाव लगे रहते है, उन सब खटपटोंको देखकर खुश हो रहे हैं, आत्माकी सुधसे वे अलग होते हैं, अब आगामी कोई लाभ न मिलेगा । तो जो विवेकी जन हैं उनको आत्माकी सुध वाला काम अधिक करना चाहिए । यह भी एक कर्तव्य है । और अन्तिम है दान करना, त्याग करना । अब मानो एक वर्षमें ५—६ हजार रुपया खर्च हो गया, मोटर, स्कूटर आदिकमें या और और बातोंमें, कल्पना करो कि उस खर्चको हजार दो हजारमें ही निपटा लेते और ४—५ हजार रुपयेका दान करते रहते तो दान आपकी विभूति और ऐश्वर्यका गुण गाने वाला बनता, मगर क्या है—खाया खोया बह गया, तो ये ६ प्रकारके कर्म बताये गए हैं, उनमें रहकर यह जीव आत्माकी सुध लेता रहेगा । करनेका काम है अपनी सुध बनाये रहना, कि मैं सबसे निराला केवल जानन देखनहार आत्मतत्त्व हूं ।

ज्ञानीजानन्न पीमां स्वपरपरिणतिं पुद्गलश्चाप्य जानन्,
व्याप्तृव्याप्यत्वमंतः कलयितुमसहौ नित्यमत्यन्त भेदात् ।
अज्ञानात्कर्तृकर्मभ्रममतिरनयोर्भाति तावन्न यावत्,
विज्ञानाचिश्चकास्ति ककचवददवं भेदमुत्पाद्य सद्यः ॥ ५० ॥

४९७—मोहविध्वंसक तथ्यनिर्णयमें प्रवेश—

अपने आपके भीतर ही घटनाकी निरखकी जा रही हैं, क्या गुजर रहा है इस आत्माके क्षेत्र में ? यहाँ जीव और कर्म दो की बात चल रही है । अगर यह जीव अकेला ही होता, इसके साथ कर्म का सम्बन्ध न होता तो जीवकी नाना गतियाँ न बनतीं । वह तो अपने स्वभावके अनुरूप ही परिणमता, और वहां परिणमन और स्वभाव ये एक रस प्रकट होते । जैसा कि भगवानमें हो रहा है, किन्तु यहाँ जो नाना दशायें जीवकी बन रही हैं वे ही यह स्वीकार करती हैं, यह बताती हैं कि इस जीवके साथ कोई दूसरी विरुद्ध चीज लगी है, जिसका निमित्त पाकर जीवमें नाना दशायें बन रही हैं । बना रहा है यह जीव, परिणम रहा यह जीव । कर्म जीवकी दशा नहीं बनाते, किन्तु कर्मोदय का सन्निधान पाकर जीवमें स्वयं ऐसी विभाव दशा प्रकट होती जाती है, जैसे किसी मनुष्यको साँपने काट लिया, विष चढ़ गया, अब मन्त्रवादी मन्त्र पढ़ रहा है, तो मन्त्रवादी तो अपनेमें अपनी ही भावना बना रहा है, वह उस मनुष्यके शरीरमें प्रवेश नहीं करता, किन्तु उसका निमित्त पाकर यह स्वयमेव दूर हो रहा । निमित्त नैमित्तिक भावकी यथार्थ घटना जीव और अजीवके प्रकरणमें समझ लेंगे । रोटी पकती है आग पर, आग कहीं रोटी रूप नहीं बन जाती, रोटी आग रूप नहीं बन जाती । रोटीमें रोटी है, आगमें आग है, लेकिन ऐसा ही निमित्त नैमित्तिक योग है स्पष्ट बात है कि अग्निका सन्निधान पाकर रोटीमें रोटी सिक गई । सर्वत्र यह ही हाल हो रहा, जो जगतको इस दृष्टिसे निरख रहा कि प्रत्येक अणु अणु स्वतन्त्र स्वतंत्र अपने आपके उत्पाद व्ययसे परिणमने वाला, प्रत्येक जीव स्वतन्त्र अपने आपकी परिणतिसे परिणमने वाला । इस तरहकी जो दृष्टि पा लेगा उसके मोह नहीं हो सकता । इस मोहने इस जगतको कष्ट मय बना दिया । बात कुछ नहीं और बतंगड़ बन गया । जीव जीव है, कर्म कर्म है, प्रत्येक जीव स्वतन्त्र स्वतन्त्र है । कोई किसी का स्वामी नहीं ।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

किसी पर किसी दूसरेका अधिकार नहीं । सबकी सत्ता जुदी-जुदी है । यह तो इस जीवने उन पर पदार्थों में मोह बुद्धि करके मेरा है, मेरा था, मेरा होगा, यों व्यर्थकी कल्पना की, जिसमें रंच भी तथ्य नहीं है एकदम, मिथ्या है, पर इस जीवने कल्पनायें करके अपने आपको समर्पित कर दिया। याने जैसे दही बिलोया जाता तो मथानीका सम्बन्ध पाकर दही बिलो लिया जाता है ऐसे ही यह आत्मा (जीव) बिलोया गया । अच्छा तो इतने बड़े कष्ट को हटा देनेका उपाय क्या है ? सम्यग्ज्ञानका प्रकाश लावें, मोहका त्याग करें, कष्ट तो था ही । माननेका था, सो यह मान्यता मिट जायगी, आनन्द मिलजायगा ।

४९९—उदाहरण पूर्वक जीवके स्वपरिणाम कर्तृत्व व परपरिणामना कर्तृत्वका निर्णय—

ये सब विभावकी बातें जीवमें आयी हैं तो उस कर्मोदय का निमित्त पाकर आयी हैं, सो भले ही कर्मोदय निमित्त मात्र है वह, पर उसका सब कुछ तादात्म्य, कर्मका कर्मके परिणामके साथ है, जीवका तादात्म्य जीवके परिणामके साथ है, एक कोई दूसरेका परिणाम करता नहीं, हाँ कर्म उदयमें आया मायन उसने अपने आपमें ही बुरा ढंग बना डाला, उसकी झलक इस उपयोगसे हुई, जीवमें हुई। उसका निमित्त पाकर जो कुछ विकल्प बना वह परिणाम जीवमें हुआ । अब यह जीव जानने वाला तो अवश्य हो रहा, जिसका जितना ज्ञान है, अपनेको जानता, पर पदार्थको जानता, मगर जिसको जान रहा, जिसके बारेमें जान रहा उससे तादात्म्य नहीं बन पाता । उदाहरण लो दर्पणके सामने कोई रंग विरंगा खिलौना रखा है, जिसमें चाभी भर दी जाय उसमें हलन चलन होने लगती है । अब उसका सन्निधान पाकर दर्पणमें चलता हुआ रंग विरंगा खिलौना, जैसा प्रतिविम्ब पड़ रहा सो पड़ रहा, मगर दर्पण उस रन्ग विरन्गे खिलौनेका कुछभी नहीं कर पा रहा। वह तो भिन्न क्षेत्रमें पड़ा है, और रन्ग विरन्गा खिलौना कितनी ही हलचलकर रहा हो और उसके अनुरूप दर्पणमें फोटो आ रही है तिस पर भी वह रन्ग विरन्गा खिलौना हलचल वाला इस दर्पणमें कुछ नहीं कर रहा । हो रहा फिर भी एक दूसरेका कोई कुछ नहींकर रहा । यह जीव जानता है कि मैं अपने सँकल्प विकल्पको, राग द्वेष को अनुभव रहा हूं, यह अच्छा है, यह बुरा है, इस तरह का ज्ञानभी कर रहा है, उसे जान रहा है और आगमके आधार पर, युक्ति के आधार पर यह भी जान रहा है कि कर्म विपाककी झलक है, कर्मको जान रहा मगर सब कुछ जानता हुआ भी जीव कर्ममें कुछ करता नहीं है और कर्म कुछभी नहीं जान रहा और कर्मके उदयका निमित्त पाकर जीवमें बहुत हलचल होती रहती है तिस परभी कर्म जीवमें कुछ नहीं कर रहा । यहाँ यह आत्मा साक्षी (गवाह) बन जाता है, घटनासे न्यारा, अलग, साक्षी मात्र रहता है, वह वादी और प्रतिवादीसे अलग रहता है । साक्षी न वादीका होता न प्रतिवादीका होता और न्यारा रह कर जो तथ्यकी बात है उसे ही बताता है । तो यह आत्मा यहाँकी सारी घटनाओंका साक्षी बन जाय, उस घटनासे व्यग्र न हो हमारा ज्ञान, यह शिक्षा लीजिये इस तथ्य परिचयसे । आत्म ज्ञानीके जगता है वह ज्ञान । कह दीजिए कि वह तो जीवन् मुक्तसा है । रह रहा है सँसारमें, मगर भीतर जो उसका ज्ञान प्रकाश है उस ज्ञान प्रकाशके कारण वह आकुलित नहीं हो रहा । व्याकुल होता कौन ? जो पर पदार्थोंमें मोह राग द्वेषका परिणाम रखता ।

५००—अन्तः वास्तविकताके निर्णयकी आवश्यकता—

भैया! वास्तविक भेदविज्ञान तो वहाँ अध्यात्ममें करना है, और स्थूल दृष्टिसे देखें तो जिसको जितना सुहावना साँग मिला है, अच्छे लड़के हैं, अच्छी कोठी है, अच्छा रोजिगार है, अच्छे मित्र हैं, अच्छी पार्टी है, सब कुछ अच्छा है, मगर यह सब अच्छा तो क्या ? यह तो हे आत्मन् ! तेरे लिए

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अन्धेरा है, वे अन्धकार नहीं, किन्तु उनको अच्छे अच्छे मानकर राग विकल्प बनाकर जो अपने आत्मा भगवानका हनन हो रहा है, सुध नहीं हो रही है और बाह्य पदार्थोंमें उपयुक्त हो रहा है यह तो एक अपना बात है, पुण्य पापके फलमें मत हर्ष करो, मत खेद करो। अपनी सही सही सुध सम्हाल लो, सब कुछ सब सही सही जान लो, देख लो जो अपनी ऐसी स्थिति बनायगा कि बस जान लिया देख लिया, और कुछ हमें मतलब नहीं, उसको तो आत्मीय अनन्त निधि प्राप्त होगी। प्रभुको हम पूजने क्यों आते। वह तो बिल्कुल अकिञ्चन हैं, यहाँ तो फिर भी कोठी है, कुटुम्ब है, पैसा है, रोजिगार है, पर इन भगवान के पास तो ये कुछ भी नहीं हैं, वे तो केवल अकेले हैं। हम उनके दर्शन करने क्यों आते ? अरे भाई ! ऐसा अकेलापन जिसके प्रकट हो जाता उसे आत्मीय अनन्त निधि प्रकट हो जाती। यहाँका तो यह सारा वैभव सब बेकार हैं, बाहरी पदार्थ हैं, पौद्गलिक स्कंध हैं, इनकी सत्ता न्यारी, मेरी सत्ता न्यारी। उनसे मेरा कोई लाभ नहीं होता। प्रभुने अपने आत्मीय अनन्त आनन्दका लाभ लिया। और, वैसे भी देखो—यहांके रागमें यदि आशक्ति हो जाय, जो कुछ है सो, सब यही है मेरा सर्वस्व ऐसी यदि आशक्ति हो जाय तो उसका फल बहुत बुरा है। यह तो रहेगा ही नहीं, पर आगेका भव और बुरा है। बड़ा कष्टमय होगा। जगत के जीवोंको देखो कैसे कैस दुःखी ह, मनुष्योंको ही देखो किसीका दिमाग खराब है, उसमें बहुत कष्ट पा रहा है, किसीको बुद्धि थोड़ी मिली तो वह यों ही कष्ट पा रहा है, किसीको रहने का स्थान नहीं, खाना पीना नहीं वह कष्ट पा रहा, किसीको कोई रोग लगा वह कष्ट पा रहा, किसीको अटूट सम्पदा मिली फिर भी उसके अनेक तरहकी बेचैनीकी बीमारी लगी हैं। जगतमें कोई सुखी नहीं। आज जो लोग सम्पन्न हैं तो वह तो उनके पूर्वभव की कमाई है, कुछ तपश्चरण किया होगा जिससे आज सब प्रकार सुविधायें मिली हुई हैं, मगर इन सुविधाओंका सही सदुपयोग हो तो ठीक कहा जाय। और अगर इन सुविधावोंको पाकर इनका दुरुपयोग किया गया तो इसे ठीक नहीं कहा जा सकता। तो ये सब बाहरके झंझट तो एक विषयभूत हैं, झञ्झट तो सारा हमने अन्दरमें लगा रखा है।

५०१—कर्म, कर्मरस, जीव व विकल्प इन चारोंके बोधके लिये कुछ दृष्टान्त—

जरा निरखिये—यहाँ चार बातें कही गई थीं कल—कर्म, कर्मरस, जीव और विकल्प। कर्म व कर्मरस मायने कर्ममें ही जो क्रोध, मान, माया, लोभ अनुभाग का विपाक होता है, फूटता है वहाँ वह कर्मरस है इसे यों समझिये कि जैसे चूने का डला है। बताओ उस चूने की डलीमें स्वस्थ रहनेकी म्याद होती कि नही ? म्याद तो है, कोई १००—५० वर्ष तो वह डला रहैगा नहीं, साल दो साल भी नहीं रह सकता। नानलो, कोई ६ माहकी उसकी म्याद है और उसपर अभी पानी कोई डाल दे तो वह तो वह तो अभी पिघल जायगा, उसकी जो शक्ति थी वह फूट जायगी। तो जैसे चूनेका डला फूटता है, अन्य रूप बनता है इसी प्रकार धर्मभी अपनी आखरी स्थिति पाकर उदय कालमें फूटताहै,उसमें फूलता है जो अनुभाग है, कषाय है, वह प्रकट होता ह, उस कहते हैं कर्मरस। तो यहाँ देखिये—यह तो हुआ कर्म व कर्मरस और उसका सन्निधान पाकर यहाँ क्या हुआ जीवमें ? जीव तो है ही पदार्थ मगर उसमें सँकल्प विकल्प हुआ-याने कर्मरसकी झलक सँकल्प विकल्परूप होती है। जैसे चार चीजें कहीं थी कल कबूतर, कबूतरका रंग या कबूतरकी फुरफुरी, जैसे कबूतर फुरफुरा देता है तो वह फूलकर ड्योढ़ा मोटा हो जाता है। दो बातें तो वहाँ और दो बातें दर्पणमें। दर्पण खुद और दर्पणमें उस प्रकारका फोटो, तो कबूतर और कबूतरका रंग आकर इनका तादात्म्य कबूतरमें है, दर्पणमें रंच नहीं।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

और उसका निमित्त पाकर हुआ है वैसा प्रतिविम्ब। मगर प्रतिविम्ब और दर्पण इनका तादात्म्य है। यह कबूतरमें कुछ नहीं जाता, ऐसे ही कर्म, कर्मरस इनका कहीं तादात्म्य है, उसका सानिध्य पाकर हुआ जीवमें विकल्प सो जीव और विकल्प इनका यहाँ तादात्म्य है। तो यह जीव अपने सँकल्प विकल्प परिणामको जान रहा है, अनुभव रहा है तिस पर भी इस जीव का तादात्म्य कर्ममें नहीं। कर्मरूप से जीव नहीं बन जाता, जीव जीवरूप ही बनता है। एक बहुत मोटा, दृष्टान्त लो-वक्ता और श्रोता और बक्ताकी हलचल और श्रोता की हलचल, ये चार बातें लीजिए। श्रोताओंमें हलचल ज्ञान, सूझ, समझ, चिंतन जो कुछ चल रहा वह श्रोतामें तन्मय है या वक्ता में ? यह सब कुछ तो श्रोतामें ही तन्मय है और वक्ताके विचार चिन्तन्, उस तरह का बोलना प्रक्रिया, हलचल है, उसकी तन्मयता वक्तामें है या श्रोता में ? वक्ता में। सो देखो यद्यपि परस्पर हलचलमें निमित्त नैमित्तक सम्बन्ध है। श्रोताओंका सान्निध्य पाकर वक्ता इस प्रकारका हलचल कर रहा। वक्ताके व्यापारका निमित्त पाकर श्रोतागण अपने चित्तमें उस प्रकारकी तर्कणा कर रहे, मगर सम्बन्ध जराभी नहीं। मात्र निमित्त नैमित्तक भाव है।

५०२— कर्म, कर्मफल, स्वपरिणामका जाननहार होनेपर भी जीवमें कर्मके कर्तृत्वकी असंभवना—

अब यहाँ भी देखिये यह ज्ञानी आत्मा कर्मोके उदयकी बात जान रहा, कर्ममें कर्मकी बात जान रहा और उसका निमित्त पाकर जो सँकल्प विकल्प चल रहा, उसे भी जान रहा मगर जीवका व्याप्य व्यापक भाव कर्ममें नहीं, कर्मका व्याप्य व्यापक भाव जीवमे नहीं, व्याप्य मायने समाया हुआ और व्यापक मायने सामने वाला याने जिसमें समाया हो। जो समाया है वह व्याप्य, जिसमें समाया है वह व्यापक। जैसा मिट्टीका घड़ा बना तो घड़ा समाया मिट्टीमें सो मिट्टी व्यापक और घड़ा व्याप्य। व्यापकका क्षेत्र काल थोड़ा होता है, जहा जैसा व्याप्य व्यापक माना हो। व्यापक का स्थान बड़ा होता है। तो कर्मका सम्बन्ध जीवमें नहीं, जीवका सम्बन्ध कर्ममें नहीं, मगर ऐसा निमित्त नैमित्तक योग चल रहा है कि कर्मविपाकसे आच्छन्न यह जीव अपनी भूलसे दुःखी हो रहा है। ज्ञान नहीं करता सही और ज्ञान थोड़ा बहुत करता तो उसमें आस्था नहीं ज्ञान होना और सानुभव ज्ञान होना, इन दोनोंमें ऐसा अन्तर है कि जैसा मानो आप लोगोंमें से कोई जो अभी तक श्रमण बेलगोल (बाहुबलि जी) नहीं गया और जिसमें बाहुबलि स्वामीकी प्रतिमाको नहीं देखा और यहाँ फोटो देख रहा है, पुस्तक पढ़ रहा है, नाप तौल जान रहा है, उस मूर्तिका इतना बड़ा अंगूठा, इतना बड़ा घुटना, इतना बड़ा अंगूठेका नख, यों बहुत-बहुत उसका ज्ञान कर रहा, बल्कि उस मूर्तिको देखते हुएमें उसके सम्बन्धमें जितने विकल्प नहीं होते कहो यहाँ उस मूर्तिके सम्बन्धमें ज्ञान करते हुएमें उतने विकल्प हों, पर यह बताओकि एक तो यहाँ पढ़कर ज्ञान किया और कभी जैनवद्री ही जाकर एक उस मूर्तिका साक्षात् दर्शन करके ज्ञान किया, बताओ इन दोनों प्रकारके ज्ञानोंमें कुछ अन्तर है कि नहीं ? हाँ अन्तर है, क्योंकि प्रत्यक्ष दर्शन करके किया हुआ ज्ञान अनुभवात्मक ज्ञान हैं, अभी यहां जो बालकोंको रूस, अमेरिका, चीन, जापान, जर्मनी, इंगलैण्ड आदि के नदी पहाड़ आदिकका ज्ञान पुस्तकोंके आधारसे कराया जाता है, तो भले ही वे उसका बहुत-बहुत ज्ञान करले फिरभी उस ज्ञानसे व इसमें अन्तर है जो वहां जाकर प्रत्यक्ष देखकर ज्ञान किया जाय। वह ज्ञान एक अनुभवात्मक ज्ञान होता है। तो ऐसे ही कोई आध्यात्मका बड़ा भारी ज्ञान पुस्तकों के आधारसे करले, एक तो वह ज्ञान और एक प्रयोगात्मक रूपसे करके अपने अनुभवमें आया हुआ है वह ज्ञान, इन दोनोंमें निरनुभव व सानुभव का अन्तर है। जो सहज ज्ञान स्वरूपको ज्ञानमें लेकर जो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

एक अनुभव जगता है उस अनुभवमें जो परमात्मतत्त्वका दर्शन, आनन्दका अनुभव अलौकिक दुनियाका परिचय होता है वह अनुभव सहित ज्ञान है, वास्तविक ज्ञान इसकोही कहते हैं। ऐसा ज्ञान जिसे प्राप्त हो गया वह कदाचित् पूर्व संस्कार वश असाताका उदय होनेपर कुछ भोगोपभोगके कार्योंमें भी पड़े उसको सम्यक्त्वके कारण पवित्र कहा गया है। वह अबंधक है, संसारका बन्ध अब वह न कर सकेगा और अन्तः आनन्दमय है ।

५०३—अपनेमें ज्ञानमात्रता व ज्ञानवर्तना निरखकर संकटहीन हो जानेका अनुरोध—

भैया ! अपने को ज्ञान मात्र जानकर अलौकिक फकीराना अंगीकार करें, चिपकना नहीं धन वैभवसे, कुटुम्बादिक से। अपना व्यवहार सही करना। प्रीत रखे बिना घरमें गुजारा न चलेगा, मगर यथार्थ बात जानते हुए घर रह जाय तो इसमें जो संकट हीनता रहेगी इसको कोई दूसरा नहीं दे सकता, खुद ही अपनेको संकट हीन बना सकते हैं। दूसरेमें सामर्थ्य नहीं कि किसी दूसरेको कोई संकट हीन बना दे क्योंकि समझना तो खुदको ही पड़ेगा। खुदके समझने से ही काम बनेगा, दूसरेके समझनेसे काम न बनेगा। किसीको आप लाख रुपये भी दे दें, करोड़ोंका मालिक बना दें, कितना ही वैभव हो जाय, पर शान्तिका अनुभव तो वह तब ही कर सकेगा जब सहज ज्ञान स्वरूपका, अन्तस्तत्त्व का उसको परिचय होगा कि मैं यह हूं। तो यह जीव जान तो रहा है, अपने संकल्प विकल्पको, जान रहा है कर्मकी परिणतिको, मगर यह कर्मरूप से नहीं परिणमता, यह जीव कर्मकी परिणतिको नहीं करता। वह झलक रहा है, उसको जान रहा है, यहाँ बैठे बैठे आप इस मन्दिर की दीवाल को भी देख रहे हैं तो आप दीवालके करने वाले हैं या केवल जानने वाले हैं ? जानने वाले हैं, करने वाले नहीं। और, कदाचित् ईट उठाकर रखने लगे, बनाने लगे कोई कुछ तो वह उस दीवालका करने वाला है या जानने वाला ? वह भी जानने वाला। बनाते बनाते वह दीवाल गिर जाय, ढल जाय, खूब आँधी तूफान वर्षा आदिके होनेसे दीवाल गिर जाय तो उस समय जो आप कुछ मनमें खेद मान रहे हैं सो बतलावो कि आप कहां जान रहे हैं या दीवाल गिरनेका अनुभव कर रहे हैं ? जान रहे हैं। दीवालका अनुभव (परिणमन) दीवाल को हो रहा है, मुझमें मेरा अनुभव चल रहा है, हर जगह बुरा बनो, अच्छा बनो, मैं अपने ज्ञानका ही परिणमन करता हूं, अन्य कुछ नहीं करता। इसी प्रकार कर्मभी जो कुछ बेचारा जानता नहीं उसका उदय पाकर जीवमें सँकल्प विकल्प हलन चलन हो रहा है तो भी कर्ममें जीवका हलचल व्याप्य नहीं है। तो जब एक दूसरेमें समाया ही नहीं, दोनोंमें अत्यन्त भेद है, तो कर्ता कर्म की बात तो रही नहीं।

५०४—अज्ञानेत्र कर्तृकर्म बुद्धिके विनाश होनेपर संकटोंका उद्यम—

यह जीव अज्ञानसे ही कर्ता कर्मकी बुद्धिकर रहा। सारा झगड़ा कर्तृत्व बुद्धिका है। देखो किसी पुरुषने एक धर्मशाला बनवा दी या कोई अन्य चीज प्याऊ वगैरह लोगोंके उपकारके लिए बनवा दी और जनता उसके सत्कारमें कोई समारोह करे तो लोग व्याख्यान दे जायेंगे पर जिसने उपकार किया, जिसने वह चीज बनवाया उससे लोग अन्तमें कहें कि भैया अब आप भी कुछ कहो—तो उसके मुखसे से शब्द न निकल सकेंगे कि भैया हमने आप सब लोगोंका दुःख दूर करनेके लिए यह धर्मशाला या यह अमुक चीज बनवा दिया है। क्यों नहीं ऐसा बोलेगा ? इसमें तो कर्तृत्वका भाव बसा है, अहंकारका भाव बसा है और वह अपराध है वह तो यही बोलेगा कि भैया आप सब का भाग्य था सो हमारे द्वारा यह काम हो गया। जहाँ कर्तृत्वका भाव होता है वहाँ उन शब्दोंमें अपराध समझा जाता। और अपराध की बात कोई जनतामें बोल नहीं सकता। कोई चोरीकर आये, या कुशील

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कर आये तो क्या वह जनताके बीच कह सकता कि हमने ऐसा काम किया ? नहीं कह सकता। जो अपराधकी बात है वह जनसमूहमें नहीं कही जा सकती। तो कोई यह नहीं कह पाता कि मैने यह काम किया वह तो यही कहेगा कि आप लोगोंकी कृपासे यह काम बन गया। तो यह मोटी वात भी इस बातको जाहिर करती कि किसी पर पदार्थके साथ कर्तृत्व बुद्धि रखना अपराध है। तो यह कर्तृत्व बुद्धि कब मिटती है ? जब कि अन्दरमें ये विज्ञानकी किरणें प्रकट होती है, जब अंतः निज सहज स्वाभावका बोध होता है। पदार्थके सम्बंधमें परिचय होता है। तो जैसे ही ज्ञान सही जगा- दो पदार्थों में दो जगह देखा तो यह हुआ ऐसा एक काठको करौतसे जैसे काट दिया उसके टुकड़े हो गए. ऐसे ही जो अज्ञानमें रह रहा था कर्ता कर्मभावमें सत्य ज्ञानमें उसमें प्रज्ञाकी करोंत डाल दी' और उन दोनोका सत्त्व ज्ञानमें अलग अलग कर दिया कि इसका तो परस्परमें अत्यन्ताभाव है यह न इसे कर पाता न उसे कर पाता। निमित्तनैमित्तिक योगमें घटना हो जाय, मगर एक द्रव्य दूसरे द्रव्यरूप परिणमता नहीं। इस जाननका फल हमें क्या लूटना चाहिए ? इस मोहको ध्वस्त कर देना चाहिए। एकका दूसरा कुछ नहीं, मेरा दूसरा कुछ नहीं, मेरा मात्र यह मैं ज्ञानमात्र तत्त्व हूं ऐसा अपने अंतस्तत्त्वको अंगीकार करें, स्वीकार करें इसीमें ही तृप्त हों, इसीमें ही अपने ज्ञानको डुबा दें बस कल्याण हो गया, मोक्ष मार्ग हो जायगा और नियमसे निकट कालमें मुक्ति होगी।

यः परिणमति स कर्ता सः परिणामो भवेत्तुतत्कर्म,

या परिणतिः क्रिया सा त्रयमपि भिन्न न वस्तुतया ।। ५१ ।।

५०५—कर्ता कर्म क्रियाकी अभिन्न वस्तुताका दृष्टान्त द्वारा समर्थन—

बात यह विचारी जा रही है कि कोई भी पदार्थ करता किसे है ? और किस क्रियाके द्वारा करता है। तो यहाँ यह बात समझना चाहिए कि निश्चयसे वास्तवमें जो बने उस बनावको वही करता है। व्यवहारसे उस बनावमें जो निमित्त हो वह कर्ता है, यह ध्यानमें रखकर यह प्रकरण सुनें। क्या? निश्चयसे कौन कर्ता है ? जिसमें बात बनती है वह कर्ता है, जिसमें कार्य होताहै वह कर्ता है,जो कार्यरूप परिणमता है सो कर्ता है। जैसे घड़ा बनाया गया मिट्टीका। कुम्हारने बनाया ऐसा व्यवहारमें कहते हैं। तो वहाँ काम क्या हुआ ? घड़ा। वह काम किसमें हुआ ? घड़ामें। घड़ेका कर्ता कौन ? जिसमें बना ही वह कर्ता। जिसमें बना हो बह कर्ता, जो बन गया हो वह कर्म। घड़ेका रूप जो हो सो कर्ता अब आप जान लीजिए कि निश्चयसे घड़ेका कर्ता कौन है? तो घड़ेका कर्ता है मिट्टी, और कर्म क्या हुआ ? घड़ा और किस क्रियाके द्वारा किया गया ? तीसरी बात यह समझना है, मिट्टीने घड़ा बनाया, यह निश्चय दृष्टिसे हो रहा है सब। मिट्टीका घड़ा बनाया तो मिट्टीने कौनसी क्रिया की कि जिससे घड़ा बन गया ? क्रिया किए बिना तो काम तो नहीं बनता। तो मिट्टी ने कौनसी क्रिया की कि घड़ा बन गया ? सो भी समझमें आ रहा होगा कि मिट्टीका फैलाव क्या, विस्तार क्या ? अब इस तरहसे मिट्टीने अपनेमें अपना परिणाम किया यों वह घड़ा बना, तो वास्तवमें घड़ेका करने वाला मिट्टी और कर्म हुआ घड़ा और परिणति हुई मिट्टीकी ही परिणति। तो ये तीनों बातें भिन्न-भिन्न तो न रहीं, एक ही चीज रही कर्ता कौन? मिट्टी। कर्म क्या? मिट्टी। परिणति क्या ? मिट्टी की। उस प्रकार वर्तना, ये तीनों बातें जुदी जुदी न रही। मायने अन्य वस्तु में न रहो वही वही रही। ऐसे ही निरखना है आत्मामें कर्ता कर्म क्रिया तीनों भिन्न वस्तु नहीं मात्र जीव रूप है देखो आत्मामें रागद्वेष हुआ।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

रागद्वेष मायने ज्ञानने ऐसा सोचा कि यह बड़ा अच्छा, यह बड़ा खराब, इससे मुझे बड़ा सुख हो रहा, इससे मुझको कष्ट हो रहा। ज्ञानके जो ये विचार परिणाम हैं इनका ही नाम रागद्वेष है ये विकल्प हैं सो कर्म, इनका कर्ता जीव, ऐसी परिणति सो क्रिया। अब देखो ये विचार बन कैसे गए? आत्माका असली काम तो यह था कि वह जानता भर रहे, अपने आपमें जानन मात्र कामको त्याग कर जो ये विकल्प, विचार बने सो कैसे बने? वह कर्म विपाक उसमें झलका। उसका जो प्रतिविम्ब हुआ, उसका जो रंग चढ़ा उस रंगमें ज्ञानका यह रंग बन गया। नहीं तो, ज्ञान तो अपने शुद्ध कामको करता, केवल जाननहार रहता, पर जाननहार मात्र न रह सका और यह उन राग विकल्पोंमें लग गया, यह सब नैमित्तिक बात है, जो केवल जाननहार देखनहार रहेगा, बस जान लिया और अधिक मतलब नहीं, उसे जान लिया देख लिया, इससे आगे मुझे मतलब नहीं, जो ऐसा जानन देखन हार रहे उसे कोई आकुलता नहीं हो सकती, पर यह संसारी प्राणी जानन देखनहार नहीं रह पाता, और उसमें कोई अपनी तरकीब लगाना, विचार बनाना, उसमें व्यग्र होना आदि करता रहता है, केवल जानन देखनहार तो भगवान हैं, जिनकी मूर्ति में भी हम बड़ा आदर भाव रखते हैं, जो ज्ञाता दृष्टा मात्र रहता उसको अलौकिक लाभ होता, अपूर्व शान्तिका लाभ होता है।

५०७ धर्ममें कर्त्तृत्व तत्त्वका आलोकन—

और भी निरखिये धर्म कुछ कर रहे, धर्मपाल रहे, उस धर्ममें और क्या किया जाना है, कोई काम होता तो उसमें बात तो मालुम होती है कि इसमें यह किया जाना है। आप तो यह बतलावो—धर्ममें और क्या किया जाना है? मन्दिर आए तो क्या करना? किसलिए आए? स्वाध्याय करते, धर्म करते तो किसलिए करते? धर्ममें करना क्या है सो तो बताओ? द्रव्य चढ़ाना, हाथ हिलाना यह करना है क्या? इतना मात्र करनेके लिए नहीं है। यह तो एक साधन है कि हमारा इतनी देर तक यहाँ ठहरना बन जाय। धर्मके लिए क्या करना? धर्मके लिए यह करना, ऐसा ज्ञान जगाना, भगवानके स्वरूपका ध्यान रखना जिससे कि हमारी यह परिणति बन जाय कि हम केवल ज्ञाता दृष्टा रहेंगे, हम किसी बातमें दखल न देंगे, मायने विकल्प न करेंगे, आस्था न बिगाड़ेंगे, व्यग्र न होंगे, इष्ट अनिष्टकी बुद्धि न करेंगे। केवल ज्ञाता दृष्टा रहना है, बस यह करना है धर्ममें।

५०७—परमात्मतत्व चिन्तनकी सीख पाये हुए सेठकी एक घटनाका दृष्टान्त—

एक ऐसा छोटा कथानक है कि एक सेठ जी से किसी मुनि महाराजने कहा कि क्या तुम्हारे कुछ नियम है? तो सेठने कहा—महाराज हमारे तो कुछ नियम नहीं है।...अच्छा तो क्या देव दर्शनका नियम ले सकते?...महाराज हमारे घरसे मन्दिर बहुत दूर है, हम यह नियम तो नही ले सकते? तो क्या कोई नियम लेना चाहते?...हां महाराज लेना तो चाहते कोई नियम, पर जो बहुत आसान हो वह नियम दीजिए।...अच्छा तो बताओ कि तुम्हारे घरके ठीक सामने पासमें क्या पड़ता है?...एक कुम्हार का मकान। ...वहाँ तुमको सबसे पहले सबेरे सबेरे क्या चीज दिखती?....महाराज हमें तो हमारे द्वारके चबूतरेसे उस कुम्हारके झोंटे का चाँद दिखता है। ...अच्छा तो तुम प्रतिदिन उस झोंटे के चाँदका दर्शन करके भोजन किया करो, यह नियम निभा लोगे ना?... हाँ महाराज यह नियम तो निभा लेंगे। ...अच्छा तो ठीक है, इस नियम को निभाना। अब वह सेठ था अपने नियमका पक्का, प्रतिदिन उस झोंटेके चाँदका दर्शन करके नास्ता, पानी, भोजन आदि करता था। एक दिन क्या हुआ कि वह कुम्हार मिट्टी लाने के लिए जरा जल्दी ही झोंटा लेकर खानमें चला गया। अब आया सेठ के

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

नास्ता पानीका समय, सो अपनी मकानकी छतसे रोजकी भाँति देखा, झोंटा न था, कुम्हारके घर जाकर पता लगाया कि झोंटा कहां गया ? तो कुम्हारकी स्त्री ने बताया कि झोंटा तो अमुक जगहकी खानसे मिट्टी लानेके लिए ले गए हैं। तो वह सेठ वहाँ पहुंचा उसी समय वहां क्या घटना घटीकि कुम्हार जब मिट्टी खोद रहा था खानमें, तो उसे मिला अर्सफियोंसे भरा हंडा। वह खड़े होकर देखने लगा कि कहीं कोई देख तो नहीं रहा। अगर किसीने देख लिया और राजासे कह दिया तो ये अर्सफियाँ छिन जायेंगी। सो क्या देखा कि वह सेठ खानके निकट ही खड़ा हुआ है और समझ गया कि इसने तो देख लिया, यह राजासे जरूर कह देगा। इधर सेठको झोंटेका चांदभी दिख गया और वापिस लौट पड़ा। अब कुम्हार बुलाता है—अरे सेठजी सुनो तो सही। तो सेठ बोला—बस देख लिया। ....अरे क्या देख लिया ? यहाँ आवो तो सही।...बस देख लिया।...सेठ का तो कहने का मतलब था कि झोंटे का चाँद देख लिया पर कुम्हारने समझा कि अर्सफियोंसे भरा हंडा देख लिया। जब सेठ घर पहुँचा तो पीछे से वह कुम्हार आधी अर्सफियाँ भी लेकर पहुंचा और कहा कि देखो-ये आधी अर्सफियाँ आप ले लो आधी हमने ले लिया। आपने जो देखा था वह सब सही था। सेठको उस समय बड़ा आश्चर्य हुआ। खैर कुम्हार तो घर चला गया। इधर सेठने सोचा कि देखो एक झोंटेके चाँदका नियम लेनेसे तो ये अर्सफियाँ मिलीं, यदि मुनिराजके अनुसार देव दर्शनका नियम लेता तो न जाने क्यासे क्या लाभ मिलता ? सो वह झटसे पहुंचा उन्हीं मुनिराजके पास और कहा—महाराज हमें देव दर्शनका नियम दे दीजिए। आखिर मुनिमहाराजने आत्मा व प्रभु का स्वरूप बताते हुए उसे देव दर्शनका नियम दिया, सेठने आत्माके स्वरूपमें, भगवानके स्वरूपमें अपना चित्त लगाया, उस प्रकारका ध्यान बनाया और एक अलौकिक शान्ति पाया। तो मतलब यह है कि क्या करना है धर्ममें ? बस यह करना, आपको देखना कि मैं ज्ञान मात्र हूं, ज्ञानके सिवाय मेरा कोई स्वरूप नहीं है, और मैं इस ज्ञानको ही करता रहता हूँ।

५०८—जीवमें निश्चयसे कर्ता कर्म क्रियाकी अभिन्नवस्तुताका कथन—

भैया ! एक सेकेण्डभी तो ऐसा नहीं गुजरता कि जब मैं ज्ञानका काम न करता होऊँ। जब मैं गुस्साकर रहा हूँ तो भी मैं ज्ञानका ही काम कर रहा कि नहीं ? कर रहा। अगर ज्ञानका काम बिल्कुल बन्द हो जाय तो गुस्सा हो ही नहीं सकती। गुस्सा भी तो इस ज्ञानसे मिलकर चल रही है। तो घमंड हो, मायाचार हो, लोभ हो, ज्ञानका काम निरन्तर है, कषाय तो बदलती है—अभी क्रोध था, अब नहीं है. मगर ज्ञान तो अपना काम निरंतर कर रहा है। मैं तो ज्ञान मात्र हूँ, ज्ञानको ही करता हूँ और ज्ञान क्रिया के द्वारा ही करता रहता हूँ। ये तीनों एक हैं, भिन्न-भिन्न नहीं है। जैसे एक मोटा उदाहरण ले लो, कोई एक साँप है, वह लम्बा लम्बा चल रहा था, अब एक जगह वह कुण्डली बनाकर बैठ गया, जैसा कि पुस्तकोंमें फोटो आता है, बोलो साँपने क्या किया उस समय ? कुण्डली बनाया, और साँपने किस चीजके द्वारा कुण्डली बनाया किस क्रियाके द्वारा कुण्डली बनाया ? अपने ही शरीरमें, अपने ही मोड़ क्रियाके द्वारा कुण्डली बनाया, तो साँप, कुण्डली और कुण्डली बनानेकी क्रिया, ये तीन चीजें सांपसे जुदी हैं क्या ? कुण्डली है तो सांप रूप है और जिस क्रियाके द्वारा कुण्डली बनी वह भी सांप रूप है, तो सांप की कुण्डली के कार्यमें क्रिया, कर्ता, कर्म ये तीनों जुदे तो न रहे वास्तवमें, निश्चयसे ही वस्तुका निगाह हुआ करता है, वहां संयोग नहीं देखा जाता। घटना नहीं तकी जाती, पर इसके मायने यह नहीं है कि संयोग असत्य हो, घटना असत्य हो, पर उस ओर दृष्टि नहीं

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हैं, वह गौण चीज है, एक ही द्रव्यको निरखा जा रहा है बहाँ कर्ता, कर्म, क्रिया तीनों एक हैं। भिन्न-भिन्न नहीं हैं।

५०९—जीव और पुद्गलकर्म दोनोंमें अपना अपना कर्तृत्व—

देखो जीव ने राग किया, मायने ज्ञानने ज्ञानको बहुत मोड़ दिया, विचित्र कुण्डली बना लिया, अच्छा है, बुरा है, हितकारी है, अहितकारी है, कष्टदायी है, मेरा है, मेरा नहीं, घृणा है, प्रीति है, इन सब विचारोंको कौनकर रहा है ? ज्ञान ही तो बना रहा है, सो जीव कर्ता है और उसका यह ज्ञान परिणाम कर्म है और उसकी जाननरूप क्रिया है, ये तीनों न्यारे न्यारे नहीं हैं, इसी तरह कर्ममें देखो—जो कर्म पहले बांधे थे और अब उदयमें आये हैं, मायने अब आत्मासे निकल रहे हैं तो ये कर्म विजातीय हैं, स्थितियाँ विरुद्ध स्वभाव वाली है, तो विरुद्ध स्वभाव वाला जब घरमें से निकलता है तो एक बहुत बड़ी चोट, हलचल और खराबी करता हुआ निकलता है। तो कर्म जब उदयमें आ रहे तो कर्ममें कर्मकी हलचल, कर्मका रस, कर्मका अनुभाग ये सब कर्ममें हो रहे हैं। कर्म पौद्गलिक हैं, पुद्गल कहते हैं भौतिक चीजको, जिसमें रूप, रस, गंध, स्पर्श हो, जो मिलकर बड़ा बन जाय तो ऐसा यह पुद्गल कर्म उदयमें आया तो कर्ममें क्या बात बनी ? कर्मरस, कर्मविपाक। तो उसे किसने किया ? पुद्गल कर्म ने किया। क्या किया ? कर्मका परिणामन। और किस क्रियाके द्वारा किया ? उसकर्मकी ही क्रियाके द्वारा वह किया गया।

५१० जीव और कर्ममें कर्तृकर्मत्वके भ्रमका ध्वंस करनेमें शान्ति मार्गका लाभ—

यहाँ दो बातें बतला रहे—जीव और अजीव, ७ तत्त्वोंमें जो मूलमें दो तत्त्व हैं-जीव अजीव याने प्रकरणमें जीव और कर्म, सो जीवका काम, जीवकी क्रिया जीवमें, कर्मका काम, कर्मकी क्रिया कर्ममें। मगर निमित्तनैमित्तिक योग ऐसा अवश्य है कि ऐसी क्रिया करता हुआ कर्म जिस कालमें उपस्थित है, उदयमें है उस कालमें जीव अपने ऐसे ज्ञान विकल्पको करने लगता है, सो परस्परमें निमित्तनैमित्तिक सम्बंध तो है, मगर जीव जीवका ही काम कर पाता और कर्म कर्मका ही काम कर पाता। यहाँ यह बात देखी जा रही है कि ऐसे ही प्रत्येक पदार्थ स्वतंत्र अपने आपमें अपना परिणाम करने वाले हैं, भ्रम मत करो कि मैं बड़ा हूं, मैं छोटा हूं, मैं किस पोजीशनका हूं, मैं मनुष्य हूं,व्यापारी हूं, अमुक हूं, तमुक हूं, यह भ्रम मत रखो, यह तो सब कर्मजाल है और उस कर्मजालको यह अज्ञानी मान लेता अपना जाल, अपनी चीज, बस यहाँ ही भेद विज्ञान जिसके हुआ उसको ही ज्ञानी कहते हैं, देखो—यहांका भेद हुए बिना भीतरका भंडाफोड़ हुए बिना, जो संसारमें अब तक गोरख धंधा भीतर चल रहा है उसका फोड़ हुए बिना भली भाँति यह भी समझमें न आ सकेगा कि जो सब कुछ दिख रहा है यह भी मुझसे भिन्न है, तोतारटंत तो चलेगा-घर मेरा नहीं, शरीर मेरा नहीं, यह तो नष्ट हो जाता है, लेकिन अच्छा, यह मेरा नहीं तो फिर क्या करना ? वह कुछ समझमें न आयेगा। कब तक ? जब तक कि आत्माके सहजस्वरूप का ज्ञान न हो तब तक यह समझमें न आयगा कि घर मेरा नहीं, अच्छा तो घर छोड़ दोगे, कुटुम्ब मेरा नहीं, चलो शहर छोड़ दोगे, कुछ भी छोड़ दो, आखिर करना क्या है ? करना क्या है यह बात जब तक ध्यानमें न आयगी, त्याग हो जाने पर भी तब तक मार्ग न मिलेगा। कब तक ध्यानमें न आयगा कि मुझको क्या करना है और किसमें मेरा समय निकल जायगा, बड़े प्रेमसे, बड़े आनन्दसे वह काम कब तक समझमें न आयगा, जब तक कर्मरस व ज्ञानरस का हमारे जो एक साँझा सा बन रहा, इसकी जब तक टूट न हो और कर्मरस से यह जुदा न बने और अपने ज्ञानस्वभाव की महिमाका भान न हो तब तक ध्यानमें न आयगा कि जगतकी चीजोंको छोड़-छोड़कर भी आखिर हमको करना क्या है ? और

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

मेरा समय गुजर कैसे जायगा ? कितना महत्त्व है सम्यक्त्वके लाभका ? कितना महत्त्व है भीतरमें अपने आपके सहज स्वरूपके परिचयका, जिसके बिना संसारका कष्ट मिट नहीं सकता।

५१२ निरापद निजपदके ध्यानमें कष्टोंकादूरीभवन—

लोग जरा जरा सी बातोंमें दुःखी हो जाते हैं, कहीं नुकशान हो गया तो कष्ट मान रहा, हाय इतने रुपये चले गए, अरे चले गए तो जाने दो, वह चीज क्या है ? न कुछ हैं, वह तो अहित मल है, मेरा इससे कौन सा सम्बंध है ? क्या परवाह ? अच्छा घरमें कोई गुजर गया, अब गुजर गया तो गुजर गया, ऐसा ही होना था, और फिर उससे तुम्हारा क्या सम्बंध था ? तुम्हारा तो केवल ज्ञानस्वरूपसे सम्बंध है, कौन सा कष्ट होता ? दुनियामें कष्ट किसको कहते हैं ? आप कुछ भी न बता सकेंगे। हैं ही नहीं कष्ट, आप कष्ट क्या बतावेंगे ? मान रही सारी दुनिया कष्ट। जितने मनुष्य हैं सब अपनेमें कष्ट का अनुभव कर रहे, उनसे ही पूछो विश्लेषण करके कि आपको क्या कष्ट है ? तो कुछ न बता सकेंगे। बतावेंगे ऊपरी-ऊपरी बातें, पर सही कुछ बयान नहीं कर सकते कि मुझको यह कष्ट है। अजी इसमें हमारे ५० हजार रुपये घट गए, तो भला बतलावो इससे तुम्हारे इस ज्ञानस्वरूप आत्मामें क्या कष्ट आया ? तुम्हारे भीतरमें बताओ क्या कष्ट है ? तुम तो सब ये ऊपरी ऊपरी चीजोंके विकल्पसे कष्ट मान रहे, अजी यह कष्ट है कि उसके ख्याल तो निरन्तर आ रहे हैं, तो भाई यह तो तुम्हारी बेवकूफी सी है, यह तो तुम्हारी अज्ञानता है कि तुम अपनेमें अन्तः प्रकाशमान इस शाश्वत चैतन्य स्वभावको तो निरखते नहीं, और जो मेरा न था, कभी नहीं हो सकता, न है, न होगा और जिसका सम्बन्ध मानकर कष्ट ही हाथ आया है, शान्तिका तो स्वप्न भी नहीं होता, ऐसे अत्यन्त भिन्न बाहरी पदार्थोंमें तुम ध्यान रखे हो तो कष्ट होगा ही। बच्चा अगर एक असम्भव कार्यके लिए हठ कर जाय तो उसको सुखी करने वाला कौन हैं ? एक यहीं की (सहारनपुरकी) तो लोग घटना सुनाते हैं कि कोई बजाजका बालक था और उसके घरके पास एक रईसके घर हाथी था, सो एक बार वह बालक अपने पिताके सामने रोने लगा कि मुझको तो हाथी चाहिए। तो उस बजाजने महावतको कुछ पैसे देकर कहा कि भाई यह हाथी हमारे द्वारपर खड़ा कर दो। महावतने हाथी लाकर बजाजके द्वारपर खड़ा कर दिया। अब बजाजने कहा अपने बालकसे लो बेटा हाथी आ गया। तो फिर बालक बोला—ऐसे नहीं, इसे तो खरीद दो। लो, फिर बजाजने महावतको कुछ पैसे दिया और कहा कि भाई इस हाथीको हमारे बाड़े के अन्दर कर दो। महावतने हाथीको बाड़ेके अन्दर कर दिया। बजाज बोला—लो बेटा यह हाथी खरीद लिया। फिर बालक बोला—य नहीं, इसे तो हमारी जेबमें धर दो। अब भला बताओ यह काम कैसे किया जाय ? और इसपर वह हठ करने लगा तो उसका दुख कौन मिटायेगा। तो ऐसे ही जगतके मोही प्राणी पर पदार्थोंके बारेमें हठकर रहे है और इन पर पदार्थोंपर हमारा अधिकार नहीं, उसकी हठ करते हैं। रही सम्पदाकी बात तो जैसा पुण्य होगा उसके अनुसार सम्पदा भागकर आयगी चारों ओरसे, अगर पुण्य नहीं होगा तो घरमें रखी हुई चीज भी नष्ट हो जायगी। अपने परिणाम शुद्ध बनावें, अच्छे भाव रखें जिससे भविष्य अच्छा बने। बस यही करनेका काम है।

५१३—अध्रुव औपाधिक भावोंसे उपेक्षा करनेमें ही कल्याण—

यहाँ यह ही बात तो देखी जा रही है कि मैं यह हूँ सो मैं ज्ञानको ही कर सकने वाला हूँ। इसके बाद मेरी और कोई करतूत नहीं। हमको ज्ञान मात्र अपनेमें परखकर तृप्त होना चाहिए। बाहरी विभूतिको देखकर तृप्त होनेकी आदत इतनी बड़ी चोट पैदा करेगी कि जिसका झेलना कठिन

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हो जायगा, इस भवमें नहीं तो अगले भवमें। इस कारण सच्चा सीधा सद्गृहस्थ वह है जो इन पाये हुए चेतन, अचेतन, समागमोंमें न हर्ष माने न खेद माने, ज्ञाता द्रष्टा रहे। बाहर मेरा कुछ नहीं, मैं कुछ नहीं कर रहा इन बाहरी पदार्थोंमें, मैं तो ज्ञान मात्र हूँ, और जानन क्रियाके द्वारा अपने परिणामोंको करता हूँ दूसरे किसी भी पदार्थका मेरे इस काममें कोई दखल नहीं। अब रही बात विभावोंकी, रागद्वेषादिक मलिन परिणामोंकी सो बात यह है कि जैसे कोई मुसाफिर सड़कपर से जा रहा है, दिनमें ४ बजे जा रहा है, वह खूब साफ स्वच्छ सफेद झिलमिल करने वाले कपड़े पहिने जा रहा है, जैसे बहुतसे कपड़े हैं ना-टेरालीन, लाइलोन आदिक। कैसे कपड़े ? टेरालीन, दूकानदारने बहुत टेरा पर भले ग्राहकने ली न, सो बन गया टेरालीन, इतनी खराब चीज है टेरालीन, दूकानदार ने टेरा बहुत, पर ग्राहकने ली न। कदापि उसमें आग लग जाय, तो सारे शरीरमें वह कपड़ा चिपक जाय और पूरे शरीरको जला दे। लाईलोन— कोई स्त्री हठीली थी वह ले आई अपने घर लाईलोनका कपड़ा, तो पुरुष समझाता है उसे कि लाई सो लाई पर अब लो न, यह कपड़ा बढ़िया नहीं है। तो ऐसे ही झिलमिल चमकीले कपड़े पहने हुए कोई मुसाफिर सड़कसे जा रहा था, उसपर वृक्षोंकी छाया भी पड़ती जाती थी तो अब उस छायामें उस कपड़ेकी झाँकी देखनेका मिश्रण हो गया। अब दूसरी दूसरी प्रकारसे उसका परिणमन बन गया, झाँकी बन गई, तो ऐसे ही यह जीव कर तो रहा ज्ञानका ही ज्ञान। चलता जा रहा है जानता हुआ अपनी कांतिमें बेधड़क बढ़ता ही चला जा रहा है जीव, मगर कर्म वृक्षकी जो छाया पड़ती जा रही रास्तेमें उस छायाके पड़नेसे इस ज्ञानकी झाँकीपर कर्मरसरूप विचित्र अन्य अन्य भाव बनते जा रहे हैं, मगर वहाँ चलने वाला तो ज्ञान है, जानने वाला तो ज्ञान ही है, सो निरखो,मैं अपनेमें अपना परिणाम ही करता हूँ।

५१४ जीव और कर्मकी दशामें परस्पर निमित्तनैमित्तिक भाव होनेपर भी जीव व कर्ममें निश्चयसे परस्पर कर्तृकर्मत्वका अभाव—

यद्यपि जीवके विभावोंमें कर्मका उदय निमित्त है और कर्मोदयका निमित्त हुए बिना जीवमें विभाव हो नहीं सकते और इसी प्रकार कर्मका जो बंधन है, स्थिति अनुभाग आदिक है सो वे जीवके रागद्वेषका निमित्त पाकर हुये। निमित्त पाये बिना कर्मका बंधन भी नहीं बनता, फिर भी कर्मका काम कर्ममें है, जीवका काम जीवमें है, कर्म अपनी परिणतिसे कर्मरूप चल रहे हैं, जीव अपनी परिणतिसे अपने संकल्प विकल्प रूप अथवा सिद्ध हों तो अनन्त ज्ञानादिक चतुष्टय रूप चल रहे हैं। यहां यह निरखना है कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य रूप नहीं बनता, दूसरे द्रव्यकी दशारूप नहीं बनता, प्रत्येक द्रव्यमें अपनी ही क्रियासे अपना ही कर्म अपनी ही अवस्था बनती है, और इस तरह प्रत्येक पदार्थ उत्पादव्यय ध्रौव्य युक्त है, अपनेमें नई दशा बनाना, पुरानी दशा विलीन कर देना और खुदका निरन्तर बना रहना, जो भी देखो सबमें ये तीन बातें पायी जातीं एक साथ, उसमें नई दशा बनती, पुरानी दशा विलीन हो जाती, जैसे यह अंगुली टेढ़ी बन जानेपर टेढ़ी दशा बन गई, सीधी दशा मिट गई, अंगुली वही की वही है, जीव मनुष्यसे देव बन गया, देव दशा बन गई, मनुष्य दशा बिलीन हो गई, जीव वही का वही है, प्रत्येक पदार्थ इस प्रकारसे उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त हैं, अपनेमें अपना परिणाम करते हुए सब रहते हैं, ऐसा जानकर पर पदार्थोंमें रति और अज्ञान मूलसे छोड़ देना चाहिए।

एकः परिणमति सदा, परिणामो जायते सदैकस्य।
एकस्य परिणतिः स्यादनेकमप्येकमेव यतः "५२"

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

५१५ प्रत्येक पदार्थका परिणमन उसी अकेलेका परिणमन—

प्रकरणमें यह बताया जा रहा है कि जीव और कर्मका परस्पर निमित्तनैमित्तिक योग है अर्थात् कर्मके उदयका निमित्त पाकर जीवमें संकल्प विकल्प रूपसे, ज्ञानविपरिणमन रूपसे रागद्वेषादिक परिणाम होते हैं और जीवके इन रागद्वेषादि परिणामोंका निमित्त पाकर पौद्गलिक कार्माण वर्गणामें कर्मत्व परिणमन होता है, इतनेपर भी कर्म अकेला परिणमता है, कर्म जीवकी कोई बात साथ लेकर नहीं परिणमता है, जीव भी अकेला परिणमता है, वह कर्मकी कोई चीज साथ लेकर नहीं परिणमता । जैसे मानो दो आदमी एक साथ गा रहे हैं स्वरमें स्वर मिलाकर, फिर भी यह बताओ कि एक दूसरेका कुछ लेकर गा रहा है या वह अकेला ही गा रहा है, दोनों अकेले ही अकेले गा रहे, पर हाँ परस्परमें साश्रय निमित्तनैमित्तिक योग है, उसके लयको निमित्त पाकर वह स्वर मिलाता है, उसमें वह स्वर मिलाता है, पर परिणमना सबका अकेले होता है । कोई समय आता है कि घरके सब दुःखी हो जाते हैं, कोई घटना घटी, घरके सब लोग रो रहे हैं, दुःखी हो रहे हैं, पर यह बतलावो कोई किसी दूसरेका दुःख लेकर रो रहा है या हर एक कोई अपने आपके अकेलेके दुःखसे रोते हैं, इसी तरह सुखी होते हैं तो सब अपने अकेले अकेलेमें सुखी होते हैं । कोई घटना हुई बड़े हर्षकी तो सब सुखी हो रहे हैं, पर यह बतलावो कि कोई किसी दूसरेका परिणमन साथ लेकर सुखी हो रहा या केवल अपने सुखसे सुखी हो रहा है ? कितना भी कहीं कुछ हो रहा हो, प्रत्येक जीव केवल अपनी परिणतिसे परिणम रहा है, दूसरेकी परिणति को रंच भी ग्रहण नहीं करता, यही बात जीव और कर्ममें है, दोनों एक दूसरेका निमित्त पाकर परिणम रहे हैं, लेकिन दोनों ही अपनेमें अकेले अकेलेमें अकेले ही परिणमते हैं, कोई किसी दूसरेको साथ लेकर नहीं परिणमता । किसीके घर कोई बुरी घटना हुई, कोई गुजर गया तो उसके फेरेमें बाहरसे रिस्तेदार आते हैं और उसके घर आते ही वे उसके घर रोने लगते हैं । सो लोग तो यों कहते हैं कि देखो एकने दूसरोंको रुला दिया, ये दूसरेके दुःखमें दुःखी हो रहे हैं, ऐसा लोग बोलते हैं । हम आपके दुःखमें तो दुःखी हैं, आपके सुखमें सुखी हैं । पर यह बात बिल्कुल झूठ है, ऐसा त्रिकाल हो ही नहीं सकता कि मैं आपके दुःखमें दुःखी हो जाऊं और आपके सुखमें सुखी हो जाऊं । हाँ यह हो सकता है कि आपके दुःखको निरखकर मैं अपनेमें एक नया दुःख बनाकर दुःखी हो जाता हूँ । यह तो कल्पित प्रेमका सम्बन्ध हो जायगा, मगर यह कहना कि हम तो आपके दुःखसे दुःखी हो रहे, यह बात यथार्थ नहीं है । आपके दुःखके बारेमें विचार कर करके अपने एक अलग दुःखसे दुःखी हो रहा हूँ, तथ्य यह है वहाँ हर जगह ।

५१६—दृष्टान्तपूर्वक एकके ही परिणमनकी सिद्धि—

जगतमें जितने भी पदार्थ हैं वे सब पदार्थ अपनेमें अकेलेमें अपना परिणमन करते हैं, यहाँ कोई किसी दूसरेका परिणमन नहीं करता यह ही बात जीव व कर्ममें तकी जा रही है । कर्म प्रकृति, प्रदेश, स्थिति, अनुभाग ऐसे बंधनके रूपसे परिणम गए तो कर्म अपनेमें ही इस रूप परिणमे, जीवकी कोई बात लेकर नहीं परिणमे, जीव भी अपनेमें ही परिणमा, कर्मकी बात लेकर नहीं परिणमा, अच्छा, एक दृष्टान्त लो- समुद्र है, हवा चली बड़ी तेज और समुद्रमें लहरें उठने लगीं, देखो हवाके चलनेका निमित्त पाकर समुद्रमें लहरें उठीं मगर यह बतलावो कि लहरों रूप अकेला समुद्र बना या हवा और समुद्र दोनों मिलकर लहर बन गईं दोनों मिलकर लहर नहीं बनीं । हवाका काम पानी रूप बनता नहीं । हवाका काम बहना है । और उस बहनेका निमित्त पाकर यह समुद्र स्वयं लहर रूप परिणम गया, पर लहर रूप केवल समुद्र परिणमा, दूसरा नहीं परिणमा । और, जब हवा चलना बंद हो गया तो हवाके बंद होनेका

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

निमित्त पाकर समुद्रकी लहरें मिटीं, समुद्र निस्तरंग हो गया, गम्भीर बन गया। तो क्या हवा और समुद्र दोनों मिलकर गम्भीर बने या खाली समुद्र गम्भीर बना। समुद्र ही बना गम्भीर। हर जगह देखो अग्निका सँयोग पाकर बटलोहीमें खिचड़ी पकी सो जो वे दाल चावल पके तो क्या आगको साथमें लेकर पके या वे अपने आपमें अकेले पके? अग्नि चावल दोनों मिलकर नहीं पके, केवल चावल पके हैं। निमित्त अवश्य आग है। तो जैसे हम यह सब जगह निर्णय कर सकते ऐसे ही जीव और कर्मका निर्णय करें कि यहाँ भी जीव अकेला ही शुभ अशुभ भावरूप परिणम रहा है, कर्मको साथ लेकर नहीं परिणमा। देखो कितनी गम्भीर अन्दरकी बात है। वे रागद्वेष क्या हैं? ज्ञानके उस तरहके विकल्प। सो ये विकल्प तब बने जब कर्मरसका रंग इसमें खुला, तिस पर भी जीव जो परिणमा सो जीवमें ही परिणमा, कर्म जो परिणमा सो कर्ममें ही परिणमा। अच्छा, अमृतधारा बनती है—कपूर पिपरमेन्ट और अजवाइनके फूल, उन तीनोंको बराबर लेकर एक शीशीमें रख दीजिए, लो जल बन गया। जल बन गए वे तीनों ही, मगर हर एकके परमाणु, हर एकके स्कंध खुद अपने आपमें परिणमे, दूसरेको साथ लेकर नहीं परिणमे। आप कितनी ही, कठिनसे कठिन घटना सामने रखलें, प्रत्येक घटनामें तथ्य यही है कि वह अपने में अकेला ही परिणमता दूसरेको साथ लेकर नहीं परिणमता।

५१७—अपने आपमें अपने क्रियाके प्रयोजनकी पूर्ति—

जो ज्ञानी है जो दूसरे जीवोंपर दया करते वे किसी दूसरेपर एहसान नहीं करते, किन्तु वे अपने आपपर ही दया करते। मानलो किसी भिखारीको भूखा देखकर आपने उसे भोजन कराया तो कहीं आपने उस भिखारीका दुःख नहीं दूर किया, किन्तु आपने जो उसके प्रति यह ख्याल बनाया कि बेचारा भूखा है, उसको भूखसे चिल्लाता देखकर आपके हृदयमें जो एक वेदना हुई उस वेदनाको शान्त करनेके लिए उसे भोजन कराया। आप खूब विचार करलो—है ना ऐसा ही। मेरा दुःख दूर होता है मेरी ही क्रियासे, मेरे ही ज्ञानसे। मैंने तो अपना दुःख दूर करनेके लिए अपनी उस प्रकारकी चेष्टा की। एक घटना है कि एक जज साहब अपनी कारसे कचेहरी जा रहे थे, शायद जैन होंगे, तो रास्तेमें क्या देखा कि सड़कके पास एक बड़े गड्ढेमें एक सुअर कीचड़में फस गया था, सो वह बड़े जोर जोर से चिल्ला रहा था। वह दृश्य देखकर जज साहबको सुअरपर दया आयी, अपनी कार खड़ी की और सुअरको अपने हाथों कीचड़से बाहर निकाल दिया। यद्यपि उसके साथ सिपाही था, उसने मना किया, कहा कि आप रहने दो, हम निकाले देते हैं, पर जज साहबने न माना और स्वयं ही निकाला। उस प्रकरणमें उनके वस्त्र कीचड़से दग गए, वे उसी हालतमें बिना कपड़े बदले कचेहरी पहुचे। सभी लोग जज साहबको उस हालतमें देखकर दंग रह गए और पूछ बैठे कि आज जज साहबके वस्त्र कीचड़से कैसे भिड़े हैं? तो सिपाहीने सारा हाल कह सुनाया। सभी लोगोंने जज साहबको धन्य कहा, और यही कहा कि अरे जज साहब तो बड़े दयालु हैं, उन्होंने सुअरपर कितनी दया की? तो जज साहब बोले-भाई मैंने सुअरपर कोई दया नहीं की। मैंने तो अपने आपपर दया की।...कैसे?...देखो—हम यदि उसे निकालकर न आते तो यहाँ हमारा चित्त उस सुअरकी तड़फनकी ओर लगा रहता, फिर मैं यहाँ कचेहरीका कोई काम कैसे कर सकता था? यहाँ पर भी मेरे चितमें वेदना रहती। तो मैंने अपनी वेदनाको दूर करनेके लिए सुअरको निकाला। भैया, सभी प्रवृत्तियोंमें आप यही सिद्धान्त पावेंगे कि जो कोई भी जो कुछ करता है वह अपनी शान्तिके लिये करता है। और, निश्चयतः कोई करता भी क्या अपनेमें उपरक्त या अनुपरक्त ज्ञान क्रियाको करता है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

५१८—परकर्तृत्वका भ्रम छोड़कर याथात्म्यका निश्चय करनेका अनुरोध—

भैया ! यह भ्रम छोड़ दीजिए कि घरमें ये मुझसे बहुत प्रीति रखते, या ये मुझसे बड़ा द्वेष करते ? अरे न कोई किसीसे प्रेम करता न कोई किसीसे द्वेष करता, कर ही नहीं सकता ।...अच्छा तो फिर क्या कर रहे ? हर एक कोई जिसकी जैसी योग्यता है, जैसी गम्भीरता है, जैसा वात्सल्य है उस अपने ही वात्सल्यके कारण; अनेक प्रकारके विचारोंके कारण यह प्रीतिका व्यवहार करते हैं । अच्छा, धर्ममार्गमें श्रावक गुरुजनोंसे अनुराग रखते और गुरुजन भी श्रावकोंसे अनुराग रखते, इसमें भी क्या कारण है ? इसमें भी यही कारण है, लेकिन फर्क है कि यहाँ मोक्षमार्ग और धर्मका ख्याल है साथमें, इस कारणसे व्यवहार चलता है, पर वास्तविकता यह है कि प्रत्येक जीव अपने आपके कारण से दुःखी है, अपनेसे सुखी है, अपने भावोंका कर्ता है, अपने आपमें अकेला परिणमन करता है । कोई किसी दूसरेको साथ लेकर परिणमन नहीं करता । यहाँ आचार्य देव कह रहे हैं कि सदा कोई भी वस्तु अकेले ही परिणमती है । कोई वस्तु किसी दूसरेको साथ लेकर नहीं परिणमती, याने दो मिलकर नहीं परिणमती । तो जैसे एक दृष्टान्तमें समझा होगा कि जब तेज हवा चली और समुद्रमें लहरें उठीं, समुद्र रूप हुआ तो यह बतलावो कि उस लहरका करने वाला कौन ? निश्चय दृष्टिसे उत्तर आता है—एकका एकमें एकको देखना तो निश्चयमें लहरोंका करने वाला कौन ? समुद्र । क्योंकि जो लहरों रूप परिणमे वही करने वाला निश्चयसे कहा जाता है । और, दूसरी बात भी देखिये—कि लहर समायी है समुद्रमें । समुद्रने लहरको समा लिया तो व्याप्य व्यापक भाव समुद्रके साथ है, एकमेकपना लहरका समुद्रके साथ है हवाके साथ नहीं, इस कारण लहरोंका करने वाला केवल समुद्र ही नजर आया । इन लहरोंको इस समुद्रने किया । निमित्त अवश्य है वह हवा, मगर निश्चयसे कर्तृत्व लहरका समुद्रमें है उसी प्रकार अपने आपके बारेमें ऐसी नजर डालें कि जो रागद्वेष रूप परिणम रहा हो सो यह अकेला ही रागद्वेष रूप परिणम रहा ।

५१९—वस्तुस्वरूपके परिचयसे सन्मार्गकी स्पष्टता—

वस्तुस्वरूपके परिचयसे हितमार्गकी अनेक बातें स्पष्ट होती हैं । मेरा शरण मेरा यह परमात्म स्वरूप है, अपने आप ही अपने आपकी रक्षा करने वाला है । कोई दूसरेका साथी नहीं है । अचानक मानो कोई उपद्रव आ जाय, छत गिर जाय, या यहीं कोई सांप निकल बैठे या कोई बड़ी घटना घट जाय तो सब अकेले अकेले अपनी अपनी जान लेकर भागेंगे ? हाँ अगर थोड़ी गुञ्जाइस हुई तो सोचेंगे कि लावो अपने बच्चेको भी उठालें और यदि गुञ्जाइस न हुई तो अपने अपने प्राण लेकर भागेंगे । तो स्थिति देख लो—वास्तविकता क्या है, और यह तो वस्तुकी सीमा है, इसका बुरा न मानना चाहिए । यह तो द्रव्यका स्वरूप है कि प्रत्येक द्रव्य अकेला ही परिणमता है । कोई किसी दूसरेको साथ लेकर नहीं परिणमता ; एक भजन है जिसकी टेक है—चिद्रूप हमारा, इसका ही सहारा । मैं चैतन्य स्वरूप हूं, मेरा यही सर्वस्व है और मेरे को इसका ही सहारा है । और इसका अन्तरा है "वस्तुस्वरूप ही नहीं कि परसे कुछ मिले । खुदगर्ज भी किसको कहें सब सत्त्वके भले" यही स्थिति है । वस्तुका स्वरूप ही नहीं ऐसा कि किसी पर पदार्थसे किसी दूसरेमें कुछ मिल जाय, कोई गुण आये, कोई पर्याय आये ।

५२०—एकका स्वयंके एकमें ही परिणमनकी संभवतापर कुछ दृष्टान्त—

व्यवहारमें कहते हैं ऐसा कि देखो दीपका प्रभाव, सारे कमरेको प्रकाशित कर देता है, पर तथ्य क्या है ? दीपक जो एक अकेला है, जो लौ है उसका नाम दीपक है । दीपकका गुण, दीपकका

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

परिणमन, दीपकका प्रभाव दीपकके प्रदेशोंमें ही रहेगा। उसके बाहर न जायगा। कितना बड़ा है दीपक ? देखो जितनी लौ जल रही उतना बड़ा है दीपक। दीपकका फिर बाहर प्रकाश कैसे बन गया ? जो प्रकाशमें आये हैं पदार्थ उनकी ही ऐसी कला है कि वे अपनी कलासे दीपकका सांनिध्य पाकर अंधेरी अवस्थाको छोड़कर प्रकाश अवस्थामें आये तो अपनेमें अकेले ही परिणम करके आये। कोई किसी दूसरेको साथ लेकर नहीं परिणमता। भैया ? हर जगह ऐसी बात निरखते जाइये। यह तो एक आश्रयभूतकी बात कह रहे हैं। किसीका गाली गलौज सुनकर मुझे क्रोध आ गया तो यह बताओ कि क्रोधरूप अकेला मैं ही बना या गालीवाला और मैं दोनों ही मिलकर मैं अपने क्रोधरूप बना। गाली देने वाला अपनेमें क्रोधरूप बना, सुनने वाला अपनेमें क्रोध रूप बना। कोई किसी दूसरेका परिणमन साथ लेकर नहीं बनता। कहते हैं कि भाई महिलाने रोटी बनायी, बनायी रोटो, पर यह बतलावो कि रोटी जो बनी, रोटीका जो परिणमन हुआ सो आटा ही अकेला रोटी रूप बना या आटा और महिला दोनों मिलकर रोटी रूप बने ? सीधी बात है। कोई यह न कहेगा कि महिला और आटा ये दो मिलकर, गुँथकर रोटी बने। महिला अपनेमें है, रोटी आटेमें है, तो रोटी रूप गोल होकर आटा ही परिणमा। महिला कितना ही हाथ हिलाये मगर वह रोटी रूप नहीं परिणम सकती। जगतमें प्रत्येक पदार्थ केवल अकेला ही अकेला परिणमन करता है, अपनी परिणति करता है। कोई किसी दूसरेका परिणमन नहीं कर पाता। निमित्त अवश्य है, परन्तु परिणमन एकमें उसी एकका है।

५२१ अपनी भूलसे हुए क्लेशानुभवका परको कर्ता न माननेसे शान्तिमार्गका लाभ—

एकका एकमें ही कर्तृत्वकी बात सुनकर हमें क्या शिक्षा लेना चाहिए कि जब हम दुःखी होते हैं तो अपने एक अकेले परिणमनसे ही दुःखी होते हैं, किसी दूसरेकी वजहसे दुःखी नहीं होते। और, साथ ही यह भी जानें कि जो दुःख रूप परिणमन मुझमें हो रहा वह केवल मेरे अपराधसे हो रहा है, दूसरेके अपराधसे नहीं, जो भी दुःखी होता है, कभी कोई मुनि दुःखी हुआ तो वह अपने ही अपराधसे, राजा दुःखी हुआ तो वह अपने अपराधसे, व्यवहारसे लगता है ऐसा कि देखो मुझको तो इसने दुःखी कर डाला और कहते ही हैं लोग कि मुझको तो इस बच्चेने दुःखी कर डाला, मुझको अमुक ने हैरान कर दिया। किसीको कोई दूसरा हैरान नहीं कर सकता। यह त्रिकाल सत्य है कि जो हैरान हो रहा है, जो दुःखी हो रहा वह अपने ही अपराधसे हो रहा, दूसरेके अपराधसे कोई दूसरा दुखी नहीं होता। आप कोई घटना देवें, आप कहेंगे कि मैं तो इस बच्चेका इतना काम करता हूं, इतनी मदद करता हूं, इतना प्यारसे रखता हूं, फिर भी यह देखो ऐसी हरकत करता कि इसने मुझे दुःखी कर डाला, अरे नहीं, उसकी हरकतने दुःखी नहीं किया, किन्तु तुम्हें खुद एक मोह है, राग है, उसे कुछ और तरह देखना चाहा है, ऐसा चले, ऐसा रहे और वहाँ बात वह बन नहीं रही क्योंकि आपका अधिकार कुछ नहीं, प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र है, तो आप अपनेमें अपना विकल्प बनाकर अपनेमें हैरानी कर रहे हैं, दूसरा कोई हैरानी नहीं करता। अच्छा बताओ मुनिराजपर कोई उपसर्ग करता है, मुनिराज बहुत सच्चे, सीधे, ज्ञानी ध्यानी हैं, एक यह ही बात देखो पार्श्वनाथ भगवानपर कमठने उपसर्ग किया और उनके हर भवमें प्राणघात किया, जब हाथी थे तो, और किसी भवमें थे तो, पार्श्वनाथके जीवकी ओरसे कभी कोई विरोधकी बात नहीं आयी। खैर वहाँ दुखी रहा कोई तो क्यों दुःखी रहा ? अपने ही अपराधसे। अरे पूर्व जन्ममें पहले जो कर्म कमाया, जिस तरहका बंध बाँधा उस तरहसे दुःखी हुआ, और नहीं तो जब दुःखी होता है कोई मुनि तो कुछ राग आया ना उसको अपनेमें ? यह मुझ पर उपसर्ग कर रहा, कुछ राग आया तो उस

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

रागके कारण यह दुःखी हुआ। जो भी दुःखी होता है वह अपने ही अपराधसे दुःखी होता है, कोई किसी दूसरेको दुःखी नहीं कर सकता।

५२२ परकर्तृत्वका भ्रम निकालनेसे भी बढ़कर अपनेमें सहज चैतन्यस्वरूपके स्वातन्त्र्यका अनुभव लेने का संदेश—

वास्तविकता जानकर सब जीवोंमें उस सहज परमात्मस्वरूपको देखो—सब भगवान हैं, जितने जीव हैं सब भगवान स्वरूप हैं, किसीका अनादर न करना, किसीको तुच्छ न मानना, भले ही कोई जीव आज कीड़ेकी पर्यायमें है, कर्मोंका उदय है, ऐसी स्थिति बन गयी, मगर जो जीव है वह तो उस स्वरूप को लिए हुए है जो प्रभुका स्वरूप है, तो यह ज्ञान, वस्तुकी स्वतंत्रताका ज्ञान, प्रत्येक पदार्थ न्यारा न्यारा अपना अपना सत्त्व रखता है इस प्रकारकी आजादीका बोध, यह जन्म मरणको दूर करेगा। भैया, जितना भी कष्ट है जीवोंको, वह सब मोहका है। मोह नहीं तो कष्टका काम नहीं। जहाँ कष्ट है वहाँ अवश्य ही मोह है, राग है, द्वेष है। जब तक यह मोह है तब तक कष्ट है, कष्टसे अलग होनेकी सबकी भावना रहती है, मुझपर संकट न रहे, मुझपर कष्ट मत रहे, सबके चित्तमें यह भावना रहती है, मगर उस कष्टको मिटानेका उपाय सब उल्टा करते हैं। जिस बातसे कष्ट होता है उसीको कष्टनिवारणका उपाय समझते हैं, ऐसी एक मोहिनी धूल पड़ गई इस जीवकी बुद्धिपर कि जिस चीजसे कष्ट होता है उस हो को कष्ट विनाशक समझते हैं, मोहसे कष्ट होता तो उस कष्टको दूर करनेके लिए बस मोहको ही करते हैं, तो यह उल्टा उपाय है ना? तो सीधा उपाय क्या है? सच्चा ज्ञान प्रकाश चित्तमें लावें तो कष्ट दूर हो जायगा। वह सत्य ज्ञान प्रकाश क्या? वस्तुकी स्वतन्त्रताका बोध। प्रत्येक जीव स्वतन्त्र हैं, अपने आपमें अपने आप ही परिणमन करते हैं। दूसरा पदार्थ तो निमित्त मात्र है, हाजिर भर है। हाँ बात यह अवश्य है कि वह निमित्त न हो तो यहाँ विकारकी बात नहीं बनती, मगर निमित्त अपनेसे हटकर उपादानमें कोई परिणति करता हो सो बात नहीं है, अन्यथा वस्तुका अभाव हो जायगा। तो यों निरखो—जैसे उस समुद्रमें यह देख रहे हैं कि हवा भले ही चल रही, मगर लहरों रूप केवल समुद्र ही बन रहा। ऐसे ही अपने आत्मामें भी यह बात देखिये कि मुझमें रागद्वेष हो रहे हैं, कर्मोंके उदय का सन्निधान पाकर हो रहे हैं, मगर मैं अकेला ही इस राग विकल्प रूप परिणम रहा हूँ। कर्मोंसे मिल कर मैं रागरूप नहीं परिणमता, ऐसा अपने आपमें देखें और अपने आपकी स्वतन्त्रताका अनुभव लें।

५२३—वस्तुस्वातन्त्र्यके दर्शनका सदुपयोग कर मोहक्षोभरहित होकर शान्ति पानेका संदेश—

भैया! परतन्त्रताके ध्यानमें बहुत कष्ट पाये और दूसरोंको परतन्त्र रखने, बनाने, समझनेके ध्यानमें भी बड़े कष्ट पाये। कोई समझता हो कि यह पुरुष बड़ा है, हुकुम चलाता है, यह तो बड़ा सुखी होगा, देखो इन हजारों आदमियोंपर हुकुम चला रहा है, ये हजारों आदमी हुकुम मान रहे हैं, पर वह बड़ा भी दुःखी याने हुकुम देने वाला भी दुःखी और हुकुम मानने वाले भी दुःखी। हुकुम मानने वालोंसे भी अधिक दुःख हुकुम देने वालेको रहता है। हुकुम मानने वालोंने तो यह सोच रखा है कि जो हुकुम मिला सो कर दिया, आगे कोई झंझट नहीं, मगर हुकुम देने वालेको कितनी उलझनें हैं, कितना बड़ा उत्तरदायित्व है, उसपर कितना बड़ा बोझ है। क्या क्या नहीं करना पड़ता, किस किस ढंगसे उसे क्या नहीं करना पड़ता। तो हुकुम मानने वालोंसे हुकुम देनेवाला अधिक दुःखी है। यह ही बात सर्वत्र लगा लीजिए। वस्तुतः दुःखी कोई नहीं। कषायका नाम दुःख है वह तीव्र दुःखी है, जिसके जितनी कषाय है, तीव्र कषाय है, वह तीव्र दुःखी है, मंद कषाय हैं तो वह मंद दुःखी है। कषाय कहते

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ही उसे हैं, जो आत्माको कसे, आत्माको दुःखी कर दे। यदि दुःख मिटाना है तो अज्ञान और कषाय इन दो को दूर कीजिये, इसके सिवाय अन्य कोई उपाय नहीं है जो इसका दुःख दूर कर दे। अज्ञान तो यों मिटालो कि प्रत्येक जीवको, प्रत्येक परमाणुको अपने अपने सत्त्वमें देखें। कोई किसीका करने वाला नहीं है, यों समझें कि कषाय मैं रखूंगा तो मेरे को निरन्तर पापका बन्ध होगा और कर्मबन्ध तो एक आसान है, मगर जब उसका उदय आयगा तो उस समय बहुत बड़ा कष्ट भोगना पड़ेगा। क्यों पाप कर्म बाँधें ? क्यों मैं चित्तमें कषाय रखूं ? अपनी दयाके लिए कषायका त्याग करना है, दूसरोंपर एहसान डालनेके लिए कषायका त्याग नहीं। व्रत, तप, संयम, धर्मपालन अपनी दयाके लिए करना है, किसी दूसरेपर एहसान धरनेके लिए नहीं करना है, अपने ही उपकारके लिए सब कुछ किया जायगा। तो अज्ञान दूर हो, कषाय दूर हो, सदा यह ही नजरमें आये कि मैं अकेला हूं, अपने परिणमनसे ही परिणमता रहता हूं, यह किसी दूसरेका परिणमन साथ लेकर नहीं परिणमता। तो इस छन्दमें कह रहे हैं कि यह जीव अकेला एक ही परिणमता है, और इसका जो परिणाम होता है उस रूप ही होता है और एक की ही परिणति होती है और ऐसे ये अनेक परिणमन हो जाते हैं। एक पदार्थकी अनेक दशायें हो जाती हैं, मगर सब अनेक दशायें ये केवल उस रूप ही हैं, कहीं जुदी-जुदी नहीं होती हैं। जैन लोग जैसे मानते हैं क्षण–क्षण में यह आत्मा परिणमता है, इसके बजाय बौद्धके यहाँ वे जुदे-जुदे पदार्थ हैं तो ऐसा नहीं किन्तु उसकी पर्यायें अनेक हैं, मगर वे सब पर्यायें उक द्रव्यरूप ही हैं। ऐसा अपने आपमें देखें, बाह्यका यहाँ कोई प्रवेश नहीं, मोहको छोड़ें तो शान्तिका मार्ग मिलेगा।

नोभौ परिणमतः खलु, परिणामो नोभयोः प्रजायेत।
उभयोर्न परिणतिः स्याद्यदनेकमनेकमेव सदा ॥ ५३ ॥

५२४—अज्ञानसे आपत्ति व ज्ञानसे निरापदता जानकर ज्ञानकी दिशामें बढ़नेकी उमंगका आदरण—

जगतमें रहने वाले जीवोंको संकट है तो अज्ञानसे संकट है। अज्ञान होनेसे मोह भाव होता है और जहाँ मोह है वहाँ वह स्वयं दुःखरूप ही है। तो दुःखका कारण क्या ? दुःख रूप क्या ? यह मोह। मोह अज्ञानसे रचा जाता है तो दुःख दूर कैसे होगा ? ज्ञानसे। अज्ञानसे कष्ट है, ज्ञानसे शान्ति है। तो वह अज्ञान क्या जिससे कष्ट होता है, और वह ज्ञान क्या जिससे शान्ति होती है, इसका निर्णय करें। अज्ञान–जैसा पदार्थ है, जैसा मैं हूं, जैसे सब कोई है वैसा न जानकर बिपरीत जानना, इसे कहते हैं अज्ञान और जैसा पदार्थ है वैसा ही ज्ञान करना इसे कहते हैं ज्ञान ! तो पदार्थ कैसा है, सर्व पदार्थ अपनी अपनी सत्ता लिए हुए हैं। कोई भी पदार्थ किसी दूसरे पदार्थकी दयापर सत् (Existante) नहीं। स्वयं अपने ही वजूदपर पदार्थकी सत्ता है, यह सभी पदार्थोंकी बात है। परमाणु परमाणु सब अपनी-अपनी स्वतन्त्र सत्ता रखते हैं। यह तो अनुभवमें भी बात उतरती है। जो बात सही है उसके जाननेके लिए सब कोई तैयार रहता है। मैं सच जानूं, झूठ जाननेका कोई प्रोग्राम नहीं बनाता। क्या कोई ऐसा सोचता है कि जरा मैं झूठ जानूं, मुझे झूठ जाननेका काम पड़ा है करनेको ? चाहे झूठ काम करले, जानता हुआ भी करले, मगर जाननेके लिए कोई इस तरह तैयार नहीं होता कि मैं झूठ जानूं। हर एक कोई सच जाननेके लिए ही उमंग रखता है हर परिस्थितिमें, और सच जाननेका जो आनन्द है वह आनन्द किसी भी परप्रसँगमें नहीं है। जैसे किसी बालकसे कोई गणितका सवाल पूछ दिया–बोलो बच्चे १६×८ = कितने होते हैं ? तो जब तक उसे याद नहीं होता, सही उत्तर नहीं बनता तब तक की सकल देख लो, कितना व्यग्र, कैसी फिकरमें, कैसा चिन्तन

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

चल रहा, और जिस कालमें उसको उत्तर आ गया १६×८ = १२८, तो उस उत्तरके आते ही उस बच्चेके दाँत कैसा मोतीकी तरह चमकने लगते हैं। उसके कैसे ओंठ, कैसी हँसी, कैसी मुस्कान, उसके चेहरे पर, रोम रोमपर देखो हर्ष छाया है। भला बतलावो इस तरहका हर्ष, इस तरहका आनन्द तो कोई लड्डू पेड़ा खिलावे तो भी नहीं आ सकता। ज्ञानका आनन्द अलौकिक है, अद्भुत है तो सच्चा ज्ञान करनेके लिए सभी लोग उमंग रखा करते हैं।

५२५ ज्ञानानन्दधाम अन्तस्तत्त्वमें उपयोगको रमानेमें वास्तविक बुद्धिमानी—

तो यहाँ यही बात कही जा रही है कि सच सच बात जान लो याने लोग अपना दिल खुश करनेके लिए क्लब खोलते हैं, कैसे कैसे क्लब, किसमें क्या क्या खेल, क्या क्या ढंग, किसलिए खेलते कि मन खुश हो जाय, लेकिन मन खुश होगा तो यहाँ होगा, ज्ञानमें होगा, बाहरमें मन खुश नहीं हो सकता, वह सब अंधेरा है, वह सब विडम्बना है। जो सुगम है, जिसमें निर्धनके लिए असुविधा नहीं, निर्धन सोचे कि मेरे पास पैसा नहीं, मैं कैसे धर्म कमाऊँ, मैं कैसे आत्माका ध्यान बना लूँ, तो उसको कोई असुविधा नहीं, न धनीको असुविधा, न राजाको, न रंक को, और यह एक ऐसा क्लब है इस आत्माका कि जिस के अध्यात्म तथ्योंका पता पड़ जाय तो सदाके लिए शान्ति रहती है, आनन्द रहता हैं, उस धामका लाभ उठावें, मगर जब मोहका उदय है, जब पापका उदय है और मानो बड़े बन गए पूर्व पुण्यके प्रसादसे तो वहाँ धर्मकी सुध तो रहती नहीं, बाहरी बाहरी बातोंका कितना ही अच्छा ढंग बन गया हो, मन बहलानेके लिए बहुत बहुत बातें करेंगे मगर सब कुछ करनेपर भी शान्त नहीं हो पाते। शान्ति है ही नहीं वहाँ, शान्ति तो एक अपने अंतस्तत्त्वमें है, यही तो आनन्दनिधान है, तो स्वभावका परिचय हो, ज्ञान हो तो बस यह ही तो है परमात्मासे मिलन।

५२६ एकके परिणामका उसी एकमें व्याप्यव्यापक भाव होनेसे स्वयंका स्वयंमें ही कर्तृत्व—

हाँ ज्ञान और अज्ञानका प्रभाव देखिये- जब वस्तु समग्र स्वतंत्र स्वतंत्र सत्ता रख रहे हैं, जिस कारण एक पदार्थ दूसरे पदार्थ रूप नहीं बन पाता, दो पदार्थ मिलकर कोई एक काम नहीं किया करते, एक पदार्थ कहीं दोका काम नहीं किया करता, एक पदार्थ अपने कामकी परवाह न रखकर मात्र दूसरेका काम कर दे ऐसा भी नहीं है, प्रत्येक पदार्थ अपना अपना ही परिणाम, परिणमन, बनाव किया करता है, जब यह वास्तविक बात है तो इसके विपरीत बात चित्तमें लाना सो कष्ट है अन्य विपरीत बात चित्तमें लाना सो कष्ट है और विपरीत बुद्धिसे समग्र वस्तुओंका निरखना सो अशान्तिका स्थान है। तो यहाँ यह बताया जा रहा है कि प्रत्येक पदाथमें अपने आपके अकेलेसे ही उसका सारा जोड़ तोड़ है, अपनेमें परिणमा, नया परिणाम बनाया, पुराना परिणाम बिलीन कर दिया, वह वहीका वही रहा, भले ही कोई विकार भाव आता है तो वहां पर पदार्थ निमित्त है, मगर वह परमें अकिञ्चित्कर है, वह अपनी कोई परिणति इस उपादानमें डालता नहीं है, यह केवल अपने आपमें आप ही विराज रहा है, इसको एक दृष्टान्त द्वारा परखिये, मिट्टीका घड़ा बनाया, सब जानते हैं, कुम्हार बनाता है, मिट्टीका बनाता है, पर वहाँ यह बात देखो कि उस घड़ेमें व्यापक कौन है याने घड़ा रूप मिट्टी है या कुम्हार है ? घड़ा बन गया तो अब वहाँ मिट्टी है या कुम्हार है ? मिट्टी है, तो घड़ेका मिट्टीमें व्याप्य व्यापक भाव है मिट्टी कलश मय है, मिट्टी घड़े रूपमें है, इस कारण निश्चयसे तो यह कहना चाहिए कि मिट्टीके द्वारा घड़ा किया गया, रचा गया, मिट्टीके द्वारा रचा गया है वह घड़ा. कुम्हारके द्वारा रचा गया नहीं हैं निश्चयसे, क्योंकि व्याप्य व्यापक भाव नहीं है घड़ेका कुम्हारमें। निमित्तका खण्डन तो नहीं किया जा सकता, वह निमित्त

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

मात्र तो है, मगर कुम्हार ही स्वयं घड़ा रूप बन गया ऐसी बात नहीं है, तो निश्चयसे तो जो जिस रूप बने वह उसका कर्ता कहा जाता है, व्यवहारसे उस कार्यमें जो निमित्त हो वह कर्ता कहा जाता, तो निश्चयसे चूँकि मिट्टीके साथ ही कलशमें व्याप्य व्यापक भाव है इसलिए मिट्टीके द्वारा ही कलश किया गया है, ऐसा निश्चय: समझें।

५२७ निश्चयत: स्वयंका स्वयंमें भोक्तृत्व—

अब भोगनेकी बात देखो, भोगना मायने अनुभवना। अनुभवना मायने होतेको अनुभवना। तो उस घड़ेका अनुभव कौन कर रहा निश्चयसे ? मायने घड़ेमें रंग बदल रहा, कोई और परिणमन चल रहा तो इसका अनुभवने वाला कौन ! वही मिट्टी ही। निश्चयसे कह रहे। व्यवहारसे तो उस घड़ेको कुम्हारने बेंचा और उन पैसोंसे रोटी खायगा तो कुम्हार तो कहेगा कि हम घड़ेको भोग रहे हैं, या घड़ा लेकर कोई पानी भरता है, ठंडा पानी पीता है तो वह कहता है कि हम घड़ेको भोग रहे हैं, पर यह कथन व्यवहारसे है, ६ द्रव्योंका जुदा-जुदापन बताता है निश्चय। तो एक पदार्थमें एककी ही बात देखना चाहिये—उस कलशको, घड़ेको किसने भोगा ?...मिट्टीने। तो निश्चयसे वह घड़ा मिट्टीके द्वारा किया गया, मिट्टीके द्वारा भोगा गया।

५३८—निश्चय और व्यवहार दोनों दृष्टियोंसे कर्तृत्व व भोक्तृत्वका विचार—

अब बाह्य सम्बन्ध देखो, अभी तो एक बात कही थी, अब बाहरमें व्याप्य व्यापक भाव देखो तो हुआ क्या ? पहले करनेकी बात देखो। जब वह घड़ा बनाया गया तो घड़ा जैसे उत्पन्न हुआ उसके अनुकूल कुम्हारने व्यापार किया था, सब जानते हैं, घड़ा लम्बा मोटा जैसा बड़ा बनाना है उस तरहसे कुम्हारने अपना हाथ चलाया, ऊपर हाथ चलाया। तो घड़ा कैसे उत्पन्न होता उसके अनुकूल कुम्हारने व्यापार किया ना, तो कोई सम्बन्ध बना कि नहीं ? बना वह बाह्यका सम्बन्ध, भीतरका नहीं बना। तो इस बाह्य व्याप्य व्यापक सम्बन्धको देखा जाय तो कहा जायगा कि कुम्हारके द्वारा घड़ा बनाया गया और यह ही बात भोगनेकी कही जायगी। बेंचा, उस दामसे खाया तो कहते हैं कि कुम्हारने घड़ा भोगा या जो ले गया उसने ठंडा पानी पिया तो कहता है कि मैंने घड़ा भोगा मगर घड़ेमें जो रूप, रंग वगैरह परिणमन हो रहा उसे भोगने वाली मिट्टी ही है, तो जैसे यहां दो प्रकार के कथन हैं—एक निश्चयदृष्टिसे और एक है व्यवहारदृष्टिसे। ऐसे ही आत्मामें निरखिये-आत्माने क्या किया ? अपना आत्मा तो अपने परिणामको करता है। और, भोगा किसे ? अपने ही परिणाम को। भले ही कर्मके उदयमें एक ऐसी ही छाया हुई कि उसमें ज्ञानरस ऐसा भींगा कि वह रागद्वेष करने लगा, मगर वहां भी आत्माने अपने परिणामको ही किया। पर व्यवहारसे यों कहा जायगा कि कर्मका उदय होनेपर रागद्वेषको कर्मने किया, यों कहा जायगा, और दूसरी ओर देखो—कर्मने क्या किया ? कर्मने ज्ञानावरण आदिक ८ प्रकारके कर्मोंकी प्रकृति बना ली, यह किया पुद्गल कर्मने, क्योंकि अन्तरमें व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध कर्मका कर्मके साथ है, पर व्यवहारसे चूंकि रागद्वेषका निमित्त पाकर कर्म बन्धे तो कहा जाता है कि आत्माने किया, पर वस्तुत: कर्मकी बात कर्मने की और उस कर्ममें अनुभाग फूटा तो जो कुछ बात बनी निश्चयसे कर्ममें ही बनी, मगर जीवने रागद्वेष किया और उसे कहें कि कर्मने भोगा सो बात नहीं। प्रत्येक द्रव्य अपने आप ही करने वाला, भोगने वाला है।

५२९—वस्तुतथ्यको उपयोगमें प्रयुक्त करनेका लाभ—

देखो अपने भीतरमें चित्तमें तथ्य उतारोगे तो बात बनेगी और न घटित करोगे तो यह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

संसार बन्धन जैसे चल रहा यह बना रहेगा। कुछ तो ध्यान करो। केवल उस ज्ञानकी ही बात कही जा रही है। ज्ञानसे अपने आपमें सच्ची समझ बना लीजिए। सच्ची समझ बनानेमें कन्जूसी क्या? सच्ची समझ बनानेमें कौन असुविधा है? बात सही हो तो मानलो और न सही हो तो मत मानो। खूब समझलो, जीव सब जुदे-जुदे हैं या नहीं? जीव सब अपने आपके ही ज्ञानको करते भोगते हैं या अन्यका भी कुछ करते हैं? होता स्वयं जगत परिणाम, मैं जगका करता क्या काम? ये जगतमें जितने पदार्थ हैं उन सबका परिणमन स्वयमेव चलता रहता है। उनमें मैं आत्मा कुछ नहीं करता। इस तरह से एक-एक अणुको अगर देखते हैं, इस तरहसे प्रत्येक जीवका जानना प्रारम्भ करे यह जीव तो उसे ऐसा ज्ञान प्रकाश मिलेगा कि जिस ज्ञान प्रकाशमें यह सदाके लिए संकटमुक्त हो जायगा। यह बात एकान्तमें लो, गुप्त होकर करो। बाहरी राग सता रहा, चलो वह भी आज ललक रहा। जरा भीतर डुबकी लगाकर परख लो कि मैं आत्मा समग्र जीव अजीवोंसे अत्यन्त जुदा हूँ कि नहीं और मेरा भविष्य मेरी ही करनीपर निर्भर है कि नहीं? यहाँ कोई कितना ही प्रेमी हो कोई भी मित्र कुटुम्ब, मगर वस्तु स्वरूपकी सीमाको कोई तोड़ नहीं सकता। यहाँ कोई किसीका मददगार नहीं। त्रिकाल भी किसीके द्वारा किसी दूसरेका कोई काम नहीं किया जा सकता, यह बात निरखना है कि अपने आपकी दयाकी बात होगी। कोई बाहर सहारा नहीं, एक अपना भीतरी ज्ञानप्रकाश यह ही मददगार है, दूसरा कोई मददगार नहीं।

५३०—दोका, अनेकका मिलकर एक परिणमन करनेकी अशक्यता—

इस छंदमें बतला रहे हैं कि दो द्रव्य मिलकर परिणमन नहीं करते, याने जैसे कहते हैं ना कि यह काम चार जनोंने मिलकर कर लिया, सो भले ही कहें, पर अनेकके द्वारा एक काम किया ही नहीं जा सकता। आप कहेंगे वाह एक मकान बनाया जाता, ८–१० मजदूर काम करते तो सब मिलकर एक कामकर रहे ना। अरे वे सब मिलकर एक काम नहीं कर रहे। वह मकान कोई एक काम नहीं है। एक पदार्थमें जो काम हो उसे एक काम कहा जाता है। एक कामकी भी परिभाषा समझो। एक वस्तुमें जो परिणमन होता उसे एक काम कहा जाता है। अच्छा मोटे रूपमें देखो तो जो मजदूर ईंटें ला रहा, बस ईंटें लानेका ही काम कर रहा, दूसरा काम नहीं। जो राज गारा बिछा रहा वह वही काम कर रहा, दूसरा नहीं, वहाँपर भी एक आदमी एक ही काम कर रहा, दूसरा नहीं। यह एक बड़ी मोटी बात कह रहे। वस्तुतः वहां भी उक्त काम नहीं किया जा रहा। वह मजदूर ईंट लानेका काम नहीं कर रहा। जरा मालिककी नजर बची और मैं यहां बैठ जाऊँ बिड़ी पीनेका बहाना लेकर और आराम करलूं, जो जो भी वह भीतर सोच रहा मजदूर वह काम कर रहा, वह ईंट उठानेका काम नहीं कर रहा, ईंट उठानेकी हालतमें भी अपने अन्दर इच्छा ज्ञान प्रयत्न जो कुछ बन रहा बस उसको कर रहा, उसका निमित्त पाकर ईंटें उठ रहीं वह बात अलग है, मगर जो एक पदार्थ है उसका खुदका क्या काम है उसे निरखिये। दो पदार्थ मिलकर एक काम नहीं करते। दो पदार्थ मिलकर एक काम कर डालें ऐसी, कोई मिसाल न मिलेगी और जिसको बतावोगे इन दो ने मिलकर एक काम किया वहाँ उसे इन कामोंमें भ्रम हो गया, वास्तवमें काम क्या किया? इस पर दृष्टि उसकी नहीं है।

५३१–पदार्थका एकत्व जाने बिना कर्तृकर्मत्वका यथार्थ परिचय करानेको अशक्यता—

एक पदार्थ अपनेमें जो परिणमन करे उसको उस पदार्थका काम कहते हैं। एकके काममें दूसरा नहीं हो सकता। सुननेमें आपको ऐसा लग रहा होगा कि व्यवहारमें तो ये सब बातें कही जाती

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हैं। दूसरोंको आर्डर दिया जाता है, सब काम चल रहे हैं, पर यहाँ कही जा रही है वस्तुस्वरूपकी बात। वस्तुमें खुदके निजमें क्या बात पड़ी है उसे बताया जा रहा है। प्रथम तो देखो भूल कि मनुष्य क्या एक चीज है ? मनुष्यको एक पदार्थ माने तो फिर इस मनुष्यने यह काम किया, इसका उत्तर ही गलत है। इस एकने यह काम किया यह सही उत्तर नहीं है। मनुष्य एक पदार्थ नहीं है। तब फिर मनुष्य कितना पदार्थ है। मनुष्यके मायने क्या समझते ? यदि यह समझते कि जैसे हम आप बैठे है इतने बड़े वजन रंग रूपके, जो कुछ सामने है क्या यह एक पदार्थ है ? यह एक पदार्थ नहीं। यह तो अनन्त परमाणुवोंका पिण्ड है जिनको मिलाकर यह शरीर बना। तो अनन्त पदार्थ तो ये ही हो गए, और उसमें कर्मके भी अनन्त परमाणु हैं, तो अनन्त पदार्थ वे हो गए और फिर इसके खूनमें जो रक्ताणु हैं, जिन्हें डाक्टर लोग बताते वे भी बसे हैं, जिनके बिना जिन्दगी नहीं बताते, और एक स्वयं जीव है। जो कि सब कुछ सोचता है, तो अब बतलावो यह जो पिण्डोला दिख रहा यह क्या एक चीज है ? यह तो अनन्त पुद्गल परमाणुवोंका पिण्ड है। जब अनन्त पदार्थ हुए तो उन अनन्तमें से एक-एकको देखकर काम बताओ तब तो सही उत्तर आयगा कि एकका काम एक ही कर सकता। एक पदार्थ दो को याने अनेकको नहीं कर सकता।

५३२—परकी क्रिया निजकी क्रियासे अव्यतिरिक्त न होनेके कारण परकर्तृत्वकी असंभवता तथा क्रिया व कर्तामें अव्यतिरिक्तता होनेसे स्वयंका स्वयंमें ही कर्तृत्वकी संभावना—

दो मिलकर एक काम नहीं कर सकते, यह वस्तुस्वरूपकी ओरसे निर्णय करके देखिये—क्यों नहीं कर सकता ? सो सुनो। जो कुछ क्रिया है उस क्रियाके द्वारा ही तो सब कुछ किया जाता। लिख दिया तो लेखन क्रियासे ही तो लिखा गया। कुछ क्रिया होती है ना हर एकमें। प्रत्येक पदार्थकी क्रिया, सब कुछ क्रिया जो है, वह है परिणामरूप परिणमनरूप, जो भी दशा है, दशारूप, तो वह क्रिया, वह परिणाम परिणामीसे भिन्न नहीं हो सकता, याने क्रिया क्रियावानसे जुदी चीज नहीं है। एक मोटा दृष्टान्त लो—अंगुलीने अंगुलीमें अपना खूब हिलाव किया तो यह हिलाव, यह अंगुलीकी क्रिया क्या अंगुलीसे जुदो है ? जुदी नहीं, अंगुली जैसी है, तो जितनी भी क्रिया है, जितना भी परिणमन है वह सब उस पदार्थमें ही हुआ करता है। उस ही में तन्मय है, उस पदार्थसे जुदा नहीं है। जैसे कहते हैं कि आपका आना अच्छा हुआ। अच्छा थोड़ी देर जरा आप तो रहे जावो घरमें और आना यहाँ भेज दो, आप खुद क्यों कष्ट करते ? आप घरमें रहो और अपना यहाँ आना भेज दो। अरे वह आना आपका आपसे अभिन्न है, आपको छोड़ आने वाली क्रिया यह कोई जुदी चीज नहीं है। तो कितनी भी क्रियायें होती हैं वे चूंकि परिणामरूप हैं इसलिए परिणाम वाले पदार्थसे भिन्न नहीं होती। और, क्रिया भी परिणामीसे भिन्न नहीं है, परिणामी भी क्रियासे भिन्न नहीं है। जैसे—अँगुलीका टेढ़ापन अंगुलीसे जुदा नहीं, अंगुली उस टेढ़ेपनसे अलग नहीं, ऐसे ही जितनी भी क्रियायें हैं वे सब क्रियावान में मिली जुली हैं। इससे यह सिद्ध हुआ कि क्रिया और कर्ता एक ही रूप हैं, भिन्न-भिन्न नहीं है। हम क्या कर पायेंगे, हम दूसरा कुछ न कर पायेंगे। तो क्रिया और कर्ता अभिन्न हैं, यह है वास्तविक निर्णय।

५३३—क्रियाओंकी भिन्नतासे पदार्थोंकी भिन्न भिन्न सत्ताका परिचय—

अब देख लो, जैसे मैं अपने परिणामोंमें तन्मय होता हूं उस तरह अगर पुद्गल कर्मको करने लगूं या पुद्गल कर्मको भोगने लगूं तो क्या अर्थ बना कि उसकी क्रियायें मेरेमें आ गईं। मुझमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भी काम कर रहीं, कर्ममें भी काम कर रहीं, तो अब हम कैसे जानें कि ये दो पदार्थ हैं ? फिर तो दो रहे नहीं । यहाँ यह कैसे जान पाते कि यहां दो आदमी बैठे हैं ? हम इसी तरह तो जानते कि एक आदमीके हाथ पैर क्रिया बोलचाल उसका उसमें है, उसने अपनी क्रियासे दूसरेका हाथ नहीं चलाया । यह जब हमारी नजरमें है तब ही तो हम कहते हैं कि ये दो आदमी हैं। अगर एक आदमी अपनी क्रिया से अपना भी काम करे और अपनी ही क्रियासे दूसरेका भी काम कर दे तो यह कैसे पता पड़ेगा कि ये दो पुरुष हैं ? चूंकि क्रिया न्यारी न्यारी है और एक अपनी क्रिया दूसरेमें नहीं कर पाता है तब हम समझते हैं कि ये दो आदमी हैं, ऐसे ही जीव और कर्म ये दो न्यारे न्यारे पदार्थ हैं यह समझ कब बनेगी ? जब यह ध्यानमें जमेगा कि जीव अपनी ही क्रियासे अपना काम कर पाता है, जीव अपनी क्रियासे पुद्गल कर्मका, देहका, किसीका काम नहीं करता । तब समझमें आयगा कि दो चीज़ें हैं ।

५३४ दृष्टान्तपूर्वक जीव व कर्मके परस्पर अकर्तृत्व का ख्याति—

देखिये विषय बड़ा भीतरी है, जटिल है, जटिल भी कुछ नहीं, जब चित्त ही नहीं है आत्मा की बात समझनेमें तो उनको जटिल हो सकता है, कोई कहे वाह जब कोई पुरुष नहाता है तो देखो वह शरीरका कितना काम करता है ? साबुन भी लगाता. तेल भी लगाता, सारा शरीर पोंछता, कंघी करता, यों कितने ही काम कर रहा जीव, पर आप कहते कि शरीरका काम जीव नहीं करता । उत्तर जीवका कोई काम शरीर नहीं कर सकता और शरीरका कोई काम जीव नहीं कर सकता, कर्म जीवका काम नहीं करते और जीव कर्मका काम नहीं करता, कैसे सो सुनो–देखो जब कोई रेलगाड़ी या मोटर गाड़ीका इंजन ड्राइवर चलाता है तो वहाँ वह क्या करता है ? वह तो केवल कोई पुर्जा इधरका उधर कर देता । वास्तवमें तो वह ड्राइवर तो यह भी काम नहीं करता, वह तो ज्ञान करता व अन्दर उस तरहकी इच्छा बनाता, उसकी इच्छाके कारण उसके आत्मप्रदेशोंमें परिस्पंद हुआ, बस इतना काम उस ड्राइवरने किया, इससे बाहर ड्राइवरका कुछ काम नहीं है, फिर काम हो कैसे गया ? तो उसका निमित्त पाकर इस शरीरमें हवा चली, जिसे बोलते हैं वात वायु और जिस ढंगसे हवा चली, किस ढंगसे चली ? जिस ढंगसे उसकी इच्छा और प्रयत्न हुआ, और उसका सँयोग पाकर वह पुर्जा भीतर चल गया, उसका सँयोग पाकर दूसरे पुर्जेने हरकत की, उसका सँयोग पाकर यहाँ कोई डंडा चल उठा, उसका संयोग पाकर चक्र चल दिया, लो दिख तो रहा है ऐसा कि देखो ड्राइवरने गाड़ी चला दी मगर ड्राइवर अगर जीवको मानते तो जीवने अपने प्रदेशोंमें अपना काम किया, इससे बाहर कुछ भी काम नहीं किया, बाँकी काम जो कर रहे हैं वे निमित्तनैमित्तिक योगवश स्वयं स्वयंके उपादानमें । तो यह परख करलो कि एक पदार्थ कितना होता है ? उस परखसे यह समझमें आयगा कि एक पदार्थ क्या काम कर पाता है ? दो पदार्थ मिलकर भी एक काम नहीं करते, अगर एक बोराको चार आदमी मिलकर उठायें तो वहां लगता कि चारोंने काम किया, मगर नहीं । प्रत्येकने अपनेमें ज्ञान इच्छा की, अपनेमें अपने बलका प्रयोग किया, इससे अधिक कुछ नहीं किया, यह ही काम किया भीतरमें, बाहर कुछ नहीं किया, यह ही सबने किया, सबने अपना अपना काम अपनेमें किया, उसका निमित्त पाकर वह बोरा उठ गया, यहाँका वहाँ पहुंच गया, पर एक कामको दो आदमी मिलकर नहीं करते, प्रत्येक व्यक्ति केवल एक ही काम कर पाता और इस ही बलपर फिर यह दिखता है कि प्रत्येक अणु, प्रत्येक जीव एक दूसरेसे अत्यन्त भिन्न है, जब यह भिन्नता ध्यानमें आती है तो वह ज्ञान जगता है जिससे मोह दूर होता है, मोह मिटा वहाँ शान्ति, जहाँ मोह है वहाँ अशान्ति. अज्ञानसे मोह होता इसलिए अज्ञानको मिटाना, ज्ञानको प्रकट करना धर्म पुरुषार्थ

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

में प्रारम्भिक काम यही कहलाता है ।

नैकस्य हि कर्तारौ द्वौ स्तो द्वे कर्मणी न चैकस्य ।
नैकस्य च क्रिये द्वे एकमनेकं यतो न स्यात् ॥५४॥

५३५ किसी भी पदार्थका अन्य पदार्थपर स्वामित्व आदि हो सकनेकी गुंजायश का अभाव—

इस प्रकरणमें यह बताया जा रहा कि लोकके समस्त पदार्थ स्वयं अपने आपके द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे हैं, एक पदार्थका दूसरे पदार्थके साथ न तो स्व स्वामी सम्बंध है, न कर्ता कर्म सम्बंध है, न भोक्ता भोग्य सम्बंध है फिर गुंजाइस बताओ, किस वजहसे कह रहे हैं कि यह चीज मेरी है, चाहे चेतन पदार्थ हो अथवा अचेतन, कोई भी पदार्थ मेरा कुछ नहीं है, कोई पदार्थ मेरा कुछ लगे, इसका कोई कारण तो होना चाहिए, लोग समझते हैं कि यह मेरे घरमें पैदा हुआ इसलिए मेरा है, तो पहले यह ही तो सिद्ध कर लो कि क्या यह मेरा घर है, तब उस आधारसे यह बात बताना कि मेरा है। कोई यह कहे कि यह पुत्र मेरे और स्त्रीके सँयोगसे हुआ है इसलिए मेरा है तो पहले इस देहको ही तो सिद्ध कर लो कि यह देह मेरा है ? और उस स्त्रीके जीवको सिद्ध तो कर लो कि यह मेरा जीव है तब आगेकी बात बोलना, कौन सी वजह है जिस वजहसे लोग कहते हैं कि यह मेरा है ? कोई कहेंगे कि लड़के हमारी पूरी आज्ञा मानते हैं, मेरे हुक्म बिना पत्ता भी नहीं हिलता, इसलिए मेरा है, तो यह ही तो सिद्ध कर लो कि ये लड़के क्या मेरे हुक्मसे काम करते हैं ? अरे उनके चित्तमें यह बात बैठी है कि हम इनका हुक्म मानते जाँयेंगे तो हम इनको उल्लू बना सकेंगे, याने ये हमारे लिए खूब सुख सामग्री उत्पन्न करने के लिए तत्पर रहेंगे, इस ही कारणसे कहना मानते हैं, वास्तवमें कहना मानता नहीं कोई। सब कोई अपने आपके भीतरी भावसे ही, भीतरी प्रयोजनसे ही चेष्टा किया करते हैं, तो क्या वजह है कि जो इतनी भी गुंजाइस निकल सके कि यह चीज मेरी है, कोई कहे कि ये मित्रजन मेरे बहुत समर्थनमें रहते हैं इसलिए मेरे हैं, तो अगर वह धार्मिक काम है तथा उसका समर्थन करते वे, तो अपने आपमें बने हुए धर्म भावोंका समर्थन करते हैं या घर वगैरहमें हैं तो वे इसका समर्थन नहीं करते किन्तु खुदमें जो सोच रखा है उस भावका समर्थन करते हैं, कछ भी तो गुंजाइस नहीं जो यह कहा जा सके कि यह वस्तु मेरी है, सैद्धान्तिक दृष्टिसे देखो मैं तो ज्ञान मात्र हूं, आनन्दस्वरूप हूं, मेरा क्या सम्बंध है परसे ? इसमें परका प्रवेश नहीं, यह खुद अपने आपमें परिपूर्ण है, इसमें कष्टका नाम नहीं, यह स्वयं सहज आनंद मय है, यह तथ्य जाने फिर यह क्यों परके प्रति भाव रखेगा, रखता है तो वह भ्रम है, एक पदार्थका दूसरा पदार्थ कुछ नहीं लगता, प्रत्येक पदार्थ अपने आपके स्वरूपमें परिणमन करता है, यह बात ऊपरके छंद तक कही गई थी ।

५३६ एक परिणमनमें दो पदार्थोंके कर्तृत्वका अभाव—

उक्त छंदोमें तो यह बात कही गई थी कि प्रत्येक पदार्थ अपने आपमें अकेले अकेले अपनी दशा बनाया करता है, दो मिलकर एक दशा नहीं बनाते, अब आज यह कर रहे हैं कि एकके दो कर्ता नहीं होते, मायने एकका एक काम हुआ उसको दो पदार्थ करते हों सो नहीं, देखिये वस्तुस्वरूपकी दृष्टिसे परखना है, एक किसे कहते, जो परिणमन जिसमें पूरेमें हो, जिससे बाहर कभी न हो उसे एक कहते है, परिणमन मायने बदलना, दशा, अवस्था, जैसे घड़ा बना तो घड़ा परिणमन हुआ, घड़ा फूटा, खपरियाँ बनीं, जो बन रहा नया नया काम उसे कहते है परिणमन, एक परिणमनके दो कर्ता नहीं है, क्योंकि यदि कोई ऐसा माने कि एक चीजके दो कर्ता हो गए, जैसे प्रकरणमें यह मैं जीव अपने परिणामोंको भी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कर दूं और कर्मकी परिणतिको भी कर दूँ, अपनी दशा बना लूँ और कर्मकी दशा बना जाऊँ यों यह मैं अकेला दोके काम को कर दूँ, ऐसा जो कोई मानता है वह अज्ञानी है, विपरीतदृष्टि है, मिथ्यादृष्टि है। जरा एक मोटा उदाहरण लो, कर्मके मायने क्या है कि अपनी अभिन्न क्रियाको करना, जैसे यह दाहिना हाथ चला तो दाहिने हाथकी क्रिया दाहिने हाथमें है ना, दाहिने हाथसे अलग तो नहीं ? नहीं, और दाहिने हाथका काम दाहिने हाथसे बाहर हो सकता क्या ? निश्चय दृष्टिसे देखो—यह हाथ जो कुछ कर रहा है सो इस हाथमें कर रहा, हाथसे बाहर कुछ नहीं कर रहा, यदि आप कहो-जैसे कोई चीज उठाकर धर दी तो हाथने तो धर दी, नहीं: नहीं, हाथने नहीं धरी, तो क्या किया हाथ ने ?हाथ ने बस मुट्ठी बाँधी और चल दिया और मुट्ठी खुली, इतना काम हाथका है, अब उसमें चीज हाथमें फस गई तो इस चलते हुए हाथका निमित्त पाकर चीज भी चल गई और हाथ खुल गया तो उसका निमित्त पाकर चीज गिर गई। हाथने नहीं चीजको चलाया ? न उठाया, न गिराया, अच्छा यह बात कैसे समझमें आये ? तो मानो वह चीज अदृश्य हो जाय जिसको उठा रहे, उठाकर चल पड़े और उठाकर रहे, उस समय क्या दिख रहा ? हाथ ही हाथ दिख रहा, चीज नहीं, तो हाथ अपनेमें ही काम करता है। हाथ अपना भी काम करे और दूसरे पदार्थकी भी परिणति करे, ये दो काम नहीं कर सकता कोई भी पदार्थ, क्योंकि काम करना कहलाता है, अपनी अभिन्न क्रियासे, अपनेमें अभिन्न काम करना। जैसे अंगुली अगर मोड़ दी गई, मुड़ गई, तो अंगुलीका जो मुड़नेका काम है वह अंगुलीसे मिला हुआ है य अंगुलीसे बाहर है ? जो मुड़नेकी क्रिया है वह अंगुलीसे बाहर नहीं है। और इसमें जो मोड़ बनी है वह भी अंगुलीसे बाहर नहीं। अंगुलीने क्या काम किया ? अंगुलीका ही काम किया और अगुलीने किस क्रियाके द्वारा किया ? अंगुलीसे जो अभिन्न क्रिया है उसके द्वारा किया।

५३७—दो पदार्थोंके विकार परिणमनोंमें परस्पर निमित्तनैमित्तिकभावकी संभवता होनेपर भी परस्पर कर्तृकर्मत्वका अत्यन्त अभाव—

और दृष्टान्त लो कुम्हार घड़ा बना रहा, जिसे व्यवहारमें कहते हैं कि वहाँ मिट्टीका लोंधा रखा, चाकपर रखा, चाक घूमा और वह कुम्हार उस उस तरहका हाथ चला रहा है जिस जिस तरहका हाथ चलनेसे घड़ा बनता ना तो घड़ा जिस तरह बन जाता है उस तरह उसके अनुकूल कुम्हार अपने हाथका व्यापार कर रहा, मगर यह तो बताओ कि कुम्हारकी क्रिया क्या है? जो कुम्हारसे अभिन्न हो मायने एकमेक हो। कुम्हारकी क्रिया वह क्या है जो कुम्हारमें ही रहती हो ? अपने हाथका चलाना, और मिट्टीकी क्रिया क्या है जो मिट्टीमें ही रहती हो ? मिट्टीका पसरना, कुछ ऊपर सिकुड़ना बस यह मिट्टीकी क्रिया जो मिट्टीसे ही अभिन्न बन रही है वह है मिट्टीकी क्रिया। तो अभेदसे निर्णय करें, निश्चय दृष्टिसे कि कोई पदार्थ क्या करता है ? तो हुआ क्या वहाँ ? जैसे घड़ा बनता है उसके अनुकूल कुम्हार अपना व्यापार कर रहा है, वह व्यापार चेष्टा कुम्हारसे अभिन्न है। तो अभिन्न क्रियाके द्वारा कुम्हार जो कुछ कर रहा है बस वह करना देखो, पर पदार्थमें वह करतूत न देखो क्यों कि प्रत्येक पदार्थ स्वतन्त्र स्वतन्त्र हैं। दो पदार्थोंके परिणाममें निमित्त नैमित्तिक योग तो है, मगर कर्ता कर्म सम्बन्ध नहीं है, और, मिट्टी क्या कर रही वहाँ ? कुम्हारके उस व्यापारका निमित्त पाकर मिट्टी में मिट्टीकी अभेद क्रियासे मिट्टीका ही घड़ा रूप परिणाम बन रहा है, सो मिट्टीकी बात मिट्टीमें देखते जावें, कुम्हारकी बात कुम्हारमें देखते जावें, जो निमित्त नैमित्तिक योग है उसके मात्र ज्ञाता रहें, और निर्णय बना लें कि एक द्रव्य दो का काम नहीं करता। कुम्हारने कुम्हारका ही कार्य किया। मिट्टीने

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

मिट्टीका ही कार्य किया ऐसे ही आत्मा और कर्म इन दो में देखो—इस जीवके साथ कर्म लगे हुए हैं। वे कर्म चीज हैं, केवल एक बोलनेकी ही बात नहीं है। जैसे देखनेमें ये चौकी चटाई आदिक आ रहे हैं, यह स्थूल है, वह सूक्ष्म है कर्म वर्गणा, मगर पुद्गल है वह भी। तो जीव जब कोई भाव करता याने अपने उपयोगको पुद्गल कर्मके उदयके अनुसार विकल्प रूप ढालता है उस समय कर्म बंध जाते हैं, सो जीवने तो अपने रागद्वेष मोह अज्ञानका परिणाम किया। कर्मने जीव विकल्परूप परिणाम नहीं किया, कर्माण वर्गणाओंने अपनेमें कर्मपना किया, परन्तु कर्ममें कर्मपना कर्मसे ही आया। कर्ममें कर्मकी बात देखो। यद्यपि यह सम्बन्ध है कि जीव कषाय भाव रखता है, ज्ञान विकल्प अटपट करता है तो उसका निमित्त पाकर कर्म बंधते हैं, मगर कर्म तो अभिन्न क्रियासे ही कर्मरूप बनते हैं, जीव अपनी अभिन्न क्रियासे ही मोहादिक रूप बनता है। एक द्रव्य दूसरेका कर्ता कुछ नहीं है। न वह दूसरेका कर्ता है, न अपना व परका, दोनोंका कर्ता है। प्रत्येक पदार्थ अपने आपका कर्ता है।

५३७ एकका परिणमन उस एक हीमें प्रतिभात होनेकी मंगलरूपता—

भैया ! ऐसी भावना बनावें कि मेरी ऐसी सुलझी हुई दृष्टि रहे हर एक घटनाको देखकर, अपने आपको निरखकर ऐसी सुलझी दृष्टि रहे कि प्रत्येक द्रव्य अपने आपकी परिणतिसे अपना परिणाम कर रहा है, कोई द्रव्य अपना भी परिणमन करे और दूसरेका भी कर दे ऐसा नहीं होता, वस्तुके स्वरूप की बात देखिये लोक व्यवहारमें कहते ही हैं ऐसा कि उसने अपना भी काम कर लिया, दूसरेका भी कर लिया, पर निश्चयतः प्रत्येक जीव अपने भावोंको ही कर सकता है, अन्य दूसरे पदार्थका कुछ नहीं कर सकता। भले ही निमित्तनैमित्तिक योग है, जैसे यहाँ आत्मामें जो राग परिणाम बना सो पुद्गल कर्मके उदयके अनुसार बन रहा वह काम, फिर भी जीव अपने परिणमनका ही कर्ता है, कर्म अपनी परिणति का ही कर्ता है, ऐसे ही कर्म जो बँधे रहे हैं वे जैसे जीवके भाव बनते हैं उसके अनुसार बन रहे हैं, मगर जीव अपने भावोंका ही कर्ता है, कर्मका कर्ता नहीं है। कर्ममें परिणमन कर्मकी परिणतिसे हो रहा है, तो मुझको सर्वत्र यह ही दृष्टि बने कि एक द्रव्य अपने आपका ही कर्ता है, दूसरे पदार्थका करने वाला नहीं, और अपना भी कर ले, दूसरेका भी कर ले, ऐसी दो क्रियावोंका करने वाला नहीं। देखिये—समस्त उपदेश इसलिए होता कि जीवका मोह, रागद्वेष, भ्रम, व्यग्रता, आकुलता ये सब नष्ट हो जायें, ये सब नष्ट कब होतीं ? जब पर पदार्थमें इसका मोह नहीं रहता। केवल एकको देखनेपर मोह कहां रहेगा, गुरूजी एक दृष्टान्त कहा करते थे कि जिसके एक ही लड़का है उसको क्या चिंता, जो कुछ धन है वह सब उस एकको पहुंचना है, जिसके चार बेटे हैं उसे फिकर होती है—अमुकका यह, होते होते कलह हो जाय तो वहाँ आपत्तिमें आ जाता। तो यह दृष्टान्त देनेका प्रयोजन उन्हें यह बताना था कि जो पदार्थ केवल एक अकेला ही परिणम रहा, अकेला ही एक दृष्टिमें है उस जीवको कहां विपत्ति है ? विपत्ति तो उस जीवको है जो किसी द्वैत पदार्थमें, बाह्य पदार्थमें अपना लगाव रखता है।

५३८ समीचीन ज्ञान द्वारा ही हर स्थितियोंमें शान्तिकी संभवता—

देखो गृहस्थावस्थामें गृहस्थजन सुनकर थोड़ा सोचते होंगे कि क्या बात कही जा रही है, ऐसे काम चलता क्या ? घर भी देखना होता, दूकान भी देखनी होती, सबकी खबर रखनी होती, ठीक है उन्हें सोचो, मगर यह भी सोचो कि इन २४ घंटोंके अन्दर अगर १०-१५ मिनट इस तथ्यपर दृष्टि जाय कि मैं एक अकेला हूं और मैं अपने आपमें अपने आपका ही परिणमन करता हूं, किसी दूसरेका कुछ नहीं बनाता और मैं अपना भी बनाऊँ, दूसरेका भी बनाऊँ, ऐसा दोका भी नहीं करता। चिंतन

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

करते करते अपने उस सहज स्वरूपको जो केवल मेरा ही स्वरूप है उस स्वरूपपर दृष्टि पहुंचे तो वह एक ऐसा अमृतपान है कि जिस अमृतपानके बाद आपका दिन भर बड़े शान्ति संतोषमें गुजरेगा। जैसे किसीको कोई रोग होता है और वह दिनमें एक बार दवा खा ले होम्योपैथिक की या आयुर्वेदिक औषधि तो दिन भर उसका ठीक गुजरता है ऐसे ही आत्मामें देखो कि इस आत्मामें रोग बहुत लगे हैं जिनसे बड़ी व्यग्रता होती है, मगर एक बार इस एकत्व–विभक्त अंतस्तत्त्वकी दृष्टिका अमृतपान कर लें तो इसके प्रतापसे आपका पूरा दिन भला गुजरेगा। यह जीव सुखी शान्त कब होता है? जब अपना अकेलापन नजर आता है, मेरे ये हैं, मैं अकेला नहीं हूं, मेरे साथ अनेक लोग हैं, इस तरहकी जब दृष्टि होती है तो वहाँ चूंकि वह स्वस्थ नहीं है, अपने आत्माके स्वरूपमें ठहरा हुआ नहीं हैं इसलिए वहाँ भी उसे व्यग्रता रहती है, जिस क्षण अपने आपपर दृष्टि जाय कि मैं अकेला अकेलेका ही कर्ता हूं, जो वास्तविकता है, बाह्य पदार्थ जैसा चाहे परिणमें मेरा किसी बाह्यसे कोई सम्बंध नहीं। एक देहाती कहावत है कि लेवा मरे या देवा, बलदेवा करे कलेवा। कलेवा नाम है नास्ताका। नास्ताका अर्थ है– न सता। याने भूख सता रही थी, थोड़ासा खा पी लिया तो यह नास्ता हो गया मानो खाने वाला थोड़ेसे भोजनको कह रहा है कि न सता, न सता, और कलेवा किसे कहते? तो कलेवामें भी पूर्ति नहीं, पर काम चल जाता, मायने शरीर, लेवा मायने लेबे, अर्थात् जो शरीर लेबे, खावे सो कलेवा। तो अब अहाने का अर्थ देखो–मानो कोई आढ़ती है अनाजकी दूकान वाला और बलदेवा था दलाल, जो कि किसानोंका अनाज लेकर आयी गाड़ियाँ विकवा दे, दोनोंका मिलान करा दे, कुछ कमीसन किसानसे लेले कुछ दूकानदार से। दलालका तो काम यही है। तो उस बलदेवा दलालने किसीका अनाज बिकवा दिया। अब खरीदने वाला तो सोचता है कि मैंने महंगा ले लिया, बेचने वाला सोचता है कि मैंने सस्ता बेंच दिया। दोनों परस्परमें कुछ अफसोस सा कर रहे थे, विषाद सा मान रहे थे। उसी प्रसंगमें वह बलदेवा दलाल क्या करता है कि एक नीमके पेड़के नीचे बैठ जाता है, अपने नास्ता की पोटली खोलता है और खाता हुआ कहता जाता है कि लेवा मरे या देवा, बलदेवा करे कलेवा। वह दुःखी हो तो हो, यह दुःखी हो तो हो, मैं तो आरामसे बैठकर कलेवा कर रहा। उसे क्या गम? कमीसन बेचने वालेसे भी लिया और खरीदने वालेसे भी लिया। यों ही ज्ञानी पुरुष किस तरह चिन्तन करता कि भाई जगतमें कोई पदार्थ आता है तो आवो, आता है तो अपने परिणामसे, जाता है वह अपनी पर्यायसे। मेरा न आनेमें कोई लाभ है न जानेमें कोई लाभ! मैं तो एक ज्ञान मात्र हूं, सो वह अपनेमें ही तृप्त रहा करता। तो सुख शान्तिका आधार ज्ञान है, इसे चाहे कोई ताँबेके पत्रपर लिखा-कर रखले, चाहे पत्थरपर लिखा कर रख ले, इसमें अन्य बात नहीं आ सकती।

५४८–शान्तिका आधार सम्यक् ज्ञान–

शान्तिका आधार ज्ञान है। बाह्य संग परिग्रहका मिलना शान्तिका आधार नहीं। और, वैसे भी देखो-बाह्य साँगपर आपका कुछ अधिकार नहीं। पुण्योदय है उसके अनुसार आता है। यह बात एक निमित्तनैमित्तिक योगकी है, पर आपका जो जीव है, आत्मा है, ज्ञान है, उपयोग है उसमें बाह्य पदार्थका न तो रंच प्रवेश है, न आपका अधिकार है किसी परमें, तो सोचिये जब मेरा किसी पर पदार्थ में अधिकार नहीं तो उसके विषयमें उसके संग्रहकी बुद्धि रखकर क्यों अपना रौद्र ध्यान बनाऊँ? जो चल रहा है उसका ज्ञाता द्रष्टा रहूं। आया है जान लिया, चला गया, जान लिया। उसके विषयमें लिपटाव न हो, वह पुरुष शान्त रहेगा। अगला अपना भविष्य सुधार लेगा। जहाँ एक अन्दरमें

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

मुस्किलात है, पाप कर्मका उदय, बुद्धिका बिगड़ना, बाह्यपदार्थोंमें राग उत्पन्न होना। एक यह भी अपनेको कठिनाई है, क्या, कि यह सारा एक जमाना, प्रायः सभी लोग धनकी ओर होड मचा रहे हैं यहाँ बड़े बड़े पद लेकर, और ऊंची स्थिति पाकर और और पद लेकर धन वैभवके संग्रहकी। वहाँ भी मात्र इज्जतकी भावना न रही कि ऐसे भी रहें कि चलो, लोगोंका उपकार करें, लोग सुखी होंगे तो हमारा भी यश रहेगा। अब उस यशको भी कीमत आजकल न रही। कोई एक जमाना था जब कि लोग यशकी बड़ी कीमत समझते थे। आज कल तो लोगोंने धनको महत्त्व अधिक दे दिया है। अधिकारी हो गए तो बस धन जोड़ने लगे और उसे विदेशी बैंकोंमें जमा करने लगे। चुनाव हो तो अधिकाधिक धन लोगोंसे लेना, फिर बादमें चाहे जो कुछ हो, चीजें रहें या न रहें, चाहे जो स्थितियाँ आयें। तो मतलब यह है कि जमाना जो धनकी ओर बढ़ रहा हैं उनको जब हम आप देखते होंगे तो एक कठिनाई यह है कि दिल वशमें नहीं रहता, वह तो इतना बढ़ गया, हमको इतना बढ़ना चाहिए। उन दूसरोंको देख करके चित्तमें तृष्णा जग जाती है। बाहरकी कठिनाई एक यह है तो हर समय आखिर करनेका काम क्या है? करनेका काम है अपनेमें सत्य ज्ञान उत्पन्न करना, अन्यथा वही तृष्णा और उस तृष्णामें देखो एक दो अधिकारी अच्छे भी होते हैं, लेकिन जहाँ बहुलता इस तरहकी हो जाती है तो वे एक दो भी अच्छी गिनतीमें नहीं आते। उनके प्रति भी लोग शक करते हैं। यह एक आजकलका जमाना है, पर जमाना देखकर अपने आपमें आत्माका निर्णय बनाना है। आत्म निर्णय आत्माको देखकर बनावें, बाहरमें देखकर न बनावें। मोह न रहे, रागद्वेष न हो, केवल ज्ञानघन यह अंतस्तत्त्व मेरी दृष्टिमें हो, इसके लिए पहले यह ज्ञान करना होगा कि प्रत्येक पदार्थ अपनी अपनी सत्तामें हैं।

५४१—एक पदार्थ दूसरे पदार्थकी अभिन्न क्रियासे न परिणम सकनेके कारण एकका दूसरेमें कर्तृत्व माननेकी गुंजाइशका अभाव—

भैया, कोई गुंजाइस नहीं कि अनेक साथ मिलकर एक हो जायें। एक परिणामके दो कर्ता होते नहीं एक पदार्थके दो काम होते नहीं, न एक पदार्थकी दो क्रियायें होतीं, क्योंकि जो एक है सो एक है, वह अनेक नहीं हो जाता। जैसे ये दो अंगुलियाँ हैं ये दो किस कारणसे हैं कि एक अंगुली दूसरी अंगुलीका काम नहीं करती अभेद बनकर, निमित्तकी बात नहीं कह रहे, निश्चयकी कह रहे। एक एक ही है। एक दो नहीं बन गया। क्यों नहीं बन गया कि एकने एकका हो काम किया। एक अंगुली दूसरेका काम कर ले ऐसा हो नहीं सकता। अन्यथा एक भी न रहेगा, एक एक ही है अनेक नहीं होता, इससे सिद्ध है कि प्रत्येक पदार्थ स्वतन्त्र है। एकको दूसरा नहीं करता। भ्रमको त्याग दें कि यह मेरा बच्चा है, यह मेरा अमुक है। यह मेरा अमुक होगा, यह बड़ा अंधेरा है और इस अंधेरेमें खुदको ही विपत्ति भोगनी पड़ेगी। उसकी फिकर भी तो रखो कि मेरी जन्म मरणकी परम्परा न चले, इस कामको बनालें तो यह सच्ची बुद्धिमानी है। यहाँके कामोंमें व्यावहारिक बातोंमें चतुराई करनेको सच्ची चतुराई नहीं कहते। तो उन दुःखोंसे छूटनेका उपाय मिलेगा पदार्थोंको स्वतन्त्र स्वतन्त्र निरखनेसे।

आसंसारत एव धावति परं कुर्वेहमित्युच्चकैः दुर्वारं ननु मोहिनामिह महाहंकाररूपं तमः।
तद्भूतार्थपरिग्रहेण विलयं यद्येकवारं व्रजेत् तत्किं ज्ञानघनस्य बंधनमहो भूयो भवेदात्मनः ॥५५॥

५४२ जीवमें विभावोंका प्रभावन—

इस जीवपर अब तक क्या छाया जाता रहा और क्या छाया हुआ रहता है और कितनी जल्दी छा जाता है, इसको समझनेके लिए पहले एक दृष्टान्त लीजिए। जैसे दर्पणमें क्या छाया रहता

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है ? जो सामने वस्तु हो उसका आकार, उसका प्रतिविम्ब सदा छाया रहता है, आप संदूकमें बंद कर देवें दर्पणको तो संदूकका ढक्कन प्रतिविम्बित हो जायगा, आप कपड़ेमें बाँधकर रख दें तो कपड़ेका प्रतिविम्ब आ जायगा। तो जैसे दर्पणमें सामने आनेवाली वस्तुका प्रतिविम्ब छाया रहता है ऐसे ही इस जीवपर अब तक जो कर्मोदय आता रहा कर्मका अनुभाग फूटता रहा वह उसका प्रतिफलन छाया आता रहा और कितनी जल्दी छाता रहा सो बताओ ? दर्पणके सामने अगर दो हाथ दूर कोई चीज आ जाय तो दर्पणमें कितना जल्दी प्रतिविम्ब आ जाता ? प्रतिबिम्बमें गति नहीं हुआ करती। वह तो एक निमित्तनैमित्तिक योग है, तो ऐसा लगता कि जैसे प्रतिविम्ब तुरन्त दौड़कर आ गया, दौड़कर भी क्या आ गया ? उसमें गति कहाँ ? सामने चीज है, दर्पणमें प्रतिविम्ब तुरन्त हो गया। बिजलीकी गतिमें चाहे फिर भी देर हो, बटन दबाया और कोई ५०० गजकी दूरीपर बल्ब लगा है तो चाहे वहाँ देर हो जाय मगर दर्पणमें प्रतिविम्ब आनेके लिए कुछ भी देर नहीं है, फिर भी हम उसे यों ही कहेंगे कि प्रकृष्ट रूपसे तेज दौड़कर आ गया। दौड़ा कुछ नहीं प्रतिविम्ब, निमित्त जिस समय पाया उसी समय प्रतिविम्ब हुआ, मगर पहले न था, अब हुआ इस कारणसे तेज दौड़कर प्रतिविम्ब आया, यों कहना पड़ता है। ऐसे ही आत्मामें पूर्वबद्ध कर्मका प्रतिफलन हुआ वह तुरन्त दौड़कर आया, दौड़नेकी बात यहाँ नहीं है। वैसे तो तुरन्त ही जीवपर अंधेरा पहले न था, अब आया, उस निमित्त को पाकर होने वाला अंधकार अज्ञान रागद्वेष, विकल्प पहले न था, अब आया, इसलिए कहा जाता कि बड़ी तेजीसे दौड़कर ये संकल्प विकल्प आये।

५४३—ज्ञानतिरस्कारमें मुग्ध प्राणीकी विडम्बना—

अच्छा, और जब यह कर्मका अनुभाग फूटा तो जीवने अपनी वैभाविक शक्तिके प्रयोगसे विपरिणाम किया। अस्वभाव भाव, आत्मामें नाना तरहका संकल्प विकल्प यह क्या है ? यह ज्ञान और कर्मरस इन दोनोंका मिश्रण है। हो रहा है खुदका खुदमें ही कार्य, मगर जैसे सफेद उजेला जल रहा हो और वहाँ लाल कागज लगा देवे तो वह उजेला लाल हो जाता है तो क्या वह उजेला लाल है ? उजेला तो स्वच्छताका काम है। लाल होनेपर भी जो स्वच्छताकी बात है वह तो उजेला है और जो ललाईकी बात है वह उपाधिका प्रभाव है, तो ऐसे ही इस जीवपर संयोगवश नाना तरहकी मलिनता रही है। स्वभाव भाव ढक गया, विभाव आविर्भूत हो गया और अज्ञानसे ही मुग्ध हो गया, अब यह भेद नहीं कर पा रहा है सो इस ही अपने विकल्पको मानता कि यह मैं हूँ। मनुष्यको क्रोध क्यों आ जाता ? अगर कोई गाली देता है या अटपट बोलता है तो मनुष्यको क्रोध क्यों आ जाता ? इस जीवमें क्रोध कैसे आ गया ? बात यह हुई कि जीव अगर यह समझता होता कि मैं तो चेतना मात्र स्वरूप हूँ तो उसे क्रोध नहीं आता, पर समझ क्या बैठा ? कर्मरसको आत्मरस। पुद्गल कर्मका उदय होनेपर जो यहाँ विभाव प्रतिफलन विकल्प, जो यहाँ ज्ञानका विकल्प जगा, रागद्वेषका भाव हुआ उसको मान लिया कि मैं यह हूँ और फिर उस मैं में फर्क पड़ गया है। दूसरा कोई गाली दे रहा तो यह सोच रहा कि यह मेरे विरुद्ध कह रहा, क्योंकि राग तो है और तरहका और वह बात कर रहा और तरह और रागमें मान लिया कि यह मैं हूं, तो उसे क्रोध आ जाता है। कषायें दूर होनेकी औषधि सहज आत्मस्वरूपका परिचय करना है, और कोई उपाय नहीं है कि जिससे कषायें दूर हो सकें। जितना भी क्लेश है वह सब कषायोंका क्लेश है। और, कषाय बढ़ते हैं कषायको अपनानेसे।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

५४४—ज्ञानका महत्त्व समझनेपर विडम्बनाओंका पलायन—

कषायोंको आत्मतत्त्व न मानें तो ये कषायें बढ़ नहीं सकती। कषायें हो नहीं सकती, मिट जायेंगी। जैसे वृक्ष कट गया तो वह कब तक हरा रहेगा। सूखनेकी ओर है। ऐसे ही जब कषायोंकी जड़ खतम हो गई तो कषायें कहाँ से हरी रहेंगी ? सोचो कषायोंकी जड़ क्या है ? कषायोंको आत्मस्वरूप मानना यह कषायोंको हरा करनेकी जड़ है। ज्ञानी जीव कषायोंको आत्मस्वरूप नहीं मानता। विषयों से भिन्न केवल ज्ञानमय अपने आपको अंगीकार करते हैं, तो कषायें कब तक रहेंगी ? लेकिन अज्ञानी जीव इन विभावोंमें, कषायोंमें और आत्माके सहज स्वरूपमें भेद ही नहीं समझ रहा है और मान रहा है उन कषायोंमें उपयोग देकर कि यह मैं हूं, सो उसको विडम्बना चलती है। भला बतलावें, जन्म मरण क्या आत्माकी चीज है ? जन्ममें कौनसा आनन्द आता ; मरणमें दुःख प्रगट नजर आता। जन्म में भी दुःख, मरणमें भी दुःख। कल्पना करो, यदि हमारा इस भवमें जन्म न होता, कहीं भी जन्म न होता और मैं जो हूं सो अकेला ही होता तो भला बतलाओ ये कोई कष्ट आते क्या ? और मोटी बात यह देख लो कि अगर हम इस मनुष्य जन्ममें उत्पन्न न होते और न जाने किस जगह और क्या होते, कीड़ा मकोड़ा कुछ भी होते तो यहाँकी कोठी, यहाँका शहर, यहांके लोग, वैभव आदि इनमें कोई राग बनता क्या ? मोह बनता क्या ? और क्या न होता। यदि कहीं भी जन्म न हो और मैं अकेला ही होऊँ तो वहाँ दुःखका काम नहीं।

५४५—विषयार्थी जनोंकी करतूत—

जन्ममें दुःख, मरणमें दुःख। किसी बालकका जन्म होते समय घरके लोग तो खुश होते हैं और जब बालक पेटसे निकलता है तो उसे बड़ा कष्ट होता है, पर मोहियोंको क्या, वे तो अपनी कषायके अनुरूप आनन्द मना रहे। और जिसके लिये आनन्द मना रहे, वह तड़फ रहा, रो रहा। जन्मका बड़ा कष्ट होता है। तो यहाँ दूसरेकी किसे पड़ी है, सबको अपनी-अपनी पड़ी है। नहीं तो बतावो वह बच्चा तो पैदा होते समय बड़ी वेदना पा रहा, रो रहा, और कभी कभी तो फस जानेपर बुरी तरहसे निकाला जाता। उसे तो कष्ट हो रहा और कुटुम्बमें खुशियाँ मनायी जा रहीं, ढ़ोल बज रहे। तो कोई किसीका किसी बातमें साथी नहीं है, और न कोई किसीका वास्तवमें कुछ है। क्या छा रहा इस जीवपर ! पूर्वमें बाँधे हुए कर्मोंका अँधेरा छा रहा है। जो ज्ञानी है वे ऐसा ज्ञान प्रकाश उजालते हैं कि अंधेरा दूर भाग जाता है। जो अज्ञानी हैं उनमें ज्ञानप्रकाशका सामर्थ्य नहीं, तो अँधेरा गहरा होता जाता है। तो इस जीवने अब तक किया क्या? अनादिकालसे मैं करता हूँ मैं करता हूं इस प्रकार क्रियाकी होड़में बड़ी तेज दौड़ इसने लगायी। अगर एकेन्द्रिय हुआ तो वह कर्मफलमें ही मैं यह हूं, मैं भोगता हूं, इसी मैं के लिए दौड़ लगायी त्रस जीव हुआ तो कर्म व कर्मफल दोनों चेतनाओंके लिये दौड़ लगायी। मैं करता हूं, मैंने किया था, अमुक काम किया, अमुक काम कर दूगा, यह भोग रहा हूं, इसे भोगा, यह भोगूंगा। खूब शानके साथ कहते हैं मोहीजन कि अगर मेरा यह नाम है तो इसका खप्पर-खप्पर बिकवा दूंगा। अगर न बिकवा दूं तो मेरा नाम न कहना। वाह कैसी शान है अगर इस नाम को ही आत्मा समझ रखा, जो इस जीवका कलंक है उस शानको ही आत्मा मान लिया तो इस जीवका गुजारा कैसे बने ? इस जीवने अनादि कालसे मैं करता हूं, मैं करूंगा, ऐसी ही तेज भावनाओंमें दौड़ मचा रखी है। अब जरा यहाँ मनुष्योंको ही देखलो, मैं करूंगा, मुझे करना है इस ख्यालमें, इतनी तेज दौड़ लग रही कि किसीको यह धीरता नहीं कि क्या हर्ज है, स्टेशन जाना है यहाँसे कोई तीन फर्लांग दूर है अभी थोड़ी देरमें पहुंच

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जायेंगे,सो नहीं, बस, अभी पहुचना है तुरन्त पहुचना है, कितनी तेज चाल चल रहे हैं, जैसे मानो किसी चौहट्टेपर बहुत सी गिजाइयाँ निकली हों वे गिजाइयाँ खड़ी नहीं रहतीं, वे चलेगी, सरसरयेंगो, उपर चलेंगी, नीचे चलेंगी। तो यहाँ भी जैसे बहुत दो पैरवाली गिरजाइयां निकली सी हैं सो उनका मचमचाना रहता है इस तरहसे आज इस लोकमें देखो तो किस किस प्रकारसे लोग कहते किस किस कामको कि मैं करता हूं करूँगा इन भावोंसे तेज दौड़ लगा रहे हैं, चिलबिला रहे है छटपटा रहे हैं और उसीमें अपनी मौज मान रहे है जैसे तेज चरपरे लाल मिर्च खाने वाले लोग लाल मिर्च भी खाते जाते, मुखसे सी सी भी करते जाते आंखोंसे अश्रु भी बहते जाते फिर भी कहते कि थोड़ी और दे दो, तो जैसे लाल मिर्चके खानेमें—मौज भी मनाते जाते, व्यग्र भी होते जाते उसी प्रकार इस मोहके कारण दुःखी भी होते जाते और उसीमें मौज भी मानते जाते।

५४६—मोहकी करामत—

एक कथा है चारुदत्त सेठकी। वह बड़े सरल पुरुष थे, उन्हें दुनियाकी कोई खुरापातकी बात न मालूम थी तो घर वाले उनसे परेशान हो गए कि यह तो स्त्रीसे बोलता भी नहीं, यह तो उसके कमरेमें ही नहीं जाता। इसे कुछ पता ही नहीं। तब घर वालोंमें चाचाने एक योजना बनायी—क्या कि एक हाथी वालेसे कह दिया कि देखो हम लोग अमुक वेश्याके मकानवाली सकरी गलीसे आयेंगे, तुम उसके सामनेमें थोड़ी देररके लिए अपना हाथी चला देना, सब समझा दिया। तो जब चारुदत्त निकला उस वेश्याकी गलीमें उस जगह हाथीको तेज चलता देख डरके मारे चाचा व वह चारुदत्त उस वेश्याके घरमें घुस गये। यह तो कराना ही था उन घरवालोंको। अब क्या था, वेश्याके घर जो वेश्याकी लड़की थी उसके संग शतरंज, तास वगैरह खेलने बैठा दिया। धीरे धीरे उसका खेलमें मन रम गया, और भी अनेक प्रकारके ऐब आ गए। चाचा अपना काम कर घर वापिस आ गया। लेकिन चारुदत्त वहाँ ही रहा। अब वह उस वेश्याके ही घर जब चाहे बना रहे। धीरे धीरे अपना सारा धन चारुदत्तने बरबाद कर दिया। जब धन खतम हो गया तो उस वेश्याने चारुदत्तको अपने घरसे बाहर निकाल देनेके लिए अपनी लड़कीसे कहा। वहाँ उस वेश्याकी लड़कीने यही कहा कि अब मैं वह वेश्या नहीं हूँ मेरा कुछ दूसरा भाव नहीं है। मैने तो इन्हें सच्चे मनसे अपना स्वीकार कर लिया है। आखिर उस वेश्याने चारुदत्तको एक संडासमें ढकेल दिया। होगी कोई बड़े मुख वाली संडास, सो वह उसके अन्दर घुस गया, बिष्टासे भिड़ गया, वहीं एक सुवर आया, उसे चाटने लगा। बहाँ भी उस चारुदत्तने यही समझा कि मुझे तो वह वेश्याकी लड़की प्रेमसे छू रही है, बड़ा अनुराग कर रही है। तो देखिये। ऐसी दुर्गती हुई उसचारुदत्तकी,बादमें वह सुधरा यह बात अलग है। तो पाप कर्मोंका तीव्र उदय जब होता तब कैसा विकट अन्धेरा छा जाता है इस जीवपर कि यह न जाने कैसी कैसी दुर्गतियाँ पाता है।

५४७—अहंकारसे प्राणीकी विडम्बितता—

बस मैं करूंगा, मैं करता हूँ, इस ही धुनमें यह जीव बड़ी घुड़दौड़ लगाये चला जा रहा है। सो यह मोहांधकार बड़ा दुर्निवार है, मुश्किलसे हटाया जा सकता है। जैसे, दुराचारकी ओर यह मनुष्य बहुत जल्दी लग सकता है, मगर सदाचारकी ओर लगनेमें उसे कठिनाई महसूस होती है। आज धर्मोंकी जो और प्रगतियाँ चल रही हैं वे किस कारण चल रही हैं? बड़ा सस्ता धर्म कर दिया, मांस भी खाना, अंडे भी खाना, शराब भी पीना, गांजा, भांग वगैरह नसीली चीजोंका भी सेवन करना और धर्मात्मा भी कहलाना। जहाँ कोई संयम नहीं, जहां कुछ कष्ट न करना पड़े जैसा चाहे रह लिया,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अपनेको बड़ा मान लिया, बड़ा धर्मात्मा । कितना सस्ता धर्मका नुस्खा बता दिया जिससे कि अनेक प्रकारके और और मजहब बढ़ रहे, और जो धर्मकी सच्ची बात कहता है, जिसमें व्रत, तप, संयमका आदर दिया हुआ है, बस उसका अब पूछनेवाला कोई नहीं । और हो भी पूछनेवाले, तो वे भी घट जायेंगे अगर उनको सस्ता धर्म कोई समझमें आता है तो । यह बड़ा दुर्निवार है अहंकार अंधकार । सो बात यहाँ छा रही है, भीतर निरखो मेरेपर क्या बीत रही ? मैं यह शरीर नहीं । जो शरीरके ऊपर देखे कि क्या बीत रहा है । ऊपरसे धोती, कुर्ता, टोपी सजे लगे हैं, कुछ नहीं बीत रहा । अरे भीतरमें तो निरखो, यहाँ क्या बीत रहा ? संकल्प विकल्प, अहंकार ममकार, यह करना वह करना बस करिष्यामि करिष्यामि करिष्यामीति चिन्तितं । मरिष्यामि मरिष्यामि मरिष्यामीति विस्मृतम् " याने मैं करूँगा, मैं करूँगा, यह बात बिल्कुल भूल रहे । तो पर पदार्थोंमें कुछ करनेका जो परिणाम है यह घोर अंधकार है इसमे बुद्धिकाम नहीं देती । भैया श्रद्धा सत्य रखें फिर गृहस्थोंमें जो कुछ करना पड़े तो वह इस प्रकारका करना बनेगा कि जैसे किसी कैदीपर कोई सिपाही सवार होकर कह रहा है कि तुम यह काम करो, उस कैदीको वह काम करना पड़ रहा, मगर चित्तसे वह उस कामसे विरक्त है अर्थात् करना तो नहीं चाहता । बस ऐसे ही इन कर्मोंके कैदी गृहस्थको करना पड़ेगा सब कुछ , दूकान धंधा करे, सारे काम करे, घर बसाये, व्यवहार रखे, मगर ज्ञानी गृहस्थ तो यह जानता है कि किसी भी पर पदार्थमें कुछ भी कर सकनेमें मैं समर्थ नहीं हूँ । हो रहा है सब प्राकृतिक, आटोमेटिक, निमित्तनैमित्तिक, पर प्रत्येक पदार्थ अपने आपमें ही अपनी परिणति कर सकता है । दूसरेमें कुछ नहीं कर सकता ।

५४८—भूतार्थका आश्रय कर बिडम्बनासे दूर रहनेका अनुरोध—

यह जीव अब तक पर तत्त्वोंमें, मैं यह करता हूं, मैं वह करता हूँ इस प्रकारकी दौड़के कारण यह महान अहंकार, अंधकारमें फँस गया । अच्छा फंस तो गया किन्तु जैसे यहाँ हरएक कोई सोचता है चाहे कितना ही फँस जाय फिर भी यह सोचता कि अब तो बच लें, अब तो मार्ग दृढ़ बनालें,अब तो कुछ सुलझेरा बनालें, तो अपनेको ऐसा सोचना है कि है यह हालत, मगर अब क्या करना चाहिये ? कैसे इन झंझटोंसे छूटें ? उसका उपाय क्या है ? देखो जिस भावसे, जिस विकल्पसे हम दुखी रहा करते हैं उस भावको हमें नष्ट करना चाहिये । कैसे नष्ट हो? बस कैसे कष्ट आया था बताओ? इन विकल्पोंमें यह मैं हूँ ऐसा अज्ञान रखनेके कारण यह विकल्प आया था । अरे तो सीधी औषधि है उन विकल्पोंमें यह बुद्धि लावे कि यह मेरा स्वरूप नहीं, यह मेरे स्वभावकी चीज नहीं । यह नैमित्तिक छाया है । मैं तो सहज ज्ञान स्वरूप हूं । ऐसे एक भूतार्थ तत्त्वका याने शुद्धनयके विषयभूत इस सहज आत्मस्वरूपका अगर एक बार भी ग्रहण किया जाय, परिग्रहण किया जाय तो फिर यह बन्धन न ठहरेगा, बोलो क्या करता, इस विडम्बना से छूटनेके लिये क्या उपाय करना है ? जो भूतार्थ तत्त्व है याने अपने आपमें सहज अनादि अनन्त जो भाव है उस भावरूप अपनेको स्वीकार करना है कि मैं यह हूं, सब विडम्बना दूर हो जायगी । यदि एक बार भी इस सहज ज्ञानस्वरूपको स्वीकार करनेके कारण ये संकल्प विकल्प, यह अज्ञान अन्धकार दूर हो जाय तो ज्ञानघन इस आत्माका फिर बन्धन न होगा । एक बार अज्ञान मिट जाय तो बस वह मिट चुका । अब अज्ञानमें रहने वाली व्यग्रता न होगी ।

५४९— सत्यस्वरूपके परिचयके प्रकाशका महत्व समझनेके लिये एक लौकिक दृटान्त—

बाजारमें एक चित्र छपा कार्ड आता है जिसमें वृक्षोंके दो तीन चित्र बने रहते हैं, उन चित्रोंके विषयमें कोई किसीसे पूछता कि बताओ इन चित्रोंमें जीव पदार्थोंके भी चित्र है क्या ? तो वह बहुत

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बहुत देखता, खूब देखकर हैरान होता और कह देता कि इसमें तो किसी भी पशुका चित्र नहीं है। इसमें तो केवल पत्ती वाले वृक्षोंके चित्र हैं। तो कोई पुरुष कहता है कि देखो इन वृक्षोंके बीचमें यह जो खाली (Blanks) जगह दिख रही, इसमें यह देखो मुख बना है, ये देखो पैर बने हैं, यह देखो पेटका हिस्सा बना है, ये देखो कान बने हैं, इधर यह देखो पूछ बनी है, तो यह खरगोश बन गया ना? हाँ बन तो गया खरगोश। अब वह भली भांति समझ गया कि हाँ इसमें इस तरहसे खरगोश बना है। फिर उसी चित्रमें दूसरी खाली जगहोंमें दिखाता है तो इसमें कोई चार पाँच खरगोशोंके चित्र मिल गए। देख लिया कार्डमें खरगोशके चित्र। अब उसे कोई वैसे कितने ही कार्डने दिखा तो झट वह बता देगा कि ये देखो ४-५ खरगोशों के चित्र बने हैं। उसे अब उन खरगोशोंके चित्रोंको देखनेमें किसी प्रकार का विलम्ब नहीं लगता। उनके देखनेमें किसी प्रकारकी व्यग्रता नहीं होती, कोई दिखानेपर तुरन्त ही उन चित्रोंको दिखाकर बता देता।

५५० सत्यस्वरूपके परिचयके प्रकाशका महत्त्व

यह ज्ञानानन्दनिधान सहज परमात्मतत्त्व भगवान आत्मा जो ज्ञानसे परिपूर्ण सहज अनन्त आनन्दमय है इसका तो इसे पता नहीं है और ज्ञान और आनन्द सो चाहिए इसे जरूर, कोई मनुष्य यह धैर्य नहीं रखता कि अजी मुझे आनन्दकी क्या जरूरत? मत मिलो, मुझे जाननेकी क्या जरूरत? जाननेमें मत आये, हर एकके दिलमें जानने और आनन्दकी धुन लगी है। जानना चाहता है और आनन्द पाना चाहता है, पर ज्ञान और आनन्दका जो स्वरूप है, निधान है, स्वयं है उसका इसको सुध नहीं, पता नहीं तो खोजनेमें व्यग्र हो रहा, यहां मिलेगा आनन्द, घरमें मिलेगा आनन्द, इस चीजके खानेमें आयगा आनन्द, अमुकसे प्रीति रखनेमें आयगा आनन्द, कैसा डोल रहा, क्या क्या संग्रह कर रहा, आनंद पानेके ख्यालमें व्यग्र हो रहे? और आनन्द मिल नहीं रहा। ऐसी स्थितिमें कोई गुरु, ज्ञानी संत बतायें कि देखो तुम्हारा आनन्द हम बताते हैं, जहाँ है, हम तुमको वहाँ लिए जाते हैं।—बड़ी अच्छी कृपा होगी महाराज। अच्छा बैठ जावो स्थिर आसनसे सीधे, तुम्हारा आनन्द यहीं मिलेगा। तुम बाहरकी सब बातोंका ख्याल छोड़ दो, क्योंकि बाहरके किसी भी पदार्थमें तुमने आज तक आनन्द तो नहीं पाया। सबने दगा दिया ना? सबका वियोग हुआ ना? उनके सम्बंधमें कष्ट पाया ना? तो सब एक बार इतना साहस बनायें कि उन सारे पदार्थोंको भूल जावें, सबका ख्याल छोड़ दें और अन्तरमें देहका भी ख्याल छोड़कर आँखें मींच लो, इन्द्रियकी कोई भी तर्कणा न रखो, बहुत भीतर आवो, इस देहका भी भान छोड़ दो, समस्त बाह्य पदार्थोंका ध्यान छोड़ दो, बस विश्वाससे बैठ जावो कि जब हमें कहीं भी आनन्द न मिला तो सबका एक साथ परित्याग कर दें, ज्ञान द्वारा ख्याल छोड़ दें, विश्वाससे बैठें, और इस हृदय प्लेटफार्मको बिल्कुल विलयन कर लें, कुछ यहाँ न रहे, तो देखो यह तो स्वयं रहेगा, यह तो हटाया नहीं जा सकता, बाकी सब हटा दिया तो जो स्वयं है, ज्ञानघन है बस वही उड़ेलकर बड़े प्रवाहसे वेगसे इसको जो दर्शन देगा। यह अपने ज्ञानमें उस सहज ज्ञानस्वरूपका अनुभव करेगा। ऐसा अगर एक बार भी इस सत्य तत्त्वके प्रकाशसे यह विकल्प जाल विलयको प्राप्त हो जाय तब फिर ज्ञानघन इस आत्माका फिर बंधन नहीं हो सकता और जो निर्बन्ध है सो ही कल्याण, सो हो आनन्द, सो हो शान्ति। तो दृष्टि यह होनी चाहिए अपने आपमें कि मैं सहज ज्ञान ज्योति स्वरूप हूं अन्य कुछ नहीं हूं।

आत्मभावान् करोत्यात्मा, परभावान् सदा परः।
आत्मैव ह्यात्मनो भावाः परस्य परं एव ते॥५६॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रत्येक पदार्थका अपने अपनेमें कर्तृत्व

आत्मा और कर्म इन दोनोंका व्यापार जो बन रहा, इसके भीतर जो इन दोनोंकी क्रिया चल रही है उनके सम्बंधमें विचार किया गया कि आत्माके भावोंको आत्मा करता है और कर्मोंके भावोंको कर्म करते है। भाव याने परिणाम। निश्चयसे आत्माके परिणमनको करनेवाला आत्मा और पर पदार्थके परिणमनको करनेवाला वही पर पदार्थ। मोटे रूपसे भी देखो तो बाहरमें यह ही नजर आयगा कि एकके कामको वही करता है, दूसरेके कामको वही दूसरा करता है। हाँ विकारमें एक निमित्तनैमित्तिक योगकी बात जरूर है। कोई जैसे दूसरेका हाथ पकड़कर खींच ले जाता तो कहता है कि यह तुझे पकड़ कर खींच ले गया, मगर निश्चयसे देखो तो जितना यह एक है उसका काम उसी में है, दूसरेका काम दूसरेमें ही है, तो देखिये आत्माके भावोंको वही आत्मा करता है और पर भावोंको पर ही करता है, क्योंकि जो आत्माके भाव हैं वे आत्मा ही है। जैसे ये दो अंगुली है छोटी बड़ी तो इनमें एक अंगुली दूसरीका क्या कार पायेगी प्रत्येक अंगुली? अपना ही काम कर पायेगी। अपनेमें मुड़ले अपनेमें कुछ भी बदल करले। यह छोटी अंगुली अपना ही काम करेगी, यह बड़ी अंगुली अपना ही काम करेगी, क्योंकि छोटी अंगुलीमें जो परिणमन होगा, गोल संतुलन आदि सो वह आखिर यही अंगुली हो तो रही, दूसरी तो नहीं बन गई। बड़ी अंगुली जो अपनेमें परिणमन करेगी वह यही तो रही, दूसरी तो न बन जायेगी यहाँ आप कई मनुष्य बैठे है तो ये सभी पुरुष अपना अपना व्यापार करते है, कोई दूसरेकी परिणति तो नहीं करता, आपकी जो चेष्टा है वह आपमें ही रहती है, परकी जो चेष्टा है वह परमें ही रहती है। तभी तो यह कह पाते है कि आप आप है वह दूसरा है। तो जगतमें जितने भी पदार्थ हैं वे सब अपना अपना ही परिणमन करते हैं, यह बात इस प्रकरणमें बतलायी जा रही है। अब जरा यह सिद्धांत आप अपनेपर घटावो, मैं यह केवल ज्ञानमय पदार्थ अपना ही काम कर पाता हूं। भाव बनाऊँ, ज्ञान करूँ, मैं अपना ही काम कर पाता, दूसरे अपना काम करते। जो ऐसा नहीं मानते उनको क्यों आकुलता होती कि बात तो है सही यह कि प्रत्येक जीव भिन्न-भिन्न अत्यन्त स्वतंत्र हैं, एकका दूसरेपर रंच भी अधिकार नहीं। वस्तुस्वरूप बतला रहा यह, लेकिन यह मोही दूसरेपर अपना अधिकार समझता है, बस यही कारण है कि जो हम चाहें वैसा होता नहीं और जब वैसा होता नहीं तो अपने कारणसे दुःखी होते हैं। क्यों दुखी होवें कोई किसी दूसरे पदार्थका करने वाला नहीं।

पर व परभावसे भिन्नता समझनेके लिये एक दृष्टान्त

दृष्टान्त लो जैसे एक यहाँ दर्पण है, दर्पणके सामने एक खिलौनेका हवाई जहाज रखा है, उसका सन्निधान पाकर दर्पणने उसके अनुरूप अपना प्रतिबिम्ब बनाया है। अब यहाँ चार बातें समझियेगा। दर्पण, दर्पणमें आया हुआ प्रतिबिम्ब, वह खिलौना, खिलौनेका रंगरूप। यहाँ चीजें तो दो हैं - खिलौना और दर्पण। बतलावो दर्पण क्या खिलौनेकी परिणति करता है? खिलौनेमें क्या कोई बदल बदल करता हैं? अरे दर्पण अपनी जगह है। उस खिलौनेमें ही हो रहा, रंग बदले, चले, फूले, जो भी बात बने वह उसका उसमें है, दर्पणका दर्पणमें है। अभी स्वच्छता थी अब सामने उस पदार्थका सन्निधान पाकर उस स्वच्छताका विकार बन गया पर दर्पणने जो कुछ किया सो अपनेमें ही तो किया बाहर नहीं किया, क्योंकि दर्पणका जो प्रतिबिम्ब हैं वह दर्पण ही तो है। स्वच्छता रूप न रहा, विकार रूप बन गया, और खिलौनेमें जो रंग रूप है वह वही तो है, उससे अलग नहीं। तो इस निगाहसे अगर दुनियाँ के पदार्थोंको निरखा जाय तो इस जीवको तो फिर मोह उत्पन्न होगा, बेसुधी न रहेगी। यह इसका कुछ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

परमार्थ जीव की पर व परभावसे विविक्तताके प्रकरणमें जीवके नास्तित्वका निराकरण—

उक्त दृष्टान्तकी भांति ही यहाँ निरखो कि जीव और कर्म ये दो चीजें हैं, जैसे जीव अनुभव में आता है कि मैं कुछ हूं, मैं हूं, ऐसा सोचते हुए जो कुछ भी भाव होता है, जीव समझता है जिसे कि यह मैं हूं, वही एक वास्तविक चीज है जीव की, अनेक लोग तो जीवके बारेमें संदेह रखते हैं, कहते हैं कि जीव कोई चीज नहीं, यह तो एक भ्रम लगा रखा है नास्तिक चार्वाक लोगोंने कहा, उनका कहना यह है कि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु ये मिल गए तो एक जीव बन गया, जीव अलगसे कोई वस्तु नहीं, और कहते हैं कि ये चारों बिखर गए तो जीव जड़से नष्ट हो गया। जीव कोई अलग चीज न था, इन का मिलना और इन्हींका बिछुड़ना, इसीको ही जीवका जन्म मरण कहते हैं, मगर ऐसा कहने वाले यह तो सोचें कि जीवमें तो है चेतनता, ज्ञान, समझकी बात और बाह्य पृथ्वी जल, अग्नि, वायु भौतिक, इनमें चेतना है नहीं तो जड़ पदार्थ कितने ही मिल जाये, कैसा ही उनका मिश्रण बन जाय, लेकिन जड़ पदार्थोंसे कहीं चेतनाकी बात आ सकती है ? ये जाति दो हैं, चेतन जातिका पदार्थ अलग है, अचेतन जातिका पदार्थ अलग है, अचेतनोंका पुञ्ज मिलकर कहीं चेतन नहीं बन सकता है।

५५४ पर व परभावसे परमार्थ जीवकी विविक्तताके प्रकरणमें जीवके क्षणस्थायित्वका निराकरण—

कुछ दार्शनिक ऐसे भी हैं कि जो कुछ कुछ तो जीवकी बात मान लेते हैं मगर उसे यथावत् नहीं मान सकते। जैसे क्षणिकवादी उनका कहना है कि जीव उत्पन्न तो होता है मगर वह एक समयको होता है, दूसरे समय वह नहीं रहता, एक समयको जीव आया, दूसरे समय न रहा, समयके मायने एक सेकेण्डमें अनगिनते समय होते, उनमेंसे एक समयको जीव उत्पन्न हुआ, दूसरे समय जीव नहीं रहता। उनसे कोई पूछे कि हमको तो ऐसा लग रहा कि मैं तो ५०–६० सालका हो गया, वहीका वही हूँ जो बचपनमें था सो ही अब हूँ, और भूली पिछली बातें याद आती हैं तो वही हूँ तब ही तो याद आती हैं इस प्रश्नपर उनका यह कहना है कि नया जीव उत्पन्न होता है और पुराना जीव खत्म होता है सो वह पुराना जीव अपना चार्ज नये जीवको दे जाता और वह मिट जाता, तो क्या कहना है कि जो जीव खतम हो रहा वह अपनी बात उस नये जीवको सौंप देता, अब उसको वह सम्हालेगा, वह भी तो मिटता, सो वह तीसरेको सम्हाल कर जाता, इस तरह देहमें एक ही दिनमें अनगिनते जीव पैदा हो जाते हैं, एक जीव नहीं है और वे एक दूसरेको सम्हाल कर चले जाते हैं, लेकिन यह भी कहना उनका जीव नहीं माननेकी तरह है, अगर ऐसा होने लगे कि एक जीव दूसरे जीवको सम्हाल जाय तो भला इस ही देहमें क्यों ऐसा हो रहा ? कोई जीव किसी अन्य देहके जीवको क्यों नहीं अपना चार्ज सम्हाल देता ? इस बातका विचार करें तो बात यही आयगी कि जीव मैं हूँ वही एक, किन्तु प्रति समयमें उस की नई–नई अवस्थायें बनती हैं, तो मुझमें जो अवस्थायें बनती हैं उनका करने वाला कोई दूसरा नहीं।

५५५ कर्मरससे ज्ञानस्वरसकी भिन्नता—

यद्यपि ज्ञान विकल्प रागद्वेष ये सब चलते हैं, लेकिन भले ही चलें ये कर्मोदयका निमित्त पाकर पर उस कर्मोदयके और अपने विषयमें ज्ञान इस तरहसे ढाल लें कि इस कर्त्तव्यको करने वाला मैं, और कर्मका करने वाला कर्म, और जैसे दर्पणमें वैसी ही फोटो आती है जैसी कि चीज सामने हो। हैं दो बातें अलग-अलग, वह चीज अलग है, दर्पण अलग रखा, पर दर्पणमें जो फोटो आयी वह दर्पणका ही परिणमन तो है मगर अब उस सामने वाली चीजके अनुरूप जैसा है वह वैसा दर्पणमें प्रतिविम्ब बना, इस का कारण क्या है ? कि दर्पण है एक स्वच्छ पदार्थ उसमें उस ही अनुरूप झलक आयगी जैसी कि चीज

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सामने है, यही बात आत्मामें है, कर्मके अनेक भेद हैं–मिथ्यात्व, अविरति, कषाय, अज्ञान और उनके भी अनेक भेद, तो जैसे–जैसे वे कर्म हैं उनका सन्निधान पाकर जीवमें वैसी ही वैसी फोटो आयी, छाया आयी, प्रतिविम्ब हुआ, किस ढंगसे ? ज्ञान जिस तरहका विकल्प करे, सोचे, उस ढंगसे हुआ । तो ऐसा जो स्व व परमें अभेद स्वीकार करना है,यह सब विकट कर्मरस है, ज्ञानरसमें मिल गया है इसलिए ऐसा ऐसा विश्वास बना है, जो जीव कर्मरससे जुदा अपने स्वरूपको माने वह कर्मरससे हट जाता है, भीतरमें मिथ्या जो भेद विज्ञान करता है । उस पुरुषको सम्यक्त्व हुआ और वही भव्य जगतके समस्त पदार्थोंको भिन्न, अपने लिए अहित व असार समझता है ।

५५६ परसे लगाव रखनेमें विडम्बना एवं विपत्ति–

देखिये–जीवनमें दुःखका कारण यह एक ही है–पर पदार्थके प्रति अपना लगाव रखना, मोह रखना, अज्ञान रखना, यह ध्यानमें रहना कि ये सब मेरे ही तो हैं, अरे मेरे मेरे कहने वाले किसी दिन अचानक ही इस देहको छोड़कर बिदा हो जावेंगे, यहाँका कुछ भी समागम साथ न जायगा । यहाँसे मरकर न जाने कहाँ उत्पन्न हुए और फिर उसके लिए यहाँकी चीजोंसे क्या मतलब ? फिर यहाँ की चीजोंसे उसे कुछ सुविधा मिल पायगी क्या ? अरे कोई सुविधा न मिलेगी । यह जीव अकेला ही जन्मता है, अकेला ही मरता है, अकेला ही आगे जाता है, और जहाँ जहाँ जैसा–जैसा संग मिलता वहां उस ही में रम जाता । बस यही व्यापार इस जीवका अनादिकालसे चला आ रहा, जब इसको ज्ञान जगे कि यह मैं हूँ, ज्ञानमात्र अंतस्तत्त्व मैं हूँ, अन्य कुछ मैं नहीं, मेरा सर्वस्व यह है, इस हीमें मेरी दुनिया है, यहाँ ही मेरी परिणति होती है, ऐसा एक अपने आपके स्वरूपका परिचय बने तो अज्ञान छूट जायगा, सही बोध होगा । बाहरमें मेरा कहीं कुछ नहीं, अन्तस्तत्त्वका अनुभव हो, बस मुक्तिका मार्ग मिल गया, शान्तिका रास्ता उसे मिल गया, कर्तव्य जीवनमें एक यही है कि मोह न रहे, बड़े बड़े सम्राट्, चक्रवर्ती हुए हैं, वे ६ खण्डका राज्य भोगते हैं किन्तु वहां भी जो ज्ञानी हैं, उनके रंच मात्र भी मोह नहीं है, हाँ राग तो चल रहा है, पर मोह नहीं है, रागमें और मोहमें अन्तर है । दुःख तो रागमें भी है मगर मोह का दुःख कठिन दुःख है,क्योंकि मोहमें तो है बेसुधी, अत्यन्त लगाव और राग है परिस्थिति वश ।

५५७ राग और मोहकी परिस्थितियोंके प्रभाव–

परिस्थितिवश प्रेम होनेको राग कहते हैं और अज्ञानवश पर पदार्थोंमें आसक्त होनेको मोह कहते हैं, यह बात सब लोग समझ सकते हैं । आखिर बीमार तो प्रायः सभी होते हैं, कहीं कोई बीमारी हुई, कहीं कोई रोग हो गया, तो उस बीमारीके समयमें वैद्यसे भी राग, दवाईसे राग देख लो उस पलंग से राग रहता कि नहीं, बैद्यको बुलानेके लिए खूब चित्तमें प्रेम बनाते कि नहीं ? पलंग अच्छा न बिछा हो तो झुझलाते कि नहीं ? उस रोगीको पलंगमें राग, औषधिमें राग, वैद्यमें राग है, मगर मोह नहीं है । अगर इन चीजोंमें मोह होता तो रोगीके चित्तमें यह बात रहती कि बस ऐसा ही पलंग मुझे जीवन भर मिले, ऐसी औषधि मुझे जिन्दगी भर मिलती रहे, और यह वैद्य जी जिन्दगी भर मेरे पास आते रहें, चाहे ५) प्रतिदिनके बजाय २०) प्रतिदिन खर्च हो, इन सब चीजोंसे मुझे बड़ा आनन्द है, ऐसी बात तो उस रोगीके चित्तमें नहीं रहती । उसे परिस्थितिवश उन चीजोंसे राग करना पड़ता है, उसे उन चीजोंमें मोह नहीं होता । वह तो चाहता है कि मुझे कब इस रोगसे छुटकारा मिले, इन झंझटोंसे कब बचें और प्रतिदिन एक दो मील जगह टहलनेको मिले, तो जैसे दवा पीना जल्दी छूट जाय इसके लिए वह दवा पी रहा इसी तरहसे उसे न तो वैद्यसे मोह है और न उस पलंगसे । हाँ परिस्थितिवश

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

राग जरूर करना पड़ता है, तो ऐसी ही बात उस ज्ञानी पुरुषकी है जिसे परिस्थितिवश गृहस्थीके बीच रहना पड़ता है, उस ज्ञानी गृहस्थको। गृहस्थीके अन्दर रखी हुई चीजोंमें राग तो है, उनकी सम्हाल करता है, सुरक्षित रखता है, व्यवस्था बनाता है, क्योंकि घरमें रह रहा, खर्च लगा है, कुटुम्दीजन हैं, मगर उन सब चीजोंमें मोह नहीं हैं ज्ञानीको, वह ज्ञानी यह नहीं समझता कि ऐसा वैभव, ऐसा संग यही मेरा सर्वस्व है और इसीसे मैं जिन्दा रह रहा हूं, इसीके कारण मेरी सत्ता बनी है, ऐसा उस ज्ञानी को उन बाह्य पदार्थोंमें मोह कतई नहीं है, वह ठीक समझ रहा है कि अणु–अणु प्रत्येक पदार्थ, ये भिन्न हैं मुझसे। मेरा उनसे रंच मात्र भी सम्बन्ध नहीं।

५५९ शान्तिका उपक्रम भेदविज्ञान—

यह भेद विज्ञान ही एक ऐसा अमृतपान है कि इस ज्ञानीको संकट नहीं आता, जब जब भी किसी मनुष्यपर संकट आता है तो वह भेदविज्ञान जैसी बात भी चित्तमें आती है तो कुछ संतोष मिलता है, क्योंकि यथार्थताकी गली यही है। किसी पुरुषका कोई इष्ट गुजर जाय तो दूर-दूरसे रिस्तेदार भी आते और उसके प्रति सहानुभूति दर्शाते, पर कुछ जो ना समझ हैं वे तो इस तरह सहानुभूति दर्शाते कि उससे जरा लगावकी बात अधिक बढ़ जाय, जैसे हाय बड़ा अच्छा था, बड़ा कमाऊ था, सबकी रक्षा करता था—तो ऐसी ऐसी बातोंसे उसका दुःख मिटनेके बजाय बढ़ता है, कोई मझोले समझदार भी होते हैं तो वे समझाते हैं कि भाई वह अपने कर्मसे आया था, अपने कर्मके अनुसार चला गया, उससे तुम्हारा इतने ही दिनोंका सम्बंध था आदि कुछ ऐसी बातें कह कहकर कुछ शान्त्वनाका उपाय करता है, मगर जो अत्यन्त समझदार जन हैं वे इस प्रकारसे कहते है कि अरे तुम तो इतने बड़े महत्त्वशाली प्रभुकी तरह ज्ञानानन्द स्वरूपवान हो, फिर यह क्या बेवकूफी करते, क्या मुग्धता करते, अत्यन्त भिन्न पदार्थ मेरा जिनसे न द्रव्यत्व मिले, जिनमें मेरा न क्षेत्र है, न काल है न भाव है, कोई सम्बन्ध नहीं, अत्यन्त निराले, जैसे एक पदार्थका दूसरा पदार्थ यहाँ कुछ नहीं दिखता, औरोंके नहीं दिखता, ऐसे ही अत्यन्त निराले, जिनसे कोई सम्बन्ध नहीं, अनन्तानन्त जीव, उनमेंसे कोई आ गए, यहाँ तो जीव आते जाते रहते हैं, किसीका किसीसे रंच भी सम्बंध नहीं, उसके लिए दूसरे विकल्प बनाकर पाप ही बाँधे जा रहे हैं। दुःखकी परम्परा ही बनायी जा रही, तब सोचना है कि यहाँ कुछ भी तो बाहरमें मेरा नहीं, यह देह तक भी मेरा नहीं, मैं तो केवल एक ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा हूं, देखिये यथार्थ ज्ञानसे तृप्ति आयी, संतोष हुआ। किसने शान्ति दी ? खुदके ज्ञान प्रकाशने शान्ति दी।

५६० किसी भी जीवकी अन्य जीवसे रक्षा व विनाशकी अशक्यता—

कोई पुरुष किसी दूसरेकी रक्षा करनेमें समर्थ नहीं, उस ही का ज्ञान उसकी स्वयं रक्षा करता है, दूसरा कोई किसीका साथी नहीं, प्रकट बात है,प्रत्येक आत्मा अपने परिणाम करता है कोई किसी दूसरे का परिणाम नहीं करता। इसके अनेक उदाहरण हैं, श्रीपालको धवल सेठने श्रीपालकी स्त्रीके लोभमें समुद्रमें गिरा दिया था, धवलने क्या काम किया ? अपने परिणाम खराब किया, पापका बंध किया इतना ही तो कर सका वह। उसका कोई अधिकार तो न था कि किसी जीवका बुरा भला कर दे, अगर श्रीपाल समुद्रमें गिरा तो वह श्रीपालके पाप कर्मका उदय था, वह एक निमित्त बन गया, आश्रय बन गया, वह बात अलग है, फिर भी उसके पुण्यका उदय भी था कि समुद्रके किनारे आ लगा, बाहर निकल आया, दूसरे राजाका आधा राज्य मिला, कन्या भी मिली, और भी अनेक बातें मिलीं, तो कोई किसी का बुरा चाहता है तो वह केवल अपने परिणाम ही तो खराब करता है, किसीका बुरा नहीं कर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सकता, और अगर कोई किसीका भला चाहता है तो अपनेमें पुण्य बंध करता है, अपना भविष्य बढ़िया बना लेता है, पर दूसरेका भला चाहनेसे दूसरेका भला हो ही जाय यह बात तो नहीं है, वह खुद अपना ज्ञान सम्हालेगा तो उसका भला हो पायगा। जगतमें सब जीव अपने-अपने कर्मोदयसे सुखी दुःखी होते हैं, समयसारमें बंधाधिकारमें भली भाँति यह बात स्पष्ट की है, कि जब ऐसी स्थिति है कि प्रत्येक जीव अपने-अपने कर्मानुसार सुख दुःख पाता है तो फिर दूसरे जीवके बारेमें इसे सुखी कर दूँ, इसे दुःखी कर दूँ ऐसा सोचना मिथ्या है, कोई किसीके प्रति मोहवश ऐसा भी सोचे कि मैं इसे सुखी कर सकता हूं, दुःखी कर सकता हूँ, तो वहाँ सुखी दुःखी तो न हो जायगा दूसरा, यह ही अपने भावोंके अनुसार पुण्य पापका बंध करेगा। तो इस आत्माको यहां सम्बोधित किया है कि हे आत्मन, तू इन विकार परिणामों में रुचि मत कर। इनमें रुचि करनेसे तेरा कुछ भला नहीं होना, तू विकार परिणामोंसे हट कर अपने आपमें जो धर्मरूप स्वभाव है उसका अनुभव कर।

५५९ प्रभु स्वरूपके परिचयसे आत्मस्वभावकी सुध और सन्मार्गपर चलनेका उत्साह—

हम आपका और प्रभुका स्वरूप एक समान है, जब प्रभुकी पूजामें कहते हैं कि हे प्रभु आपने उत्तम क्षमा प्राप्त की यों प्रभुका गुण गाते हैं, वही गुण क्या मुझमें नहीं ? क्षमाका गुण मुझमें भी है मगर अज्ञान और कषायका जब वेग आता है तो इस क्षमाके गुणको कुचल डालता है और बजाय उस के, यहाँ गुस्सा की प्रवृत्ति बनती है और गुस्सामें जो चेष्टा करता है उसमें खुद भी दुःखी होता, दूसरा भी दुःखी होता। बनाकर दुःख मोल लिया करता है जीव। दुःखका स्वरूप तो नहीं है जीवका, मगर यह बना बनाकर दुःखको बढ़ावा दिया करता है, प्रभुमें मान कषाय नहीं इसलिए शान, पोजीशन, सम्मान अपमान आदिकके भाव उत्पन्न नहीं होने, और देखिये कितना आनन्दमय है, तो ऐसा मार्दव धर्म यह गुण क्या मुझमें नहीं है ? मेरेमें है, पर अज्ञानका ऐसा अंधेरा छाया है कि हम अपने उस निर्मल स्वरूपका उपयोग नहीं कर पाते, प्रभु सरल हैं, जो अन्दर सो बाहर, जो स्वरूप सहज ज्ञान अंतरंगमें है वही परिणमनमें है, ऐसा गुण क्या मुझमें नहीं है, अज्ञान और कषायके कारण हम अपने गुणोंको कुचल रहे हैं। प्रभु पवित्र, निर्मोह, तृष्णारहित सँतोषके आधार, एक पवित्र स्वरूप हैं, यह ही स्वरूप तो हमारा है। यह तो कर्मका उदय है, जो ये लीलायें चल रही हैं, ये मैं नहीं, मैं तो भीतर सहज पवित्र हूं, जो प्रभुका स्वरूप सो मेरा स्वरूप। जहाँ कषायोंका परिहार हुआ, जहाँ एक सच्चाई प्रकट हुई तो फिर यह जीव अपनी जो ज्ञान किरणें बिखेर रहा था बाहर-बाहर, उन सबको समेट कर एक अपने इस ज्ञानस्वरूपमें रत होता है, उसका प्रताप ऐसा उत्पन्न होता है कि जो यहां मैल है वह सब जल जाता है, उस मैलके जलनेपर जो यहां कैवल्य स्वरूप इसका था वही रह गया, अब उसमें दूसरी चीज कुछ न रही, जहाँ इसमें आकिञ्चन्य प्रकट हो गया, यह मैं वही रह गया, बस वही तो एक ब्रह्मचर्यका उत्कृष्ट रूप है, आत्मा आत्मामें ठहर गया। यह दशलक्षण धर्म एक आत्म प्रगति करनेके उपायोंका भला संकेत है, किस तरहसे हम गिरी अवस्थासे उठकर प्रभु जैसी एक ऊँची अवस्थामें आ सकें उसके लिए यह दश-लक्षण धर्म बतलाया। क्षमा करें, मान न करें, सरल बनें, लोभका त्याग करें, अपनेमें सच्चाई प्रकट करें अपनेमें सँयत हो जावें, तो तप प्रकट होगा. भीतरके प्रतापमें त्याग बन जायगा विभावोंका, तब हम रह जायेंगे अकिञ्चन, अन्य कुछ नहीं, केवल हम ही हम, बस वहाँ पूर्ण ब्रह्मचर्य प्रकट होगा। तो यह सब भेदविज्ञानके प्रतापसे बनता है इसलिए हमें भेदविज्ञान और ज्ञानसाधनामें बहुत अधिक उपयोग लगाना चाहिए।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अज्ञानतस्तु सतृणाभ्यहदारकारी, ज्ञानी स्वयं किल भवन्नपि रज्यते यः।
पीत्वा दधीक्षुमधुराम्लरसातिगृद्ध्या गां दोग्धि दुग्धमिव नूनमसौ रसालम् ॥५७॥

विकारका विधान—

यह जीव अज्ञानसे स्वयं ही विकल्परूप होता हुआ अपना स्वाद लेता है। तो यह ज्ञान कर्मफल और ज्ञानरस इन दोनोंको मिलाकर मानों स्वाद लेता है और उसमें भी स्वाद समझता है कर्मरसका। जीवमें विकार आया है इस सबका अनुभव हुआ। मैं विह्वल हूं, दुःखी हूं, रागी हूं, मोही हूं, यह बात सबको ज्ञात है। इसी बारेमें यह निर्णय बनायें कि अखिर यह विकार बन कैसे गया? बन यों गया कि यद्यपि मैं आत्मा अपने स्वभावसे ज्ञानमात्र हूं ज्ञानका ही काम मुझमें चलता, निरन्तर मैं जानता रहूँ, यह धारा मेरी कभी नहीं टूटती। अनादिकालसे अब तक निरन्तर चाहे किसी भवमें मैं गया मगर जानता हो रहा। जाननेकी धारा कभी टूटी नहीं। क्रोध आया तो जाननेमें ही क्रोधको मिलाकर क्रोधके स्वाद रूपसे जानता रहा। क्रोध मिटा, घमंड आया तो घमंडके विकल्प रूपसे यह ज्ञानको परिणमाता रहा। कोई सा भी भव मिला हो, यह ज्ञान हमेशा ही वर्तता, क्योंकि अग्निकी गर्मी किसी क्षणको मिट जाय तो अग्नि ही मिट जायगी, ऐसे ही आत्माका यह ज्ञान, जानन किसी समय न रहे तो फिर जीव गया। जीवका ज्ञान, जानन किसी रूपमें रहे, कितना ही रहे एकइन्द्रियसे रहे, मनसे रहे, निरपेक्ष रहे मगर ज्ञान प्रत्येक जीवमें रहता ही है। ज्ञानरहित जीवकभी नहीं होता, क्योंकि ज्ञान जीव स्वभाव ही है, सो ज्ञान तो जानता ही रहता हैं। ज्ञानका काम कभी बंद नहीं होता, वह ज्ञान जान ही रहा है। इस वक्त भी जान रहा। हम आप इस समय भी जान रहे हैं बराबर, मगर उस जाननेके साथ एक दूसरी वस्तु लगी है आत्मामें, क्या? मोहकर्म,। उस मोहभावका जो कर्ममें पड़ा हुआ है, सम्बंध पाकर निमित्त पाकर ज्ञान जो परिणम रहा था अपनी चालसे उसमें एक यह मोहका कलंक लिपट गया, कीचड़ लिपट गया, इस उपरागसे ज्ञान विपरीत संकल्प विकल्परूप परिणम जाता।

५६२–विकारके विधानकी विधिके दृष्टान्त—

जैसे बिजली जलायी सफेद उजेला है वह तो अपना सफेद प्रकाश करनेका काम कर ही रहा है हो ही रहा है, पर उसके साथ एक नई चीज लग जाय, एक हरा कागज लगा दिया, हरा रंग पोत दिया, वह प्रकाश हरा हो गया; अब वह तो परिणम रही थी बिजली अपने प्रकाशरूप। हरेका सम्बंध होनेसे हरे रूप परिणम गया, ऐसे ही और दृष्टान्त लो। एक दर्पण, है स्वच्छ दर्पण तो अपनेमें झिलमिल झिलमिल रूप बनता ही रहता है। वह तो उसका ही काम है, स्वच्छता है, कहाँ जाय? दर्पण अपनेमें झिलमिल झिलमिल वह बराबर चलता ही रहता है। अब उसके सामने आ गया मानो कोई पदार्थ, उसके आगे रख दिया मानो कोई वस्तु, तो अब उसका निमित्त पाकर जो झिलमिल कर रहा था दर्पण वह प्रतिबिम्बरूप, विकाररूप परिणम गया। विकाररूप जब परिणमा, प्रतिबिम्बरूप जब बन गया, स्वच्छताके विकाररूप जब दर्पण बन गया तो कभी झिलमिल मिटता नहीं, वह झिलमिल रूप मिट नहीं सका। यदि उस कालमें झिलमिल मिटे तो प्रतिबिम्ब ठहर नहीं सकता। जिस वस्तुमें झिलमिल नहीं उसमें प्रतिबिम्ब नहीं आता। जैसे कोई साधारण भीट हैं तो उसमें तो किसीका फोटो नहीं आता, क्योंकि उसमें झिलमिल नहीं, स्वच्छता नहीं। तो जब दर्पणमें विकार बन रहा उस समय वहीं पर पदार्थका सान्निध्य है कि कालका निमित्त पाकर दर्पण झिलमिलरूप बन गया। ऐसी ही योग्यता हैं दर्पणमें कि सामने कोइ चीज रखी तो दर्पण अपनेको झिलमिलरूपमें प्रतिबिम्बरूप

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बसा लेगा। उस प्रतिबिम्बित रूप बननेके समयमें भी झिलमिल अन्दर है। अगझिलमिल स्वरूप न रहे तो प्रतिबिम्ब नहीं ठहरता, ऐसे ही आत्मामें पहले बाँधे हुए कर्मोंका उदय आया, उसका निमित्त पाकर, वह ज्ञान ज्ञानरूप तो परिणम रहा अन्तः स्वरूप जैसा है वैसी वृत्तितोकर रहा, पर साथ हीउपाधि सान्निध्यसे ऐसा त्रिकल्प रूप परिणम गया। सो इस जीवकी ऐसी कभी स्थिति न रही अब तक कि पहले कभी शुद्ध हो, केवल शुद्ध झिलमिल चल रही हो और अब उसमें रागद्वेष मोह आया, अनादिसे ही ये पर तत्त्व कर्म साथ लगे हैं, अनादिसे ही इस जीवका ज्ञान विकल्प करके विकल्परूप बन रहा है, विकल्प उत्पन्न होनेका यह कारण है, यह विधि है, यों हो रहा है, अब बिकार अगर पसंद नहीं है तो उस विधि को मिटा दो अर्थात् ज्ञानबलको ऐसा बढ़ाओ कि कर्म उदयमें आये, कर्मरस आये, लेकिन यह मैं जानूं कि मेरा तो यह ज्ञानमात्र स्वाद है, केवल जानना यह तो मेरी चीज है, पर मानना उल्टा कि यह मेरा है, फलाना है, अच्छा है, सो वह चीज मेरी नहीं, और जो विकल्प जगे ये विकल्प भी मेरे स्वरूप नहीं, ऐसा जो भेद करे वह मोहसे हटकर अपने ज्ञानमें आयगा।

५६३ अज्ञानसे ज्ञान विपरिणमनमें कर्मरसका आस्वादन—

जो न कर सके कर्मरस व ज्ञानरसमें भेद, उसकी दशा क्या है कि कर्मरसको और ज्ञानको मिला कर स्वाद ले रहा है और उसमें भी ज्ञानका स्वाद नहीं मान रहा, किन्तु परवस्तुका स्वाद मान रहा। जैसे कुत्ता हड्डी चबाता है तो जोरसे हड्डी चबानेसे उसके मसूढ़ोंसे खून निकल आता है. तो उस खूनका स्वाद आया, पर मानता क्या है मूर्खतासे वह कुत्ता कि मुझे इस हड्डीसे स्वाद आया, सो उस हड्डीको वह नहीं छोड़ता, एकान्तमें ले जाता, अन्य कुत्तोंसे बचाता, यही बात कर्मरसकी है, यह ही विषयभूत वस्तुकी बात है, इस जीवको सदा स्वाद आता है ज्ञानका, अन्य वस्तुका स्वाद नहीं आता, मगर ज्ञानमें जो बाह्य वस्तु ज्ञात हुई है स्त्री, पुत्र, मित्रादिक इस ज्ञानमें ज्ञेय बन गए हैं मोहका सम्बंध होनेसे और इस इन्द्रिय द्वारा ज्ञान होनेसे यह जीव उस इन्द्रिय सुखके कारण यह मानता है कि हमको इन पदार्थोंका स्वाद आया। देखो दो बात हैं—इन्द्रिय जन्य ज्ञान, इन्द्रिय जन्य सुख। इन्द्रिय जन्य सुख क्या कहलाता है ; इन्द्रिय जन्य ज्ञानमें लोभ होता है, सो इन्द्रियजन्य ज्ञानमें हर्ष मानना यह ही है मेरा सुख। आँखोंसे दिख गया रूप, कोई आकार सुन्दर तो वहाँ जो समझा सो तथ्य नहीं, वह अज्ञान लीला है सुन्दर तो कुछ नहीं है दुनियामें, इसकी कषायमें जच जाय सो सुन्दर, इसकी कषायमें जो न जचे सो असुन्दर, रूपवती स्त्री हो और पतिसे झगड़ा चलता हो, मन न मिलता हो, कुछ विकल्प हो तो पतिको तो वह सुन्दर नहीं जचती, दूसरे लोगोंको भले ही अगर राग है तो वह सुन्दर जचे, मगर जिससे विरोध हो गया उसे तो सुन्दर नहीं जचती, तो बाहरमें कोई वस्तु न सुन्दर है न असुन्दर है, राग भाव ही जिस चाहेको सुन्दर बना देता है, जिस चाहेको कुरूप बना देता है, यह सब अज्ञानकी लीला है।

५६४ कषायमें इष्टताका व्यामोह—

एक सेठ था, उसके घर एक नई नई नौकरानी आयी। उसी दिन सेठानीने उस नौकरानीसे कहा—जावो अमुक स्कूलमें हमारे बच्चेको नास्ता व मिठाई दे आवो, तो नौकरानी बोली मालकिन हम तो तुम्हारे बच्चेको जानती भी नहीं, किसे दे आऊं ? तो सेठानी गर्वसे बोली—अरे मेरे बच्चेको क्या पहिचानना ? उस स्कूल भरमें जो सबसे प्यारा, सुन्दर बच्चा हो वह मेरा है, उसे अपने बच्चे पर गर्व था। खैर वह नौकरानी पहुंची उस स्कूलमें उसी स्कूलमें। उस नौकरानीका लड़का भी पढ़ता था, वहाँ उसने सब बच्चोंको देखा मगर सबसे सुन्दर प्यारा उसे अपना ही बच्चा लगा, सो उसीको सारी मिठाई

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

खिलाकर चली आयी, शामको जब सेठानीका बच्चा घर आया तो माँसे शिकायत की कि माँ जी आज तुमने हमारे वास्ते नास्ता क्यों नहीं भेजा था ? तो माँ बोली–भेजा तो था। (नौकरानीको बुलाकर) क्या तूने मेरे बच्चेको नास्ता नहीं दिया ? अरे दिया तो था। तुम्हींने कहा था कि स्कूलमें जो सबसे सुन्दर प्यारा बच्चा हो वही मेरा बच्चा है, उसे दे आना, सो मुझे तो सबसे प्यारा, सबसे सुन्दर मेरा ही बच्चा लगा, सो उसीको मिठाई खिला आयी थी। यद्यपि उस नौकरानीका बच्चा काला था, कुरूप था पर उसे वही सबसे प्यारा, सबसे सुन्दर लगा। तो इस जगतमें कौन सुन्दर है ? और कौन असुन्दर है? कौन भला है, कौन बुरा है ? जिसके साथ कषाय मिल गई उसे सुन्दर मानते।

५६५ सर्वत्र ज्ञानसे सुख पानेपर भी मोहवश विषयोंसे सुख माननेका व्यामोह—

जो वस्तु खाते हैं, देखते है सूँघते हैं उस वस्तुका इन्द्रियसे ज्ञान कर रहे ना ? और देहसे प्रीति है, मिथ्यात्वके उदयमें इस जीवको देहसे ही है प्रीति, तो उस बाह्य पदार्थमें जो इन्द्रियसे जान गए उसको मानते क्या कि इसका मुझे सुख मिला, सुख मिला अपने ज्ञानका, पर मान रहा है कि इस पदार्थ का सुख मिला, जैसे कुत्ता स्वाद ले रहा अपने खूनका और मान रहा है कि इस हड्डीका स्वाद आया और ऐसा अज्ञान, ऐसी बेसुधी कि जैसे हाथीके आगे मिठाई भी रख दो, घास भी रख दो तो हाथी तो दोनोंको एक साथ लपेटकर खा जाता है, ऐसे ही यह अज्ञानी जीव कर्मरस और ज्ञानरस दोनोंको एक साथ लपेटकर यों ही अनुभवेगा और इसके अतिरिक्त विचित्र एक मूढ़ता और ज्यादह है मोही जीवमें कि वह स्वाद मानता है कर्मरसका, बाहरी पदार्थका, तो यह जीव अज्ञानसे भ्रमसहित होकर यह समस्त अनुभव करता है, जैसे हाथी मिठाई और तृणमें विवेक न कर मिलाकर खाता है। यह ज्ञान स्वयं ही हो रहा है सब कुछ, मगर वह रागरूप हो रहा है, जैसे हो रहा है उजेला, मगर वह हरा रूप हो रहा है, वैसे ही यह आत्मा कर रहा है सारा ज्ञान, मगर यह रागविकल्प ज्ञानविकल्प रूप कर रहा है, तो जैसे कुत्ता हड्डीका स्वाद मानकर वह हड्डीकी खोजमें चलता है, उस हड्डीकी बड़ी धुन लगाये रहता है मगर देखो नादानी, ले रहा स्वाद खुदके मसूढ़ोंसे निकले हुए खूनका, मगर समझता है कि मुझे हड्डीका स्वाद आ रहा। इसी प्रकार अज्ञानी मोही इन बाह्य विषय प्रसंगोंमें स्वाद तो ले रहा है अपने ज्ञानका, जिस ज्ञानका जैसा विकल्प बनाया, स्वाद तो ले रहा है अपने ज्ञानका, मगर यह मानता है कि मुझे स्त्रीसे सुख मिला, घरसे सुख मिला, वैभवसे सुख मिला। इन बाहरी पदार्थोंको अपनानेके लिए एकदम आसक्त हो रहा, दौड़ रहा। क्या स्थिति हो रही, जैसे किसी मनुष्यको शिखरनी याने दही, शक्कर मिला कर मथ दिया जाय तो उसका खटमिट्ठा स्वाद बन गया उसे कहते हैं सिखरनी उसे कोई खिलाता है और कोई मान जाय कि यह तो गायसे निकलता है, लावो सीधी गायसे इसे निकाल लें, दुह लें तो क्या उसे याने शिखरनीको दुह सकता है वह ? नहीं दुह सकता। तो जैसो उसकी यह एक व्यर्थ चेष्टा है ऐसे ही ये बाहरी पदार्थ और यह मैं ज्ञानस्वरूप, इन दोनोंके मिश्रणसे, मिश्रण तो, क्या होता, ज्ञानने ही स्वयं उस परवस्तुविषयक विकल्प किया, यह ही मिश्रण कहलाता है, तो इस मिश्रणसे जो एक स्वाद आया, इस व्यामोहीको यह प्रतिभास हो गया कि यह स्वाद इन बाहरी चीजोंसे आया सो वह उस बाहरी चीजोंपर ही आशक्त हो रहा, यह सब अज्ञानकी महिमा है।

५६६ अज्ञान दूर कर अविकार ज्ञानस्वभावमें रुचि करनेकी उमंगमें कल्याणकी संभवता—

अहो, स्वरूपपरिचय नहीं, तो देखो अज्ञान कहां कहाँ नहीं छाता, हम धर्म करते हैं, अब दश-लक्षण पर्व आ गया, पूजा अधिक कर लिया, ठीक है, वह व्यवहार मार्ग है, उसमें चलता हुआ जीव कभी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सुलझेगा तो सही, मगर सुलझना तो इस जीवके भावोंसे होता है, ज्ञानको ज्ञान जानना, बाहरको बाहर जानना, सचको सच जानना, परको पर जानना, जब तक यह बुद्धि न आये तब तक दुःख मिटनेकी कोई गुंजाइस नहीं, कुछ अपना महत्त्व लायें। भला चाहो तो इस सहज ज्ञानस्वरूपके अनुभवके लिए उमंग बनाना चाहिए। घरमें हुए तो आप व परिवारजन सब अपनी समझ बनाकर एक उमंग बनावें, परिवार के विचारकी विरुद्धता न होनेसे कोई असुविधा न रहेगी, सबका भला होगा। बच्चे भी इसी सहज ज्ञान ज्योतिके अनुभवकी उमंग रखते हों, पिता, स्त्री, पुत्र, मित्रादिक सब रखते हों, ऐसे प्रसंगमें लो सब सुरक्षित हैं, सबका एक ध्येय बन गया कि हमको एक निज सहज ज्ञानस्वरूपका अनुभव करना उचित है। मैं क्या हूँ इसका अनुभव आये बिना कितना ही क्रियायें कर ली जायें, कितना ही कुछ प्रसंग बना लिया जाय, मगर शान्तिका मार्ग नहीं मिलता। शान्ति पानेके लिए लोग बड़े-बड़े कष्ट करते हैं, बड़ा परिश्रम करते हैं, सारा जीवन लगाते हैं तो भी शान्ति नहीं मिलती और जिस किसी भी बातको एक शान्ति मान लेते हैं और उससे संतुष्ट रहनेकी कोशिश करते हैं। अरे सच्ची शान्ति पानेका मार्ग ही तो बताया जा रहा है, क्या इस शान्तिमार्गकी कीमत आपके पाये हुए लाख रुपयेके वैभवसे भी बड़ा नहीं ? अगर बड़ा है आपकी दृष्टिमें तो तुलनामें आपको महत्त्व जचना चाहिए धर्मका, इस ज्ञानस्वभावके अनुभवका। उस वैभवका महत्त्व न जचना चाहिए। जिन्दगी थोड़ी है, प्राण पखेरू उड़ जायेंगे। थोड़े ही समय बाद कहीं उत्पन्न होना ही पड़ेगा, यहाँका रंच मात्र भी कुछ साथ न जायगा, यहांके इस वैभवके कारण अगले भवमें कुछ भी प्रभाव न बनेगा, वहाँ तो जो नया संग प्रसंग मिलेगा उसमें अपनी बुद्धि लगायगा, अपनी रुचि बतायगा, तो थोड़ा अपनेपर दया करना, पाये हुए वैभवको अपना सर्वस्व मत मानो, इस वैभवको सर्वस्व माननेकी बुद्धि एक ऐसी बड़ी चोट उत्पन्न करेगी कि जिसका फल आगे भवमें भुगतना पड़ेगा, मिला है जान लिया, मगर सच सच तो जान लें कि मेरे स्वरूपमें बाह्य वस्तुका रंच भी प्रवेश नहीं, मेरा यहां कुछ भी नहीं लगता, दुनियाके लोग अज्ञानी हैं, तो क्या तुमको भी अज्ञानी बनना भला है क्या ? जगतके लोग दौड़ रहे हैं बाह्य विषयोंके साधनोंको बढ़ानेमें, तो दौड़ें, जिसकी जैसी योग्यता है, जिसका जैसा परिणाम है वह परिणाम करता रहता है, खुदपर करुणा आयी हो तो यह करनेका काम है कि सबसे विरक्ति पाकर अपने अंतरंगमें इस सहज ज्ञानस्वरूपकी सम्हाल करें, अनुभव करें कि यह मैं अंतस्तत्त्व हूं। विकार कैसे हुए ? इसकी विधि जो आपने जानी समझी उस विधिके परिचयसे लाभ यह लेना है कि मेरी गल्तीसे ही, मेरी परिणतिसे ही तो विकार हुए, अब मैं अपने ज्ञानको इस विकल्प रूपसे, उल्टे रूपसे नहीं परिणमाऊंगा, मैं सत्य सत्य जानता रहूंगा कि मैं तो यह सहज ज्ञानस्वरूप हूं, हाँ तो जैसे विकारकी विधि समझे तो निवृत्तिकी बिधि तो तुरंत समझ ही गये होंगे। क्या रही वह विधि ? यह उपयोग अपने ही रससे, अपनी ही आदतसे यह परिणमन करता ही रहता है, ये सारी वस्तुवें निरन्तर उत्पाद करती ही रहती हैं, स्वरूप ही ऐसा है कि यह उपयोग निरन्तर परिणमन करता ही रहता रहे, किन्तु अनादिसे ही वस्त्वन्तरभूत मोहसे युक्त होनेके कारण अधिक क्या हो गया कि कर्मरस उपयोगमें प्रतिफलित होता है, उसका निमित्त पाकर इस छायामें मग्न होकर इस मोहरुचिक जीवने अपने ज्ञानके स्वरूपकी तो याद छोड़ दी और उस ही बाहरी चक्रमें अपनेको मान लिया कि मैं तो यह हूं, तो क्या करना ? यह करना कि सच सच जानते रहें कि मेरा काम तो एक शुद्ध जानन भर है, मगर कर्म साथ लगे, कर्मरस विपाक है, प्रतिफलन है, तो रहो, उसके ज्ञाता बनना चाहिए, उसे अपनाने वाला न बनना चाहिए। जो ज्ञाता बनता है वह अकर्ता है, जो अपनाने वाला बनता है वही संसारका कर्ता है, तो जैसे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

स्फटिक मणिमें नीला, पीला लाल ये तीन प्रकारका कागज लगा हो तो जैसे वह ३ प्रकार रूपसे परिणम जाता है ऐसे ही मुझमें कर्मका विपाक मिथ्यादर्शन अज्ञान, अविरति ये विपाक साथ लगे है, उसका संसर्ग पाकर, निमित्त पाकर यह उपयोग इन तीन रूपोंमें परिणम जाता है कौन परिणम जाता मिथ्यात्वरूप ? जिसको इस रहस्यका पता नहीं, अपने स्वरूपका भान नहीं कि इन तीन तरहसे विकार यों बनता है। सो भी इस जीवने क्या किया ? कर्मको नहीं किया, पुद्गलको नहीं किया किन्तु ये तीन प्रकारके परिणाम विकाररूप बन जाते हैं।

५६६—अविकार, अकर्ता, ज्ञायकस्वरूप निज अंतस्तत्त्वके अनुभवनकी महिमा—

मैं किसी बाह्य पदार्थमें कुछ नहीं कर सकता, मैं तो अपने परिणाम विकारको ही कर पाता हूं। अब उस समय कर्मपुद्गल अपने आप बनते हैं अपने स्वरूपसे, उसको भी तो यह निमित्त मिल गया जैसे भी गड़बड़के लिए कर्मका उदय निमित्त है ऐसे ही कर्मोंके बंधके लिए और और बातोंके लिए जीवका परिणाम निमित्त है। हो रहा सबका अपने अपनेमें ही काम, कोई किसी दूसरेको नहीं परिणमा रहा। जैसे वक्ता बोल रहा अपने आपके श्रमसे ही, वह श्रोतावोंमें कुछ नहीं कर रहा और श्रोता सुन रहे हैं अपने आपके परिणामसे ही, वे बक्तायें कुछ नहीं कर रहे, पर यह चेष्टा भी परस्पर उस श्रमविधिसे निमित्तनैमित्तिक योग मात्र है। क्योंकि प्रत्येक पदार्थ अपने आपमें ही अपना परिणमन करता है, कोई किसी दूसरेका परिणाम नहीं करता। यह भी बात है, और जब बुरा होता है तो पर निमित्त पाये बिना नहीं होता, यह भी बात है, अपनेको तो चाहिए यह कि उस संसर्गको छोड़ें और अपने ज्ञानके उस सहज उदासीन वृत्तिको ग्रहण करें। सारी बातें बतला डालें, पर अन्तमें निष्कर्ष यह निकलेगा कि मैं ज्ञानमात्र हूँ, ऐसा अनुभव किए बिना संसारके संकट नहीं छूट सकते, शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती। अपने आपमें निरखें कि केवल ज्ञानज्योति रूप मैं आत्मा हूं, अन्य कुछ मैं नहीं। देहका तो भान ही न रहे, कषायोंमें जरा भी न लिपटें। ये तो यों हो रही हैं, परकी छाया है, मेरा स्वरूप नहीं। जो मेरे निजमें स्वरूप है बस उस स्वरूपरूप अपनेको अनुभवें केवलमें। देखो, ज्ञान ही इसका धाम है, घर है, ज्ञान ही इसकी अतुल सम्पत्ति है, ज्ञान ही उसका मालिक है। ज्ञानको ही यह करता भोगता है। कितनी सुगमता है वस्तुस्वरूपमें कि उसे कहीं कठिनाई नहीं। अपना यह स्वरूप उपयोगमें बनानेको कहीं कठिनाई ही नहीं। कठिनाई तो विकार करनेमें होती है। दूसरोंपर दृष्टि दूं तो विकार बनेगा। दूसरेकी आशा करना पड़ती, दूसरोंका सहारा लेना पड़ा ना, तो दुःख तो है पराधीन, मगर शान्ति आनन्द अपने शुद्ध ज्ञानकी बात ये पराधीन नहीं, ये खुद हैं, खुदमें हैं, खुदके लिए हैं खुद ही भोग रहे हैं। बस, मोह मिटना चाहिए, अज्ञान दूर हुआ कि इसको अपना ज्ञानामृत अपनेको प्राप्त हो ही जायगा।

अज्ञानान्मृगतृष्णिकाँ जलधिया, धावंति पातुं मृगाः। अज्ञतात्तमसि द्रवंति भुजगाध्यासेन रज्जौ जनाः।
अज्ञानाच्च विकल्पचक्रकरणाद्वातोत्तरंगाब्धिवत् शुद्धज्ञानमया अपि स्वयममी कर्त्रीभवन्त्याकुलाः ॥५८॥

५६८—मैं के निर्णयके अनुसार आत्माका परिणमन—

जितने भी जगतमें पदार्थ हैं उन सब पदार्थोंको दो भागोंमें बाँट लो, एक स्व और बाकी सब पर। एक तो खुद स्वयं बाकी सब पर। स्वयंमें क्या आयगा ? एक ज्ञानज्योतिर्मय आत्मतत्त्व, परम पदार्थ और अन्यमें क्या आयगा ? इस परम पदार्थको छोड़कर बाकी सब पर। बाकी सबमें क्या क्या है ? कर्म, देह, वैभव, कुटुम्ब, इज्जत, लोगोंके वचन, खुदके वचन, मन, विचार, रागद्वेष आदि ये सब पर कहलाते हैं, अन्य कहलाते हैं। तो इन पर पदार्थोंमें और अपने स्वरूपमें जब ज्ञान नहीं होता, भेद नहीं

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

होता,यह नहीं विदित होता कि मैं तो यह हूँ, बाकी सब पर हैं, जब यह परिचय नहीं होता तो यह जीव परको मानता कि मैं हूँ और परको जो मानेंगे कि मैं हूँ वे पर पदार्थोंके चाहनेके लिये, परिणमानेके लिये दौड़ लगायेंगे, संग्रह करेंगे उसमें विघ्न आये तो लड़ेंगे भी, क्योंकि परपदार्थको मान लिया निज पदार्थ मो मान लिया कि यह मैं हूँ, जिसको यह मैं मान लेता उसीकी रक्षा का भाव करता है। गऊ र पुत्रको मान लिया मैं तो उसकी रक्षाका भाव होगा, और का नहीं। देहको मान लिया—मैं, तो देहकी रक्षाका भाव होगा औरकी रक्षाका नहीं और यदि अपने उस सहज चैतन्य स्वरूपको मान लिया मैं, तो यह ज्ञानी उस ज्ञान स्वरूपकी रक्षा करेगा। बस ज्ञानस्वभावमें बाधा न आये, यह ज्ञानस्वभाव तिरस्कृत न हो, यह ज्ञान भाव सही ज्ञानरूपमें बना रहे, ऐसा प्रयत्न करें। तो ज्ञानीका प्रयत्न होता ऐसा। अज्ञानी को तो बाहरी पदार्थोंकी रक्षाका प्रयत्न होता सो बाहरी पदार्थोंकी रक्षा करते जाते, उसमें इस जीवको लाभ कुछ नहीं मिलता और एक अपने स्वरूपकी रक्षा करें तो अनन्त चतुष्टय प्राप्त होगा। भगवानका स्वरूप जो विकसित है वह पद प्राप्त होगा।

५६८—अज्ञानसे जीवकी बरबादीकी ओर दौड़—

अज्ञानी पुरुष तो रेगिस्तानमें रहने वाले मृगकी भांति बाह्यपदार्थोंमें दौड़ लगा—लगाकर अपना जीवन बरबाद कर देता। जैसे रेगिस्थानमें रहनेवाला मृग अपनी प्यास बुझानेके लिए दूरकी चमकती हुई रेतको पानी समझकर दौड़ लगाता है, वहाँ जानेपर क्या देखता कि पानीका नाम नहीं, फिर आगे दृष्टि डाला तो दूरकी चमकती हुई रेत पानी जैसी दिखी तो फिर दौड़ लगाता, यों दौड़ लगाते लगाते अपनी प्यासकी वेदनाको और भी बढ़ा लेता है और इस तरहसे दौड़ दौड़कर अपने प्राण पखेरू भी उड़ा देता है, पर अपनी प्यास नहीं बुझा पाता, ठीक इसी प्रकार यह अज्ञानी जीव पर पदार्थों से सुखकी आशा करके उनके पीछे दौड़ लगाते हैं पर उनसे सुख प्राप्त नहीं होता। यों सुखकी आशा से दौड़ लगाते लगाते इसकी दौड़ तब पूरी होती जबकि वह मरणको प्राप्त हो जाता है। यही हाल इन सारे संसारी अज्ञानी प्राणियोंका है। अज्ञानसे ये दौड़ लगाते हैं। आगे सब देख देखकर तृष्णा करते जाते। अभी इतना ही वैभव मिला, उसमें शान्ति नहीं मिली, अजी इतनेसे क्या होगा? जब और वैभव मिले तो शान्ति मिल सकती। बस दौड़ लगाते रहते है जिन्दगीमें। और इस जीवकी यह दौड़ कब खतम होती, जब मरण हो जाय। तो मरण होनेपर भी यह दौड़ खतम नहीं होती, क्योंकि जिस भवमें पैदा होगा वहाँ भी तो कुछ मिलेगा, वहाँ भी तो तृष्णा जगेगी, इसकी दौड़ कब खतम होगी जब तक अज्ञान है, तब तक विषयोंके प्रति दौड़ लगानेकी चाल खतम नहीं होती। अज्ञान क्या है? निजमें व परमें भेद न हो सकना, निज स्व हैं यह परमार्थ चैतन्य स्वरूप और पर हैं विचार, कषाय, देह, कुटुम्ब, वैभव, मकान आदि।

५६९—कर्मरस और ज्ञानरसमें भेद विज्ञान होनेपर व्यग्रताका विध्वंस—

मुख्य तया तो भेदविज्ञान कर्मफलऔर ज्ञानरसमें करना है, मेरा स्वरूप ज्ञानरसका स्वाद लेता रहता है। मैं जो हूं अकेला ज्ञानस्वरूप, सो मैं अपने ज्ञानस्वरूपसे बस परिणमता ही रहूँ यही मेरा स्वभाव है,ऐसा ही होना चाहिए था मगर नहीं हो पा रहा,उसका कारण क्या है कि कर्मविपाककी छाया है उससे ज्ञानस्वरूप तिरस्कृत हो गया है। यह मुग्ध बन गया, उसे सुहाने लगा कर्मरसका स्वाद उसी ही रूप अपना आचरण करता है। और भी देखो—कुछ रात सी होने वाली थी, हाल के अन्दर दूरसे देखा कि यहाँ तो साँप पड़ा है, वहाँ बस रस्सीमें साँपका भ्रम होनेसे यह अज्ञानसे दौड़ लगाता कि

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भागता, चिल्लाता है घबड़ाता है तो यह घबड़ाहट कब मिटेगी ? अगर कोई बुला ले जाय कि भाई चलो तुम्हें कहीं घुमा लायें, कोई बढ़िया चीज दिखा लायें तो वह उसका दुःख वाला उपयोग मिटानेके लिये जाता है, कुछ इधर उधर घूम फिर कर उसका उपयोग बदलता है तो भले ही कुछ देर घबड़ाहट न रहे, पर थौड़ी ही देर बाद ज्यों की त्यों घबड़ाहट बन जायगी, घबड़ाहट वहाँ मिटेगी नहीं, ज्ञान तो हो रहा है ऐसा कि मेरे घरमें साँप पड़ा है, चित्तमें तो यह बात समायी है कि मेरे घरमें साँप है, कब यह घबड़ाहट मिटेगी ? अच्छा घरमें फिर आ गया, अब साँप हो असलमें तो वह निकले भी, वह रस्सी कहाँसे भागे, वहीं की वहीं पड़ी है तो उसे देखकर वह फिर घबड़ाने लगा। उसकी यह घबड़ाहट कब मिटेगी ? वह कुछ साहस बनाता है कि देखें तो सही कि आखिर किस जातिका यह सांप है, थोड़ा चला तो देखा कि वह तो कुछ हिलता डुलता भी नहीं, कुछ इसका साहस और बना, आगे चलकर जब देखा कि यह तो साँप सा नहीं मालूम होता, फिर कुछ आगे बढ़ा तो देखा कि अरे यह सांप नहीं है, यह तो रस्सी सी मालूम होती है, कुछ और बढ़ा, उसे उठा लिया और अच्छी तरह मालूम हो गया कि यह साँप नहीं है, यह तो रस्सी है। अब उसकी घबड़ाहट खतम, क्योंकि उसे ज्ञान जग गया कि यह रस्सी है, साँप नहीं है, अब देखो, अज्ञानमें तो घबड़ाहट थी, वहाँ धीरता पाना कठिन था। अब ज्ञान होनेपर घबड़ाहट लाना कठिन हो गया। अब यहां सहज स्वभावसे धीर बन गया, बड़ा संतोष, कोई घबड़ाहट नहीं, ऐसे ही जब इस कर्मरसमें व आत्मस्वरूपमें याने ज्ञान स्वभावमें जबतक भेद नहीं जाने ज्ञान नहीं बन पा रहा तब तक इसको घबड़ाहट है और जैसे ही ज्ञान जगा कि ओह मैं तो यह ज्ञानस्वरूप हूं, यह सब लीला तो कर्मकी है, कर्मके कारण यह सब जभाव है विकल्प याने उपयोगका इस रूप परिणम जाना, ये विकार नैमित्तिक है, ये मेरे स्वरूप नहीं, मैं तो सहज ज्ञानमात्र हूँ, जब यह जीव ऐसा निरखता है अपनेमें, उसको अशान्ति नहीं रहती। ज्ञानी तो शान्त रूप रहता है।

५७१ कर्मपरिणतिसे विविक्त ज्ञान परिणतिका परिचय पाने वालेके शान्ति रसका आस्वादन—

कैसा अज्ञान और कैसा ज्ञान कहाँ करना ? एक दृष्टान्त द्वारा समझिये कि जैसे कोई ठंडी चीज रखी है मानो बर्फ रखी है, और वहाँ एक आदमीने उसे छू लिया तो उस पुरुष को अन्दरमें यह अनुभव बना कि मैं ही अब ठंढा हो गया तो वह अपनेमें ठंढेपनका अनुभव करता। अब यहाँ बतलावो कि ठंढा जीव है कि बरफ ? ठंढी तो बरफ है, पर जीवने क्या किया, उस ठंढे पदार्थको छूकर ठंढेका जो ज्ञान किया, बस उस ज्ञानमें जो ठंढापन विषय रूपसे आया सो अपने उस स्वरूपको तो भूल गया और जो अनुभवमें आया, ज्ञानमें आया ठंडापन उसको अनुभवने लगा। ज्ञानकी बात छोड़ दी और ठंडा रूप अपनेको अनुभवने लगा, तो यद्यपि वहाँ इतना सम्बंध तो है कि इस जीवको ठंडापन अनुभव कराने में विषयभूत वह बर्फ है मगर ठंडा तो बर्फ ही है, जीव ठंडा नहीं। तो उस ठंडे पदार्थमें और इस ज्ञान स्वरूपमें जैसे है तो भिन्नता, पर कोई भिन्नता न जाने तो कष्ट पाता है, अच्छा यहां भी देखो—यह तो स्व और परमें अत्यन्त भिन्न पर पदार्थोंमें स्वपरकी बात कही, अब अन्दरमें जो अनुभव जगा सो उस ज्ञानमें, उस अनुभवमें, उस ज्ञेयाकार परिणमनमें और इस आत्मामें इनमें कोई भेद है कि नहीं ? हाँ भेद तो है, यह ज्ञान तो सदा रहने वाला तत्त्व है और यह ज्ञेयाकार, यह ठंढेका ज्ञान, यह एक क्षणिक आकार है, यहाँ भेद करे कोई कि मैं तो शाश्वत अनादि अनन्त ज्ञानस्वरूप हूं, यह ठंडारूप मैं नहीं हूं, तो ऐसा भेद करने वाला पुरुष ज्ञानी होता है, वह ज्ञानी अपने ज्ञानरसका स्वाद लेता है और उस ठंडे को अपनेसे अलग समझता है, ऐसे ही कर्मरसका स्वाद लेने वाला अज्ञानी है, ज्ञानीको बोध है कि यह

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

(कलश ५८)

सब कर्मकी लीला है और यह मैं ज्ञानमात्र हूं, ऐसा जब तक भेद नहीं होता तब तक जीव अज्ञानी है, कर्मरसको अपनाता है और उस कर्मरसको अपनानेसे इसकी नाना प्रकारकी स्थितियाँ बनती हैं ।

५७२— विकारके विधिविधानके ज्ञाताको ज्ञाता रहनेमें ही उमंग—

जीवमें विकार होता है, खलबली होती है, रागद्वेष मोह होता है, वह है क्या और हो कैसे जाता है, इस बातका जिसको निर्णय हो चुका है वह विभावोंसे हटनेके लिए बड़ी उमंग पैदा करता है और हट जाता है तो पहले तो ह ही निरखो कि ये रागद्वेष मोह क्षोभ है क्या चीज ? ये हैं ज्ञानके उस तरहके विकल्प । इतना तो ध्यानमें आ ही रहा है कि मैं ज्ञान हूं और जानता रहता हूं और इस समय इस ढंगसे जान रहा हूं, यह बुरा यह अच्छा, यह मेरेको लाभदायक, यह मेरेको अनिष्ट है आदिक और उसी कारणसे हर्ष भी मानता । हर्ष और विषाद ये तो हैं आनन्द गुणके विकार और जो क्षोभ होता है वह है चरित्र गुणका विकार. और जो विपरीत बुद्धि होती है वह है श्रद्धा गुणका विकार. लेकिन ये सभीके सभी ज्ञान स्वरूप हैं । ज्ञानसे ये सब अविनाभावी हैं, तो ज्ञानने जो ऐसा विचार किया, कुछ बुद्धि बनाया, जानन किया, यह बुरा, यह भयकारी, यह सुखकारी आदिक रूप सो यों जीव हो कैसे गया ? तो इसका कारण यह है कि अनादि कालसे इस जीवके साथ मोहनीय कर्म लगा है । अन्य पदार्थ, सो उसका जो मिश्रण है, उससे इस ज्ञानमें विकल्प चला, इस तरहसे ये रागद्वेष पनपे हैं, तो इससे यह जानलें स्पष्ट कि रागद्वेष अज्ञानके बलपर बनते हैं, मैं आत्मा तो ज्ञानरूप हूं । जाननेका काम करता हूं, उस जाननके साथ जो मोहनीय प्रकृतिका कर्मरस मिल गया, यह झलक हुई, मिश्रण हुआ, ऐसे ही एक प्रभाव बना कि ये रागद्वेष उठने लगे, ऐसे तथ्यकी बात समझ लेनेसे यह रास्ता मिल रहा है कि मैं ज्ञानस्वरूप हूं तो मैं ज्ञानरूप ही रहूं । मैं उस ज्ञानरसको ही अपनाऊँ, वे तो परभाव हैं, मैं तो अपने भावों रूप ही रहूंगा, इस तरहका जो एक चित्तमें संकल्प बना, एक अभिप्राय और उस तरहसे उमंग बनी. मैं तो ज्ञानरूप ही रहूंगा । मैं किसी पर पदार्थमें आसक्त न होऊँगा, परकी हितरूपसे आस्था रखता हुआ ध्यान न रखूंगा, किसी भी कर्मरसको न अपनाऊँगा, मैं ज्ञानरूप ही रहूंगा यह एक बात जानना है ।

५७३— किसीके द्वारा परमें कर्तृत्व न हो सकना, विकारमें निमित्तनैमित्तिक योगका होना इन दो तथ्योंके निर्णयमें सम्यक्त्वका दर्शन—

अच्छा जरा दूसरी ओरसे भी देखो जो लोग यह मान रहे कि कर्म ही जीवको राग कराता है, तो जब कर्मको राग करने वाला मान लिया और आत्मामें मैं कुछ न रहा, मेरी उसमें कोई स्वतंत्रता न रही परिणमन में तो अब मोक्षमार्ग कैसे मिलेगा ? कर्मने तो राग कराया. अब कर्म ही चाहें कि राग न रखाये तो इसको रास्ता मिलेगा । प्रत्येक पदार्थ अपने कुलका संतान बढ़ाया करते, कर्म भी कर्मकी संतान बढ़ा रहे, तो जहाँ कर्ता कर्म बुद्धि आ जाय कि कर्मने जीवमें राग किया तो वहाँ गुंजाइस नहीं कि भलाईका रास्ता जीव खोज लें । हाँ पर पदार्थ किसी भी पर पदार्थका कर्ता होता ही नहीं है, क्योंकि कोई भी पदार्थ किसी दूसरे पदार्थकी क्रियाका परिणाम नहीं करता, सो जब यों देखा कि कर्म तो निमित्त मात्र है, उसका विपाक आया, रसोदय हुआ और उसका प्रतिफलन हुआ, क्योंकि यह आत्मा स्वच्छ है तो स्वच्छताम यह विकार आ गया, अब वह उस रूपसे परिणमते उपयोगके ही तीन प्रकार के परिणाम होते हैं । जब यह जाना अज्ञान मिटा तो बात बन जायगी, लेकिन जब तक अज्ञान रहता है तब तक यह विकल्पोंकी चक्की चलाता ही रहता है, क्योंकि कहां आरामसे बैठे ?

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अज्ञानी मनुष्य कहाँ आरामसे बैठे सो बताओ ? जब अज्ञान बसा हुआ है तो जहाँ बैठेगा वहीं अपनेमें विकल्प करेगा। तो जितने ये विकल्प तरंग उठ रहे, अज्ञान भी जीवमें है, मगर उनमें निमित्त कारण क्या है ? वह कर्मविपाक। जैसे समुद्रमें लहरें उठती हैं तो बताओ उसमें निमित्त कारण क्या है ?... वायु। जब तेज वायु उठी तो समुद्रमें लहर उठी। लेकिन वायुने लहर परिणमन नहीं किया। वायु तो अपने रूप ही परिणमी, पर एक निमित्त नैमित्तिक योग है कि वायुका सन्निधान पाकर समुद्र लहरोंरूप परिणम जाता है, समुद्रमें द्रव पदार्थ होनेसे, ऐसे ही जब जीवको अज्ञान रहा, कर्मरस व ज्ञानरसमें अन्तर न आ सका तब जीवको जीवपदार्थ और अंतस्तत्त्व इनमें भेद नहीं मालूम पड़ता। तो जैसे वायुकी प्रेरणासे समुद्र परिणम जाता है इसी प्रकारसे कर्मविपाकके उदयसे याने कर्मविपाकका निमित्त पाकर यह जीव विकल्परूप परिणम जाता है, तो जितने भी रागद्वेषमोह विकल्प तरंग है वे सब अज्ञानसे होते हैं। मैं इन रूप नहीं हूं मैं तो ज्ञानरूप हूं जिसे उसका पता नहीं है वह शुद्ध ज्ञानमय होकर भी कर्ता बनता है और इस ही कारण यह जीव स्वयं आकुलित होता है। जब तक बुद्धि व्यवस्थित नहीं होती तब तक इस जीवको अकुलता रहती है और जब बुद्धि व्यवस्थित हो जाती है तो उसको किसी भी स्थितिमें आकुलता नहीं होती।

ज्ञानाद्विवेचकतया तु परात्मनोर्यो, जानाति हंस इव वाः पयसोर्विशेषं।
चैतन्यधातुमचलं हि सदाधिरूढो जानाति पावनविवेचकता एव हि करोति न किञ्चनापि ।।५९।।

५७४—ज्ञानबलसे उद्भूत—

पहले छंदमें बताया गया था कि निजमें और परमें स्वरूपविषयक भेद विज्ञान न होनेसे यह कर्ता होता है और आकुलित होता है। अब इस छंदमें बतला रहे हैं कि जब मन हो जाता है निज और परमें तो यह बिवेचक होता है। ज्ञान क्या ? मैं क्या हूँ ? सहज ज्ञानस्वरूप। इससे बाहर किसी भी चीजको ज्ञानी आत्मा स्वीकार करनेको तैयार नहीं होता। मैं हूं सहज ज्ञानस्वरूप याने अपने आप अपनी सत्ताके कारण परके सम्बंध बिना, उपाधिके बिना अकेलेमें जो इसका स्वरूप हो सकता है, स्वभाव हो सकता है उसे कहते हैं सहज ज्ञानभाव, तो सहज ज्ञानस्वरूप ही मैं हूं, मैं अन्य कुछ नहीं हूं। बस यह जिसके बिश्वासमें नहीं है, यह बात जिसकी प्रतीतिमें नहीं है, एक अज्ञान है उसके जरा-जरासी बातोंमें जरा—जरासी घटनाओंमें क्रोध उमड़ेगा, घमंड आयगा, मायाचार होगा, लोभ कषाय बढ़ेगी और जिसको इस रहस्यका पता है कि मैं तो सहज ज्ञान ज्ञान ही हूँ, अन्य कुछ नहीं हूँ, बडे दृढ़ निर्णयके साथ जिसकी यह आस्था बनी है वह बाहरमें कुछ भी घटना घटे, वह तो ज्ञाता द्रष्टा रहता है कि इस पदार्थका ऐसा परिणमन बन रहा यह अज्ञानवश ऐसा बोल रहा है, यह अज्ञानवश ऐसी चेष्टा कर रहा है, क्योंकि खुद वशमें है नहीं, ज्ञानकी दृष्टि है नहीं, तो अज्ञानमें तो विडम्बना ही होती है, और देखो अज्ञानी जीव मानता तो यह है चित्तमें कि मैं बड़ा चतुर हूं, बहुत कुशल व्यक्ति हूँ, मगर लोग उसकी अज्ञान भरी चेष्टाओंको निरखकर यह समझते हैं कि कितनी अज्ञानभरी चेष्टायें इसकी चल रही हैं, पर अज्ञानी स्वयं अपनेमें यह माननेको तैयार नहीं होता कि मैं भूल कर रहा हूँ, जब भूल नहीं रहती, अज्ञान नहीं रहता, ज्ञान बना है तो यह चूंकि विवेचक बन गया, भेद करने वाला बन गया तब यह जानता ही है, कैसा विवेचक बना ? जैसे हंस पक्षी अपनी चोंचसे मिले हुए दूध पानीमें दूधको अलग और पानीको अलग कर देता है, उसमें कहीं यह बात नहीं है कि हंस अपने आपकी बुद्धि रखकर पानी और दूधको अलग—अलग करता हो, उसकी चोंचमें ही ऐसा गुण है कि जिससे दूध और पानी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अलग–अलग हो जाते हैं। कुछ रसायन भी ऐसे हो सकते जो दूध और पानीको अलग–अलग कर दें। इतना तो आप भी देखते कि दूधमें निम्बूका रस डाल दो तो उसका पतला पन अलग हो जाता और गाढ़ापन अलग हो जाता। तो जैसे रसायन या हंस जल और दूधमें एक भेद कर देते हैं ऐसे ही ज्ञानी जीव निजमें और परमें भेद करता है और वह निजको निज जानता है, परको पर जानता है। मैं हूं यह सहज ज्ञानस्वरूप, देखो एक ही बात हृदयमें जरा रट तो लो, बराबर ख्यालमें तो लावो, जीवन सफल हो जायगा। हर समय, किसी भी समय जरा यह ध्यानमें लावो कि मैं तो सहज ज्ञानस्वभावी हूं, इसमें रागका काम नहीं, द्वेष नहीं, विचार नहीं, विकल्प नहीं, केवल जाननहार प्रतिभास हो जाय ऐसी जिसकी शुद्ध वृत्ति है, ऐसा ज्ञानस्वभाव मात्र मैं हूं, बारबार अभ्यास करें, इस भावनाका और अपने आपमें इस प्रकारका अनुभव बनाइये, मैं यह ज्ञानस्वरूप हूं, सहज ज्ञानमात्र हूं। इसके बाद फिर यह ध्यान आयगा कि इस मुझको तो कोई पहिचानने वाला भी नहीं। घरके कुटुम्बी लोग इस सकल सूरत, इस भौतिक देहको देखकर यह ध्यान बना लेते हैं कि यह मेरा अमुक आ गया और जो वास्तविक *जीव है इसका पहिचानने वाला तो कोई है ही नहीं। लोग तो इस मूर्तिक देहको देखकर रीझते हैं,* रूसते हैं, नाना तरहके अपने विकल्प किया करते हैं। जो मैं अविनाशी ज्ञानस्वरूप हूँ, सहज ज्ञान स्वरूप हूँ, उसे तो कोई देख ही नहीं रहा है। ज्ञानी जान रहा है कि मैं यह सहज ज्ञानस्वरूप हूँ। जिसका कि कोई जाननहार भी नहीं है, और जो पहिचानहार होगा वह स्वयं ज्ञाता द्रष्टा हो जाता है, मुझसे प्रीति और अप्रीति कैसे करेगा ? जिसे देखते हैं, जिससे देखते हैं, वह तो पौद्गलिक ही दिखेगा, आँखोंसे अमूर्त ज्ञानमात्र ज्ञायकस्वभाव न दिखेगा। क्या दिखेगा ? यह जो हाड़ मांस, खून पीप वगैरह पिंडोला दिख रहा है, और लोग उसीमें ही अपना सम्मान अपमान समझते हैं। यहाँ तो जरा–जरा सी बातोंमें अपमान महसूस करते शरीरमें आत्मबुद्धि होनेसे और यहाँ से मरकर नरक निगोद आदि की नीची गतियोंमें पहुच गए तो फिर वहां अपना क्या अपमान महसूस करेंगे ? बस वहाँ तो उसे मारा इसे मारा उसे पीटा यही चलता रहेगा अथवा घुट–घुट कर जन्म मरण होता रहेगा, नरक निगोदकी तो बात जाने दो, यहीं गधा, सूकर आदि हो गए तो फिर क्या सम्मान अपमान चला लेंगे सूकरोंको तो लोग जीवित ही पकड़कर, बर्छी, वगैरह कोई शस्त्र मारकर जान ले लेते हैं अथवा जिन्दा ही अग्निमें भून डालते हैं। एक थोडेसे मांस खानेके लोभमें सूकरोंकी निर्मम हत्या करते हैं। गधे भी जब तक बोझा ढोने लायक रहते तब तक रूखा–सूखा भुस पा जाते और जब असमर्थ हो जाते, कमर छिल जाती अथवा कूले सूझ जाते तो जहाँ चाहे पड़े रहते, उनकी कौन पूछ करता ? यहाँ तो मनुष्य भवमें जरा–जरासी बातमें अपमान महसूस करते, वहाँ कैसे यह बात चल पायगी ? तो भाई यहाँ जो अपने ज्ञानको सम्हाल न पायगा वह तो संसारमें रुलेगा, दुःखी होगा उसका उद्धार न होगा उसका मोक्ष बहुत दूर है।

५७५— सभीचीन ज्ञान जगनेपर विपदा मेघपंक्तिका विघटन—

ऐसा ज्ञान बनावें कि समस्त बाह्य पदार्थोंसे निराला है मेरा अंतस्तत्त्व और उसकी स्वच्छतापर प्रतिबिम्बित होने वाला यह कर्मविपाक भी यह मुझसे निराला है, मैं तो एक ज्ञानमात्र तत्त्व हूँ। सो मैं हूं ना। सो मैं हूँ के नाते, सत्त्वके नाते अपनेमें निरन्तर परिणमता रहता हूँ, और परिणमना कैसे ? जब मैं ज्ञानमय हूं, तो ज्ञान ज्ञानरूपसे ही तो परिणमेगा, ऐसा परिणमता हुआ भी चूंकि कर्मरस की यहाँ झलक है, निमित्त है, आक्रमण है, निमित्त है तब यह ज्ञान अन्य–अन्य विकल्प रूपसे परिणम रहा।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

तो जब सही ज्ञान बन गया, यह जीव विवेचक हो गया, भेद विज्ञान हो गया तब यह केवल जानन हार बन जाता है, जान लिया, बस जीवमें हठ तो बहुत होती है मगर इस बातपर हठ कर लें कि मुझे राग द्वेष कतई नहीं करना है, मुझे हर्ष विषाद कतई नहीं करना है, मैं तो केवल जाननहार रहूंगा तो इसकी सब विपदायें दूर हो जावेंगी। देखो जो बड़ेसे बड़े पापी अंजनचोर या और और भी राजा माँसलोलुपी, सातों व्यसनोंके सेवनहारे, सो जितने बेगसे वे पापोंमें बढ़े, सुलटनेपर उतने ही बेगसे विशुद्धिमें भी बढ़े तो आग्रहका मोड़ बना लें। इन साँसारिक बातोंमें पञ्चेन्द्रियके विषयोंपर, इनपर आग्रह मत बनावो। आग्रह करें अपने आपके अंतस्तत्त्वकी दृष्टिपर, तो ऐसा सत्याग्रह कौन कर सकता जिसको ज्ञान जगा, जिसने निज और परमें भेद समझा वही पुरुष जानेगा कि मैं तो एक चैतन्य धातु रूप हूं, अचल हूं, जो कभी चलित न हो, अनन्त काल निगोदमें रहा, पर वहाँ भी यह चैतन्य स्वरूप चलित न हुआ। चैतन्यस्वरूप वही पहिले रहा, वही अब है, वही अनन्त काल तक रहेगा, जरा अपनी गई बीती दशाओंको तो समझो। जो है वह क्या किसी दिनसे बना है ? किसी दिनसे कोई सत् बना हो, यह तो कभी बात है ही नहीं। जो भी वस्तु है वह किस दिनसे है इसे क्या कोई बता देगा ? पर्यायमें तो बता देंगे कि यह पर्याय अमुक दिनसे है, मगर आत्माके सत्त्वके लिए कोई न कह सकेगा कि आत्मा की सत्ता अमुक दिनसे है, वह तो अनादि अनन्त है, तो ऐसा जो अनादि अनन्त अंतस्तत्त्व है वह चैतन्य धातु अनन्त है, आनन्दधाम है, इसकी रुचि ही कल्याणमार्ग बना देती है।

५७६ देहमें ब कर्मधारामें आत्मत्व स्वीकार करनेके विकट दण्डसे बचनेका संदेश—

अज्ञानमें क्या क्या कुगतियाँ होती हैं जीवकी, अनन्त काल तो निगोदमें रहा, वहाँसे बड़ी कठिनाईसे निकला, तो त्रस पर्यायमें आया, मनुष्य भवमें आया। अब मनुष्यभवमें आ तो गया, विकास तो हो गया, बुद्धि तो कुछ मिली, मन भी मिला, मगर यहाँ भी वही पुरानी आदत, पुराने ही संस्कार यहाँ रागद्वषमें प्रवृत्ति करा रहे हैं, अज्ञानमें बुद्धि बना रहे हैं तो मनुष्य बनकर भी लाभ क्या मिला ? सोचने को तो ये झोंटे, गधे क्या अपनेको बुद्धिमान नहीं समझते ? वे कभी अपनेको हीन नहीं समझते, मैं चतुर हूँ, ठीक हूँ, ठीक चल रहा हूँ, बहुत बढ़िया काम कर रहा हूँ, यों वे झोंटे गधे वगैरह भी अपनेको बड़ा कुशल समझ रहे हैं, तो अपनी बुद्धिमें अपनेको चतुर मान लेने मात्रसे कहीं संसारसे निपटारा न हो जायगा, यह तो भेद विज्ञानसे ही निपटारा बनेगा, जान लो सही सही, मैं चैतन्य धातु हूँ, धातु क्यों कह रहे हैं कि जैसे किसी भी धातुसे कितनी ही चीजें बन जाती हैं, एक चाँदी धातु है तो उससे ही देख लो, कितने ही प्रकारके आभूषण बन जाते हैं, तो ऐसे ही यह चैतन्य भी एक धातु स्त्रोत है, उसकी पर्यायें निकलती रहती हैं, मैं अचल हूँ, उसपर आरूढ़ होता हुआ ज्ञानी पुरुष मायने उस चैतन्यस्वरूप का आश्रय करता हुआ यह ज्ञानी पुरुष जानता ही है, वह किसी पदार्थका कर्ता अपनेको नहीं मानता, क्योंकि उसकी बुद्धि सुलझ गई है, ये सारी बातें जान ली गईं ना, कि जो भी पदार्थ है वह अपनी परिणतिसे परिणमता है, कोई पदार्थ किसी दूसरेको परिणमा नहीं सकता, मैं भी किसी पर पदार्थमें कुछ करनेमें समर्थ न था, न हूँ और न हो सकूँगा, जान रहे हैं सब, अचेतन पदार्थोंमें जैसा निमित्तनैमित्तिक योग है वैसा उनमें काम चल रहा है, सिद्ध होना हो तो सिद्धविधिका काम चल रहा, और जिनके अज्ञान छाया है वे अपने उस अज्ञानके अनुसार उसका ही सहारा ले लेकर मन, वचन, कायकी खोटी चेष्टायें किया करते हैं, जिसको ज्ञान हो गया वह अपनी ज्ञानरूप चेष्टा कर रहा है, अज्ञानोके अज्ञानमय ही सारे वचन निकलेंगे, वैसा होगी शरीरकी, मन भी उसी तरहसे बनेगा और ज्ञानी जीवके वचन

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

भी सम्हले हुए निकलेंगे, शरीरकी चेष्टा भी भली बनेगी, मनके विचार भी स्वपरसुखदायी बनेंगे। यह तो मूलकी बात है, जैसे नीचे अगर सीधी पतेली रख दें तो उसके ऊपर सब सीधे सीधे ही बर्तन आयेंगे और नीचे औंधी पतेली रख दें तो उसके ऊपर सब औंधे औंधे ही बर्तन रखे जा सकेंगे। ऐसे ही अगर यहां भाइयोंको अज्ञान छाया है,तो कर्मोंके वशीभूत हो गए, अज्ञान बना कि कर्मोंके वशीभूत हो गए, यद्यपि यहाँ भी यह वशीभूत हुआ है अपनी परिणतिसे मगर हो तो गए वशीभूत, अब यह अपने ज्ञानसे वृत्तिमान तो न रह सकेगा, जो कर्मोंके वशीभूत हैं ऐसे अज्ञानी जीव इस लोकमें बाहरमें बस विकल्प चक्र ही किया करते हैं, किन्तु जो ज्ञानी है वें कर्ता नहीं होते।

५६७ सहज ज्ञानस्वभाव मात्र अपनेको निरखनेपर कल्याणकी निश्चिति—

देखो भैया ! एक ही बात चित्तमें रख लो और सदा उसका ही ध्यान रखो—ज्ञानी किसे कहते हैं ? जो अपनेको ऐसा मान रहा है कि मैं तो सहज ज्ञानस्वभाव मात्र हूं, और कुछ मैं नहीं, और तो उपाधिके सम्बंधसे बिगड़ी बातें हो गई, मैं बिगड़ूं नहीं, मैं तो सहज ज्ञानस्वरूप हूं, ऐसा भीतरमें जिसने अपने आपकी भावना बनायी उसका नाम है ज्ञानी। कहीं शब्द बोल देनेसे ज्ञानी नहीं बनता, कहीं लोगों पर अपना रोब गाँठनेसे ज्ञानी नहीं बनता, ज्ञान होनेका बस एक यह चिन्ह है, लक्षण है कि अपने आपमें यह आस्था होना चाहिए कि मैं सहज ज्ञानस्वभाव रूप हूं, मैं अन्य कुछ नहीं हूँ, अन्य तो सब पर प्रसंगके विकल्प हैं, मैं पर नहीं, मैं पर प्रसंग नहीं, मैं विकल्प नहीं, मैं तो वह हूं जो अनादि अनन्त शाश्वत हूं, उसमें कष्टका काम नहीं, दुःखी वह पुरुष होता जो दुःखरहित स्वभावकी सुध नहीं रखता, संसारमें वह पुरुष रूलता जो भवरहित इस ज्ञानस्वभावमें आस्था नहीं रखता, जन्म मरण वही पुरुष करता जो जन्म मरणसे रहित ज्ञानस्वभाव मात्र निज अंतस्तत्त्वकी आस्था नहीं रखता। भाई केवल अपनेको पहिचानो, अपना कैवल्य स्वरूप देखो और वहाँ ही चिन्तन मनन करो कि मैं तो वह हूं जो अपने आप सहज सत्त्वके ही कारण जो मेरेमें बात है सो मैं हूं, अन्य कुछ मैं नहीं हूं, सारी जिन्दगी भर यह ही चिन्तन यह ही मनन, यह ही भावना बनायें और किसी समय यह फिट बैठ जाय, दृढ़ हो जाय कि मैं सहज ज्ञानस्वरूप हूं तो समझ लीजिए कि यह मनुष्य जीवन पाना सार्थक हो गया और एक इतनी सी रुचि प्रकाश किरणें अपने ज्ञानकी नहीं बनती हैं तो समझ लीजिए कुछसे कुछ मन वचन, कायकी चेष्टायें करते जाने पर भी इसका जीवन व्यर्थ। मरनेके बाद जहाँ कहीं भी जन्म लेगा उसके लिए यहाँ का यह सब कुछ, जिसमें चित्त लगा लगाकर बड़ी परेशानी भोगी, यह कुछ भी उसके लिए नहीं रहता, तो असार क्षणिक बेकार जिनसे कोई प्रयोजन नहीं, जो मेरे आत्मासे अत्यन्त भिन्न हैं उनमें बेसुध आसक्त होना, उनका लगाव रखना और उस लगावके कारण अपने ज्ञानस्वभावकी सुध भूल जाना, यह इस जीवपर कितनी बड़ी विपदा है, इस विपदासे बचनेके लिए आओ अपने आपके अन्तः स्वरूपमें, सारे ख्याल छोड़ दो बाहरके और एक सच्चा विश्राम लेकर यह अनुभव करो कि मैं तो यह सहज ज्ञान ज्योति मात्र अंतस्तत्त्व हूं, इसका आश्रय लें, इस रूप अपना अनुभव बनावें, तो नियमसे संसारसे पार हो जायेंगे, संकटोंसे छूटनेका दूसरा उपाय अन्य कुछ नहीं हो सकता।

५७८ कर्मरस व ज्ञानरसका ज्ञान द्वारा पार्थक्य—

जब निज अन्तस्तत्त्व व पर एवं परभावका भेद ज्ञात होता है कि यह अनाद्यनन्त अन्तः प्रकाशमान ज्ञायकस्वभाव अन्तस्तत्त्व तो मैं हूं, शेष औपाधिक भाव, उपाधि व बाह्य पदार्थ ये सभी पर हैं, जब यह भेद ज्ञात होता है तब यह ज्ञानी परको निज नहीं बनाता व निजको पर नहीं बनाता ऐसी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

स्थितिमें यह स्वयं ज्ञानमयीभूत हुआ है। सहज ज्ञानस्वभावमें आत्मत्व स्वीकार किया है ज्ञानीने, इस कारण यह ज्ञानी कर्मोंका कर्ता नहीं होता। निजकी परिणतिको निजमें निजकी परखनेवाला अज्ञान भाववाला व्यामोही कैसे बन सकता है। जैसे कभी ठंडा पानी छूनेवाला विवेकी व्यक्ति समझता है कि यहाँ जो ठंडा स्पर्श है सो जलमें ही है, जलसे अभिन्न है, इस ठंडे स्पर्शका मुझमें रंच भी प्रवेश नहीं है, हाँ, पर ज्ञान होनेमें यह ठंडा विषय भूत है। सो भले ही लोकदृष्टिसे यह ठंडा स्पर्श ठंडा ज्ञान का अनुभव करानेमें समर्थ है, तो भी उस प्रकारका ज्ञान अनुभव तो इस समय मुझ आत्मासे अभिन्न है सो यह अनुभवन जलसे अत्यन्त भिन्न है। प्रत्येक पदार्थकी क्रिया प्रत्येक पदार्थका परिणमन उस ही एकसे अभिन्न है, उसका दूसरे पदार्थसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। ऐसा भेदज्ञान होते ही अब यह विवेकी खूब दृढ निर्णय किये हुए है कि मैं कभी ठंडा रूप परिणमा ही नहीं जा सकता अतएव वह अपनेमें व्यवस्थित संतुष्ट है। इसी प्रकार ज्ञानी जानता है कि क्रोध मान माया लोभ कषाय प्रकृति पुद्गल कर्ममें क्रोध विपाक आदि उदित होता है सो यह पुद्गलकी अवस्था है इससे मैं अत्यन्त भिन्न हूं, हाँ इस कषाय विपाकका मुझमें, मेरे उपयोगमें प्रतिफलन हुआ है व ज्ञान विकल्पमें मेरा उस प्रकार विपरिणमन हुआ है सो लोकदृष्टिसे क्रोधादिविपाकानुरूप अनुभव बना है सो यह पुद्गल परिणाम उस प्रकारका अनुभव करानेमें समर्थ है तो भी पुद्गल कर्ममें हुआ कर्मविपाक पुद्गल कर्मसे अभिन्न है और आत्मासे अत्यन्त भिन्न है तथैव जो आत्मामें विषादानुभव हुआ है वह आत्मासे उस समय अभिन्न है और पुद्गल कर्मसे अत्यन्त भिन्न है। ऐसा भेद ज्ञान करनेवाला ज्ञानी पुरुष कोधादिरूपसे जरा भी न परिणमता हुआ,और पुद्गल क्रोधादिरूप है इसका ज्ञाता होता हुआ क्रोधादि कर्मका कर्ता नहीं होता है और उसको तो यह ज्ञानविरुद्ध तक रहा है। इस प्रकार ज्ञानी कर्मरसका ज्ञाता मात्र है कर्ता नहीं है।

ज्ञानादेव ज्वलनपयसोरोष्ण्यशैत्यव्यवस्था, ज्ञानादेवोल्लसति लवणस्वादभेदव्युदास :।
ज्ञानादेव स्वरसविकसन्नित्यचैतन्यधातोः, क्रोधादेश्च प्रभवति भिदा भिन्दती कर्तृभावम् ॥६०॥

५६८— उदाहरणमें ज्ञानसे ही शीतपना व उष्णापनेकी व्यवस्था तथा व्यञ्जनमें नमकके स्वादकी व्यवस्था—

ठीक ठीक सही सही व्यवस्था ज्ञानसे ही होती है, पानी ठंडा है, आग गरम है, यह भेद कौन बताता है ? किसने समझाया कि पानी ठंडा होता, आग गरम होती ? यह तो एक ज्ञानने ही बताया। अग्निका सन्निधान पाकर पानी गरम हो गया, उस गरम पानीमें यह ज्ञान करना कि इसका स्वभाव तो ठंडा है, और गरमाहट अग्निका सम्बन्ध पाकर आयी है, यह भेद कौन बताता है ? ऐसी व्यवस्था ज्ञानसे ही बनी। अच्छा, पकौड़ियाँ बनायी नमक बिना तो वे बहुत फीकी रहतीं; जैसे मानो कोई मिट्टीसी चबा रहे हों, जिसकी जैसी रुचि हो। नमक पडा हो तो पकोड़ीका स्वाद अच्छा लगता है ना ? अब उस नमकीन चीजको खाते समय जो अज्ञानी हैं उनको तो जिस नमकके प्रसादसे चीज मीठी लग रही उसका तो ख्याल नहीं होता। चीजपर ही ध्यान होता है, और उस चीजको वह बड़े हापड धपडके साथ खाता है। उस बेचारे नमकका कोई आभार नहीं प्रकट होता कि धन्य है यह छोटीसी चीज नमक जिसकी वजहसे यह सब भोजन मीठा लगता है। कोई सोचता है क्या ? जो चीज हाथपर है उसीको खाता है और आसक्त होता है। अच्छा तो जरा विवेक करके देखो तो उस व्यञ्जनके खाते समयमें भी दोनों स्वाद मनमें अलग—अलग पाये जावेंगे अथवा केवल नमककी डली मुखपर धरकर स्वाद जानो और नमक बिना केवल उस पकौड़ीका स्वाद जानो। वही पुरुष जब नमकीन पकौड़ी खा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

रहा है तो उसके यह व्यवस्था बनती है कि इसमें इतना तो नमकका स्वाद है और इतना साथमें उस बेसनका स्वाद है, नमक होता है तीखा और यह बेसन होता है ऐसा साधारण, इस प्रकारके स्वादके भेद की व्यवस्था किससे बनी ? ज्ञानसे ही बनी ।

५८० कल्पनाओंके जालका कष्ट—

भैया ! और, और भी बातें समझ लो, दुनियामें धर्मकी सब व्यवस्था कौन बनाता ? तो भाई खुद जो दुःखी हो रहे हैं सो देखो कष्ट तो इस ब्रह्मस्वरूपमें है ही नहीं । और, कष्ट सो पहाड़ जैसा लग रहा है हर एकको, जिसको संसारमें जितनी अधिक सुविधा मिली खानेकी, पहिननेकी, रहनेको, इज्जतकी, वह कल्पनायें करके उतना ही अधिक दुःख मानता है । उतना ही अधिक क्लेश समझता है, तो कष्ट देखो सब मान रहे, जिसका पुण्योदयहै वह भी कष्ट मान रहा, जिसके पापका उदय है वह भी कष्ट मान रहा, कैसा यह अँधेरा है, कर्मविपाक है कि संसारमें यह जीव इस अज्ञान अवस्थामें किसी भी स्थितिमें सुखी नहीं रह पाता । कैसे सुखी रहे ? दुःखका स्वरूप, दुःखका नित्य स्त्रोत दुःखका कारण जो अज्ञान है वह तो साथ लगा हुआ है, तो स्वरूप तो मेरा कष्टरहित है, ब्रह्मस्वरूप है जिसे परम ब्रह्म बोलते, परम पारिणामिक भाव, विशुद्ध चैतन्यमात्र बोलते, आत्माका अपने आपके ही स्वभावसे, बिना परके सम्बंधके जो अपनेमें स्वरूप है वह तो कष्टरहित है, क्योंकि इसका किसी दूसरे पदार्थसे लगाव नहीं है, सत्ता न्यारी है, पर समझता यह उल्टी बात है, मेरा तो अमुक है, मेरा तो घर है, मेरी तो इतनी विभूति है, मेरे तो इतने लोग हैं, समझ रहा है ना उल्टा, भ्रम न लगे तो कोई दुःख नहीं । तो क्या भ्रम किया इस जीवने जिससे कि यह दुःखी बना, अज्ञानी बना ? वह क्या भ्रम है जिससे इसमें शान्तिकी व्यवस्था नहीं हो पाती । अच्छा भ्रमकी भी बात आप समझलो, पहले यहांसे शुरू करें, आखिर भ्रमके फलमें बीत क्या रहा है दुनियाके जीवोंपर, अज्ञानी जीवोंपर, देख लो सब समझमें आ जायगा, बीत रहा है पर पदार्थके प्रति ख्याल और उनमें कुछसे कुछ कर देनेका भाव । यह सब पर बीत रहा है, करनेका यह काम है—ऐसा करना, यह करूँगा, मेरे करनेको यह पड़ा है, मैं इसको यों करूँगा, ऐसा करना, यह करना, बस इसका ही विकल्प इस जीवपर गुजर रहा है, याने यह कर्ता बन रहा, कर्ता नहीं है यह जीव वस्तुका, मगर बन तो रहा है, तो कष्ट है ना करनेका भ्रम बननेमें ?

५८१ कर्ता बननेके भावकी विडम्बना—

कर्ता बननेमें कष्ट है कि नहीं ? हाय मेरेको पड़ा है यह काम, इसीमें बीमार चल रहे और इसीमें दिलके भी बीमार बन जाते, इसीमें प्रसन्नता नष्ट हो गई, लोग खाते तो रोज हैं मगर सुखसे खा पी भी नहीं पाते, कामका विकल्प जो कर रहे । जैसे जब किसी बच्चेके चित्तमें यह बात रहती हैकि मुझे यह खेलनेका काम पड़ा, दसों बच्चे खेल रहे थे, माँ जबरदस्ती उसका हाथ पकड़ कर ले गई, उसने सवेरेसे अभी खाना खाया नहीं, माँ उसे जबरदस्ती खिलाती है, वह खेलनेके लिए मचलता है, माँ उसके एक दो तमाचे भी लगाती है, पर उसका तो खेलनेमें ही चित है, किसी तरह जबरदस्ती खिलानेसे थोड़ा सा खाता और फिर उसी खेलमें पहुंच जाता, यह तो बच्चोंके छोटे छोटे खेलोंकी बात है, बड़े पुरुषोंके साथ बड़े बड़े खेल लगे हैं, खेल क्या ? कामकाज, और, बच्चे लोग तो फिर भी जिम्मेदारी महसूस न करते हुए खेल रहे हैं और ये बड़े लोग अपने ऊपर एक बहुत बड़ी जिम्मेदारी महसूस करते हुए खेल रहे हैं, चित्तमें पड़ा है कि अभी फैक्ट्रीका काम पड़ा है, वहां मजदूरोंसे काम कराने जाना है, अब दूकान खोलना है, हिसाब लगाना है, अब उससे मिलना है, यह काम पड़ा है, तो यह भूख मानो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हाथ पकड़कर ले जाती, रसोई घरमें बैठाती, जबरदस्ती करके खिलाती, मगर चूंकि इसका चित्त लगा है बाहरी बाहरी बातोंमें तो जल्दी जल्दी खाना, खानेमें भी हापड़ धूपड़ मचाता, सुखसे बैठकर खा भी नहीं पाता और झट काम करने भगता। इसको करने करनेका राग मिटे तो आगे सुख शान्तिका मार्ग मिले, देखो सब द्रव्य स्वतंत्र स्वतंत्र हैं, जिनका जैसा योग है उनका वैसा काम चल रहा है, कोई एक ईश्वर ऐसा नहीं है जो हमको नरकमें ले जाय, स्वर्गमें ले जाय, मुक्तिमें ले जाय, ऐसा मानने वाले लोग संसारसे कभी पार नहीं हो सकते, क्योंकि गुजर तो रही है यह कोई घटना, निमित्तनैमित्तिक भाव और मानते कुछ और, जैसे मशीन चलानेका पुर्जा कुछ और है, बंद करनेका कुछ और है, अब यह चलाये अन्य पुर्जासे तो काम कैसे बनेगा? ईश्वर तो आदर्श रूप है बड़ी बिशाल महिमा वाला है, वह एक पवित्र परम ब्रह्म जो निर्दोष है और गुणमें परिपूर्ण है, ऐसा जो एक उत्कृष्ट आत्मा है वही है परमात्मा, ऐसा स्वरूप जब चित्तमें आता और परमात्माके प्रति भक्ति उमड़ती है तो खुदमें एक विकास बनता है, पाप कटता है, पुण्य बढ़ता है, काम जैसे होना है वैसे ही हुआ करेगा अन्य विधिसे नहीं होतो, तो प्रभुका स्वरूप आदर्श है उसको ध्यानमें लो, अपने आत्मामें घटित करो, जिसको आत्मस्वभावका दर्शन हुआ उससे प्रभु भक्ति असलमें बनती है और जिसको प्रभुभक्ति बन गई उसको आत्मदर्शन होता है, हाँ तो हैं तो जीव कष्टरहित मगर इनपर कष्ट आया है तो यह कष्ट है कर्तृत्व भावका या भोक्तृत्व भावका।

५८२ कर्तृत्वके भारकी बीमारीका चित्रण—

देखो यह मोही अज्ञानी जीव क्रोध करता और क्रोध करता हुआ यह समझ रहा है कि जो क्रोध हो रहा यह ही तो मैं हूं, मैं और इससे न्यारा क्या? बस अज्ञान भावको अपनाया इसलिए यह जीव दुःखी हुआ, तो दुःख कैसे मिला? करने करनेका भाव बन रहा उससे दुःख हो रहा। कोई धुनिया विदेशसे आया पानीके जहाजमें। उस जहाजमें आदमी तो दो चार ही थे, परन्तु रूई सैकड़ों टन लदी हुई थी। रूईका इतना बड़ा ढेर देखकर धुनियाके मनमें ऐसी कल्पना उठी कि अरे इतनी ढेरों रूई हम ही को तो धुननी पड़ेगी, तो उसको इतना गम हो गया कि सिर दर्द हो गया, बुखारभी चढ़ आया, घरपर तो कभी एक किलो, कभी दो किलो रूई ही ठक ठक ठाँय ठाँय कर लिया करता था, पर उतना बड़ा ढेर देखकर उसको गम हो जाना स्वाभाविक ही बात थी। आखिर घर पहुचते पहुचते वह बहुत बीमार हो गया, अनेकों उपचार किए गये, पर फायदा न हुआ, एक बार कोई बुद्धिमान पुरुष आया, उसने कहा क्या मैं इन्हें ठीक कर दूं?—हाँ हाँ, ठीक कर दो, बड़ी कृपा होगी, परिजन बोले।—अच्छा तुम लोग यहाँसे जावो, मैं इसे अभी ठीक किए देता हूं, सब चले गए, वहां वह बुद्धिमान पुरुष उस धुनियासे पूछता है कहो तुम कहां थे किस किस तरहसे आये? तो धुनिया बोला, हम तो समुद्री जहाज से आये।....उसमें कितने आदमी बैठे थे?....अरे आदमी तो दो चार ही थे पर उसमें सैकड़ों टन रूई लदी थी। ऐसी गमभरी आवाजको सुनकर वह बुद्धिमान पुरुष सब समझ गया कि इसको क्या बीमारी है, सो बोला—अरे तुम उस जहाजसे आये, वह जहाज तो अगले बंदरगाहपर पहुचते ही जहाजमें आग लग जानेसे रूई सहित जलकर भस्म हो गया,।...क्या, भस्म हो गया, लो वहीं वह चंगा हो गया, जहाँ उसका यह भाव बना कि अब मेरे करनेको यह काम नहीं रहा वहाँ वह चंगा हो गया। तो अपना एक सच्चा ज्ञान बनाकर भीतरमें यह निर्णय बना लो कि इस जगतमें मेरे करनेको कुछ काम नहीं पड़ा, मैं तो ज्ञानमात्र हूं, बस अपने भावोंको ही करता हूं परमें कुछ किया ही नहीं जा सकता, और, परिस्थिति वश घरमें रहना पड़े तो वहाँ सब काम करने पड़ते हैं, पर श्रद्धामें यह बात रहे कि जगतमें मेरा कहीं

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कुछ नहीं और मेरे करनेको यहाँ कुछ नहीं पड़ा तो जब यह बोध हो जाय कि ये जो कर्मविपाक उठ रहे ये कर्मकी चीज हैं, मेरी वस्तु नहीं। मैं तो प्रभुवत् विशुद्ध अंतस्तत्त्व हूँ, तब इसको कहाँ संकट है। जब यह ज्ञान न हो तो अनेक प्रकारके विकल्प उठते हैं। जिनका कष्ट भोगना पडता है।

५८३—विकल्पविपदा आनेका कारण तथा निर्विकल्प संपदाका पौरुष—

क्यों उठते विकल्प कि इसका तो स्वरूप है निर्विकल्प, कुछ न करने का, अकर्तृत्वका, एक ज्ञानघन स्वरूप, अब उस सहज स्वाभावसे यह भ्रष्ट हो गया याने इसका उपयोग परभावोंमें लग गया इसलिए दुःखी हुआ। भाई यह अपने ज्ञानसे क्यों हट गया? इसका जो एक विशुद्ध ज्ञाता द्रष्टा रहनेका स्वरूपका व्यापार था वह क्यों नहीं हो रहा? अपने ज्ञानस्वरूपसे कैसे हट गया? यों हट गया कि जो कर्मविपाक हो रहा, कर्मकी दशामें कर्मविपाक हो रहा, जो कर्मकी दशा चल रही है, स्वच्छता होनेसे वह झलक गया, अब उसमें इसने यह मान लिया कि मैं क्रोध हूँ। अरे क्रोधी आदमीको कोई समझाये कि भाई क्रोध न करना चाहिये, तुम भूलसे क्रोध कर रहे हो, तो वह यह समझता है कि यह समझाने वाला तो बेवकूफ है, इसे कुछ असलियतका तो पता नहीं। असलियत तो यह है जो मैं सोच रहा हूँ। अहो क्रोधमें सब गुण भस्म हो जाते हैं। ऐसा क्रोध करके मानता है अज्ञानी कि यह मैं हूँ। जहाँ उसने अपनेको व उन परपदार्थोंको एकरूपसे जाना वहाँ ही तो यह श्रद्धा बनेगी कि यह मैं हूँ। क्योंकि परको स्वके एकरूपसे जान लिया इस कारण इसको भेदविज्ञानका सामर्थ्य नष्ट हो गया कि हमने अपने ही अज्ञानसे उस कर्मलीलाको, कर्मविपाकको अपना डाला। यह मैं हूँ। बस सारा धन्धा पलट गया, यह कर्ता बन गया, दुःखी हो रहा। अब न दुःखी होना हो तो मूलमें क्या करें? जो चैतन्य धातु चैतन्यस्वरूप है, जो स्वभावसे विकासमें उद्यत है तथा अन्तरंगमें सदा रहने वाला है, अचल है, जो स्वतःसिद्ध सहजसिद्ध है वह मैं अपने स्वरूपमें ऐसा परमब्रह्म इन क्रोधादिक भावोंसे जुदा हूँ। यह ज्ञान बन जाय तो यहाँ जो व्यवस्था बन सकती है उस ज्ञानरूप ही मैं हूं ना, अब अज्ञानी न बनूंगा। यह सत्पथ दृढ़ हो जायगा। अब यह जीव उस बिभावसे अपने स्वरूपको अलग समझता है और वहाँ कर्तृत्वभाव सब दूर हो जाता है।

४८४—परविविक्त अन्तस्तत्त्वके परिचयमें धर्मका वास—

देखो अपनेमें परीक्षा करें, अपने आपके स्वरूपको सर्व परतत्त्वोंसे न्यारा मान पाया या नहीं? समझो। अगर नहीं मान पाया याने मैं चैतन्यस्वरूप अंतस्तत्त्व इस जगतकी सारी विडम्बनाओंसे न्यारा हूँ, यदि ऐसा नहीं समझ पाया तो अभी धर्म नहीं मिला, मुक्तिका मार्ग नहीं मिला। व्यर्थकी करनीसे कहीं काम सही न बन जायगा। ज्ञानपूर्वक क्रिया होगी तो सिद्धि मिलेगी। अज्ञानमयी क्रियासे सिद्धि नहीं होती। जीवनमें एक ही मात्र यह काम पड़ा है कि मैं अपने आपमें निज सहज चैतन्यस्वभावको यह मैं हूँ ऐसा समझता रहूँ। जहाँ ज्ञान बनेगा वहाँ उस ज्ञानसे ही ये दो भेद पड़ जायेंगे कि मैं चेतन हूँ, ये क्रोधादिक अचेतन हैं, पौद्गलिक हैं। इनका मैं करने वाला नहीं। मैं तो अपने ही आत्मभावोंका करने वाला हूँ, यह भेद चाहिए, जब कि संसारके लोग इसके बजाय दौड़ रहे हैं अज्ञानमें, मोहमें, रागमें, और वह बात छूटती ही नहीं। आचार्य संत जन या गुरुजन समझाते हैं, वे समझाते तो उसका महत्त्व जच नहीं पाता और बच्चा, स्त्री, पिता आदि कोई गप्पकी बात कहें तो वहाँ उनका महत्त्व जचता। जो कल्याणकी बात हैं, आचार्य संतोंकी कही बात है, गुरुजन जो समझाते हैं वह तो मोहियोंकी दृष्टिमें महत्त्वका स्थान नहीं बन पाता है, किन्तु जो मोही परिजन बताते हैं, इशारा करते है उसकी आस्था

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

दृढ हो जाती है कि हमारा ही तो घर है, और किसका घर है, कोई छुडाकर देखे तो सही। नगर पालिकामें दर्ज है, तहसीलमें दर्ज है, रजिष्ट्रेशन हुआ है, रात दिन रहते हैं। यह मेरा ही तो घर है। भ्रम बनता है, अज्ञान बनता है, और दम निकल गई, जिस क्षण जीव चला गया तब क्या रहा ? लेकिन मोह ममता नहीं छूटती। यह मेरा ही तो है सब। मेरा ही तो है यह, इस अज्ञानने इस जीवको संसार में चारों गतियोंमें रुला रखा है। जिस अज्ञानकी चोट पहुच रही है उसी अज्ञानको आदर दिया जा रहा है। जब तक अज्ञान है तब तक यह जीव कर्ता बनता है, आकुलित होता है, जब इसके ज्ञान जगता है तो कर्ता नहीं होता, आकुलित नहीं होता, मात्र ज्ञाता द्रष्टा रहता। तो क्या करना है ? ऐसा अपनेको बनावें कि यह सब पर वस्तुओंसे उदासीन बना रहे ?

५८५—मोहका अंश भी विकट व्यामोह—

कोई कहे कि यह उदासीन तो बहुत ज्यादह है, लगा हुआ तो थोडासा ही हैं जैसे मानो इस शहरमें ५० हजार घर हैं तो यह कहता है शानमें कि देखो हमको एक कम ५० हजार घरोंसे उदासीनता है, बस एक ही घरसे रह गया मोह, बाकी नगरमें और जितने घर हैं उनसे तो हम विरक्त हैं। वाह रे वाह, धन्य है विरक्ति। अरे उन ५० हजार घरोंपर इसका कब्जा हो नहीं सकता इसलिए ऐसी गप्प मारे जा रहा, और किसी मकानपर कब्जा होता हुआ दिखे तो सही, फिर यह गम खायगा क्या ? जिसको एकमें लगाव है उसे सबमें लगाव है। कोई यह मानता हो कि घरमें एक जीवसे हमें प्रेम है, बस एकसे मोह है बाकीसे मोह नहीं हे तो उसकी यह बात गलत है। अगर एकसे मोह है तो सबसे मोह है, क्योंकि बाकीके जो सब हैं उनमें से भी एक किसीसे खास पहिचान हो जाय तो मोह हो जायगा कि नहीं? हो जायगा। मोहका अंश मात्र भी इस जीवके लिए हितकारी नहीं, तो सोचना चाहिए। इस जीवनमें बहुत–बहुत पुण्य साधन पाकर मोहमें रागमें इस जीवनको बिता दिया जाय तो आगे क्या हालत होगी।

५८६—करनीके अनुसार भरनीके निर्णायकका सत्पथकी ओर अभिमुखता—

यहां कोई किसीका निभाव करने वाला नहीं, खुदही खुदका निभाव कर सकता है। इस लोकमें भी देखो जिस आदमीकी जीभ खराब है, जैसा चाहे मुहतोड जवाब देता हो वह कहीं प्रसन्न रह सकता क्या ? जिसकी क्रिया खोटी हो, दूसरेको दुःख उत्पन्न कराने वाली हो उससे कोई आनन्दमें रह पाता क्या ? जो जैसा करता है वह वैसा ही फल पाता है। भूलमें भी यही बात, भीतर भी यही बात। यह जीव अज्ञान करता है तो अज्ञानका फल पाता है, ज्ञान करता है तो ज्ञानका फल पाता है। अज्ञानका फल आकुलता और ज्ञानका फल शान्ति। जहां कहीं भी किसीको भ्रम हो गया, कितने ही घरके लोग ऐसे भी होते, किसी बातपर एकको भ्रम हो गया वह जरा सम्बन्ध अधिक नहीं रखता, कम बोलता, दूसरेको भी थोडा भ्रम हो गया, अब उस भ्रममें भ्रम बढ़ने लगा, उसका भी उत्तरोत्तर भ्रम बढ़ने लगा। बात कुछ नहीं, भ्रमका मोह। एक दूसरेकी पीठसे पीठ लगी है, सामने नहीं आ पाते, देखो उस भ्रमने ही तो दुःखी किया। कुछ भी हालत हो, जगतमें कोई कैसा ही परिणमें, जिसका जैसा उदय है, भाग्य है, योग्यता है, ज्ञान है, अज्ञान है, उसका वैसा परिणमन होगा, तुम उस परके परिणमनमें दखल देकर, उसमें अपना लगाव जोडकर कि यह अगर इस तरह बन जाय तो मुझे बडा सुख हो, और इस तरह बने तो क्या, उसकी मर्जी, उल्टा चले तो क्या ? उसकी मर्जी, थोडा कर्तव्य है कि कोई बात समझा दें। हमको आगे आकुलता करनेकी जरूरत नहीं। यह बात तब ही तो बनेगी जब ज्ञान जगेगा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

(कलश ६१)

और मोह मिटेगा।

५८७— निर्मोह ज्ञानमात्र अन्तस्तत्त्वके आश्रम बिना सुखशान्तिकी असम्भावना—

मोह मिटे बिना निर्मोह ज्ञानमात्र स्वरूपके परिचय बिना यह जीव शान्ति सुखका स्थान नहीं बन सकता। बाकी तो सब एक दूसरेको बहकाना मात्र है। जैसे किसीको क्रोध आ जाता तो वह अधिक गड़ा हुआ पत्थर उखाड़कर मारनेकी चेष्टा बताता है। वह पत्थर उखड़ता नहीं। उसे तो कोई दो चार मजदूर दिन भरमें खोदकर निकाल सकते, मगर क्रोध आनेपर उस दूसरेपर अपना रोब जमानेके लिए वह गड़ा हुआ पत्थर उचकाता है, ऐसे ही ये जगतके जीव दूसरोंपर रोब जमानेके लिए मनचाही प्रवृत्ति, चेष्टा करते हैं, पर रोब थोड़े ही जमता। प्रत्येक पदार्थ अपने आपपर ही रोब जमा सकता, प्रभाव कर सकता। एक पदार्थ दूसरे पदार्थपर अपना प्रभाव नहीं जमाता। तो भाई सम्यक् ज्ञान बनायें। मैं ज्ञानमात्र हूँ, ज्ञानको ही करता हूं, ज्ञानको ही भोगता हूं, ज्ञानसे ही ज्ञानकी निकटता है। ज्ञानमें ही ज्ञानका व्यापार चलता है। बाकी जो कुछ और प्रसंग है, कर्मविपाक हैं क्रोध है, विकल्प है, जो कुछ भी परभाव हैं वे मेरे स्वरूपकी चीज नहीं। यह उपाधिका निमित्त पाकर ऐसा एक परिणमन बन गया। यह मैं हूं, मैं क्रोधादिक अनेक प्रकारोंका नहीं हूं। मैं तो विशुद्ध चैतन्यमात्र हूं। वहाँ जिसने पहचान बना ली अर्थात् ब्रह्मस्वरूपका जिसने परिचय पा लिया उसको जगतमें अब आकुलतायें नहीं सता सकती। वह धीर गम्भीर उदार बन गया, जब चाहे स्वरूपमें दृष्टि ले जाता और वहीं तृप्त रहा करता। देखो यह सब शान्ति कैसे मिलेगी? ज्ञानसे। इसलिये प्रत्येक पदार्थके स्वरूपका सही सही ज्ञान करें, सबसे उदासीन रहें, अपने ही ब्रह्मस्वरूपमें तृप्त रहें तो संसारके संकट सदाके लिए मिट जायेंगे, शुद्ध परिणाम प्राप्त होगा।

अज्ञानं ज्ञानमप्येवं कुर्वन्नात्मानमञ्जसा।
स्यात्कर्तात्मभावस्य परभावस्य न क्वचित्॥६१॥

५८८—आत्मामें आत्मगुणोंकी ही परिणतिकी संभावना—

कर्तृत्वके विषयमें बहुत कुछ वर्णनके बाद यह निर्णय दिया जा रहा है कि यह जीव अपने ही भावोंका कर्ता होता है, परभावोंका कतई यह कर्ता नहीं होता। अपने भावोंका कर्ता अज्ञानमें किस तरह होता कि अपने आपको अज्ञानरूप बनाता हुआ अज्ञानी अपनेमें भावोंका कर्ता है, और ज्ञानी किसका कर्ता है? तो ज्ञानी अपने आत्माको ज्ञानमय बनाता हुआ अपने भावोंका कर्ता है। बनानेका अर्थ कोई व्यवहारकी चीज बनानेकी तरह नहीं, किन्तु जब अपने आपको अज्ञानस्वरूप मान लिया तो अज्ञानभावका कर्ता है जब अपने आपको ज्ञानस्वरूप मान लिया तो अपने ज्ञानभावका कर्ता है। यह जीव अज्ञानसे किस प्रकारके भावोंका कर्ता है? मैं राग करता हूं द्वेष करता हूं, क्रोध करता हूं, यों अज्ञानमय भावोंका कर्ता होता है अज्ञानी। ऐसा क्यों बनता है? बात यह है कि यहाँ दो प्रकारके पदार्थ हैं—एक तो ये जीव और दूसरे ये पौद्गलिक कर्म। सो पूर्वमें बाँधे हुए पौद्गलिक कर्मका विपाक आया, अनुभाग खिला सो उस समय कर्मके अनुभागका प्रभाव कर्ममें ही पड़ा निश्चयसे, कर्मके अनुभाग वाली क्रियामें अभिन्न कर्म है, सो ये कर्म जैसे अपनेमें शक्ति भरे हुए जो उसका अनुभाग था, प्रकृति था उसके ही अनुकूल अपने आपमें अनुभागको खिला दिया। बस यह काम तो कर्ममें हुआ, पर चूंकि कर्मबंधमें यह जीव है, और यह जीव है स्वच्छ उपयोग रूप सो वह जो कर्म खिला, वह जो अनुभाग खिला फलदानशक्ति खिली, साता असाता प्रकृतिमें जो भी वहाँ रागद्वेषादिक कषाय हुए उसका सान्निध्य पाकर

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

इस आत्मामें, इस स्वच्छतामें एक प्रतिफलन हुआ, उस प्रतिफलनमें यह जीव जुटा हुआ है, अनादिका संस्कार है, ऐसा ही जुटता चला जा रहा है, उसको बुद्धिपूर्वक तो नहीं जान रहा, किन्तु अज्ञानरूप बन कर अपनेको अनुभव रहा है, सो उस कर्म विपाकको अज्ञान रूप बनाता हुआ यह अपने अज्ञान भावका कर्ता होता है। मैं क्या हूँ, बस इसके उत्तर पर ही सब दारोमदार है, यह जीव भला है या बुरा है, शुभ भाव कर रहा है या अशुभ भाव कर रहा है या धर्मभाव कर रहा है ? इन सबका निर्णय इस जीवके इस आधार पर है कि वह अपनेको क्या समझ रहा ?

५८९ जीव और कर्मका संसारमें परस्पर निमित्तनैमित्तिक योग—

देखो जब कर्ममें विकार हुआ, उसका सान्निध्य पाकर, निमित्त पाकर इस चैतन्यमें भी विकार हुआ। चैतन्यका विकार चैतन्यसे अभिन्न है, उस कालमें कर्मका विकार कर्मसे अभिन्न है, पर इनका परस्पर निमित्तनैमित्तिक योग अनिवार्य ढंगसे अनादिसे चला आ रहा है, सो यह निमित्तनैमित्तिक योग केवल इतना ही नहीं कि कर्म निमित्त होते हैं, जीव भाव नैमित्तिक होता, किन्तु जब यह जीव अपने ज्ञानस्वरूप को सम्हालता है तो वहाँ कर्ममें भी निर्जरण होता है, सो वह नैमित्तिक होता। तो जब कर्मविपाक आया और उस उदय कालमें यह स्वच्छताका विकार बना, उपयोगमें प्रतिफलन हुआ, सो वहाँ इसकी अज्ञान-रूप दशा बनी, सामान्यसे तो कह लो कि यह ज्ञान अज्ञानरूप बन रहा। देखो अज्ञानरूप बननेमें भी ज्ञानकी जरूरत है, जहाँ ज्ञान नहीं वह अज्ञानरूप नहीं बन पाता। तो यह जीव जो मिथ्या ज्ञान रूप बन रहा सो पर और आत्मामें अन्तर न दिखनेसे, अन्तर न जाननेसे, परसे विरक्त न होनेसे अब तक बन रहा, उस कर्मरसमें और ज्ञानरसमें मोहीके कोई भेद न रहा। वह अभेद अनुभव कर रहा। जैसे नमकीन चीजका लोभी पुरुष उस खाद्य पदार्थको खा रहा, मगर लोभ है ना ज्यादह तो उस नमककी कुछ सुध नहीं रख रहा जिसके प्रतापसे वह सारा खाद्य पदार्थ स्वादिष्ट लग रहा, ऐसे ही ज्ञानरसमें, कर्मरसमें भी मिश्रणमें वह ज्ञान कर्मरूप अपनेको अनुभव कर रहा, कर रहा यह ज्ञान ही अनुभव, मगर कषायरूपसे अपने आपको अनुभव कर रहा, सो उस वक्तमें यह आत्मा यह विकल्प उत्पन्न करता है कि मैं क्रोध हूँ, तब यह आत्मा इस भ्रमसे कि मैं तो क्रोध हूँ, कषाय हूँ, जो भी परिस्थिति बनी, जो भी विकार बना उस विकास रूप मैं हूँ ऐसा जब भ्रम हो गया, तो जन्म मरणमय संसारकी परम्परा चलती ही रहेगी। क्योंकि इस जीवने चेतन और अचेतनमें एक समानरूपसे व्यवहार किया ना कि मैं क्रोधादि हूँ, देखिये क्रोध अचेतन है, मैं चेतन हूँ, और जहाँ यह बात लगायो कि मैं क्रोध हूँ तो इस क्रोध रूपसे अनु-भवनेके कारण अब यह विकाररूपसे ही परिणम रहा है। इस स्थितिमें बतलावो यह आत्मा किस भावका कर्ता है ? आत्मामें जो अज्ञानमय स्थिति बनी उस अज्ञानमय भावका कर्ता है। यह केवल क्रोध की ही बात नहीं, यह ही सब कषायोंको बात है।

५९० जीवपर मूल विपत्ति—

क्या विपत्ति है इस जीवपर ? जो विपत्ति बताया है उसपर तो यह दृष्टि नहीं रखता, और जो विपत्ति नाम मात्रको भी नहीं है उसे विपत्ति मानता है। क्या है खास विपत्ति ? बस जो क्रोध, मान, माया, लोभ, जो कर्मविपाक उदयमें आया उसकी झाँकी है, उसमें यह अनुभव करता है कि मैं यह हूँ। गल्ती इस जीवने की, गल्ती कर्म नहीं कर रहे, कर्म तो ईमानदारीसे जैसा अनुभाग था, जो कुछ चीज था, जैसे निमित्तनैमित्तिक योगमें उदय उदीरणा काल आता है वैसे विपाकको खिलाता है, गल्ती इस जीवने क्या की कि कर्मरसको यह मैं हूं ऐसा अनुभव किया, सो देखो—जैसे बहिरात्मा देहमें अधिक

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

आसक्त होता, देह मैं इस तरह बोलकर जानकर मैं का अनुभव नहीं करता, किन्तु देहको ही एक मात्र लक्ष्यमें लेकर हूं मैं, ऐसा अनुभव करता है। यह देह मैं हूँ ऐसा मूर्ख याने मोही लोग अनुभव नहीं करते, किन्तु देहमें मैं का अनुभव करना और यह देह मैं हूँ, ऐसा अनुभव करना, इन दोनों बातोंमें तो बड़ा अन्तर है। जिसने ऐसा सोचा कि यह मैं हूँ उसने कमसे कम दो बातें कबूल तो की। यह देह और यह मैं हूं। जिसे मैं कहा जा रहा एक वह चीज जिसे देह कहा जा रहा एक वह चीज, पर व्यामोही पुरुषके इतना भी अन्तर नहीं आता, उसके लिए देह और मैं ये दो चीजें नहीं हैं, एक ही चीज है। इसी प्रकार जो कर्मरस चेतनमें आया झलका, उसमें यह अज्ञानी इस तरहसे अनुभव नहीं करता कि यह कर्मरस मैं हूं। उसे दो की कहाँ खबर ? वह तो कर्मरसमें ही, उस कषायमें ही, मैं ऐसा अनुभव करता है, यह है सबसे बड़ी विपत्ति। इस विपत्तिको मिटा दें तो नियमसे मोक्ष होगा, कोई रोक न सकेगा। कुछ काल बाद सम्यक्त्व लाभ तो हुआ। सम्यक्त्वका लाभ इस जगह है। उदय उदीरणामें जो विपाक हुआ है, अज्ञानभाव छाया है, कर्मभाव छायारूपमें आया है, फिर यह मैं हूं, ऐसा अनुभव करता, यह है बहुत बड़ी विपत्ति। संकट मिटाना है तो इन मिथ्या भावोंको दूर करना पड़ेगा। इन मिथ्या भावोंको दूर किए बिना कभी भी शान्तिका मार्ग सम्भव हो ही नहीं सकता।

५९१—जीवपर ज्ञेयज्ञायकसांकर्य की विपत्ति—

अच्छी, अब दूसरी तरहसे और विकल्प देखो याने कितने ढंगसे इसपर विपत्ति है। मूलमें इस पर दो विपत्तियाँ हैं—एक तो यही जो कि अभी कहा गया है कि जो कषाय जगा जो मोह विपाक हुआ उसमें मैं हूं ऐसा अनुभव करना, यह है बहुत बड़ी विपत्ति। दूसरी विपत्ति क्या होती है जीवपर ? देखो जो पदार्थ ज्ञानमें आ रहे हैं, जाननेमें आ रहे हैं, जान लिया, मायने ज्ञेयाकार बना। यहाँ जानन विकल्प हुआ, अब लो जो जानन विकल्प हुआ, जो ज्ञेयाकार हुआ उस मुखेन उसमें निश्चयतः और उसके विषयमें व्यवहारतः यह अनुभव करताहै कि मैं यह हूं, नाना प्रकारसे अपनेमें नाना पोजीशनों रूप यह अपनेको अनुभव करता कि मैं यह हूं। औरकी तो बात क्या ? जब धर्म अधर्मद्रव्य जैसे अमूर्त पदार्थोंको भी जान रहे हैं जितना जान सकते और जाननके अनुसार दूसरेको समझा रहा और देखो समझाया उसने और दूसरेने माना नहीं, वह उल्टा बोलने लगा तो यह समझाना वाला क्यों चिड़चिड़ा बन जाता है, क्यों इसे गुस्सा बन जाती है ? उसका कारण यह है कि धर्म अधर्म आकाश जैसे अमूर्त पदार्थोंमें भी इसने उस समय ऐसा अनुभव किया कि मैं तो धर्म हूं, अधर्म हूं, आकाश हूं, जिस पदार्थको जाना उस पदार्थ रूप अपनेको अनुभव किया। कुछ सीधे ढंगसे यह समझमें न आ रहा होगा कि ऐसा कौन अनुभव करता कि आकाश मैं हूं, धर्मद्रव्य मैं हूँ ? मगर अंतरंगमें देखो आकाश और धर्मद्रव्यके बारेमें जो यहाँ ज्ञान विकल्प उठ रहे हैं, जानन हो रहा है उसको तो मैं अनुभव कर रहा कि मैं यह हूं। जैसा कर्मरस विपाकमें आया उसमें इसने अनुभव किया कि मैं क्रोध हूं ऐसे ही इसने ज्ञेय पदार्थोंमें मैं का अनुभव किया कि यह ज्ञेय पदार्थ मैं हूं। देखिये एक अन्तर। जब यह जीव किसी ज्ञेयको मान रहा कि मैं हूं उसमें भी कारण कर्मविपाकका अनुभव भीतरमें पड़ा हुआ है तो यहाँ अनुभव सामान्यको ज्ञानरूप बताया था और विशेषको मिथ्या दर्शन, मिथ्या ज्ञान और मिथ्या चारित्ररूप परिणमा विकार बताया, तो येही पुरुष अब जो पदार्थ ज्ञेय हो रहे उन पदार्थोंमें भी अन्तरसा अनुभव नहीं कर रहे हैं कि मैं तो यह हूं और ये बाहरी चीजें। देखिये जितना बाहरी पदार्थोंका प्रतिविम्ब है, झाँकी है वह यह सिद्ध कर रही है कि वे चीजें बाहरकी हैं भीतरकी नहीं। जैसे दर्पणके सामने उपस्थित चीजोंकी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

फोटो आयी तो वह फोटो ही बतला रही है कि वे चीजे बाहरी हैं, दर्पणकी नहीं। सो यह सारा विश्व ये सारे पदार्थ, जिनकी जितनी योग्यता ज्ञानमें आ रही, तो यह ज्ञान ही यह बतला रहा कि यह दुनिया ही मुझको बढ़िया है, लेकिन देखो इस समय जान रहे हैं किसके द्वारा ? इन्द्रियके द्वारा, मनके द्वारा, आत्मबलसे नहीं जान रहा। तो यह जो जान रहा है सो इन्द्रिय और मनके माध्यमसे जान रहा। इतना बल प्रकट नहीं है इस अज्ञानीमें कि यह इन्द्रिय मनकी सहायता न ले, केवल आत्मीय शक्तिसे जान ले, तो अब इसपर दो आफतें और चढ गई। एकतो ये इन्द्रिय मन, दूसरे इन इन्द्रिय मनके द्वारा पदार्थोंका जानना सो यह उस ज्ञेयको भी अपने शुद्ध आत्मासे मिलाकर अनुभव करता और इस इन्द्रिय मनमें भी अपने शुद्ध आत्माको मिलाकर अनुभव करता। विपत्ति यह चल रही है भीतर, पर इसका किसे ध्यान है ? दौडे चले जा रहे हैं बाहरी पदार्थोंके संग्रह विग्रहमें इतनी चीजें जोड़ लें, आनन्द आ जायगा, इसको यों मिटा दें, आनन्द आ जायगा। अरे बाहरमें तेरा कुछ सम्बन्ध नहीं, न मिटानेसे आनन्द आयगा न जोडनेसे भीतरकी समस्या सुलझ जायगी, आनन्द आयगा तो यह अज्ञानी जीव इस ज्ञेयको इस कर्मरसको आत्मरूप बना रहा, इसी कारण अज्ञान भावका कर्ता बन रहा है।

५९२—अस्वको स्व स्वीकार करनेके अपराधका दण्ड—

अच्छा परद्रव्य आत्मारूप बने तो यह एक इतना बड़ा अपराध है कि जिसकी फिर दण्ड व्यवस्था न राजाके आधीन है न चक्रवर्तीके आधीन है, कोई भी नहीं दे सकता, इसका दण्ड तो एकेन्द्रिय दोइन्द्रिय आदिकमें उत्पन्नहो होकर भोगना पड़ता है। देखो कितना कष्ट है इस जीवको कि है तो स्वयं स्वतंत्र अपने स्वरूप वाला। प्रत्येक पदार्थ अपने–अपने स्वरूप वाले हुआ करते हैं, कोई किसीमें मिला जुला नहीं होता, तो है तो यह अपने चैतन्यस्वरूप वाला। किसी भी पदार्थसे इसका रंचमात्र सम्बन्ध नहीं सत्ता न्यारी है, विशुद्ध चैतन्यभावरूप है, मगर अज्ञान जो छा गया, योग्यता खोटी कर्मविपाककी झलकी इसने उस सविकार परिणामको अपना स्वीकार कर लिया सो यह मैं विकार परिणामको करने वाला हो गया करनेवाला तब कहा जाता जब काम कुछ अलगसे दिखाया। अभी किसी मजदूरको बुलायें और कहें देखो भाई यहाँका यह कूडा करकट उठाकर वहां डालना है. इतनी जगह साफ करना है, खैर वह मजदूर आया मगर वह एक जगह बैठा हुआ हाथ हिलाये, सिर हिलाये, गाना गाये तो इस तरहसे कहीं वह कूडा करकट उठानेका काम तो न हो पायगा। अब उससे कोई कहे कि तू काम क्यों नहीं करता, और वह कहे साहब तमाम काम तो कर रहे हाथ भी हिलाते, सिर भी मटकाते, गाना भी गाते। अरे यह काम करना वहां न कहलायगा, वहाँ तो कूडा उठाकर फेंके, उस जगहकी सफाई करे तब कामका करना कहा जायगा। इसी प्रकार जो निर्विकार विशुद्ध निरुपाधि परमात्मा हैं वे क्या करते हैं? अनन्त ज्ञान रूप अनन्त आनन्द निरन्तर वर्त रहे हैं, मगर यहां कोई काम किया जाता नहीं मालूम होता। द्रव्य है, परिणम रहा है सो ठीक है, प्रत्येक पदार्थ परिणमता है, मगर वे परमात्मा अब काम कर रहे हैं ऐसा दृष्टिमें नहीं आता वे अकर्ता हैं। और यहां ये जीव भी तो वैसे ही हैं जैसे कि प्रभु, विशुद्ध चैतन्यरूप केवल प्रतिभासमें रहता है मगर उसने अपनी यह स्वस्थता छोड़ दी और कर्मरसरूप विकल्प करने लगा, तो लो ये कहलाये कर्ता, जो विढंगा काम करे, दूसरा काम करे, बाहरका काम करे उसको कहते हैं कर्ता और स्वभावके अनुरूप जो परिणमन हो रहा है वहाँ करनेकी बात कहाँ है ? तो समझियेगा कि जो विकल्प करे उसको कर्ता कहेंगे, जो निर्विकल्प रहे उसे कर्ता न कहेंगे।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

५९३—अपेक्षासे अर्थका ग्रहण—

भैया ! समझनेकी अनेक विधियाँ होती है। यदि इतने मात्रको देखा जाय कि जो परिणम रहा सो करने वाला, तो मुक्त आत्मा भी तो परिणम रहे हैं। हाँ वे अपने उस शुद्ध भावके कर्ता हैं। देखिये—जब जब जिस जिस तरहका आशय बनता है उसके अनुसार ज्ञान चलता है। विरोध कहीं कुछ नहीं है। परमात्मा शुद्ध भावके कर्ता हैं ऐसा कह लीजिए। ठीक है। ये मिथ्यादृष्टि जीव अपने अशुद्ध भावोंके कर्ता हैं, कह लीजिए ठीक है और कभी यह भी कह सकते कि अज्ञानी कर्ता हैं, ज्ञानी कर्ता नहीं हैं। सब तरहसे सब ज्ञान चलता है। जैसे कोई गेंदका चतुर खिलाड़ी बालक गेंदको हाथसे भी खेल लेता, फिरसे भी खेल लेता, पीठसे भी खेल लेता, बैठकर भी खेल लेता, दौड़कर भी खेल लेता, जमीनमें लोटकर भी खेल लेता, इतना अच्छा अभ्यास होता इसे, ठीक ऐसे ही ज्ञानी पुरुष भी वस्तु—स्वरूपके बारेमें इतना असंदिग्ध है, उतना परिपुष्ट ज्ञान वाला है कि उसे सब ओरका ज्ञान है और निश्चयज्ञानसे, व्यवहारके ज्ञानसे सभी प्रकारके बोधसे वह लाभ लेता है स्वभावदृष्टि रखनेका। उसका मूल प्रयोजन ज्ञानस्वभावका दर्शन है। उसका यह पवित्र कार्य कैसे बन गया। उसने उस ज्ञानस्वरूप सहज ज्ञानस्वभावमें यह मैं हूं, ऐसा अविचल अनुभव किया, उसका प्रताप है कि ज्ञानीके सारे काम ज्ञानमय ही होते हैं और अज्ञानी जीवने कषायोंरूप अपनेको माना, ज्ञेयरूप अपनेको माना, इन्द्रिय मनरूप अपनेको माना, इस कारण उसकी बड़ी विचित्र दशायें होती हैं, विडम्बना बन जाती है।

५९४—अपने अनुभवकी पद्धतिकी विधिसे कष्ट और शान्तिका परिणाम—

देखो जैसे कोई पुरुष मैं भूत हूं, मैं भूत हूं ऐसा अनुभव करे तो वह भूत उसके सिरे हो जाता है। तो वहाँ उसका ज्ञान ही इस तरहका विकल्प बना रहा है कि उसने उस भूतको अपना रूप मान लिया। मैं भूत हूं, जब ऐसा अंगीकार कर लिया तो मोही ऐसे विचित्र काम कर डालता जिनको देखकर साधारण लोग बड़ा आश्चर्य मानते। इसी तरह इस आत्माने अज्ञानसे इस कर्मरसको और अपने आत्माको जब एक कर डाला, मैं यह हूं, जो अपनेको लग रहा ना, जच रहा ना, उसीको तो मान रहा कि मैं यह हूं, सो उस कषायको आत्मरूप मान लिया तो अब निर्विकाररूप अनुभव तो हो नहीं सकता और निर्विकार अनुभवके समय जो इस जीवकी पवित्र वृत्ति होती है वह तो अब रही नहीं, विकार रूप अपनेको अनुभवा तो यह विकारका ही कर्ता हो गया, उसके अनुरूप ही मन, वचन, कायकी चेष्टायें करेगा। अच्छा और ज्ञेय पदार्थमें यह मैं आत्मा हूँ, ऐसा अनुभवनेसे क्या दशा होगी ? सो यह लौकिक दृष्टान्तसे देखो। कोई आदमी घरके छोटे कमरेमें बैठा हुआ अपनेको ऐसा ध्यानमें रख रहा कि मैं तो बहुत बड़ा झोंटा हृष्ट पुष्ट और जिसके मस्तकपर बहुत बड़े बड़े सींग लगे हैं, साथ यह भी ध्यान बन जाये कि इस कमरेका दरवाजा तो बहुत छोटा है, अब उससे निकलना बहुत मुश्किल हो रहा है तो वहाँ वह थोड़ा दुःख भी मानेगा। तो जिस ज्ञेयको आपा मान लिया अज्ञानसे तो जैसे उसे व्यग्रताये रहती हैं इसी प्रकार जगतके दिखने वाले ज्ञेय पदार्थोंको जब यह मान लिया कि यह मैं हूं तो बस उनके अनुरूप चाहेगा, उसको व्यग्रता होगी। तो देखो हर तरहसे इस चैतन्यस्वरूपपर धावा हो रहा है अपनी गल्तीसे, अपने विकल्पसे। उस समय यह चैतन्यरस तिरस्कृत हो गया। अब इसे सुध न रही। अब यह जीव अपनेको नानारूप अनुभव कर रहा, इसे संतोष कहाँसे मिले ? संतोषका धाम तो यह ज्ञानमात्र स्वरूप है, ऐसा अपने आपको मान रहा तो संतोष भी रहता। अब अपने स्वरूपकी तो सुध न आये फिर तृप्ति संतोष कहाँसे उत्पन्न हो सकता ? सो भाई अपनी भलाई करना हो तो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

यहाँ जो विपत्ति छा रही है अन्दरमें उसको दूर करियेगा अर्थात् कषायोंसे, ज्ञेय पदार्थोंसे, इन्द्रिय मनसे निराला सहज ज्ञानस्वभाव मात्र हूं, इस प्रकार अपनेमें इस अंतस्तत्त्वका अनुभव करें तो सारे संकट टल जायेंगे

आत्मा ज्ञानं स्वयं ज्ञानं ज्ञानादन्यत्करोति किम् ।
परभावस्य कर्तात्मा मोहोऽयं व्यवहारिणाम् ॥६२॥

५९५—सकल संकटोंसे छूटनेका उपाय धर्मपालन—

संसारके संकटोंसे छूटनेका उपाय मात्र धर्मपालन है, धर्म भी क्या है वह, जिसका कि पालन करना संकटमुक्तिका उपाय है ? वह धर्म है आत्मस्वभाव याने आत्माका स्वयं सहज निरपेक्ष अपने आपके सत्त्वके कारण स्वयंका प्राणभूत जो चैतन्य स्वभाव है वह धर्म है और अंतस्तत्त्वकी दृष्टि होना धर्मपालन है। अनेक लोग ऐसी शंका करते हैं कि अमुक भाईको धर्म करते हुए बहुत वर्ष हो गए और इनको क्रोध उतना ही है, तृष्णा दिन प्रति दिन बढ़ती जा रही है, तो यह धर्म केवल कहने कहनेका ही धर्म है, ऐसी शंका उनको होती है जिन्होंने धर्मपालनकी वास्तविक बात नहीं समझी। धर्म है केवल चैतन्य प्रकाश स्वरूप, जिस वस्तुका जो स्वभाव होता है वह उस वस्तुका धर्म है, मेरा स्वभाव है केवल चैतन्य, ज्ञानस्वरूप, बस उसमें यह मैं हूं ऐसा निर्णय होता है, मैं यह ज्ञान प्रकाश मात्र हूं, ऐसी आस्था होना, मेरा हित इस ज्ञान प्रकाश रूपमें रहनेपर ही है, ऐसी श्रद्धा होना और अपने उपयोग को यहाँ ही रमाना मैं केवल ज्ञाता ही रहूं, अन्य मेरेमें विकल्प न जगे। मैं इस सहज ज्ञानस्वभावको ही निहारता रहूं, ऐसा यत्न होना यह है धर्मपालन। क्या उसे यह धर्मपालन कहेंगे जहां आत्मस्वभाव तो दृष्टिमें नहीं, मात्र बाह्य क्रिया विकल्प है, बाहरके पदार्थोंमें यह मेरा पूज्य है, यह मेरा अराध्य है, इसकी इस तरह पूजा करना चाहिये ऐसा करनेसे पुण्य बँधता है, ऐसा करनेसे स्वर्ग अपवर्ग होता है, यों मन, वचन कायकी बाहरी चेष्टाओंको ही धर्म मानना, क्या इन विकल्प और क्रियाओंको धर्म कहेंगे। धर्म बाहरी पदार्थोंमें नहीं है, धर्म है अपने आपके अन्तःस्वरूपमें, बस ज्ञानमात्र अपने आप को निरखना, धर्म कोई रीति रिवाज मनानेके लिए नहीं होता। धर्म कहीं जीवनकी इन बाहरी बातोंके लिए, शृंगारके लिए नहीं है किन्तु धर्म होता है आत्माको सर्व संकटोंसे सदाके लिए छुटकारा पानेके लिए। जिस जीवका सदाके लिए संसार छूट जाय उसका है धर्मपालन।

५९६—जीवके वास्तविक संकटोंका संक्षिप्त दिग्दर्शन—

संकट क्या क्या हैं इस जीवपर। पहला संकट तो यह है अज्ञान अंधकार, सबसे महान संकट तो यह है कि खुदका ही पता नहीं, परवस्तुओंके यथार्थ स्वरूपका ही पता नहीं, जहाँ रहते हैं उस दुनियाका पता नहीं, जिस समयमें रह रहे उस समयका पता नहीं, चारों ओरसे अज्ञान छाया है, यह सबसे बडा भारी इस जीवपर संकट है। क्या हूं, मैं ज्ञानमात्र हूं, अन्दर निहार लो, शरीरकी दृष्टि न रख कर, इन्द्रियका व्यापार बन्द कर भीतर इस श्रद्धाके साथ देखिये कि मैं अन्तः हूं कैसा ! क्या काला, पीला, नीला हूं, या लम्बा, चौड़ा गोल हूं ? क्या इसमें कोई पिण्ड है ? अन्तः जब विचार करेंगे तो यह मालूम होगा कि यह मैं तो केवल एक जानन प्रकाश भर हूं, ज्ञानप्रकाशके अतिरिक्त मैं और कुछ नहीं। जब ज्ञानप्रकाश मात्र ही मैं हूं, तो यह मैं ज्ञानको ही कुछ करूं ज्ञान से ही जैसा चाहे जानूं। इसके अलावा अन्य मैं काम करता ही क्या हूं, मैं बाहर में कुछ काम नहीं करता। प्रत्येक स्थितिमें चाहे गृहस्थ हो, साधु हो या अन्य कोई जीव हो सभी जीव अपने ज्ञान

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

के परिणमनके सिवाय कुछ करते नहीं। भले ही हमारे ज्ञानका विकार रूपमें परिणमन चले अपनी इच्छा रूप परिणमन चले, वहाँ मेरा सारा आत्मा कप जाता है उसीको कहते हैं योग, प्रदेशपरिस्पंद, उसका यत्न। तो इस यत्नका निमित्त पाकर देहमें बातका हलन चलन होता है। आखिर जीवका और देहका बन्धन तो है, स्पर्श तो है, सम्बन्ध तो है, सो जब यह उपयोग, यह जीव अपनेमें प्रदेशपरिस्पंच करता है, योग होता है तो उसके अनुकूल शरीरमें बातका संचरण होता है। इस वायुके चलनेसे उसके अनुकूल हाथ पैर हिलते हैं। हाथ पैरके हिलनेका सम्बन्ध पाकर यह जो हाथ पैरमें चीज पड़ी हो उसमें क्रिया होती है, अब जो व्यामोही पुरुष है, पर पदार्थोंका लोभी पुरुष है और अपने आपकी यथार्थताका अजानकार है, वह ऐसा मानता है कि मैंने अमुक चीज बना दिया, अमुकको उत्पन्न कर दिया इस प्रकार बाहरी बातोंमें करनेका भ्रम लगता है, पर वस्तुतः यह जीव अपने आपमें ज्ञान परिणमन को ही करता है और कुछ नहीं करता। ऐसा ज्ञान यह है अमृतपान। जगतमें सब चीजें सुलभ हैं धन कन कंचन राजसुख जिनके व्यामोहमें जीव बड़ी आशा करते हैं मुझे राजपाट मिल जाय, अमुक मिल जाय, अरे ये सब बाहरी चीजें है, बाहरके पुद्गल है, उनकी सत्ता है वे रहते हैं, यहाँ न रहे तो क्या, और किसी जगह रहे तो क्या, अथवा यहां रहे यह भी तो उनकी ही बात है, मेरा कोई उनसे सम्बन्ध नहीं और इन चीजोंके मिलनेसे मेरे आत्माका कोई भला नहीं। आत्माको अपने सही स्वरूपका परिचय हो जाय जिससे कि इसका उपयोग लग जाय और अपने आपके इस ज्ञानस्वरूपको ही ज्ञानमें लेता रहे तो बस यह ही है मोक्षमार्ग, यह ही है संकटोंसे दूर होनेका उपाय।

५९७—ज्ञानमात्र परमार्थ अन्तस्तत्वके निरखनेका प्रभाव सकलव्यामोहकी निवृत्ति—

यहाँ यह बतला रहे हैं कि आत्मा ज्ञानमात्र है और वह स्वयं ज्ञानमात्र है। कहीं वैशेषिकों की तरह यह न समझना कि आत्मा मात्र चैतन्यस्वरूप है, जिसका कुछ काम नहीं, परिणमन नहीं, ज्ञान तो कोई अलग वस्तु है, उस ज्ञानका इस आत्मामें जुड़ाव हुआ तो आत्मा ज्ञानमय कहलाया ऐसी बात नहीं है। जैसे अग्निका स्वरूप उष्णता है, कहीं यह बात नहीं कि अग्नि अलग रखी हो और यह उष्णता बादमें आकर बनी हो ऐसी बात नहीं है, ऐसे ही आत्मामें भी यह मैं आत्मा ज्ञानरहित हूं, मात्र एक कहने सुननेके चैतन्य मात्र हूं और पीछे इसमें ज्ञानका समवाय बना और ज्ञानी कहलाया, ऐसा नहीं है, किन्तु आत्मा ज्ञानरूप है और स्वयं ज्ञानरूप है, यह ज्ञानसे अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं करता। यह आत्मा तो सिर्फ भावोंका करने वाला है। पर पदार्थोंका कुछ नहीं करता। इस जीवने दूकान की रसोई बनाया, घर बनाया, कुटुम्ब बढ़ाया, यह सब कहना केवल मोह है, भ्रमकी बात है, अज्ञान भरा विचार है, यों तो व्यवहारसे सभी कहते हैं और उस कहने में भी कोई तथ्य जाननेकी बात है, मगर वैसा ही सत्य समझ लेना यह केवल अपने आपपर अन्याय है, भले ही कहते हैं कि कुम्हारने यह घड़ा बनाया, बढ़ईने रथ बनाया, जीवने काम किया, शरीर रचा, जीवने शरीर रचा, यह एक कहनेकी बात है, पर इसमें निमित्तनैमित्तिक योगके तथ्यके आधारपर लोग ऐसी कर्तृत्वभाषा बोलने लगते है, बोलें, हर्ज नहीं, वह तो व्यवहारकी बात है, मगर यथार्थता समझमें रहनी चाहिए कि मैं इस जालके रचे जाननेके लिए निमित्त मात्र हूं। मैं तो केवल अपने आपके भावोंको करता हूँ। व्यवहारी जनोंको ऐसा क्यों मालूम हो रहा है कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्यका करने वाला है। देखिये आत्माने तो अन्तः केवल विकल्प किया, उस प्रकारका ज्ञान बनाया और व्यापार किया, याने प्रदेशकी स्फूर्ति हुई, प्रयत्न हुआ, योग हुआ, अब उसका निमित्त पाकर जैसी इच्छा हुई, उसके अनुकूल शरीरमें वायु चली उसके

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अनुकूल अंगक्रिया हुई। और वहाँ प्रसंगमें पड़ी हुई चीजमें भी उसके अनुकूल क्रिया हुई, तो इस तरह लोगोंको यह मालूम होने लगता है कि यह जीव बाहरमें कुछ काम करता है, किन्तु वस्तुतः बाहरमें कुछ भी नहीं करता, ऐसा जरा अपने आत्माके और अन्तरकी बात समझियेगा।

५९८—कर्मरस और ज्ञानरसके आधारोंका पार्थक्य—

इस जीवके साथ कर्मका बंधन है, जो पहले कर्म बाँधे थे उनका जब उदय आता है याने उन कर्मोंमें क्रोध मान आदिक कषायोंका विपाक अनुभाग जब फूटता है तब जीवमें उनका वैसा प्रतिफलन छाया प्रतिबिम्ब आता है, क्योंकि यह जीव स्वच्छ है ना? दर्पण स्वच्छ है तो सामने पड़ी हुई चीज का प्रतिबिम्ब आ ही जाता है, तो चूंकि यह जीव स्वच्छ है और साथ ही यहां प्रदेशोंमें एक क्षेत्रावगाह रूपमें बात घट रही है तो उस कषायके अनुभागका यहाँ प्रतिफलन हुआ। यह जीव अज्ञानी बना फिर रहा है, यह नहीं समझ सकता कि यह तो कर्मकी लीला है। मेरा यहां कुछ कार्य नहीं। मेरा तो मात्र मेरे उपयोगका परिणमन होना बस यही चक्की चलती है। यह ज्ञान न होनेसे यह उपयोग में फलित कषायोंको अपना लेता है और उस तरहसे यह उपयोग चलता है, उस कालमें नवीन कार्माण वर्गणाओंमें कर्मत्व आ जाता है। तो निमित्तमात्र ही तो हुआ यह आत्मा, आत्मद्रव्य नहीं, किन्तु आत्माका विचार और व्यापार। और ये कर्म बंधने लगे तो लोग यों कहने लगते कि जीवने कर्म किया, जीवने कर्म बाँधा। वस्तुतः उपादनतया देखो तो जीवका अपने ज्ञानमें अपना काम चल रहा। कर्तापन कहा जाता है निमित्त देखकर, मगर यह बात सही क्यों नहीं, अगर एक पदार्थ दूसरे पदार्थरूप परिणम जाय, दूसरे पदार्थको कर दे, तो दो पदार्थ एक बन जावेंगे और यों दोनोंका विच्छेद हो जायगा, मगर दोनों एक कहाँ है जीव चेतन है, कर्म अचेतन। देखो यह बात कुछ कठिन भले ही लगे, भेदविज्ञानकी बात समझना कठिन भी हो, लेकिन दूसरा उपाय है ही नहीं संसारके संकटोंसे छूटनेका, इसलिए हर तरहसे सभी लोगोंको काम करनेका यही है कि सही ज्ञान करें, भेदविज्ञान करें। देखो ये दो अंगुलियाँ है? तो आपने किस आधारसे समझा कि ये दो अंगुलियाँ हैं? आधार वह यही है कि यह छोटी अंगुली जो कुछ कर पायगी सो अपनेमें अपना परिणमन कर पायगी ऐसे ही बड़ी अंगुली भी। यह कभी न हो पायगा कि यह एक अंगुली दूसरी अंगुलीकी कोई अवस्था बना दे। अगर यह अंगुली जली तो यह दूसरी तो न जल जायगी। अगर उस अंगुलीमें कोई अवस्था बने तो इसमें न बन जायगी, तब ही तो आप कहते हैं कि ये दो अंगुलियाँ हैं। यहाँ इतने मनुष्य बैठे हैं तो यह आपने किस आधारसे जाना कि इतने मनुष्य हैं? इस आधारसे जाना कि प्रत्येक मनुष्य अपना ही काम कर पाता है। हाथ हिलायेगा, चलेगा, बोलेगा, कुछ करेगा तो वह खुद ही कुछ कर पायगा, दूसरेका कुछ न कर पायगा। भले ही यह निमित्त हो जाय और दूसरा भी करने लगे, मगर उपादानतया यह बात समझना है तो इतने मनुष्य हैं यह बात जानी। प्रत्येककी क्रिया उसकी उसमें ही होती है, उसकी परिणति उसमें ही चलती है, दूसरे मनुष्यकी परिणति नहीं चलती, यह ध्यानमें आनेसे आपने समझा कि इतने मनुष्य हैं। देखो सभी जानकार हैं और सभी समझते हैं, चाहे इस भाषामें बोलना न जाने तो भी वे जानते हैं इसी आधारपर कि इतने मनुष्य हैं। तो ऐसे ही कर्म और जीव, कर्मका कार्य और जीवका कार्य कर्मका प्रभाव जीवका प्रभाव, कर्मका परिणमन जीवका परिणमन, ये दो जब भिन्न भिन्न जच जायें तो समझिये कि सच्चा ज्ञान पाया और जब तक ये दो भिन्न न जचें सो कर्ममें ही जीव तन्मय होता है और कर्ममय अपनेको मानता है तब तक जीव अज्ञानी है, संसारमें जन्म मरण करता रहता है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

५९९—सकल संकटोंसे मुक्ति पानेका उपाय बना लेनेमें ही सच्ची बुद्धिमानी—

आप सोचिये कि संसारके संकटोंसे सदाके लिए छूट जाना भला है या इस जिन्दगीमें थोड़े आरामके साधन जुट जायें, अच्छा मकान, कुर्सियाँ, रेडियो और आरामके साधन, गप्पें करनेवाले मित्र जन, और कुछ हंसता सा रहे, फिर कुछ चैन सा माने, यह काम बड़ा है, या संकटोंकी जड़ जन्ममरण, संसारका मिलना, ये सब छूट जायें यह बड़ी चीज है ? इन दो बातोंमें महत्त्वकी बातका निर्णय कर लेना ही बड़ी बुद्धिमानी है । जिसने इस भवके संग समागम, यश मौज, प्रतिष्ठा, विषयोंका प्रेम इन बातोंको महत्त्व दिया है, वे पुरुष तो दयनीय हैं, दयापात्र हैं, क्योंकि उनपर बड़ा संकट आने वाला है, उनके संकटोंको कौन रोक देगा । जो खुद अपने मनको ज्ञानमें सुवासित न करें जो अपने मनको नियंत्रित न करें, विषयोंमें ही प्रीति बनायें, जो खाने पीनेकी मोजोंमें ही अपने आपको बुद्धिमान मानते हैं, वे तो संसारमें बड़ा संकट पाने वाले हैं और पाते ही रहते हैं । इसमें कुछ सार नहीं, किन्तु अपने आपके स्वरूपमें रमें, इसीमें तृप्त हों, उसीमें जम जायें, उपयोग लगायें यह वृत्ति बन सके, इसका उपाय बनायें, वह सारभूत बात है । अच्छा, लोग मन्दिर आते हैं, देखो यहाँ मन्दिरमें कोई भगवान बैठे थोड़े ही हैं । प्रभु तो सिद्धालयमें विराजमान हैं, लेकिन भगवानके नामपर जो मूर्ति बनी है, यहां उसके सहारे भगवान तक उपयोग ले जाते हैं, और यहाँ उस मूर्तिको हमारा विनय है । और, स्थापनासे हमने भगवानकी समझ बनायी है । यह बडप्पन किस बातसे बढ़ रहा ? बस इसीसे ही कि जिन आत्माओंने ज्ञान किया, निज और परका निर्णय बना लिया और जो आनन्दधाम है खुद, उस निजधाममें अपनी दृष्टि बना ली । ऐसा पुरुष निर्मल होता है, जन्म मरणसे रहित होता हुआ अनन्त आनन्दमय है, ऐसा ही हमें होना है । तो आत्मज्ञान बड़ा है या थोडेसे इस धन वैभवको देख देख कर खुश होनेका काम बडा है ? जरा सोचो तो सही, जो महत्त्वका काम है खुदके ज्ञानस्वरूपकी आराधनाका उस ओर अपना उपयोग लगायें, सीखें, पढ़ें, ध्यान बनायें, सत्संग बनायें । भैया, कुछ समय लगे अपने आत्माकी आराधनामें तो जीवन सफल है । यह बात कैसे बने उसके लिए पहला उपाय है वस्तुओंको जुदा-जुदा समझ लेना । प्रत्येक पदार्थ स्वयं स्वयं सत् है । और, जब सत् है तो उसका उत्पाद व्यय धौव्य उस ही में है । जब प्रत्येकका द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव उसका उस ही में है तो एक द्रव्य दूसरे द्रव्यका क्या कर देगा ? करना कहलाएगा तन्मय होकर परिणमन करना, मगर ऐसा दो द्रव्योंमें हो तो एक द्रव्य मिट जायगा, कौनसा मिट जायगा ? उसी उसीका झगड़ा । मतलब यह है कि जगत शून्य हो जायगा, तो जब एक पदार्थका दूसरे पदार्थमें व्याप्यव्यापक भाव नहीं तो एक दूसरेका कर्ता नहीं है ।

६००— द्रव्य द्रव्यमें परस्पर निमित्तनैमित्तिक भावका अभाव—

जीव कर्मका कर्ता नहीं है, कर्म जीवको दुःख देने वाला नहीं, पर निमित्तनैमित्तिक भाव अवश्य है, अन्यथा संसारमें जो रुलना है यह स्वभाव बन बैठे । कर्म है, उसका उदयकाल आता है और उसका निमित्त पाकर यह उपयोग नाना प्रकारके विकल्प करता है, बस उन विकल्पोंसे हमारी बरबादी है, देखो अब और गहरे चलकर देखो उन दो पदार्थोंमें जिनमें परस्पर निमित्तनैमित्तिक भाव है, जब द्रव्य-स्वरूपको देखते हैं तो उनमें निमित्तनैमित्तिक भाव नहीं है । पहला उपाय अनेक द्रव्योंका उन उनके स्वरूपमें परिचय होना है, तो जब हम द्रव्यदृष्टिसे देखते हैं तो इसमें द्रव्य तो है ज्ञायक स्वरूप, वह किसी बातका निमित्त नहीं । जब हम कार्माण वर्गणाको द्रव्यमें देखते हैं तो उनका द्रव्यस्वरूप है अनादि अनन्त अकारण निजस्वरूपमय, वह भी किसीका निमित्त नहीं है, मगर कर्ममें होने वाली अवस्था इस

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जीवके विकल्पका निमित्त है और जीवमें होने वाला विकार कर्मपना होनेका निमित्त है, द्रव्य द्रव्यका निमित्त कभी न होगा, न कभी हो सकता है, पर द्रव्यकी ही विषम अवस्था दूसरेके विकारका निमित्त होती है। तब क्या रहा ? मेरा विकल्पकर्म कर्मबन्धका निमित्त है, भावकर्म व्यापार कर्मबंधका निमित्त है, मैं खुद नहीं। मैं अगर अपने स्वरूपमें अपनेको देखूं और यह विकल्प व्यापार कदाचित न हो सके तो वहाँ बंधका कोई काम नहीं, तो अवस्था अवस्थाका निमित्त है, अवस्था चूंकि द्रव्यसे रहित नहीं है इस-लिए कहो कि उस अवस्थामें प्राप्त द्रव्य दूसरे द्रव्यकी अवस्थाका निमित्त होता है। तब यहाँ भी समझो, क्या, कि मैं अपने परिणामका ही कर्ता बनता, दूसरेका कर्ता नहीं बनता, और, जो समझदार हैं, ज्ञानी हैं वे तो स्पष्ट जानते कि लो यह मैं इस ज्ञानभावका ही कर्ता हूँ, अन्यका नहीं।

६०१ विविध विषम घटनाओंमें भी जीवके परकर्तृत्वका अभाव—

देखो यहां लोग दूधका दही बनाते तो कैसे बनाते ? उस दूधमें निम्बू निचोड़ कर बना लेते, बस इतना ही तो कर्तव्य लोग करते हैं या खट्टे बर्तनमें दूधको रख दिया, और, क्या कर्तव्य बनाते ? तो इतना कर्तव्य करनेको क्या यह कहा जा सकेगा कि इस मनुष्यने दहीका परिणमन बना लिया। दहीका परिणमन दूधमें दूधके विकारसे बना, इस मनुष्यने नहीं बनाया, तो मनुष्यने क्या किया ? बस इसका ज्ञान किया, योग किया, अपने आपमें ज्ञान बनाया और उस तरहका योग किया, बादमें फिर और बात निमित्त योगसे हुई और वहाँ दूधका दहीरूप परिणमन हुआ। यह जीव तो उस परिणमनका जाननहार है, न कि उस परिणमनका करने वाला। उस समयमें देखो जैसे मानो दूध निकाला जा रहा है, एक ग्वाला दूध निकाल रहा है तो ग्वाला दूधको निकाल लेता क्या ? अरे ग्वाला तो उस दूधका जानने वाला है, ग्वाला तो अपने हाथसे अपनी क्रिया करता है और दूध बर्तनमें आ जाता है। चूंकि उस ग्वालेको दूध निकालने विषयक इच्छा लगी है इसलिए वैसा ही योग हुआ, वैसा ही प्रयत्न हुआ और उस योगसे यह दूध निकलता है, पर वह ग्वाला तो उसका जाननहार है, करने वाला नहीं, क्योंकि उस ग्वालाका उस दूधमें व्याप्य व्यापक भाव है नहीं, वह तो ज्ञानमें ही घुसा है और दूध दूधमें ही व्याप्य व्यापकभावसे रह रहा है तो ऐसे ही यह जीव और कर्म जो अति निकट बंधनमें हैं, यह जीव हर समय ज्ञानका ही करने वाला हो सकता है और यह विकल्प हर समय अपने आपके अनुभागका ही भोगने वाला हो सकता है मगर इस भेदको न समझनेके कारण जो कर्ममें हलन चलन हो रही उसे यह मानता है कि मुझमें यह हलन चलन हो रही, बस यह व्यामोह जीवको दुःख देता है।

६०२ कर्मानुभागप्रतिफलनसे विविक्त अन्तस्तत्वके दर्शनमें कल्याण—

देखो दर्पणके आगे रंग विरंगा कोई कपड़ा रखा है और दर्पणमें प्रतिविम्बित हो रहा है तो उसे देखकर तो कोई यह नहीं कहता कि यह दर्पण रंग विरंगा हो गया, वहाँ रंग बिरंगेकी झाँकी आ गई, यह ही तो समझता है हर एक कोई। तो ऐसे ही आत्मामें रागद्वेष कषायकी झाँकी आ रही जो यह कर्म का अनुभाग है, ऐसे ही समझें तो उसे आपत्ति नहीं, मगर कोई अज्ञानी ऐसा ही समझ बैठे जैसे कि याने दर्पणमें यह रंग आ गया, तो वहाँ आपत्ति है। तो ऐसे ही अज्ञानी जीव कोई यह समझ बैठे कि आत्मा में कषाय आ गई, तो यहाँ विडम्बना बन जाती है, अरे आत्मा तो ज्ञान परिणमन कर रहा, कषाय तो कर्म परिणति है, उसको यह जीव अपनाता है इसलिए यह जीव दुःखी है, नवीन कर्मका बंधन है, संसार में रुलने वाला है। यह भीतरका भेद विज्ञानकी बात समझें और साथ ही बाहरके भेदविज्ञानकी भी बात समझें, देह क्या सदा मेरे साथ तन्मय है, यह भिन्न चीज है, यह वैभव क्या मेरे साथ सदा है ? अत्यन्त

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

भिन्न है, तो सबसे निराला ज्ञान प्रकाश मात्र अपने आपकी श्रद्धा बने और अपने आपके पौरुषसे इस जगजालसे छूट जानेका यत्न कर लें। यहाँ जो आँखों दिखता है उसमें लुभावें नहीं। ये जो इन्द्रिय विषय बन रहे हैं उन पदार्थोंमें लुभायें नहीं। इनमें रंच भी सार नहीं, बाहरमें रंच भी अपना प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। बाह्यका उपयोग छोड़कर अपने आपमें अपने स्वरूपका निर्णय करें और इस ही ज्ञानप्रकाश में तृप्त रहें, यह बात अगर इस जीवनमें बना सके तो यह जीवन सफल है और उसके लिए उपाय करना होगा। स्वाध्याय, ज्ञानलाभ पानेका यह सुगम उपाय है। इसी उपायसे सब रास्ता मिलेगा कि मैं कैसे अपनेमें प्रसन्न रहूं और कैसे इन कर्म बन्धनोंसे मुक्त होऊँ।

जीवः करोति यदि पुद्गलकर्म नैव, कस्तर्हि तत्कुरुत इत्यभिशंकयैव।
एतर्हि तीव्ररयमोहनिबर्हणाय, संकीर्त्यते श्रृणुत पुद्गलकर्म कर्तृ "९३"

६०३ पुद्गलकर्मके कर्तृत्वके सम्बन्धकी एक आशंका व उसका समाधान—

यहाँ एक आशंका रखी जा रही है कि यदि जीव, पुद्गलकर्मको नहीं करता है तब फिर पुद्गलकर्मका कर्ता कौन है? ऐसी आशंका जिनके हो उनके तीव्र बेग वाले मोहको दूर करनेके लिए उत्तर दिया जायगा कि पुद्गल कर्मको पुद्गलकर्म ही करता है। इस शंकाका भाव समझनेके लिए कुछ और बातें भी ज्ञातव्य हैं। शंकाकार कह रहा कि पुद्गलकर्मको जीव नहीं करता तब फिर कौन करता? उत्तर–पुद्गलकर्म पुद्गलकर्मको करता। अब यह बात यह जानें कि जीव पुद्गल कर्मको करता इतनी ही बात जब नहीं है, पुद्गलकर्मको करनेकी बात जब नहीं है तब फिर यह सोचना कि यह जीव दूकान करता, मकान बनाता, पालन पोषणका काम करता, यह सब तो सिद्धान्तसे विरुद्ध बात है। हाँ यह बात अवश्य है कि जो टाला नहीं जा सकता। विधि विधानमें है कि किसी पदार्थमें अगर विकृत परिणमन हो तो उस परिणमनमें कोई निमित्त अवश्य होता है, निमित्त यदि कुछ न हो तो कभी भी विकार परिणमन नहीं हो सकता। इतना होनेपर भी उस विकार परिणमनको निमित्तने नहीं परिणमाया, वह निमित्त तो उस स्थितिमें उपस्थित मात्र है, यह तो उपादानकी कला है कि उपादान याने परिणमने वाला पदार्थ किस प्रकारके निमित्तको पाकर किस रूप परिणम जाये। सब संसारकी ऐसी ही व्यवस्था चल रही है निमित्त नैमित्तिक योग और वस्तुस्वातन्त्र्य दोनों ये एक साथ रहा करते हैं, तो यहाँ जरा वस्तु स्वरूपपर दृष्टि दीजिए, प्रत्येक पदार्थ केवल अपने ही द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे है, कोई भी पदार्थ किसी दूसरेके द्रव्यसे नहीं अर्थात् किसीका स्वरूप लेकर नहीं, दूसरेके प्रदेशसे नहीं, दूसरेके परिणमनसे परिणमता नहीं, दूसरेके गुणोंसे गुणवान होता नहीं, अपनी अपनी ही गुण पर्यायोंसे युक्त प्रत्येक द्रव्य है, तब यह कहना कि इसने घड़ा बनाया, इसने मकान बनाया यह बात कितनी बेढंगी है, यहाँ तो निमित्त नैमित्तिक योग तक भी नहीं है, जीव निमित्त हो और मकान नैमित्तिक हो, ऐसा भी नहीं है। हाँ कर्मों में अवश्य है निमित्तनैमित्तिक योग। कर्मपरिणति निमित्त है, जीवकी परिणति नैमित्तिक है, जीव भाव निमित्त हुआ और कर्मपरिणति नैमित्तिक है। यह तो निमित्तनैमित्तिक योग है, तिस पर भी जीव पुद्गल कर्मका परिणमन करने वाला नहीं है।

६०४ उपयोगके विषयभूत पदार्थोंका जीव विभावके साथ निमित्तनैमित्तिक योग होनेकी भी असंभवता—

अन्य जगह तो जिस प्रसंगमें हम आप रह रहे हैं, घर हो, कुछ हो, जहाँ गृहस्थजन निवास करते हैं, वहाँ तो परवस्तुके साथ निमित्तनैमित्तिक सम्बंध भी नहीं है, कर्ता कर्मकी बात तो अत्यन्त दूर

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

रहा । फिर आप पूछेंगे कि अगर नौकरने कुछ उल्टी चेष्टा की और मालिकको गुस्सा आया तो क्या नौकर निमित्त नहीं है गुस्साका ? हाँ नौकर निमित्त नहीं, वह तो आश्रयभूत कारण है, जिसे कहते हैं उपचरित कारण । निमित्त कारण उपचरित नहीं होता, वह तो निमित्त कारण ही है । उपचरित कारण वह हुआ करता है कि जो जीवके परिणमनमें निमित्त तो नहीं है, मगर उनका ख्याल करके गुस्सा आदि आता है । तो जिसपर दृष्टि होनेसे गुस्सा मान वगैरह आया वह पदार्थ गुस्सा आदिका उपचरित कारण है, आश्रयभूत कारण है, आरोपित कारण है ।

६०५—जीवके रागादिभाव होनेमें कर्मविपाककी निमित्तकारणता—

रागादिभाव होनेमें पुद्गल कर्मका उदय यह उपचारित कारण नहीं, यह आरोपित नहीं, यह आश्रयभूत नहीं । किन्तु जैसे यहाँ रोटी बननेके लिए आग उपचारित कारण नहीं, आगका निमित्त पाकर रोटी सिकी, ऐसा यहां निमित्तनैमित्तिक भाव है । वैसे ही पुद्गल कर्मके उदयका सांनिध्य पाकर जीवके रागद्वेष हुए यों कर्मविपाक व जीवविभावमें निमित्तनैमित्तिक भाव है । तो इस पुद्गल कर्मने जीवमें विकल्प परिणमन नहीं किया । जीवने विकल्प परिणमन अपने ही विकारके विपरिणमनसे किया तो भी कर्मविपाकोदय और जीवविभावोद्गम इनमें निमित्त निमित्तिक भाव है । निमित्त नैमित्तिक योग होनेपर भी वस्तु सब स्वतंत्र स्वतंत्र अपनेमें परिणमा करते हैं ।

६०६—जीवका अपने ही भावोंमें व्यापकपना संभव होनेसे जीवका अपने भावोंमें ही कर्तृत्व—

हाँ तो देखो—जीव किसी बाह्य पदार्थ को नहीं करता, कर्मको भी नहीं करता, किन्तु वह तो अपने भावोंको करता है । जो अज्ञानी मिथ्या दृष्टि भी है, वह भी पर पदार्थोंको करनेका विकल्प किया करता है, इतनेपर भी वह परपदार्थका करने वाला नहीं, किन्तु पर पदार्थोंका आश्रय बनाकर, कर्मोदयका निमित्त पाकर अपने ही उपयोगका विकल्प रूपसे परिणमन किया करता है । अज्ञानी भी परभावोंका कर्ता नहीं होता और वहां मोहभाव बना सो क्या बना ? अपने आत्मामें एकत्व, अभिन्नता, एकमेकपना उस विभावके साथ माना । जैसे इस शरीरको अज्ञानी जीव मानते हैं कि मैं हूँ, ऐसा एकत्व माननेसे हुआ क्या ? कि वहां पुद्गल कर्मके विपाकका उदय चल रहा ना ? उन दशाओंमें यह ज्ञानी गड़बड़ा गया और यह अपने ज्ञानघन आत्माके सहज स्वरूपसे च्युत हो गया । अब कर तो रहा ज्ञानका ही स्वाद, प्रत्येक जीव स्वाद ज्ञानका ही किया करता है, अज्ञानी हो तो भी, मगर अज्ञानी ज्ञानके स्वादको लेता हुआ भी भ्रमसे मानता है दूसरेका स्वाद । तब वहाँ स्वादमें भेद डाल देता है कि यह शुभ है, यह अशुभ है । तो ऐसे शुभ अशुभ ज्ञानरूप भावको यह जीव करता है । यह जीव परभावोंका तो कहीं भी कर्ता नहीं । अब जिस समय जीवने उपयोगमें अच्छा विचार किया, बुरा विचार किया उस समय जीव व्यापक तो उन विचारोंमें हो रहा है, कर्म या अन्य चीजकी परिणतिमें जीव व्यापक नहीं बनता । क्योंकि प्रत्येक सत् स्वतंत्र द्रव्य है । तो अपनी ही पर्यायोंमें व्यापक है यह जीव तो अपने ही भावोंका यह कर्ता कहा जाता है और उस समय वे भाव जीवके कर्म कहे जाते हैं । तो अज्ञानी भी है तो भी वह परभावोंका कर्ता नहीं । यह जीव किसी भी पर भावका कभी भी कर्ता नहीं हो सकता, क्योंकि जिसमें जो गुण, जो द्रव्य है, वह दूसरेमें नहीं बदला जा सकता । मेरे आत्मामें जो गुण है वह मेरे में ही है, मेरेसे बाहर नहीं आ सकता, तो उन गुणोंका जो परिणमन है वह मेरे में ही रह सकता है. मेरेसे बाहर नहीं हो सकता । तब फिर मैं किसी परको करनेवाला कैसे हो गया ? तो इस तरह यह जीव पुद्गलकर्मका भी कर्ता नहीं । वैसे वस्तुतः देखो लोग कहते हैं कुम्हारने घड़ा बनाया जैसा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कि व्यवहार है तो यह बतलावो कि मिट्टीका जो द्रव्य गुण है वही तो घड़ा रूप परिणमा कि कुम्हारका शरीर घड़ा रूप परिणम गया ? कुम्हार उस घड़ेमें व्यापक नहीं है, वह तो अलग बैठा है, उससे कुछ सम्बंध भी नहीं है, तो उस घड़ेमें व्यापक तो मिट्टी है, तो निश्चयतः वस्तुत्वकी ओरसे तो उस घड़ेका करने वाला अर्थात् उपादान दृष्टिसे कर्ता मिट्टी है, इसी तरह आत्माने उपयोगका विकल्प किया, उस विकल्पका निमित्त पाकर वे पुद्गल कार्माण वर्गणायें कर्मरूप परिणम गई, मगर कर्मरूप परिणमने वाले कर्मवर्गणाओंमें यह जीव व्यापक नहीं है, यह द्रव्य ही जब पुद्गल कर्ममें व्यापक नहीं है तो यह जीव पुद्गल कर्मका कर्ता कैसे हो सकता है ?

६०७ जीवमें पुद्गल कर्मकर्तृत्वके वचन व्यवहारका कारण—

कोई पदार्थ अन्य पदार्थका कर्ता नहीं यह सिद्धान्तकी दृढ़तम बात है। और, फिर जो अन्य बात कही जाती है वह सब उपचार अथवा व्यवहारकी बात है, व्यवहारमें तथ्य है कोई, उस तथ्यको समझानेके लिए कहा जाता है। जैसे कहते हैं ना, जीवने कर्म किया और यह बात यों सही है कि जीवके रागद्वेष परिणामका निमित्त पाकर कार्माण वर्गणाओंमें कर्मरूप परिणमन हुआ। जीवके इन रागद्वेष भावोंके हुए बिना क्या कार्माण वर्गणाओंमें कर्मत्व परिणमन हो सकता ? कभी नहीं हो सकता, ऐसा निमित्तनैमित्तिक योग है, इस तथ्यके कारण व्यवहार भाषा यों बन गई कि जीवने पुद्गलकर्मको किया, क्योंकि कर्माण वर्गणामें कर्मत्व परिणमन जीवके रागद्वेष मोहका निमित्त पाकर हुए, तो तथ्य तो है वहाँ, मगर इस तथ्यको कोई इस रूपमें निरख ले कि जीवने अपने भावको भी कर लिया और पुद्गल कर्मको भी कर लिया, तो यह कथन मिथ्या है। यों कोई द्रव्य दो द्रव्योंको नहीं कर सकता, प्रत्येक द्रव्य अपना ही परिणमन करता है, तब यह कहना कि आत्मा पुद्गल द्रव्यको उत्पन्न करता है, बाँधता है, ग्रहण करता है, प्रकृतिबंध करता, स्थिति बंध करता, अनुभाग बंध बनाता, प्रदेशबंध बनाता, यह एक उपचार से कथन है। वस्तुतः उपादान दृष्टिसे यह जीव अपने भावका करने वाला है, एक ऐसा सिद्धान्त है, उसी सिद्धान्तको सुनकर शंकाकार कह रहा है कि जीव यदि पुद्गल कर्मको नहीं करता है तो उसको करता कौन है ? ऐसी आशंका रखने वाले शिष्यका तीव्र बेग वाला मोह दूर किया जायगा, उत्तर दिया जायगा।

६०८ किसी पदार्थको अन्य पदार्थका कर्ता माननेकी मान्यताको मोहका तीव्र वेग कहनेका कारण—

कर्तृत्ववासनाको तीव्र मोह क्यों कहते ? देखिये मैं किसी दूसरे पदार्थको करता हूं मानों सोचता हूं, यों ही उपादान दृष्टिसे मोही सोचता है। जीवके ये कुछ नहीं बनते, फिर भी अज्ञानी मोह मदिरा पानसे आग्रह करता है और ये दूसरे पदार्थ भी सत् हैं और अपने परिणमनसे परिणमते हैं यह ध्यानमें नहीं है अज्ञानीके। अज्ञानीके ध्यानमें तो यही है कि मैं ही इसे कर देता हूं, जैसे जब कभी पिता पुत्रके प्रति यह सोचता है कि मैंने इसे पाला पोषा, पढ़ाया लिखाया, सब कुछ किया, तो उसका यह सोचना गलत है, अरे उस पिताने अपनेमें अपना सब कुछ किया, उस पुत्रमें उसने कुछ नहीं किया। इस तथ्यके विपरीत सोचने वालेको तीव्र मोह क्यों है, अज्ञान क्यों है कि उसे यह खबर नहीं कि इस जीवमें भी ज्ञान है, इस जीवके भी ज्ञानका विकास है, और यह अपने ही परिणमनसे विकास कर रहा, और इस जीवके साथ पुद्गल कर्म बँधा है, उसके उदयका निमित्त पाकर उसको नाना सुख सुविधायें मिल रहीं है। तो सोचो कि क्या मैं करने वाला हूं ? अरे मैं तो उस पुत्रका एक नौकरकी तरह हूं, उसका पुण्योदय काम कर रहा, पर अहंकारमें यह ध्यान कहाँ रहता है, फिर यह तीव्र वेग वाला मोह कहलाया

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

या नहीं कि मैं देहको यों बनाता हूं, साफ करता हूं और इस पुद्गलको देखकर पवित्रताका अभिमान करते, मैं इन सबसे अच्छा हूं, साफ हूं, स्वच्छ ढंगसे रहता हूं आदिक कितने ही विकल्प इस जीवको अज्ञानमें हुआ करते हैं क्या यह तीव्रवेगी मोह नहीं, ऐसा अज्ञान गड्ढेमें गिरा हुआ प्राणी कैसे अपना उद्धार कर पायगा ? अज्ञान तजना होगा, ज्ञानभावमें आना होगा तब इस जीवको शान्तिका मार्ग मिल सकेगा। तो क्या निष्कर्ष समझें ? एक दूसरेको कुछ कर देता है यह बात सोचना बिल्कुल गलत है। हाँ परिणमनमें उपाधि निमित्तमात्र अवश्य है, यह जीव अपनेको ज्ञान मात्रके ढंगसे नहीं तक रहा। किन्तु, मैं यह करता हूं, इस अहंकारमें मस्त होकर कह रहा कि मैंने किया, मैं कर रहा हूं, मैं कर दूँगा सो यह बात कहना मिथ्या है।

६०९ सर्वत्र जीवका निजभावकर्तृत्व—

जीव अपने भावोंको करता है अन्य किसी बातको नहीं करता, सर्वत्र निरख लो, यही बात है, मंदिरमें हों तो, घरमें हों तो, पुण्य कर रहे हों तो, पाप कर रहे हों तो, या आत्माके वस्तु स्वभावको निरखकर उस ही में तृप्त हो रहे हों तो, हर जगह जीव अपने भावोंका ही करने वाला है, देखो एक बात ऐसी यह ध्यानमें लायें कि इस लोकमें मैं किसीका कोई काम नहीं करता। सांसारिक कार्य तो उस जीवके जैसा जैसा कर्मोदय है उसके अनुसार निमित्तनैमित्तिक योगवश हो रहा है और जो मुक्तिका कार्य है, धर्मका कार्य है वह इस ज्ञानस्वभावको निरखकर बन रहा है, इसके अतिरिक्त बाहरमें कोई कर्तव्य नहीं है, ऐसा ज्ञानमें आ तो जाय, फिर बहुत सी विडम्बना, झगड़े विद्वेष, ये सब समाप्त हो जाते हैं, पर पदार्थको करनेका अभिमान होना यह बहुत बड़ा अंधकार है, बड़े बड़े झगड़े बस इसीके बल पर खड़े होते हैं। देखो करता कोई कुछ नहीं है, पर निमित्तकी जगह करनेका प्रयोग होता है, अच्छा दुनिया को यह जचे कि यह काम मैंने किया, इतना बड़ा काम और कोई नहीं कर सकता था, इसको मैने किया, मैंने कर दिखाया, दुनिया जान जाय, ऐसा जो तीव्र वेगसे मोहका वेग उठ रहा है, अहो यह कितना अज्ञान अंधेरा इस जीवपर पड़ा है, कितनी आशा बन रही है, दुनिया जान जाय, अरे दुनिया क्या, हम क्या, इसका ही सही परिचय नहीं है एक तो यह अंधकार और एक मैंने किया, ऐसा दुनिया समझ जाये कि यह मैं करने वाला हूं, इस प्रकारके जो विकल्प चल रहे हैं ये विकल्प, ये ज्ञान प्रकाशसे विपरीत चीज हैं, तब इस अंधेरेमें आत्माके सही स्वरूपकी सुध ही नहीं होती, फिर संतोष कहाँ पायेंगे ? अरे जहां ठंडा जल भरा हो वहां ही कोई नहाये तो संतापका दुःख मिटेगा अन्यत्र तो नहीं, आगमें गिरने से कहीं संताप शान्त तो न होगा।

आनन्दधाम आत्मतत्त्वके उपयोगसे भ्रष्ट रहनेमें विडम्बना—

अहा आनन्दका धाम तो है यह आत्माका सहज ज्ञानस्वरूप, जिसका काम मात्र जानना है। जाननेसे अतिरिक्त जिसका कर्तव्य कुछ नहीं, उस जाननमें कहाँ कष्ट ? जानन तो आत्माके गुणोंका विकास है, वहां कष्ट नहीं हुआ करता। जब जानन स्वरूपसे च्युत हो गए, ज्ञानमात्र अपने आपकी आस्थासे डिग गए और बाहरी पदार्थोंका आश्रय कर, कर्मोदयके प्रतिविम्बमें आपा मानकर यह जीव भ्रष्ट हो रहा, सोदुःखी हो रहा। बतावो इन विकल्पोंमें कुछ मिलेगा क्या? ये वर्तमानमें कुछ अच्छे लग रहे हैं, यह मेरा घर है, यह मेरा पुत्र है, ये मेरे लोग हैं, ये मेरे खास हैं, बाकी गैर हैं, ये जो चित्तमें विकल्प उछल रहे हैं ये उस विकल्पके समय प्रिय लग रहे हैं, क्योंकि अज्ञानमें पड़े हैं, बेहोशी है, जैसे मदिरा पीने वाले पुरुष बेहोशीमें सब कुछ अच्छा सा मान लेते, कीचड़में गिर पड़ते, कुत्ते भी मुख पर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

मूत दें, अन्य लोग भी झकझोर देते तो ऐसा यह सब उन्हें सुहाता है और दो चार मदिरापायी जुड़ जायें तो आपसमें ऐसी नजाकतसे बातें करते हैं जैसे मानो बादशाह हों, वे उस समय बड़ी एक मौज सी भी मानते हैं, तो भले ही उस समय उनको कुछ अच्छा सा लग रहा हो, मगर वह है तो बेहोशीका ही समय और फिर अभी व आगे वह दुःखका कारणभूत है, ऐसे ही विकल्प अँधकारमें रहने वाले पुरुष बस यह ही तो समझते हैं गल्ती करते हुए भी कि मैं जो कुछ भी कर रहा हूं सो बहत ठीक कर रहा हूं, इसीको तो कहते हैं मिथ्य त्व । गल्तीका तो नाम है रागद्वेष और गल्तीमें ही उसे ठीक समझनेका नाम है मिथ्यात्व। अगर गल्ती ही करे प्राणी और गल्तीको नहीं सही माने, गल्तीको गल्ती समझता रहे तो भी उसका उद्धार हो सकता है, मगर जिसने इतना आग्रह बनाया मिथ्यात्वके कारण गल्ती करते हुए भी मानता कि मैं बिल्कुल ठीक कर रहा हूं, ऐसा जो मानता वह बुद्धिमान नहीं है, मिथ्या दृष्टि पुरुष मन वचन, कायकी जो भी क्रिया करता है उसको वह समझता है कि मैं बिल्कुल ठीक काम कर रहा हूं और वह अपनेको बड़ा बुद्धिमान समझता है । बस यह संसारी जीवमें महा रोग लगा हुआ है, जो ज्ञानी हो गया, जिसने अपने आपके सहज ज्ञानस्वरूपका परिचय पा लिया वह पुरुष गल्ती हो जाय तो गल्तीको तुरन्त गल्ती समझ लेता है, कुछ लोग ऐसे होते हैं कि गल्ती करनेके बाद एक घंटेमें समझ लेते कि मैं गलत रास्ते पर हूं, कोई लोग कुछ महीनों बादमें । पर ज्ञानी जीव तो जिस काममें गल्ती कर रहा है उस ही कालमें गल्ती समझ रहा । कितना बड़ा ज्ञानका प्रताप है, देखो है ना कोई एक ऐसा विचित्र बल सम्यग्दृष्टि जीवके ? कि परिस्थितिवश वह गल्ती भी कर रहा और सब समझ रहा कि यह सब गलत बात है, मेरा काम तो सहज ज्ञान प्रकाशमें निवास करनेका है ।

६११ कर्मास्रवके कारणोंका रहस्य—

शंकाकारके चितमें एक शंका हुई थी कि पुद्गल कर्मको जीवने नहीं किया तो फिर आखिर किसने किया ? तो उसके उत्तरमें कहेंगे कि सुनो—पुद्गल कर्मका करने वाला पुद्गल कर्म ही हैं, कैसे ? देखो कर्म सामान्यतया एक प्रकारका है और उस कर्मके भेद करें, तीन करें, चार करें, इस प्रसंगमें चूंकि निमित्तनैमित्तिक योगका प्रसंग बताकर और जीवको करनेका भ्रम लग गया, यह बात बताई गई है, अतएव चार भेद करें (१) मिथ्यात्व (२) अविरति (३) कषाय और (४)योग । देखो मूल बात यों समझ लीजिए कि कर्मका जो आश्रव होता है वह सीधे जीवके रागद्वेषका निमित्त पाकर नहीं, किन्तु उदयमें आये हुए जो पुद्गल कर्म हैं उन उदयागत द्रव्य प्रत्ययका निमित्त पाकर नवीन कर्मका आश्रव होता लेकिन उन उदयमें आये हुए कर्मोंमें नवीन कर्माश्रवका निमित्तपना आ जाय उसके लिए निमित्त होते हैं जीवके रागद्वेष मोह भाव, इसलिए मुख्यतया वहां कर्माश्रवके निमित्त रागद्वेष मोह भाव बताये गए हैं, क्योंकि रागद्वेष हुए बिना वहाँ कर्मास्रवको कर्मास्रवकी दशा नहीं बनती । जैसे एक दृष्टान्त लो कोई बालक एक दर्पण लेकर धूपमें खड़ा हो जाय और वहाँसे धूप किसी अंधेरी कोटरीमें फेंके तो बताओ उस अंधेरी कोठरीमें उस दर्पणके द्वारा जो प्रकाश पहुचा वह किसका है ? दर्पणका वह प्रकाश है कि सूर्य का ? तो सभी लोग कह देंगे कि वह प्रकाश तो सूर्यका है दर्पणका नहीं । लेकिन तथ्य ऐसा नहीं, क्योंकि सीधे सूर्यका निमित्त पाकर कोठरीमें वह प्रकाश नहीं पहुचा, किन्तु दर्पणका निमित्त पाकर पहुचा, तो सब लोग ऐसा जानते ही हैं कि दर्पणमें सूर्यकी किरणें आयीं । सूर्यकी किरणें उस दर्पणमें पहुचीं और फिर दर्पणसे उस कोठरीके अन्दर किरणें पहुचीं, तो वहाँ वास्तविक बात क्या है कि कोठरीमें जो प्रकाश है वह कोठरीका है और उस प्रकाशका निमित्त है दर्पण, मगर दर्पण उस प्रकाशमें निमित्त हो जाय, उसमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

निमित्त है सूर्य। रातके समय या सुबहके समय दर्पणको उस तरह करके कोई कोठरीके अन्दर प्रकाश पहुचाकर भला दिखा तो दे, तो जैसे कोठरीमें प्रकाशके पहुचानेका निमित्त है दर्पण और दर्पणमें निमित्त पनेका निमित्त है वह सूर्य. तो सही बात मूलमें यह रही कि कमरेमें जो प्रकाश आया उसका निमित्त है सूर्य, ऐसे ही नवीन कर्म जो बँधते हैं जीवके साथ तो सीधा निमित्त है उदयमें आया हुआ पुद्गल कर्म। नवीन कर्म आनेका उदयागत कर्म निमित्त हुआ, मगर उदयागत उन कर्मोंमें ऐसा निमित्तपना आ जाय कि वह नवीन कर्मबंधमें निमित्त बन जाय उसका निमित्त है जीवके रागद्वेषादिक भाव, तो जीवके राग-द्वेष भाव बिना कर्मबंध तो नहीं हो सका, इसलिए ग्रन्थोंमें सीधा जीवके रागद्वेषको कर्माश्रवका निमित्त कहा जाता है साथ ही है संसारबन्धनका कारण, ऐसा तथ्य बताया गया है। तो असलमें कर्माश्रवके कारण कौन है? उदयागत द्रव्यकर्म, उन्हींके ये चार भेद हैं– (१) मिथात्व [२] अविरति (३) कषाय और (४) योग फिर इसीके विस्तारमें १३ गुणस्थान बन गए। कहीं मिथात्वके होनेसे, कहीं मिथ्यात्व तो नहीं किन्तु अविरतिके रहनेसे कर्मबन्धन हुआ याने कोई न कोई उपाधि कारण है जिससे १३ गुणस्थानोंका बनना हुआ और १३ गुणस्थान तक किसी न किसी प्रकारके कर्मका आश्रव होता है तो स्वतः देखें तो कर्माश्रवका कारण वह उदयागत कर्म पड़ा। जीवने कर्म नहीं किया किन्तु कर्मको किया तो, कर्मने ही किया, ऐसा इस प्रकरणमें बताया जा रहा है।

६१२—पुद्गल कर्मके कर्ताका निर्णय—

यहाँ यह निर्णय किया जा रहा है कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्यका कर्ता नहीं है, जब यह बात वस्तु स्वरूपकी है और इस आधारपर यह सिद्ध हो गया कि जीव पुद्गल कर्मका कर्ता नहीं है तो आखिर इस पुद्गल कर्मका कर्ता कौन है इसका निर्णय चल रहा है। बताया यह जा रहा है कि पुद्गल कर्मका करनेवाला उदयागत पुदल कर्म तथा वे ही पुद्गल कर्म याने वे स्वयं कार्माणवर्गणाये हैं। निमित्त दृष्टिसे भी पुद्गल कर्मका करनेवाला पुद्गल कर्म और उपादान दृष्टिसे भी पुद्गल कर्मका करनेवाला पुद्गल कर्म। यह विषय गम्भीर है और बहुत ध्यानसे सुननेपर विदित होता है। स्पष्ट तो सर्वत्र कहा गया कि पुद्गल कर्मके बन्धका, आश्रवका कारण है जीवका रागद्वेष मोह भाव। तो क्या इससे विरोध न होगा इस कथनका? इन दोनों कथनोंमें कोई विरोध नहीं है। जैसे कि कल बताया था कि बतलावो एक कमरे में दर्पणके माध्यमसे खूब प्रकाश ला दिया जैसे कि बालक लोग करते ही हैं, आप लोग भी करके देख सकते। बाहर धूपमें खडे होकर ऐसा दर्पणको कमरेके द्वारपर करें जो उसपर सूर्य सामने हो जिससे कि वह दर्पण झिल मिला जाय, उसमें से किरणें फूट पडें और उस दर्पणको ऐसा सामने किया कि वह उजेला जैसे कि बैट्रोमें से किरणें निकलती हैं उस तरहका उजेला कमरे में पहुंच जाय तो कमरेमें जो प्रकाश पहुचा उसका निमित्तकारण सूर्य है या दर्पण? दर्पण है, लेकिन यह कैसे माना जा सकता? सूर्य न हो तो दर्पणकी वे किरणें कैसे पहुच सकें? यह बात तो बिल्कुल ठीक है, अर्थात सूर्य नहीं है तो इस प्रकार कमरेमें प्रकाश पहुंच ही नहीं सकता। यह बात ठीक है फिर भी उस प्रकारका उपादान कारण तो उस कमरेमें रहने वाली चीज ही है जो प्रकाशमान हुई है और निमित्त कारण दर्पण है, किन्तु दर्पणमें ऐसा निमित्तपना आ जाय कि कमरेमें यह प्रकाश पहुच जाय, उसका निमित्तपना दर्पणमें आ जाय उसका निमित्त है सूर्य। इसी कारण यह बात बिल्कुल सही है कि सूर्य न हो तो यह प्रकाश नहीं पहुच सकता। यही बात कर्मोंके आश्रव और बन्धके विषय में है। देखिये कर्मका आश्रव होता नये कर्म आते तो उसका निमित्त कारण क्या है? उदयमें आये हुए पुद्गल कर्म, उदयागत द्रव्य प्रत्यय अर्थात

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जो कर्म उदयमें आ रहे हैं उनका जो उदित अनुभाग है, जो उदय हो रहा है ऐसा उदयागत कर्म नवीन कर्मके आश्रवका निमित्त है, जीव नहीं, न जीवका रागद्वेष मोह। लेकिन, शास्त्रोंमें तो यह लिखा है कि जीवके रागद्वेष मोहके निमित्त से ही कर्मका आश्रव होता है, ठीक है, वह बात बिल्कुल सही है, उसका विरोध नहीं खाता, क्योंकि जो यह कहा गया कि नवीन कर्मका जो आश्रव होता है उसका निमित्त है उदयमें आये हुए द्रव्य कर्म मगर उदयमें आये हुए द्रव्य कर्ममें ऐसा निमित्तपना आ जावे कि वे नवीन कर्मके आश्रव के निमित्त हो जाये ऐसा निमित्तपना आ जाना, इसका निमित्त है जीवका रागद्वेष मोह भाव ।

६१३—कर्मविपाकोदय, जीवविभाव, नवीनकर्मास्रव तीनोंका सहभावित्व होनेपर भी निमित्त, निमित्त—त्वनिमित्त व नैमित्तिक होनेका दिग्दर्शन—

बातें तीनों एक साथ हैं, उसी समयमें कर्मका उदय है, उसी समयमें जीवके विकल्प परिणाम हैं, रागद्वेष मोह भाव हैं, उसी समयमें नवीन कर्मका आश्रव है, फिर भी एक साथ तीनों होते हुए में यह निर्णय है कि कर्मका आश्रव है नैमित्तिक, उसका निमित्त है उदयागत कर्म और उदयागत कर्मके निमित्तपनेका निमित्त है जीवका रागद्वेष मोह भाव। कहीं ऐसा नहीं है कि जब नवीन कर्मका आस्रव हो तब जीवमें रागद्वेष मोह आना ही पड़ता है या निमित्तको हाजिर होना ही पड़े, कर्मोदयको हाजिर होना पड़े ऐसा नहीं। इस मान्यतामें निमित्त नैमित्तिक भावका दर्शन नहीं है बल्कि उल्टा ही प्रसिद्ध होता है। जीवका रागद्वेष मोह जब हो तब कर्मका आश्रव हो, जब कर्मविपाक हो तब जीवके राग द्वेष मोह उठ बैठते हैं, ऐसा कहनेमें तो आया निमित्त नैमित्तिक भाव। मगर, जब जीवके रागद्वेष भाव हुए तब कर्मका उदय हाजिर हुआ, यों कहनेका अर्थ यह हुआ कि कार्य हुआ निमित्त और कारण हुआ नैमित्तिक याने जीवके रागद्वेष विभाव तो हुए निमित्त और कर्मका उदय होना होजायगा नैमित्तिक। ऐसा जैन सिद्धान्तमें नहीं है, और एक मोटी कुञ्जी बतायी जाती है, कहीं, भी बात आप बोलें—जिसमें आप "जब लगायेंगे वह तो प्रसिद्ध होता है निमित्त और जिसमें आप "तब" लगायेंगे वह होता है नैमित्तिक। जैसे दीपक और प्रकाश दोनों एक साथ होते हैं, मगर उसका कहना इस तरह ठीक है कि जब दीपक जलता है प्रकाश होता है, एक साथ होनेपर भी ऐसी भाषा बोली जा सकती है कि जब दीपक जलता है तब प्रकाश होता है, मायने दीपक कारण है, प्रकाश कार्य है यह भाषा सत्य है, किन्तु यह भाषा न बोली जा सकेगी कि जब प्रकाश होता है तो दीपक जल उठता है ऐसा कहनेमें प्रकाश हो जायगा निमित्त और दीपकका जलना हो जायगा नैमित्तिक जो कि प्रकट मिथ्या है सीधी साफ कुञ्जी है जब और तबके प्रयोगकी। तो क्या बात प्रकरणमें समझना है कि कर्म उदयमें आये यह माध्यम बना विभावका व आश्रवका क्योंकि पहले कर्म बंधे थे जिनमें प्रकृति, प्रदेशका स्थिति अनुभागका बंधन था, अब उदयमें आये, स्थिति पूरी हुई, कर्मका अनुभाग खिला, उस खिलनेमें काम क्या हुआ ? देखना यह कि कारण किस किस कार्यका जाल है, कर्मका उदय यह कारण बना किसका ? जीवमें रागद्वेष मोह—भाव जगा उसका और नवीन कर्मका आश्रव हुआ उसका भी, दोनोंका निमित्त यह रागद्वेष मोहभाव है। तब प्रधान क्या कहलाया आश्रव ? जीवका राग द्वेष मोहभाव, देखिये यह प्रकरण चल रहा है कर्म कर्मभावका। आश्रवाधिकारमें यह बहुत स्पष्ट की जायगी, पर कर्तृकर्माधिकारमें इस तथ्यको यहाँ देखें कि जीवके रागद्वेष भाव तो हुए, मगर यहां हुआ क्या ? बस उपयोगका विपरिणमन। याने विकल्प रूप परिणमन। रागद्वेष कहते किसे हैं ? क्या चीज है ? कोई जाना जा सकता कि यह है तो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

राग द्वेष । बताया जा सकता क्या ? बस जीवका रागद्वेष है ज्ञानका उस तरहके विचारके रूपमें या समझनेके रूपमें परिणमन । इसका नाम ही राग है, इसका नाम ही द्वेष है । अच्छा और देखो वास्तवमें मूल रागद्वेष क्या है ? तो कर्ममें जो अनुभाग पड़ा है रागद्वेष प्रकृति वह फूटे, वह है कर्ममें रहनेवाली रागद्वेष पर्याय । जिसको कर्म अचेतनत्वके नाते ही अनुभव कर पाते हैं, चेतनत्वके ढंगसे अनुभव नहीं कर सकते अर्थात् जैसे प्रत्येक पदार्थमें अवस्थायें होती हैं तो उन अवस्थाओंका अनुभवन वे प्रत्येक पदार्थ कर रहे हैं । वह अनुभवात्मक चैतन्यात्मक नहीं, ज्ञानात्मक नहीं, किन्तु परिणमनात्मक है, वह हुआ प्रतिफलन, अब उस सम्पर्कसे उपयोगकी धारा बदल उठती है, बस तब बन जाता है रागद्वेष ।

५१४—द्रव्यकर्मके कर्मत्वका तथ्य—

जो कर्म आये वही कार्य, कर्ममें कर्मका आश्रव होना, कर्मका बंध होना यह है एक कार्य । इसका ही निर्णय किया जा रहा है इसका करने वाला कौन है ? तो कर्मका आश्रव हुआ, कर्मका बंध हुआ याने कर्माणमें ही कोई कर्मत्वकी अवस्था बने तो इस कर्मत्वकी अवस्थाका करने वाला उपादान से तो वही कार्माण वर्गणा है जिसमें कि कर्मत्व अवस्था हुई और निमित्तदृष्टिसे कर्मत्व अवस्थाका निमित्त है उदयमें आया हुआ पुद्गल कर्म । सो देखिये ये पुद्गल कर्म जो उदयमें आये हैं सो उदयकी दृष्टिसे अनुभाग और फलकी दृष्टिसे चार प्रकारके हैं—मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग । देखिये उदयागत कर्मको ही चार भागोंमें बांटा जा रहा है, मिथ्यात्वको तो जानते ही हैं । मिथ्यात्व नामक प्रकृति, उसमें पड़ा है अनुभाग, उसका होता है उदय, यह है मिथ्यात्व । अविरत याने अप्रत्याख्यानावरण व प्रत्याख्यानावरण और प्रत्याख्यानवरण प्रकृति है उसमें जो अनुभाग पडा है उस अनुभागका जो यह प्रतिबिम्ब है प्रतिफलन है वह है अविरति । वह अनुभाग है अविरति जो नवीन कर्मके आश्रवका निमित्त है । विषय कषाय याने विषयको तो अविरति कहना प्रसिद्ध भी है मगर अविरतिमें उस अविरतपनेकी बात न निरखकर केवल एक मथनरूपसे ही देखा जाय तो वह कषाय है । और जो जो कर्म उदित होकर इस एक प्रदेशपरिस्पंदमें निमित्त होता है वह वह भाव योग है, इस तरह चार प्रकारका यह उदयागत द्रव्यप्रत्यय है । अब इसके ही विस्तारमें १३ गुणस्थान हैं । अयोगकेवलीमें योग नहीं, वहाँ आश्रव भी नहीं । ईर्यापथ आश्रव ११वें से १३वें गुणस्थान तक है, साम्परायिक आश्रव १०वें गुणस्थान तक है । कोई भी आश्रव हो, है तो आश्रव, तो आश्रव हो रहा है उसका निमित्त है ये चार उदयागत प्रत्यय और इन चारका विस्तार है मिथ्यात्व सासादन आदिक १३ गुणस्थान ।

६१५—त्रयोदश गुणस्थानोंमें आस्रवतनिमित्तत्वका तथ्य—

अब देखना गुणस्थानको, हम इस ढंगसे भी देख सकते हैं कि आत्माके गुणविकासका नाम है गुणस्थान और इस ढंगसे भी देख सकते हैं कि आत्मामें कुछ कुछ कमी रह जानेका नाम है गुणस्थान क्योंकि १३ गुणस्थानोंमें ये दोनों ही बातें हैं । आत्मामें विकास है मिथ्यात्वसे ऊपर, मिथ्यात्वमें तो माहे है, पर और ऊपर किसी न किसी दर्जेमें कुछ थोड़ा विकास है अथवा मलिनताकी कमी याने कुछ विकास और कुछ मलिनता इसके मायने है १३ गुणस्थान । यद्यपि १३ वें गुणस्थानमें कषायकृत मलिनता नहीं है, मगर योगका होना भी तो एक आत्माकी कमी है । जैसे कहीं साफ स्वच्छ पानी है, कहीं कीचड़वाला पानी है, कीचड़ वाले पानीमें जैसे हमारे प्रतिबिम्बकी झलक भी नहीं, स्थिरता नहीं है, मलिन दिखता है प्रतिबिम्ब । लेकिन, कोई पानी बहुत स्वच्छ है मगर उसमें लहरें उठ रही हैं, भवर चल रही है तो वहां भी तो हमारा प्रतिबिम्ब स्थिर नहीं होता, तो मलिनता भी एक कमी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है और योग भी परिस्पंद भी, लहर भी एक कमी है। तो गुणस्थानोंको जरा इस ढंगसे देखें तो सही, हमारी कमीको आत्माकी कमीको गुणस्थान कहते हमारी कमीका नाम यहाँ गुणस्थान है। तो इन १३ गुणस्थानोंमें जिन कमियोंसे उनका स्वरूप बने वे कमियाँ क्या आत्माका स्वभाव है या वह कर्मके उदयका प्रभाव है? जो कमियां आत्माका स्वभाव नहीं और जो कमियाँ है वही आश्रवका कारण है, जो विकास है आश्रवका कारण नहीं। मिथ्यात्वके बादके गुणस्थानोंमें सम्बर निर्जरा है, १३ गुणस्थानोंमें आश्रव भी चल रहा है, बंध १० वें गुणस्थान तक है तो जहाँ निर्जरा और आश्रव दोनों चल रहे है वहाँ मोक्षमार्गमें कर्मकी निर्जराका कारण तो विकास और आश्रवका कारण है कमी। तो विकास और कमी जब ये दोनों ही चल रहे गुणस्थानमें और आश्रव होता है कमियोंके कारण तो यह ही कहा जायगा ना कि कर्मोंके आश्रवका निमित्त है यह गुणस्थान, ये १३ गुण स्थान हैं क्या? वे चार प्रकारके जो द्रव्य प्रत्यय हैं उनके ही ये प्रभेद हैं, विस्तार हैं, तब क्या बात रही कि नवीन कर्मके आश्रवका निमित्त रूपसे कारण यह गुणस्थान अथवा यह उदयागत द्रव्य प्रत्यय रहा।

६१६ लोकसम्राट् निरंजन भगवान आत्माकी संसार लीलाका कारण—

यहाँ क्या बात समझना है कि यह जीव बादशाह, यह आत्मा सम्राट्, यह तो अकर्ता है, इसे क्यों खींचा जा रहा है? जो उदयागत, द्रव्य प्रत्यय है वह कर्माश्रवका कारण है। हाँ देखना, इतनी सावधानी अवश्य रखना कि उदयागत द्रव्य प्रत्ययमें जो नवीन कर्मोंके आनेका निमित्तपना बनता है वह जीवके रागद्वेष की सैनका बल पाकर ही बनता है। रागद्वेषका बल पाये बिना नवीन कर्मोंका आश्रव नहीं होता। जरा एक और लौकिक दृष्टान्त लो। मानो किसी एक बाबूके साथ एक पालतू कुत्ता चला जा रहा है और सामने कोई उस बाबूजीका विरोधी पुरुष नजर आया जिससे उसको नाराजगी थी तो बाबूजीने उस कुत्तेको जरा सा छुछकार दिया तो कुत्तेने उस विरोधी पुरुषपर आक्रमण कर दिया, काट लिया। अब यह बतलावो कि वह मनुष्य क्या उस कुत्तेपर मुकदमा दायर करेगा या बाबूजी पर? बाबूजी पर ही दायर करेगा, अरे ऐसा क्यों? आक्रमण तो कुत्तेने किया। तो बाबूजी पर मुकदमा इसलिए कर रहे कि बाबूजी की सैनका बल पाकर ही कुत्तेने आक्रमण किया। ऐसे ही जो कर्म उदयमें आते हैं उन उदय वाले कर्मोंने तो नवीन कर्मोंको बुलाया, मगर अपराधी कौन ठहरा? यह मलीमस जीव, क्योंकि जीवके रागद्वेष मोहकी सैन पाकर उन उदयागत कर्मोंने नवीन कर्मोंको बुलाया, यह है कर्ताकर्मके निर्णयका प्रकरण, इसलिए इतना अंश यहाँ ग्रहण करना कि जीव पुद्गल कर्मका कर्ता नहीं, निमित्तसे भी कर्ता नहीं, उपादानसे भी कर्ता नहीं, किन्तु, निमित्तसे कर्ता तो है उदयागत कर्म और उदयागत कर्ममें ऐसा निमित्तपना आनेका निमित्त है जीवका रागद्वेष मोह भाव। और भी ध्यानसे सुनो—मान लो एक इंजन १० डिब्बोंको खींच रहा है तो वहाँ आप यह बतलावो कि इंजन साक्षात् किस डिब्बेको चलानेका निमित्त बन रहा? जो इंजनसे लगा हुआ डिब्बा है उसका केवल साक्षात् निमित्त है उससे सम्पर्क है, वह साक्षात् निमित्त किसका बनता है? इंजन तो इंजनसे लगे हुए पहले डिब्बेको खींचनेका निमित्त है, अच्छा और फिर दूसरा डिब्बा जो खिच रहा है, उसके खिचनेका कौन निमित्त है? वह चलता हुआ पहला डिब्बा, अच्छा कह तो दिया आरामसे, मगर इंजन खड़ा हो जाय तो फिर वे पीछेके ९ डिब्बे क्यों खड़े हो गए? उनका तो निमित्त था ही नहीं इंजन। तो भाई बात यों है कि पहले डिब्बेके खींचनेका इंजन साक्षात् निमित्त है और बाकीके उनसे लगे डिब्बे पीछे पीछे वाले डिब्बों के खिचनेमें निमित्त तो हैं मगर उन डिब्बोंमें खींचनेका निमित्तपना आया उसका तो निमित्त इंजन ही

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है, निमित्तत्वका निमित्त है इंजन और वह इतना प्रबल है कि इंजन न रहे तो शेष डिब्बे अन्य डिब्बों को खींचनेमें निमित्त नहीं हो सकते ।ऐसे ही नवीन कर्मोंके आश्रवका निमित्त तो है उदयागत द्रव्य प्रत्यय, किंतु उन द्रव्यप्रत्ययोंके इस निमित्तपनेमें निमित्त हैं जीवके राग द्वेषादि भाव । लो यों परख करलो कि यदि जीवके रागद्वेषादि भाव न हो तो उदयागत द्रव्य प्रत्ययोंमें नवीन कर्मोंके आश्रवका निमित्तपना नहीं आ सकता । तब तो यही सिद्ध हुआ कि वास्तवमें तो रागद्वेष मोहसे ही संसार परम्परा बनी, इसी कारण एकदम ही यह कह दिया जाता है कि कर्मोंके आश्रवका निमित्तकारण जीवके राग द्वेषादि विभाव है ।

६१९ आत्माके सहज स्वभावके परिचयके प्रयोजनकी जैन शासनसे सिद्धि—

यहां एक अन्तः निरन्तर धारा चल रही है, जिसका परिचय न होनेसे यह जीव कितनी ही अपनी कुगतियाँ विचार डालता है । यहाँ ध्यानमें एक बात लेना, जैनशासनमें जितनी भी बातें कही गई हैं वे सब जीवके हितके लिए उपयोगी हैं, उनमें यह छाँटना कि यह बात तो सत्य है और यह बात असत्य है, यह जैन शासनका विद्रोह है । देखो—सर्व कथनोंका प्रयोग स्वभाव दृष्टिके लिए होता है,दूसरा और कोई प्रयोजन नहीं । जीवको अब तक स्वभावकी दृष्टि नहीं हुई, स्वभावका दर्शन नहीं हुआ, स्वभावमें रुचि नहीं जगी, स्वभावरूप अपनेको नहीं माना, जिसके कारण यह संसारमें रुल रहा है, पर्यायों में आत्मबुद्धि कर रहा है, तो करना क्या है ?ऐसा परिचय बनावें, ऐसा ज्ञान प्रकाश लावें कि स्वभावमें रुचि जगे, स्वभावमें दृष्टि लगे । तो देखो समयसारमें मुख्यतया बंधाधिकारमें निमित्तनैमित्तिक योग का स्पष्ट सीधा वर्णन है, यह जीव कर्मोदयसे ही दुःखी सुखी होता है, दूसरा जीव इसको दुःखी सुखी नहीं करता । दूसरा जीव तो केवल अपना अध्यवसान करता है कि मैं इसको दुःखी करता हूँ, मैं इसको सुखी करता हूं, लेकिन उसका अध्यवसान झूठा है, क्योंकि उसके दुःखी करनेका परिणाम होनेसे कोई दुःखी न हो जायगा । उसके ही पापका उदय हो तो उसका निमित्त पाकर वह दुःखी होगा । पुण्यका उदय हो तो उसका निमित्त पाकर सुखी होगा, दूसरा जीव निमित्त कारण नहीं । तो ऐसे निमित्तनैमित्तिक योग के परिचयसे कितनी स्वच्छता जगती है और कितनी सुगमता है स्वभावके दर्शन करनेमें । यह ज्ञान जानता है कि जो यह मलिनता है, जो ये विकल्प चल रहे, वह सब कषायका प्रतिफलन हो रहा । वहाँ दो बात निरखना- वस्तुगत मूलमें जो अनुभाग हैं वह तो है कर्मकी परिणति और उस प्रतिफलनका निमित्त पाकर जो जीवने अपना उपयोग उन उन विचारों रूप बना डाला यह है जीवकी गल्ती, मगर ये जो कषायें प्रतिविम्बित हो उठी हैं और जिस कषायमें उपयोग लगाता है वह कषाय जीवकी नहीं है, वह कर्मकी चीज है और नैमित्तिक है । हाँ कषायमें जो उपयोग परिणमा है वह नैमित्तिक है । सो वह उपयोग विकल्प जीवकी ही परिणति है तो भी यह जीवके स्वभावकी रंच भी बात नहीं । मैं तो इन सबसे बिना छुवा, बिना बँधा अपने आपमें ही स्वरूपमें विशुद्धि एक अंतस्तत्त्व हूं, यह दर्शन मिला निमित्तनैमित्तिक योगके सही परिचय से, और इसका बड़ा उपयोग किया आचार्य संतोंने । किसलिए किया कि इन नैमित्तिक भावोंसे हमको ग्लानि हो जाय । ये नैमित्तिक हैं, ये मेरे स्वभावकी चीज नहीं, हुआ उपयोगका परिणमन, है मेरा ही परिणमन, मगर यह नैमित्तिक है, इसमें मुझको बुद्धि न फसाना चाहिए, ये हेय तत्त्व हैं इनसे उपेक्षा करें, और आवें तो जो अनैमित्तिक है, जो सहज स्वभाव है उस अंतस्तत्त्वके दर्शन करनेको आवें । प्रत्येक वर्णनका प्रयोजन है आत्माके स्वभावमें पहुंचना । एक ही प्रयोजन है समस्त ग्रन्थोंका । एक आत्मस्वभावके दर्शनमें बाधा डाले ऐसा जितना भी कथन है वह सब

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

मिथ्या कथन है, जैसी जो बात नहीं है वैसा कह उठना। जीवने द्रव्यकर्मको किया अथवा द्रव्यकर्मने जीवमें राग बनाया यह सब कथन मिथ्या है, क्योंकि यहाँ परके अकर्तृत्व स्वभावका उल्लंघन किया। निमित्तनैमित्तिक योगको पहिचानें, उसमें तथ्य है। लोग तो यों कह देते कि—अंजनसे किए अकामी, दुःख मेटो अन्तर्यामी। हे प्रभो आपने अंजन जैसे चोरको भी अकामी बना दिया—क्यों भाई ऐसा कहना झूठ है या सच ? झूठ है, मगर इसमें तथ्य है जिस तथ्यके कारण ऐसा कहना अयुक्त नहीं हो रहा। भक्तिमें कह देते हैं। क्या तथ्य है कि उस अंजन चोरने उस चैतन्यस्वरूपका ध्यान किया, उस चैतन्यस्वरूपका अनुभव किया, प्रस्तुतमें जो व्यक्तस्वरूप है उसका सहारा लेकर अपने चैतन्सस्वभावका ध्यान किया कि वह पवित्र बन गया। तो यह निमित्तनैमित्तिक योग रहा ना आश्रयभूतकी ओरसे। इस तथ्यके कारण ऐसा कहना कोई वर्जित नहीं है। कहा जाता है, कहते है, किन्तु कोई इसी तरह समझ ले कि भगवान सिद्धालयसे या समवशरणसे उठकर दौड़कर भागकर आये इस अंजन चोरके पास कि मैं इसे अकामी बना दूँ और बनाये, ऐसा दृश्य कोई अपने चित्तमें लाये तो वह मिथ्या है। तो निमित्तनैमित्तिक योगका सही परिचय हो तो विसंवाद नहीं रहता।

६१८—निमित्तनैमित्तिकयोगके परिचयसे आत्मस्वभावके निखारका समर्थन—

निमित्तनैमित्तिक योगका सही परिचय वह कहलाता कि जिसमें वस्तुस्वातंत्र्यका घात न किया जा रहा हो जैसे मैं इस चौकीपर बैठ गया तो कोई तो यों कहता कि इस तखतने महाराजजीको बैठा दिया और कोई यों कहे कि यह इस चौकीका आश्रय करके स्वयं अपने आपमें अपनी परिणति बनाकर बैठ गए। यहाँ कथनका अन्तर देखना। पहला कथन कर्तृत्वबुद्धिको लिए हुए है। क्या तखतने मुझे बैठा दिया ? अरे तखत तो तखतमें है, अपने प्रदेशोंमें है। उसके बाहर उसकी कुछ कला नहीं है। यह तो बैठने वालेकी ही कला है कि यह उपादान इन परपदार्थोंको निमित्तमात्र करकेमैं अपना प्रभाव बनाकर बैठ गया, बस यह ही बात सर्वत्र है। कहीं भी घटालो निमित्त उपादानका कर्ता नहीं है, किन्तु उपादान स्वयं ही ऐसी कला रखता है कि वह किस निमित्तको पाकर अपनेमें कैसा प्रभाव बना डाले। देखिये वस्तुस्वातंत्र्य आया ना ? परिणमन कोई दूसरेने नहीं किया, परिणमन तो इस उपादानमें स्वयं हो गया और निमित्तनैमित्तिक योग आया ना कि ऐसे विषम परिणमनको यह उपादान, इस उपाधिका सन्निधान पाकर कर गया। इस तरह आत्मा तो जो जीवको पहिचानने वाला है वह कह रहा है कि जीव तो अकर्ता है। जोवका कर्ममें कर्तृत्व नहीं है। यह हो रहा है निमित्त नैमित्तिक योगसे। तो देखिये यह मिथ्यादृष्टिसे लेकर सयोग गुणस्थान तक यह सब गुणस्थान (गुणस्थानको कहते ही वहाँ कमियोंपर दृष्टि देना है) अचेतन है और पुद्गल कर्मके उदयसे उत्पन्न हुआ है। यह अगर कर्मको करता है तो करे, जीव तो अकर्ता ही रहा और यह अगर कर्मको करता है तो अनुभवे भी यही। कौन ? कर्म। नहीं। कर्मकी बात कर्म अनुभवे और जो निमित्त बनी ऐसी अवस्थाको अनुभवे जीव। जीवद्रव्य जो सहज ज्ञायक स्वरूप है वह भोक्ता भी नहीं और कर्ता भी नहीं। ऐसे समस्त अनात्म तत्त्वोंसे विविक्त जो आत्माका सहज ज्ञानस्वरूप है, ज्ञायक स्वभाव है उसमें अनुभव करें कि मैं यह हूँ। देखो सारे कथनमें इतनी ही बात कही गई। अगर इसे छोड़कर अपनी कषायोंमें अनुभव करे कि यह मैं हूँ, अपने देहमें अनुभव करें कि यह मैं हूँ, छुटपुट ज्ञानोंमें अनुभव करे कि यह मैं हूँ तो ये आश्रव भी इसमें होते हैं, संसार बढ़ता। अनुभव करें अपना सहज ज्ञान स्वरूपका कि यह मैं हूं।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

स्थितेत्यविघ्ना खलु पुद्गलस्य, स्वभावभूता परिणामशक्ति : ।
तस्यां स्थितायां स करोति भावं यमात्मनस्तस्य स एव कर्ता ।।६४।।

६१९—जीव और कर्ममें एकत्वका अभाव—

कर्तृकर्माधिकारके इस प्रसंगमें बात यह चल रही है कि यह जो कुछ भी संसारनृत्य हो रहा है वह निमित्तनैमित्तिक विधि विधानपूर्वक हो रहा है। अर्थात् दो द्रव्य हैं जीव और कर्म। कर्म हैं पौद्गलिक, जीव है चैतन्यस्वरूप, सो जो कर्म पहले बाँधे थे उन कर्मोंका उदय आया, उनका अनुभाग फूटा, इस प्रकार कर्ममें परिणमन हुआ। इस स्थितिमें इस जीवने अपने उपयोगमें विकल्प बनाया, बस वही विकल्प इसका कार्य है और इस विकल्पका यह जीव करता है, किन्तु अपने उपयोगके परिणमनके अतिरिक्त अन्य द्रव्यमें, कर्ममें किसी भी प्रकारकी अवस्थाका कर्ता नहीं है, क्योंकि दो चीजें अलग अलग हैं, कर्म अलग है, जीव अलग है, कर्म और जीवमें एकता नहीं है, जीव और प्रत्ययमें याने उदयमें आये हुए कर्ममें एकत्व नहीं है, देखो जब एक क्षेत्रावगाही पदार्थोंमें, बन्धक बन्ध्य पदार्थोंमें ही भिन्नता है फिर अत्यन्त बाह्य पदार्थोंमें कोई आसक्त हो तो उसको कितना व्यामोही कहा जाय। लोग धन वैभवके पीछे होड़ लगाये दौड़ रहे हैं और अपनी बरबादी कर रहे हैं। एक कथानक एक मुख्तयारने बताया कि एक किसान गेहूं बेंचकर आया, हजार रुपयाका गेहूं बिका। ठंडके दिन थे, पूर्व रात्रिमें पड़ौसी जनोंके साथ एक बड़े कोंड़ेपर ताप रहा था, साथमें ३ वर्षका उसका बच्चा था। किसान हजार रु. के नोटकी गड्डी लिये बच्चेको खिला रहा था। बच्चेके हाथ वह नोटकी गड्डी आ गई। थोड़ा वह खेलता रहा, फिर उसने उस गिड्डीको धधकती हुई आगमें डाल दिया, सारे नोट जलकर राख हो गए। उस समय उस किसानको इतना क्रोध आया कि उस बच्चेको भी उस धधकती हुई आगमें पटक दिया। वह बच्चा भी उसीमें जल गया, तो कोई इस धनको अपना सर्वस्व मानता, कोई स्त्री पुत्रादिकको सर्वस्व मानता, कोई इस देहको ही आपा मानता। तो ये सब बातें किस कारण बनीं ? मूल क्या है ? मूल यह है कि इस जीवके जो इस इस उपयोगमें कर्मका नाच झलक रहा है, कर्मका नाच प्रतिबिम्बित हुआ है बस अपनी सुध भूलकर चूंकि उसके नाट्यसे ये जीव स्वाद तो उस ही कर्मरसका मान लेते हैं कि मैं हूं, सो बाहरी बातोंमें एकता चलती है।

६२० निजको निज परको पर जान—

भेदविज्ञान तो कर्मरस व ज्ञानरसमें करना है, सो यहाँ जीवस्वरूप कर्मप्रतिफलन, कर्मप्रतिबिम्ब, उदयागत ये कर्म इनमें भेद जानें। उदयमें आये हुए जो कर्म हैं, प्रतिबिम्ब है वह और यह मैं उपयोग, ये एक नहीं, यदि ये दोनों एक हो जायें तो उसका अर्थ हुआ कि जीव और अजीव मिलकर एक ही चीज रह गए, ये अकेले अकेले दो हैं, यह आप कैसे जानते ? इस अकेलेका काम इसमें ही चल रहा, इस अकेलेका परिणमन इसमें ही चल रहा तब तो आप समझ रहे कि दो हैं, अगर ये दोनों एक बन जायें याने इनमें अभेद कभी हो जाय तो दोनों एक बन जायेंगे दो कहाँ रहे। सो ये दो ही हैं, एक कैसे बनेंगे? यह प्रत्येक पदार्थकी बात है। देह और कर्म एक नहीं हैं, अगर एक बन जायें तो कौनसा एक रहा और कौनसा एक मिटा ? कोई व्यवस्था नहीं बन सकती। सो इसी तरह मान लीजिए कि विचार विकल्प कर्म नोकर्म सभीके सभी मुझ उपयोग स्वरूपआत्मासे निराले हैं, मैं कर्मका कुछ नहीं करता। कर्मका निमित्त पाकर मैं अपने उपयोगमें ही विकल्प रूप परिणमन कर रहा हूं, अब इसका रहस्य जाना, तथ्य जाना, अन्तर समझा कि मुझे कर्मरस रूप नहीं बनना चाहिए। मैं तो ज्ञानरूप ही रहना चाहता हूं, अब

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

(कलश ६४)

यहाँ बात भी देखते जाना कि कर्म भी द्रव्य है, जीवभी द्रव्य है, कर्ममें भी बदलनेका स्वभाव पड़ा है, जीवमें भी परिवर्तन का अवस्थान करनेका स्वभाव पड़ा है। जीव कर्ममें कुछ नहीं करता, निमित्त भले ही है, पर कर्ममें स्वयं परिणमनेका स्वभाव है। तो परिणमनस्वभावसे ही कर्म परिणमते हैं किस प्रकार परिणमते हैं, जैसा रागद्वेष कर्माका सन्निधान पाया तदनुकूल यह परिणमता है, लो इन परिणमनों में विरोध नहीं है, यह तो उपादानकी कला है कि कौनसा उपादान कैसा निमित्त पाकर किसरूप अपनेमें अपना कार्य बना ले। यह सब उपादान की कला है। तो इस तरह निरखें आपकि यहाँ जो जीव में कर्मबन्ध हुआ पड़ा है तो वस्तुतः जीवमें बंधा नहीं पड़ा। कर्ममें ही कर्म बंधे, पुद्गलमें ही पुद्गल बंधे, पिण्ड पुद्गलका पुद्गलमें ही बंधता मगर ऐसा ही निमित्तनैमित्तिक योग है कि जीवके कषायभाव का निमित्त पाकर यह कर्मत्व आया है जीवके साथ इस तरह बंधनको प्राप्त हुआ है।

६२२—निमित्तनैमित्तिक बन्धनका तथ्य—

गायका गला रस्सीसे बाँध दिया तो वस्तुतः रस्सो से गला नहीं बँधा, रस्सी के एक छोरसे रस्सीका दूसरा छोर बँधा है, अब इस तरहका जो छोर बँधा है ऐसा उस समय का वातावरण है कि गाय ही बँधी हई है। कहीं बाहर जा नहीं सकती। गाय के गले में रस्सी नहीं बंधी हुई है। अगर गायके गलेसे रस्सी बाँध ही जायतो गाय मर जायगी। जैसे रस्सीके एक छोरसे रस्सीका दूसरा छोर बाँध दिया गया इस तरहसे गायका गला किसी पहलवानसे मरोडकर रस्सीके एक छोरसे नहीं बाँधा जा सकता। यदि ऐसा किया भी जाय तो गाय मर जायगी। तो जैसे रस्सीसे रस्सीका छोर बंधा, गायके गलेसे रस्सीका छोर नहीं बंधा इसी तरह कर्ममें कर्म बंधे, पर ऐसा निमित्त पाकर बँधे कि इस अमूर्त जीवका और मूर्त कर्मका एक निर्मित्तनैमित्तिक बंधन हो गया और इस कारण अब उपचार से जीवही मूर्तिक बन गया। मूर्तिक नहीं है जीव, मगर स्थिति ऐसी बन गई कि वह नरक आदिक भवोंको धारण करता है। तो देखो उस पुद्गल कर्ममें सत्व होनेके नाते परिणमने की शक्ति है, स्वभाव भी, मगर ये पुद्गल कर्म स्वयं ही कर्मरूप नहीं परिणमें तो इसका अर्थ यह हुआकि पुद्गल कर्म अपरिणामी हैं, वे परिणम ही नहीं सकते। परिणमना उसकी प्रकृतिमें ही नहीं है। ऐसा एक तरहका ठोस कल्पित कि जहाँ परिणमन ही नहीं, यों बन जायगा। अब पुद्गल कर्ममें कुछ परिणमन न हो तो संसारका अभाव है। अब जीवमें यह संसरण कैसे हुआ ? यह संसार नहीं आ सकता अगर कोई यों कहे कि भाई पुद्गल कर्मस्वयं तो नहीं परिणमते मगर जीव ही उस पुद्गलको कर्मरूप परिणमा देते हैं, जो कर्म है, जिसको लोग कहते तो हैं तकदीर, भाग्य, रेखा, मगर वास्तवमें क्या है, क्या प्रदेश होते हैं, क्या उसमें स्थिति होती है, क्या अनुभाग होता है, इन सबको बताने वाला कोई शासन नहीं मिला। एक जैन शासन ही कर्मकी बातका प्रतिपादन करता है। कोई कहे कि पुद्गल कर्म स्वयं तो नहीं परिणमाता किन्तु जोवही पुद्गल कर्माको कर्मरूप परिणमा डालता है और जब कर्मरूप वह परिणम गया ती ससार चलता रहेगा सो जब कर्म परिणमताही नहीं है, जीवहीं परिणमा देता है तो वे यह बतलायेंकि जब वह जीव परिणमा रहा है कर्मरूप, उस समय यह कर्म परिणम रहा कि नहीं परिणम रहा ? खुद अपनेमें स्वयं परिणम रहे, को यह जोव परिणमा रहा या खुद कुछ भी नहीं परिणम रहा। प्रारम्भ से अन्त तक भी केवल जीव ही जीव परिणमा रहा। क्या यह स्थिति है? यदि कहा जाय कि हाँ है यह स्थिति कि कर्म द्रव्य कर्मरूप नहीं परिणम रहा, जीव ही परिणमा रहा, ऐसा जगत में कहीं भी नहीं हो सकता कि जो स्वयं न परिणमें उसे कोई परिणमा दे। न परिणमते को कोई भी दूसरा परिणमा नहीं सकता और

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अगर स्वयं परिणम रहा है तो देखो यह स्वरूप वस्तु स्वभाव, प्रकृति वह परिणम रहा है तो अकेला ही तो परिणम रहा है कर्मरूप। कुम्हारके व्यापारका निमित्त पाकर मिट्टी घड़ा रूप बन रही, पर यह तो बताये कोई कि घड़ा रूप बन रही मिट्टी ही कुम्हार द्वारा की जा रही है या घड़े रूप मिट्टी परिणम ही नहीं रही और कुम्हारने परिणमा दिया, इसके मायने है कि कुम्हार ही घड़ा बन गया, मगर ऐसा तो नहीं होता। स्वयं परिणमते हैं समस्त पदार्थ, कर्म भी स्वयं परिणमा।

६२३—परिणतिमें परापेक्षताका अभाव—

निमित्त होने पर भी परिणमा तो जरूर यह कर्मरूप, मगर जो परिणमनकी बात है भीतरमें सो उन परिणमनमें अब यह दूसरेकी अपेक्षा नहीं रखता। ध्यानसे सुननेकी बात है। तबलाको पुरुषने बजाया, हाथका ठोकर मारा तो उससे जो शब्द निकल रहे हैं तबलेसे तो इस मृदंगके बाधक हाथका निमित्त पाकर हो तो रहा है और उस हाथका सन्निधान बन गया फिर भी जो आवाजरूप परिणम रहा है भिद भिद रूप, उस स्थितिमें जब वह रूप परिणम रहा तो उस परिणमनमें तो वह अपेक्षा नहीं रखता कि मैं तो किसी दूसरेसे मिलकर यह आवाज निकालूंगा, आवाज वहाँ स्वयं ही निकलती रहती, ऐसे ही जगतमें सर्वत्र निमित्तनैमित्तिक भाव है और वस्तु स्वातंत्र्य भी अमिट है, कोई वस्तु किसी दूसरेका परिणमन नहीं करता, तो यहां पुद्गलमें ऐसी परिणमनने की शक्ति स्वयमेव है। जब परिणमने की शक्ति वहां है तो उपादान तथा जीवने कर्ममें कुछ किया तो नहीं। यह तो उस समय अपने शुभ और अशुभ भावोंको ही करने वाला है, यह बात कही जा रही है निमित्तनैमित्तिक घटनामें, पर जो और व्यवहारमें कारण माने जाते हैं वहाँकी बात नहीं कही जा रही, अन्य कारण तो उपचारित कारण हैं, जो आश्रयभूत कारण है वे वास्तविक कारण नहीं हैं किन्तु उपयोग उनमें फसे तो वे कारण बनते हैं, उपयोग उनमें न फसे तो वे कारण नहीं बनते। यह बात है आश्रयभूत कारणकी जैसे किसी नौकर पर क्रोध आया, किसी निन्दक पर क्रोध आया तो उस निन्दक या नौकरने क्रोध नहीं उत्पन्न किया, वे कोई भी क्रोधके निमित्त नहीं है, क्रोधका निमित्त तो क्रोध प्रकृतिका उदय है, अन्य सब जो भी बाहरी चीजें है उनमें उपयोग फसाया, विकल्प लगाया तो हमारा क्रोध व्यक्त हो गया। ये आश्रयभूत कारण हैं, ये उपचारसे कहे जाते हैं, इनमें उपयोग लगाया तो उनमें कारणपनेका आरोप किया जायगा पर क्रोध प्रकृतिमें आरोप और उपचारकी बात नहीं आती। वह तो ऐसा निमित्त कारण है कि जैसे आगपर कागज गिरा तो जल गया, निमित्तनैमित्तिक भाव है। हां तीसरा जो कारण है आश्रयभूत, वह जीवके प्रसंगमें ही कारण होता है। अजीव और अजीवके प्रसंगमें कोई उपचारित कारण नहीं कहलाता।

६२४—आत्मस्वभावके आलंबनका प्रताप—

यह जीव जब अपनी सुध नहीं रखता, अज्ञानभावमें रहता है, तो यह कुछसे कुछ अपनेमें कल्पनायें बनाता और अपनेमें परिणाम हो रहा है, अगर दुःखोंसे छूटना है तो अपने इन इन्द्रिय और मनको काबूमें रखना होगा। अभी तक इन इन्द्रिय और मनको बेकाबू रखा इसीसे संसारमें दुःखी रहा, और इन्द्रियको नियंत्रित करें, मनको नियत्रित करे, कछ विवेक बनायें, ज्ञान प्रकाश रखें, अपनेको सही समझें, दूसरेको सही समझें, वहाँ ऐसा प्रकाश जगता कि दुःखका काम नहीं। देखो कोई भी जीव स्वयं स्वभावमें विरोधी नहीं है, सब ज्ञानस्वरूप वाले हैं, उनका स्वभाव ज्ञानमात्र है, ज्ञानकी वृत्तिके लिए ही उनकी सदा तैयारी रहा करती है, लेकिन कर्मका उदय ऐसा है कि उपयोग विकल्प रूप परिणमने लगा, नाना तरहकी कल्पनायें करने लगा। उन कल्पनाओंसे यह जीव परेशान है, दुःखी है, मगर अपने स्व-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

भावको निरखें, दूसरे मनुष्यों को देखकर उनमें उनके स्वभावको निरखें। कोई तुच्छ नहीं। जीव सब परमात्मस्वरूप हैं, यह तो सब कर्मलीला है, कर्मका एक नाटक है, जो इस तरहका अन्तर आ गया, और मनुष्य मनुष्य में अन्तर की कुछ बात तो किया। जीवोंमें देखिये कोई पशु हैं कोई कीट है कोई एकेन्द्रिय हैं, कोई राजा है, कोई देव है, यह जो अन्तर आया है तो इस सहज परमात्मप्रभुमें अन्तर नहीं है। यह सब एक प्रासंगिक अन्तर है। वह ज्ञानीपुरुष प्रासंगिक अन्तरको महत्त्व नहीं देता, वह तो अपने स्वभावकी दृष्टि करता है। सब जीवस्वभावतः स्वतंत्र हैं। "मैं वह हूं जो हैं भगवान, जो मैं हूं, वह हैं भगवान। अन्तर यही ऊपरी जाना वे विराग यहां राग वितान। यों निरख रहा ज्ञानी। भगवान का स्वरूप क्या? सहज ज्ञानस्वभावका सहज शुद्ध विकास मेरा स्वरूप क्या? सहज ज्ञानस्वभाव। विकास नहीं है यहाँ, पर सहज विशुद्ध, ज्ञानस्वभाव तो अमिट है, अनादिअनन्त है। उस ज्ञानस्वभावका आश्रय किए बिना जीवको मुक्तिका मार्ग नहीं मिल सकता। और जितना कथन है ग्रन्थों में वह सब इसीलिए है कि इस जीवमें अपने स्वभावकी सुध हो और यहाँ ही आग्रह बन जाय कि मैं ज्ञानस्वभाव मात्र हूं। मैं आनन्दधाम हूं। कष्ट, विकल्प, रागद्वेष इन झंझटों का यहाँ स्वभाव नहीं है, मैं तो अपने स्वभावरूप ही अपनेको मानूंगा। मैं और कुछ नहीं।

६२४—सहजस्वभावके सत्याग्रहमें विभावोंकी विध्वंसता—

अगर ईमानदारीसे, सच्चाईसे, दृढ़तासे निर्णयपूर्वक ऐसा अपनेको स्वीकार करलें कि मैं तो सहज चैतन्यस्वभाव मात्र हूं, बस यहाँ स्वभावविकास उमड़ने लगेगा और यह सब मलिनता आच्छादितता कर्मकी बातें ये सब दूर होती चली जायेंगी। यह ही तो एक काम करनेको इस जीवनमें पड़ा है दूसरा कुछ काम नहीं। बाकी तो सब यह विडम्बना है। एक समझ लीजिए झंझट। केवल एक गप्प कर लेना मात्र है। आज मनुष्य अनात्माकी होड़ मचा रहें हैं। कोई दुनियामें ऊँचा पद पानेकी होड़ कर रहा, कोई बड़ासे बड़ा धनी बननेकी होड़ कर रहा, कोई यहाँ वहाँकी बात सीख सीखकर एक बड़ा विद्वान बननेकी होड़ कर रहा, कोई किसी प्रकार अपना यश फैलानेकी होड़ कर रहा। कोई बड़े–बड़े ऊँचे राष्ट्रके अधिकारी तथा कोई संयुक्त राष्ट्रसंघके अधिकारी बननेकी होड़ कर रहा, लेकिन यह सब क्या है? जैसे—नींद खुली तो नींदमें देखा गया सपना खतम ऐसे ही मोहकी नींद खुली, आत्मका ज्ञान जगा तो ये सब बातें स्वप्नवत हो जाती हैं। ओहो—क्या क्या अज्ञान चेष्टायें की थी, वह सब अज्ञान चेष्टा है। मैं तो ज्ञानस्वरूप हूं। आज जाना, आज अनुभवा। यह मैं आनन्द धाम हूं। इसका किसी वस्तुसे कोई प्रयोजन नहीं। ऐसा यह ज्ञानी जब अपने ज्ञान प्रकाशमें लग रहा है तो इसको किसी भी प्रकारका कोई कष्ट न रहा। अपनेको आनन्दरूप अनुभव करें। ज्ञान जगनेपर पता पड़ता है कि वह सब मिथ्या था। श्रावकजन, मुनिजन कोई दोष लगने पर प्रतिक्रमण करते है, प्रायश्चित करते है और वहां कहते हैं कि मेरे पाप मिथ्या होवो। तो क्या कहने से मिथ्या हो जाते? क्या इस प्रकारकी रूचि से मिथ्या हो जाते, अथवा उसके एवज में बहुत बड़ा उपवास दंड योग धारण कर लिया, शरीरकी चेष्टा करली तो क्या उससे मिथ्या हो जाते? देखिये करना तो सब होता है मगर मिथ्या होते हैं दोष तो स्वभाव दृष्टि द्वारा। उस दोष का निराकरण है, तो स्वभाव दर्शन द्वारा। यह मैं विशुद्ध चैतन्यमात्र हूं, मेरे इस सत्त्व के कारण, पर पदार्थके संसर्गबिना मेरे में जो बात है वह मेरा स्वरूप है। मैं तो यह हूं। वह अपराध जो बन गया तो वह एक कर्मलीला थी, कर्मोदय था। हम उसका निमित्त पाकर उस प्रकारके विकल्प रूप बन गए पर वह सब एक विपरीत चेष्टा थी। विपरीत

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बुद्धिकी चेष्टा थी, वह सब मिथ्या होवो। अरे स्वभाव दृष्टि आयी तो विभाव परिणगति मिथ्यातो हो ही गई। मेरे उपयोगमें यह बात तो आ ही गई कि वह एक व्यर्थका झंझट बन गया। मैं तो यह ज्ञानस्वभाव मात्र हूं। तो दोषोंकी शुद्धि स्वभाव दृष्टि से होती है। दोषोंका निराकरण स्वभाव दृष्टि द्वारा होता है।

६२६—धर्मपालन के लिये मौलिक कृत्य—

धर्मपालनके लिए बस एक काम है। देखो दसों काम नहीं हैं धर्मपालन के लिए। इसने तो धर्मपालन के लिए सैकड़ों कःम बना रखा है। तो उस सैकड़ों कामोंके एवजमें दस काम तो करने ही पड़ेगें। सैकड़ों काम किए जायेंगे मगर मूलमें स्वस्थता करने वाला है तो यह ज्ञानदीपक है। खाली लौ आग कहांसे प्रकाश बना देगी, जरा मुश्किल पड़ेगा। बाती रखेंगे, मिट्टी या टीनका कोई दीपकसा बनायेंगे, उसके अन्दर तैल होगा तो वह लौ जलेगी। तो लौ जलने जैसे कामके लिऐ ये सब बातें सहयोगी आयेगी, अंधकारको किसने मिटाया ? क्या मिट्टीके दीपक ने, क्या उस तैल ने, क्या उस रूईकी बाती ने उस अंधकारका विध्वंस किया ? तो उस जगमगाते हुए दीपकके लौ का सन्निधान पाकर पदार्थ अंधकार अवस्था तजकर प्रकाशरूपमें आये। ऐसे ही यहां देखें भव-भवके बाँधे हुए जो कर्म हैं, जो अनुभागमें आते, प्रबल होते उनका ऐसा अंधकार छाया चलती है, उस अंधकारका विध्वंस करने वाली सोधी साक्षात बस यह ज्ञान ज्योति है। इस ज्ञान ज्योतिको इस प्रकार उमगाने में, इस ज्ञान ज्योतिकी ऐसी बढ़वारी करनेमें चूंकि विषयकषाय इच्छाका भार लदा हुआ था उसे दूर करनेका तत्काल उपाय शुभोपयोग था, शुभकर्म था, वह शुभ कार्य करना पड़ा और वहाँ किया जाना चाहिए, लेकिन वास्तविकता यह ही है कि इन कर्ममलोंका, इन विभावोंका साक्षात् विध्वंस करने वाला है तो ज्ञानमात्र अपने आपको चैतन्यस्वभाव मात्र हूँ, इस प्रकारकी आस्था होना, उसीमें रुचि प्रीति होना और भीतरमें ऐसा पौरुष होना कि मैं ज्ञाता दृष्टा मात्र ही रहूँ विकल्प न करूँ। विकल्प व्यर्थके हैं।

६२७— अध्यवसान भावका मिथ्यापन—

इसी ग्रन्थमें बंधाधिकारमें बताया कि तुम किसीको सुखी होनेके लिए कितना ही सोचो, अरे जब उसके पापका उदय है तो क्या वह सुखी हो जायगा ? आपके सुखी करनेकी ही चेष्टा उसके दुःख का कारण बनेगी। आप सोच रहे हैं कि फलाने हमारे मित्र आये हैं, मैं इन्हें खूब खिला पिला दूं। आपको उसके प्रति बड़ा प्रेम उमड़ रहा जिससे आप अनेक प्रकारके व्यंजन बनवाकर उसे खूब जबरदस्ती करके खिला दें तो उससे ही वह बड़ा कष्ट पा जाये। आप किसीके भलेकी कही चेष्टा करें मगर उसका उदय खोटा है तो आपकी चेष्टा उसके दुःखका कारण बन जाती है, तो आपके अध्यवसानने किसीको सुखी कर पाया क्या ? वे अपने कर्मोदयके अनुसार सुखी दुःखी होते हैं। मैं किसीको सुखी दुःखी नहीं बना सकता। मेरे सुखका निमित्त तो साताका उदय है।

६२८— निमित्त और आश्रयभूत कारणके अन्तरकी समझ बिना उपदेशकी विड़म्बना—

यहाँ यह बात बहुत ध्यानमें रखना चाहिए कि जो निमित्तको कुछ भी नहीं मान सकता है तो क्या गल्ती हो गई जो ऐसी बुद्धि बन गई। हमारे विकारमें दो प्रकारके कारण हाजिर होते हैं एक तो निमित्त कारण और दूसरा आश्रयभूत कारण ये बाहरी पदार्थ हैं और निमित्त कारण कर्मोदय है। अब ये बाहरी जो कारण हैं इनको कारण कह रहे हैं, इनको निमित्त कह देते हैं, लेकिन ये वास्तवमें निमित्त हैं ही नहीं। मैं इनमें उपयोग दूं तो मेरे रागद्वेषके कारण बन जाते हैं। तो चूंकि यहां कारणपना न रहा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

यहां झूठा कारणपना रहा, हमने बनाया तो कारण रहा एक जगह ऐसा दिखे तो वही बात निमित्त है उसमें भी कहने लगे कि भाई ये निमित्त भी ऐसे ही हैं कि हम राग करें तो ये निमित्त कहलाते हैं और राग न रहे तो निमित्त नहीं कहलाते। अरे ये निमित्त कारण हैं, इनका प्रतिविम्ब होता है यहाँ और उसके सम्बन्धमें यह उपयोग विकल्परूप परिणमने लगता है। हाँ इतना वश तो है संज्ञी पञ्चेन्द्रिय सम्यग्दृष्टिको कि वह इस समय अपने उपयोगको ज्ञानस्वभावमें ले जाय तो वह अव्यक्त विकार रहेगा, व्यक्त विकार नहीं हो सकता, निमित्तनैमित्तिक योगका परिचय कर्तृत्व समझनेके लिए नहीं कराया जाता किन्तु उससे हटनेके लिए। यह मैं नहीं हूं, नैमित्तिक है, हेय है, परभाव है, इससे मुझे कोई प्रयोजन नहीं। तो स्वभावमें लगनेकी धुन बने तो इस तरह विभावोंसे हटकर स्वभावमें रुचि करें, यहीहमारे कल्याणका मार्ग है।

स्थितेति जीवस्य निरन्तराया, स्वभावभूता परिणाम शक्तिः।
तस्यां स्थितायां स करोति भावं यं स्वस्य तस्यैव भवेत्सकर्ता "६५"

६२९ जीवका परिणमन स्वभावत्व—

इससे ऊपरके छंदमें कहा गया था कि पुद्गल द्रव्य स्वयं परिणमन स्वभाव वाला है और वे कार्माण वर्गणायें याने जो परमाणु पुञ्ज कर्मरूप बनता है उस स्कंधमें स्वयं कर्मरूप परिणमनेकी शक्ति है, तब ही तो जीवके रागद्वेष भावका निमित्त पाकर वे कार्माण वर्गणायें कर्मरूप बन जाती हैं. सो देखो निमित्त मात्रपना तो है जीवने कर्मके होनेमें, मगर जीवकर्मको, कार्माण स्कंधको कर्मरूप नहीं बनाता। एक पदार्थ किसी दूसरे पदार्थ रूप नहीं बन सकता। हाँ निमित्तमात्र है जीवके विभाव, सो कर्मरूप परिणमनेकी शक्ति है तब ये कर्म उस निमित्तको पाकर कर्मरूप बन जाते हैं, वें खुद परिणम रहे हैं कर्मरूप उसे जीव क्या करेगा? जीवके भाव तो एक निमित्त मात्र हैं सो कल के छंदमें यह बात स्पष्ट की गई थी कि जीव पुद्गल कर्मको नहीं करता। अब आज वह बतला रहे हैं कि जीवमें जो रागद्वेष भाव जगते हैं उनको कर्म कर देता होगा? क्योंकि जीव तो स्वयं चैतन्यस्वरूप है, वह तो कुछ परिणमता नहीं है, ब्रह्माद्वैतवादी पुरुषाद्वैतवादी ऐसा मँतव्य रखते हैं कि जीव अथवा कहो आत्मा या ब्रह्माद्वैत ये परिणमा नहीं करते। यह तो केवल चैतन्यस्वरूप मात्र है, तो ऐसी जिज्ञासा रखने वाला हो तो समझ लो कि उसकी शंकाका समाधान है कर्मजीवको रागद्वेषरूप नहीं परिणमा सकता किन्तु जीवमें स्वयं रागद्वेषादिक रूपसे परिणमनेका सामर्थ्य है। देखो जितने भी पदार्थ हैं सभी पदार्थ परिणमनेका स्वभाव रखते हैं। अगर परिणमे नहीं कोई तो वह सत् ही नहीं है, जो सत् है वह नियमसे निरन्तर परिणमता ही रहेगा। जीव सत है या असत। यदि असत् है तो उसके विषयमें कुछ कहना ही व्यर्थ है, असत्में कुछ बात होती ही नहीं। सत्में कुछ अटका ही नहीं। जीव सत् है और सत् है तो नियमसे उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्त है।

६३० उदाहरणपूर्वक जीवके परिणामित्वका समर्थन—

जैसे दर्पण है, उसके सामने रख दिया मानो तिरंगा तो अब दर्पणमें भी वह तिरंगा प्रतिविम्ब बन रहा। अब यह बनलावो कि उस तिरंगाके प्रतिविम्बको क्या उस तिरंगे झंडेने रख दिया, निमित्त-नैमित्तिक भावके तथ्यसे लोग बढ़कर कह तो देते हैं ऐसा कि इस दर्पणके प्रतिविम्बको, इस तिरंगेने कर दिया, मगर तिरंगा झंडा जहा रखा है वह वहां ही है, उसका रूप रस, गंध, स्पर्श, आकार, सब कुछ वहाँ ही रहेगा, वहाँसे बाहर नहीं जा सकता। तो जब उसका रंगरूप आकार कुछ भी उससे बाहर नहीं गया तो कैसे कहा जा सकेगा कि इस तिरंगेने दर्पणमें प्रतिविम्ब कर दिया उस तिरंगे झंडेका कोई भी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अंश दर्पणमें आया नहीं, तब तो क्या गया ? उस दर्पणमें खुद इस प्रकारसे परिणमनेकी शक्ति है, क्योंकि वह स्वच्छ है, स्वच्छ पदार्थ स्वच्छ रूप परिणम सकता है और स्वच्छताके विकार रूप परिणम सकता है, तो सामने उस तिरंगेका निमित्त पाकर यह दर्पण स्वयं अपनी कलासे, अपनी परिणतिसे उस तिरंगे प्रतिविम्ब रूप परिणम गया। तो उस दर्पणमें परिणमनेका सामर्थ्य है तब ही तो परिणम गया, निमित्त अवश्य है वह, पर वह वस्त्र मात्र निमित्त है, उसने आकर दर्पणमें कुछ किया हो सो बात नहीं और साथ ही यह भी है कि अगर उस तिरंगेका सन्निधान न होता तो कभी यह प्रतिविम्ब बन नहीं सकता। निमित्त सन्निधान बिना विकार कभी हो ही नहीं सकता। यह त्रिकाल तथ्य बात है मगर निमित्त सन्निधान होने, निमित्त सापेक्षता होनेसे विकार बनने लगे तो विकार स्वभाव कहलाने लगेगा, क्योंकि वह तो निरपेक्ष बन गया, तो जो निरपेक्ष बनता वह स्वभाव है और जो स्वभाव है वह मिटे कैसे ? फिर तो बड़ा कठिन है। उसका निमित्तनैमित्तिक योग तो, इसका परिचय तो इस भव्य जीवको बड़ा मददगार बनाता है, किस बातके लिए ? विभावोंसे हटनेके लिए, ये हेय हैं, नैमित्तिक हैं, मेरे स्वभावकी वस्तु नहीं हैं, ऐसा हटनेके लिए नैमित्तिक को समझ लेना बहुत सहायक है। देखो उस निमित्तने किया नहीं कुछ और निमित्तके बिना हो न सके विभाव, सो हुआ किस तरह कि जैसे उस तिरंगे झंडेका निमित्त पाकर यह दर्पण उस अनुकूल प्रतिविम्बित हो गया, ऐसे ही कर्म विपाकका सन्निधान पाकर यह उपयोग भी क्रोधादिरूप, विकल्परूप परिणम गया। तो परिणमनेकी शक्ति तो पदार्थमें स्वयं है, अब मिल गया यह विपरीत संयोग और उस प्रकारकी योग्यता रख रहा यह जीव तो यह जीव उस कर्म-विपाकका प्रतिफलन पाकर यह क्रोधादिक रूपसे विकल्प रूपसे परिणम गया। तो बात यहाँ यह कही जा रही है कि जीवमें स्वयं परिणमनेका सामर्थ्य है।

६३०—जीवको कूटस्थ अपरिणामी माननेमें अनिष्ट प्रसंग—

जो दार्शनिक जीवको अपरिणामी कूटस्थ नित्य कहते हैं उनके यहाँ तो संसारका अभाव हो जायगा। है एक सिद्धान्त ऐसा जिनका मंतव्य है कि ब्रह्म हैं, आत्मा है, मगर वह विशुद्ध चैतन्यमात्र है उसमें परिणमन कुछ नहीं होता तो परिणमन किसमें हो रहा ? परिणमन कौन कर रहा ? तो उनके मंतव्यसे उत्तर है प्रकृति, जिसे कहते हैं कर्म। यहां शासनमें और शंकाकारके मंतव्यमें है उसका नाम प्रकृति। कर्म प्रकृति कहलो। देखो किसी भी दार्शनिकका मंतव्य मूढ़तापूर्ण नहीं होता, बात किसी भी तथ्य की होती है, यह तथ्य तो प्रभुने भी बताया है कि जो कर्म बाँधे थे उन कर्मोंका अनुराग खिला, उन कर्मोंमें क्रोध, मान, माया, लोभ उत्पन्न हुए क्योंकि वे अजीव है इस कारण कर्म उसका परिचय ज्ञान नहीं कर पाते अतएव उनका कोई विकल्प नहीं है, लेकिन हुआ तो वहीं है, अब वह यहां झलक गया। झलक लेकर यह जीव खुद परिणम गया क्रोधादिक रूपसे। बस ब्रह्माद्वैतवादमें कूटस्थ अपरिणामी आपत्ति है यह कि यह ब्रह्म, यह आत्मा यह रंच मात्र भी नहीं परिणमता। अगर यह आत्मा क्रोधादिक विकल्प रूपसे नहीं परिणमता तो फिर संसार किसका नाम रहा ? प्रकृतिका रहा। अगर यों कहा जाय तो बस झगड़ा खतम। प्रकृतिसे संसार है, प्रकृतिसे बंधन है तो प्रकृतिको ही मोक्ष चाहिए सो प्रकृति करे या न करे, कहीं जावो। मैं तो जीव हूं। मेरे तो संसार है ही नहीं, अब मुक्तिकी हमें क्या आवश्यकता रही ? तो जो ऐसा मानेंगे कि यह जीव खुद नहीं परिणमता है कषायरूप, विकल्परूप तब तो संसारका अभाव हो जायगा। अच्छा संसारका अभाव हो गया तो अब धर्मकी क्या जरूरत है खुद को ? कोई अटकी हो तो धर्म करें। यह तो निःसंसार है, मुक्तिकी तो उसको चाहना होती है कि जो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बहुत फसा हुआ हो, बंधनमें हो। जो कारागारमें हो उसको ही तो मुक्ति चाहिए। यह तो फँसा ही नहीं, शंकाकारके सिद्धान्तसे मुक्ति भी क्या, धर्म भी क्या, सब अजीव हो जायेंगे, फिर सब खतम हो जायेंगे।

६३१ पुद्गलकर्ममें जीवको परिणमा देनेका असामर्थ्य—

जीवको कूटस्थ अपरिणामी माननेमें अनिष्ट प्रसंग आया, इतना सुनकर शंकाकार घबड़ा अवश्य जाता है कि अब तो बात कुछ भी न बनी, तो यह कहता है कि भाई जीव तो क्रोधादिक रूपसे नहीं परिणमता, पर ये पुद्गल कर्म, ये क्रोधादिक कर्म इस जीवको क्रोधादिक रूपमें परिणमा देते हैं। भला है कोई ऐसा कि खुद तो परिणमे नहीं और दूसरा परिणमा दे। कुम्हारने घड़ा बनाया, मिट्टी तो घड़ा रूप परिणमे नहीं, मिट्टी तो इस हठ पर बनी रहे कि मैं तो बस ऐसी ही बिखरी हुई ऐसा ही ढेले रूप रहूंगी और कुम्हार उस घड़ेको बना दे, क्या यह सम्भव है ? कुम्हार तो निमित्त मात्र है, परिणम रही तो वह मिट्टी ही ना ? तो परिणमते हुएको ही तो परिणमानेमें निमित्त हो सकता, न परिणमते हुएको कोई परिणमा नहीं सकता। भले ही दाहिने हाथने इस बाँये हाथको मरोड़ दिया तो दिख रहा ऐसा, अब बाँया हाथ तो जरा मुड़े नहीं, वह तो वज्र को तरह एकदम कठोर बना रहे और बाँया हाथ मुड़ जाय यह तो नहीं हो सकता। बाँया हाथ मुड़ा तभी तो बायेंको मरोड़ दिया, स्वयं न परिणमते हुएको कोई नहीं परिणमा सकता। और, जो स्वयं परिणम रहा है वहाँ परको निमित्त भले ही कहो, मगर स्वयंमें जो निजमें परिणमन क्रिया है उसमें यह दूसरेकी अपेक्षा नहीं करता कि मैं अकेले कैसे मुड़ जाऊँ, कोई दूसरा भी संगमें मुड़ाये तो वह मुड़ जाय ऐसी अपेक्षा नहीं करता, वास्तविकता यह है कि जगतमें जितने भी पदार्थ हैं वे सभी पदार्थ परिणमनेको शक्ति रखते हैं और वे परिणमते रहते हैं, विकार रूप परिणमन तब होता है जब उपाधिका सन्निधान मिलता है, इस तरहसे यह जगत की प्रक्रिया चल रही है। तो यहां यह सिद्ध हुआ कि यह जीव स्वयं परिणमनका स्वभाव रखता है। अब हुआ क्या ? सो देख लो, कर्मने तो अपनेमें क्रोधादिक विकार बनाया। वे क्रोधादिक विकार भाव जीवके विकार जैसे न तकना, वह कर्मके ढंगका ही विकार है, जैसे यहाँ अनुभव करते हैं गुस्सा आदिकका उस प्रकारके अनुभव वाला न समझना कर्मको जैसे दर्पणमें जिस प्रकारका रंग आता है जिस ढंगका, किस ढंगका ? स्वच्छताके विकाररूप ढंगका। कहीं इस तरहका रंग नहीं पड़ा है दर्पणमें जैसे कि तिरंगे झंडेमें रंग पड़ा हुआ है इस तरहका रंग नहीं है दर्पणमें, पर उस रंगके अनुरूप दर्पणमें स्वच्छताके विकार जैसे ढंगका वर्ण है, इसमें भी कितना अन्तर आया। पुद्गल कर्म क्रोधादिक रूप परिणम गए और यहाँ झलक गए और यहाँ उपयोगमें उस उस प्रकारके ज्ञान विकल्प रूपसे परिणम गए, पर अमुक जीवमें जो क्रोधादिक आये वे आये कर्मके अनुभाग रूपके जैसे। दर्पणका दृष्टान्त बहुत दूर तक एक समझानेका बढ़िया उदाहरण है. परिणमे दर्पण मगर उसका ढंग उसकी तरह है। तिरंगे झंडेका जो रूप है वह उस झंडेको तरह है, उसका यहाँ कुछ भी नहीं, पर ऐसा ही निमित्तनैमित्तिक योग है कि यहाँ भी दर्पणमें वैसे रंग का आकार आ गया। भींटके आगे झंडा खड़ा किया, काठके आगे झंडा खड़ा किया, वहाँ तो नहीं बनता यह आकार काठमें, भींटमें, ऐसी स्वच्छता हो नहीं है कि वहाँ विकार बन सके। ये कर्म जहाँ होते हैं वहाँ देह भी तो मौजूद है। इस देहमें तो क्रोधादिक विकार नहीं आते। देहमें नहीं है ऐसी स्वच्छता उपयोगकी कि कर्मके अनुभागकी झलक देहमें आये और देह क्रोधादिक रूप परिणम जाय, ऐसी स्वच्छता, ऐसी योग्यता तो इस जीवमें है उस प्रकारका विकल्प बन गया, तो उस

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

समय यह जीव जब कि यहां कर्मलीला झलकी तो इसने उसको मान लिया मैं। तब यहाँ जिस प्रकारके भावोंको करता है, बस यह जीव इन भावों का करने वाला है, पुद्गल कर्म करने वाला नहीं।

६३२—अपने आपकी आस्थाके अनुकूल अपनी चेष्टायें—

जैसे आपने यहाँ बैठे-बैठे कोई ध्यान किया, ख्याल आ गया, अजायबघर कहीं देखा था तो एक बहुत मोटे दो मुँह वाले सापकी याद आ गई, वहाँ देख आये थे, और उसका बहुत याद आया उसमें एकाग्र मन लगा लिया तो उस साँपके ध्यानमें जो लग गया जीवतो ऐसा लग गया कि वह अपनेको साँप रूप अनुभव कर रहा, मैं मनुष्य हूं ऐसी सुध भूल गया, एक ही तरफ ऐसा चित्त रहा कि मैं मनुष्य हूं यह भी भूल गया, ऐसे ही जब यह जीव उस कर्मविपाककी झलक लेता है, अज्ञानवश ऐसा लगता है कि बस यही मैं हूं। मैं चेतन हूं यह भी भूल जाता है, मैं सहज चैतन्य स्वभाव मात्र हूं, यह सुध तो रहती नहीं और बस यह ही जैसा कि क्रोध, मान, माया, लोभ अनुभव किया वही बन जाता। तब ही तो जिस व्यक्तिको कोध होता है, मायने क्रोधका अनुभव चलता है उस समय कोई यह कहे कि भाई तुम बडी गल्ती पर हो तो वह कभी माननेको तैयार नहीं हो सकता। वह तो कहता कि सारा जहान गलत है, जो समझा रहे, मैं तो बिल्कुल ठीक कर रहा हूं। क्यों ऐसी बुद्धि हुई कि उसने उस कर्मरसमें आपा अनुभव किया। मैं तो यह हूं और जब कि कर्मलीला हुई, कर्मरस हुआ तो कर्मरसकी ही बात सही जचेगी। चेतनकी, कल्याणकी, हितकी, शान्तिकी बात उसे सही नहीं जच सकती, और, ऐसे जीव तो कभी-कभी भगवानको भी सोचते होंगे कि ये परिवार नहीं बसाये हैं, इनके पास धन नहीं है, ये कुछ नहीं हैं, ये तो बेचारे हैं, चतुर तो मैं हूँ, पर थोडी यह भी मनमें बात बसी है कि भगवान के हाथ जोडें मिल जाता हैं कुछ और मिलमी रहा ही है पुण्योदयसे तो वहाँ वह भी मानता है यह जीव कि चतुरतो मैं हूं जो भगवानसे मैंने काम निकाल लिया। भगवान में क्या रखा ? भगवान तो भोला है वह कहाँ चतुर, चतुरतो मैं हूं। क्यों ऐसी बुद्धि जगती कि जो कर्मरसकी झलक है उसमें इसने आपा मान लिया। मैं तो यह हूं, तो उसके अनुकूल चेष्टा हुई। जैसे जब यह चित्तमें समा जाता कि मैं इसका पिता हूं तो जब यह श्रद्धा बनायी आस्था बन गई, तब उस आस्थाके अनुरूप चेष्टा होने लगेगी। कैसी चेष्टा ? जिम्मेदारी अनुभव करना अपने आप बोझ महसूस करना आदिक, और और भी विकल्प, बस इस चेष्टामें लग जायगा और जब तक यह यह अनुभव कर रहा था कि मैं तो बेटा हूं उस समयकी चेष्टायें उस प्रकारके ज्ञानके अनुकूल थीं खेलकूद रहे, कुछ फिकर नहीं, जिम्मेदारी कुछ नहीं, उस तरह की चेष्टा है। जैसा रूप ज्ञानमें आता वैसी चेष्टा होने लगती हैं। जैसे किसी लडकीकी जब तक शादी नहीं होती तब तक उसका हर बातका ढंग न देखलो अटपट चलना, अटपट बोलना, अटपट ढंग से रहना और एक भाँवर पडी नहीं कि बस उसका सारा रंग ढंग बदल जाता है। उसकी चाल, उसकी बोली वाणी, उसका व्यवहार एकदम बदल जाता है। भला बताओ यह सब कला उसे एकदम किसने सिखा दिया ? अरे सिखाया किसी ने नहीं, जो जीव अपने स्वरूपमें जिस प्रकारकी आस्था बनाता हैं उस प्रकारका उसमें प्रभाव पडता है। तो जीवमें परिणमन शक्ति है और वह परिमणनशक्ति जब है तो जिस जिस कर्मविपाकका उदय हुआ, उस उदयक्षणमें जो प्रतिफलन हुआ, बस उसके अनुरूप ज्ञान विकल्पको तो यह करता है मगर यह न कर्मके बंधको करता है न कर्मके उदयको करता है न कर्मके सत्वको

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

करता है कर्म की किसी भी हालतको यह जीव नहीं करता। इसी प्रकार जीवकी किसी भी हालतको अशुभ भाव हो, शुभ भाव हो, किसी भी हालतको कर्म नहीं करता।

६३३—वस्तुस्वातंत्र्य और निमित्तनैमित्तिक योगके परिचयका प्रताप—

यह निमित्त नैमित्तिक योग और वस्तुस्वातंत्र्यों इन दोनों का सही परिचय करलेने वाला ज्ञानी है, अन्यथा कभी कोई लोग इस डर के मारे कि कहीं यथा वस्तुका स्वातंत्र्य खतम न हो वस्तुस्वातंत्र्य मिट न जाय, इस भाव से निमित्तनैमित्तिक योगका विरोध करते, खण्डन करते। यह है ही नहीं, इस हठ पर उतरते हैं तो यह है ज्ञानकी कमजोरी जो कोई पुरुष यह डर रखता है कि कहीं निमित्तनैमित्तिक योग ही न खतम हो जाय तो वस्तुस्वातंत्र्यका खण्डन करते है, विरोध करते हैं, यह भी उनकी कमजोरी है। ज्ञानीको तो इन विकार घटनाओंमें स्पष्ट दिख रहा है कि निमित्तनैमित्तिक योग बिना ये विकार हो नहीं सकते, तिस पर भी निमित्त का करतब रंचमात्र भी नहीं है, इस उपादानमें विकाररूप परिणमाने की। वस्तुस्वातंत्र्य निमित्तनैमित्तिक योग इनका सही परिचय मोक्ष मार्गमें प्रवेश कराता हैं, क्योंकि यह ही तो चाहिए ही कि इन विषय कषायोंके भावोंसे तो हट जायें और चैतन्यस्वभावमें रम जायें। यह ही तो है ना आवश्यक ? तो भला यह बतलावो कि इन विभावों से हट जाने के लिए कौन सा परिचय हमको प्रेरणा देता है। इतना तो हमने निश्चित कर लियाकि, ये रागद्वेष मोहादिक विभाव जीवके लिए अहितरूप हैं, इनसे हटना आवश्यक है, पर वह उपाय तो बताओ, वह परिचय तो कहो कि जिस परिचय द्वारा हम विभावों से हट जायें। वह परिचय यह निमित्तनैमित्तिक योगका परिचय है कि जिससे यह बोध होता यह विकार मैं नहीं। मैं तो ज्ञानके विकल्परूप ही परिणम रहा हूं। सो भी निमित्त नैमित्तिक योगवश मैं स्वयं क्रोध नहीं, मान नहीं, विषयकषाय नहीं, इच्छा नहीं। जितनी ये गड़बड़ियाँ जीवकी हो रही हैं, झलक रही हैं वे गड़बड़ी साक्षात् सीधे कर्ममें पड़ी हैं, जैसे जितना रंग इस दर्पणमें झलक रहा है उतना रंग साक्षात् सीधे सामने वाले कपड़ेमें पड़ा, ज्ञानीको यह बात स्पष्ट नजर आती है और इसी कारण वह अपने स्वभावको अत्यन्त विशुद्ध निरखता है, मैं शुद्ध हूँ, विशुद्ध हूँ। मेरेमें विकारका क्या काम ? हो गया यह ज्ञान विकल्प, सो यह निमित्तनैमित्तिक योगका प्रभाव है, मैं तो कष्टरहित, विकल्परहित, विकाररहित मात्र एक चैतन्यशक्ति हूँ। मैं जीव उतना ही हूं जितना कि चैतन्यशक्तिसे व्याप्त है, जिसका सार सर्वस्व, मात्र मैं उतना हूं।

६३४—जीवके सर्व भावोंकी ज्ञानपरिणामरूपता—

सब जगह देख लो मेरा सर्वत्र ज्ञान ही सब कुछ है। यह जीव बड़ा सुखी है, इसका अर्थ क्या है ? कहीं किसीने सुख देखा है क्या ? यदि देखा हो तो जरा मुझे भी कोई एक पाव सुख लाकर दे देवे ? (हँसी) कहीं सुख नामकी कोई वस्तु है क्या ? क्या है वह सुख ? सुख नाम उसका है कि जीवने जो ऐसा विचार बनाया ज्ञानका ऐसा परिणमन किया कि यह बड़ा इष्ट है, मेरेको बड़ा हितकारी है, मेरा बड़ा महत्व बढ़ाने वाला है, इत्यादि इस प्रकारका जो विचार बनाता और उस विचार के कारण जिस तरहका ज्ञान परिणमाया, उसमें जो अनुभव हुआ उसका नाम है सुख। सुख नामकी चीज कहीं अलग नहीं रखी है। दुःख भी क्या है ? जीवने जो विचार बनाया कि यह बड़ा अनिष्ट है, अहितकारी है, इससे तो मेरी बरबादी है, यह कब हट जाय, मुझको बड़ा कष्ट है या मेरे पास यह इष्ट न रह सका आदिक जो ज्ञानमें विकल्प किया उस ज्ञान विकल्पको ही दुःख समझा। सब कुछ लीला ज्ञानकी ही है, जिसको हम सुख कहते, दुःख कहते, पुण्य कहते, पाप कहते, मुक्त कहते, संसार कहते सब,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कुछ यह ज्ञानकी ही लीला है, जब यह ज्ञान उल्टी लीलामें चलता है, तब, इस जीवको संसारमें रुलना पड़ता है और जब यह ज्ञान सही सीधी लीलामें चलता है तब यह जीव शुद्ध आनन्द प्राप्त करता है, शुद्ध मार्गको प्राप्त करता है। बस ज्ञानमें ही तो कुछ करना है हमें। ज्ञानको हम किस तरह बनायें कि सुखी हो जायें और ज्ञान हम किस तरहका बनायें कि दुःखी हो जायें? यह निर्णय करें। अगर तुम दुःखी हों तो अपराध आपका यह है कि आपने ज्ञानको बेढंगे रूपसे परिणमा दिया और दूसरा कोई अपराध नहीं। न किसी पर द्रव्यका कुछ है, और जब कभी आप सुखी हैं तो उसका अर्थ है कि ज्ञानने कल्पित मौजके माने जानेके ढंगसे परिणमा दिया। अच्छा यह जीव मोक्ष मार्गमें लगे इसका अर्थ क्या है कि इस जीवने अपने ज्ञानको एकदम सबसे अलग होकर उपयोगमें अपने आपके स्वरूपमें मग्न होकर ज्ञानको बनाया। इसके मायने है कि यह मोक्ष मार्गमें चल रहा। यह जीव संसारमें घूम रहा, इसका अर्थ क्या? नाना विश्वको पर द्रव्यको यह मेरा है, भला है, यह ही सर्वस्व है ऐसा मार्ग बनाडाला और अपने ज्ञानकी सुध छोड़ दी और बाह्य पदार्थोंमें ही उपयोगको फसा डाला, उसे ही मान डाला कि मैं यह हूं, इसतरह उस बाह्य तत्त्वको मैं के रूपमें जाना, ज्ञानका जो ऐसा परिणमन चलाया इसीके मायने है संसारमें रुल रहा, संसारमें कष्ट पा रहा। कष्ट और आराम ये दो ज्ञानको छोड़कर अन्य कोई चीज नहीं है, अगर कष्ट है, दुःख है तो बाहरमें उपयोग छोड़ें, बाहरमें किसी पर क्रोध न रखें, बाहरमें किसीकी तृष्णा न करें, एक अपने ज्ञानकी दिशा मोड़ लें, बाह्यसे विरक्त होकर अपने स्वरूपके उन्मुख हो जायें बस अशांति समाप्त और शान्तिसे भेंट मिल जायेगी।

ज्ञानमय एव भावः कुतो भवेद् ज्ञानिनो न पुनरन्यः।
अज्ञानमयः सर्वः कुतोऽयमज्ञानिनो नान्यः "६६"

६३५ ज्ञानीके ज्ञानमय भाव व अज्ञानीके अज्ञानमय भाव होनेके कारणकी जिज्ञासा—

ज्ञानीके ज्ञानमय भाव होते हैं, ज्ञानी हो या अज्ञानी हो, दोनों उपयोग स्वरूप हैं, जीवहै और दोनोंमें उपयोगका निरन्तर परिणमन चलता है, अब ज्ञानीके तो उस उपयोग परिणमनमें ज्ञानमय भाव होता है और अज्ञानीके अज्ञानमय भाव होते हैं, क्या कारण है कि ज्ञानीके ज्ञानमय भाव होते हैं और क्या कारण है कि अज्ञानीके अज्ञानमय भाव होते हैं? तो इसका उत्तर आगे दिया जायगा, बहुत संक्षप में यह जानें कि यह आत्मा एक पदार्थ है और पदार्थका प्रति समय परिणमन कुछ न कुछ होता ही रहना है। परिणमन स्वभाव वाला है। अब यह आत्मा जिस भावको करता है उसका ही यह कर्ता कहा जाता है। अच्छा जिस आत्माको अपने आत्मस्वरूपका परिचय हुआ है मैं यह सहज चैतन्यमात्र हूं, इसके अतिरिक्त जो कुछ भी है वे सब मुझसे बाह्य भाव हैं, बाह्यसे मेरा लाभ नहीं। मेरे स्वरूपमें मेरी दृष्टि हो इससे ही लाभ है, जिसने स्वरूपतः परिचय पाया उसने स्व और परका विवेक बनाया। मैं यह हूं, इस जीवपर सबसे बड़ा भारी संकट है तो यह है कि यह जीव निज स्वरूपको पहिचानकर जो कर्म-२ है यह इस स्वरूप ही अपनेको मानता है, तो जैसे जीव देहको आत्मा मानता तो यह समझ कर तो नहीं मानता कि यह देह है, यह मैं हूं, देहका और मैं का दो तरहसे वह विचार नहीं करता, किन्तु देहमें ही मैं हूं इस रूपसे अनुभव करता। यह अज्ञानियोंका स्वरूप बतानेके लिये भाषा ज्ञानियोंकी है। अज्ञानी जीव इस प्रकार सोचता है कि जो देह है सो मैं हूं। यों तो ज्ञानी बतला रहे हैं कि अज्ञानी मोही जीव देहमें आत्मबुद्धि करते हैं, अज्ञानी को तो देहको देखकर यही पता है कि यह ही आत्मा है तो अज्ञानी कैसे समझ सकेगा कि, जो देह है सो मैं नहीं हूं, उसके लिए तो कल्पित वही एक है, कि यह देह है, मुझसे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

भिन्न है, मैं इसको "मैं" मान रहा हूं ऐसा चिन्तन तो नहीं चल सकता अज्ञानीके इससे भी बढ़कर बात यहाँ अन्तरमें है कि जो कर्मका अनुभाग उदयमें आया और उस कर्मानुभागका स्वच्छताके कारण इस योग्यता वाले जीवमें प्रतिफलन हुआ तो यह उस कर्मरस रूप ही अपनेको अनुभवता है। यह कर्मरस है, इसे "मैं" मानता हो ऐसा विश्लेषण नहीं है अज्ञानीके ज्ञानमें किन्तु कर्मरस रूप अपनेको अनुभव करता है, लेकिन जिसने सही परिचय जाना कि कर्मरस यह है, ज्ञानरस यह है, यही है सहज चैतन्यरस ऐसे ज्ञानरस और कर्मरसमें जिसने भेद पहिचाना उसको स्वपरका विवेक हुआ और उसको इस कर्मरससे अत्यन्त निराला जो आत्माका ज्ञानज्योति स्वरूप है उसको उसने स्वीकार किया। फिर अब इसका जो भी भाव बनेगा वह ज्ञानमय भाव बनेगा। जहाँ इस ज्ञानज्योतिको स्वीकार कर लिया कि मैं यह हूं,अब वहाँ जो भी वृत्ति बनेगी वह सब ज्ञानमय वृत्ति बनेगी। हाँ अज्ञानीके जिसने कि अन्तरमें यह भाव ही नहीं समझ पाया कि मैं ज्ञानरस मात्र हूँ, कर्मरस कतई नहीं हूँ, यह तो कर्मकी प्रकृति है, ऐसा जिसने भेद नहीं डाल पाया उसको स्वपरका विवेक न रहा और उस कर्मरससे निराला जो आत्मस्वरूप है उस की दृष्टि तो अत्यन्त अस्तको प्राप्त है, इसका तो नामनिशान भी नहीं है, वह तो कर्मरूप ही अपनेको अनुभवता है, जैसे यहां किसीको क्रोध आ जाय तो अपनेको क्रोधरूप ही अनुभव करता। क्रोध करते हुए खुदको मानता कि मैं यह हूँ, ऐसा हूँ, ठीक हूँ, चतुर हूँ, जो कर रहा हूँ सो ठीक कर रहा हूँ, उसको अपने आत्माका पृथक् रूपसे बोध नहीं होता इसलिए उसके अज्ञानमय भाव रहता। यह है ज्ञानी और अज्ञानीकी प्रकृति। तब क्या होता है? अज्ञानीके अज्ञानमय भाव होता है, मायने मैं क्रोध हूँ, मान हूँ, माया हूं, लोभ हूं, जो भीतरमें कषाय जगी, जो भीतरमें विपरीत आशय बना तन्मात्र अपनेको मानना यह ही अज्ञानीकी निशानी है।

६३६—अपनेमें अपने भावकी परखका अनुरोध—

अब परख लो—हम इन सब झंझटोंसे निराला ज्ञान ज्योतिमात्र अपनेको मान सके या नहीं। यथार्थ मान नहीं सके तो व्यर्थके कोलाहलोंसे क्या लाभ मिल जायगा? वह तो अनादि कालसे करते चले आये, उनसे कोई सिद्धि न मिली। अपनेको ज्ञानमात्र माननेसे ही कल्याण बनेगा, और रूप माननेसे कल्याण हो ही नहीं सकता। धन वैभव मकान महल, इज्जत पोजीशन आदिक की तृष्णा यह सब व्यर्थ है, क्या लाभ है इससे? थोड़े दिनोंको जीवन पाया, कुछ दिन बाद मरण हो जायगा और यह जो पर पदार्थोंमें आत्मत्वबुद्धि की है उससे इसको जो पाप बँध हुआ उससे यह संसारमें रुलना हुआ। बड़ी दयनीय स्थिति है इस जीवकी। इस दुर्बुद्धि को कौन समझाये? अरे जब अपनी दुर्बुद्धि बनायी तब किसीको समझाना क्या कार्यकारी हो सकता है? ज्ञानी आचार्य संत कितना समझा रहे कि हे आत्मन्! तू आनन्दधाम है, बाहरमें कुछ मत विचार, बाहरमें कोई चेष्टा न कर, तू अपनेमें आनन्दपा। तू अपने उस स्वरूपको सही समझ, पर समझ नहीं बनती। केवल पाठ पढ़ लेंगे सुवा बत्तीसी की तरह। जैसे कोई तोता यह पाठ प्रतिदिन रटता कि ऐ तोते तू पिंजड़ेसे निकलकर नलिनी पर न बैठना, नलिनी पर बैठ भी जावे तो दाने चुगनेकी कोशिश न करता, दाने भी चुगे तो तू उस नलिनीमें लटक कर न रह जाना, उसे छोड़कर उड़ जाना। यों पाठ तो इस तरह रोज रोज रटता मगर होता क्या कि मौका पाकर वह तोता पिंजड़ेसे बाहर उड़ जाता, नलिनी पर बैठता, दाने चुगता और उस नलिनीमें लटक भी जाता, और वहाँ भी पाठ वही का वही रटता रहता, क्रियायें भी सब वही की वही करता रहता। और उस नलिनीमें लटक कर वह यह भ्रम करता कि इस नलिनीने मुझे पकड़ लिया तो वह उसे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

छोड़ता भी नहीं। फल क्या होता कि वह तोता शिकारीके द्वारा पकड़ा जाता, तो ऐसे ही हम धर्मके नाम पर पाठ तो वही धर्मका रटते, पर क्रियायें अटपट करते। कभी दूकानमें घरमें किसी भी जगह यह भावना तो बनाओ कि मैं हूं क्या और मुझे क्या करना है जीवनमें, और, यह जीवन समाप्त हो जायगा तब फिर मेरा क्या हाल होगा। अरे यह मैं तो ज्ञानमात्र हूं, पहले भी यही था, आगे भी यही रहूँगा, वस्तुस्वरूप नहीं मिट सकता। मैं ज्ञानमात्र हूं ऐसा निर्णय तो कर लो, संसार संकटोंसे नियमसे पार हो वोगे। इन बाह्य पदार्थोंके प्रति तृष्णाका रंग न चढ़ाये। इनमें तृष्णा करके न इस लोकका लाभ है न परलोक का। कहा भी तो है चक्रवर्तिकी सम्पदा, इन्द्र सारिखे भोग। काकबीटसम गिनत हैं सम्यग्दृष्टि लोग। अर्थात् सम्यग्दृष्टि ज्ञानी पुरुषकी दृष्टिमें यह चक्रवर्ति की जैसी बड़ी सम्पदा और इन्द्रके सारिखे भोग काकबीटके समान रहते है, जीर्णतृणवत् असार है, जैसे कोई सड़ा गला तिनका है तो उससे आप कोई लाभ पा लेंगे क्या ? कुछ लाभ नहीं मिलता, ऐसे ही तीन लोक की सारी सम्पदासे भी लाभ नहीं मिलता इस जीवको। जो अरहंत और सिद्ध हुए उन्हें भी क्या लाभ मिला था इस बाहरी समागमसे कुछ भी तो लाभ न मिला था। उन्होंने साधक दशामें आत्म साधनाकी जिससे अनन्त आनन्द अनन्त ज्ञान पाया, पूर्ण समता प्रकट हो गई और यही निजमें है, स्वरूपमें है।

६३७ बाह्योपयोग की उपेक्षाका लाभ—

भैया, कौन सी ऐसी अटक लगी है बीचमें कि यह जीव खुदमें बसी हुई अनन्त सम्पदाको प्राप्त नहीं कर सकता, दिन भर बाह्य पदार्थोंको तृष्णामें लगा रहता और अन्तमें मरण होने पर खाली हाथ। अरे जो कुछ थोड़े समय बाद कुछ साथमें नहीं रहना है उसको यदि इस जीवनमें ही मान लो कि मेरे साथ तो कुछ है ही नहीं, मैं तो अकेला चैतन्यघन हूं, अंतस्तत्त्व हूं, प्रसंग समागममें भी ऐसा स्वत्व मान लेवें तो इस जीवका कल्याण प्रकट है। ये सब कलायें कब आती है ? जब थोड़ा यह प्रतिभास जग जाय कि मैं तो मात्र ज्ञानस्वरूप हूं, ये हड्डी, चाम, खून, माँस, आदिक मैं नहीं, देखो शरीर मैं नहीं, ऐसा एकदम सोचनेमें चित्त नहीं जमता और शरीरकी एक एक चीजको देखकर सोच लो-क्या यह मैं हड्डियों वाला हूं ? जैसे मरघटमें हड्डियां, पड़ी रहतीं, उनका कुछ महत्त्व नहीं, वैसा ही मैं भी हूं क्या ? अरे यह हड्डी माँस, चाम आदिक रूप वाला मैं नहीं, मैं तो एक ज्ञान ज्योतिर्मय तत्त्व हूं, आकाश अमूर्तिक है, पर अन्य अमूर्तिक पदार्थोंकी अपेक्षा आकाशकी समझ जरा जल्दी बन जाती है, काल द्रव्य भी अमूर्त, मगर उसकी समझ झट नहीं बनती। धर्म अधर्म द्रव्य भी अमूर्त, है, उनकी भी समझ झट नहीं बनती। बस मान लिया, युक्तिसे जान लिया, पर अन्य अमूर्तिक द्रव्योंमें से आकाशके बारेमें कुछ अधिक प्रकाश सा मिलता है। यह है आकाश, क्योंकि यहाँ बैठते हैं, उड़ती धूल सी दिखती है, काम चल रहा है, सब समझमें आ रहा है, तो जैसे आकाश अमूर्तिक, है फिर भी वास्तवमें हैं ना कोई चीज, उससे भी अधिक समझ बनना चाहिए जीवकी, क्योंकि यह जानने वाला खुद जीव है, खुद खुद की समझ बहुत बढ़िया बना सकता है, अमूर्त हूं और प्रतिभास प्रतिभास है ऐसा एक पदार्थ है जो देहमें सीमित है, असंख्यात प्रदेशी है, देहसे निराला है, यह शस्त्रोंसे छेदा नहीं जा सकता, आग इसे जला नहीं सकती, पानी इसे बहा नहीं सकता, वायु इसे उड़ा नहीं सकती, अमूर्त ज्ञानघन यह मैं आत्मतत्त्व हूं, ऐसा अपने बारेमें कभी निर्णय बनावें। और यह दृष्टि भी जगे कि यह मैं ज्ञानमय आत्मतत्त्व कर क्या पाता हूँ क्या नहीं कर पाता हूं ? केवल ज्ञानभाव, उपयोग, इससे की आगे यह कुछ कर सकता क्या ? मैं अपने स्वरूपसे बाहर कुछ नहीं कर सकता, वस्तुका स्वरूप ही ऐसा है कि किसी पर बस्तुसे किसीको कुछ मिलना नहीं

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

मेरेसे भी किसीको क्या लाभ मिलेगा ? मैं अपने आपके स्वक्षेत्रमें ही अपने आपको परिणमाता रहता हूं, इसके आगे मेरा कोई कार्य नहीं जो है, सो जानता है उसके ज्ञानमय परिणमन चलता है, उसमें आत्मा को कल्याण लाभ है ।।

६३८—अज्ञानियोंकी प्रत्यस्तमित स्वभाव दृष्टिता—

जो अज्ञानी है, जिसको स्वपरका कुछ विवेक नही जगा, कर्मरस रूप वह अपनेको मान रहा है याने भीतरमें यह स्वाद नहीं, आ पाता कि मैं ज्ञानमात्र हूं और ऐसा स्वाद लेता है कि मैं सुखी दुःखो मैं रँक राव मैं परिवार वाला, मैं धनी, मैं विद्वान, मैं कुटुम्ब वाला, मित्र वाला, पार्टी वाला, ऐसी इज्जत वाला, यों कितने ही रूपसे अपनेको अनुभव कर रहा, जितना कर्मजाल है उन रूपोंसे यह अज्ञानी जीव अनुभव कर रहा । तो ऐसे अविवेकसे अज्ञानसे आत्माकी ख्याति नहीं। वह तो अत्यन्त दूर हो गई, उस कालमें अस्त हो गई, अब इस अज्ञानीके जो भाव बनेगा वह अज्ञानमय भाव बनेगा । देखो बाहरमें अगर नम्रता करें, बाहरमें अगर किसी पर दया करें, बाहर किसीका उपकार करें, कुछ भो कार्य करें तो यह अज्ञानो विसने कर्मरस, ज्ञानरस दोनोंमें अन्तर नहीं जान पाया उसके सारे भाव अज्ञानमय हैं । अज्ञानमय भावमें रहता हुआ ही वह प्रेक्षार्ह होने पर भी दया कर रहा है । अज्ञानमय भावमें रहता हुआ ही उपकार कर रहा है, करें अच्छे काम, शुभ भाव भी कर रहा, पूजा, दान आदिक जो भी क्रियाय कर रहा, वे सब भदविज्ञानके अभावसे अज्ञानी अज्ञान भावसे रहते हुए कर रहा । तो यह सब करता हुआ भो परिणाम उसका अज्ञानमय पाता है और उसका असर भी होता है, जैसे-मैं देखो कितना इन दीन दुखियोंका उपकार कर रहा हूं, मैंने इतना अच्छा काम कर डाला, इससे दुनियामें मेरो महिमा बनेगी । मैं अच्छे कुलमें पैदा हुआ हूं, मेरा तो यह ही काम है कि मैं दया करूं, दान करूं, परोपकार करूं, देखिये—बाहरमें ये काम कुछ उचितसे दिख रहे मगर इसमें भी कर्मरसके प्रति एकता लगा ली है इससे अनन्तानुबंधी आदिक कर्म प्रकृनियोंका बंध होता है, देखो ज्ञानीका ज्ञानमय भाव चलता है और अज्ञानीका अज्ञानमय भाव चलता है । अज्ञानी तो कर्मबंधके अंधेरे में रहता और ज्ञानी पुरुष जिसने स्वपरका भेद डाल रखा है मैं तो ज्ञानज्योति मात्र हूं उसको अज्ञानका अंधेरा नहीं रहता । वह जानता है कि मैं क्रोध मान, माया, लोभ आदिक कषायों रूप नहीं, मैं ज्ञान-स्वरूप हूँ ऐसा जिसने भेद कर डाला उसके ज्ञानमय भाव होता है, चूंकि उसे अपने स्वरूपका पता नहीं इसलिए जो कर्मरस मिल रहा, रागद्वेषादिक भाव मिल रहे उनके साथ एकता कर रहा और अहंकार बना रहा । मैं यह हूँ देखो मैंने धर्मशाला बनवा दी, देखो मैंने इन लोगोंके उपकारके लिए अमुक चीज खोल दी, लेकिन स्वपर में एकत्व बुद्धि होनेसे उसके अहंकार जग रहा और कैसे अहंकार कि देखो यह ही मैं राग कर रहा हूं, मैं ठीक कर रहा हूं, यह मेरा काम है, इस प्रकारकी वृत्तियाँ बन रही है ऐसा यह मैं रोष करता हूं, मैं राग करता हूँ, इसतरहका जो एकत्वका अध्यवलग्न हुआ, अज्ञान भाव हुआ, अज्ञान बन गया यह रागद्वेषको अपने रूप बना लेता है । तो कर्मकृत उपद्रव, है तो कर्मकी परिणतियाँ, कर्ममें रहने वाला अनुभाग, पर यह झलका यहां और इसे अपना मान लिया । कैसी फैक्ट्री चल रही है यहां, कर्म हैं उदयमें आये, अनुभाग फूटा, झलकन हुई, उस रूप उपयोगको अपना माना । सारे ये काम शीघ्र शीघ्र चल रहे, इन कामोंमें बाधा ही नहीं आती, कभी कोई अन्तर ही नहीं आता । बहुत ठिकानेसे यह फैक्ट्री बहुत मजबूत चल रही । उसका फल है संसारमें परिभ्रमण ।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

६३९—ज्ञानीकी पावनता—

देखो ज्ञानकी जीवकी स्थिति कैसी पावन है, उसने यह भेद डाल रखा है, कि मैं ज्ञानज्योति स्वरूप हूं, कर्मरस नहीं हूँ। कर्मसे अत्यन्त निराला हूँ। ज्ञानस्वभाव उसकी दृष्टिमें आ रहा, उस ज्ञानको ही यह मैं हूं और कुछ मैं नहीं हूँ, अपने सहज ज्ञानस्वरूप को आत्मस्वरूप स्वीकार कर रहा तो 'स्व' की ही दृष्टि बना रहा। विकार ज्ञानमात्र अंतस्तत्व से, विकार भाव हैं ये मैं नहीं। मैं ज्ञानमात्र हूं। यहाँ लोगोंको जो यह संकोच बना रहता है कि भाई हमारा इतने लोगोंमें परिचय है, ये लोग हमको क्या कहेंगे। तो देखो हल्की पदवीमें यह संकोच वाली बात कुछ हद तक ठीक है। उस संकोच करने वालेके लिए लाभदायक है मगर परमार्थ दृष्टिसे यह संकोच इस आत्माको भ्रष्ट करने वाला है। जब यह संकोच रहता कि इतने लोगों के बीच यदि हम कोई गलत काम करेंगे तो हमारी बड़ी हँसी होगी, समाजके बीच हम अनादरके पात्र बनेंगे, इस दृष्टिसे तो वह संकोच करने वाली बात ठीक है मगर परमार्थ दृष्टिसे देखो तो वह आत्महितके मार्गमें बाधक है, क्योंकि उस संकोचके कारण उसका उपयोग खिचा-खिचा फिरेगा, वह बाह्य पदार्थोंके संग्रह विग्रहमें पड़ जायगा, जिससे वह अपने आत्मस्वरूपका लक्ष्य नहीं कर सकता। मैं ज्ञानमात्र हूँ ऐसा जिसका निर्णय है वह इस दृष्टिसे चलित नहीं होता। अगर लोग इस स्थितिमें हैं तो मुझे भी ऐसा कुछ करना चाहिए ऐसा भाव लोकदृष्टि देखकर उसके नहीं होता। मैं ज्ञानमात्र हूँ, ज्ञानमें ही मुझे दृढ़ होना है, ऐसा उसके अन्तरंग में पूरा निर्णय है। अब जो अपने ज्ञान-स्वरूपकी ओर ही धुन रख रहा, यहाँ ही अन्तर्मुख रहता है वह रागद्वेषके साथ कैसे एकमेव हो सकता? उससे तो अलग ही होगा। ज्ञानको ज्ञानरसमें डुबाकर रहेगा और कर्मरसको कर्मरसमें डुबाकर रहेगा।

६४०—ज्ञानमग्नताकी आवश्यकताका पूरण—

अन्दरमें एक यही ज्ञानमग्नताका काम करनेको पड़ा है, उसके साथ-साथ बाहरमें जितने भी संयम चारित्र आदिके काम किए जा रहे वे सब इसी कामके लिए हैं। उन सब कामोंको करते हुए भी उनको करनेका ध्येय नहीं है। यदि कर्मरससे हटकर ज्ञानरसमें आनेका ध्येय नहीं है तो ये सब बाहुरी क्रियाकाण्ड प्रवृत्ति मात्र रह जायेंगी। हाँ उसको जरा एक गुंजाइस है कि जल्दी ही उसको समझ आ जानेका अवसर मिल सकता। जैसे कोई धनिक कंजूस है और कोई बहुत गरीब आदमी है। सो यद्यपि दान ये दोंनो प्रकारके व्यक्ति नहीं दे सकते। यह बात तो दोंनोमें समान है मगर धनिक कंजूसके पास धन तो है। कभी उसकी दृष्टि पलट जाय, वह उदार बन जाय तो बड़ा दान भी दे सकता बड़ा त्याग भी कर सकता। ऐसे ही एक सम्पदृष्टि ज्ञानी पुरुष और एक मिथ्यादृष्टि पुरुषकी बात है। बाहरी प्रवृतियां तो दोनोंकी एक जैसी देखनेको मिल सकती, जैसे देवदर्शनकरना, स्वाध्याय करना, सत्संगमें बैठना गुरुजनोंकी सेवा करना आदि क्रियायें ज्ञानी और अज्ञानीकी दोनोंकी एक जैसी हैं, ऐसी स्थितिमें सत्य शान्तिका अनुभव न तो ज्ञानी पुरुष ही करता और न अज्ञानी करता, पर इतना अन्तर है कि ज्ञानी पुरुषकी दृष्टि कभी पलट जाय तो वह सत्यशान्तिका अनुभव कर सकता। जैसे कंजूस धनिकके इतना अवसर तो है कि यदि दृष्टि पलट जाय तो वह बड़ा भारी दान भी कर सकता ऐसे ही उसज्ञानी पुरुषको ऐसा अवसर तो है कि वह कभी सत्यशान्तिका अनुभव कर सकता।

६४१—ज्ञानीका अन्तःप्रतिबोध—

जब भीतरी भावको देखें तो ज्ञानीके तो ज्ञानमय भाव ही चल रहा। वह चाहे कभी थोड़ा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बिगड़ भी जाय, कभी कुछ क्रोध भी कर ले तो भी उसका ज्ञानमय भाव नहीं छूटता। अज्ञानी कभी बड़ा स्नेह भी कर ले, बड़ा हित भी जताये तो भी उसका अज्ञानगय भाव नहीं छूटता। जिसके अज्ञानमय भाव हैं उसके भीतरमें कर्मबंध होता, उसके भीतरमें आश्रव, बंध, सम्वर निर्जरा चलते जैसे कि उस की वर्तमान स्थिति है, ज्ञानमय भावसे सम्बर निर्जरा होती, हम आपका कर्तव्य एक मात्र यह है कि अपने आपके बारेमें अधिकाधिक चिन्तन करें कि मैं ज्ञानज्योति मात्र हूं, जिसमें विकार नहीं, केवल जानन मात्र स्वच्छता मात्र प्रतिभास मात्र मैं यह हूं, इस मुझको कोई जानता ही नहीं, कोई पहिचानने वाला ही नहीं, फिर इस मुझके बारेमें कोई अन्य क्या कह सकता है, जो कुछ कहता होगा वह अपनी कषायके अनुसार वचन प्रवृत्ति करता है और उसके लक्ष्यमें केवल यह देह पुद्गल ही रह रहा है, कोई यदि मुझे पहिचान जाय, जैसा कि मैं सहज चैतन्यस्वभाव मात्र हूं उसको पहचानने वाला तो खुद ज्ञानी बना, ज्ञाता दृष्टा बना, उससे अज्ञानमय प्रवृत्ति हो ही नहीं सकती। अज्ञानीजन उपद्रव करते हैं तो वे अज्ञानमय रख रहे हैं, उनका स्वरूप तो निरपराध है और कोई यदि ज्ञानी बन रहा है, उसके स्वरूपका जाननहार हो रहा है तो उसे उसके उपद्रव करनेकी भावना ही नहीं बन सकती। ज्ञानीको ऐसा अपने स्वरूपका निर्णय है और ज्ञानमय उसका भाव जगता है जिससे अहर्निश वह आनन्दरसका भोग करता है। नारकी जीव (सम्यग्दृष्टि नारकी) धन्य है कि वह नरकोंमें घोर वेदना सह रहा, खूब कुट पिट रहा, फिर भी उसकी दृष्टि रहती है अपने ज्ञानस्वभाव की, मैं यह हूँ। देखिये इतनी सी पहिचानका कितना बड़ा प्रभाव है, इतनी बड़ी वेदनाकी स्थितिमें रहकर भी वह अन्तःमें निराकुल है, क्योंकि वह अपनेको कृतार्थ समझ रहा, और, कोई बड़ा राजा हो, देव हो, जिसके कि कर्मरसमें एकता आयी है, वह विषय भोगोंके बड़े बड़े साधन पा रहा, बड़ी सम्पत्ति पा रहा, सब कुछ पाकर भी उसके अंतरंगमें आकुलता चलती है। ज्ञानीके ज्ञानमय भाव है, उससे वह सदा प्रसन्न है, अज्ञानीके अज्ञानमय भाव है इससे वह सदा अंदरमें व्यग्र रहता है। इसी बातको यहाँ पूंछा गया है इस छंदमें कि क्या कारण हैकि ज्ञानीके ज्ञानमय भाव ही होता, अज्ञानमय भाव क्यों नहीं होता और अज्ञानीके अज्ञानमय ही भाव होता, ज्ञानमय भाव क्यों नहीं होता।

ज्ञानिनो ज्ञाननिर्वृत्ताः सर्वेभावा भवन्ति हि।
सर्वेप्यज्ञाननिर्वृताः भवन्त्यज्ञानिनस्तु ते "६७"

६४२ ज्ञानीके ज्ञानमय भाव व अज्ञानीके अज्ञानमय भाव होनेके कारणका विवरण—

ज्ञानीके जितने भी भाव होते हैं वे सब भाव ज्ञान द्वारा रचे हुए होते हैं और अज्ञानीके जितने भी भाव बनते हैं वे सब अज्ञान द्वारा रचे हुए बनते हैं। इससे पहलेके कलशमें यह प्रश्न किया गया था कि क्या कारण है कि ज्ञानीके ज्ञानमय भाव ही होते हैं और अज्ञानीके अज्ञानमय ही भाव होते हैं, ऐसा होनेका क्या कारण है? तो वह कारण यहां स्पष्ट किया जा रहा कि ज्ञानीके जितने भी भाव होंगे वे ज्ञानमय होंगे और अज्ञानीके जितने भी भाव बनेंगे वे अज्ञानमय बनेंगे। ज्ञानमय भावसे ज्ञानमय ही बनता है और अज्ञानमय भावसे अज्ञानमय ही बनता है, मिट्टीसे मिट्टीके ही घड़े बनेंगे, कहीं लोहे या सोनेके तो न बन जायेंगे, लोहेसे जो भी बनाया जायगा वह लोहामय ही तो बनेगा, अन्य रूप न बनेगा, जैसा उपादान है उस कारणकी तरह कार्य देखा जाता है, गेहूं बोनेसे गेहूं ही पैदा होंगे, चने न पैदा हो जायेंगे, या चने बोनेसे चने ही पैदा होंगे, गेहूं न पैदा हो जायेंगे। तो जो जीव अज्ञानी है, अपने ज्ञानस्वरूपका जिन्होंने परिचय नहीं किया और जो कर्मोंका आक्रमण है, कर्मानुभागका प्रतिफलन है उसमेंही

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आया अनुभव किया उनकी जो अन्तर्बाह्य चेष्टायें होती वे तो अज्ञानभावके अनुरूप होती है, और, देखो कर्मानुभागको जान नहीं पाता अज्ञानी कि यह कर्मरस है और कर्मरस रूप अपनेको अनुभव होता, बस यह ही तो अज्ञान है, जैसे अंधेरेमें मनुष्य चलता कि नहीं, बैठता कि नहीं, ऐसे ही जब कर्मका अनुभाग प्रतिफलन है तो यहाँ अंधेरा ही है पूरा. मगर ज्ञानविकल्प बन ही रहा है, जैसा कर्मानुभाग है उस रूप अपनेको मानता और अपनी चेष्टा कर रहा है, ज्ञानीने जाना कि मैं केवल ज्ञानमात्र हूं, यह कर्मानुभाग, ये कर्मके विपाक इनसे मैं अत्यन्त जुदा हूँ, स्वयं सही एक चैतन्य मात्र हूं, ऐसा जिसने भेदविज्ञान किया, भीतरमें जिसकी ऐसी समझ बन गई बताओ वह कितना बड़ा है ? एक राजा बराबर होगा क्या ? नारायण बराबर है क्या ? चक्रवर्ती बराबर है क्या ? अरे यह तो ज्ञानियोंके बराबर है । ज्ञानानन्दके समक्ष ये तो सब छोटी बात हैं, तीनों लोककी विभूति भी सामने आ जाय तो वह आत्माको क्या लाभ देती ?

६४३ दुर्लभ मानव जीवनका सदुपयोग करनेका संदेश—

देखिये बड़ा दुर्लभ यह मनुष्य जन्म मिला, जिसको बड़े बड़े देवेन्द्र भी तरसते हैं, जिसके बिना संयमकी सिद्धि नहीं बनती, ऐसा दुर्लभ मानव जीवन मिला, और देखो इस अनन्त कालमें असंख्याते परिवर्तनके बाद कोई समय मिलता है कि यह जीव त्रस बने और उसकी भी अवधि ज्यादहसे ज्यादह कुछ अधिक दो हजार सागर की है और उसमें भी मनुष्य होना कितना दुर्लभ, और मनुष्य बन गए, अब यहां मूढ़ताकी, दुराग्रह किया, हठ रखा याने इन्द्रिय और मनके विषयभूत साधनोंमें ही प्रीति रही तो यह नरजन्म पाना बिल्कुल बेकार है ? क्यों पाया ? खाने पीनेका सुख क्यों पशुओंको नहीं है ? यदि आप कहें कि पशुओंको क्या सुख, वे तो रूखी सूखी घास खाते हैं, हम लोग तो लड्डू रसगुल्ले खाते, तो भाई जो सुख आप लोग रसगुल्ले खाकर मानते वैसा सुख वे पशु हरी घास खाकर मानते । जितना हापड़ धूपड़ आप रसगुल्ले खानेमें मचाते उतनी हापड़ धूपड़ वे पशु हरी घास खाकर मचाते । अब बताओ कौन सी कमी है पशुओंमें इन मनुष्योंसे, जो धर्महीन पुरुष हैं, उनकी अपेक्षा कौन सी कमी है पशुओंमें जिससे मनुष्योंको पशुओंसे बड़ा कहा जाय ? मनुष्य जैसी नींद लेते वैसी नींद पशु भी लेते, बल्कि मनुष्योंको तो सोते हुएमें भी शल्य बनी रहा करती है, पशुओंमें वैसी शल्य नहीं होती जैसी कि मनुष्यों में । मनुष्योंको तो मारे शल्यके कभी कभी रात भर नींद नहीं आती । उन्हें नींद आनेके लिए डाक्टरसे इलाज कराना पड़ता है, और, पशुओंको देखो उन्हें कैसी प्राकृतिक मजेकी नींद आती है, उन की मुद्रा देखो, कैसे ढंगसे सोते हैं, कौन सी बात है ऐसी कि मनुष्य बड़ा पशुओंसे कहलाये ? आप कहेंगे कि वे तो जानवर कहलाते और हम लोग मनुष्य कहलाते, अच्छा तो इस नामकी अपेक्षा ही देख लो जानवर नाम अच्छा है कि मनुष्य तो? मनुष्य उसे कहते कि जिसके मन हो और जानवर, उसे कहते—जो जाननेमें श्रेष्ठ हो, ज्ञानमें श्रेष्ठ हो, तो इस शब्दकी अपेक्षासे भी पशु बड़े कहलाये । देखो पशुका अर्थभी श्यति इति पशुः दृष्टाको पशु कहते और, बात बताओ—किस बातसे यह मनुष्य इन पशुओंसे ऊँचा हैं, काम विषयकी बात ले लो । जैसा कल्पित मौज ये मनुष्य मानते उससे कम मौज ये पशु नहीं मानते । विषयोंके सेवनमें जैसा उत्साह रखते वैसा पशु भी रखते, तो किसी बातमें मनुष्य ऊँचा नहीं इन पशुओं से, हां सिर्फ एक बातमें ऊँचा है । किसमें ? धर्म में ।

६४४ धर्मपालनसे ही मनुष्योंकी श्रेष्ठता—

अतः धर्मपालन करके मनुष्य जीवनका सदुपयोग करो अगर मनुष्यमें धर्म न रहे तो यह पशुओं

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

भी हल्का रहा, ऊँचा नहीं। पशुओंका आहार अच्छा है मनुष्योंका अच्छा नहीं। पशुओंका तो अगर पेट भर जाय तो उनके सामने कुछ भी बढ़िया चीज रख दी जाय तो वे उसे देखेंगे भी नहीं, उसको सूघेंगे भी नहीं और मनुष्यका पेट भर जाय और उसके सामनेमे कोई चाट वाला निकल जाय तो कुछ न कुछ चटपटी चाट खानेकी जगह निकल ही आती है। मनुष्यको खानेके विषयमें इतना धीर नहीं हो पाता जितना कि पशुओंके। देखिये यह सब बात धर्महीन मनुष्योंकी तुलनामें बात कह रहे। नींदमें देखो मनुष्योंको जब नींद आती है तो उस पर कोई पानीके छींट भी डाले, उसको हाथसे भी झकझोरे तो भी उसकी नींद झट नहीं खुलती और पशुओंको ऐसी नींद आती कि जरा सी आहट आयी कि झट आँखें खुल जाती। तो नींदमें यों समझो कि यह मनुष्य है राक्षस जैसा। ऐसा लोग कहते भी हैं। तो जैसी खराब नींद मनुष्यकी है वैसी पशुओंकी नहीं है। अब भय डर की बात देखे जितना अधिक भय मनुष्योंको है उतना पशुओंको नहीं। अगर कोई पशुओंके सामने लाठी कर दे तब तो वे थोड़ा सा भय मानते, मगर ये मनुष्य गद्दा तक्कोंमें पड़े पड़े भी भय किया करते। खूब आरामसे अपने रक्षित कमरेमें कोमल गद्दोंमें पड़े हैं, मित्र लोग भी पासमें बैठे हैं, पान बिड़ी सिगरेट खा पी रहे हैं, उस समय आपसमें वार्ता करते हुए बड़ा मौज मान रहे हैं। कष्टकी बात उस समय कोई नहीं मगर उस समय भी अन्दर ही अन्दर यह भय बनाये रहते कि कहीं अचानक कोई घटना न घट जाय, कहीं सरकार कोई ऐसे कानून न बना दे कि हमारा सब कुछ छिन जाय आदि, यों निरन्तर इन मनुष्योंको भय बना रहता। और, पशुओंको क्या शल्य ? क्या भय ? और बात देखो—काम भोग मैथून प्रसंगमें ये मनुष्य तो सालके १२ महीना रहा करते हैं, इनके बच्चे सभी महीनोंमें होते है पर इन पशुओंके तो सालके कुछ महीने नियत होते हैं। यह तो उसमें भी पशुओंसे गया बीता हो गया। तो कौनसी बड़ी बात है कि जिससे यह मनुष्य पशुओंसे अच्छा कहलाये ? बस एक धर्म ही ऐसी ऊँची चीज है कि जिसकी वजहसे यह मनुष्य पशुओंसे ऊँचा कहलाता।

६४५—धर्मपालनके उच्च अधिकारी मानवकी महनीयता—

इस धर्मकी अपेक्षासे ही तो यह मनुष्यभव इन देवेन्द्रोंसे भी महान है। अनेक लोग तो मेघ न बरषने पर इन्द्रदेवताकी उपासना करते हैं, उनके नाम यज्ञादि कार्य करते है, पर वे यह नहीं समझते मनुष्यभव इतना श्रेष्ठ है कि इसे देवेन्द्र भी तरसते। मनुष्यभवमें ही संयम धारण करके मुक्तिकी प्राप्ति की जा सकती। कितना उत्कृष्ट है यह मनुष्यभव, मगर इससे कोई लाभ नहीं लेते। अरे इतना ही विचार लो कि आज हम जिन्दा हैं, ऐसा भी तो हो सकता था कि अबसे १०—५ वर्ष पहले किसी ऐसी विपत्तिमें फसा था, रोगमें घिरा था, वहीं मर गए होते तो आजका यह पाया हुआ समागम फिर मेरे लिए कुछ भी तो न था, और मरे नहीं, जिन्दा हैं तो यह समझो कि इन संसारके बातोंके लिए नहीं जीवित हैं किन्तु धर्मधारणके लिए ही जीवित हैं। तो किसी प्रकार ऐसा स्वच्छ उपयोग बनावें कि धर्म सुहाये, सत्संग सुहाये. ज्ञान सुहाये, आपका तन, मन, धन वचन सब कुछ धर्मके लिए, ज्ञानके लिए, सत्संगके लिए समर्पित हो, न्योछावर हो। इतना साहस जग जाय बाकी दुनियामें बाहर कुछ भी नहीं है। मेरे लिए सब बेकार है, एक ज्ञानका वातावरण ही मेरे लिए शरण है अन्य कुछ मेरे लिए शरण नहीं। देखो अन्दरमें धुन उत्पन्न हो जाय तो कितना भला है, मैं आत्मा सबसे निराले ज्ञानमात्र अपने अंतस्तत्त्वका परिचय पा लूँ। यदि यह अपने अन्तस्तत्त्वका परिचय पा लेवे तो यही निर्णय पा लेगा कि सच्ची तृप्ति, वास्तविक संतोष, सही आनन्द, निराकुलता, पवित्रता बस ज्ञानमें ज्ञानस्वरूप ही है, इस

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

स्थितिमें हैं, इसका जिसने अनुभव पा लिया उसके लिए तीन लोकका वैभव क्या चीज ? जीर्णतृणवत् ।

६४६—ज्ञानद्वारा ज्ञानतत्त्वकी झलक होने पर लोकवैभवकी उपेक्षा, मुक्तिकी निकटता आदिकी सम्भावना—

मोहीजन, संसारीजन ऐसा सोचते हैं कि वैराग्यकी बात कहना तो कुछ पद्धति है वक्तव्य कहनेकी, अरे सब कोईतो धन वैभव इज्जत पोजीशन पक्षपार्टी आदिक नहीं पाता, हमने तो अपनी कलासे ये सब कुछ पाया है, ये केसे जीर्णवत् हम समझे, ऐसा मोहीजन सोचते हैं, अज्ञानीजन क्या जाने वह रहस्य ? ज्ञानी ही इस रहस्यको जान सकता है । जैसे जीर्ण तृणसे कोई लाभ नहीं ऐसे ही तीन लोकके वैभवसे इस आत्माको कोई लाभ नहीं । अपने ज्ञानस्वरूपको निरखें, इस ही ज्ञानस्वरूप में तृप्त रहें यह ही मेरी धुनमें रहें, अगर बोलना पड़े तो ऐसे ज्ञानकी रूचि रखने वाले इसही ज्ञानकी बात करने वाले इसही ज्ञानकी उपासनाका भाव रखनेवाले लोगोंसे बोल लिया अन्यसे बोलनेसे क्या प्रयोजन ? चिन्तनहो उसीका । तो इसही ज्ञानस्वभावके अभ्याससे इसकी पवित्रता बढती जायगी, कर्म कलंक दूर हटते जायेंगे, और बस वह परमपद बहुत ही जल्दी मिल जायगा । जिसने रास्ता पाया और रास्ते पर चलना शुरु किया उसको फिर इष्ट स्थान क्या दूर रहा ? जैसे लोग कहते हैं न वायदा कहता है कि तू चल मैं आया । जैसे चौमासातो दिवालीको खतम होता, अब नियम कर लिया दिवाली तकका एक जगह रुकनेका तो दिवालीका दिन निकल जानेमें कुछ देर लगती क्या ? वायदेका दिन निकल जाने वाला ही तो है । वायदे के बाद फिर उस समयमें कमीही तो आती हैं । तो ऐसे ही अगर कोई मुक्ति का वायदा करले कि मुझेतो मुक्ति पाना है, ऐसी स्थिति पाना हैं तो वायदा कहता है तू चल, मैं आया तू, अपनी उस गलीसे चल, उस ज्ञानके पथसे चल, उसी में रम, उसीकी धुन रख, स्वप्न मैं भी तू अन्य पदार्थोंका महत्त्व मत विचार । मोक्षका वायदा बिल्कुल पक्का है कि तू चल इस रास्ते से —मैं अभी आया । कोई बिलम्ब न लगेगा । "सांभर दूर सिमरिया नीरो" ऐसी ही एक कहावत है, और वह किस घटना पर हुई ? एक बार सिमरिया गांवके कुछ व्यापारी साभर गाँव मैं नमक खरीदने गए । फिर वहाँ से नमक खरीदकर अपने गाँवके लिए वापिस चले । कुछ ही दूर आये थे कि उनमें से एक व्यापारी पूँछ बैठा कि अभी आना सिमरिया गाँव कितनी दूर है ? तो उनमें से एक मुखिया बोला— साभर दूर सिमरिया नीरो । याने अब साभर गाँव दूर हो गया और सिमरिया गाँव पास आ गया ?———अरे कैसे यह बात कह रहें ? अभी तो कोई मील दो मील ही आये है साभर से अभी तो करीब ५०० मील दूर है तो फिर वह मुखिया बोला देखो जिसकी ओर मुख हो गया वह तो निकट आ गया। और जिसकी ओर पीठ हो गई वह दूर हो गया । तो ऐसा ही यहाँ समझिये कि जिस भव्य पुरुषका उपयोग आत्माकी ओर हुआ है, उपयोग मुख मोक्षमार्ग में चलते हुए मोक्ष की ओर हुआ हैं और पीठ संसारकी ओर हो गई है उसके लिए संसार अत्यन्त दूर हो गया और मुक्ति निकट हो गई । वैसे भी देखो जब चित्तमें किसी वस्तुका ध्यान रहता है वह चाहे कितनी ही दूर हो पर वह उसके लिए अत्यन्त निकट है । उसका जब उपयोग मैं बास हैं तो उपयोग मैं तो वह निकटही हो गया हैं और उसकी ओर दृष्टि होने से वह निकट होता चला जा रहा है, व्यवहार भी तो ऐसाही होता हैं अब वह निकट होता जा रहा है, तो जिस पुरुषने मुक्तिका वायदा किया, मैं मोक्ष जाऊंगा तो वायदा करते ही वह अपने उद्देश्य में चल पड़ा । चलनेकी देर है बस

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

मुक्ति निकट आती जा रही इसको कहते हैं वायदेने कहा—तू चल मैं आया।

६४७—ज्ञानवृत्तिकी ही शक्यताका परिचय होनेपर संकटोंका पलायन व प्रलयन—

ज्ञानी पुरुष जिसने अपने अन्तः स्वरूपका अनुभव किया मैं ज्ञानमात्र हूं, ज्ञानके सिवाय अन्य कुछ नहीं है मेरा। आत्मा ज्ञानमात्र, मेरा सर्वस्व ज्ञानमात्र। इस समयमें भी जो कुछ कर रहा हूं वह सब ज्ञानका ही कार्य कर रहा हूं, बाह्य वस्तुसे तो मेरे जीवका सम्बंध नहीं। कितना विकट व्यामोह है इस जीवको कि है तो यह आनन्दका धाम, शान्तिका निधान, कष्टका जहाँ काम नहीं, लेकिन ऐसा आवरण छाया, ऐसी मोह मदिराको पान किया कि इस जीवको अपनी कुछ सुध बुध न रही। बाहरमें यह अपना उपयोग लगाता है। अगर बाहरी पदार्थोंमें उपयोग न लगाये और वहासे पीठ फेर ले और अपने स्वरूपकी ओर लगें तो मुक्ति एकदम पास ही है, किन्तु अज्ञानी जीव जो कुछ भी अपने अन्तःमें कर रहा वह सब अज्ञानभाव द्वारा रचित ही कार्य हो रहा। करना तो ज्ञान ही है ना? अब जो ज्ञान ज्ञानस्वरूप हो गया मायने विशुद्ध ज्ञानके परिचय वाला हो गया तो ऐसे ज्ञानसे अब जो भी कार्य होंगे वे सब ज्ञानमय ही कार्य होंगे? और, जिस पुरुषने अपने ज्ञानमें बाह्य भावोंको ही बसाया, कर्मविपाकको ही स्व माना, अपने आपकी सुध छोड़ दी उसके भी अज्ञानभाव है, अज्ञानसे रचा हुआ हैं। जो अज्ञानसे रचा हुआ भाव है, वह संसारका ही कारण होता है, उस जीवको शान्ति नहीं प्राप्त होती। तो भाई बोध यह करना है अपने जीवनमें कि अपनेको अपने स्वरूपका परिचय हो जाय, मैं केवल ज्ञान ज्योति मात्र हूँ, ज्ञानातिरिक्त मेरा कुछ नहीं। ज्ञानस्वरूपका ज्ञानरूपमें जब अपना अनुभव चलता है तो वहाँ कष्टका कोई काम नहीं।

६४८—ज्ञानीकी चेष्टा स्वपरहितके लिये एवं अज्ञानीकी चेष्टा स्वपर अहितके लिये—

देखो ज्ञानीकी जितनी चेष्टायें होती है स्वपर हितके लिए होती हैं, अज्ञानीकी जितनी चेष्टाये होती हैं वे स्वपर अहितके लिए होती हैं। चाहे किसीका कोई कितना ही प्यारा मित्र हो, क्या करेगा वह मित्र कि उसे व्यसनोंमें लगायगा, विषयोंके उपभोगमें लगायगा। जैसे वह सिनेमा अच्छा है, चलो देखने चले....यों मन चाहे विषयोंमें लगानेकी प्रवृत्ति करेगा और विषयोंका जो प्रसंग है वही अहित हैं। आतमके अहित विषय कषाय। उन विषय कषायोंमें जो लगाये वह कोई ज्ञानमय भाव तो नहीं है। अज्ञानीजन ज्ञानके रास्तेमें कैसे उमंग दिला सकते हैं। उन्हें खुद ही पता नहीं कि संसारके संकटोंसे छूटनेका मार्ग क्या है? तो इन बाहरी प्रसंगोंसे ही परिचित हैं, उन्हें इन बाहरी प्रसंगोंका ही अनुभव है अनादिसे। है नहीं अनुभव बाहरी प्रसंगोंका किन्तु जिस उपयोगमें बाहरके प्रसंग बस रहे हैं उस उपयोगका जो स्वाद है वहाँ तो कल्पनायें कर रहा है यह जीव कि मुझे इन बाहरी पदार्थोंसे आनन्द मिल रहा है। सो भाई इस संसारमें सबसे बड़ा संकट है तो अज्ञान संकट है जिस किसी भी प्रकार यह अज्ञान संकट है। जिस किसी भी प्रकार यह अज्ञान संकट मिटे तो यह जीवका सबसे बड़ा लाभ है। वह अज्ञान संकट कैसे मिटेगा? जब तक अपने आत्मामें स्वपरका विवेक नहीं जगता तब तक यह संकट मिट नहीं सकता। स्व मैं क्या हूं। मानते तो सब हैं कि मैं हूं, तो किस रूपमें वह मैं माना जा रहा है इस पर भी तो ध्यान करो। जो ज्ञानज्योतिमात्र आत्मतत्त्वको न मानकर अन्य किसी रुप ही अपनेको मानते—मैं ज्ञानी हूं, विद्वान हूं, जानकार हूँ---आदिक किसी भी अन्यरूप अपनेको माने तो वह सब अज्ञानभाव है, और इस अज्ञानमयभाव से यह जीव कभी निराकुल नहीं हो सकता। तो अज्ञानभावको छोड़ना है और ज्ञानभावमें आना है। इसी लिए तो निमित्तनैमित्तिकयोग

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ओर वस्तुस्वातंत्र्यका परिचय आवश्यक है ।

६४९—निमित्तनैमित्तिकयोग व वस्तुस्वातंत्र्यके परिचयसे संकटोंसे छुटकारा पानेकी सुगमता—

जहाँ यह जाना कि मेरी अपने आपमें बड़ी गड़बड़ी चल रही है कषायें जग रहीं, मलिनतायें बन रहीं, यह सब कर्म विपाक है, मेरे स्वरूपकी बात नहीं है । मैं तो सहज विशुद्ध चैतन्यमात्र हूँ । यह सब प्रकृतिकी लीला है और इस लीलामें इसका उपयोग फसता तो उसका विकल्प रूपसे परिणमन होता । बस यह ही तो संसार है, यह ही रुलनेकी बात है । तो यह विज्ञान करना है कि ज्ञानका काम तो मात्र इतना हैं कि जानन रहे, प्रतिभास रहे, बाकी इष्ट अनिष्ट आदिक जो भी कल्पनायें चल रही हैं वे सब कर्मरस हैं । मैं तो सबसे निराला ज्ञानरस मात्र आनन्दनिधान एक चैतन्यपिण्ड हूँ, ऐसी दृष्टि जगे, भेदविज्ञान बने तो कर्मरस ज्ञानरसको स्वीकार कर लेगा । जिसने ज्ञानरसको स्वीकार किया उसको मोह नहीं होता, क्षोभ नहीं होता । बाह्य प्रवृतियोको देखकर वह व्यग्र नहीं होता । बाहरी पदार्थोंमें जिसमें जो परिणमन होता हो, उनका द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव उनमें है । मेरा द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव मुझमें है, उनकी कोई चीज निकलकर मुझमें नहीं आ सकती और मेरी कोई चीज निकलकर नहीं जा सकती । यह वस्तुकास्वरूप हैं । किसी भी अन्य वस्तुका द्रव्य क्षेत्र, काल, भाव उसका उसमें है, किसी अन्य में नहीं पहुंचता । जो यहां व्यवहारमें कहते हैं कि इस पर मेरा असर आया तो इसका अर्थ यह है कि उस जीवने मेरे बारेमें उस तरहका विचार करके अपनेमें वैसा असर बना लिया है तो वह खुद उस ही वस्तुका असर । जो वस्तु परिणम रही, जिस वस्तुको उपयोगमें लेकर ऐसा असर बनाया जा रहा है उस वस्तु पर आरोप किया जाता है कि यह प्रभाव अमुक वस्तुका है । एकका दूसरे पर कभी कोई प्रभाव नहीं पड़ता । वस्तु स्वरूपको विचारो प्रत्येक पदार्थ अपने आपमें उत्पादव्यय करते हुए निरन्तर सतत् बने रहते हैं । सबकी ऐसी ही फैक्ट्री अपने आपमें चल रही है । फिर एक पदार्थका दूसरा क्या लगेगा । जब एकका दूसरा कुछ हैं नहीं तो फिर इतना आकर्षण, इतना अहंकार, इतना मोहन्धकार यह सब क्यों किया जा रहा है ? भाई इस कर्मरस से अलग होओ, निमित्तनैमित्तिक भावका परिचय होनेसे कर्मरससे अलग होनेमें बड़ी मदद मिलती है । जब कर्मरससे अपना उपयोग अलग किया तब लगना कहाँ है ? जरा वस्तुस्वरूपको ही देखलो । मैं अपने आपमें अपने सत्वके कारण कैसा हूं, उस शुद्ध अंतस्तत्वका परिचय करें, मैं ज्ञानमात्र हूं, सहज ज्ञानस्वरूप हूं, इस ज्ञान प्रकाशमात्र अपने आपका अनुभव करें, मैं ज्ञानमयभाव हूं । ज्ञानमयभावका सानुभाव ज्ञान होने पर जो भी परिणमन होगा वह सब ज्ञानसे रचा हुआ होगा, ज्ञानमय ही होगा । फिर इसके अन्दरमें कोई संकट नहीं आता । इस ही तत्वका अनुभव इस ही अंतस्तत्वका स्मरण नरक निगोद आदिककी घोर यातनाओं से बचा लेता है, उसे कभी कोई व्यग्रता नहीं होती, उसके सम्वर निर्जरा चलती है । तो भाई इस कर्मरससे भिन्न ज्ञानरसको स्वीकार करो यह मैं हूं, बस इस ही के फलमें समस्त संकटोंका निवारण हो जायगा ।

अज्ञान मयभावानामज्ञानी व्याप्य भूमिको ।
द्रव्य कर्मनिमित्तानां भावानामेति हेतुताम् "६८"

६५० शान्त हो सकनेकी विधिकी जिज्ञासा—

हम पर क्या बीत रही है और हम कैसे रहें तो शान्त हो सकें, इन दो बातोंकी जानकारी बहुत आवश्यक है, केवल कोई मनुष्य बाहरी बातोंमें ही हिसाब किताब लगाये—मेरे पास इतना वैभव, इतने मकान, इतना कुटुम्ब, इतनी इज्जत, सब कुछ मुझे प्राप्त है, ऐसा हिसाब लगाये और अपनेको

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सुखी समझे तो इससे पूरा नहीं पड़नेका । यह कितने दिनोंकी चाँदनी है, कितने दिनका जीवन है, कोई सोचे कि मरणके बाद हम ही न रहेंगे तो फिर उसकी चिन्ता क्या करना, सो भली प्रकार सोचो विश्व के बड़े-बड़े वैज्ञानिकोंसे भी निर्णय करा लो कि जो चीज मूलमें है वह कभी नष्ट हो सकती है क्या ? अणु हो, कुछ भी चीज हो, मूलमें जो द्रव्य है, जिसकी अवस्थायें बन रही हैं वह मूलकी चीज क्या कभी नष्ट हो सकती है ? विश्वके किसी भी वैज्ञानिकसे पूछो । इन अवस्थाओंका परिवर्तन तो चलेगा और अवस्थामें चलना उस पदार्थका स्वभाव है, चलती रहे अवस्थायें पर मूल वस्तु नष्ट हो जायगी क्या ? जो भी सत् है वह कभी नष्ट नहीं होता, और दार्शनिकों की पूछो तो जैन सिद्धान्त तो स्पष्ट कहता है कि उत्पादव्यय ध्रौव्य युक्तं सत् अर्थात् जो भी चीज है वह उत्पादव्यय ध्रौव्ययुक्त हैं मायने सदा रहेगी और उसकी अवस्थायें बनेंगी और पुरानी अवस्थायें बिलीन होंगो । इस प्रकार यह सत् अनादि अनन्त हैऔर इस सम्बंधमें अन्य दार्शनिकोंने भी कहा है—नासतो विद्यते भावो ना भावो विद्यते सतः भगवद् गीतामें स्वयं आया है कि जो असत् है, जिसकी सत्ता नहीं है उसका सद्भाव कभी बन नहीं सकता, जिसकी सत्ता है, जिसका सद्भाव है उसका अभाव कभी हो नहीं सकता । तो युक्तिसे, अनुभवसे सब तरहसे निर्णय कर लो—क्या आपको यह इष्ट है कि मेरा आगे कोई नाम निशान हो न रहे, मेरा सत्त्व मिट जाय, ऐसी किसीको अभिलाषा है क्या ? युक्तिसे, आगमसे, वैज्ञानिकोसे सभीसे निर्णय कर लो कि जो है वह कभी मिट नहीं सकता, अवस्थायें मिटेंगी, मूल द्रव्य न मिटेगा । यहां निर्णय कर लो कि यह शरीर मैं नहीं हूँ, यह तो अचेतन है, जड़ है, उसमें ज्ञान नहीं, मैं चेतन हूँ, अमूर्त हूँ, परमात्म पदार्थ हूँ, मेरा कभी विनाश नहीं होनेका । अवस्थायें बदलती रहती हैं । आज मनुष्यभवमें आये, आगे अन्य किसी भवमें होंगे । यों आत्माको शाश्वत व परिणमन करने वाला मानने पर कल्याण भावना जगेगी तो कुछ आत्माकी करूणा करें, जिसको सदा रहना है उस आत्माकी ही बात सोचो—उसपर बीत क्या रही है ।

६५१ आत्मतत्त्व और उसकी विवशताका विश्लेषण—

भैया । मोटे रूपसे सब ऐसा सोच लो कि इस पर दुःख लगता है, सुख लगता है, चिन्तायें होती हैं, शल्य होती है, कभी यह मौज मानता है, सुख भोगे, दुःख भोगे, इसका रूपक समझो कि यह क्या कहलाता है । बस बीत रही इस समय खुद पर तो कहेंगे कुछ अवश्य, मगर इसकी मुद्रा क्या है, सुख दुःख साता असाता का रूपक क्या है, बात क्या है, इसका विश्लेषण नहीं हो पाता । उसका विश्लेषण करना पड़ेगा तब रास्ता दिखेगा कि हमारे लिए शान्तिका मार्ग क्या हैं ? तो पहले सुख दुःख साता असाता, इन सबका निर्णय बनाओ कि यह चीज है क्या, मैं क्या हूं ? मैं तो एक ज्ञायकस्वरूप पदार्थ हूं जीव : उपयोगो लक्षणं जिस स्वभावका परिणमन उपयोग चलता है, यह उपयोग जीवका लक्षण हैं, मैं उपयोग रूप हूँ, मायने जाननेका, चेतनेका काम करता हूं, जाननेमें तो एक ही उपयोग आता । चेतनेमें दो उपयोग आ जाते—ज्ञान और दर्शन । मैं चेतता रहता हूँ, उससे भी समझ कर ज्ञानदर्शनको प्रयुक्त कर लिया । मैं जानता रहता हूं - जानना—जानना यही ज्ञान है । जानना किसीभी जीवका एक क्षणको भी बन्द होता है क्या ? नहीं बन्द होता । एकेन्द्रियसे लेकर पच्चेन्द्रिय तक, सब साँसारी और कर्मयुक्त भगवान जो भी जीव हैं, सभी जीवोंके जानना निरन्तर चलता रहता हैं, क्योंकि पदार्थ उत्पादव्ययध्रौव्य युक्त है । आत्मा स्वयं ज्ञान है, तो उस ज्ञानका जानन सदा चलता ही रहता है । अच्छा पेड़ोंमें भी जानना चल रहा क्या ? चल रहा निगोदमें भी चल रहा, क्योंकि जानना न चले तो सुख दुःखकी बात निभ नहीं सकती । जिसमें जानना नहीं, जिसमें ज्ञान नहीं, जो जड़ है उसमें सुख दुःख नहीं, जानना चल

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

रहा, अब यही जानना जब अपने सही सकलमें नहीं रहता, जानने की जो सही मुद्रा है शुद्ध प्रतिभास जब जाननेका रूप विकल्प रूपमें आ गया है तो बस एक विकल्पके माध्यमसे सारा निर्णय बनायें। देखो अध्यात्म निर्णयमें भेद दृष्टिकी प्रधानता रखनी होगी। भेद दृष्टिसे ही कथन है और भेद दृष्टिसे कथन हुए बिना कुछ वर्णन ही नहीं हो सकता। कुछ विस्तार ही नहीं बन सकता।

६५२—आत्माके विरद स्वभावका दर्शन—

अध्यात्म पद्धतिमें भेदसे अभेदकी ओर मुड़ना रहता है, जैसे कोई स्प्रिंग लगे हुए किवाड़ ऐसे होते हैं कि उनका बंद रहनेका ही स्वभाव रहता है। उन्हें कोई खोले तो जब तक उसे पकड़े है तबतक वे किवाड़ तने रहेंगे, और जरा सा छोड़ा नहीं कि बस फटाकसे बन्द हो जाते हैं, अब अलंकार रूपमें कह रहे कि जैसे कोई उन किवाड़ोंसे पूछे कि ऐ किवाड़ो तुम एक बार खोल दिए जाने पर बराबर खुले रहोगे न ? तो मानो वे किवाड़ यही उत्तर देंगे कि नहीं नहीं, हम तो पुनः बन्द हो जायेंगे क्योंकि हमारा तो बन्द रहनेका ही स्वभाव है, तो ऐसा ही स्वभाव भेद दृष्टि रखने वालेका समझिये, भेदसे अभेद की ओर मुड़नेका उसका स्वभाव बन जाता है। ज्ञानी पुरुष अभेदकी ओर उन्मुख रहा करता है, तो अब यह तकिये कि जीव जानता रहता है, अकेला जीव हो, उसके साथ कुछ न हो, केवल हो तो उसका जानन बिल्कुल सही जानन चलता रहेगा, शुद्ध प्रतिभास चलता रहेगा, मगर ऐसा है ही नहीं यहाँ। अनादिसे ही कर्म मलीमस है यह तो हो क्या रहा है कि इस जीवके साथ कर्म बँधे हैं, कर्म केवल नामकी चीज नहीं। पौद्गलिक द्रव्य है, मैटर है, वस्तु हैं, सूक्ष्म है, तो उन कर्मोंमें जो अनुभाग पड़ा, बिगड़नेकी कला पड़ी उनमें जो अनुभाग है, बिकार है, बस जिस समय कर्ममें वह अनुभाग फूटता है, कर्म उदित होते हैं उस समय चूंकि यह जीव स्वच्छस्वरूप वाला है ना, जानन है, प्रतिभास है, ज्ञान है, जैसे हम आप इन ज्ञेय पदार्थोंको तो कुछ जानकर जानते हैं याने बाहरी पदार्थ तो ज्ञात होकर ज्ञेय हैं याने समझ बनी है कि यह चीज है, मगर उस कर्मानुभागकी जो झलक है वह अज्ञात होकर इस जीव के उपयोगमें प्रतिबिम्बित होती है और उस समय यह जीव अनादिसे ही ऐसा मलिन है कि अपने उस चैतन्यस्वरूप की तो सुध नहीं रखता और जो बात इस उपयोगमें स्वच्छतामें झलकी, आयी, है वह अज्ञात, मगर उस मय ही अपनेको मानता है तो उसकी सकल क्या बनी ? मैं राग करता, द्वेष करता, जो करता वैसा बोलता नहीं है, इस अज्ञानी मोही जीवको उसकी सुध कहाँ ? मगर उस रूप अपने विकल्परूप आचरण करता है। देखो विपत्ति विडम्बना मूलमें यहाँ यह बनी है।

६५३—मोहियोंका दुःखी ही रहनेका आग्रह—

कोई भी मोही जीव मौलिक पद्धतिसे जो दुःख बना उस दुःखसे अपनेको दुःखी नहीं मानता और बाहरकी पद्धतियोंको देख देख कर दुःखी हो तो—मेरा यह घर गिर गया, अब यह बनवाना है, मेरा लड़का मेरेसे विमुख हो गया, अमुक मेरा कहना नहीं मानता आदिक अनेक प्रकारकी कल्पनायें बना-बनाकर लोग विपत्ति मानते हैं. पर वह कोई विपत्ति है क्या ? अरे मकान गिर गया, अमुक यों हो गया तो इसमें तेरे आत्माका कौन सा बिगाड़ हो गया ? अच्छा अब तुझे विपत्तियोंसे हटना है क्या? अगर विपत्तियोंसे हटना है तो सही निर्णय हो तो उसका इलाज बन जायगा। मगर विपत्तियोंसे हटने की भावना है नहीं किसी की। ये संसारी जीव विपत्तियोंको उमंग ला ला कर चाहते हैं। हम (प्रवक्ता) इन बाहरी विपत्तियोंकी बात नहीं कह रहे. जो वास्तविक विपत्ति है उस विपत्ति को ये मोही उमँग ला लाकर चाहते हैं, प्रीति करते हैं, खुश रहते हैं, जैसे मद्यपायी पुरुष मद्यपान करके भीतर कुछ न कुछ तो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सोचते ही रहते हैं। कुछ तो उसका विकल्प ही चलता है, जैसे वह मद्यपायी है, इस भीतरी विडम्बनामें वह खुश रहता है, ऐसे ही ये संसारके मोहरूपी मदिराको पीने वाले पुरुष इस भीतरी विपत्तीमें उमंग ला ला करके कुछ मौज मानते हैं। अगर इन विपत्तियोंसे हटनेकी भावना है तो इन विपत्तियोंसे तो अभी अभी हट सकते है। मगर हटनेकी भावना है कहाँ? जैसे एक कथानक है कि एक वृद्ध पुरुष अमने मकानके दरवाजे पर बैठा हुआ था, उसके पास उसके नाती, पोते, पोतियाँ सभी बच्चे खेल रहे थे। कोई बालक उस वृद्धके हाथ झकझोर रहा था, कोई कंधेपर बैठ रहा था, कोई मूँछ पटा रहा था, कोई सिर पकड़कर झकझोर रहा था। वह वृद्ध बड़ा हैरान होकर रो रहा था, इतनेमें वहाँसे निकले एक संन्यासी जी। पूछा—अरे बाबा जी क्यों रो रहे हो? तुमको क्या कष्ट है? तो वह वृद्ध रोता हुआ बोला—महाराज, मैं बड़ा दुखी हूं। ये नाती पोते मुझ बहुत हैरान करते है, मैं इस समय बड़ी विपत्तिमें हूं। तो संन्यासी बोला—अच्छा अब तुम मत रोओ, हम तुम्हारा दुःख अभी मेंटे देते हैं। उस वृद्धने समझा कि संन्यासी जी कोई ऐसा जादू पढ़ देंगे कि ये नाती पोती सब मेरे चरणोंके दास बनकर मेरी हुजूरी करते फिरेंगे, सो वृद्ध बोला—हाँ महाराज आपकी बड़ी कृपा होगी, हमें इस विपत्तियोंसे बचाइये। तो संन्यासी बोला अच्छा तुम एक काम करो—इन नानी पोतोंको सबको छोड़कर हमारे साथ चलो, वहाँ तुम्हें कोई कष्ट न रहेगा। तो वह वृद्ध झुझला कर बोला—अरे, हम कैसे जा सकते तुम्हारे साथ, देखो चाहे ये बच्चा मारे या कुछ करें आखिर हम इन नाती पोतोंके बाबा ही तो कहलायेंगे। ये तो नाती पोते ही कहलायेंगे। हमारा यह नाता इनका कोई मेट तो न सकेगा। तुम तीसरे बीचमें कौन दलाल आ गए बहकानेके लिए? अब भला बताओ यह कोई विपत्तियोंसे छूटनेका उपाय है क्या?

६५४—जीवमें मूल विपत्ति—

मूल विपत्ति जीवमें यह है कि पहले बाँधे हुए कर्मोंका अनुभाग खिलता है और उसका प्रतिफलन उपयोगमें होता हैं और चूँकि ये जीव अज्ञानी है, मोहि है सो जैसे ये बाहरी ज्ञेय पदार्थ भींट मकान वगैरह हमारे उपयोगमें प्रतिविम्बित होते हैं और उस समय हम इतना जानते हैं कि यह भींट है, यह अमुक है, इस प्रकारसे हम कर्मानुभागको नहीं जानते, मगर उस अज्ञानको अन्धकारकी तरह हम बराबर जान रहे हैं याने इसमें लिप्त होकर इस रसको अपना कर स्वीकार करके हम अपनेको वैसा ही मानने लगे, यह तो बहुत कठिन जानना चल रहा। अज्ञानका कठिन जानना यह कितनी बड़ी भारी समस्या बन रही है। तब यह अज्ञानी पुरुष अपने अज्ञानमय भावमें ही तो समा रहा है जो ये क्रोध, मान, माया, लोभ आदिक कषायें बन रही हैं, जो ये विकल्प चल रहे हैं इन विकल्पोंमें ही तो रम रहे हैं सो इस अज्ञानमय भावको व्यापकरके यह अज्ञानी जीव और आगे द्रव्य कर्मके बंधनका यह कारण बन जाता है, वहाँ उपादानसे और निमित्त दृष्टिसे यह सब निर्णय करनेकी बात है।

६५५—मोक्षमार्गोपयोगी परिचयकी अनिवार्य आवश्यकता—

देखिये—प्रकरणवश विषय कुछ क्लिष्ट हो जाता है लेकिन क्लिष्ट विषयमें भी कुछ कुछ समझमें तो आता ही है, क्योंकि ज्ञानी है, ज्ञानस्वरूप है, जानता है, और फिर यह देखो कि जैन शासन कैसा वास्तविक तत्त्वको, गम्भीर तत्त्वको और किन—किन उपायोंसे किस तरहका वर्णन करता है। प्रमाण नय निक्षेपोंकी विधि किसी अन्य दर्शनमें आयी है क्या? कथन कौतूहलकी बातको त्यागकर तत्त्वके प्ररूपणमें प्रधानता किसी दर्शनमें दी है क्या? जो बात सम्भव है, हो सकने वाली है उसका

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उस ढंगसे वर्णन करनेकी किसी अन्य दार्शनिकने उसंग रखी है क्या ? इस जैन शासनको पानेका जो एक लाभ मिला, जो एक हम पर इस जिनवाणीका उपकार है उससे कोई उऋण हो सकता है क्या ? जो लोग इस जिनवाणीसे विमुख हैं वे इस संसारमें रुलते हैं जो इस जिनवाणीके भक्त हैं, उपासक है, मायने इस जिनवाणीमें कहा गया जो तत्त्व है, रहस्य है, उसको जो प्राप्त करता है वह नियमसे संसारके संकटों से छूट जाता है। चीज बतायी जा रही है खुदकी जो गड़बड़ी चल रही उसकी। और इस रहस्यका जिसे पता हो जाय, जिसे एक सच्चा ज्ञानप्रकाश जग जाय, वह तो फिर अत्यन्त सावधान हो जाता है। जैसे विद्यालयमें विद्यार्थी लोग अपनी कक्षाके अन्दर अध्यापककी अनुपस्थितिमें ऊधम मचाते रहते है पर अध्यापकके आते ही उनका सारा ऊधम बंद हो जाता है, सभी विद्यार्थी इस ढंगसे शान्त होकर बैठ जाते हैं मानो वे कोई इष्ट तत्त्वका चिन्तन कर रहे हों। तो ऐसे ही यहाँ आत्मामें जो गड़बड़ियां चल रही हैं कषायें जग रहीं, मोह आया, प्रतिफलन हुआ, बस ये सब जब विदित हो जाती हैं–क्यों हुई, कैसे हुई, यह सब ज्ञान निमित्त नैमित्तिक योगका परिचय बताता है। निमित्त नैमित्तिकका परिचय हटा देनेसे विभावकी हेयताका सही ज्ञान नहीं बत पाता। "दूर हटो परकृत परिणाम," कर्मविपाकके प्रभाव भाव, कुन्दकुन्दाचार्यने बारबार यह बात बताया है। कहीं यह बात नहीं कि विभावको कर्मविपाकप्रभाव उपचारसे कहा हो। यथार्थ बात है। कर्मोदय होता है, विपाक झलकता हैं, विकल्प मचता है, निमित्त नैमित्तिक योग है। किंतु ऐसे बडे संघर्षमें भी कर्मका परिणमन कर्ममें है, जोवका परिणमन जीवमें है।

६५६ उदाहरणों द्वारा विषम परिणमनकी अस्वभावताका परिचय—

जैसे कोई दो मल्ल युद्धमें लड़ रहे है तो हर एक मल्लका परिश्रम उनका अपने अपनेमें है, हाँ निमित्तनैमित्तिक योग ऐसा है कि इस तरहकी घटना बन रही। कर्मका बंध है उसका सब कुछ उसमें चल रहा, और जीवमें ज्ञान है, जानन हैं, विकल्प चल रहा, जीवका परिणमन जीवमें चल रहा, मगर विभावोंका सम्पर्क न हो तो कर्मादिक नहीं बँध सकते। कार्माण वर्गणामें कर्मत्व हो ही नहीं सकता, बात ही नहीं उठ सकती। और, कर्मविपाक न हो तो जीवमें रागद्वेषादिक विकल्प नहीं होते। और हो रहा सबका खुदका खुदमें काम। वस्तुस्वातंत्र्य कभी मिटता नहीं, पर वस्तुका परिणमन उस विकार रूपमें ढल जाता है निमित्तनैमित्तिक योगके प्रसंगमें। अनेक बातें ऐसी देखनेको मिलेंगी जहाँ यह कहना पड़ेगा कि विकार परिणमनके प्रसंगमें कि वह उपादान निमित्तका सन्निधान पाकर अपनी परिणतिसे अपनेमें प्रभाव उत्पन्न कर लेता है, उपादानका प्रभाव उपादानमें। निमित्तका प्रभाव आया उपादान बन कर उसीमें, एकका द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव विभाव प्रभाव सब कुछ दूसरेमें नहीं मिल जायगा मगर निमित्तनैमित्तिक योग तो प्रकट स्पष्ट ही है। जैसे यहाँ इस भींटमें कलई पुती है, इस पर सूर्यकी तेज किरणें पड़ रही हैं जिससे सारी भींट प्रकाशित हो रही है, तो यद्यपि यह भींट इस सूर्यकी सन्निधान पाकर प्रकाशित हो रही फिर भी सूर्यका कुछ भी अंश निकलकर भींटमें नहीं आया और भींटका कुछ भी निकलकर सूर्यमें नहीं गया, दोनों अपनी अपनी जगह पर हैं, पर एक ऐसा निमित्तनैमित्तिक योग है कि उसका सानिध्य पाकर इस प्रकार प्रकाश हो जाता।

६५७ निमित्तनैमित्तिक योगके परिचयकी पद्धतिमें सूर्य किरणोंका परिच्छेद—

सूर्यकी किरणें इसका अर्थ क्या ? सूर्यकी कोई भी चीज सूर्यके प्रदेशोंसे बाहर नहीं जा सकती। यह वस्तुका स्वरूप है। किसी भी पदार्थका कोई गुण कोई पर्याय उस पदार्थके प्रदेशोंसे बाहर नहीं जाता

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

लेकिन सूर्यकी किरणें होती है ऐसा कुछ दिखता भी है और शास्त्रोंमें भी लिखा है। तो जब किसी पदार्थकी कोई चीज जब उसके प्रदेशसे बाहर नहीं जाती तो बताओ कि ये सूर्यकी किरणें सूर्यसे बाहर कैसे चलीं गईं। उत्तर—ये जो किरणें मालूम होती हैं ये सूर्यके गुण या पर्याय नहीं है, किन्तु जैसे सूर्यका सान्निध्य पाकर ये भींट आदिक प्रकाशित हो गये, ऐसे ही इस गगनमें जो सूक्ष्म स्कन्ध हैं ये भी प्रकाशित हो गये। अब आखों द्वारा सूर्य देखा जा रहा है तो इन गोल छोटी सी आँखों द्वारा प्रकाशमान सूर्यको देखने पर दिखनेकी विधि ही ऐसी है कि प्रकाशमान सूक्ष्म स्कंधोंकी उनकी प्रकशताके निमित्तके स्थानसे लेकर उन तक उनकी पंक्ति दिखती है तो किरणें प्रकाशमान पंक्तिबद्ध सूक्ष्म स्कन्ध हैं। सूर्यकी १६ हजार किरणें हैं ऐसा कहनेका अर्थ यह है कि चक्रवर्ती जैसे बलिष्ट महापुरुषोंके समर्थ नेत्रों द्वारा १६ हजार पंक्तियोंमें सूर्यका सान्निध्य निमित्त पाकर प्रकाशित सूक्ष्म स्कन्ध दृष्ट हो जाते हैं। हाँ तो प्रसंगकी बात यह है कि विकार परिणमन निमित्त सन्निधान विना नहीं हो सकते, फिर भी विकार रूपसे परिणत उपादानमें निमित्त कुछ करता नहीं है। तो इसमें विकारकी औपाधिकताके परिचयसे तो विकारकी हेयता स्पष्ट हो जाती है और वस्तु स्वातंत्र्यका परिचय मिलनेसे पराधीनताका भाव नहीं रहता सो स्वभावमें मग्न होनेको सुगम विधि हो जाती है।

६५८—निज चैतन्यमहाप्रभुका शरण गहनेमें ही इन दुर्लभ क्षणोंकी सफलता—

संसारमें अनादि कालसे अनन्तभव धारण कर करके आज सुयोगसे मनुष्यभवमें आये, जहाँ अल्प तो आयु है और अल्प इसके साधन है, फिर भी जगतके अन्य जीवोंसे तुलना करें तो हमने अपने को श्रेष्ठ मान लिया। ये पशुपक्षी बेचारे क्या करें? इनको तो श्रेष्ठ मन मिला नहीं है यद्यपि उनके भी किसी किसीके सम्यक्त्व हो सकता फिर भी इससे आगे उनकी प्रवृत्ति नहीं हो सकती। वे संयम धारण नहीं कर सकते, मगर इस मनुष्यभवमें तो सम्यक्त्व भी उत्पन्न कर सकते, संयम भी धारण कर सकते। ऐसी एक श्रेष्ठ गति हम आपको प्राप्त हुई। इस भवमें आकर यदि पञ्चेन्द्रियके विषयोंके साधन, समागम भोगोंमें ही जीवन गुजार दिया तो यह समझो कि फिर यहाँ उन पशु पक्षियोंसे अधिक कौनसा कार्य किया? स्पर्शनेन्द्रियके विषयोंमें पशुपक्षी भी प्रवृत्त होते हैं। जैसा मौज यहाँ मनुष्य मानते हैं वैसा ही मौज उन पशु पक्षियोंको भी होता है। कौनसी बातमें मनुष्य बड़ी हैं सो तो बताओ? निद्रामें भी ये पशपक्षी इन मनुष्योंसे अच्छे हैं सो तो आप जानते ही हैं। अब भयकी बात देखो—इन पशु पक्षियोंमें तो तब ही भय होता जब उनको मारने वाला कोई सामने आये, पर इन मनुष्योंको तो देखो खूब आरामके कमरेमें है, गद्दे तक्केमें पड़े हैं, नौकर चाकर भी सामने हाजिर है फिर भी यह भयशील रहा करते हैं। न जाने कब क्या हो जाय, न जाने कब कैसा कानून बन जाय कि सब कुछ छिन जाय... आदि बातें सोच सोच कर भयभीत रहा करते है। तो किस बातमें ये मनुष्य बड़े हैं पशु पक्षियोंसे सो तो बताओ? तो बात यह है कि आत्महितमें प्रगति कर सकते है मनुष्य, इस बातमें बड़े है। तो आत्महित किसमें है? निराकुलतामें। जहाँ रंच भी आकुलता न हो, ऐसी स्थिति हो उसमें हित है। तो निराकुलता कैसे मिले। निराकुलता मिलनेका उपाय क्या है? तो सीधा एक शब्द द्वारा भी समझलो, यह जीव उपयोग वाला है ना? उपयोग करता रहता है। उपयोगमें किसीको बसाता है, किसीका सहारा लेता है क्या? तो यह उपयोग अगर निराकुल उपयोगका सहारा ले तो निराकुल हो सकेगा। आनन्दमय स्वभावका सहारा ले तो आनन्दमय बन जायगा तो करना क्या है अपनेमें सहज अन्तः प्रकाशमान चैतन्य प्रभुका आश्रय।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

६५९—अब तकके कर्म व आगेके कृत्यपर विहंगम दृष्टि—

इस जीवने अब तक किया क्या ? और अब करना क्या चाहिये, जरा अपने पर दृष्टि देकर निहारिये तो यह जीव अभी तक ज्ञानविकल्प में रमता रहा। रागद्वेष मोहभावमें रमता रहा, और, उसका फल अब तक यह रहा कि यह जीव अभी तक भटकता रहा, दुखी होता रहा - तो इन विभावोंमें रमनेसे शांति नहीं, आनन्द नहीं, पवित्रता नहीं। इन विभावोंसे उपेक्षा करके स्वभावमें रमे, स्वभावमें लगे, स्वभाव के अभिमुख हों, इसके सिवाय और कोई ऐसा मार्ग नहीं कि जिससे यह जीव शान्ति पा सके। शास्त्रोंमें जितनाभी जो कुछ उपदेश है, कथन है, उस सबका प्रयोजन यह है कि यह जीव विभावों से उपेक्षा करे और स्वाभावमें लगे। इसी के लिए समस्त जैनागममें सभी जगह नयोंका कथन बताया गया। उस सबका प्रयोजन क्या है ? प्रयोजन यही है कि वह यह उपाय जाने कि जिससे यह जीव विभावोंसे उपेक्षा करके स्वभावमें रमे। बस इस जीवको एक यह ही काम करनेको पड़ा है। इसने अभी तक अनेकों काम किए, मगर एक यही काम नहीं किया, इससे यह जीव अभी तक संसारमें रुलता रहा है। अब देखो विभावोंसे उपेक्षा कैसेहो और स्वभावमें लगना कैसे बने, इसके लिए आचार्योंके उपदेशका अध्ययन करें। अपनेको ये सब प्रसंग पालेना चाहिए कि कैसे विभावोंसे उपेक्षा हो।

६६०—विभावोंसे उपेक्षा करानेवाला सुज्ञान—

अच्छा, यह बताओ कि विभावोंसे उपेक्षा करना कैसे जरूरी पड़ा ? ऐसे कि ये विभाव मेरी चीज नहीं है, परभाव है, ये हटाये जा सकते हैं। इन विभावोंमें हेयताका परिचयहो तो विभावोंसे उपेक्षा बने। यहाँभी तो जिस किसी पुरुषके प्रति ऐसा ध्यानमें जम जाता कि यह मेरे कामका नहीं तबही तो उससे उपेक्षा बनती है। ऐसेही इन विभावोंके प्रति जब यह निर्णय बन जाय कि ये विभाव मेरे कामके नहीं हैं, मेरे लिए हितरूप नहीं हैं ये हेय हैं तो फिर इन विभावोंसे उपेक्षा बने। ये विभाव हेय है क्योंकि कि ये मेरे निरपेक्षतया स्वाभावसे नहीं है, ये विभाव मैं नहीं हूँ, इसलिए ये हेय है। अगर ये विभाव मेरे स्वभावकी चीज होतेतो फिरये किसी तरह हटाये भी नहीं जा सकते थे। तो इन विभावों से उपेक्षा करें। इनसे उपेक्षा करनेके लिए आचार्यजनोंने निमित्तनैमित्तिक भावोंका परिचय बताया हैं। जानलें कि मेरेमें जो रागद्वेष भाव उत्पन्न होते है ये मेरे स्वाभावसे नहीं उत्पन्न होते। ये ऐसे निरपेक्ष भाव नहीं है कि ये मात्र मेरे स्वाभावसे बने हैं। जितने भी विकार अथवा अशुद्धता होती है वह सब परसम्बधके प्रसंगसे होतो हैं, इसी कारण वे हटाये जा सकतें हैं तो विभाव हेय है क्योकि ये परभाव है, जैसे कि समयसारमें जीवाजीवाधिकार और बंधाधिकार बड़े विस्तारसे बताया है ये कर्मोदयविपाकप्रभावाभावः न ते मम स्वभावाः आदि—याने ये सारे भावमें वर्णादिक, रागादिक, कषायादिक ये सब पुद्गलकर्मोदय से निष्पन्न होते है, ये कर्मोदय विपाकसे उत्पन्न होते है ये मेरे स्वभाव नहीं है। मैं तो टंकोत्कीर्णवत् एक ज्ञायकभाव मात्र हूं, अब नैमित्तिक कैसे है ? यदि निमित्त इनको करता होता तो सदा निमित्त करतेही रहते। निमित्त तो पुद्गल कर्मविपाक है लेकिन पुद्गल कर्मविपाक या पुद्गलकर्म अपनी परिणतिसे जीवके राग विकल्पको करता होता तबभी उनका हटना कठिन था क्योंकि इसका अर्थ तो यह निकला कि हम तो परिणमते नहीं है, ये सब कर्म करते है, कराते हैं फिर आत्मापरतंत्र बन गया और यों तो आत्मतत्त्वका उच्छेद हो जायगा। तो निमित्त नैमित्तिक योग मात्र इतना है कि पूर्वबद्धकर्म जब

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अपने उदयकालमें आते हैं तो उसमय उन कर्मोंमें कर्मका विपाक फूटता है और कर्ममें बिगाड़ होता है और उस सम्बंधमें कर्मविपाकका सन्निधान पाकर जीव चूंकि उपयोगमय है इसलिए उसमें प्रतिफलन होता। जीव उसमें लग गया, उसे आत्मस्वरूप माना कि यह मैं हूं, बस इसने किया ज्ञानमें विकल्प, वहाँ हुआ कर्मोदय- तो ज्ञानविकल्प इस जीवकी परिणति है। कर्ममें जो विपाक फूटा वह कर्मकी परिणति है: मगर ऐसा निमित्त नैमित्तिक योग मात्र है, जैसे कि प्रकाशमें यों हाथ किया, छाया हुई, तो अब यह आकार जैसा कि हाथ है, ऐसा आकार दो जगह है, यहाँ इस चौकीपर आकार है और इस हाथमें मगर हाथका आकार हाथमें ही है. हाथकी परिणति हाथमें है। पर वहाँ हुआ क्या कि इस हाथका सन्निधान पाकर यह चौकी जो अभी प्रकाशरूप परिणम रही थी प्रकाशरूप अवस्था छोड़कर अंधेरे रूपमें हुई। सो हुआ क्या? निमित्तको पाकर उपादान अपनेमें अपनी परिणति करता है। निमित्त यहाँ कुछ नहीं करता, लेकिन विकारमें नैमित्तिक योग अवश्य है। वहाँ ज्ञानी पुरुष यह जानता है कि कर्मविपाक निमित्त सामने हाजिर हैं, उसका सन्निधान पाकर यह जीव अपनेमें विकल्प बनाता है। तो ये विभाव मेरे स्वभाव नहीं हैं। ये पौद्गलिक हैं, नैमित्तिक हैं, विकारोंका पौद्गलिकत्व दो प्रकारसे हैं, एक तो उपादान रूपमें कर्मका ही है कि पौद्गलिक हैं दूसरे कर्ममें आने वाली क्रोधादिक कषायें पौद्गलिक है, उनका उदय हुआ उन्हें निमित्त पाकर जीवमें जो कषाय हुई वह पुद्गलकर्म निष्पन्न है।

६६१—शुद्धनयसे स्वको निरखनेका महत्व—

एक होता है विवक्षितैक देश शुद्ध निश्चयनय, याने यह अपने स्वभावमें विशुद्ध दिखनेके रूपमें होता है वह उसे वहाँ शुद्ध दिख रहा है। यहाँ जो राग हुआ सो यह मेरा नहीं है, यह पौद्गलिक है। सो राग परिणति क्या है? ज्ञान विकल्प। वह जीवकी परिणति होने पर भी चूंकि सहज निरपेक्ष नहीं है, निमित्त पाकर हुआ है इसलिए यह मेरा स्वभाव नहीं। ये विभाव ये विकार परभाव हैं, मैं इनको यदि अपनाऊँ तो ये खेलते कूदते रहते हैं। तो जब तक जीवके मिथ्यात्वका शमन नहीं है तब तक यह जीव बेहोश है, इन विभावोंको अपनाता रहता है। जहाँ सच्चाईका पता लगे वहाँ इस जीवका वश चलता है कि इन विभावोंको अपनाता नहीं है। तो ऐसी स्थितिमें जहाँ यह धुन लगी है कि विभावोंसे हटे और स्वभावोंमें लगें ऐसी जिसके धुन बनी है वह अपने स्वभावसे अपनेको प्रच्युत नहीं करना चाहता मगर पूर्व संस्कार, ऐसा उदय लगा है कि जिससे अपने स्वभावमें लग नहीं पाते, इन विभावोंसे हट नहीं पाते। कौन नहीं चाहता कि मैं अपने आत्मामें स्वस्थ हो जाऊँ! प्रयास भी करते हैं मगर नहीं हो पाते। ऐसा संस्कार लगा है। तो ऐसे संस्कारोंमें कहीं यह जीव पापोंमें न लगे, अपात्र न बन जाय, इसके लिए जब यह जीव राग करता, चेष्टायें करता तो उसके लिए एक संयमरूप चेष्टा होती है। उससे यह स्वरक्षा हुई कि यह जीव अपनी स्वभाव दृष्टिका पात्र तो रहा।

६६२—विभावोंसे उपेक्षाके लिये निमित्तनैमित्तिक योगका परिचय और स्वभावमें लगानेके लिए शुद्ध नयका परिचय—

जहाँ यह जाना कि ये विभाव औपाधिक हैं, नैमित्तिक है, ये मेरे स्वभाव नहीं, मेरे निरपेक्ष भाव नहीं, ये हो गए, ये मेरे स्वरूपमें नहीं। इनको अपनाने से दुख होता, अपवित्रता होती, इस कारण विभावोंसे उपेक्षा करनेके लिए निमित्त नैमित्तिक योगका सही परिचय काममें लेना चाहिये। न कि दुख इस निमित्तने कर दिया ऐसी मूढ़ता बनायें। अगर निमित्त नैमित्तिक योगका परिचय

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पर कर्तृत्व और पर स्वामित्वके लिए लगाया गया तो इसमें अनर्थ है। द्रव्य आज तक सब क्यों मौजूद हैं ? इसी कारण कि सब अपने अपने द्रव्य क्षेत्र, काल, भावसे है। कोई द्रव्य किसी दूसरे के द्रव्य, क्षेत्र काल भावसे कोई द्रव्य किसी दूसरे द्रव्यके स्वरूपसे बन जाता तो फिर पता नहीं कि वहाँ फिर दो में से कौन एक रहता, कोई भी एक रहो. पर कभी दूसराभी रहता कि नहीं। फल यह होता कि सारा जगत शून्य हो जाता कुछ न रहता। कोई द्रव्य किसी परद्रव्यरूप परिणमता नहीं। सभी द्रव्य उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप हैं। तो इन विभावोंसे उपेक्षा करना है और स्वभावमें लगना है विभावोंसे उपेक्षा करनेके लिये सहयोगी है निमित्त नैमित्तिक योगका परिचय। स्वभाव में लगनेके लिए उपयोगी है शुद्धनयका विषय। शुद्धनयसे देखें कि मैं क्या हूँ। मैं वह हूं जो स्वयं हूं, स्वतः हूं, सहज हूं अनादि अनन्त हूं, यहाँ कोई परिणति नहीं दिखती, यहाँ कोई भाव नहीं दिखते विकल्पजालमें शुद्धनयका परिणय नहीं बनता। शुद्धनयका स्वयंभूत अर्थ सहजभूत अर्थ स्वभाव क्या है ? उसको पहिचाने, निरखें और यों अन्दर चलें। मैं हूं तो स्वयं हूं किसीकी सत्ता किसी दूसरेकी दयापर नहीं होती। मैं खुद हूँ तो मैं क्या हूँ, अपने आप ऐसा अपना अंतः ज्ञान बनाये और उस सहज भावकी परख के उपायसे उस अंतस्तत्त्वके दर्शन करे तो अनुभवमें आता और अपने आप ऐसा अनुभव होता कि मैं यह हूँ। कैसे ? किसीको बुलाते हैं ना, फलानेचंद, तो झट उस ओर दृष्टि पहुंच जाती है, कारण क्या है कि उसने इन पर्यायोंमें आत्मबुद्धि की है, यह मैं हूँ, और जब एक द्रव्यस्वरूपमें आत्मबुद्धि होगी, अनादि अनन्त एकस्वरूप निज अंतस्तत्त्वमें दृष्टि होगी मैं यह हूँ, तब तो फिर उसके ऊपर वज्र भी चले तो भी उससे विचलित नहीं होता। उसके ऐसी शक्ति प्रकट होती और ऐसी निर्भयता रहती कि वह अपने स्वरूपमें शंका नहीं रखता। इसलिए काम एक ही यह पड़ा है, दो काम नहीं, विभावों से उपेक्षा और स्वभावमें लगना। इस ही धुनमें जोलगता है तो उसे जो भी चीजें बाधक मालूम होती हैं उनका वह त्याग करता है। वह ऐसा स्वच्छन्द नहीं रहता कि यहाँ विषयोंमें कीर्ति यश आदिकमें भी रमें और अपना कामभी करें। एक उपयोगमें दो काम नहीं बनते। विषयभोग और मोक्षमें जाना। मोक्षका मार्ग और संसारके समागमोंका मौज, ये दो बातें एक साथ नहीं बनती। तो यह जीव एक अपने स्वभावकी धुनमें जब लग जाता है तो त्यागके मार्गमें बढ़ता है। वह अनात्मपदार्थको परिहार करके भी यहाँ वहाँ उपयोग नहीं लगाता फिरता कि यह भी छोड़ा, वह भी छोड़ा यह विकल्प भी बाधक है।

६६३—कषायोंके निर्माणविधानके परिचयका प्रभाव—

विभावोंसे उपेक्षा बने इसके। यहभी समझिये कि क्रोधादिक कषायोंका निर्माण कैसे होता है ? अबुद्धिपूर्वक जो कषायोंका निर्माण है वहाँ दोबातें है-उपादान कारण और निमित्तकारण। क्रोध प्रकृतिका उदय है तो यह जीव क्रोधरूप परिणम गया। मगर जितनी बुद्धिपूर्वक कषाय है उसमें तीन बातें आया करती हैं निमित्त कारण आश्रयभूत कारण और उपादान कारण। निमित्तकारण और उपचरित कारणमें अन्तर क्या है ? उपचरित कारणमें तो जब हम उपयोग जुटायें उसका आश्रय लें तो वह उपचरित कारण कहलाता है उसका उपयोग न जुटायें उनका आश्रय न लें तो वे उपचरित कारण भी नहीं बनते। परन्तु निमित्त कारण वह कहलाता है जिसका उपादानके कार्यके साथ अन्वय व्यतिरेक सम्बंधहो। साथ ही निमित्तका उपादानमें अत्यन्ताभाव होता है। पुद्गल कर्मका जीवके साथ अत्यन्ताभाव है प्रत्यक्ष प्रकट परद्रव्य है। तो पुद्गलकर्मका जीवमें अत्यन्ताभाव है लेकिन कर्मदशाका जीवके साथ अन्वय व्यतिरेक सम्बन्ध है। जैसे क्रोध प्रकृतिके उदय होने पर जीवमें क्रोध प्रतिफलन होता

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है और क्रोध प्राकृतिका उदय नहीं है तो क्रोधप्रतिफलनभी नहीं होता है। यें जगतके जितने आश्रयभूत कारण है वे आरोपित कारण है, इसीकारण वे बहिरंग कारण कहलाते हैं। तो जितने व्यक्त विकार होते है उनमें आश्रयभूत कारणमें उपयोग होता है। यदि आश्रयभूत कारणमें उपयोग न हो तो वे विकार अव्यक्त रह जाते हैं। इसी कारण चरणानुयोगमें बाह्य पदार्थोंके त्यागका महत्व बताया है कि आश्रयभूत कारण न होंगे तो अध्यवसानको अवसर न मिलेगा। यद्यपि ऐसा कुछ नियम नहीं है कि आश्रयभूत कारणका बाह्यक्षेत्रसे त्यागकर देवे तो विकार हों ही नहीं, किन्तु ऐसा नियम अवश्य है कि व्यक्त विकार होंगे तो बाह्यवस्तुका आश्रय करके ही होंगे। इसी आधार पर चरणानुयोग मार्गदर्शन करता है। विकारके आश्रयभूत कारण न जुटायें तो विकार व्यक्त नहीं होते। अबुद्धिपूर्वक ही विकार रह पायगा कर्मविपाक होने पर। केवल कर्मविपाकको ही जीव विकारमें निमित्त कारण कहा गया है। कर्मविपाकको छोडकर शेष सभी पदार्थतो कर्म कहलाते हैं। आश्रयभूत कहलाते है, बहिरंग कारण कहलाते हैं।

६६४—बाह्यपदार्थके अनाश्रयमें स्वभावका विकास—

जिस उपयोगमें कभी कोई बाह्य पदार्थ विषयभूत हो रहा हो, उपयोग लग रहा हो, तो ऐसी स्थितिमें विकारका ही निर्माण चलेगा, स्वभावका नहीं, इसलिए सम्यग्दर्शन एक कोई बाह्य साधनको कारण बनाकर नहीं हुआ करता, किसी बाह्यका लक्ष्य बनाकर सम्यग्दर्शन नहीं हुआ करता, किन्तु निर्विकल्प एक ज्ञायकस्वभाव अन्तस्तत्वके आश्रयसे ही सम्यक्त्वकी उद्भूति, अनुभूति होती है और उस सम्यक्त्वकी अनुभूति होने पर सम्यक्त्व रहता है चिरकालतक, निरन्तर अनुभव हो या न हो मगर वह सम्यक्त्व एक निरपेक्षभाव प्रतीतिरूप सदैव रहता है। जो ७ प्रकृतियोंका उपशम, क्षय, क्षयोपशमसे सम्यक्त्वकी उत्पत्ति कही है, उसका राज यह है कि पहले मिथ्यात्व कर्मके उदय और उदीरणासे मिथ्यात्व आदिक विकार होते रहते थे, अब उनका उदय नहीं रहा, चाहे उपशम रूपसे या क्षय आदिकरूपसे रहने के कारण उदय नहीं रहा तो अबवे विकार कहां से आये। फल यह होता है कि सम्यक्त्वादिक शुद्धभाव प्रकट हो ही जाते हैं। इस राजका पता हो जाने पर फिर किसी कथनमें विसम्बाद नहीं रहता।

६६५—आगमके सर्वउपदेशोंमें स्वभावके सुधकी कर्तव्यताका दर्शन—

हमें आगमके चारों अनुयोगोंके कथनोंसे निष्कर्ष यह निकालना चाहिए कि विभावोंसे उपेक्षा हो और स्वभावमें लगन हो। जैसे करणानुयोगमें तीन लोकका विस्तार बताया कि ३४३ घनराजू प्रमाण लोक है उससे हम क्या शिक्षा लें कि आत्माकी सुध बिना अज्ञानवश इतने बड़े लोकमें प्रत्येक प्रदेशों पर अनन्त बार जन्म मरण करत रहे। इस लोकपरिचय से दूसरी प्रेरणा यह मिलती है कि इतने बड़े लोकके समक्ष हमारी यह परिचित भूमि कितनीसी है जिसमें ममता करके अपनी बरबादीकी जाय। लोकपरिचय होनेसे विरक्तिकी उमंग जगती है, कभी करणानुयोगमें यह वर्णन आता कि जीवोंकी अव-गाहना घनांगुलके असंख्यातवें भागसे लेकर हजार योजन तककी है उसमेंभी हमें यही प्रेरणा मिलती है कि ज्ञानमात्र अन्तस्वत्वकी सुध न होने पर ऐसे ऐसे दुर्देहोंमें रहकर यातनायें भोगनी पड़ती हैं। कोईभी वर्णन सुने, सबका यहही उद्देश्य हुआ करता है कि विभावोंसे उपेक्षा करना और स्वभावमें लगना। प्रभुदर्शनका, प्रभुपूजाका क्या अर्थ है कि हम भगवानके स्वरूपको जानें और अपनेस्वरूपसे तुलना करें कि जैसा प्रभुका स्वरूप है वही हमारा स्वरूप है। प्रभुभी पहले हम जैसेही संसारमें रुलने वाले थे किन्तु उन्होंने सम्यग्ज्ञान पाया और आत्मस्वभावके अनुरूप आचरण किया, बाह्यमें निर्ग्रन्थ हुए, सहनशील हुए

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

परीषह विजयी हुए आदिक जो भी उपाय किया है, जिससे वे प्रभु हुए, यही उपाय हम भी करें तो प्रभुता हमारी भी प्रकट हो सकती है।

६६६—सरागचारित्र हुए बिना वीतराग चारित्रकी असंभवता और सराग चारित्र छूटे बिना वीतराग चारित्रकी असंभवता—

यहाँ एक बात और समझना है कि सम्यक्त्व हुए बाद जो प्रगति होती है वह इस प्रकार होती है कि इस भव्य जीवके सरागचारित्र होता और फिर वीतरागचारित्र होता। सरागचारित्र हुए बिना वीतरागचारित्र नहीं होता और सरागचारित्र छूटे बिना वीतरागचारित्र नहीं होता। जैसे एक मंजिलपर ऊपर चढ़ना है तो लोग ऐसा ही तो यत्न करते है कि सीढ़ियोंपर चढ़ते औरछोड़ते हुए ऊपर पहुंच जाते हैं। अब यहाँ दिखनेमें तो दोनों ही बातें आ रहीं कि सीढ़ियों पर चढ़नेसे ही ऊपर पहुंचे और सीढ़ियोंको छोड़ते जानेसे ही ऊपर पहुंचे। अब यहाँ कोई ऐसी हठ करे कि सीढ़ियोंपर चढ़नेसे ही पहुंचते है तो वह किसी सीढ़ीपर चढ़ जावे और उसी सीढ़ीसे प्रेम कर लेवे, उसे छोड़े नहीं तो क्या वह ऊपर पहुंच जायगा? नहीं पहुंच सकता। इसी तरह कोई यह हठ कर लेवे कि सीढ़ियोंके छोड़नेसे ही यह ऊपर पहुंचा तो हमतो सीढियोंको छोड़ही रहेंगे तो क्या यों सीढियोंको छोड़कर नीचेही बने रहने से क्या वह ऊपर पहुंच जायगा? नहीं पहुंचेगा। इसी प्रकार यहाँ भी दो बातें दीखीं कि सराग चारित्र धारण करनेसे वह आगे वीतराग चारित्रमें पहुंचा और यह भी देखा गया कि सरागचारित्र पर्याय छूटने पर ही वीतरागचारित्र हुआ। अब यहाँ कोई हल कर लेवे कि सराग चारित्रसे ही वीतराग चारित्र हुआ तो हम सराग चारित्रको पकडेही रहेंगे, तो क्या वह वीतराग चारित्र पालेगा? नहीं, इसी प्रकार कोई यह हठकर लेवे कि सराग चारित्र छोडनेसे ही ऊपर उठते है तो हम सराग चारित्र छोडेंही रहेंगे, सराग चारित्र तो हेय है उसके पास क्यों जाना तो ऐसा व्यक्ति भी क्या बीतराग चारित्र पालेगा? नहीं,आगममें अशुभोपयोगको अत्यन्त हेय कहा है। शुभोपयोगको हेय कहा है, शुद्धोपयोगको उपादेय कहा है. इससे ही यह प्रतिबोध पा लेना चाहिए कि अशुभोपयोगही अत्यन्त हेय है, शुभोपयोग शुद्धोपयोगके समक्ष हेय है किन्तु व्यसनी, पापी, अज्ञानी दुराचारी जीवोंके लिए शुभोपयोग उपादेय है। ज्ञानी होने पर धर्ममार्ग पर बढने के लिए शुभोपयोग होकरभी उसमें उपादेयताको बुद्धि नहीं रहती, किन्तु शुद्धोपयोग ही एक लक्ष्य रहता है। शुभोपयोग तो एक ढाल है, इससे सुरक्षित रहकर यानेव्यसन, विषय आक्रमणसे बचकर शुद्धोपयोगरूप शस्त्रसे विकार शत्रुवोंको निर्मूल करना है। तो हम पापोंसे बचनेके लिए शुभोपयोग करके भी शुभोपयोगमें न रमें, किन्तु शुद्ध ज्ञानभाव अंतस्तत्त्वके आश्रयसे परमात्मतत्त्वका विकास करें। प्रसंगकी बात यह है कि हम सराग चारित्रमें बढ़ते हुए भी सरागचारित्रको हीअपना ध्येय न मानें किन्तु स्वभावके आश्रयसे वीतरागचारित्रको प्राप्ति करें और भीतरमें अपने स्वभावकी आराधना करके अपने आपको सुदृढ़ बनाये।

६६७—साधर्मिवात्सल्य व गुरुपद्धतिपालनके वातावरणमें आत्मप्रगतिके लिए सुविधाका दिग्दर्शन—

अब अपनी उपयोगी दूसरी बात सुनिये। देखिये जब साधर्मीजनोंमें वात्सल्य व एकरूपता रहती है तब ऐसे पवित्र वातावरणमें स्वानुभवके लिए उमंग रहती है, और जब कोई एक अंतः बात विरोधीकी रहती है तो वहाँन इस खुदका भला न अन्यकिसीकाभलादेखिये जिस किसीभी समाजकी बनती बातहै तो गुरूके सहारे बनती है, कोई भी समाज गुरु बिना जीवित नहीं रहता। आज हम ऐसा खोजें जैसा कि बज्रवृषभनराच संहननावाले गुरु होते थे और वैसे असंभव होनेसे स्वयं गुरुत्वका मान

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

करें, तो वह हमारी धृष्टता है याने खुद संयम नहीं धारण कर सकते तो कालोचित संयमका भी विरोध करें यह श्रद्धालुतासे रहित बात है। आज पंचमकाल है, यहाँसे अभी मोक्ष नहीं होता तो मोक्षोचित संयम कहाँ से हो? फिर भी जितने संयमसे पुलाक मुनि आदि हो सकते हैं वह तो सम्भव है। हमें अपनी प्रवृत्ति तीर्थका विरोध करने वाली नहीं बनाना चाहिए। व्रती, साधु, गुरूजनोंका यथोचित विनय कर अपने मार्गमें प्रगति करनी चाहिए। शास्त्र पुराणोंमें आया है कि जब किसी श्रद्धालुने निर्ग्रन्थको देखा तो उसकी विनयसेवा करनाही कर्तव्य समझा। कदाचित् कोई व्रती कुछ पदच्युतभी हो जायतो घृणा करके उसकी सम्हाल नहीं की जा सकती। सेवा विनयसे उसकी सम्हाल याने स्थितिकरण होता है। साधु पुरुष आचरणसे महान माने गए हैं। चाहे उनका ज्ञान थोड़ा भी हो। शास्त्र प्रवचन मात्रका ज्ञान मुक्तिका बीज नहीं बन जाता है। कोई गृहस्थ सोचे कि मेरे ज्ञानके सामने यह कोई बड़ा ज्ञान नहीं लेकिन वे यह नहीं समझे कि आत्माचरण सहित ज्ञानही प्रशँसाके योग्य ज्ञान है। ज्ञान द्वारा हम वस्तुका भले प्रकार निर्णय करें और नये पक्षपातको छोड़कर स्वरूपमें गुप्त होने का उद्यम करें। जो पुरुष पक्षपात और विकल्प जालसे रहित होकर ज्ञानसेवा करते हैं वे ही समयसारामृतका पान करते हैं। हम सबका कर्तव्य है कि तत्व ज्ञानके मार्गसे चलें और तीर्थ प्रवृत्तिका उच्छेद न करें। यदि वह तीर्थ परम्परा रहेगी तो समाज के भावी संतानके प्राणी सन्मार्ग पाकर धर्मामृतका पान कर जीवन सफल कर सकेंगे। अतः भैय्या ! हम आप सबका कर्तव्य है कि तीर्थप्रवृत्तिका उच्छेद न करें ताकि भविष्यमें यहाँकी धारामें सत्संग पाकर अनेकों भव्य प्राणी आत्महितका योग पा सकें और स्वयं हम आप विकल्प विग्रह शल्य व धर्मविरोधक भावनासे उन्मुक्त रह कर स्वयंमें सहज चैतन्य तेजका अनुभव कर इस दुर्लभ नरभवको सफल कर सकें।

यएव मुक्त्वा पक्षपातं स्वरूपगुप्ता निवसंति नित्यमु।
विकल्प जालच्युत शान्तपक्षास्त एव साक्षादमृतं पिवन्ति ।। "६९"

६६८–स्वभाव और घटनाका परिचय–

इस कलशमें बताया जायगा कि समस्त नय पक्षको छोड़कर जो स्वरूपमें गुप्त होता है ऐसा पुरुष ही इस समयसार साक्षात अमृतका पान करता है। इससे पहले एक ज्ञातव्य बात सुनो– यह मैं हूं क्या, और यहाँ घटना घट क्या रही है। इन दोनो निर्णयों पर वे दो नय बने हैं जिन नयोंके पक्षपातसे हमें दूर होना है, मैं क्या हूं ? इसका सीधा उत्तर यह है कि मैं अपने आप स्वयं निरपेक्ष सहज अपने ही सत्वके कारण अन्य द्रव्यके सम्पर्क बिना जो कुछ हूं सो ही मैं हूं। अच्छा और इस समय घटना क्या घट रही ? घटना यह घट रही है कि जो मेरे साथ पूर्व बद्ध कर्म हैं ये सब अनादि परम्परासे बन्धे चले आ रहे। इन कर्मोंमें जिस समय ये कर्म बँधे थे उस समय इनमें प्रकृति बँध, स्थिति बन्ध, प्रदेश बन्ध, अनुभाग बन्ध पड़ गया था याने उस कालमें ये कर्म कोई कहने मात्रके नहीं हैं किन्तु ये अपनी प्रकृतिको रखते उनकी स्थिति भी है, अनुभाग भी है और प्रदेश तो हैं ही। तो मुख्य बात यहां याद रखिये कि इनमें अनुभाग पड़ गया था याने ये कर्म स्वयं उस ढंगके हो गए जिनमें अनुभाग पड़ा था तो उनकी स्थितिपूर्ण हुई, उदयमें आये, यह उनका ही काम हो रहा है। कहीं स्थितिसे पहले उदयमें आते, उसे कहते उदीरणा। जैसे कोई एक चूनेका डला है, अभी अभीका बना है मानलो उसकी म्याद है कि वह डला ६ माह तक बना रहेगा, याने ६ माह बाद वह डला फूल जायगा और कदाचित कोई योग ऐसा आये कि कोई बीचमें ही उस पर पानी डाल दें तब तो फिर वह डला दो चार दिनमें ही पिघलकर

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

फूट जायगा तो ऐसे ही कर्ममें जो स्थिति बँधी थी वह स्थिति पूर्ण हुई कि कर्ममें विकार आया, अनुभाग फूटा तो कर्ममें ही बिगाड़ आया। मूल बात यह है। जैसे दर्पणके सामने हाथ करके हिलाता तो हाथका विकार हाथमें ही आया अन्य वस्तुमें नहीं। तो पूर्वबद्ध कर्मका जो अनुभाग फूटा तो कर्ममें आया। कर्ममें उसका फल हुआ। कर्म अचेतन है, वे अनुभव नहीं कर पाते, मगर वह बिगाड़ कर्ममें है और चूँकि यह जीव उपयोगवान है, ऐसा ही उपादान है, स्वच्छता है तो यहाँ उस प्रकारका स्वच्छतामें विकार आया। जैसा सामने जिस तरहका हाथ किया वैसा ही दर्पणमें विकार आया। विकार दो जगह हुआ। हाथका विकार हाथमें, दर्पणका विकार दर्पणमें। मगर घटना यह घट रही कि इस हाथका निमित्त सन्निधान पाकर यह दर्पण स्वयं अपनी परिणतिसे उस विकाररूप परिणम गया। ऐसी ही घटना यहाँ घट रही है, एक सहज चैतन्यस्वरूप होने पर भी अनादिसे ऐसा ही प्रसंग बना चला आ रहा है कि यहाँ पूर्वबद्ध कर्म उदित हुए और उनका प्रतिफलन हुआ। यह स्वच्छताका ही परिणाम है। उस प्रतिफलनमें अज्ञानी पुरुष अहंबुद्धि करता है कि मैं यह हूं। यह अपनी सुध भूल जाता है, और ज्ञानी पुरुष अपनी कुछ सम्हाल करता फिर भी नहीं सम्हाल पाता। उसके साथ रागद्वेष भी चलते रहते, पर वह अपनी प्रतीति ठीक ठीक बनाये रखता। ऐसी घटना वहाँ चल रही।

६६९—स्वभाव और घटनाके रूपका दर्शन—

यहाँ पर दो बातें आयीं। स्वभाव देखो तो वह है अविकार। जैसे अभी आरतीमें स्वभावकी स्तुति की गई। वह स्वभाव निर्विकार नहीं किन्तु अविकार है। परमात्मा हैं अविकार और स्वभाव है अविकार याने स्वरूपमें विकार नहीं, स्वरूपमें कष्ट नहीं, विषमता नहीं। उस स्वभावकी दृष्टिसे देखा जाय तो यहाँ क्या है? कहाँ कर्मबन्ध? यह तो अपने आपमें अकेला ही विराजमान है, और व्यवहार नयसे देखा जाय तो इसमें कर्मबन्ध है। ये दो बातें जैसे सामने आयीं, और दोनों ही सत्य हैं यह उपचार वाला व्यवहार नहीं। यहाँसे देखें तो कर्मसे बद्ध है और यहाँसे देखें तो कर्मसे अबद्ध है, ऐसी दो दृष्टियोंसे निरख करने को बात चल रही है। अब ऐसी स्थितिमें भी जो कुछ इस आत्मामें परिणाम बना, अज्ञानरूप परिणाम बना तो हुआ क्या? अतत्त्वकी उपलब्धिके रूपसे ज्ञानका ही उस रूप परिणमन बनता। देखो आत्मा ज्ञानस्वरूप है हर स्थितिमें। विकार हुआ तो भी वहाँ ज्ञानके माध्यमसे बात आयी, सम्यग्दर्शन हुआ तो भी वहाँ क्या हुआ? इस ही ज्ञानका जीवादिक श्रद्धान स्वभावसे परिणाम। सम्यग्ज्ञान हुआ तो वहाँ भी क्या हुआ? इस ही ज्ञानका तत्वोपलब्धिरूपसे परिणाम। सम्यक चारित्र रूप हुआ तो क्या हुआ? इस ही ज्ञानका रागादिक परिहार स्वभावरूपसे परिणमन। जैसे इस रत्नत्रयमें यह बात चल रही तो रत्नत्रयके विपरीत याने मिथ्यात्व, अज्ञान, अचारित्र इनमें भी यह चल रहा ज्ञानका उस रूपसे परिणमन। सुख क्या? ज्ञानका उस रूपसे परिणमन। जैसे यह मेरे लिए बड़ा अच्छा है, मुझसे अच्छा कौन है... इस प्रकारके जो ज्ञानके विकल्प हैं उसका नाम है सुख परिणाम। दुख रूप परिणाम क्या? ज्ञानका उस रूप जो विकल्प है जो अस्वभाव है उसमें रहे वही हुआ दुःखरूप परिणाम। तो शान्ति क्या? ज्ञानका अन्य रूपसे कुछ भी परिणमन नहीं, ज्ञानका ज्ञानरूपसे परिणमन। ज्ञानमें ज्ञानरूप ही समाया हो, ज्ञानदर्शन जाननरूप परिणमन हो वहीं है शान्तिका परिणाम। तो देखनेमें दो बातें हुईं—व्यवहारनयसे देखा तो कर्मसेम्बद्ध है, निश्चयनसे देखा तो कर्मसे अबद्ध है, स्वभावसे देखा तो कर्मसे अबद्ध है। निश्चयनय केवल एक वस्तुको विषय करता व्यवहार घटनाको निरखता। यहाँ दो तरहसे निरखना है। कर्मसे बँधा है यह भी तथ्य

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

और कर्मसे नहीं बंधा यहभी तथ्य, स्वभावदृष्टिसे देखेंतो कर्मसे अबद्ध और व्यवहारसे देखीतो कर्मसे बद्ध । यहाँ निमित्त नैमित्तिक योग निरखा जारहा और वस्तु स्वातंत्र्यभी दिख रहा । कर्म अपने अनुभागमें यहाँ परिणम रहा । उसकी वहीं परिसमाप्ति है मगर उसका निमित पाकर जीव—अपने ज्ञान विकल्परूपमें उस प्रकार परिणम रहा । तो कोई भी पदार्थ किसी दूसरे पदार्थकी परिणति के साथ नहीं परिणम रहा । अर्थात दो परिणामों को कोई एक करता हो ऐसी बात नहीं, उसका परिणाम वहाँ, इसका परिणाम यहाँ, पर विकार परिणाम, विषम परिणाम, जितने भी होते है वे निमित्त सन्निधानके अभावमें कभी हो ही नहीं सकते । बस यह निमित्त नैमित्तिक योग है मगर परिणाम सबका खुदका खुदमें चल रहा, यह निरखनेकी भी मूल बात है । तब यों विदित होता कि सर्वत्र यहां यह हो रहा है ।

६७०—आत्महितके उपायमें लगनेकी अभिलाषा—

अब एक जिज्ञासा होती है कि स्वभावसे यह मैं आत्मा अबद्ध अस्पृष्ट नियत असंयुक्त हूं और घटनासे देखे तो बद्ध है, स्पष्ट है, अनियत है और संयुक्त चल रहा, ये सब बातें चल रही हैं, मगर काम की बात पर तो आइये—मैं कैसे उस शान्त समयसार परमात्मतत्वका अनुभव कर सकूं ? भाई देखो व्यवहार अनेक प्रकारके होते है और उन व्यवहारोंसे उत्तरोत्तर अध्यात्म ज्ञान बढ़ावें । व्यवहार नयसे हमारा ज्ञान बनता और चलकर आखिरी व्यवहार होता है गुणभेद करने वाला । व्यवहारमें कितनी ही बातें जानी जाती हैं । व्यवहारनय तथ्यको ही जानता, असत्यको नहीं । वह उपचारकी चीज है जो पर कर्तत्व ला दे, जो पर स्वामित्व ला दे, जो पर निर्मितता ला दे, ये तीन प्रकारके जो निरखन हैं ये उपचार हैं, इसने दूसरेको यों किया, यह इसका मालिक है, यह इसके द्वारा रचा गया था, इस तरहकी जो निरखन है वह उपचार है । यहाँ उपचारकी बात नहीं कही जा रही किन्तु प्रमाणके अंशभूत जो दो नय हैं उनका कथन चल रहा है । द्रव्यार्थिकनय, पर्यायार्थिकनय, निश्चयनय, व्यवहारनय । देखो दो प्रकार से, मगर ज्ञानी पुरुष किस तरह से निर्णय कर करके लाता कि आत्मा अखण्ड एक स्वभाव है इसका, देखिये विषय तो है यह शुद्धनयका मगर निर्णय दिया व्यवहारनयने । व्यवहार ही प्रतिपादक होता है निश्चयनय नहीं । यहाँ तक हम आये एक परमशुद्ध निश्ययनय तक, कैसे आये ? जानना तो सब है मगर एक जरा ध्यान बनायें, अपने आपको हटा हटाकर पर तत्वोंसे परभावों से हटा हटाकर आगे जरा बढ़ें । स्वभाव बलसे परभावोंसे हट हटकर अपने आपमें मग्न होनेकी बात यह पौरुषमें आनी चाहिए ।

६७१—भौतिक संगव्यामोह परिहारकी प्रथम आवश्यकता—

अहो सीधा एकदम सामने जो एक भौतिकोंकी भिड़न्त होती है यह भिड़ंत चल रही है मनुष्योंके इस धन वैभव आदिकके कारण प्रायः सभी मनुष्य एक बहुत बड़ी परेशानी अनुभव कर रहे हैं । धन वैभव कम हो तो क्या, अधिक हो, तो क्या परेशानी क्या हैं ? उस धन वैभवसे भी ध्यान हटाना होगा । वे सब बाह्य तत्त्व हैं, जड़ हैं भिन्न हैं, उनको इस अमूर्त आत्मासे क्या मतलब ? चीज है, पड़ी है, इससे पहले भी तो हम किसी भवमें थे, इस भवके लिए वहांकी बात कुछ हैं क्या यहाँ मरनेके बाद भी तो हम रहेंगे । हमारे लिए यहाँकी बात है क्या कुछ रहेगी ? अब और तो जाने दो घरसे यहाँ मंदिरजी तक आये तो आपका घर या आपकी तिजोरी आपके साथ चिपककर आयी क्या ? नहीं आयी, तो फिर कौनसी ऐसी बात है जो यह धन वैभव आपका कहलाये ?

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

केवल एक मूढतावश, मोहवश उस प्रकारका ख्याल बनाया। तो ऐसा व्यर्थके झंझट क्यों लादे जारहे हैं? ये सब धन वैभव जीर्ण तृणके समान हैं, उनमें उपयोग देनेसे इस भगवान सहज परमात्मतत्त्व का यहाँ अपघात हो रहा है, उसकी जहाँ सारी बरबादी चल रही है न कुछ जैसो एक थोथो बातमें। एक भजनमें आया है बातथी कितनीसी जड़में, हो गया कितना बतंगड। भला कोई ऐसा प्रश्न करे कि इस जीवपर जो इतनी बडी आफत लगी हैं, मरा, कीट हुआ, पशुपक्षी हुआ, पेड़ पौधा, नाना योनियोंमें जा रहा, इतना बडा जो एक दण्ड मिल रहा है इतना कठिन जो कष्ट भोगना पड़ रहा हैं तो यह किस कारण इतना बडा कष्ट हुआ ? तो लोग इसके उत्तरमें कहते हैं ना ? मिथ्यात्वके कारण मोहके कारण इतना बड़ा कष्ट हुआ। मगर उस मोहके मायने क्या ? अरे इसने पर्यायको माना कि यह मैं हूं, देहको माना कि यह मैं हूं, अरे भला उसने किसीको मारा पीटा नहीं, किसीको सताया नहीं किसीको कष्ट नहीं पहुंचाया। बस जरासा सोचा इस देहको देखकर कि यह मैं हूं, बस इतनीसी बात का इतना बड़ा दण्ड ? अरे इतनीसी बात यह सब ऐबोंकी जड़ है, परमें अहंबुद्धि होना परभावोंमें अहंबुद्धि होना सबसे बड़ी गल्ती है। अज्ञानमें सारे अज्ञानमय भाव क्यों होते ? मूलमें उसने इतना अज्ञान बसाया कि जितनी कर्मलीला है उसे माना कि यह मैं हूं, उससे जो भी रचना होगी वह सब अज्ञानमय भावकी रचना होगी। वह और कुछ लायगा कहाँसे ? पहले तो इन जड़ धन वैभवोंसे निपटलें कि ये मेरे नहीं, ये मेरी बरबादीके हेतुभूत है। इनको आश्रयभूत करके जो पातक बनता है वह बड़ा कठिन बनता है, इन धन वैभवोंकी हमें अपने ज्ञानमें स्थान न देना चाहिए।

६७२–शाश्वतशान्तिके लाभके अर्थ पौद्गलिक मायाके परिहारका सर्वप्रथम कर्त्तव्य—

यदि शाश्वत शान्तिके उपायका बड़ा काम करना है तो उसके लिए भौतिकसुखत्यागका बड़ा साहस बनाना पड़ेगा कोई कहे अच्छा चलो यह तो ठीक है मगर जो ये लड़के बच्चे, मातापिता वगैरह बड़े सुहावने लगते है इनके लिए तो कुछ करना होगा। - - - - -अरे वे माता मिता पुत्रादिक है क्या ? ये जो घरमें जीव दिख रहे ये सब है क्या ? देह जीव विधि पिण्डरूप। याने शरीर, चेतन और कर्म, इन तीनका जो पिण्डोला है उससे लोग मोह करते। माया वह चीज है जो अपने सहजस्वरूपमें न हो। वह भी तो भिन्न है, ये सब स्त्री पुत्रादिक कुटुम्बीजन दिख रहे हैं ये सब अपने अपने कर्म लिए हुए हैं। सभी जीव अपने अपने कर्मोदयसे सुखी दुखी होते हैं, सभी अपने अपने कर्मोंके उदयसे जीवन मरण को प्राप्त होते है। उनमें यह जीव मिथ्या अध्यावसान करता है कि ये मेरे है मैं इनको सुखी करता दुखी करता - - -अरे उनसे भी हट।,, मगर यह देहके बन्धनका तो एक विकट रोग लगा है। अभी इसके शरीरमें जरासा काँटा चुभ जाय या कोई मक्खी मच्छर आदि बैठ जाय तो फिर देखलो इसकी क्या हालत होती है। यह कोई गप्प करनेकी चीज नहीं। इस बातका अनुभवतो सभीको है। एक कथानक आया है कि कोई बाबूजी बम्बई जारहे थे तो उनके पास कुछ सेठानियाँ आयी। किसी सेठानीने कहा बाबूजी आप हमारे बच्चेको खेलनेका हवाई जहाज ले आना, किसीने कहा हमारे बच्चेको रेलका इञ्जन ले आना, किसीने कुछ कहा किसीने कुछ। बादमें एक बुढ़िया दो पैसे लेकर आयी और बाबूजीको वे पैसे देते हुए बोली बाबूजी हमारे ये दो पैसे लेना और हमारे मुन्नेको खेलनेके लिए बम्बईसे मिट्टीका खिलौना ले आना। तो बाबूजी बोले बुढ़िया माँ, बेटा तो तेरा ही खिलौना खेलेगा, बाकी सेठानियाँ तो सिर्फ गप्प करके चली गई। तो ऐसी केवल गप्प करनेसे बात नहीं बनती। उसके लिए तो कर्तव्य करना होगा। इन देह धारियोसे व इन

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

धन वैभवादिकसे सभीसे ममत्व हटाना होगा। देखो यह दिखने वाला देह है क्या चीज ? जिस तनको सजाते हैं इतराते रूप लखकर, यह तन है क्या चीज ? माँस मज्जा खून पीव, मलमूत्रादिक का घर। यह तन मिटनेसे पहले दुःखोंका बीज बो जाता। तो इस देहसे भी मोह हटावो।

६७३ कर्मत्व और कर्मविपाककी हेयताके परिचयमें उनके निर्माण विधानका दिग्दर्शन—

अब जरा कुछ और भीतर चलो तो इन पौद्गलिक कर्मोंका तो कुछ दर्शन नहीं, मगर कर्मलीला का यह अनुभव करता है। इस कर्मलीलाके बारेमें सुना तो है आगमसे और इसे युक्तिसे भी जानें। आखिर जब कोई चीज अकेली हो तो वह एकरूप रहेगी। उसमें नाना परिणतियां क्यों होंगी ? युक्तिसे जानें किसी पदार्थमें विषम परिणति होती, अगर भिन्न भिन्न परिणमन होते हो तो निश्चित समझो कि यहां कोई पर सम्पर्क है, पर सम्पर्क बिना विभिन्न परिणतियाँ न चलेंगी। वह पर क्या है ? उसे किसी भी नामसे बोलो, उसे कर्म नामसे कहा गया। वह कर्म रूप, रस, गंध, स्पर्शका पिण्ड है, वह ऐसी जाति का है कि जीवके रागद्वेष भावका निमित्त पाकर वह कर्मरूप परिणम जाता है। कर्मरूप परिणमने की भी एक कहानी बेजोड़ कहानी है, जो नवीन कर्माश्रव होता है याने जो कार्माण वर्गणायें कर्मरूप नहीं परिणमी हैं वे कर्मरूप परिणम जायें ऐसा जो आश्रव होता है उसका निमित्त कारण कौन है ? उसका निमित्त कारण बताया गया है उदयागत द्रव्य प्रत्यय। जो द्रव्यमें आये हुए कर्म हैं वे नवीन कर्मके आश्रवके कारण हैं, सुगमतासे तो यह समझमें आया कि जीवके रागद्वेष मोह हैं, वे नवीन कर्मके आश्रव के कारण तो उदयागत कर्म हैं और उदयागत कर्ममें नवीन कर्मोंके आश्रवका निमित्तपना आया, इसमें निमित्त हैं जीवके रागद्वेष मोहभाव। तो अब देखो कैसा जाल पड़ा है यहां। है वस्तु स्वातंत्र्य, एकका परिणमन दूसरा नहीं कर रहा, मगर जाल तो देखो जो कर्म उदयमें आये वे कर्म नवीन आश्रवका कारण बने और ये जीवके रागद्वेष मोह भावका निमित्त बने, और उस निमित्तको पाकर इनमें निमित्तता ऐसी आयी कि नवीन कर्मका आश्रव हुआ। कितना जाल चल रहा है ? चल रहा है वह स्वयं ? जैसे दृष्टान्तमें समझो कि जिस कमरेमें अंधेरा रहता है उसमें कोई बालक मध्य दोपहरमें दर्पणको इस तरहसे करे कि सूर्य भी दर्पणके सामने पड़े और वह अंधेरा कमरा भी उसके सामने आ जाय तो देखो उस कमरेमें बाहरसे प्रकाश आ जाता है। है प्रकाश दर्पणका निमित्त पाकर वहाँ, मगर दर्पणको ऐसा किया कि सूर्यका सन्निधान रहे और कमरेमें दर्पणका सन्निधान रहे तो उस कमरेमें वैसा ही पूरा प्रकाश वहाँ आ जाता है। अब यहाँ यह बताओ कि कमरेमें जो प्रकाश आया है उसका निमित्त क्या है ? उस का निमित्त है दर्पण। पर उस दर्पणमें, कमरेमें प्रकाशका निमित्तपना आया उसका निमित्त क्या है ? सूर्य, तो मूल तो सूर्य हुआ। इसीलिए बताया है आश्रवाधिकार की प्रथम गाथावोंमें कि वास्तवमें रागद्वेष पर्याय ही आश्रव हैं क्योंकि वे द्रव्य प्रत्ययमें नवीन कार्माण वर्गणाओंका कर्मपनेका निमित्तत्व आनेपर उसमें निमित्त बनते है। तो ये सब अपने अपने उपादानमें चल रहे हैं।

६७४ परभावसे हटकर स्वभावमें रमनेकी विधिकी खोज—

यहाँ यह बात देखना है कि किस तरहसे हम परखें, परभावोंसे हट हटकर स्वभावमें आयें। किस तरहसे हम उस अखण्ड तत्त्वमें अपनेको मग्न कर सकें ? यह देह क्या है ? इससे भी निराला, कर्म से भी निराला और कर्मका जो परिणमन है, स्वच्छताका जो विकार है यह नैमित्तिक है, औपाधिक है, परभाव है, इससे भी मेरा क्या मतलब ? ये मेरे स्वभावमें नहीं हैं। अगर ठीक ठीक ज्ञान हो जाय तो ये रागादिक भाव लावारिस होकर खुद मिट जायें, क्योंकि इन्हें जीवने अपनाया नहीं, पुद्गल कर्म इन्हें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अपनाते नहीं, उसकी वह परिणति ही नहीं, तब ये रागादिक भाव लावारिस होकर चले जायेंगे। ये सम्यक्त्वीके स्वभावमें होते नहीं, तो यह लावारिसपने का ज्ञान ज्ञान ही कर पाता, जिसको न ज्ञान कर अज्ञानीजन अपनी संसार परम्परा बढ़ाते है। जाना, समझा इनसे भी निराला, तो चलो इन विकारोंसे भी अपनेको निराला पाया। तो मैं हूं क्या ? अरे यह मैं आत्मा अनन्त शक्तिमय हूं, ज्ञान दर्शन आदिक जिसमें अनन्त शक्तियाँ हैं, अरे ठहरो—अभी और गम्भीरतासे विचार करना है। देखो स्वानुभूतिके लिए द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव ये चारों परिचय तत्काल मदद देने वाले नहीं हैं, याने वस्तुको पहचान ५ तरहसे होती द्रव्य, क्षेत्र, काल, भेदरूप भाव और अभेदरूप भाव। द्रव्य दृष्टिसे मैं क्या हूं ? अनन्त गुण पर्यायों का पिण्ड और क्षेत्र दृष्टिसे मैं क्या हूं ? इतना लम्बा चौड़ा विस्तार वाला, काल दृष्टिसे क्या हूं मैं? जो हमारी परिस्थिति बन रही, जो परिणति बन रही, और भेदरूप भाव दृष्टिसे क्या हूं मैं ? अनन्त ज्ञानमय, दर्शनमय, चारित्रमय, अनन्त शक्तायात्मक, पर ऐसे विकल्पोंमें स्वानुभूति नही जगी, स्वानुभूति के लिए भूमिका तो बनाता है यह सब परिचय, मगर स्वानुभूतिके उन विकल्पोंके क्षणमें नहीं। तो अनन्तर पूर्वरूप क्या है ? अभेद स्वभाव रूपसे विचार। वह भी एक विकल्प है इसीलिए जब वह विकल्प भी टूटे और एक अखण्ड स्वभावका अनुभवन हो तो वहाँ एक स्वानुभूतिका रस उत्पन्न होता है, दोनों प्रकारके अनुभवनोंमें बड़ा अन्तर है। अभी आप मान लो हलुवा खा रहे तो जब तक आप उसके प्रति यह विकल्प कर रहे कि इसमें तो इतना घी पड़ा है, इसमें मीठा कम है, ज्वादह हैं, कम सिका है, अधिक सिका है—तो आप उसके खानेका पूरा आनन्द नहीं लूट पाते, और जिस कालमें आप उसका विकल्प छोड़ दें, एक चित्त होकर उसे खायें तो उस समय आप अनुभव करेंगे कि इसके खानेमें बड़ा आनन्द मिल रहा। तो जब तक किसी तरहका विकल्प है तब तक स्वानुभव रसका अनुभव नहीं होता। तो इस तरह ये सब कामके बने। जितना भी व्यवहार है वह सब काभका बनता चला गया। आखिर उस अखण्ड एक भूतार्थ ज्ञायक स्वभाव तक इस व्यवहारनय ने पहुंचा दिया। जैसे कोई द्वारपाल किसी को राजाके पास तक पहुंचा देता मगर जहांसे राजा दिखता है वहाँ तक ही पहुंचाता है और कहता है कि अब तो राजासे मिलना आपका काम है। वहाँसे वापिस आकर वह द्वारपाल अपनी ड्यूटी पर लगता है, तो ऐसे ही यह व्यवहारनय इस उपयोगको इस चेतन राजा तक ले जाता है, कहाँ तक ? जहाँ तक इसका दर्शन न हो जाय। इसके बाद व्यवहार छूटते हुए मानो यह कहता है कि अब आप अकेले खूब मिलें, हमारा काम पूरा हो गया।

६७४ नयपक्ष रहित ज्ञान द्वारा रसका उपभोग—

हम उस अखण्ड ज्ञान तत्त्व तक पहुंचे कैसे ? इन नय पक्षोंको छोड़कर। जहाँ व्यवहारनय हेय है वहाँ निश्चयनय भी हेय है, विकल्प दोनोंमें है और उपयोगिता दोनोंमें है फिर भी दोनों ही छूटेंगे, क्योंकि ये दोनों ही विकल्प हैं। ऐसे नय पक्षपातको छोड़कर जो स्वरूपमें गुप्त होकर उसका एकरस होकर स्वाद लेता है वह स्वानुभूतिका सच्चा अनुभव करता है। कोई कहे कि अब कैसे करें सच्ची स्वानुभूति ? तो कहते कि अरे कैसे बतायें ? आप मानो रोज रोज खूब गुलाब जामुन खाते हैं तो उसकी मधुरताको अच्छी तरह बता सकते कि कैसा होता है गुलाब जामुनका स्वाद। आप किसीको शब्दों द्वारा कितना ही समझायें कि गुलाबजामुन बड़ा मीठा होता है, उसमें मिश्रीका सीरा लगा होता है, मिश्रीके स्वादसे भी बढ़कर उसका स्वाद होता है—यों कितना ही शब्दों द्वारा आप समझायें पर वह असली समझ न बना पायगा। असली समझ तो उसकी तब बनेगी जब आप उसे गुलाबजामुन खिला दें। ठीक

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

इसी तरह आत्माके इस सहज परमात्मतत्त्वके अमृतपान की बात है। उस आत्माके स्वरूपकी सही समझ उसके बनती है जो अपने ज्ञानमें इस ज्ञान स्वरूपको ले रहा है—ओह यह मैं हूं, इसकी क्या स्थिति है। ऐसे धीरे धीरे गुप्त कैसी तरंगसे निस्तरंग होनेकी स्थिति बनती है, ज्ञान प्रकाश है ज्ञानमें और वहांसे जब और अन्दर उतरते हैं, इस ज्ञान ज्योतिका ज्ञान द्वारा जहाँ अनुभव होता है, क्या कहा जाय उसे ? कौन सी बात किस तरह कही जाय ? वहाँ जो इस तरहके रसका पान करता है वह ही अनुभव करता है। ऐसे तत्त्वको अनुभवना है तो उसके उपायमें यह काम करें कि इन विभावोंसे उपेक्षा करें और स्व-भावमें लगें, सब ज्ञानोंका प्रयोग इस तरहसे लें, एक साधारण साधारण बातोंमें अटक करके अगर अपने जीवनको खो दिया तो यह कोई भली बात नहीं है, इस तरह सर्व नयपक्षपातों को छोड़कर समस्त विकल्प जालोंसे च्युत होकर, शान्त होकर जो मनुष्य अपने ज्ञान द्वारा इस ज्ञान स्वभावमें उतरता है, ज्ञानमें रहता है, ज्ञानमें सहज ज्ञानतत्त्व हो जब ज्ञेय होता है, जहाँ ज्ञान ज्ञेयका भेद नहीं रहता है, ऐसी स्थितिका जो ज्ञान पामे वह ज्ञान इस साक्षात् अमृतका पान करता है।

एकस्य बद्धो न तथा परस्य् चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ।
यंस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव "७०"

६७६ पक्षविकल्पसे अतीत तत्त्ववेदीके स्वानुभवका अवसर—

एकके मतमें जीव कर्मसे बद्ध है और एकके मतमें जीव कर्मसे बद्ध है ऐसा नहीं है, ये दोनों पक्षपात हैं, और, जो तत्त्ववेदी है, जो एक सहज स्वभावका अनुभव करने वाला है, उस सहज चैतन्य स्वभाव पर दृष्टि रखने वाला है, ऐसा तत्त्ववेदी पक्षपातसे च्युत होता हुआ जानता है कि चित् तो चित् ही है, चैतन्य तो चैतन्य ही है, कर्मसे बँधा है वह भी पक्ष और कर्मसे नहीं बँधा है यह भी पक्ष। जैसे किसी पुरुषसे कहा भाई तुम स्टेशन चले जावो रात्रिके समय ११ बज, और, मान लो स्टेशन दो मील दूर है और रास्तेमें कुछ जंगलके निशान भी मिलते हैं, उससे कहा कि देखो तुम स्टेशन चले जावो, बड़ा जरूरी काम है, और देखो कुछ दूर चलकर एक बरगदका पेड़ मिलता है, उसमें लोग बिना कामका कहते हैं कि भूत रहता है, देखो उसमें भूतवूत कुछ नहीं रहता, तुम निडर रहना। अब वह चला, और जब कुछ दूर चलकर बरगदका पेड़ आया तो उसके चित्तमें आया कि भूत नहीं है, अरे नहीं तो पीछे की बात है, पहले तो उसके उपयोगमें भूत आया। अरे वह तो पेड़ है, अरे है यह भी बात न सोचें, नहीं है, यह भी बात न सोचें। तो शंकाका कोई काम ही न रहे। इस प्रकार एकके स्वरूपमें दूसरेकी चर्चा क्यों ? जो तत्त्व वेदी पुरुष है वह इस सहज चैतन्य स्वरूपको निरख रहा है, उस निरख रहे की स्थिति में उस तत्त्ववेदीके, न तो कर्मसे बद्ध है यह विकल्प है, न कर्मसे अबद्ध है यह विकल्प है, केवल एक सहज चैतन्यस्वरूप ही उसके लक्ष्यमें है। जैसे छठी गाथामें कहा कि न प्रमत्त है न अप्रमत्त है किन्तु वह तो जो है सो है, पावि होदि अत्तमत्ता णपमत्तो जागओं दुओ भोवं., एवं भणंति बुद्धं वावो जो णावोके दो अर्थ हो सकते हैं—नायः भी होता है और ज्ञातः भी होता है, जो जाना गया सो ही वह है अथवा वह नाथ तो जो है सो ही है, नाथ मायने न अथ अर्थात् जिसकी आदि नहीं, ऐसा जो अनादि स्वरूप है वह चेतन तो चित् चित् ही है।

६७६ विकल्पोंसे गुजरकर अविकल्प भावमें आनेके पौरुषका विधान—

अब देखो जाना कहाँ पर है ? व्यवहार निश्चय दोनों पक्षोंसे अतीत एक निर्विकल्प दशाके लिए जाना है, विकल्प बाधक तो होते हैं मगर कौनसे विकल्प कितने बाधक होते, यह निर्णय रखना होगा।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जो प्राक पदवीमें हैं उसको यह निर्णय रखना होगा, नहीं तो क्या हालत होगी। हम मुनिके बारेमें तो इस तरहकी बात कहते रहें कि मुनिके महाव्रतका भाव है वह भी राग है, वह भी विकल्प है, वह भी विष है। विष शब्दसे तो न कहना चाहिए, प्रमाद शब्दसे कहना चाहिए, मगर विष शब्दसे भी कह डालते हैं। वहाँ तो इतनी बड़ी आलोचनात्मक दृष्टि रहे और यहाँ हम खूब जब चाहे जो चाहे खायें पियें, अव्रत से रहें और हमारा यह अव्रत भी विष है ऐसा एक ओर भी दृष्टि नहीं जाती। अरे जब महाव्रत विकल्परूप है तो फिर खुदमें जो अव्रत हैं, असमय है उसकी ओर दृष्टि क्यों नहीं है ? मैं अपने भीतरके अनुभवमें बढ़ूं, प्रतिदिन कमसे एक बार तो उस स्वानुभूतिके लिए पौरुष तो हो रोज-रोज तो एक अपने आपके असंयमके प्रति तो मौज रहे उसमें घृणा न हो और व्रतीजनोंके संयमकी ओर दृष्टि रहे तो विष जैसा वह कर रहे। यह तो उस तरहकी बात होगी जैसे गाड़ीमें एक ओर हाथी जोतना और दूसरी ओर बकरा। देखो दिगम्बर परम्परामें जो कुछ ज्ञान और जो कुछ पद्धति बनी है वह संस्कृतिके विच्छेदमें कुछ शून्यवत् रहेगी एक अपने आपसे काम रखो, अपनेसे प्रयोजन रखो। कभी यह न सोचो। हमारे चित्तमें तो कभी यह भी बात नहीं आती कि जैनियोंकी संख्या बढ़े। केवल यह बात चित्तमें आती है कि वस्तुका जो स्वरूप है, जो बात है वही यथार्थ तत्वज्ञान जगे। जैन कहलानेसे क्या होता और जैन न कहलाने से क्या बिगड़ता ? तत्वदृष्टि अगर हो पायी है तो वह अपना हितकर पायगा और यदि नहीं है तो न कर पायगा।

६७८—व्यवहार व निश्चयमें किसीका विरोधकर किसीका एकान्त करनेमें सिद्धिका अभाव—

यह जीव कर्मोंसे बद्ध है: यह बात गलत नहीं है, उसका प्रत्यक्ष प्रमाण है, मगर कर्मसे बँधा है ऐसी संयोगी दृष्टि रखकर उसहीमें एक उमंग रखकर, बताकर विद्वता छाटकर कौनसा लाभ पायेंगे ? अच्छा कर्मसे नहीं बन्धा है, बात तो सही है, स्वभावसे देखो कर्मसे कहां बंधा है ? कर्मसे नहीं बँधा है, लेकिन कर्मसे नहीं बँधा है, इसका कोई एकान्त पक्ष करे, दूसरी बातकी प्रतीति न करे तो वह स्वच्छन्द हो जायगा। अभी कुछ ही वर्ष पहले एक ऐसी घटना हुई है। बनारसमें कोई एक बेदान्तका विद्वान पंडित था। उसके पास पढ़ने वाले कई शिष्य थे। तो वह पंडित कहा करता था, ब्रह्म एक है, अपरिणामी है, उसका किसीसे कुछ मतलब नहीं, वह एकदम अनादि अनन्त सर्वव्यापक है और उस वेदान्ती गुरूकी आदत कुछ ऐसी बन गई थी कि किसी माँस वालेकी दूकानमें जाकर प्रतिदिन रसगुल्ले खाया करता था। शिष्यने बहुत समझाया पर न माना उसके एक शिष्यको यह बात अच्छी न लगी तो एक दिन शिष्यको बडी दया आई तो उस दूकान पर पहुंचा और वहाँ गुरूजीके गालोंमें दो चार तमाचे जड़ दिया। गुरूजी बोले अरे-अरे यह क्या कर रहे ? मारते क्यों ? तो शिष्य बोला आप इस मांस वालेकी दूकान पर रसगुल्ले क्योंखाते ? ....अरे कौन खाता ? यह तो सब प्रकृतिका धर्म है, ब्रह्मतो अपरिणामी है, वह खाता, पीता, कहां ? तो उसके उत्तरमें शिष्य बोला अरे ये तो तमाचे किसने जड़े, किसके जड़े। यह तो सब प्रकृतिका धर्म है। इसमें तुम्हें बुरा मानने की क्या बात ? शिष्यका इस प्रकारका उत्तर पाकर गुरुजी की आँखे खुली और बोल उठे कि अब हमें सही सन्मार्ग मिला। तो स्याद्वादकी बात बोलते समय प्रतिपक्षकी प्रतीति रखते हुए एक नयकी बात बोले तब तो उसकी बात सही चलेगी, मगर प्रतिपक्षकी प्रतीति मिटाकर यदि एक नयका एकान्त करेंगे तो वह एकान्त कहलायगा, स्याद्वाद नहीं। हां स्वभावदृष्टि करें, मगर प्रतीति तो यह रखें कि पर्याय दृष्टिसे यह घटना चल रही है और हमको यह घटना मिटानी है उसका उपाय है कि आराधना करना और ऐसी बात ध्यानमें रहे कि जैसे सिद्ध

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

भगवान शुद्ध है वैसे ही स्वरूपतः मैं भी शुद्ध हूं।

६७९—द्रव्यशुद्धि और उसकी उपासना—

शुद्धके प्रयोग दो जगह होते है एक अवस्थाके लिए और दूसरा द्रव्यके लिए, तो अवस्था के लिए शुद्ध अशुद्ध तो होता हैं पर्यायकी मलिनता और निर्मलताके आधार पर किसी वस्तुके लिए शुद्ध शब्दका प्रयोग होता हैं परसे विभक्त और स्वयं में एकत्व बतानेके लिए जैसे जब खाने पीने जैसी बात आये, मानलो व्रतियोंके दूधके प्रति बात आयीतो व्रतियोंका दूधतो शुद्ध कहलाता है जो व्यक्ति माँस भक्षी न हो, बिना जुते पहिने नहा धोकर दुहकर लाये, मर्यादा के अन्दर उसे गरम कर लेवे तो वह दूध शुद्ध है। यहतो एक अवस्था दृष्टिसे कही मगर दूधके वस्तुत्वसे शुद्ध दूध क्या वस्तुतः शुद्ध दूध वह है जिसमें कोई बाहरकी चीज पानी वगैरह न मिलाया जाय, खालिस दूधही दूध रहै तो वह द्रव्यसे शुद्ध है। उसे कहते है वस्तु दृष्टिसे शुद्ध। अगर उस दूधमें से मक्खन निकाल लिया जाय, सपेरटा बन जाय तो वह दूधभी अशुद्ध हो गया। इसी प्रकार आत्माको जब शुद्ध कहा जाय तो उसे दो निगाहोंसे देखें पर्यायदृष्टिसे शुद्धतो अरहंत सिद्ध है, जिनका कि ज्ञान निर्मल है जिनका निर्मल ज्ञान पूर्ण प्रकटहो गया है और वस्तुकी दृष्टिसे तो आत्मामें उस रूपको स्वभावको देखें कि वह समस्त परसे निराला है और अपने आपमें सम्पन्न है, जिसे कहते है ज्ञानमात्र ज्ञानधन वह विभक्त और एकत्वका रूप है ज्ञानमात्र और ज्ञानधन। तो अराधना किसकी करना है मुख्य तया आराधना करना है शुद्ध वस्तुत्वकी सहज, चैतन्य स्वरूपकी, मगर यह आराधना बन तो पा नहीं रही। देखो परमात्माका स्वरुप कैसा हैं? अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तशक्ति, अनन्तआनन्द और यह ही स्वरूप है, यहही स्वभाव है, यह ही प्रकट हो गया, उस प्रकट स्वरूपको देखकर हम स्वभावका परिचय बनावें। उस स्वभावकी आराधना निर्विकल्प आराधना हैं। स्वभावकी आराधना अभेद आराधना है और प्रभुकी वह आराधना भेद आराधना है। अगर कोई कहे कि प्रभुकी पूजासे तो पुण्य बँध होता हैं फिर इसे क्यों करना? यह तो सँसार है - - - -अरे भाई देखो, ज्ञानी पुरुष कैसा सिलसिलेसे चल रहा, ज्ञानीका जो पुण्य बंध है उसके लिए ग्रंथोंमें लिखा है कि परम्परया मोक्षका कारण है, तो परम्परया एक ऐसा महत्वपूर्ण शब्द है कि वह सभी शँकाओंका निवारण कर देता है। ज्ञानी पुरुषके जब पुण्यका उदय आयगा तो उसकोधर्मकी चर्चा मिलेगी, श्रेष्ठ समागम मिलेगा सतिशय पुण्य बनेगा पुण्यसाधन मिलेंगे जब तक कि वह संसारमें हैं। यह परम्परा शब्दका अर्थ हैं पश्चात निर्विकल्प होकर मोक्ष जायगा। और तत्काल तो पुण्य-पुण्य ही हैं, मुक्तिका कारणतो स्वभावदर्शन है इसमें कोई सन्देह नहीं। देखो बौद्धोंने कितनी ही चीजोंको अव्याकृत कहा है, मतलब इससे क्या निरखना, अप्रयोजनकी बात छोडो। अव्याकृत कहकर बौद्धोंने कितनाही विसम्वाद मिटाया भले ही वह क्षणिक एकान्त है, मगर कोशिशतो एक ढँगसे की है। हमारी कोशिश यह रहे कि हमको विभावोंसे हटना है, स्वाभावमें लगना है, केवल एक यह ही बात रखें।

६८०—विभावसे असहयोग और सत्यके आग्रहकी उपदेशों में शिक्षा—

आप सब कथनोंसे यह निरखें कि हमको दो बातोंकी शिक्षा मिलती कि नहीं (१) विभावों से हटना मायने असहयोग और (२) स्वाभावमें लगना मायने सत्याग्रह। यही दोनों बाते तो भारत देशको आजाद कराने के लिए की गई थीं। जो विदेशीमाल था। उसमें कोई सहयोग नहीं, विदेशी चीजें न खरीदेंगे न उन्हें अपने काम में लेंगे। सत्याग्रह क्या था कि जो हमारे देशकी चीजें हैं उनपर

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कोई प्रतिबंध न रहे, वे हम पा लेंगे। जैसे ये दो प्रकारके प्रयोग इस भारत देशको आजाद करनेके लिए भारतवासियोंने किया ऐसे ही दो प्रयोग हमें करना है अपने आत्माको आजाद करनेके लिए। आत्मा स्वभाव दृष्टिसे तो कुछ है सही, ठीक है, मगर वर्तमानमें सभी यह अनुभव कर रहे ना, कि हम परतंत्र हैं, बड़े व्यग्र हो जाते हैं, और नहीं तो कमसे कम ये हमारी बात क्यों नहीं मानते, इसी पर ही लोग माथा धुनते रहते हैं। अरे तुम्हारी बात है कहां ? जहाँ यह बताया कि आत्मा कर्मसे बद्ध है यह भी पक्ष, अबद्ध है यह भी पक्ष, वहाँ बातका पक्ष कहाँ रहा ? तो जो असहयोग करे, जो विदेशी माल है मायने नैमित्तिकभाव है उसका असहयोग करें। ये मेरे स्वरूप नहीं, ये निमित्तका सन्निधान पाकर उठे हुए भाव हैं, भाव यद्यपि इस उपादानमें उठे हैं, मगर ये निमित्तके सन्निधान बिना नहीं उठ सकते। इन की रचना इस ही प्रकार होती है। यह तो कमसे कम ज्ञात हो सकता। दर्पणमें फोटो आयी, सामना हुआ हाथका तो वह निमित्त है, यद्यपि हाथने कुछ परिणति नहीं की तथापि हाथका सन्निधान पाकर दर्पणने हस्ताकार प्रतिविम्बरूप परिणमन किया। सत्त्वका यह दृढ़ दुर्ग (किला) है कि प्रत्येक पदार्थका द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव उसके अपनेमें रहेगा, किसी पदार्थका द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव किसी पर वस्तुमें नहीं जाता।

६८१ निमित्तनैमित्तिक योगके परिचयका प्रयोजन विभावोपेक्षा—

निमित्तनैमित्तिक योग इसी तरहका है कि सान्निध्य भर है निमित्तका, कर्तृत्व नहीं। उपादान की ऐसी ही कला है कि उस योगमें अनुकूल परिणम जाता है। एक पुस्तक है अध्यात्मसूत्र, उसमें एक सूत्र दिया है निमित्तं प्राप्योभादानं स्वप्रभावत् याने निमित्त सन्निधान पाकर उपादान अपने प्रभाव वाला होता है। इसमें थोड़ेसे शब्द हैं मगर सबका समाधान आ गया। निमित्तका कितना स्थान है और उपादानकी वहाँ क्या कला है. दोनों ही बातें उस सूत्रमें आयी हैं। इससे हटनेके लिए, असहयोगके लिए यह निमित्तनैमित्तिकका परिचय एक बहुत बड़ा आलम्बन है, तब ही तो आचार्योंने कुन्दकुन्ददेवने अमृतचन्द्र सूरिने समयसारमें निमित्तनैमित्तिक योगका वर्णन बहुत अधिक स्थलोंमें किया है। आधा भागमें वर्णन निमित्तनैमित्तिक योगके सम्बन्धमें है और आधा भागमें वर्णन स्वभावदृष्टि करानेके लिए सीधा स्वरूप का वर्णन है, तो जहाँ निमित्तकर्तृत्व, परस्वामित्व और पर निर्मतता ये तीन बातें आयें वह तो अकल्याण के लिए हैं मिथ्यात्व है उसे तो वस्तु स्वरूपका बोध ही नहीं है कि वस्तु स्वयं अपने आपमें अपना सत्त्व रखता है, वह तो इस तरहकी धाँधलवाजी हुई कि जैसे कोई सोचे कि ईश्वर सबको सुख दुःख देता है,तो ईश्वर दुःख न दे इस डरके मारे लोग ईश्वरकी आराधना करते हैं। वहाँ उमंगकी आराधना नहीं है। जहाँ यह विवेचन है कि ईश्वर दुःख देता, सद्गतिमें पहुंचाता वहाँ तो भगवान की जो पूजा है वह इस भयसे है कि दुर्गति न दे। प्रेम दो प्रकारसे होता है (१) भयसे उठा हुआ प्रेम और (२) लगनसे उठा हुआ प्रेम। बच्चे पितासे प्रेम करते हैं तो कोई बच्चा भयसे प्रेम करता है और कोई पिता की लगनसे प्रेम करता है। लगनका प्रेम कैसे होगा भगवानसे ? जिसे यह श्रद्धा हो कि भगवानका जो स्वरूप है वह मेरा स्वरूप है, जो भगवान का चेतन वैसा मेरा चेतन, और जाति एक ही है, जैसे भगवानने विभावोंसे उपेक्षा करके स्वभावमें लगन लगाकर मोक्ष मार्गमें बढ़कर परमात्मत्व पदको प्राप्त किया है वैसे ही हमें भी परमात्मत्व पद प्राप्त करना चाहिए। देखिये—सराग चारित्र हुए बिना वीतराग चारित्र नहीं होता और सराग चारित्र छोड़े बिना बीतराग चारित्र नहीं होता, ये दोनों बातें तथ्यकी हैं अविरुद्ध निर्णय है। जैसे जो विशिष्ट ज्ञानियों ने जाना वह होता है, यह एक तथ्य है, ऐसे ही जब जिसके जिस विधानसे जो कुछ होता है वही देखा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

गया है भगवानके ज्ञानमें दोनों एक साथ अविरोध जानें। यों स्याद्वाद शासनमें बिसम्वाद की कहीं गुंजाइस नहीं है। और, यह ही एक शिक्षा सब जगह दी हुई है कि विभावोंसे उपेक्षा करना और स्वभावमें लगना।

६८२ सहज सत्त्वके लक्ष्यका महत्त्व—

कर्मसे बद्ध है यह एक पक्ष है, कर्मसे अबद्ध है यह एक पक्ष है, दोनों पक्षोंसे च्युत होकर जो तत्त्व वेदी है, जिसने सहज चैतन्य स्वभावका अपने उपयोगमें परिचय पाकर एक रस होकर अनुभव किया है वह तत्त्व वेदी है। वहाँ तो बद्ध अबद्ध की चर्चा है नहीं, दूसरी बात है ही नहीं। वहाँ केवल एक ही बात है। जब धनुर्विद्या की परीक्षा लेनेके लिए गुरू द्रोणाचार्यने अपने शिष्योंको खड़ा किया तो मानो सबसे पहले भीमको खड़ा किया धनुषबाण देकर कागजकी चिड़ियाके सिर पर निशाना लगाने के लिए, तो वहाँ पूछ बैठे कि बताओ भीम तुम्हें इस समय क्या दीखता है? तो भीम बोले—महाराज हमें तो चिड़िया दीखती, वृक्ष दीखता, आप सब दीखते, तो गुरूने उन्हें अनुत्तीर्ण कर दिया, इसी तरहसे बारी बारीसे सभी शिष्योंको निशाना लगानेको कहा और पूछा कि तुम्हें इस समय क्या दीखता है? तो सभी ने वैसा ही उत्तर दिया जैसा कि भीमने। अन्तमें जब अर्जुन की बारी आयी तो वहां भी गुरूने पूछा कि तुम्हें इस समय क्या दीखता? तो वहां अर्जुनने कहा महाराज हमें तो सिर्फ बाणकी नोक और कागजकी चिड़ियाका सिर ये दो ही चीज इस समय दिख रही। तो गुरूने झट अर्जुनको उत्तीर्ण घोषित कर दिया तो ऐसी ही बात तत्त्व वेदी पुरुषकी है, उसका लक्ष्य सदा साक्षात समयसारके अमृतका पान करनेका रहता है, जिसके कर्मबद्ध यह पक्ष नहीं, कर्म अबद्ध यह पक्ष नहीं, ऐसे विकल्प जालसे च्युत हुआ तत्त्व वेदी पुरुष समस्त नयपक्षोंको छोड़कर साक्षात् समयसार अमृतका पान करता है। देखो भैया, अपनेको अधिकाधिक अकेला बनावें। अकेला रहनेमें, अकेला बननेमें आनन्द है। कितना अकेला बनना, बस यह ही तो चर्चा चल रही? इतने अकेले बनें कि हमारी दृष्टिमें अन्य बात कुछ न हो, केवल एक सहज ज्ञान समाया हो, भला, जिसकी चर्चा सुननेमें आनन्द आता है उसका यदि प्रयोग किया जाय तो उसके आनन्दका क्या ठिकाना? केवल एक आत्महित की भावना हो, आत्म कल्याण की भावना हो। कैसे हो, मेरा क्या कुशल है, केवल यह ही एक विचार है और दूसरा कोई विचार नहीं।

६८३ आत्महितैषीका आदर्श प्रवर्तन—

आत्महितैषीकी न कोई पार्टी होती, न कोई पक्षपात होता, न कोई मायाचारी होती, न कोई गुप्त गोष्ठी होती कि यों करना चाहिए, यों बनना चाहिए। उसका तो खुला दरबार है—आत्महित करें, । और आत्महितके अभिलाषीको दूसरों पर इतनी दया होती कि ये भी उस आत्महितको पायें। आत्महित की भावनासे वह इतना विभोर है स्वपर कल्याणके लिए कि वह किसी धर्म—संस्कृतिका विच्छेद नहीं कर सकता। चलो सब तरहके लोग हैं— नाम जैन, स्थापना जैन द्रव्य जैन और भाव जैन, भाव जैन उच्च प्रकारके लोग हैं, द्रव्य जैन उसके निकटके जैन है, स्थापना जैन वे भी बड़े, नाम जैन वे भी बड़े। आपको जब कोई ऐसी दुर्घटना देशमें घट जाती है तब यह पता पड़ता कि ये नाम जैन भी कितने कामके हैं। अभी कोई सम्प्रदायके नाम पर दंगा हो जाय तो देखो वहाँ नाम जैन कितना काम आते हैं। जैसे एक नगरमें एक बार सम्प्रदायके नाम पर दंगा हो गया तो कितने ही नाम जैन उसमें काम आये। इसलिए समाजका कोई भी व्यक्ति उपेक्ष्य नहीं। परम्परा चलने दो। साथ ही एक बात और जानें जो बड़े काम की है, इतना तो निश्चित है कि जब तक दिगम्बर जैन गुरु रहेंगे तब

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

तक ही दिगम्बर जैन श्रावक हैं, तिलोयपण्णत्ति ग्रन्थमें साफ साफ लिखा है कि जिस दिन जैन शासन नष्ट होगा उस दिन चारों ही संघ नष्ट होंगे मुनि, अर्जिका, श्रावक श्राविका। बरबादी होगी चारोंकी एक साथ, और बरबादीसे पहले चारों रहेंगे। इसलिए अपने मनमें यह श्रद्धा न लावे कि जैसे अरहंत सिद्ध नहीं होते वैसे ही साधु भी नहीं हो सकते। यदि मनमें ऐसी श्रद्धा रहेगी तो इससे ऐसे पातकका बंध है कि जिसका कुछ कहा नहीं जा सकता। आपकी रुचि, आपका मन जहाँ भरता है तो आप उसे ग्रहण कीजिए और यदि नहीं भरता मन, तो न ग्रहण कीजिए। अगर श्रद्धामें ऐसा बैठ जाय कि जैसे अरहंत नहीं होते वैसे गुरू भी नहीं होते तो इस विरुद्ध श्रद्धामें कहीं निशल्य नहीं हो सकते। अपनेको देखें, अपना कल्याण करे, अगर कहीं शिक्षा मिलती है तो उसे ग्रहण करें, अगर आपको कुछ आदर्श मिलता है तो उसे ग्रहण करें, मेरी कुशल क्या है, केवल यह बात चित्तमें रहनी चाहिए। कुशल किसमें है ? स्वभावके आश्रयमें कुशलता है, एक ही बात, जिसमें दो बातें हैं ही नहीं। जो सहज चैतन्यस्वभाव है, जो मेरा एक निरपेक्ष, निरञ्जन स्वरूप है उस रूपमें अनुभव करूँ—में यह हूं, तो फिर मुझे कोई झंझट न रहेगी उसका अनुभव जब तक नहीं बनता तब तक उसके लिए सारा झंझट है, जो तत्त्ववेदी है वह पक्षपातसे रहित होकर साक्षात् उस समयसार अमृतका पान करता है।

६८४ कारण समयसारकी शरण्यता—

हम एक समयसार भाष्य पीठिका बना रहे थे जिसमें पीठिका की १४ गाथाओं पर भाष्य बनाया, उसमें बड़े बड़े लम्बे वाक्य और उसमें कार्य कारण विधान वगैरहका स्वरूप लक्षण, सब स्वरूप जोड़ते हुए परिच्छेद, शब्द, अर्थ-भावार्थ, तात्पर्य सभी कुछ लिखा जाता है भाष्यमें। १४ गाथाओं पर वर्णन हुआ, तो उसके मंगलाचरणमें समयसारके १२ या १३ अर्थ किये हैं, तो समयसार शब्दमें ही टुकड़े बनाये गए हैं, जैसे समयसार, सम् अयसार आदिक। तो जिसमें समयसारका अर्थ रत्नत्रय समय-सारका अर्थ दस धर्म, समयसारका अर्थ अरहंत आदिक अनेक अर्थ बनते हैं। समयसारका अर्थ आचार्य, उपाध्याय, साधु, ऐसे १२-१४ अर्थ है। समयसार इस शब्दकी व्युत्पत्तिसे ये सब अर्थ किए गए हैं। समयसारका मुख्य अर्थ है कारण परमात्मतत्त्व, कारण समयसार, जो विशुद्ध चैतन्य स्वरूप है। कारण समयसारको दो तरह देखा जाता है (१) ओघरूप और (२) समुचित रूप। ओघ कारण समयसार तो प्रत्येक जीवमें है—चाहे वह निगोदमें हो चाहे सिद्ध हो। चाहे भव्य हो चाहे अभव्य हो, जीव भर हो उसमें ओघ कारण समयसार है। स्वरूप दृष्टिसे भव्य, अभव्य ये दो भेद नहीं हैं अन्यथा द्रव्य ६ की जगह ७ कहे जाते। भव्य जीव, अभव्य जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। ७ द्रव्य नहीं कहे, द्रव्य ६ ही जातिके हैं। अतः जीव मात्रमें ओघ कारण समयसार समझना। भव्य अभव्यमें वस्तुत्व का भेद नहीं किन्तु भव्य उसे कहते हैं जिसमें रत्नत्रय व्यक्त होने की पात्रता हो, अभव्य उसे कहते हैं जिसमें रत्नत्रयके व्यक्त होने की पात्रता ही नहीं। तो समयसार दो प्रकारका समझना जिसमें ओघ कारण समयसार तो अभी कहा है, समुचित कारण सयसार सुनो। समुचित कारण समयसार होता है १२ वें गुणस्थानके अन्तमें, याने जो प्रकट समयसार है, अरहंत अवस्था है उससे पहलेकी जो अवस्था है वह है समुचित कारण समयसार और ओघ कारण समयसार अनादि अनन्त सर्व जीवोंमें एक समान वह जो अनादि अनन्त नित्य अन्तः प्रकाशमान है, लेकिन कषाय चक्रके साथ तिरोहित हुआ है। वह ओघ कारण समयसार प्रत्येक जीवमें है, उसकी आराधना करें, उसी स्वभावमें यह मैं हूं ऐसी प्रतीति रखनी चाहिए। इस प्रतीतिके बिना ही यह अन्तर पड़ गया है जिससे सारा जग जाल बन गया। जैसे कोई

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

मानता हो कि मैं इन लड़कोंका बाप हूं तो उसे उस श्रद्धाके अनुरूप परिश्रम, बच्चोंकी दासतास्वरूप करना ही पड़ेगा, ऐसे ही जो यहाँ शरीरमें मानता है कि यह मैं हूं उसे परतंत्रताका दुःख भोगना ही पड़ेगा, किन्तु जो अबोध कारण समयसारमें यह मैं हूं ऐसी प्रतीत रखता है वह ज्ञानमय अवस्थाको प्राप्त होता है।

६८५—ज्ञानीका सविवेक प्रवर्तन—

ज्ञानमय भावसे ज्ञानमय ही भाव होता है। हमारे गुरूजी थे, श्री गणेश प्रसादजी वर्णी उन्हें सिंघैन चिरौजा बाई जी ने पढ़ाया था। सिंघैन चिरौजा बाई जी की सास और हमारे पिताकी माँ सगी बहने थी। चिरौंजाबाईजी के पास उनकी ननद ललिताबाई रहती थी। चिरौंजाबाईजीने ललिता बाईको खूब समझा रखा था कि तुम पढ़ी लिखी तो नहीं हो इस कारण कोईसा भी कागज कूड़ामें न जाय, यह ध्यानमें रखना। एक बार चिरौंजाबाईजी मन्दिरसे पूजन करके घर जा रहीं थी, यह सागरकी बात थी तो जीनेके पास कूड़ामें एक कागज मिला। बाईजी ने उसे उठाया तो उसमें भक्तामरका काव्य लिखा था। बाईजी को बड़ा क्रोध आया और क्रोधमें ललिताबाईका चोंटा पकड़कर भींटमें दे मारा लेकिन मारनेसे पहले चिरौंजाबाईजी ने अपना हाथ भींटमें लगा रखा था अब बतलावो कि चोट सिरको लगी या चिरोंजाबाईजी के हाथको लगी ? तो यहां देखलो क्रोधने अपना कामतो किया मगर ज्ञाननेभी अपना काम नहीं छोड़ा। बाईजीके चित्तमें दया थी कि ललिताके सिरको चोट न लग जाय तो जो ज्ञानी जीव होते हैं वे किसीभी विकारकी हठ नहीं रखते। ज्ञान प्रसंगमें भी किसीभी नयका पक्ष नहीं इस कलशमें बताया गया है कि निश्चयनयसे तो यह दीखता कि जीव कर्मबद्ध नहीं है और व्यवहार नयसे यह दीखता कि जीवमें कर्मबद्ध है, किन्तु ज्ञानी तथ्य जानकर दोनों नयपक्षपातसे हठकर निर्विकल्प स्वकी अनुभूति करते हैं और येही ज्ञानी साक्षात् समयसार अमृतका पान करते हैं।

एकस्य मूढो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ।
यस्तत्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव "७१"

६८६—मूढ और अमूढके विकल्पोंके दर्शकनयोंकी दिशा—

कहते हैं कि एकके पक्षमें, मतमें यह जीव मूढ है, मायने मोही है, मोहयुक्त है तो दूसरेके पक्षमें मूढ नहीं है, मोहयुक्त नहीं है, ऐसा इस चैतन्य पदार्थ में दोनोंके ही दोनों पक्षपात हैं। जो तत्ववेदी पुरुष हैं वे इन पक्षपातोंसे च्युत होकर साक्षात् इस अमृततत्वका अनुभव करते हैं। यहाँ दो पक्ष रखे गए हैं—एक दृष्टिमें नो यह जीव मोही है, मोहयुक्त है तो एकके सिद्धान्तमें मायने स्वभावदृष्टि करके निरखें तो जीव मोहवान नहीं। वह तो अपने सहज चैतन्यस्वरूप है। इस तरह देखो और घटना वर्तमान स्थिति, इसको देखा तो यह दीखा कि यह जीव मोही है। यहाँ कोई दो पक्षोंका, नयोंका वर्णन चल रहा है—वह है शुद्धनय अथवा निश्चयनय और व्यवहारनय। यह ध्यानमें रखना कि जैसे निश्चयनय असत्य नहीं ऐसे ही व्यवहारनय असत्य नहीं, किन्तु जो व्यवहार है याने उपचार है वह मिथ्या होता। यह खास जानने की बात है और समयसारके प्रत्येक वर्णनमें यह निरखते जायें कि यह निश्चयनयका कथन है या व्यवहारनयका या उपचारभाषाका। जो कथन उपचारभाषामें है उसका अर्थयह लगालें कि जैसा कहा वैसा उपादानतः नहीं। तो उपचार नामक व्यवहारकी यह बात है—जैसे पुद्गलकर्म जीवको मोही करता है यह किस भाषामें है ? उपचार भाषामें है, जो परकर्तव्य, पर स्वामित्वकी बात कहे उसको कहते हैं उपचार और मोह प्रकृतिके उदयका निमित्तपाकर जीव अपने ज्ञान विकल्पसे मोही बना

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

यह व्यवहार नषका कथन है और निश्चयनयसे यह जीव अपनी योग्यतासे मोही बना। तो निश्चयनय और व्यवहारनय ये दोनों असत्य नहीं, किन्तु उपचार असत्य है। जहाँ कहीं समयसारमें लिखा है यह व्यवहार है, मिथ्या है उसका अर्थ लेना कि यह जो उपचार वाला व्यवहार है सो मिथ्या है, निश्चयनय प्रमाणका अंश है और व्यवहारनय भी प्रमाणका अंश है ये दोनों मिथ्या नहीं। ये मिथ्या कब होते ? जो व्यवहारनयकी प्रतीति त्यागकर निश्चनयको कहा जाय तो निश्चयनय मिथ्या और निश्चयनयकी प्रतीति त्याग कर व्यवहारनयको कहा जाय तो व्यवहारनय मिथ्या। किन्तु उपचार है वह जो पर कर्तृत्व और परस्वामित्वकी बात कहता है।

६८८—निमित्तनैमित्तिकयोगके कथनका निष्कर्ष कर्तृकर्मत्वका अभाव—

ध्यानमें यह रखना कि जहाँ कर्ताकर्मभाव है वहाँ निमित्तनैमित्तिकयोग कभी नहीं होता और जहाँ निमित्तनैमित्तिकयोग है वहाँ कर्ताकर्मभाव कभी नहीं होता। कर्ता कर्मभाव होता है उपादान उपादेयमें। प्रत्येक वस्तु अपने परिणमनको करती है। यह कर्तृत्व भावकी मुद्रा है और निमित्तनैमित्तिक योगकी मुद्रा यह है कि अमुक अनुकूल निमित्तके सन्निधानको पाकर उपादानने अपनेमें अपनी परिणतिसे यह प्रभाव बनाया। तो जहाँ निमित्तनैमित्तिक योग है वहाँ कर्ताकर्मभाव नहीं, जहाँ कर्ताकर्मभाव है वहाँ निमित्तनैमित्तिक योग नहीं रहता। यहाँ यह देखें कि जीवमें यह मोहभाव उत्पन्न होता किस तरह है। देखो एक कुञ्जी है सब पदार्थोंमें घटित होगी। किसी भी पदार्थमें यदि विषम परिणमन हो रहा है, विकार परिणमन हो रहा है तो नियमसे वहाँ कोई अनुकूल निमित्त है। निमित्त सन्निधान बिना विकार विषम परिणमन हो नहीं सकता। कोई भी ऐसा दृष्टान्त उदाहरण न मिलेगा कि अन्वयव्यति-रेकी निमित्तके सान्निध्यबिना विकार परिणमन हो गया हो। इतना होनेपर भी यह सदा ध्यानमें रखनेकी बात है कि निमित्तनैमित्तिक योगकी बात कही जा रही है वहाँ कर्ता कर्मभाव रंच नहीं होता, क्योंकि जहाँ दो वस्तुओंमें निमित्तनैमित्तिककी बात होती वहाँ दो वस्तुओंमें परस्पर कर्ताकर्मभाव नहीं होता। एकमें, स्वयंमें निमित्तनैमित्तिक योग नहीं। वहाँ है कर्तृत्वकर्मभाव।

६८९—कर्मदशा होनेमें जीवपरिणामका निमित्तनैमित्तिक भाव—

इस जीवने पहले जो परिणाम किया था अपने अज्ञान मोहरूप उन परिणामोंका निमित्त पाकर कर्माणवर्गणायें दर्शन मोहरूप परिणम गई थीं याने मिथ्यात्व सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति आदिका बंध होता नहीं कभी लेकिन बँधे हुए दर्शन मोहके जिस समय उपशमसम्यक्त्व होता है उस समय दबी हुई हालतमें भी तीन भेद हो जाते हैं मिथ्यात्व तो है ही, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्प्रकृति और बढ़ जाते हैं। जैसे दरतीमें (चक्की) चनेकी दाल दलते हैं तो उसमें कुछ चूरा हो जाता है, कुछकी दो दालें बन जाती हैं और कोई चने साबुत (समूचे) भी निकल आते हैं, ऐसे ही प्रथमोपशम सम्यक्त्व यंत्र द्वारा जो दर्शन मोह (मिथ्यात्व) दला गया है उसके भी तीन हिस्से हो जाते हैं। इस तथ्यका अर्थ निमित्तनैमित्तिक भाषामें समझें। यहाँ प्रथमोपशम सम्यक्त्वका परिणाम हुआ वह तो निमित्त मात्र है और वहाँ दर्शन मोहके ऐसे तीन हिस्से हो गए। वहाँ जो चूरा है वह तो है सम्यक् मिथ्यात्व और जो साबुत (समूचा) रह गए वह है मिथ्यात्व प्रकृति। ये जो पहलेके बाँधे हुए दर्शन मोह कर्म हैं वे उसी समय प्रकृतिबंध, प्रदेशबन्ध, स्थिति बंध और अनुभाग बन्धको लिए हुए हो गए थे। उनमें जिसकी जब स्थिति आयी, अनुभाग फूटा, तो कर्मकी बात कर्ममें हो रही, कर्मसे बाहर नहीं, दर्शन मोहका जो विपाक हुआ तो वह मोहनीय कर्ममें बन रहा। इस बातको सुनकर आश्चर्य

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

यों होता होगा कि कर्मतो अचेतन है उसमें क्या बन रहा ? उसका अनुभवन नहीं है मगर परिणाम विपाक तो रहता है जैसे बहुत से पुद्गल पदार्थ जल गए, उनकी नवीन अवस्था बनी ऐसे ही उदयकाल में उस कर्ममें एक ऐसी विद्रूप अवस्था बनती है और यहाँ यह अवस्था बनी कि चूंकि यह उपादान अशुद्ध है उपयोगवान तो है ही सो इसकी स्वच्छतामें वह प्रतिविम्बित हुआ और वह इस ढंगसे हुआ कि यह जीव अपने उपयोगको उस रूपमें मानने लगा। इस तरह मोहभाव हुआ, जिस मोहभाव, जिस तरह वह झलक हुई, कर्मविपाकका जैसा प्रतिफलन हुआ उस रूप अपनेको अज्ञानीने माना। यह विवेक रखना कि जीवने तो ज्ञान विकल्पको ही किया और कर्मने उस मोह अनुभागको किया मगर कर्मानुभाग का एक ऐसा निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है कि उसके प्रतिफलन के कालमें जीवने अपनी परिणति से विकल्प किया। यदि ऐसा निमित्त नैमित्तिकयोग न हो और केवल मात्र निरपेक्ष निमित्त सन्निधान बिना अपनी योग्यतासे यह जीव मोह करता है तो वह योग्यता नित्य हो जाएगी। नित्यता का प्रसंग आयगा।

६८९–निमित्त नैमित्तिकयोगके यर्थाथ परिचयका महत्त्वपूर्ण कदम—

निमित्त नैमित्तिकयोगकी दृष्टिसे विकारमें परभावकी पहिचान बनती। ये परभाव है, नैमित्तिक हैं हेय हैं इनसे सम्बन्ध नहीं जोडना है इनसे उपेक्षा करें। ये जीवमें बद्ध हैं। केवल जीवकी बरबादीके लिए होते है, आघातके लिए होते हैं, ये मौजके लिए नहीं ऐसा ज्ञान होता हैं, निमितनैमित्तिक योगके परिचयके बलसे। तो बना क्या ? वहाँ दर्शन प्रकृतिका उदय हुआ। यहाँ यह जीव उसे अपनाने लगा, इनको विकल्परूपसे करने लगा। यह घटना घट रही है। इस जीवकी अनादिकालसे यह घटना घटती चली आ रही है। इस घटनाकी दृष्टिसे देखा जायतो दिखता है कि यह जीव मोही हैं, लेकिन जब स्वभावदृष्टिसे देखा तो स्वभाव क्या है ? क्या जीवमें मोह करनेका स्वभाव हैं ?नहीं स्वभावदृष्टिसे देखा तो कहना होगा कि जीव न मोह करता, न राग करता, न द्वेष करना, न चलता फिरता, न खाता पीता,कुछभी क्रिया नहीं करता। वहाँ बाह्यविकारका, विभावका कोई प्रश्न ही नहीं उठता क्योंकि स्वभाव स्वयं कैसा है? वह स्वभाव ज्ञानमें मिलता जारहा है कभी कभी अचानक लोग प्रश्न करते कि खाता पीता कौन है? जीव तो खाता पीता नहीं, पुद्गल भी खाता पीता नहीं, पर है क्या ? खाना पीना माया है, पर माया ही मायाको खाने पीनेकी बात कर रही। जीव खाये पिये कैसे वह तो अमूर्त है, पुद्गल खाये पिये कैसे ? यदि पुद्गल खाता तो मुर्दा क्यों नहीं खाता ? जो और बाकी पुद्गल पडे है वे क्यों नहीं खाते पीते। पुद्गल भी नहीं खाता पीता, किन्तु एक सम्पर्क में ऐसी माया बन गई है कि वह खाना पीना भी माया है. यह बात घट रही है। तो जीवको जब स्वाभाव दृष्टिसे देखा तो क्या कहा जाय ? जीवमें मोहपरिणाम तो होता, पर जीवने मोह परिणाम नहीं किया जो निरपेक्ष होकर स्वयं अकेला परसम्पर्क बिना कर सके समर्थ तो असली वह कहलाये। जीवके सामर्थ्य हैं रत्नत्रयकी ये विकार जोवके स्वरूप नहीं, औपधिक हैं, एक स्वरूपदृष्टिसे देखा तो नजर आया कि जोवमें मोह नहीं है। ये दोनों बातें तथ्य की है किन्तु अपनी लक्ष्यभून मंजिल यहाँ नहीं है सर्वविकल्पातिक्रान्त होकर स्वरूपगुप्त होनेका लक्ष्य है। नयके विभाग प्रकरणमें दो को लेकर चल रहे हैं। लेकिन जो स्वरूप गुप्ति पुरुषार्थ है अनुभवकी बात उस सहज चैतन्यस्वभाव ज्ञानमय स्वाभवमें लेने से जो गुप्त हो गए हैं वे क्या कर रहे है अन्दर ? उनके क्या निश्चय विकल्प है ? समस्त नय पक्षपातको छोड़कर एक इस समयसारका अनुभव करते हैं बोध समयसार क्या है इसका वहाँ अनुभव

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

चला रहा है ।

६९०—कर्तव्यका निर्देशन—

करनेको काम यहाँ क्या निकला कि भाई मोह नैमित्तिक है, परभाव है, औपाधिक है, यह हमारा स्वरूप नहीं, हम इसके करने वाले नहीं । और गजब की बात देखो कि इसे आत्मा नहीं करता, पुद्गल नहीं करता, कर्म नहीं करता और हो सो रहे, एक ऐसा हौआ बन रहा कि जिसका कोई वारिस नहीं, जिसका कोई जिम्मेदारीसे वचन देने वाला नहीं, ऐ रागभाव तुम घबड़ावो नही, तुम्हें कोई मिटने न देगा, ऐसा कोई जुम्मा नहीं ले सकता । कर्मकी वह परिणति नहीं तो जुम्मा ले क्या ? जीवका स्वभाव नहीं तो जुम्मा ले क्या ? यह सब अज्ञान बन रहा । कर्म प्रतिफलनको, कर्मरसको यह जीव अपनाता जा रहा है । जो अपनाया जाना है वह है जीवकी परिणति और जो वास्तविक कर्मरस है वह है कर्मकी परिणति । परतंत्रता यह ही है तो है और क्या है । कोई गायका बछड़ा जन्मा हो तो मालिक उसे घर ले जाने के लिए क्या करता है कि बछड़ेको अपनी गोदमें उठा लेता है और आगे आगे चलता जाता है, गाय उसके पीछे लगी भागती चली जाती है । वहाँ वह मालिक गाँवको गिर बाँसे बांधकर नहीं ले जाता । चूंकि उस गायको उस बछड़ेमें प्रेम है सो वह बछड़ेसे बँधो नहीं है किन्तु उस बछड़ेके प्रति जो उसके विकल्प लग रहा उससे वह बँध गया । अब जो बँध गयी तो देखो गाय उस बछड़ेके पीछे-पीछे जा रही है । यह ही तो बन्धन यहां चल रहा है । कर्मका और जीवका तो निमित्तनैमित्तिक बन्धन है और उपचरित कारणसे जो बन्धन है वह विषयभूत बन्धन है । चूंकि उसमें राग लगाया, उसमें अनुराग किया तो हम उसके आधीन बन गए । लोग अपनेको बड़ा दुःखी समझते और अपने दुःखका कोई न कोई कल्पनासे कारण बना डालते हैं । जब इस जीवने देखा कि उपादानमें यह जीव है तो अपनी कल्पनासे कुछ न कुछ बात गढ़ लेता और दुःखी होता रहता । क्या दुःख है इसको ? थोड़ीसी जगहका परिचय है । तीन लोक कितना बड़ा है । ३४३ धनराजू प्रमाण लोक है । जरासी जगहमें लोभमें अपने आपको संसार परिपाटीमें क्यों डाला जा रहा है ? कितने जीव है ? अनन्तानन्त, और परिचयमें आया हुआ कितना लोक है ? इसका तो कोई परसन्टेज ही नहीं बैठता । इतनेसे जरासे जीवोंमें जिनमें रह रहे है, जिस संग प्रसंगमें रह रहे है उनको ऐसा मानकर कि अच्छा करनेके लिए, बुरा करनेके लिए, विधि करने के लिए, निषेध करनेके लिए एकदम उपयोगसे तुलकर बैठ गए । अरे इतनेसे जीवोंमें अगर रागद्वेष मोह करनेकी बात न बने तो उससे क्या बिगड़ता ? अरे कितने जीवोंमें तेरा यश हो गया । यश तो कुछ है नहीं एक मानने मानने की बात है । सभी मनुष्योंमें यश हो तबतो तेरी शान है मगर है क्या ? वहाँ कितने लोग हैं, कितना क्या है ? संस्थान विचय नामका धर्मध्यान जिसकी पूर्णता साधुपदमें होती है उसमें एकदम साधुवोंको तीन लोक तीनकालकी सब मुद्रा, सबस्वरूप सामने रहता है इसलिए उनके वैराग्यमें वृद्धि रहती है । इतनीसी जगहमें क्या करना इतनेसे समयके लिए क्या करना ? अरे बड़े सुयोगसे यह मनुष्यजन्म पाया है तो इसमें आत्महितकी बात करना है । इतने विवेकसे रहना है कि कहीं मेरा कुछ बिगाड़ न हो जाय । मोक्षमार्गके लिए अपनी धुन बनी रहे । दर्शन मोहका आश्रव बंध यह ही तो दुःखी करने वाला है और दर्शन मोहका केवलीश्रुतसंघ इनका अवर्णवाद वह दर्शन मोहके आश्रय करते हैं, ऐसी क्रियासे दूर रहें और अपने आपके स्वभावकी आराधनाके लिए उमंग रखें ।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

६९१—भ्रमकी विडम्बनासे हटकर स्वभावाभिमुख होनेमें आत्मलाभ—

यहाँ कोई किसीका कुछ है नहीं, व्यर्थका ही एक हठ बनाते हुए परका आश्रय रखते। हमारा तो यहही शरण है, हमारा तो यह प्राण है, हमारा तो यह ही सब कुछ है। अरे कोई किसीका कुछ नहीं। हम अपने ज्ञानसे दुःखी होलें, सुखी होलें, शान्त हो लें, यह सब तेरी कलाका प्रताप है तो बातें दोनो चल रही। घटना व स्वभाव याने परिणमन और स्वभाव। क्या परिणमनको मना किया जायगा? क्या स्वभावको मना किया जायगा? स्वभाव नहीं तो परिणमन कहाँ ठहरेगा, परिणमन नहीं तो वह वस्तु कहाँ रहेगी और परिणमनमें जो विकार परिणमने है वह नैमित्तिक है तब ही वह हेय है, जो स्वभाव परिणमन है वह एक सहज है। दो बातें हैं कर्ता कर्मभाव एकका दूसरेमें है नहीं, हो ही नहीं सकता। वस्तुका सत्व है और विकार परिणाममें निमित्तनैमित्तिक योग चल रहा है। निमित्तनैमित्तिक योग बिना विकार परिणमन होता नहीं। तो निमित्तनैमित्तिक योगके परिचयसे तो यह शिक्षा लेना कि ये विभाव, ये विकार नैमित्तिक हैं, हेय हैं, मेरा इनसे कोई काम न सरेगा। मेरे लिए ये शरण नहीं हैं, ये स्वयं अशरण है, हुए और मिट गए। राग हुआ वह मिटा, अब दूसरा राग हुआ, जो राग परिणाम हुआ वह तुरन्त मिट गया। इस क्षण भर रहने वाले रागको जो अपनाये उसे अनन्त संसारमें भटकना होगा। जो विकार परिणाम होते हैं उनसे हटना है और फिर वस्तुके उस सहज स्वभावको निरखें जो अत्यन्तस्वतंत्र सहजभावरूप है, जिसमें किसीकी अपेक्षा नहीं। ऐसे उस सहज स्वभावको देखें।

६९२—सहज स्वरूपकी रुचिमें उद्धार—

बस दो ही काम करनेके हैं (१) विभावोंसे उपेक्षा करना और (२) स्वभावमें लगना। स्वभावमें च्युत होकर विभावको अपनाने रूपही तो जीवने मोह किया। मोह नाम अज्ञानका है, मोह और रागमें अन्तर है, राग तो ज्ञानीके हो जाता, पर मोह ज्ञानीके नहीं होता। अज्ञानीके मोह भी रहता और राग भी रहता। इसमें क्या अन्तर आया? जरा एक दृष्टान्तसे समझो। कोई रईस बीमार हो गया तो उसकी उस बीमारीके समयमें कमरा बड़ा अच्छा सजाकर रखें, सुगंधित रखें, गंदा वातावरण न हो, पलंग स्वच्छ रखें, गद्दा बड़ा गुदगुदेदार रखें, डाक्टरका ठीक-ठीक प्रबंध हो, समयपर दवा हो। मित्र जन सहानुभूति दिखानेके लिए खूब आते जाते हैं. कुछ नौकर चाकर भी बढ़ा दिए जाते भला बतलावो उस बीमार रईसको कितना आरामके साधन दिए गए, लेकिन उस बीमारसे पूछो तो जरा, उसकी क्या हालत हो रही है? उसको राग तो बना है सबमें अगर गद्दा कठोर हो तो वह चिल्लायेगा, तो राग है न उस गद्देसे? और डाक्टरकी न बुलाया जाय तो कहेगा कि झट बुलावो, राग है तब ही तो चिल्लाता है। औषधिके लिए राग तो है तब ही तो वह औषधि देनेके लिए कह रहा, पर इन सब बातोंमें उस बीमारको मोह है क्या? नहीं। मोहकी मुद्रा है कि उस रागको चाहना। मुझे ऐसा पलंग, ऐसी दवा, ऐसे साधन जिन्दगी भर मिलते रहें, ऐसा वह चाहता है क्या? दवा रागसे पीता है मगर मोहसे पीता क्या? अरे वह तो इसलिए दवा पीता कि यह दवा पीना जल्दी कब छूटे। दृष्टिमें देखो कितना अन्तर है। तो ऐसे ही जरा अपने हृदयको तो टटोलो। क्या इन्द्रियके विषयोंमें जब-जब जुटते हैं तब-तब क्या भाव रहता है? बेसुधी रहती है, आशक्ति रहती है या उसमें मौज रहता है। मेरी जिन्दगी ऐसीही बीते, यह भाव रहता है क्या? आफत आ रही है, उससे निपट रहे हैं यह भाव रहता है। भावोंको टाल लीजिए। जो कुछ होगा वहाँ सब भावोंके अनुसार बात चलती है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

६९३ ज्ञानीकी अपनीहित चेष्टाकी स्थिति—

आज संहनन विशेष नहीं,योग्यता सामर्थ्य विशेष नहीं, अभी धीरता आयी नहीं तो वह अपनी अव्रत अवस्थामें रहता है, पर अव्रत अवस्थामें रहते हुए जिसने इस सहज चैतन्य स्वभावका अनुभव किया है वह हर परिस्थितिको मौजके रूपसे नहीं अंगीकार करता, किन्तु गले पड़े बजाय सरेके ढंगसे करना पड़ता है। एक कहावत सब बोलते हैं, किसीको समझाना हो तो कहते कि भाई तुम उसके पीछे क्यों लग रहे ? तो वह कहता कि क्या करें, गले पड़े बजाय सरे। इसका मतलब क्या ? तो देखा होगा कि होली फागके दिनोंमें लोग हँसी मजाकके खेल खूब खेलते हैं, कोई किसीका मुख काला करके गधे पर बैठाता, कोई मुर्दा सा बनकर अपनी ठठरी निकलवाता, लोग राम राम सत्य है की आवाज लगाते, खूब हंसी खेल करते। फागके दिनोंमें ये सब बातें चलती है। तो उन दिनोंमें किसी पुरुषने किसी दूसरे की मजाक करनेके लिए उसके गलेमें ढोल डाल दिया इसलिए कि वह शरमके मारे झेंप जाय, इसीलिए तो सब फागमें करते हैं कि सर्मिन्दा हो जाय, मगर उसने तत्काल क्या किया कि दो छोटी लकड़ियां उठायी और खूब नाच नाचकर उसे बजाना शुरू कर दिया। मतलब क्या निकला कि जो झेंपके लिए उसने किया था वह बदल दिया। और खुद ही ऐसा खेल दिखा दिया कि उसको झेंप किसीने स्वीकार न किया। तो यह है गले पड़े बजाय सरे। तो इसी तरह जो जी परिस्थितियाँ आ पड़ती हैं उन सब परिस्थतियोंमें ज्ञानी क्या करे ? अगर कोई ज्ञानी गृहस्थ है तो वह कमाई न करेगा क्या ? करेगा। और कमाई करनेके लिए दूकान जायगा तो क्या इतना विकल्प न उठेगा कि यह बिके, इतना लाभ हो होता है, पर यह सब होते हुए भी यह जान रहा है कि ये सब मेरे कुछ नहीं लगते। वह तो परिस्थिति है, घरमें रहना पड़ता है, वहाँ खाना पीना है, वहाँ रहना है, ये सब काम करने पड़ेंगे, याने इतनी सहज उपेक्षा हो तब समझो कि हमने कुछ पाया। अभी तक इतनी बात बन सकी क्या ?

६९४ मोहमें उद्धत ज्ञानविरुद्ध चेष्टावोंके परिहारमें लाभ—

मिथ्यात्वमें ही, प्रीतिमें, मौजमें, कुछसे कुछ कहा जाय, अच्छा भी कहा जाय, बुरा भी कहा जाय, कभी पागल अपनी स्त्रीको स्त्री भी कहता, कभी माँ भी कहता, माँ को कभी स्त्री कहता, मां भी कहता, उसके भीतरमें कोई सच्ची प्रतीति नहीं है, और एक सम्यग्दृष्टि ज्ञानी पुरुष अपने चैतन्यस्वरूप को प्रतीतिमें बराबर बनाये है, उसकी प्रतीति कभी नहीं मिटती, उपयोग बराबर होता है उस स्वभाव दर्शनका। तो यह बेसुधी क्या है ? मोह है, वह अहेतुक नहीं। अगर अज्ञान है तो वह बेसुधी कभी न मिटेगी। कदाचित् मिट भी जाय तो उस मिटनेका कोई फायदा नहीं। दृष्टिमें भी आ जाय तो यह समझना कि यह मोहभाव किस तरहसे रचा हुआ है। यहां तो इस वस्तु स्वरूपकी बात है ही कि प्रत्येक पदार्थ अपनी परिणतिसे परिणमता रहे। अभी यह बिजली जल रही, ये पदार्थ प्रकाशित हो रहे तो क्या लट्टूका तार अपनी जगहसे हटकर उस पदार्थमें आया, या वह पदार्थ उससे प्रार्थना करने गया कि हमें प्रकाशित कर दो। एक ऐसा ही निमित्तनैमित्तिक योग है कि ये पदार्थ प्रकाशित हो जाते हैं,.... अत्यन्त भेद है इन दोनों पदार्थोंमें। आत्म जान रहा है इन पदार्थोंको तो कहीं ये ज्ञेय पदार्थ आत्माको प्रेरित नहीं कर रहे कि अरे हम अज्ञात पड़े हैं, तुम जान लो। और न आत्मा अपनी जगहसे हटकर उन पदार्थोंको जानने जाता है, यह यहां पड़ा है वह वहाँ। पर ऐसा विषय विषयी सम्बंध है कि यह ज्ञायक है और वे विषयभूत हो रहे। इतनी सी बात है पर ये विकल्प आये कहाँ से ? सीधा नाता तो यह है इस जीवसे पर पदार्थके साथ, कि आत्मा ज्ञाता है और पदार्थ ज्ञेय है। फिर राग होता

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

क्या है ? उसका उत्तर यह है कि यह सब अज्ञानकी परिणति है, जहाँ वह स्वातंत्र्य समझमें न आया तो वह अज्ञानसे कुछसे कुछ मान लेता है, तो यह मोहभाव क्या है ? यह मोहभाव नैमित्तिक है, हेय है, औपाधिक है, मेरी चीज नहीं है, मेरा स्वभाव नहीं है, पर कर्म विपाकका निमित्त सान्निध्य पाकर यहाँ ज्ञानका विकल्प बनता है । जैसे गरम पानी है तो उसका हमने स्पर्श किया और वह तेज गरम लगा, बुरा लगा, अच्छा न लगा, तो अब यह बतलावो कि गर्मी किसमें है ? जीवमें गर्मी है या पानीमें ? गर्मी का तो व्याप्य व्यापकभाव उस पानीमें चल रहा, तो फिर आत्मामें क्यों इतनी वेदना हुई ? बात यह हुई है कि वह उस प्रकारके अनुभव करानेमें विषयभूत है । अनुभव किया, जीवने उसका ज्ञान किया और उसमें विकल्प बना, वेदना हुई मगर इतना होने पर भी यह जीव तो अपने ज्ञान विकल्परूप वेदना में ही व्यापक है । और, उष्णता उस पानीमें व्यापक है, तो ऐसा तो एक विषय विषयी सम्बंध है ईमान दारीसे मगर उससे अधिक बढ़कर जीवने अपनेमें क्या करतूत कर डाला ? यह मोहभाव, यह अज्ञान-भाव, कैसा अज्ञानभाव कि कर्मरस तो कर्ममें उदित है मगर स्वच्छ होनेके कारण प्रतिफलन जैसी बात तो ठीक है, यह तो विषय विषयीकी बात है । वहाँ यह जीवके प्रतिफलनको अपनाने लगे तो प्रतिफलन को अपनानेका कर्ता तो बन गया जीव, मगर कर्मका कर्ता नहीं है, कर्मके विपाकका कर्ता तो बन गया कर्म, मगर जीवके ज्ञानके विकल्पका कर्ता नहीं बनता, मगर निमित्तनैमित्तिक योगसे ये सब घटनायें चल रही हैं ।

६९५ विकल्प मुक्त होने व स्वरूपमें रमनेका उपाय सम्यग्ज्ञान—

यह ज्ञानी तक रहा है कि इस ओरसे देखें तो यह जीव मोही है और स्वभावसे देखें तो इस जीवके मोह नहीं है । तो मोह है यह भी नय पक्ष है, मोह नहीं है यह भी नय पक्ष है, अब तत्त्ववेदी पुरुष क्या करता है ? दोनों विकल्पोंसे हटकर एक उस सहज ज्ञान स्वभावका अनुभव करता है । क्या करना? ज्ञानविरुद्ध सब चित्तसे हटा लें । अच्छा या बुरा कुछ भी दिलमें स्थान न दें । मेरे लिए कहीं कुछ नहीं । जैसे कहते हैं ना, करि विचार देखो मन माही, मूदहु आँख कितउँ कुछ नाहीं । यह रामायण की एक चौपाई है, यह प्रकरणमें कही गई कि जब श्री परसुराम लक्ष्मणका सम्वाद छिड़ा हुआ था । तो उस समय परसुराम अत्यन्त क्रुद्ध हुए और बोले कि ऐ लक्ष्मण तू हट जा मेरे सामने से, तुझ देखकर मेरे हृदयमें क्रोध बढ़ रहा है, तो वहाँ लक्ष्मणने यह बात कही थी कि हे परसुराम जी करि विचारदेखो मन माहीं, मूदहै आँख कितउँ कुछ नहीं, यह तो वहाँ की बात है मगर इससे अपने लिए क्या हितकी बात लेवें कि अपनेको व्यर्थ दुःखी न बनावें, अपनी आँख मूँद ले याने अपने ज्ञान विकल्पको बन्द कर दे और अपना जो एक चिद्विलास है उसे ज्ञानमें आने दें । क्यों यहाँ वहाँकी बात सोचकर विकल्प करते दुःखी करते ? और विकल्पको त्यागकर एक सहज चैतन्य स्वभावमें, यह मैं हूं इस प्रकारका आग्रह करके बैठें तो क्षण भरमें ही इस भगवान आत्माका अपनेमें दर्शन होगा ।

६९६ विशुद्ध आग्रहका परिणाम—

आग्रहके सम्बन्धमें एक जगह एक किम्वदन्ती आयी है कि कोई एक ब्राह्मण एकादसीका व्रत किया करता था । तो उसमें वह क्या करे कि अपने लिए पाव भरकी रोटी बना ले और फिर भोग लगावे माने उसके जरासे टुकड़े तोड़कर घी गुर लगाकर आगमें चढ़ाये और फिर खाना खाले । तो उसके घर गायें पली थीं, उसके घर एक ग्वालेका बालक गौवें चरानेको रहता था । तो उससे उस ब्राह्मणने कहा बेटा आजके दिन तुम एकादशीका भोग लगा लो, तो वह ग्वालेका बालक बोला—आप

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

तो कोई एक पाव भर आटा देंगे, वहाँ तो कृष्ण भी होंगे, हम भी होंगे, हम दोनोंका पेट कैसे इतनेमें भर जायगा ? तो वह ब्राह्मण बोला अरे तुम तो पागल हो, भोग इसी तरह से लगाया जाता है। खैर वह ग्वालेका बालक एक पाव आटा लेकर भोग लगाने गया पहले उसके दो टिक्कड़ बनाये फिर भोग लगाया वह आग्रह करके बैठ गया और बोला ऐ भगवान कृष्ण आवो आवो, जल्दी आवो, तुम्हारा भोग लग गया, हमको बड़ी तेज भूख लगी है, जब तक तुम नहीं भोग पा लोगे तब तक हम न खावेंगे। तो वहाँ झट कृष्ण उपस्थित हुए, मानो यह कोई व्यन्तर देवोंका ही कौतूहल हो, ऐसा हो सकता। जब कृष्ण वहाँ उपस्थित हुए तो उस ग्वालेके बालकने कहा देखो एक टिक्कड़ तुम्हारे हिस्सेका है एक हमारे हिस्सेका। तुमको एक ही टिक्कड़ मिल पायगा नहीं तो हम भूखे रह जायेंगे। इसे खावो, फिर हम एक टिक्कड़ खालेंगे। ठीक है। कृष्णने भोग पाया और यह कहकर गए कि इस बार जब भोग लगाना तो हम दो जने आयेंगे। जैसे मानो कृष्ण और राधिका। ठीक है। वह ग्वालेका बालक घर पहुंचा और ब्राह्मणसे सारा हाल कह सुनाया और कहा कि वह कह गए हैं कि इस बार जब भोग करोगे तो हम दो जने आयेंगे सो कृपा करके इस बार आप कुछ अधिक आटा देना ताकि हम भूखें तो न रह जायें। ठीक है। दूसरी बार ब्राह्मणने तीन टिक्कड़ बनाने भरका आटा दिया और कहा जावो भोग लगावो। वह बालक गया, तीन टिक्कड़ बनाया वहाँ भी वैसाही आग्रह करके बैठ गया तो वहाँ दो जने आये। एक साथ खाया और यह कहकर गए कि इस बार जब भोग लगावोगेतो हम एक बड़े समूह सहित आयेंगे। ठीक है। वह बालक घर गया और ब्राह्मणसे सारा हाल बताया और यह कह दिया कि वे दोनों यह कहकर गए हैं कि इस बार हम समूह सहित आवेंगे सो कृपा करके आप इस बार काफी सामान देना ताकि हम पहलेकी तरह भूखे न रहें ! ठीक है। ब्राह्मणने सोचा कि देखो हमने तो जिन्दगी भर खूब भोग लगाया पर उसे खाने कोई न आया, यह बालक क्या कहता ? पता नहीं झूठ कहता या सच, सो इस बार छिप कर देखना चाहिए। खैर इस बार ब्राह्मणने खूब पूड़ियाँ बनाकर भोग लगाने भेजा। वहाँ वह बालक पहले जैसा ही आग्रह करके बैठ गया तो वहां सारा समूह इकठ्ठा हुआ, सभीने भोग पाया। यह दृष्य उस ब्राह्मणने छिपकर देखा तो बड़े आश्चर्यमें पड़ गया। तो इस किम्बदन्तीमें देखना है सच्चे आग्रहका फल। ठीक ऐसा ही आग्रह करके बैठना होगा। अपने उस अनादि अनन्त अहेतुक चैतन्यस्वरूपको पानेके लिए। अपने आत्मस्वभावकी प्राप्तिके प्रति उल्लास हो, बाकी तो सब औपाधिक बातें हैं, वैभाविक हैं, उनसे मेरा कुछ वास्ता नहीं।

एकस्यरक्तो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ।
यस्तत्त्ववेदीच्युत पक्षपातस्तस्यास्ति नित्यंखलु चिच्चिदेव ॥ "७२"

६९७—राग और स्वभावकी दृष्टिमें नयपक्षोंका ईक्षण—

एकके मतमें जीव रागी है, एकके मतमें जीव रागी नहीं है, इस प्रकार इस चैतन्य आत्मामें दो पुरुषोंमें दो पक्षपात चल रहे हैं। किन्तु जो तत्ववेदी है, जिसने इस सहज अखण्ड चैतन्यस्वभावको अपने उपयोगमें लेकर विकल्प परिहार सहित अनुभव किया है वह पक्षपातसे रहित है और वहही साक्षात् इस समयसाररूप अमृतका पान करता है। जीव रागी है एकका सिद्धान्त है, यह सिद्धान्त गलत नहीं है, जीव रागी नहीं है एकका सिद्धान्त, यह भी गलत नहीं है। एक घटना दृष्टिसे देखकर कह रहा, एक स्वभावदृष्टिको देखकर कह रहा। क्या आत्मामें स्वभावही स्वभाव है। घटना और परिस्थिति नहीं है क्या ? इस आत्मामें दो दृष्टियों से दो बातों का परिचय मिलता है। ये दोनो ही विकल्प हैं।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

विधि किया वह विकल्प, निषेध किया वह विकल्प। हुआ कैसे राग और कैसे नहीं राग, दोनोंका एक विवरण सुनो। राग होता किस तरह है ? पूर्वबद्धकर्म जो राग प्रकृतिके है याने अनन्तानुषंधी माया, लोभ, हास्य, रति और अप्रत्याख्यानावरण माया लोभ हास्य रति आदिक जो भी राग प्रकृतियाँ है उनका जो उदयकाल आया सामने, उनकी स्थिति पूरी होनेसे पहले ही उदय आ गया याने उदीरणा हुई तो उस कालमें कर्ममे ही कर्मका विपाक चलता। तो एक द्रव्यका दूसरे द्रव्यमें कुछ नहीं होता। कर्ममें वहाँ विपाक चला, पर ऐसा निमित्त नैमित्तिक योग हैं कि यहाँ उपादान ऐसा ही अशुद्ध है कि ज्ञान विकल्प करने लगा। तो आत्मामें जो ज्ञानविकल्प बना वह तो है जीवराग और कर्ममें जो राग अनुभागका उदय घटा वह है अजीव राग। देखिये निमित्त नैमित्तिक योग है, इसका अर्थ है कि निमित्त अकिञ्चित्कर है दोनोंका मतलब एक होता है। निमित्तनैमित्तिक योगमें होता क्या है कि निमित्त उपादानमें परिणति तो नहीं करता, पर उस निमित्तकी हाजिरीके समय यह जीव अपनी परिणतिसे उस प्रकारका प्रभाव वाला बनता है। सो यह प्रभाव वाला अर्थात् उपादान अपने ही प्रदेशोंमें बना, अपनी ही परिणतिसे बना, मगर ऐसी कला उपादानने खेली निमित्तकी हाजिरीमें। निमित्तके अभावमें उपादान ऐसी कला खेल नहीं पाता। तो यह ही बात है एक बार सिद्ध हुए बाद कभी भी उस सिद्ध अवस्थासे च्युत नहीं होता। तो निमित्तनैमित्तिक योगका अर्थ कर्तृत्व न समझना। इस दृष्टिमें वह अकञ्चित्कर है, अर्थात् निमित्त उपादानमें कुछ नहीं करता मगर उस निमित्तका सन्निधान होने पर उपादान यह कला नहीं खेल पाता। इतना ही निमित्तनैमित्तिक भावका रहस्य है। इस कारण यह उमंग जगती है कि ये नैमित्तिक भाव तुरन्त हट सकते हैं।

६९८—संसारवर्द्धक राग, अशुभराग व शुभरागका विश्लेषण—

जहाँ स्वभावका आश्रय किया और बाह्य जो उपचरित कारण हैं उसका उपयोग हटाया तो किसी सीमा तक अबुद्धिपूर्वक प्रतिफलन भी हो और जहाँ अबुद्धिपूर्वक राग चले तो भी उसमें संसार परम्परा बढनेका सामर्थ्य नहीं है, है वह भी संसार, मगर एक तो संसार और एक संसार परम्परा बनानेका कारण। अप्रत्याख्यानावरण राग, यह है तो संसार, मगर संसार परम्परा बढानेकी सामर्थ्य नहीं रखता। अनन्तानुबंधी राग विकट राग है और संसार परम्परा बढानेका कारण है। तो राग दोनोंके मिल जायगा। अज्ञानीके तो है ही राग, ज्ञानीके भी राग होता है कुछ गुणस्थानों तक, किन्तु स्वभावदृष्टिसे देखें तो वहाँ राग नहीं हैं। स्वभावमें राग होता है क्या ? स्वभाव अगर रागी हैं तो वह सदा रागी है फिर कभी उसका राग छूट नहीं सकता। तो स्वभाव तो अविकारी है। इस स्वभाव दृष्टिसे देखें तो यह विकल्प बनता। जीवमें राग नहीं है, यह विकल्प ही तो बना। एक ऐसी परिणति ही तो हुई। क्या ऐसे विकल्पके समय स्वानुभूति हुआ करती है। जीवमें राग है ऐसे विकल्पके समय क्या स्वानुभूति होती ? दोनों ही पक्षोंमें, दोनों ही विकल्पोंमें स्वानुभूति नहीं जगती और जो दोनों पक्षपातोंसे रहित है ऐसा जो तत्त्ववेदी है, केवल जो सहज चैतन्यस्वभावको अनुभवे वह साक्षात् इस समयसार अमृतका पान करता है। रागमें और मोहमें अन्तर है वह बात कल कही गई थी। तो अज्ञानीका राग और अज्ञानीका मोह यद्यपि वहाँ अन्तर बताना कठिन हो जाता है क्योंकि वह मोहमिश्रित राग बन गया है, लेकिन रागका स्वरूप रागका ही है, मोहका स्वरूप मोहका ही है। प्रभुभक्तिकी वह भी राग है, मगर राग रागोंमें अन्तर है, तब ही तो बताया है समयसारमें, और परमात्मप्रकाश आदिक अनेक ग्रन्थोंमें कि ज्ञानीका जो पुण्य है वह परम्परया मोक्षका

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कारण है, इसका अर्थ क्या है ? कहीं पुण्यसे मोक्ष नहीं हुआ करता है। पुण्यबंध रागभाव है। जो रागभाव है वह मोक्षका कारण नहीं, और यहाँ तक बताया गया है कि जिसके मोक्षकी आकाँक्षा है उस विकल्प वालेको मोक्ष प्राप्त होगा क्या ? नहीं। तो शुभराग, प्रभुराग, भक्ति राग यह भी एक राग है, संसार है. लेकिन ज्ञानी जीवके जितने भी भाव चल रहे हैं उनके फलमें पुण्यका फल ऐसा प्राप्त होता है कि उस वातावरणमें रहकर मोक्षमार्ग मिलता है, भीतर आश्रय करके मोक्ष मार्ग मिलता है। इस तरह ज्ञानीका पुण्यफल ऐसे ऐसे वातावरणको उत्पन्न करता है कि जहाँ स्वभावके लिए उसे एक उमंग मिलती है, यों परम्परया मोक्षका कारण कहा है। पर साक्षात् तो वह संसारका रूप हो है। कोई भी पुण्य मुक्तिका कारण नहीं मगर जो पुण्य ऐसे ऐसे वातावरणको बनाये कि जिससे स्वभावका आश्रय करनेके लिए अवसर मिले तो परम्परया मुक्तिका कारण मिलता तो परम्परया शब्द ही सबका समाधान देने वाला है। वास्तवमें वह मोक्षका कारण नहीं, किन्तु उस स्थितिमें ऐसा वातावरण मिलनेका, स्वभावदर्शन करनेका मौका मिलता जाता है तब ही तो ग्रन्थोंमें श्रावकोंके षट्कर्तव्य बताये है देवपूजा करना, गुरुसेवा करना, स्वाध्याय, तप, दान और संयम। ये यदि लाभदायक नहीं है तो फिर इनका विधान ग्रन्थोंमें क्यों दिया गया ? इन षट्कर्तव्योंका करना गृहस्थोंको आवश्यक क्यों बताया ? आखिर इनके करनेसे पुण्यबंध ही होता है, मगर हर जगह यह बात है कि छद्मस्थ ज्ञानीका एक ही परिणाम आश्रव, बंध, सम्बर, निर्जरा चारोंका कारण बनता है, क्योंकि आत्मामें एक समयमें एक ही पर्याय होती है पचासों नहीं। यह तो गुणभेद करके समझानेके लिए कहा जाता है, यह दर्शनकी पर्याय, यह चरित्रकी पर्याय···· पर वहाँ तो एक समयमें एक अखण्ड अवक्तव्य पर्याय है। जैसे कि स्वभाव अखण्ड अवक्तव्य है, पर उसको समझानेके लिए व्यवहारसे भेद करके समझाया जाता है कि इस ज्ञानीके दर्शन है, ज्ञान है, चारित्र है। आत्मामें तो बस अखण्ड स्वभाव और प्रति समय अखण्ड पर्याय। अब वह जो एक पर्याय - होती है ज्ञानीके चौथे ५ वें, ६ ठें, ७ वें गुणस्थानमें तो वह पर्याय एक है मगर उस समय काम कितने हो रहे हैं ? चार। आश्रव, बंध, सम्बर, निर्जरा। तो उन चारो परिणतियोंका कारणभूत एक ही परिणाम है।

६९९—कुछ रागाँश कुछ विरागांश वाला परिणाम होनेसे एक ही परिणामसे आश्रव, बंध, संवर, निर्जरा चारों तत्वोंका उद्भव—

एक ही परिणामसे आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा चारों क्यों हो गए ? तो वह एक परिणाम ऐसी स्थितिका है ऐसी दशा वाला है कि मानो रागभूमिके १०० अंश हैं। भूमिस्पर्शपर शत-प्रतिशत ओर ऊपर चलकर मानो रागका एक अंश रह गया, अब ऊपर चलकर वीतराग हो गए अब कोई पुरुष अगर रागके, ६० अंशोंको व्यतीत कर चुका है अब उसके ४० अंश रहे। पर्याय तो एक है मगर वह ऐसा है कि जहाँ ६० अंश राग नहीं है, ४० अंश राग है। वहाँ हुआ क्या कि जितने अंशमें रागका अभाव है उस शक्तिसे तो सम्बर निर्जरा चल रही है और जितने अंशमें रागका सद्भाव है उसकी अपेक्षा आश्रवबंध चल रहा है। परिणाम एक ऐसी स्थितिका है। ६ ठें गुणस्थान तक शुभोपयोगकी प्रधानता कही गई है। तीन गुणस्थानोंमें अशुभोपयोग, चौथे, ५ वें, ६ ठे गुणस्थानमें शुभोपयोग और ७ वे में शुद्धोपयोग, ऐसा प्राधान्यसे वर्णन है। फिर भी जहाँ चौथे, ५ वें, ६ ठे, गुणस्थानमें शुभोपयोग है तो यह न जानना कि वह शुभोपयोग तो राग वाला है। नाम शुभोपयोग रागकी प्रधानताकी अपेक्षासे किया। उस शुभोपयोगमें भी शुद्धोपयोगका अंश विकसित है। इतने अंशमें तो सम्बर निर्जरा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

चल रही और उस शुभोपयोगमें जो अंश रागका है उस रागसे आश्रव बंध चल रहा है। परिणमन एक है और उस परिणमन का नाम प्रधानतासे आचार्यों ने शुभोपयोग रखा है, और तीन गुणस्थानों में प्रधानतासे अशुभोपयोग रखा है और ऊपर शुद्धोपयोग रखा है पर रखा तो है शुद्धोपयोग नाम ७ वें ८ वें गुणस्थान आदिक का पर वहाँ यह न समझना कि केवल शुद्धोपयोग है, वहाँ रागांश चल रहा है और वहां १० वें गुणस्थान तक राग है। तो पर्याप तो एक होती है मगर वह एक पर्याप इस श्रेणीकी होती है कि जिस श्रेणी में कुछ राग नहीं है और कुछ राग नहीं है उसके कारण जो शक्ति है उसके अन्दर उस शक्तिसे तो सम्बर निर्जरा चलती है, राग है उस शक्ति से आश्रव बंध चलता हैं तबही तो कहा है कि जितने अंशमें सम्यकत्व है जिस अंशमें से सुदृष्टि है जिस अंशमें चारित्र है उस अंशमें कर्म बंध नहीं है जिस अंशोंमें तो एक ही पर्याय एकही परिणाम है उस परिणामका नाम रखनेमें एक विवाद हुआ तो वह नामका ही विवाद है, तत्वका विवाद नहीं, वस्तुका विवाद नहीं। वह पर्याय एक ऐसी स्थितिमें नहीं हैं कि राग नही रहा, अनन्तानुबंधी राग रहे। अप्रत्यक्ष राग नहीं रहा, और राग रहे। जो राग रहे उससे तो आश्रव बंध चल नहीं रहे उससे सम्बर निर्जरा चल रही, किन्तु परिणाम एक है एक समयमें कई परिणाम नहीं होते। जो परिणाम बताया जाता है वह एक ही परिणाम का विश्लेषण बताया जाता। इससे कहीं पर्यायें अनेक नहीं हो जाती। एक समय की एक पर्याय आश्रव बंध सम्बर, निर्जरा का जो कारण बन रहा है तो उसका निर्माण ऐसा होता है कि उसमें ऐसी विविध शक्तियाँ पड़ी है कि जितने अंशमें राग नहीं उसका प्रभाव और जितने अंशमें राग है उसका प्रभाव और।

७००—जीवनपर मोहके घटनाका विधान—

पहले बाँधेजो कर्म थे उनका विपाक आया तो कर्ममें विपाकका विस्फोट होता है कर्ममें कर्मकी बात होती है मगर एक क्षेत्रावगाह संबंध है। निमित्तनैमित्तिक बन्धन हैं और यह जीव अपने स्वभावकी सुध भूलकर उस कर्मलीलामें, उस रागमें एकत्व मान बैठा कि यह ही मैं हूं। मोहकी बात बतला रहे कि जो अज्ञानी जीव देहको मानते कि मैं देह हूं तो क्या वे इस भाषा में मानते हैं, क्या वे इस ढंगसे समझते है कि जो देह है सो ही मैं जीव हूं? अज्ञानी ऐसा नहीं समझता कि यह तो देह है में जीव हूं, उसकी दृष्टिमें जीव और देह ये दो नहीं है, अज्ञानी तो ऐसा मानता है कि जो देह है सो मैं हूं, यह तो ज्ञानीके समझने की भाषा है, अज्ञानी तो इस देहको मानता कि यहीमैं ही हूं, यहदेह हैं सो हो मैं हूं, अगर इसके विरोत मानेतो उसके मोहमें कमीला बैठेगी क्योंकि उसने दो बाते स्वीकार कर लिया, जो यह देह है सो देह और जो मैं हूं सो मैं। भला ये दो बाते स्वीकार करने के बाद निपट अज्ञानपना कैसे आयगा? अज्ञानी मिथ्यादृष्टि इस तरह नहीं समझता है कि जो देह है सो मैं। बस उसकी निगाह मैं एक ही बात है, दो बातें नहीं कि शरीर और आत्मा अज्ञानीकी दृष्टिमें दो बातें नहीं होती एक बात है, इसीको लक्ष्यमें लिए हुए मानता है कि यह ही मैं हूं देह और मैं ये दो उसकी दृष्टिमें नहीं हैं। तो इसी तरहसे राग प्रतिफलन होता है वह कमलीला कर्मरस है राग था असलमें राग कर्मका प्रतिफलनस्वरूप राग जीवमें है तो जो प्रतिफलन होता है उसमें यह अज्ञान ऐसा बस गया है कि वहाँ यह दो चीजें नहीं स्वीकार करता कि कर्मलीला है और मैं चैतन्य स्वाभाव हूं ऐसा मानकर कहाँ उसमें यह कला आयगी कि उसमें एकीकरण हो। उसे सुध नहीं आत्मस्वभावकी उसकी कल्पना भी नहीं उठती कि मैं आत्मा इस दंदफंद से निराला

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हूं और ज्ञानी को देखो कितनी एक ज्ञानकी स्थितिमें कमजोरी है कायरता है और एक विवशता है कि उसके भी राग प्रतिफलन होता और वह यह प्रतीत रखता कि मैं एक विशुद्ध चैतन्य स्वभाव मात्र हूं, प्रतीत रखने की क्या परिस्थति है कि वह राग करता है, मन वचन कायकी उस प्रकारकी वह चेष्टायें करता है तो उसे प्रतीतिका बल है इससे संसार परम्परा नहीं बढती उस रागसे, और अज्ञानी उसमें एकमेक बन गया है इसलिए उसके संसार परम्परा बराबर है।

७०१ विभावोंकी हेयताके परिचयसे प्रयोजनकी सिद्धि—

जीवमें राग कैसे घटित होता है इसका विधान जानकर अब घटना दृष्टिसे देखें, बीत रही है बात, उसको मिटानेका ढंग उसको मना करना नहीं, किन्तु उसकी पोल समझ लेना है, उसे हेय समझ लेना है यह उसका प्रयोजन बनेगा, मना करनेसे प्रयोजन न बनेगा। मना करनेसे होता क्या है ? वह तो यहां अनुभव बन ही रहा है, विभाव हो रहे हैं, उसका फल भी भोगते, दुःखी भी होते, तो मना करनेसे प्रयोजन सिद्ध नहीं है, किन्तु उसकी हेयता समझ लेना, भ्रम समझ लेना, मायारूप समझ लेना यह प्रयोजन काम देता है उससे हटनेके लिए, तो यह राग होता है एक घटना दृष्टिमें। अगर स्वभाव दृष्टिसे देखा तो यह समझमें आया कि मुझमें राग नहीं है, देखो स्वभाव अविकारी है यह तथ्य है मगर स्वभावमें राग नहीं है, इस प्रकारकी जो एक तरंग उठ गई यह एक तरंग है, यह भी एक विकल्प है। इस तरहका जब विकल्प उठाया गया तो विकल्पके कालमें उसे आत्माके अनुभवके रसका अनुभव नहीं बन पा रहा है, यह भी टूटेगा और उसको वहाँ कोई विकल्प नहीं रहता, किसी अस्वका आश्रय नहीं रहता। ऐसी होती है एक स्वानुभूतिकी स्थिति। वही है साक्षात् अमृतवान, ऐसा तत्त्ववेदी जीव इस साक्षात् समयसारका अनुभव करता है।

७०२ निमित्तनैमित्तिक योगमें कर्म दुर्दशान्तका दिग्दर्शन—

देखो निमित्तनैमित्तिक योग, जब आत्मस्वभावका आश्रय करता है तो उन कर्म प्रकृतियोंमें कैसी झटापटी, कैसी भाग दौड़ स्वयं हो रही है। करणानुयोगके अध्ययनसे समझिये हो रहो है उनकी ही परिणतिसे मगर जिस समय आत्मा एक स्वभावका आश्रय करता है तो कोई न भी जाने कि कर्मोंमें ऐसे निषेक हैं, ऐसे निक्षेप हैं। लेकिन स्वभावाश्रयसे वे सब काम स्वयं हो जाते हैं। करणानुयोगका विषय प्रायः आजकल चलना पढ़ना बन्द सा हो गया है मगर उसे जब ध्यानसे पढ़ते हैं तो उससे आचार्योंके प्रति एक ऐसी अनूठी भक्ति जगती है और उसके बाद एक ऐसे स्वभावका दर्शन होता है कि वह भी एक अनोखी घटना होती है। होता क्या है ? एक सम्यक्त्वलब्धि पुस्तक बनी है, बच्चोंके पढ़नेके लिए। एक लब्धिसार ग्रन्थ आचार्यका बना जो बड़ा कठिन पड़ता है उसकी कुंजी है सम्यक्त्वलब्धि उसमें सम्यक्त्व होते समय करणानुयोगकी विधिसे क्या क्या व्यवस्था कर्मोंमें बनती है और कैसी कैसी व्यवस्था बनते समय जीवमें क्या क्या परिणति बनती है, इसका बहुत सुगम शब्दोंमें वर्णन किया गया है। होता क्या है कि यह जीव क्षयोपशमलब्धि, विशुद्धलब्धि, देशनालब्धि तक तो एक बुद्धिपूर्वक पुरुषार्थ चलाता और उस ही सिलसिलेमें फिर इसके ऐसी विशुद्धि जगी कि प्रायोग्यलब्धि बनी। यहाँ तक अभव्य जीव भी प्राप्त करते हैं निकट भव्य तो प्राप्त करेंगे ही। प्रायोग्यलब्धिमें इतनी विशुद्धि चलती है कि जिन-जिन प्रकृतियोंका चौथे, ५ वे छठे गुणस्थानमें भी बंध होता है उन-उन प्रकृतियोंका प्रायोग्यलब्धिमें बन्ध विच्छेद हो जाता है। यद्यपि वह सम्यग्दृष्टि है तो भी प्रायोग्यलब्धिमें इतनी बड़ी निर्मलता कि उसके बल से कई प्रकृतियोंका बंधापसरण होता है इसीको कहते हैं चौंतीस बंधापसरण, अब इसके करणलब्धि

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उत्पन्न हुई। करणलब्धिमें अधःकरण, अपूर्व करण, और अनिवृतिकरण परिणाम होते हैं, तो जब अधः करण, अपूर्वकरण परिणामके बाद अनिवृतिकरण परिणाम होता तो उसमें शुद्ध भाव बनता। उन भावों में जीव कर क्या रहा है कि स्वभावका आश्रय कर रहा है, यह कुछ नहीं कर रहा। कर्मपर दृष्टि डालनेसे कर्म नहीं कटते। मैं कर्मको काट दूँगा, नष्ट कर दूँगा, कर्म बड़े दुःखदायी हैं, इस तरह कर्म दूर नहीं होते। स्वभावकी आराधनाके बलसे स्वयं ही एक ऐसा सामर्थ्य है कि वह अपनी विशुद्धिमें बढ़ता है और वहाँ कर्ममें विकट भगदड़ मचती है, देखो निमित्तनैमित्तिक योग कि कर्मविपाक, कर्म-उदीरणा, उनका उदय पाकर जीव अपने आपमें क्रिया करता है तो जीवके विशुद्ध निर्मल परिणाम चैतन्य स्वभावके आश्रय रूप स्थिति जब बनती है तो उसका निमित्त पाकर कर्ममें इस प्रकार की भगदड़ हुआ करती है। क्या होता, मानो कर्म बन्ध बहुत स्थितियोंका है, अब उस स्थितिमें जिन कर्मों का क्षय होना है सम्यक्त्वके बाद की बात। पहले तो जिस कालमें उपशम सम्यक्त्व हुआ है तो जैसे कोई वकील हो और धर्ममें उसकी रुचि है, उसकी इच्छा है कि मैं दस लक्षणके समयमें कोर्टमें न जाऊँ तो वह जेठ अषाढ़से यह प्रबंध करता है कि पहलेसे अगर कोई दसलक्षणकी तारीख पड़ गई है तो उसे दसलक्षणसे पहले या बादमें करायगा याने उस दस लक्षणके समयमें तारीख ही न रहे। इसे कहते हैं आगाल और प्रत्यागाल। अब होगा क्या कि जिस समय दसलक्षण आया उतने समयमें कोई तारीख नहीं। मगर केस तो पड़े हुए हैं, आगे भी तारीखमें केस पड़े हैं, मगर केस आगे पीछे की सत्तामें है, उतने समयमें नहीं है कोई तारीख, इसी तरह प्रथमोपशम सम्यक्त्व जितने समयको होता है उससे अन्त-मुहूर्त पहले आगाल प्रत्यागालकी क्रियामें उस समयकी स्थितिके निषेक पहलेके बंधेमें मिल जावेंगे और उस समयकी स्थितिके निषेक आगे बँधे के समयमें मिल जायेंगे, फिर प्रथमोपशम सम्यक्त्व वाले अन्त-मुहूर्तमें कोई सत्ता नहीं रहती है। देखो यह भी कितना बड़ा पतन, कितनी बड़ी दुर्दशा समझो कर्ममें कि ऐसे भी बँधे कर्म सत्तामें गए कि मानो दर्शनमोह ८ बजेसे पहिलेकी सत्तामें है और उससे एक मिनटके आगे बहुत काल तक की स्थितिका है मगर ८ बजे बाद एक मिनट तक की स्थिति तकके कोई निषेक नहीं पाये जायें इतना लगड़ापन यह भी कितना विलक्षण परिवर्तन कर्मप्रकृतियोंमें हो जाया करता है, अब सम्यक्त्व हुए बाद वहाँ जो कुछ थोड़ी शिथिलता बनती है तो होता क्या है? प्रायः सम्यक्त्वके बाद तो वैसी विशुद्धि नहीं होती जैसी अन्तमुहूर्तमें प्रारम्भिक समयमें होती है। इतनी विशुद्धि आगे नहीं हो पाती, ऐसे ही अनेक कामोंमें होती है। जैसे जब संयमासंयम होता है तो प्रथम बड़ी विशुद्धि होती है, बादके संयमासंयमके कालमें उतनी विशुद्धि नहीं रहती। सम्यक्त्व होता है तो जितनी विशुद्धि सम्यक्त्व उत्पन्न करनेके कालमें रहती है उतनी विशुद्धि सम्यक्त्व उत्पन्न होनेके बाद नहीं रहती। यह ही तो कारण है, सबसे बड़ा पुरुषार्थ करना पड़ता है उसे सम्यक्त्व उत्पन्न होनेमें, तभी तो अनन्त संसारका छेदकर विकट कर्मभार दूर होता है।

७०३ स्वभावाश्रय होने पर कर्मक्षपणका स्वयं विधान—

कैसे कर्म क्षीण होते हैं यह सब बात कर्ममें चल रही है, एक आवलीके बादके कितने ही और निषेक हैं उन निषकोंमें से एक आवलीके आगामी निषेक उनमें निकलते हैं और उस आवलीके कुछ समय को छोड़कर बाकीमें मिल जाते हैं, ऐसे ही आगे आगेके निषेक निकलकर पहले मिल जाते हैं, ये निकलते कुछ नहीं, वहींके वहीं रहकर स्थिति घट जानेका नाम भागना है। ऐसे ऊपरके निषेक नियत समय वाले निषेकोंमें कहाँ तक मिलते जाते हैं जहाँ तक पूरी आवली नहीं होती। उसके बाद फिर निषेक बढ़ते हैं

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

और अतिस्थापना कम होती जाती है, इसके बाद भगदड़ कर्ममें किस कारणसे हुई कि इस आत्माने स्वभावका आश्रय किया है, और ऐसे कर्म घटते-घटते वहाँ तक घट जाते हैं, जहाँ सिर्फ आवलीमात्र स्थिति रहती है, फिर वहाँ सर्व संक्रमण होकर अन्तिम आवलीका भी परिवर्तन हो जाता है। इस तरह सारे कर्ममें इतना बड़ा व्यायाम इतनी काटछाट कोई उपयोग देकर करता है क्या ? अगर केवल स्वभावाश्रय है तो वहां इतनी काटछाट स्वयं चलती है। जीव जब विशुद्ध परिणामोंमें आता तो कर्ममें बड़ी खलबली मचती, ऐसी एक निमित्तनैमित्तिक मात्र की बात है, जैसे बताया कि 'जीव परिणामे कम्मते पुग्गला परिणमंति" इत्य दि, जीवके परिणामका निमित्त पाकर पुद्गल कर्म वर्गणायें कर्मरूपसे परिणमती और कर्मविपाकका निमित्त पाकर जीव रागादिरूप परिणमता, मगर इन दोनोंमें कर्तृकर्म भाव रंच नहीं है कि जीवने कर्मको दशा बनायी है, कर्मने जीवकी दशा बनायी हो। देखो ऐसा कोई कहे कि जीवने कर्म काटा, कर्मने जीवमें राग किया तो उसे बोलते हैं उपचार।

७०४—उपचार और व्यवहारमें मिथ्यापन व सभीचीनताका निर्णय—

उपचार मिथ्या या व्यवहार मिथ्या ? व्यवहार शब्द जहाँ-जहाँ उपचारके लिए कहा गया हो उसही व्यवहारको मिथ्या समझना। व्यवहारको मिथ्या नहीं कहा गया। समयसारमें हर जगह यही परख करनी होगी। आपको एक नई बात दृष्टिमें दे रहे कि आप परख करें कि यह निश्चयका कथन है या व्यवहारका, या उपचारका। जितना उपचारका कथन है वह मिथ्या है। उसमें कुछ प्रयोजन है तब तो कहा गया। जैसे जिस डिब्बेमें घी रखा जाता उसे सभी लोग कहते घीका डिब्बा। अब कोई इसे सुनकर ऐसा समझे कि जैसे लोहा, पीतल, ताँबा आदि धातुवोंका डिब्बा होता वैसेही घी का डिब्बा होता होगा तो यह गलत हो गया। अरे उसका प्रयोजन है कि जिस डिब्बेमें घी रखा है वह कहलाता है घीका डिब्बा। उसे यदि कोई उपादान दृष्टिसे समझे कि जैसे ताँबेका डिब्बा वैसेही घीका डिब्बा तो वह मिथ्या है। उपादान दृष्टिसे पर कर्तृत्व, पर स्वामित्वकी प्रक्रिया बनाना मिथ्या है। तो व्यवहार मिथ्या है, ऐसा अनेक जगह कहा है तो उसका अर्थ है कि जो उपचार वाला व्यवहार है, पर कर्तृत्व, पर स्वामित्वकी भाषा वाला व्यवहार है वह मिथ्या है। इस दृष्टिको रखते हुए आप समयसारमें देखेंगे तो समझ जावेंगे कि हाँ वह सब कथन ठीक है, जीवने कर्मकाटा, कर्मने राग काटा आदिक बातें बताकर जो मिथ्या बात कही गई वह बिल्कुल सही बात है। वह उपचारसे कहा गया जो कुछ कथन है वह उसही रूपमें मिथ्या है। प्रयोजन समझें और प्रयोजन समझकर काम निकाल लें। जैसे घीका डिब्बा कहा तो सभी लोग उसे झट उठाकर दे देते। काम तो बन गया। अगर कोई यों समझें कि घीसे बने डिब्बेकी बात कह रहे तो वह तो कभी ला ही न पायगा। कौनसी भाषा आप बोलेंगे ? उपचार भाषा बोलनेमें दोष नहीं है किन्तु उपचार भाषाको उपादान दृष्टिसे अर्थ लगाकर सुनने और बोलनेका दोष है। प्रयोजन जान लें। तो ऐसा प्रयोजन भर जान लें कि निमित्तनैमित्तिक योगसे यह राग हुआ है। इतना ही मात्र प्रयोजन है और यों कोई समझे कि कर्मने जीवको रागी बना दिया तो यह त्रिकाल असम्भव है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्यका कुछ करता नहीं, पर निमित्तनैमित्तिक योग बिना कभी विकार होता नहीं। हां तो इस तरह राग बन रहा।

७०५—स्वभावबल जताकर विभावविवशता दूर करनेका संदेश—

भैया ! रागसे रोज—रोज दुःखी होते, रोज अनेक काम करने पडते। हम आप बड़े विवश हैं, अनेक लोगोंको बड़ी विवशता अनुभव किया करते है, वह क्या स्वभाव है जीवका ? अरे वहतो राग

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

(७३ कलस

है, वह कर्मरस है, उसके प्रतिफलन पर जीव विवश हो गया। एक इतना आग्रह कर लें कि अब हमें विवश नहीं होना है। आग्रह करके तो देखें। आग्रह करते अभी बनता नहीं है। एक इतना आग्रह कर लें कि मेरेको क्या काम पड़ा है ? मेरा जो सहज चैतन्यस्वरूप है वह मेरे उपयोगमें रहे, अनुभवमें रहे, और कुछ बात चितमें आये नहीं, अगर ऐसा कर लिया तो आप बुद्धिमान हैं और आप ऐसे कल्याणके मार्गमें लग गए कि जिसकी कोई प्रशंसा नहीं की जा सकती। यह जीव एक इस सहज चैतन्य स्वभाव की आराधना नहीं कर पाया इसीलिए अभी तक इस संसारमें भटक रहा है। अब एक यह विवेक करना होगा कि इस तरहका राग करके हमारा गुजारा न चलेगा। मुख्य बात एक यह ही रहनी चाहिए कि किसी भी प्रकारके रागमें हम न रहें। अगर राग करना पड़ रहा है तो वहाँ यह विवेक की कि हमें ऐसा राग न करना चाहिए। इस रागसे अपनेको निपटा लेनेमें ही हमारी बुद्धिमानी है, हमें ऐसे रागको नहीं करना, और ऐसे रागसे गुजर लेना या ऐसे रागमें अपना एक समय उपयोग कर लेना कि जिससे हम इस सहज चैतन्यस्वरूप भगवानके दर्शन करनेके अपात्र न बन जायें। बस इसी विवेकसे व्यवहार, व्यवहार चारित्र, व्यवहार संयम बस उसीका एक विवेक बनायें, पर रागका जो स्वरूप है वह रागका स्वरूप तो मलिन ही है, राग कभी पवित्र नहीं रहता। राग तो राग ही है, वह तो एक विकल्प ही है, वह तो इस चैतन्य स्वभावके लिए कलंक है, मगर परिस्थिति ऐसी होती है कि रागकी परिस्थिति कायी है तो उसमें विवेक बना लें कि मुझे ऐसा राग नहीं करना है। इस रागसे अपना गुजारा बना लें। जैसे कोई बात करनेके लिए मन नहीं चाहता फिर भी उसे करना पड़ता। इसके बहुत उदाहरण हैं, अभी आप मकान बनवानेके लिए मजदूर लगा दें तो वे मजदूर काम तो सब करते मनमें इस प्रकारकी लगन रखते हुए नहीं करते कि हमें बहुत बढ़िया ढंगसे काम करते रहना चाहिये, वे तो एक अपनी ड्यूटी अदा करते हैं। कैदी जेलमें चक्की पीसता है, पर उसके मनमें यह बात नहीं रहती कि मैं खूब अच्छी तरहसे चक्की पीसूं। उसके मनमें है कि यह तो झंझट है, परिस्थितिवश पीसका पड़ रहा है। ऐसी ही अनेक बातें हैं कि काम करना मनमें नहीं है, फिर भी परिस्थितिवश करना पड़ता है। तो ऐसी ही बात रागके प्रसंगमें रहे कि यह राग करते रहना मेरा स्वभाव नहीं, यह तो मेरे लिये कलंक है, आफत है, झंझट है, पर परिस्थितिवश राग करना पड़ता है। प्रत्येक प्रसंगमें अपना विवेक सही रहेगा तो अपना उद्धार होगा, अन्यथा दुर्गतिका पात्र ही बने रहना पड़ेगा।

एकस्य दुष्टो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वावपि पक्षपातौ।
यस्तत्त्ववेदी च्युत पक्षपात स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव "७३"

७०६ चित्प्रकाशका विभाव निरीक्षणसे भी परिचय—

आत्माके सत्य स्वरूपके अनुभवका क्या उपाय है, इसका दिग्दर्शन कराने वाला यह प्रकरण है, वस्तुका परिचय दो नयोंसे होता है अथवा कहो दो ढंगोंसे होता है, उसकी घटना समझना कि उस पर क्या रहा है, और उसका स्वभाव समझना कि इसका सहज निरपेक्ष स्वभाव क्या है ? दो बातें समझें बिना पदार्थका ठीक-ठीक परिचय नहीं होता। आत्माको सर्व ओरसे समझना है। आत्माका स्वभाव क्या है और इस पर घट क्या रहा है ? विकार घट रहे हैं—विकार बन रहे हैं और स्वभाव अविकार का है। कितनी एक बेमेल बात है कि स्वभाव तो है अविकार रहनेका और परिणमन हो रहा है विकारका लेकिन बेमेल तो नहीं है, विकारका स्वभावका उस प्रकारका इस योगमें प्रकट रूप बना है। चेतनसे अचेतन बन जाये तो बेमेल कहकर चेतनकी सीमामें रहकर बन रहा है विकार। वह विकार तो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

इस चेतनका अनुमान कराता है, जैसे किसी कमरेमें एक खिड़की है और बल्ब जल रहा है किसी कोनेसे तो बाहरसे देखा तो कमरेमें उजेला नजर आया, बल्ब तो नजर नहीं आया मगर जैसे वह उजेला उजेला भी नजर नहीं आता किन्तु प्रकाशित वस्तु नजर आती। तो प्रकाशित वस्तु टेबुल, कुर्सी वगैरह जो चीजें रखी हों कमरेमें वे प्रकाशमें आयीं, तो उससे यह जान लिया जाता कि यहाँ बल्ब जल रहा है, ऐसे ही रागद्वेष कषाय आदि जो विकार हैं, अनर्थ हैं वे हो रहे हैं जहां, तो उन विकारोंको देखकर यह निर्णय हो जाता कि यहाँ चेतन जगमगा रहा है। अचेतनमें तो ये बातें नहीं बनती।

७०७ परमार्थतः विकारकी निराधारताका दिग्दर्शन—

यह विकार क्या है, किसका कहें, किसका मालिक बतायें? जैसे सिनेमाके सफेद पर्दे पर पीछे से बल्बका अक्स पड़ रहा है और उस पर सब चित्रण हो रहा है, मनुष्य आया, कार आयी, दृष्य आया, अब वह दृष्य वह चित्रण उसका मालिक किसे कहा जाय? जो पर्दे पर चित्रण हो रहा उसका मालिक पर्दा तो नहीं, क्योंकि पर्दा मालिक होता तो सदा उस पर चित्र रहना चाहिए था। वह पर्दे की चीज तो नहीं। हां आधार पड़ता है, और जो चित्रण हो रहा वह फिल्म मशीन की चीज नहीं, या जो रील है उसकी भी चीज नहीं। रीलकी चीज रीलमें है, पर्देका स्वरूप पर्देमें है और चित्रण आ रहा है, यह ही तो निमित्तनैमित्तिक योग है इसी तरह आत्मामें विकार आया तो यह विकार किसका कहा जाय? आत्माके स्वरूपमें तो नहीं। यह तो एक आधार है जहां फोटो आ रही है, कर्मकी चीज नहीं। कर्ममें तो है विकार मगर कर्मका विकार कर्ममें है। तो जिस विकार पर अज्ञानी जीव इतना मुग्ध हो रहे, इनना लगाव रख रहे उस विकारके लिए जान दे दें, सारा जीवन बरबाद कर दें और देखो किस आधार पर जीवन बरबाद किया, वह आधार कुछ मिला नहीं, जैसे कोई लड़े मरे आपसमें और आधार कुछ भी न हो, उन लड़ने वालोंको भी पता नहीं पड़ता कि आधार कौन? कभी कुछ लड़के बैठे हों तो एक लड़का हँसा, उसे देखकर दूसरा हँसा, फिर सभी हँस पड़े, पर किस बात पर हँसे, यह किसी बालक को पता नहीं। इसी प्रकार जिन विकारोंसे लगाव रखकर हम बरबाद हो रहे, ध्यान खो रहे, जीवन गुजार रहे वहाँ हाथ कुछ आनेका नहीं। आधार कुछ सही है नहीं, और अपना समय बरबाद करते। तो उन्हीं विकारोंमें से द्वेष नामक विकारकी चर्चा इस कलशमें की गई है।

७०८ द्वेषविकारकी अनर्थकारिता—

विकारके मूल रूप दो हैं—राग और द्वेष, राग मायने प्रीतिके परिणाम याने ज्ञान इस तरहसे जाने कि जिस जाननेमें प्रीति स्नेहका भाव आ रहा, वह तो है राग और ज्ञानका ऐसा परिणमन बने, विकल्प बने कि जहां द्वेषका लगाव चल रहा वह है द्वेष। तो राग जैसे आग है तो द्वेष पानी है क्या? द्वेष भी ज्वाला है, आग है, जिस कालमें जीवमें द्वेष परिणाम होता है उस कालमें यह बड़ा संतप्त हो जाता है, दूसरेको बरबाद किए बिना चैन नहीं पड़ती। द्वेष सारे गुणोंको फूक देता है और द्वेषीको यह पता नहीं कि किस आधार पर द्वेष किया जा रहा है, किस पर द्वेष करना? जगतमें कौनसा ऐसा जीव है जो द्वेषके योग्य हो? कोई कहे—वाह किसीने हमारे धनमें हानि कर दी या हमारा कोई घर बिगाड़ दिया या निन्दा कर दी तो वह द्वेष किया जाने योग्य हो गया। अरे उसने कुछ नहीं किया, वह खुद अपनेमें परिणम रहा है और अपनी शान्तिके लिए परिणम रहा है, उसका ऐसा ही कर्मोदय है कि उसने इस क्रियामें शान्ति नहीं समझा जिसको यह दूसरा अपने अनुकूल प्रतिकूल लगा रहा है। द्वेष कोई नहीं करता। सब जीव अपना-अपना आनन्द सुख पानेके लिए प्रयत्न किया करते हैं। कोई किसीसे मूलमें

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

द्वेष नहीं रखता, कोई विरोध नहीं रखता, विरुद्ध जचने लगता है। यह द्वेष परिणाम क्या है? क्रोध, मान, अरति, शोक, जिन कषायोंका प्रकृतियोंका उदय हुआ उन कर्मोंमें उसही प्रकारका विकार जगा और उसकी फोटो, प्रतिफलन, छाया इस उपयोगमें आयी और चूंकि इस समय उपादान ऐसाही है कि वह ऐसा समझता है कि स्वभावकी दृष्टि छोड़ देता है और उस द्वेष प्रतिफलनसे अपना लगाव कर लेता है।

७०९—निर्लेप निरंजन चित्प्रकाशका प्रतीक्षण—

मूलतः इस मुझ जीवमें द्वेष नहीं, विकार नहीं। मैं तो शुद्ध चित् हूं। एकान्तः बात न समझना! घटनातो चल रही है मगर स्वभाव नहीं है ऐसा। स्वभाव दृष्टिसे देखें तो द्वेष नहीं, घटना दृष्टिसे देखेंतो द्वेष लग रहा। सो द्वेषकी दृष्टि रखे उससे तो अच्छा है कि द्वेष नहीं है यहाँ ऐसा निरखा जाय। अगर द्वेष नहीं है ऐसा विकल्प भी रहे जब तक, तब तक अविकल्प स्वानुभव नहीं होता। तो जो तत्त्व वेदी जीव है वह इन सब नय पक्षपातोंको त्याग कर अपनेमें एक चैतन्यमात्र अंतस्तत्त्वका अनुभव करता है। रागद्वेष ये दोनों चक्कीके पाट है जिनके बीच पड़ा हुआ यह चेतन पिस रहा है। द्वेष परिणाम किया याने कर्मकी जो छाया आयी द्वेषरूप जिससे उसका कुछ मतलब नहीं, मैं तो चेतन हूं, पर आयी छाया, उसको जो अपनाया तो ऐसा संताप लगा कि यह दूसरोंके विरुद्ध, दूसरोंके विनाशकी बात सोचता है और करता है। फल यह होता है कि तत्काल भी दूसरोंके द्वारा इस पर उपद्रवमें पड़ जाता है। धर्म बिना जीवको शान्ति न मिलेगी। और धर्म कोई ऐसी कठिन चीज नहीं है कि शरीरमें शक्ति नहीं तो न कर सके, धन नहीं तो न कर सके, परिजन, मित्रजन नहीं तो न कर सके, ऐसा धर्म नहीं होता। धर्म तो अपने आपके सहज स्वरूपके अनुभवका नाम है और इस कालमें यह जीव अपनेको निरपेक्ष सहज चैतन्यमात्र होनेका दृढ़ भाव रखता है। कैसा दृढ़ भाव? अन्य सबसे उसका मोह टूटा, सब पदार्थ उसको भिन्न जचने लगे। सब पदार्थ एक समान जचने लगे, जो मेरे नहीं वे सब एक बराबर। चाहे परिजन हों, मित्र हों, वैभव हो, कुछ भी वस्तु हो, उससे मेरा क्या सम्बध है? मैं तो एक ज्ञानमात्र अमूर्त आकाशवत् निर्लेप निरञ्जन आत्मवस्तु हूं।

७१०— अनर्थ व्यर्थ प्रवृत्तियोंका अन्तस्तत्त्वपर विकट प्रहार—

अहा, अन्तस्तत्त्व तो समृद्ध है, मगर यह जीवकी कमजोरी है कि बाहर जब दृष्टि डालता है, लोगोंको देखता है तो यह सब विचारधारासे रह जाता है और तृष्णामें झुलस जाता है, हाय ऐसा धन मेरे पास क्यों न हुआ। ये इतना बढ़ रहे समाजमें, ये इतना बढ़ रहे देशमें, ये इतना धनिक बन रहे और यह मैं कुछ नहीं। यह एक बड़ा उपद्रव है। इस प्रकार जो आँखसे देखता है और विचार बनाता है, यह तो ठीक ज्वारियों जैसा फल है। जैसे ज्वारियोंके बीच फस गए तो फिर निकलना बड़ा मुश्किल हो जाता। हार कर निकलना चाहे तो ज्वारी लोग उसे चिढ़ाते हैं- बस हो गए, इतनीही दम थी, और अगर जीतकर निकलना चाहे तो कहते—अरे यह कितना खुदगर्ज निकले, बस खुद जीत लिया चल दिया। तो जैसे ही ज्वारियोंके अड्डेमें से फसे हुए को निकलना कठिन होता ऐसे ही यहाँ भी जब लोगोंको निरखते हैं तो निकलना बड़ा कठिन हो जाता है। किसीको अकेलेमें रहना बने तो वह तो इसके लिए भलेकी बात है मगर खुदभी अथवा लोग उसे अभागा कह देते। किसी तरहसे उनका मनोबल हीन कर देते हैं। कोई हीन नहीं करता, सब अपने आपकी कमजोरी है। अन्यथा तुल जाये सारी दुनिया क्या बिगाड़ है? बिगाड़ तो विकार है, राग है। मोही जीव अलौकिक तत्त्वसे नेह रखने वालेको भला कैसे कह सकते? मगर परवाह न करें। मुझे लौकिकोंमें सिर भिड़ाकर नहीं रहना है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

मेरा प्रोग्राम तो इस मायामय संसारसे मुक्त होनेका है,फिर संसारी जीवोंमें संकोचकी क्या बात रही? अपना स्वरूप देखें, आराधना बनायें, परम विश्राम लें सारे विकल्पोंको तज दें, कुछ न सोचे, आने दें ज्ञानमें, जो यह स्वयं है सो आता रहे ज्ञानमें बाहरी काम क्या पड़ा ? ऐसे एक अन्तरकी दृढताके साथ अपने आपके स्वरूपमें कोई पहुंचे, वही पुरुष धन्य है ।

७११—नयपक्षातिक्रान्त पुरुषकी मंगलरूपता—

प्रकृत कलशमें कहा जा रहा है कि एक नयके मतमें तो यह जीव दुष्ट है, दोषमय है, द्वेषी है, यह बताया व्यवहारने । पर्यायको, घटनाको, योगको सम्बंधको व्यवहारने बताया और जब स्वाभावमात्र देखातो यह द्वेषी था यह बात नहीं है । यहतो विशुद्ध स्वभावमात्र है । निर्णय करके विकल्प मात्रसे हटकर जो अपने आपमें सहज रहता है वह तत्त्ववेदी है, निष्पक्ष होकर अनुभव करता है । उसके लिए तो यह चेतन चैतन्यमात्र है, संस्कारमें जब बसा हुआ हो कि मेरा तो यह यह है तो संस्कारमें जब एक अज्ञानमयभाव बन रहा तो वहां ज्ञानस्वरूपका अनुभव कैसे जगेगा ? इस मोह के संस्कारको मिटाना है । सही विधिसे धर्ममार्ग में चलें तो थोडे क्षणमें ही धर्म पा लेंगे और विपरीत मार्गसे धर्ममें सारा जीवन गुजरे, कितने हीं दस लक्षण गए, कितने ही पर्व गए, प्रतिवर्ष वही करते आये, क्रियायें वही सब कर डाला, समय बिता दिया, उत्सव पूजन सब कुछ किया मगर सहज निरपेक्ष जो अंतस्तत्त्व है उसका अनुभव नहीं पाया फिर धर्म कहाँ से हो? धर्म है आत्माका स्वरूप, स्वभाव, उसकी पहिचान हो, उससे मिलन हो, उसका अनुभव हो तो धर्म मिलेगा । जो अपनेमें पर्यायें निकलती हैं उनसे निराला और स्वभावके बारे में जो विचार जगता है उनसे निराला केवल चित्स्वभावमात्र सहज ज्ञानज्योति मात्र जो अपनेको निरखता है, वही एक सही विश्राम पा लेता है उस ज्ञानीकी दृष्टिमें ही इस चित्का अनुभव है । यह ही करना है, जीवनमें । अन्य कुछ करने लायक काम है ही नहीं जो जीवका हित करे । एक अपने आपके सहज स्वरूपका अनुभव यह ही एक आत्महितकारी कदम है, किसीभी क्षण कहीं भी हों, धुन अगर है तो किसी भी जगह अनुभव हो सकता है और धुन नहीं है तो कितनी चेष्टायेंकी जायें इस सहज अंतस्तत्त्वका अनुभव नहीं हो सकता । तो धुन बनेगी अभ्याससे । हम अधिकतर अपने आपको इतना देखें कि जो बात गुजर रही है विकार द्वेष; यह सब कर्मछाया है मेरा रूप नहीं है मैं इनमें क्यों चिपकूं ? मैं तो शुद्ध चेतनामात्र हूं ।

एकस्यकर्ता न तथा परस्यचिति द्वयोर्द्वावितिपक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलुचिच्चिदेव ।।७४।।

७१२—मोहविनाशका उपाय स्वपर भेदविज्ञान—

आत्मकल्याणके लिए इतनातो अतीव आवश्यक है जैसा कि सब अपनी अपनी योग्यतानुसार अपनी अपनी भाषामें समझते हैं । क्या ? कि मोह न करना । मोह न करनेका कोई उपाय बना सका है क्या ? बनानातो अवश्य चहिए । कोई यों दृष्टि करके कि यह सारा जगत ईश्वरके द्वारा रचा गया हैं, यहाँ मेरा कुछ नहीं है, यह ईश्वरका बगीचा है, मेरा यहां क्या हैं ? ऐसा भाव भरकर चाहते है मोहका हटाना पर ऐसी बात कितनी ही सोची जाय, मोह हटाने का रास्ता न मिल पायगा । क्यों न मिल पायगा ? जिसको आत्मामें यह निर्णय नहीं कि मैं यह हूं उसे यहभी निर्णय नहीं कि यह पर है । तो फिर मैं और पर का जहाँ बोध नही है वहाँ मोह मिटानेका क्या ? वह तो लौकिक ढंगकी बात

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हो गई। जैसे लोग यह सोचते हैं कि यह महल तो इसका है, यह बगीचा इसका है, मुझे कैसे मिल सकता है ? फिर मैं इसके लिए क्यों मोह करूँ ? पर इसी ढंगका वहाँ सोच लो। मोह ऐसे भावसे नहीं मिटता, मोह मिटता है "निजको निज परको पर जान," यह सही बुद्धि बने तो मोह मिटता है। क्या हूं मैं ? पहले एक मोटी ही बात देखलो। मैं चेतन हूं और बाकी जितने जीव हैं ये भी सब चेतन हैं, पर मेरे स्वरूपास्तित्वसे भिन्न स्वरूपास्तित्व वाले हैं और फिर इसके अतिरिक्त जितने और पर पदार्थ हैं वे तो स्पष्ट भिन्न ऐसेही हैं कि जिनकी जातिपातिभी नहीं है और यही सबूत है कि ये पदार्थ आजतक अपना अस्तित्व रख रहे हैं, यह ही सब पक्का सबूत है कि प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूपसे सत है अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे सत् है। कोई पदार्थ किसी दूसरे पदार्थको नहीं करता, इसका यह ही सबूत है जो आज इतने पदार्थ अपने-अपने अस्तित्वमें रह रहे हैं। कैसे ? कल्पना करो कि यदि ऐसा हो जाता कि कोई पदार्थ किसीको कर देता कोई किसीको परिणतिसे परिणमा जाता तो पहले बतलावो कि उन दोनोंमें से फिर अस्तित्व किसमें रहता ? यह उस रूपमें परिणम गया तो बताओ यह रहा कि नहीं ? कभी यह कहेंगे तो फिर वह भी न रहेगा, वह भी दूसरेरूप परिणम जायगा। यों अगर गड़बड़ी होती जाय, कल्पनामें ला रहे हैं तो फिर जगतन टिकता, शून्य होता, कुछ न होता। जगतका जो अस्तित्व है वह यह बतला रहा है कि प्रत्येक पदार्थ भिन्न—भिन्न अपने-अपने स्वरूपमें है। जब कभी चर्चा होती है कि यह उसका निमित्त है तो निमित्त शब्दही यह बात बतलाता कि निमित्त है, पर कर्ता नहीं। और विशेष विशेष गाथा पढ़नी करनेकी जरूरत ही नहीं। जीवमें रागद्वेष हुए तो उसका निमित्त है पुद्गल कर्मोदय इसका अर्थ क्या हुआ कि पुद्गल कर्म अपनी परिणतिसे रागादिक नहीं करता अन्यथा वह उपादान ही कहलाने लगता। तो जहाँ निमित्त नैमित्तिक योग आया उससे तो बड़ा ज्ञान मिलता है, क्या क्या ज्ञान मिलता है ? एकतो यह कि यह मेरे पदमें नहीं, दूसरा ज्ञान यह कि ये वस्तुएँ औपाधिक हैं, नैमित्तिक हैं, ये मेरे स्वरूप नहीं, ये रमनेके योग्य नहीं, इनसे हटनेमें ही कल्याण है।

७१३—अहंकार ममकारकी परेशानी—

यहाँ यह बतला रहे हैं कि एकके मतमें जीव कर्ता है, एकके मतमें जीव कर्ता नहीं है, वहाँ जीवके विभाव कर्तृत्वकी बात लेना। यह जीव किसी पर पदार्थको करता है ऐसा किसीका मत है तो वह नय पक्षमें न आयगा। वह उपचार है ऐसा नहीं है। प्रत्येक जीव अपने परिणामका कर्ता है ऐसा एक नयमे दिख रहा। दूसरे नयमें दिख रहा कि जीव कर्ता नहीं। वह तो स्वभावमात्र है। ये तीन विकल्प हैं। इन विकल्पोंसे च्युत होकर कल्याणार्थी जीव उस स्वभावका अनुभव किया करते हैं। संसारी जीवोंको दुःखी करने वाले चार प्रकारके ये भाव है— (१) अहंबुद्धि, (२) ममबुद्धि, (३) कर्तृत्वबुद्धि (४) भोक्तृत्वबुद्धि। अहंकार—जो अहं नहीं है उसे अहंकर देना इसे कहते हैं अहंकार। शरीर मैं नहीं वहां समझ रहे—मैं हूं यह अहंकार है। अहंकार शब्दका अर्थ गर्व नहीं, मान नहीं, मान और गर्वका भी आधार है तो यह ही परमें अहं बुद्धि, लेकिन अहंकारका अर्थ है कि जो मैं नहीं हूं उसमें अनुभव करना कि यह मैं हूं। ममकार क्या ? जो मेरा नहीं है उसमें यह बुद्धि बनाना कि मेरा है। हमने अपने विद्यार्थी जीवनमें करीब १०—१२ वर्षकी उम्रमें एक कथा पढ़ी थी, वह याद है, एक माधुरी पत्रिका निकलती थी उसमें वह लिखी हुई थी। एक राम नामका लड़का था, वह पावभर रसगुल्ले लेकर चला तो एक जगह देखा कि एक धोबी कपड़े धो रहा था, उसके पास उसका लड़का बैठा था तो उस लड़के को वे रसगुल्ले खिला दिया। अब और भी रसगुल्ले खानेके लिए वह लड़का मचल गया, रोने लगा।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

धीबीने पूछा-भाई तुमने क्या खिला दिया इसे जो रोने लगा, जिन्हे खानेके लिए मचल गया ? गुलाब जामुन " ये कहाँ मिलेंगे ? अरे यह जो पासका बगीचा है उससे कितने ही तोड़ लावो । " अच्छा भाई तुम्हारा नाम क्या ? " कल परसों । अच्छा भाई कल परसों, थोड़ी देर को हमारा यह सामान (बर्तन कपड़े वगैरह) देखना, हम बगीचे से उसे गुलाब जामुन खिला लायें । ठीक है, धोबी चला गया । धोबी के जाने पर रामू ने सारा सामान उठाया और लेकर चम्पत हो गया । जब धोबी वापिस आया और देखा कि सारा सामान नदारत तो वह रोने लगा, चिल्लाने लगा, अरे कोई दौड़ो' कल परसों हमारा सारा, सामान ले गया । लोग जुड़े, सबने कहा– अरे भाई कल परसों ले गया तो आज रोने से क्या है ? वह रामू जब आगे बढ़ा तो देखा कि एक घुड़सवार अपने घोड़े पर बैठा हुआ चला आ रहा था । उसको प्यास लगी थी । उसने रामू से कहा, भाई मुझे प्यास लगी है, अपना लोटा डोर दे दो, उस कुएँसे पानी भरकर पी लें । हाँ हाँ ले लो, । तुम्हारा नाम क्या है ? मेरा नाम है कर्ज देनेमें । अच्छा भाई यह घोड़ा पकड़ो, हम कुएंसे पानी भरकर पी लें । हाँ हाँ पी लो । रामूने क्या किया कि घोड़े पर बैठकर ऐंड़ लगाया और घोड़ा लेकर चम्पत हो गया । यह बेचारा घुड़सवार रोने लगा, चिल्लाने लगा– अरे भाई दौड़ो, कर्ज देनेमें मेरा घोड़ा ले गया । लोग जुड़े, सभीने यही कहा कि भाई कर्ज देनेमें अगर घोड़ा ले गया तो क्या बुरा किया ? खैर वह रामू बालक आगे बढ़ गया । शामको एक नगरमें देखा कि एक धुब्बिया के द्वारपर उस धुनिया की स्त्री बैठी थी । धुनिया कही बाहर गया हुआ था । सो रामूने पूछा. माँ क्या मैं रात भर तुम्हारे घर ठहर जाऊँ ? हाँ हाँ बेटा ठहर जाओ । तुम्हारा नाम क्या है ? मेरा नाम है— तू ही तो था । अब ठहर गया वह रामू धुनियाके घर । शामको पासमें एक बनियाकी दुकान से खाने-पीनेका सारा सामान उधार लिया, कह दिया कि हम कल सुबह सब भुगतान करेंगे । तो बनिया ने पूछा बाबूजी तुम्हारा नाम क्या है ? मेरा नाम है— मैं था । अच्छा भाई ठीक है, सुबह भुगतान कर देना । यह रामू बालक रातभर उस धुनियाके घर रहा । जो कुछ बर्तनों का धोवन.धावन था वह सब रुईमें फेंका, जब सबेरा हुआ तो घोड़ेपर बैठकर अपना सारा सामान लेकर चम्पत हो गया । जब धुनिया ८ – ९ बजे दिनमें कहीं बाहरसे आया और रुईको गंदी हालतमें देखा तो पूछ बैठ अपनी स्त्री से कि आज यहाँ रातको कौन ठहरा था ? तो स्त्री बोली– तू ही तो था । अरे ठीक क्यों नहीं बताती? हाँ ठीक कहती हूं, तू ही तो था । धुनियाने स्त्रीको पीटना शुरू किया । यह बात देखा पासके बनियेने तो उसे उस स्त्री पर दया आयी और वहाँ जाकर कहा— अरे यहाँ जो रातको ठहरा था वह मैं था । तो डंड़े बनिया पर बरसने लगे । तो जो यहाँ जगतमें मैं था, मैंने यह काम किया, अमुक तमुक कहता, उसपर डंडे बरसने लने ।

७१४—स्वपरके स्पष्ट बोध बिना स्वानुभूति की असंभवता—

जब तक अपना स्पष्ट बोध न हो जाये, कि मैं यह हूं और ये सब पर है तब तक उसका काट नहीं मिला । स्पष्ट बोध कहते किसे है ? तो उसेभी समझो कि जसे मिठाई का स्वाद मिठाई खाने वालेको मिलता. मिठाईके संबंधमें बोलने वाले को नहीं ' वैसेही इस आत्माका यथार्थ बोध उसे होता जो उसका प्रयोगात्मक विधिसे अनुभव करे । केवल उसकी बात बोलने भरसे यथार्थ बोध नहीं होता । जैसे कोई वैद्य अपने शिष्योंको किसी जड़ी बूटी वाली पहाड़ी पर ले गया, वहा कोई डेढ़ हाथके बेंतके संकेत से बताता जाता कि देखो यह अमुक चीजकी औषधि है, यह अमुक चीजकी । अब कोई बेवकूफ शिष्य अगर उस बेंतको ही औषधि समझ ले तो वह औषधि की परख तो न कर पायगा । ठीक ऐसे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ही आत्मस्वभावका अनुभव कैसे बने, उसका स्वाद कैसे आये ? जब तक आत्मानुभव नहीं तब तक उसे आत्माका सच्चा बोध नहीं। एक कथा आती है कि फागुनके महीनेमें अष्टान्हिका के दिन थे, तो राजा ने अपनी नगरीके सब लोगोंको हुक्म दिया कि सभी लोग होली फागका उत्सव मनाने जंगलमें जायेगें। पुरुष पुरुष अलग रहेंगे, स्त्रियां स्त्रियाँ अलग रहेंगी। अब कोई सेठ, शायद अरहदास नाम था, वह अष्टान्हिका पर्व मना रहा था, उसने राजासे प्रार्थना किया कि महाराज हमें अष्टान्हिका पर्व मनानेकी छुट्टी मिले, हम पूजा पाठ स्वाध्याय आदिमें यहीं रहेंगे। सो राजाने उस सेठकी प्रार्थना स्वीकार कर लिया। अब रातको राजाके मनमें आया कि इस नगरीमें सब जगह पहुंच कर देखें कि कहां कौन गया कौन नहीं गया। सो जब वह नगरीमें घूम रहा था तो अरहदास सेठके घरके पास कुछ रुक गया। वहाँ कुछ आवाजें मिल रही थीं। वहाँ बात क्या थी कि उस सेठके घर कथायें हो रही थीं। राजा मकानके पीछेसे सुनने लगा। सेठने कोई कथा कहा तो सभी सेठानियाँ कहें ठीक है ठीक है। मगर उसकी छोटी सेठानी कहे बिल्कुल झूठ। कुछ ऐसी भी कहानियाँ वहाँ हुई जिनको राजाने भी सुन रखा था, पर सभी सेठानियां कहें सच और सबसे छोटी सेठानी कहे बिल्कुल झूठ। राजा बड़े आश्चर्यमें पड़ गया। खैर जब सबेरा हुका तो राजाने छोटी सेठानीको बुलवाया, उसका बड़ा सत्कार किया। और बादमें पूछाकि ऐ सेठानी जी तुम यह बताओ कि तुम्हारे घर जो रातको कहानियाँ हो रही थीं सो सभी सेठानियां तो कहती थीं कि ठीक ठीक मगर तुम कहती थी—बिल्कुल झूठ सो कैसे ? तो उस सेठानीने राजाको कोई जवाब तो न दिया पर सब प्रकारके वस्त्राभूषण उतार कर दीक्षा लेने के लिए किसी अर्जिका के पास चल दिया और चलते समय यह कह गई कि महाराज सच तो यह है बाकी सब बिल्कुल झूठ। तो ऐसे ही समझो कि इस आत्माका परिचय किसने पाया ? केवल शब्द बोलने वाले ने नहीं, कोई ११ अंग ९ पूर्वका पाठी ज्ञानी मुनि हो तो उसमें ज्ञानकी कोई कसर तो नहीं, उसे आत्माकी बात बड़े ढंगसे, शक्ति पूर्वक बताना न होगा क्या, फिर भी क्या आप उसे कह सकते हैं कि उसने आत्मानुभव किया ? नहीं। और, कोई ऐसा जो बोलना भी नहीं जानता, जिसे देखकर हम कह सकते कि यह तो बड़ा मूर्ख है कुछ समझता ही नहीं, पर पता नहीं कि उसके उपयोगमें, उसकी आत्मामें सम्यक्त्व ज्योति चमक रही हो। हम पशु पक्षियोंको जो सम्यक्त्व हो गया उसकी पहिचान आप कर सकते हैं क्या ? नहीं कर सकते। तो मतलब यह है कि आत्माका, आत्माके सहज शुद्ध स्वरूपका परिचय उन्हें है जिनको इसका स्वाद आया।

७१५ आत्मानुभवके स्वादमें आत्म परिपूर्ण परिचय—

भैया ! आत्माका स्वादसे परिचय मिलता है बातोंसे नहीं। हाँलाकि ये बातें कामकी हैं, एक बाह्य साधन है मगर करना तो खुदको हो रहा है, उस आत्मस्वरूप भावका परिचय करें। पहिले तो यह जानें कि मुझसे आत्म पदार्थके अतिरिक्त जितने पदार्थ हैं वे सब निराले हैं, उन सबसे मैं भिन्न हूं, अच्छा किस किससे भिन्न ? इन धन वैभवोंसे, इस कुटुम्ब कबीलासे भिन्न, इस देहसे भिन्न और जो कुछ जान रहे हों, जो कुछ कर रहे हों, उन सबसे भी भिन्न। क्या ? परभाव, रागादिक भाव, ज्ञानविकल्प ज्ञान तरंग इनसे भी मैं भिन्न ? तो कोई बोल उठा-हाँ महाराज अब हम समझ गए। आप उसकी बात कह रहे हैं कि जो एक ज्ञान है, जो जाननहार है, जान रहा है बस, यह जाना, वह जाना, वह है आत्मा। कहते हैं कि नहीं, अभी तुम नहीं समझे। जो जान रहे, इसका ज्ञान, उसका ज्ञान, वह आत्मा नहीं है। क्यों महाराज क्यों नहीं समझे ? यों नहीं कि जो यह जानना चल रहा हैं यह तो खण्ड ज्ञान

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हैं आत्मा कहीं खण्ड-खण्ड हुआ करता है ? तो कोई बोला-लो अब हम समझे महाराज। आप उसकी बात कर रहे हैं कि जो भरा पूरा ज्ञान है, शुद्ध ज्ञान है, पवित्र ज्ञान है तीन लोक तीन कालको जानने वाला ज्ञान है वह कहलाता हैं आत्मा। तो कहा कि अभी धीर धरो, वह भी आत्मा नहीं, जिसका अनुभव करते, जिस स्वभावकी अनुभूतिकी बात कह रहे वह। अरे आप क्या कह रहे ? हम तो परमात्माकी बात कह रहे। केवल ज्ञान अनन्त चतुष्टय। अरे वह है तो शुद्ध पर्याय, मगर इतना मात्र अगर आत्मा हो तो जब केवल ज्ञान न हुआ था तब आत्मा न था क्या ? उसकी बात नहीं कह रहे। हम तो उसकी बात कह रहे जो अनादि अनन्त ज्ञान ज्योति है, तो अब कोई बोला—महाराज अब तो हम खूब समझ गए कि वह अनादि अनन्त ज्ञान ज्योति है जो एक रूप है, नाना रूप नहीं है वह है आत्मस्वभाव। कहो कि अभी नहीं समझे।—अरे अभी नहीं समझे ?—हाँ अभी नहीं समझे।—देखो कोशिश करो और इस चिन्तनमें लगो कि इस अभेद पद्धतिसे, जब तुझे इतना भी ख्याल न रहेगा कि मैं एक हूं, अनेक नहीं हूं, इतना भी ख्याल मिट जायगा, सहज आनन्दकी अनुभूति हुआ करती है वहाँ, इतना भी ख्याल मिट जायगा, इतना भी संकल्प विकल्प न रहेगा, वहाँ तू समझ पायगा कि यह आत्मा है।

७१६ तत्त्वकी गवेषणामें सिद्धान्तोंकी उपज—

हुआ क्या ? जगतमें यह सिद्धान्त अधिक बढ़े क्यों ? एक चित्रण करो--कोई जंगल है, वहाँ आचार्य महाराज विराजे हैं, सब साधु वर्ग सुन रहे हैं, आत्म तत्त्वकी ऐसी ऊँची चर्चा जैसी कि अभी आत्मस्वभावकी बात कही गई। सब सुन रहे थे, तो जितनी खोपड़ी होती हैं उतनी तरहकी बुद्धियाँ हुआ करती हैं न ? तो किसीने सोचा कि बिल्कुल ठीक कह रहे याने आत्मा कुछ नहीं। जब जाना कि यह ज्ञान वाला है, अमुक है वह जब आत्मा नहीं है तो इसके मायने यह है कि जो ज्ञानसे परे है, जो शून्य है वह आत्मा है, लो अब शून्यवाद निकल आया। तत्त्वोप्लव एक सिद्धान्त है। मानो ऐसे लोग एक चर्चा करने बैठे मे—आचार्य महाराजने यह कहा था कि जो शून्य है वह है आत्मा सो शून्याद्वैत हूं तो उनमें कोई बोला कि अगर बिल्कुल शून्य है तो फिर मामला ही क्या रहा ? वह आत्मा हो नहीं। जो एक प्रतिभास मात्र है वह है आत्मा। अब उसकी दृष्टिमें प्रतिभासाद्वैतका मत निकल आया। चल रही चर्चा, एक बोला–अजी यह बात नहीं। अगर प्रतिभास मात्र है और वह निराधार है तो फिर प्रतिभास मात्र कैसे रहेगा ? नहीं, आत्मा ब्रह्मस्वरूप है और वह प्रतिभासात्मक है, लो ब्रह्माद्वैत निकल आया। लोग तो सोचते होंगे कि मेरी क्या गल्ती है, ठीक ही तो कह रहे ? ठीक तो कहा मगर जो पर्यायात्मक है उसे तो अन्दरमें मना कर रहे कि पर्याय तो होती ही नहीं इसलिए ब्रह्मस्वरूप जो मान रहा उसका एकान्तवाद बन गया। दो नय है (१) निश्चयनय और (२) व्यवहारनय। इनमें अगर कोई निश्चयको मना करके व्यवहारकी बात कहे तो वह व्यवहारनय भी झूठा और अगर कोई व्यवहार नयको मना करके निश्चयनय की बात कहे तो वह निश्चयनय भी झूठा। एक अज्ञान अंधेरा रखकर कोई बात करे तो उसकी बात तथ्य नहीं निकलती। पर्यायको निकाल कर जो केवल स्वभावको ही माने वह कहलाता ब्रह्माद्वैत। चर्चामें कोई बोल उठा कि भाई तुम ठीक ठीक नहीं बतलाते। यह बतलावो कि अगर ब्रह्म ब्रह्म ही है तो फिर यह सब माया क्यों दिख रही ? वह ब्रह्म तो सही है मगर क्या मात्र ब्रह्म ही है, ब्रह्मके साथ साथ प्रकृति भी है। ब्रह्म तो अछूता पड़ा हुआ है, एक यह मत निकल आया, उसे कहते हैं सांख्यमत। उस चर्चामें कोई बोल उठा कि तुम यह क्या कह रहे कि जो एक है

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सदा रहनेवाला, सदा रहने वाला कोई हो तो बतलावो तो सही । कोई जवान दिखाया तो कहा कि यह तो सदा न रहेगा । यह कुछ हीं दिनोंमें बूढ़ा होगा, मरणको प्राप्त होगा । अरे तत्त्व तो एक क्षणिक वाद है, सब कुछ क्षण क्षण भर रहने वाला है । कोई बोला कि तुम क्या कहते ? क्षणिक बाद ही नहीं । तुम्हें यह जानना चाहिये कि पदार्थ कितने होते हैं, द्रव्यपदार्थ, गुणपदार्थ, पर्याय पदार्थ, सामान्य पदार्थ, विशेष पदार्थ, समवाय पदार्थ और अभाव । ये ७ पदार्थ होते हैं और देखो ये सब न्यारे—न्यारे हैं । द्रव्य अलग चीज है, सामान्य अलग चीज है, इसी प्रकारविशेष, समवाय और अभाव ये सब अलग—अलग चीजें है, तो यह निकल आया वैशेषिक सिद्धान्त । इतनी चर्चा होनेके वाद जब एक कलहसा मचा तो वहाँ आचार्य देवने कहा कि तुम लोग जितनी जितनी बातें सोचते हो वे सब सच तो है मगर जैसे मीमाँसकोंने माना कि द्रव्य, गुण, क्रिया, सामान्य, विशेष समवाय और अभाव ये ७ पदार्थ है, तो वहाँ ७ कहाँ है ? कुछ समझ भी पाये ? वस्तु तो एक एक है, सत् सत् । उस ही सत् दृष्टिसे देखा तो द्रव्य है उस ही सत्को पर्याय दृष्टिसे देखा तो क्रिया है, सामान्य दृष्टिसे देखा तो सामान्य है, विशेषसे देखा तो विशेष है और ये तुमने अलग अलग देख लिया, ये अलग अलग नहीं है । इन सबका अनादि सिद्ध संबंध है । वही समवाय है और एक में दूसरे का अभाव है वही अभाव है । तो यह कोई अलग चीज तो न रहे । न अभाव अलग चोज, न समवाय अलग चीज, न सामान्य, न विशेष, न गुण, न पर्याय, न द्रव्व, ये अलग चीजें नहीं है । वे एक ही पदार्थ है- उसके देखनेके ये सब ढंग है । इसीतरह जितने भी विवाद करने वाले थे उन सबको समझा दिया । जब केवल एक स्वभावदृष्टि की बात है ऐसी, कि जिसको मिल गया उसके लिये उसकी निगाह करना ऐसा सुगम है जैसे कि जब आप सफर करते समय साथमें टिपेनबाक्स रखते हैं, जब ही भूख लगी, झट निकाला और खा लिया, ऐसे ही जिसको अपने स्वभावकी अनुभूति हुई है उसके लिए इसकी निगाह करना ऐसा सुगम है कि जब गर्दन झुकाया मायने उपयोग लगाया तभी देख लिया ।

७१७—विकल्पदूरगतामें सत्य आनन्दका लाभ—

आत्माको स्वभावकी ओरसे देखो तो कर्ताभोक्ता किसी भी प्रकारकी कोई गड़बड़ियाँ है क्या ? स्वभावसे यों और वहाँसे यों । अब उसमें किसीका नयपक्ष हो जाय तो उसमें सिद्धि नहीं होती । नयपक्ष का एकान्त और नयमें क्या फर्क है ? प्रतिपक्षनयकी प्रतीति तो की है, वह भी है लेकिन प्रधानता रखकर कोई पक्ष कहा उसे कहते हैं नय और दूसरेकी प्रतीति न हो दूसरेका निषेध हो और कोई पक्ष कहा उसे कहते है एकान्त । तो जगतके जीवोंको जितने भी क्लेष हैं वे हैं अहंकारसे, ममकारसे कर्तृत्वबुद्धिसे, भोक्तृत्वबुद्धिसे । कर्ताका अर्थ लेना परिणमयिता, दूसरा अर्थ नहीं । जो परिणमें सो कर्ता । तो क्या एक दूसरे रूप परिणम जाता है ? तो इस प्रकारकी बुद्धि—कर्तृत्वबुद्धि और परको भोगनेकी बुद्धि । आप तो समझते हैं कि मैंने भोगा पर आपने वहाँ किसे भोगा ? क्या उस पदार्थको ?···· नहीं । अरे आपने तो जो उस पदार्थ विषयक ज्ञानविकल्प किया उसे भोगा । आप लोग अरहरकी दाल चावल तो शायद बहुत पसंद करते होंगे । खूब रोज रोज खाते भी होंगे । आपको ऐसा लगता होगा कि यह दाल चावल तो हमें बड़े अच्छे लगते, इन्हें हम रोज—रोज भोगते, पर वहाँ आप उस दाल चावलको नहीं भोगते । वास्तविकता वहाँ क्या है कि रसना इन्द्रियके माध्यमसे उसके स्वादका ज्ञान कर रहे । कैसा स्वाद होता उस दाल चावलका, इसे आप शब्दों द्वारा सही—सही बता भी नहीं सकते । आप तो उसके स्वादका ज्ञान कर रहे तो उस स्वाद वाले ज्ञानमें आप तीव्र रुचि रख रहे, तो किसे आप भोग रहे ?

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उस ज्ञानको। किसी पर पदार्थको आप कहाँ भोग सकते ? अगर भेद विज्ञान हो तो यह बात ध्यानमें आये कि मैं पर पदार्थको नहीं भोगता। मैं तो सर्वत्र अपने ज्ञान विकल्पको भोगता रहता हूं। तो ये चार भाव हैं जिनसे कि संसारमें रुलते आये हैं। इनसे हमें मुक्त होना है और उसका उपाय है, व्यवहारसे शिक्षा लें, निश्चयसे शिक्षा लें और सब विकल्पोंको तोड़ करके एक परमार्थ शुद्ध वस्तु, जिसके बारेमें इतना ही कहा जा सकता कि जो है सो है। उसका अनुभव बनेगा।

७१८—स्वानुभावका साधन यथार्थ ज्ञान और यथार्थ विश्राम—

अगर यह स्वानुभूतिकी बात कठिन लगती है और आपको इस आत्मस्वभावके समझनेकी अगर इच्छा है कि हमें अनुभव जगे तो देखो यह सब सुगमतया प्रयोग साध्य है। प्रयोगका ही नाम चारित्र है। कुछ करेंगे करतूत कुछ प्रयोग बनेगा कुछ चलेगे, इस ढगसे रहेंगे तो वह बात मिलेगी। एक बहुत मोटी सी बात है, इतना कमसे कम निर्णय बनाकर कि जगतमें जितने ये दृश्यमान पदार्थ हैं इनमें जो हम इतना दिल लगाते आये हैं उनसे अब तक मिला क्या ? कुछ नहीं, और जब हम इनमें चित्त लगाते है तब हमें कष्ट ही कष्ट मिलता। इसलिए मैं आज खूब समझ गया कि अब मैं किसी पदार्थको दिलमें न बसाऊँगा, मैं किसीको नहीं जानना चाहता। मैंने खूब जान लिया कि इन पदार्थोंमें उपयोग लगानेसे अब तक आनन्द नहीं आया कष्ट ही रहा। मुझे अब किसी पदार्थका चिन्तन नहीं करना है नहीं जाने कर्मका निमित्त नेमित्तिक सम्बंध नहीं समझ रहे यह कर्मलीला कर्मरस, नहीं जान रहे हम बहुत बड़ी बड़ी बाते, किन्तु इतनी बात जब समझमें आयी कि ये बाहरी पदार्थ इन्द्रियके विषय, इनका उपयोग, इनमें चित्त फसाना यह हितकारी नहीं है। इससे अहित होता है। इसलिए किसीको भी मैं मनमें न बसाऊँगा। यह मन बड़ा उच्छृंखल है, इसके लिए तैयार होंगे तो कोई न कोई बात मनमें आयगी उसको मनमें न बसाना चाहिए। आत्माको उससे कुछ लाभ नहीं देख खूब सोच सोचकर देख, इसके लिए बड़ा समय लगता है और काम होता है थोड़े समयमें। जैसे लोकमें विवाहको एक बड़ा काम मानते हैं ना ? पर वह विवाह कितनी देरमें होता ? मुश्किलसे एक मिनट लगता होगा। अरे जब तक ६ भाँवर पड़े तब तक विवाहको पक्का न समझो। अगर लड़का लड़कीके प्रति कोई विवादकी बात आ जाय तो विवाह उस समय भी बंद हो सकता : मगर जब ७ वीं भाँवर पड़ती है तब विवाह हुआ समझिये। तो इस ७ वीं भाँवरके पड़नेमें मुश्किलसे एक मिनटका समय लगा। अब इस एक मिनटके कामके लिये कितने दिन पहलेसे इन्तजाम किये जाते ? शायद वर्षोंका समय लग जाता होगा। अब कोई सोचे कि इस एक मिनट वाले कामको करनेके लिए बहुत दिनोंसे क्यों हैरान होना, उसके लिए क्यों कुछ क्रियायें करना. बस उस एक मिनट वाले कामको ही कर दें। यदि ऐसी बात कोई करने लगे तो फिर उस विवाहका कुछ महत्व ही न रहेगा। कुछ मनमें बात ही न आ पायगी कि हमारा इनके साथ संबंध हुआ है, जब चाहे छोड़ने की बात हमेशा सोच सकता है, अपनी कोई जिम्मेदारी न समझेगा जैसा कि बहुतसे विदेशोंमें होता है। यह तो एक लौकिक बात कही पर यह बात बताते हैं कि स्वानुभाव जैसे महत्व पूर्ण कार्यके लिए सब जीवन लग जाय और एक दो भव लग जायें तो भी क्या है ? लगें और इसके लिए सब तरहका ज्ञान करें। सब तरहके ज्ञानमे एक बात पुष्ट होती है। जिनको शुद्ध ज्ञान है उनको जरूर बात स्पष्ट होती। जिनको करणानुयोगका ज्ञान है उनको विशेष स्पष्ट होता है और स्वभावकी ओर उन्मुखता होती है तो ऐसे व्यवहार और निश्चय इन दोनों विकल्पोंको त्यागकर स्वरूपमें गुप्त होकर जो इस चैतन्यस्वभाव को अपने ज्ञानोपयोगमें ऐसा सहज निस्तरंग होकर उतारते हैं वे ही साक्षात् अमृतका पान करते हैं।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

७१९—विशुद्ध तृप्ति—

विशुद्ध तृप्तिका एक बहुत छोटासा बाह्य चिन्ह बताते। जब एक विशुद्ध तृप्तिका कोई सम्बंध होता है तो जैसे कहते है कि देवोंके कंठमें से अमृत झरता तो वह अमृत क्या चीज है ? जैसे हम आपके कंठमेंसे राल बहती ऐसा ही द्रव जैसा बहता होगा। यहाँ भी तो सब हम आप किसी अच्छे ध्यानमें आरामसे बैठे हों तो कंठमेंसे ऐसा घूंट उतरता है कि उस समय हम अपनेको बड़ा तृप्त अनुभव करते हैं। और वह ऐसा मीठा घूंट है कुछ नहीं। वह वहीं बना, वहाँ ही उतरा। आपको परम तृप्तिकी एक बात बतला रहे, जब स्वाभावानुभूतिकी बात बनती है तब इसे एक परम विश्राम मिलता है और किसीभी प्रकारका विकल्प न रहे इसके चित्तमें, ऐसा वह क्षण होता है, वहाँ अनुभूति होती है। वह जगे इसके लिए अपना यत्न होना चाहिए और यह यत्न तब बन सकता है जब आत्मा प्रसन्न हो, निराकुल हो, निशल्य हो, कषायका वातावरण न हो, एकको दूसरेसे कुछ प्रेरणा मिले, वात्सल्यभाव बने, ये सब बातें जो बताया है सम्यग्दर्शनके ८ अंगरूप, उनसे स्वानुभूति बनेगी, मगर उसका हम वातावरणही नहीं रखना चाहते तो ऐसी बात नहीं बनती। उसके लिए व्यवहारमें सम्यग्दर्शनके ८ अंगरूप अपनी एकवृत्ति हो और फिर अपना ध्यान बने इसी स्वभावका।

एकस्य भोक्ता न तथा परस्य चितिद्वयोर्द्वावपि पक्षपातौ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्य खलुचिच्चिदेव "७५"

७२०—भोक्तृत्व अभोक्तृत्वके विकल्पसे अतिक्रान्त पुरुषको समयसारानुभवका अधिकार—

प्रकरण यह चल रहा है कि जो नय पक्षोंके विकल्पसे अतिक्रान्त होकर मायने गुजर कर जो एक निज सहज स्वभावमें गुप्त होता हुआ अपनेमें विश्राम पाता है वही इस सहज परमात्मतत्व अमृतका पान करता है। इस सम्बन्धमें कुछ विषय ऊपरके कलशोंमें कहाही गया है। अब यह कह रहे हैं कि एक दृष्टिमें तो यह जीव भोक्ता है और एक दृष्टिमें यह जीव भोक्ता नहीं है। ऐसा इस चेतनमें दो दृष्टियोंके दो नयपक्षहैं, उन दोनोंसे जो अतिक्रान्त हो जाता है वही साक्षात् समयसार अमृतका पान करता है। क्या पक्ष आया ? व्यवहार नयके पक्षमें यह जीव भोक्ता है तो इसमें यह नहीं समझना कि व्यवहारनय यह कह रहा हो कि जीव पर वस्तुका भोक्ता है। पर वस्तुका भोक्ता कहना यह उपचार से है, व्यवहारनयसे नहीं। व्यवहारनयसे यह जीव अपने रागद्वेष सुखदुख ज्ञान विकल्प आदिक जो परिणाम करता है उन परिणामोंको भोगता है।

७२१—निश्चयनय, व्यवहारनय व उपचारके कथनका विश्लेषण—

एक बात सर्वत्र ध्यानसे समझना चाहिए कि वर्णन होता है मुख्यतया तीन भाषाओंमें। (१) निश्चयनय, (२) व्यवहारनय और (३) उपचार। निश्चयनय और व्यवहारनय ये दोनों प्रमाणके अंश हैं। इस कारण जैसे निश्चयनय प्रमाणका अंश होनेसे सत्य है, किन्तु जो उपचार है वह उपचार पर स्वामित्व, पर कर्तृत्वकी बात कहता है, इस कारण वह मिथ्या है। जैसे मेरा मकान, यह है पर पदार्थ और अपना बतलावे तो यह उपचार भाषा है, प्रयोजन तो यहाँ भी देखा जायगा। इस समयकी पर्यायमें यह जीव इस मकानमें रहा करता है इस कारण ऐसा कहा जा रहा है। तो प्रयोजन देखना और बात है और उपचार भाषामें जैसा बोला जाता है उसी तरह कोई उपादान दृष्टिसे समझे तो वह मिथ्या है। अब एक सावधानी हर जगह बर्तनी पड़ेगी कि व्यवहारनयके कथन व्यवहारके शब्दसे कहे गए हैं और उपचार भाषाके कथनभी व्यवहार शब्दसे कहे गए हैं। तो जहाँ भी यह वर्णन मिलेगा खूब निगाहसे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

देखते जाना, जिस व्यवहारको मिथ्या कहा है वह व्यवहार उपचार वाला है व्यवहारनयके विषय वाला व्यवहार नहीं। यह बात आपको समस्त सिद्धांतमें मिलेगी। तब फिर बात क्या बन गई है। जैसे कि दूध दूध सब होते हैं। गायके दूधको भी दूध कहते, भैंस, बकरी आदिके दूधको भी दूध कहते और आकके दूधको भी दूध कहते, मगर आकके दूध पीनेसे मृत्यु होती है। तो ऐसा सुनकर एकदम यह बात सब जगह न बोलना चाहिए कि दूध जितने होते हैं वे सब प्राणघातक होते है। वहाँ यह विवेक रखना होगा कि आकका दूध पीनेसे प्राणघात होता है, पर गाय, भैंस, बकरी आदिका दूध तो प्राणघातक नहीं, वह तो पौष्टिक होता है। तो सर्वत्र यह सावधानी बर्तनी होगी कि उपचार वाला व्यवहार मिथ्या है और व्यवहारनयका जो व्यवहार है वह प्रमाणका अंश है। यह बात सूक्ष्मतासे मनन करते हुए जब अध्ययन करेंगे तो आप सर्वत्र यह बात पायेंगे। जैसे आत्मापर पदार्थोंको भोगता है, इन विषयोंको भोगता है, ऐसा कहना उपचार है और यह मिथ्या है क्योंकि आत्मा अपने ज्ञान विकल्पको भोगता है, पर पदार्थोंको नहीं भोग सकता, लेकिन ऐसा कहाँ क्यों जाता है? उपचारमें प्रयोजन हुआ करता है, वह जरूर समझ लेना चाहिए। जैसे किसीने कहा घीका घड़ा उठा लावो तो घीका घड़ा, ऐसी सही बात तो नहीं है। अर्थात् घीसे घड़ा बना तो नहीं है जिससे वह घीका घड़ा हो जावे पर प्रयोजन पर दृष्टि तो दो। देखो रोज काम होता है, रोज बोलते हैं. घरमें किसी बालकसे कहते हैं बेटा घीका घड़ा उठा लावो तो वह बालक भूल तो नहीं करता, वह घीका घड़ा उठा लाता है. जिसके लिए संकेत किया, समझ गया वह बालक। अब घी का बना है वह घड़ा, ऐसा तोवह बालक भी नहीं समझता। तो प्रयोजन वश उसमें उपचार हुआ करता है, पर प्रयोजन उपचारकी शैलीमें व्यक्त होता है। जिस तरह बोला जाय वैसा ही मानना मिथ्या है। जब यह कहा जाय कि जीव बिषयोंको भोगता है, तो वहाँ प्रयोजन देखें, याने विषयभूत पदार्थोंका आश्रय करके यह जीब अपने ज्ञान विकल्पको भोगता है, इतना प्रयोजन लेकर समझे तो उपचारका उसने प्रयोजन जाना, और प्रयोजनको छोड़कर ऐसा कोई समझे कि जीव इन बाहरी पदार्थोंको भोगता है तो यह बात मिथ्या है।

७२२—विकल्प और विकल्पातिक्रांतकी स्थितिका दिग्दर्शन—

भोगनेका क्या अर्थ है? अनुभवन। अनुभवन किसका होता है। तो यहाँ जो दो दृष्टियाँ रखी गई हैं कि जीव भोक्ता है और एक दृष्टिमें जीव भोक्ता नहीं है तो उससे क्या बात समझना कि जीब अपनी परिणतियाँ भोगता है। यह बात कही व्यवहारनयने और शुद्धनयने क्या बतलाया कि जीव भोक्ता है ही नहीं, क्योंकि शुद्धनय निरख रहा है उस परिणत परम भावको, उस सहज चैतन्यस्वभावको, उस अनादिअनन्त अहेतुक भावको, तो उसमें तरंग हो नहं। दृष्टिमें तरंग नहीं, वस्तुमें तरंग नहीं, यह बात नहीं कही जा सकती। आत्मामें तरंग तो है क्योंकि आत्मा एक वस्तु है और वह द्रव्य पर्याय दोनोंके बिना नहीं उठ सकती। अगर आत्माके स्वभावको निरखा जाय तो वह निस्तरंग दिखता है, अविकार जैसे कि आरतीमें पढ़ते हैं—ऊँ जय—जय अविकारी। तो उस अविकारी स्वभावकी दृष्टिमें जीव भोक्ता नहीं है, यह निश्चयनयका विषय है ऐसे दो पक्ष रखे गए। इस आत्मामें व्यवहार विकल्प नहीं हो, जो व्यवहारको न माने और निश्चयके पक्षको माने तो उसने एक पक्षका तो उल्लंघन किया, मगर दूसरेका तो नहीं कर सका। और, पक्षोंका अतिक्रमण हुए बिना जीव कभी समयसारका अनुभव नहीं कर पाता। कोई निश्चयनयके पक्षको तो न माने, व्यवहारके पक्षसे तो मानो वह पहलेसे ही बरी हुआ रह रहा था और व्यवहारनयके पक्षका विकल्प कर बैठे तो वह कैसे निजका अनुभव करेगा? तो यह जानना कि

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

व्यवहारका पक्ष और शुद्धनयका पक्ष इन दोनों पक्षोंसे जो च्युत है, अतीत है ऐसा भव्य जीव ही तो साक्षात् अमृतका पान करता है। यहाँ कुछ अनुभवसे अपनी घटनाओंपर दृष्टिपात करो। आप हर जगह देखेंगे कि व्यवहारनय और निश्चयनय दोनों एक साथ निहित हैं।

उपभोगविकल्पके आश्रयभूत पदार्थकी भिन्नताके कारण जीव द्वारा बाह्य पदार्थके उपभोगनेकी असंभवता—

जब कभी कोई चीज खाते हैं जैसे कोई मिठाई ले लो या कोई फल ले लो, तो उसके खाते समयमें एक कुछ मौज सा मानते है और उसके सम्बंधमें कुछ ऐसा समझते कि मैं इसे भोग रहा हूं पर वहाँ एक बात तो बतलाओ कि जिस चीजको खाया जा रहा है वह पुद्गल है ना ? आत्मा खाता है या नहीं इसकी एक अलग कथा है, मगर जो खाना चल रहा है उसकी बात पूछ रहे हैं कि जो खानेमें आ रहा है वह तो पौद्गलिक पदार्थ है ना ? याने जिसमें रूप, रस, गंध, स्पर्श हैं वे ही हैं ना ? तो स्वाद किसमें है ? उस फलमें उसका स्वाद, उसमें किसमें तन्मय है ? उस मिठाई में। रूप, रस, गंध, स्पर्श ये किसमें तन्मय हुआ करते हैं ? उस ही पुद्गलमें जिसका रूप, रस, गंध, स्पर्श हो। देखो भेद कहीं सीमाका अतिक्रमण करके नहीं होता है। एक आपको दृष्टान्त बता रहे। बौद्धोंने और अधिक भेद किया किया मानो भेद विज्ञानमें वे अपनी एक हदसे आगे बढ़ गए। कैसे बढ़ गए ? यहाँ तो माना जाता है कि प्रत्येक परमाणु रूप, रस, गंध, स्पर्शका पिण्ड है याने परमाणु चतुष्टयात्मक है पर बौद्ध ऐसा नहीं मानते। वे यह कहते हैं कि रूप परमाणु अलग है, रस परमाणु अलग है, गंध परमाणु अलग हैं और स्पर्श परमाणु अलग हैं। एक अणुमें चारों पाये जाते हों ऐसा नहीं मानते वे वितर्क करके और आगे अतिक्रमण करके बढ़ गए। यहाँ तर्कको तो स्थान है मगर विपरीत कुतर्कको यहाँ मार्गमें बाधक बताया गया है। अच्छा, और चलो। जैन शासनमें तो द्रव्य ही स्वतंत्र सत् है, वह एक सत् है, वह गुणपर्यायमय है। बताया ही गया 'गुणपर्ययवद्द्रव्यं,' गुणपर्यायमय द्रव्य है। बाकी द्रव्य हैं एक एक। अन्वय शक्तिसे देखा तो, गुण नजर आये और व्यतिरेकसे देखा तो पर्याय नजर आयी मगर इस बातको और कुतर्क करके और आगे बढ़ें तो मीमांसाकोंने क्या रचा कि द्रव्य स्वतंत्र सत् है, गुण स्वतन्त्र सत् है। क्रिया स्वतंत्र सत् है, सामान्य स्वतंत्र सत्, विशेष स्वतन्त्र सत् और अभाव स्वतन्त्र सत्। उन्होंने ७ पदार्थोंको स्वतन्त्र मान डाला, मगर थोड़ा उन्होंने बचाव किया, क्या कि सत्ता गुणका समवाय द्रव्य गुण और क्रियामें होता है। प्रायः पर्यायको वे क्रिया बोलते हैं और बाकी ये हैं अपने आप। बढ़ते गए वे भेदमें तो मीमांसकोके ७ पदार्थोंकी रचना हो गई परन्तु यहाँ पुद्गलमें ऐसा नहीं बढ़ना है।

७२४—द्रव्यकी अविभागिता व स्वतंत्रता—

एक अणुमें रूप, रस, गंध, स्पर्श अणु पाये जाते। आज कलके वैज्ञानिक भी कुछ कुछ इसके अतिक्रमकी बातको कहते हैं। वे देखते हैं इनर्जी वह सत्‌से एक पृथक चीज है, वह पदार्थ नहीं है, उससे सूक्ष्म एक इनर्जी है और उस इनर्जीके भी विभाग वे बतलाते हैं मगर कोई निराधार शक्ति भी हो सकती है क्या ? वे द्रव्यके उस सूक्ष्म अणुको नहीं पहिचान सके। वैज्ञानिक कोई अमूर्त तत्त्व पर तो उतर नहीं आये। तो वहाँ अणुस्वरूपके प्रथम प्रयोजनमे आनेके लिए जो सूक्ष्म स्कंध है उसे ही अणु मान लेते हैं और बोलते अणुबम, पर वास्तवमें मात्र अणु कितना होता है, वह अभी वैज्ञानिकोके ध्यानमें नहीं आता। जो जैन शासन हजारों वर्षोंसे कह रहा है, धीरे धीरे वैज्ञानिकोंके जब प्रयोगमें आता है, तो बराबर उस बातको पा लेते है। तो रूप अणु, रस अणु अलग नहीं हैं। पुद्गल तो रूप, रस, गंध स्पर्शात्मक है। जो खानेमें आया वह पुद्गल ही तो है और पुद्गलका रस पुद्गलमें है। क्या

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

वह रस मेरे आत्मामें तन्मय हो सकता है। अगर आत्मामें तन्मय हो सकता तो यह तो पुद्गल ही है पर क्या मैं पुद्गल हूं? मैं आत्मा हूं, मैं पुद्गल न होऊँगा। मैं पुद्गल नहीं हो सकता। जो स्वाद है वह पुद्गलमें तन्मय है, पर मीठा इस आत्माको अच्छा क्यों लगता, भीतरमें वह मौज क्यों मानता? यों मानता कि जीवने जो स्वादका ज्ञान किया कि यह मीठा है राग संस्कारसे ऐसा माना कि मेरेको मीठा है तो रागमिश्रित उस ज्ञानविकल्पका अनुभव किया, उसकी मौजमान रहा।

७२५—बाह्य पदार्थोंसे आत्मामें ज्ञान आनेकी असंभवता—

अभी कल परसों ही आपने एक भजन सुना था 'सुख हम ही में था नहि जानी।" इस जगत में जीवों की दशा क्यों इतनी भ्रान्त बन गई? क्यों इतनी खराब चल रही है? वे अपना सुख और ज्ञान बाहर में खोज रहे। बाहर से सुख नहीं आता बाहर से ज्ञान नहीं आता यहाँ कोई उपदेष्टा बड़ी अच्छी विधि से स्याद्वाद— सम्मत विधि से प्रवचन कर रहा हो मगर वह क्या कर रहा? वह अपने में उन शब्दों का वाच्य बनाकर अपने भीतर ही तो ज्ञान कर रहा है। मास्टर क्या करता है? लोग तो यों कहते हैं कि मास्टर ज्ञानदान दे रहा है, मगर मास्टर यदि अपना ज्ञान दूसरों को देता फिरे बाँटता फिरे तो मास्टर तो कोरा ठूठ (बिना ज्ञान का) रह जायगा, मास्टर किसी को अपना ज्ञान बाहर कहीं दे नहीं सकता। हुआ क्या कि मास्टर ने जो वचन व्यवहार किया उसे सुना शिष्य ने और उसका वाच्य अर्थ समझा और अपने ही ज्ञानबल से उसे व्यक्त परिचित किया और शिष्य को ज्ञान मिल गया। तो शिष्य ने अपने ही ज्ञानबल से अपना ज्ञान प्रकट किया। कहीं मास्टर से ज्ञान लेकर ज्ञान नहीं किया। तो इसी तरह दुःख सुख की बात है।

७२६—पर पदार्थ से आत्मा में सुख दुःख आने की असंभवता—

दुःख सुख कहीं बाहर से नहीं आते। कहीं दो आदमी मिलकर एक काम कर रहे, उसमें मानों दोनों सुखी हो रहे तो वहीं ऐसा नहीं है कि एकका सुख दूसरे ने पाया हो उसका दूसरे ने कभी दोनों मिलकर दुःखी होते हैं तो वहाँ भी कहीं ऐसा नहीं है कि एक के दुःख से दूसरा दुःखी हो रहा। अभी देखा होगा कि किसी के घर जब कोई बड़ा आदमी गुजर जाता तो उसके घर फेरा देने के लिए(शोक मनाने के लिए) बड़ी दूर—दूर से रिश्तेदार लोग आते है। तो आप सुनो उन रिश्तेदारों की भी कहानी। मानो वे इकट्ठे ४-६ आदमी आये किसी ट्रेन से तो वे ट्रेन में खूब तास खेलते हुए, हँसते हुए आये, मगर जब यहाँ के स्टेशन पर उतरे तो झट उतरते ही अपनी रोनी सी सकल बना लेते। भैया यह भी एक कला है कि हंसो खुशी से आये, पर समय आये तो रोनी शकल बना लेते और वे जब घर पहुच जाते तो वहाँ एक दूसरे को देखकर खूब रोने लगते। अब आप यह बतलावें कि वहाँ एक ने दूसरे को दुःखी किया क्या? अथवा एक का दुःख किसी दूसरे में गया क्या? अरे वहाँ जिसके उपर दुःख का प्रभाव है उसका प्रभाव उस ही पर है उसके दुखका प्रभाव किसी दूसरे पर नहीं होता। अच्छा कभी—कभी ऐसा हो तो जाता है कोई सोचे कि एक को दुखी देखकर दूसरा ही दुःखी हुआ, उस दूसरेके दुःखसे उसमें दुःख हुआ ना? तो ऐसी बात नहीं उसके दुखसे वह ही दुःखी हुआ,उस दुःखी को देखकर उसने रागवश अपने में एक नया दुख उत्पन्न कर लिया। तो कोई किसी दूसरे को भोगने वाला नहीं, किन्तु बाह्यपदार्थोंका आश्रय करके उसमें उपयोग जुटाकर ज्ञान विकल्प करके दुःखी होता है।

७२७—निमित्तकारण व उपचरितकारण का विश्लेषण—

दुःखी होने में निमित्त कारण क्या है? असाता कर्म का उदय। बन्धाधिकार में खूब लिखा है

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कि यह जीव साता असाता के उदय में सुखी दुखी होता वह निमित्त कारण है, क्योंकि उसका प्रतिफलन हुआ। उसका निमित्त पाकर जीव ने अपने में अपना प्रभाव बनाया। ये बाह्य पदार्थ ये विषय भूत पदार्थ ये निमित्त कारण नहीं, कहलाते है उपचरित कारण, आश्रयभूत कारण। उपचरित कारण उन्हें कहते हैं जो वास्तव में कारण तो न हो मगर जिनमें उपयोग जुटाने से प्रभाव बनता है कषायका। उन पदार्थों में कारणपने का आरोप किया जाता है। यहाँ भी एक सावधानी बर्तें। सर्वत्र यही बात मिलेगी। जैन दर्शनमें सब विषय इतना विशद है कि उस कुञ्जीके अनुसार चलें तो उनके स्वाध्यायमें संशयको कहीं स्थान नहीं। अब निमित्त शब्दकी बात देखो जैसे उपचार शब्द दोनोंके लिए प्रयुक्त हुआ करता है व्यवहारके लिए और उपचारके लिए और इसी तरहसे निमित्त शब्द आरोपित कारणके लिए भी व्यवहृत होता है। जैसे दुःख हुआ तो कहते हैं कि भाई कर्मोदयसे दुःख हुआ याने कर्मोदयका सन्निधान पाकर यह दुःख हुआ, यह तो हुई वास्तविक कारणकी चर्चा, मगर कोई कहे कि इस फलाने ने दुःखी कर दिया तो यह है आरोपित कारणकी बात, तो आरोपित कारणको भी निमित्त शब्दसे कहते हैं कि उस आदमीके निमित्तसे इसको बड़ा कष्ट हुआ तो आरोपित कारणके लिए भी निमित्तका प्रयोग होता है और केवल एक लोकव्यवहारमें ही नहीं, ग्रन्थोंमें भी किया गया है। जैसे कहा गया है कि मूर्तिदर्शनसे देवर्द्धिदर्शनसे अथवा वेदनाके अनुभवसे सम्यग्दर्शन होता है, ये सम्यग्दर्शनके निमित्त कारण हैं। धवलकी छठी पुस्तकमें अन्तमें, चूलिकामें इस बातका विस्तृत वर्णन है, और आप समझें कि इस कालमें श्रुतकी जो रचना हुई है वह सर्वप्रथम षटखंडागममें हैं। जितना भी श्रुत है उसमें करणानुयोगकी रचना सबसे पहली रचना है जिसके ऊपर श्रुत पंचमीका पर्व मनाया गया। तो वहाँ करणानुयोगके ग्रन्थोंमें भी लिखा है कि भाई जिनबिम्ब दर्शनसे सम्यग्दर्शन हो जाता मगर क्या यह वास्तविक निमित्तकी बात है ? लिखा है, वहाँ पर भी विवेक करना होगा। वहाँ दूसरे ढंगका विवेक करना होगा जो हम बतावेंगे। तो विवेक क्या है वहाँ ? जैसे मूर्ति दर्शनसे सम्यग्दर्शन हुआ तो इसका अर्थ क्या है ? मूर्ति दर्शन तो जीवके ऐसे शुभोपयोगका आरोपित कारण है कि जिस शुभोपयोगके सिलसिलमें शुभोपयोग छूटकर सम्यग्दर्शन हो जाय। खूब ध्यानसे सुननेकी बात है। तो एक दृष्टिसे देखा तो वहाँ मूर्तिदर्शन आदिक सम्यग्दर्शनउत्पन्न होनेसे पूर्व जो शुभोपयोग हुआ, उसका आरोपित कारण है और वास्तविक कारण कर्मका क्षयोपशम आदिक है।

७२८—उपचरित कारणके कथनमें मात्र प्रयोजन परिचयका महत्व—

अब बड़ी गहरी चर्चा न करके प्रकृत बात पर आयें, भोक्ताकी बात कही जा रही है। बाह्य पदार्थोंका यह जीव भोक्ता नहीं है। बाह्य पदार्थोंका भोगना उपचारसे कहा जाता है। कोई यह कहे कि उपचारसे यों ही क्यों कहा जाता ? और ढंगसे क्यों नहीं कहा जाता ? प्रश्न तो यों हो सकता ना? रसोई घरमें घी का डिब्बा उठा लावो ऐसा व्यवहार क्यों होता है ? देखो उपचार कहीं अटपट नहीं हुआ करता, क्योंकि उपचारमें प्रयोजन पड़ा हुआ है। रोज—रोज कहते है ना ऐसा कि घी का डिब्बा लावो। अब कोई इसे उपादान दृष्टिसे अर्थ लगाये तो वह मिथ्या है, और प्रयोजन सब समझते हैं, जब कहा कि घी का डिब्बा लावो तो उठा लाते। वहाँ कोई यह भ्रम नहीं करता कि अरे घी का डिब्बा कहाँ होता ? घी से बना डिब्बा उठाकर कहां लाया जा सकता ? सबको उसका प्रयोजन ज्ञात है। आपके घरमें तो जिस लोटेमें पानी भरकर आप या कोई संडास जाते उसे कहते हैं ना टट्टीका लोटा। अब भला बतलावो वह टट्टीका (टट्टीसे निर्मित) लोटा है क्या ? ऐसा तो कोई नहीं समझता।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जहां टट्टी का लोटा कहा तो झट समझ जाते। देखो—उपचार भाषा में कोई विसम्बाद नहीं जगता, क्योंकि सब लोग उसका प्रयोजन समझते है कि जिस लोटे में पानी भरकर संडास में ले जाते उसे कहते है टट्टी का लोटा। बहुतसे संडास कमाने वाले मगीजन होते है, वे इस बातका गर्व रखते कि हम इतनी हवेलियाँ कमाते हैं वे आपस में जब हिसाब लगाते कि हम कितनी हवेली कमाते, अन्य लोग कितनो—कितनी हवेली कमाते तो वे गर्व के साथ कहते कि हमारे पास १० हवेली है, हमारे पास २० हवेली है, ६—६ ७—७ खंड की हवेली है। ऐसी तो वे बात करते है, पर करते क्या है? संडास कमाने का काम करते है, कभी-कमी तो वे आपकी हवेलियों को आपस में गिरवी रख देते है उस गिरवी का क्या अर्थ है कि अब इतने दिन तक तुम इनमें कमाई करोगे। तो व्यवहार में कितनी ही बातें ऐसी बोली जाती हैं। अब इसमें कोई केवल शब्दों पर ध्यान दे, उसका प्रयोजन न समझे तो उसकी यह बात मिथ्या हो जाती है। प्रयोजन सब समझते है। उपचार की भाषा मैं जो बात बोली जाय उसे उपादान दृष्टि से अर्थ लगाकर न समझे नहीं तो वह बात मिथ्या हो जायगी। जैसे किसी ने कहा कि अमुक ने इस मकान को किया तो यह जीव है अमूर्त। यह मकान को करेगा क्या? अगर उपादान दृष्टि से यह बात समझ ले तो गलत है। उसका मकान है, इस जीवका यह मकान है, अगर इसको परस्वामित्व की दृष्टि से समझले तो वह सब गलत है। तो प्रयोजन जानकर आगे बढें विवाद में न पड़े।

७२९ शुद्धनय विषय के आलम्बन की महिमा—

यह जीव पर पदार्थों का भोक्ता है, विषयों का भोक्ता है यह बात उपचार से कही जाती है, व्यवहार नय से नहीं। व्यवहारनयसे तो खुद परिणतिका भोक्ता हैं जिसका नाम है अशुद्ध निश्चय—नय अशुद्ध निश्चयनय भी व्यवहार नय है, शुद्ध निश्चयनय भी व्यवहारनय है। केवल एक अखंड अवक्तव्य सहज चैतन्य स्वभाव को विषय करने वाला है शुद्धनय शुद्धनय कभी व्यवहारनय नहीं बनता बाकी तो जिसे आप निश्चयनय कह रहे उसे अगर अर्न्तदृष्टि मिल गई तो वह व्यवहार बन जायगा। यह निश्चयनय पलटता है मगर शुद्ध नहीं पलटता। तो यह जीव एक दृष्टि में तो भोक्ता है मायने अपनी परिणतियों का भोगने वाला है, यह भी एक विकल्प हैं। जीव एक दृष्टि में भोक्ता है ऐसा नहीं, यह निश्चयनय भी एक विकल्प है। इन विकल्पों में रहकर समयसारका अनुभव नहीं कर सकता यह जीव। और यह जीव उन परिणतियों का भी भोक्ता नहीं। इस विकल्प में भी यह जीव उस सहज चैतन्यस्वभाव का अनुभव क्यों नहीं कर सकती, बात यह है कि निषेध तो किया कि यह जीव इन परिणतियों का भोक्ता नहीं मगर इस निषेध में परिणतियाँ तो नजर में आयेगी। जैसे किसी ने कहा कि भाई अब रात्रि के ११ बजे है मगर एक बहुत जरूरी काम आ गया स्टेशन चले जाओ। वह स्टेशन था कोई वहाँ से दो तीन मील दूर। मगर देखो तुम निश्चित रूप से जाना रास्ते में किसी बात का भय न मानना। यहाँ से थोडी दूर जाकर एक बरगद का मिलेगापेड़ उसमें लोग झूठ मूठ में कहते हैं कि भूत रहता है पर भूतवूत नहीं है, आप मनमें किसी तरह की शंका न लाना निश्चित होकर जाना ठीक है। चल दिया। कुछ दूर जाकर वह बरगद का पेड़ मिला। अब चूँकि उसके उपयोग में था भूत नहीं हैं नहीं है तो बादकी बात है पहले उपयोगमें बसा था भूत सो वह उस जगह गया और डर गया। अरे भाई उस निषेधकी बात को वहाँ कहा ही क्यों? उस भूत विषयक विकल्प बनाने का कारण तुमने रखा ही क्यों? बिना उसकी बात कहे स्टेशन भेजते। ऐसे ही यह जीव भोक्ता हैं, इसमें तो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

परिणितियों के भोगनेकी ताब कही गई, एक यह विकल्प है जो इस निर्विकल्प समयसार की अनुभूतिका रूपक नहीं बन पाता उस कालमें और एककी दृष्टिमें यह है कि यह जीव परिणितियोंका भोक्ता नहीं और जो इस शुद्धनयकी ओर विषय चल रहा उस स्वभावको देखता भर रहता, इस विधिकी भी निषेधकी भी कोई बात न कहते तो भला था इस ही उपायसे यह जीव उस शुद्धस्वरूपमें उतार पाता। तो यह प्रक्रिया बतायी जा रही हैं साक्षात समयसार के अनुभवने की। यह बात है तो अधिक कठिन किन्तु कुछ परख हो जाने पर पहले जब वस्तुका निर्णय हो जाय तब वस्तु है द्रव्य है, गुण है, पर्याय है, कौन है, कैसा है, कहाँ प्रभाव होता है इस सबका निर्णय होने पर ये चर्चायें चलती है और इस दृष्टिसे वह अपने इस कारण समयसार, साक्षात् समयसार, ओघसमयसार इसमें वह अपना प्रवेश करता है।

७३०—विषयकषायरूप कर्मरससे हटकर स्वानुभूतिरसमें रमनेका अनुरोध—

देखो भैया, अपनेको क्या लक्ष्य करना है, कहाँ रमना है जिससे अपना कल्याण हो, शाश्वत आनन्द हो। सो सभझ ही गये होंगे वह है सहज परमात्मतत्त्व किन्तु निज सहज भगवान आत्माकी सुध नहीं रखते, इससे कितना अनर्थ हो रहा है। जिस आत्मा भगवानके प्रसाद से निगोद से निकल कर अन्य—अन्य योनियोंको पार करके आज मनुष्यभव में आये हैं तो मनुष्य बनकर बडी कला से यह इस आत्मा भगवान पर प्रहारकर रहा है। देखो ये पशु गाय, भैंस, बैल, बकरी आदिक ये जब इन्द्रियों के विषय भोगते हैं तो न ये कोई महफिल बनाते है, न राग रागनी के शब्दोंका आलाप सुनते है न नृत्य देखते है जब ही वेदना हुई कि वे अपनी प्रवृत्ति कर लेते है, उस प्रवृत्ति के बाद बहुत समय तकको शान्त हो जात है, मगर इस मनुष्यको तो बडे बडे संगीत प्रोग्राम भी चाहिए खूब राग-रागनी के आलाप चाहिए नृत्य चाहिए। आजकल तो किशोर पाणिग्रहणके लिए स्त्रीभी ऐसी ढूढते जो हाव भाव विलासपूर्ण हो बल्कि पहले से ही यह पताभी लगा लेते कि वह लड़की नृत्य गायनभीं जानती है कि नहीं। भला बतलाओ जो कान मिले थे जिनवाणी के शब्दोंका श्रवण करने के लिए उनका सदुपयोग करनेके लिए उनका कैसा दुरुपयोग किया इस मनुष्य ने। विषयों में प्रेरित होने के लिए ये मनुष्य नाना प्रकारकी कलावोंका प्रयोग करते। (यह बात विषय कषायोंकी कर रहे हैं) तो यह आत्मा भगवान पर प्रहार है कि नहीं? इस प्रहार के फल में इसे घोर दुःख होगा। देखो जो अधिक बढ़ बढकर चलेगा वह अवश्य गिरेगा। अमुक भाई के पास कार है मेरे पास क्यों न हुई? अमुक भाई के पास इतना धन हैं मेरे पास क्यों न हुआ? अमुक भाई के पास इतनी हवेलिया है मेरे पास क्यों न हुई? यों बढ़ बढ़कर जो चलेगा वह अवश्य गिरेगा। ऐसा यहाँ बोलते है लोग। यहाँ संसार के मोही प्राणी भगवानसे भी बढकर चलना चाहते हैं। आप कहेंगें कि यह बात आपने कैसे कही कि ये संसारी प्राणी भगवान से भी बढकर चलना चाहते, जरा समझाओ तो? ..... अच्छा सुनो। भगवान कैसा जानते हैं? ..... जो जैसा है उसे वैसा ही जानते हैं। एक—एक अणु एक एक जीव जिसकी जो पर्याय है, जिसका जो गुण है जिसका जो अस्तित्त्व है उसे वैसा जान रहे हैं और यहाँ ये मोही प्राणी उससे अधिक बढ बढकर जान रहे जैसा नहीं वैसा ये जानना चाहते। मकान मेरा है क्या? नहीं लेकिन ये जानते कि यह मकान मेरा है। और सारी बातें समझ लो। इज्जत पोजीशन आदि कुछ मेरे हैं क्या? नहीं लेकिन भगवानतो भाई ऐसा जाननेमें असमर्थ हैं, भगवानमें इतनी ताकत नहीं है कि वे समझ जायें कि यह मकान

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

इसका है और यहाँ संसार के लोगोंमें इतनी बड़ी ताकत है कि जो भगवानमें नहीं है। उस ताकत का ये अभिमान करते। मकान मेरा है, इज्जत-प्रतिष्ठा मेरी है, धन वैभव मेरा है। तो भगवानसे जो बढ़कर चलेगा उसकी दुर्गति होगी। अरे जैसे भगवान चल रहे हैं, जो जैसा है वैसा जान रहे हैं, एक पदार्थ दूसरे पदार्थका मालिक नहीं, एकका दूसरा कारणहार नहीं, एकका दूसरा भोगनहार नहीं, यह जान रहे भगवान। ऐसाही हम जानेंतो तीन लोकके अधिपति हो जायेंगे। यह एक बात कहा है। वास्तवमें भगवानसे बढकर कोई बन नहीं सकता है। तो सत्य ज्ञानका जो महत्व है बस वही एक वैभव है सत्यज्ञान। सत्यज्ञानही मेरा सर्वस्व है, बाहरी पदार्थ मेरे कुछ नहीं है, ऐसा श्रद्धान लावें और इस तत्व ज्ञानके मार्गमें आगे बढ़ें तो अपूर्व ज्ञानप्रकाश मिलेगा और यह जीवनभी शान्तिमें जायगा और अन्तमें परम शान्ति प्राप्त होगी।

एकस्यजीवो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥ "७६"

७३१—जीव और जीव प्रतिषेधके विकल्पसे अतिक्रान्त भव्यकी स्वानुभवप्रगति—

एक नयकी दृष्टिमें यह जीव है और एक नयकी दृष्टिमें यह जीव नहीं है ऐसे दो नय पक्ष हैं। जिसको यह शब्दसे पुकारा जा रहा है वह कौन है? यह खुद हम आप ज्ञानवान हैं, उसके बारेमें कहा जा रहा है कि व्यवहारनयमें तो यह जीव है और निश्चयनयमें यह जीव नहीं है, ऐसा सुनकर कुछ लोग सोच सकते हैं कि यहाँ तो जीवके लिएही मना किया जा रहा है। जीवका अर्थ क्या है? जीवित जीविस्यति अजीवत इति जीवः याने, जोजी रहा है, जो जीता था जो जियेगा उसे जीव कहते हैं। तब इसका अर्थ क्या निकला कि जो प्राणोंसे जीता है वह जीव है। १० प्राण होते हैं, ५ इन्द्रिय, तीन बल, श्वासोच्छवास और आयु, इन दस प्राणों करके यह जीव जी रहा है इसलिए इसको जीव कहते हैं। फिर आप बताओ कि मुक्त भगवानतो प्राणोंसे रहित हैं तो उन्हें जीव कहेंगे कि नहीं? कहेंगे। हां शब्द दृष्टिसे उन्हें जीव न कहेंगे। जो मुक्त प्रभु है वह जीवमें ही है। अच्छा जीव नहीं है तो क्या मुक्त अचेतन है? नहीं तो चेतन और जीवमें भी फर्क आया क्या? आता ही है। जब आप पूजा कर रहे हों तो आपको कोई व्यापारी तो नहीं कहता, आपको सभी उस समय पुजारी कहते। इतने पूजक हैं, इतने पूजा करने वाले हैं। मन्दिरमें आये हुए लोगोंको यह ही कहा जायगा कि साहब यहाँ इतने दर्शक हैं, इतने पूजक हैं। कोई यह न कहेगा कि इतने व्यापारी हैं, इतने सर्विस करने वाले हैं। और जब आप व्यापार कर रहे हों तो वहाँ कोई आपको यह न कहेगा कि यह पुजारी हैं, और यह फलाने भाई भी पूजारी हैं। वहाँ तो यही कहा जायगा कि यह अमुक चीजके व्यापारी हैं और यह अमुक चीजके लोकमें कोई ऐसा शब्द नहीं है जो असली नामको बताता है। जितने भी शब्द हैं वे सब विशेषण हैं, क्योंकि जितने भी शब्द हैं वे धातुवोंसे निष्पन्न हैं और धातुवोंका अपना-अपना अर्थ होता है और अर्थसे विशेषण बनता है इसलिए लोकमें कोई ऐसा शब्द नहीं जो मात्र संज्ञावाचक नाम रखा गया हो। वह तो विशेषण है, तो जीव यह भी विशेषण है। तो व्यवहारनयके पक्षमें यह बात आयी कि यह जीव प्राणोंसे जी रहा है। देखो करणानुयोगमें सब प्रक्रिया बतायी गई है। जो एकेन्द्रिय जीव है वह यदि अपर्याप्त है तो उसके तीन प्राण है- स्पर्शन इन्द्रिय, कायबल और आयु। शेष इन्द्रिय नहीं। वचनबल, मनोबल भी नहीं, श्वासोच्छवास भी नहीं। जब वह एकेन्द्रिय जीव पर्याप्त बना तो उसके चार प्राण हैं- स्पर्शन इन्द्रिय, कायबल, श्वासोच्छवास और आयु। यह जीव जब दो इन्द्रिय हुआ तो उसके ६ प्राण हैं रसना

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

इन्द्रिय और बढ़ गई, किन्तु जब अपर्याप्त अवस्थामें है तो स्पर्शन इन्द्रिय, रसना इन्द्रिय, काय बल और आयु ये चार प्राण है। अब बढ़ते जाइये। दो इन्द्रियमें ६ प्राण हैं। वचन बल और बढ़ जाता है। दो इन्द्रिय जीव जैसे जोंक, लाट वगैरह हैं, तो स्पर्शनइन्द्रिय, रसना इन्द्रिय, वचनबल कायबल श्वासोच्छवास और आयु ये ६ प्राण है। तीन इन्द्रियमें ७ प्राण चार इन्द्रियमें ८ प्राण, असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय में ६प्राण। वहां मनोबल नहीं हैं। ५ इन्द्रिय हैं,२ बल हैं, श्वासोच्छवास और आयु ऐसे संज्ञी पञ्चेन्द्रियमें १० प्राण हैं। इन प्राणोंसे जीव जीवता है और जो यों जीवे उसका नाम है जीव। तो यह बात स्वभावमें तो नहीं पड़ी हुई है, स्वभावमें प्राण नहीं हैं। जन्म मरण नहीं है। तो स्वभाव दृष्टिमें तो जीव नहीं है यह पदार्थ। और व्यवहार दृष्टिसे जीव है, परिणति दृष्टिसे देखा तो यह जीव है अथवा मुक्तको भी जीव कह सकते। नैगमनयसे जो जिया था वह जीव, जो जी रहा वह जीव, जो जीवेगा सो जीव। इस तरह व्यवहारनयके पक्षमें तो यह जीव है, पर निश्चयनयमें अथवा निश्चयनय कौनसा है ? शुद्धनय। निश्चयनय भी दो तरहके होते हैं– सविकल्प और निर्विकल्प। तो यहां जो निर्विकल्प निश्चयनय है उसका नाम है शुद्धनय। शुद्धनयकी दृष्टिमें यह जीव है ऐसा नहीं है।

७३२—द्रव्यपर्यायात्मक वस्तुमें दो दृष्टियों बिना निर्णयकी असंभवता—

वस्तु द्रव्य पर्यायात्मक हुआ करता है। पर्यायकी कोई बात कहे तो वह असत्यतो नहीं मगर पर्याय भेद है और उस पर दृष्टि रखे, आश्रय रखे, उसीका ही ध्यान रखे तो उसमें आत्मसिद्धि नहीं। तो व्यवहारनयके पक्षसे व्यवहारनयकी बातको जानने वालाही निश्चयनयके लाभके लिये व्यवहारनयको गौण करे। देखिये जो सिद्धान्त व्यवहारनयके विषयको असत्य कहता है और निश्चयपक्षका आश्रय करता है तो उसीकोही तो कहा गया है ब्रह्माद्वैतवादी, वेदान्ती, शून्याद्वैत, प्रतिभासाद्वैत और जो निश्चयनयके विषयको और सूक्ष्म—सूक्ष्म करके जो एक निरशवाद मिला है, उस हो का जो एकत्व करता है, निश्चय करता है उसे कहते हैं क्षणिकवादी। देखो अभेद दो रीतियोंमें जाना जाता है– एक तो उदार नीतिमें और एक काट नीतिमें। जैसे अभेद ग्रहण तो बौद्धोंने भी किया मगर काट नीतिसे किया और अभेद ग्रहण ब्रह्माद्वैतवादियों ने किया मगर उदारनीतिसे किया। हालांकि वह उदारनीति निरपेक्ष है इसलिए मिथ्या है ऐसे ही इनकी काटनीति निरपेक्ष है इसलिए मिथ्या है, जैसे पदार्थमें एक पर्याय यह ही मात्र पदार्थ है ऐसा क्षणिकवादियोंने बताया। तो ऐसा भेद करके जो अन्तिम भेद है, एकतो उस कालको एक पदार्थ मान लिया और वह काल अभेद है, जिसका भेद न हो सो अभेद। सबसे बड़े का भी भेद नहीं होता और सबसे छोटे अंशका भी भेद नहीं होता। अच्छा कोई आकाशका भेद कर सकता क्या ? नहीं। कोई आकाशका टुकड़ा करके तो दिखावे। जो आकाश पूर्ण है उसका कोई टुकड़ा कर सकता क्या ? नहीं। अच्छा जो एक अणु है परमाणु जो कि सबसे छोटा है उसका भी कोई टुकड़ा कर सकेगा क्या ? नहीं। सबसे छोटे अंशका अंश क्या ? तो यह सब दार्शनिक विषय है। प्रकरणमें उन्हें अभी न लीजिए। एक पद्धति बतानेके लिए कहा है।

७३३—शुद्ध अन्तस्तत्त्वको विषय करने वाले ज्ञानके विकल्पमें भी समयसारामृतपानमें बाधा—

यहां प्रकरण यह है कि "जीव" यह तो व्यवहारनयका पक्ष है और ऐसा नहीं "यह शुद्धनयका पक्ष है। इस सम्बन्धमें एक बात और समझें कि शुद्धनय क्या इस विषयको ग्रहण नहीं करता ? शुद्धनय तो मात्र देख रहा है एक अखण्ड तत्त्वको, पर वह गूंगा है, बोल नहीं सकता। जहां बोला वहाँ शुद्धनय नहीं रहा। तो शुद्धनयका जो एक अखण्ड विषय है, अवक्तव्य, उसमें बोलनेकी बात न आयगी।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जहाँ बोलातो निश्चयनय बनेगा या व्यवहारनय बनेगा वह विषय बोलनेका नहीं है, और जितनी बोलनेकी बात है वह सब विकल्प हैं, तब शुद्धनयका विषय एक तरह से कहा जाय तो नेति भी नहीं हैं, हाँ की बात न ला पायेंगे क्योंकि शुद्धनय तत्त्वको तो देख रहा है मगर बोल नहीं पाता। इसलिए इसका विषय नेति है, यह नहींसो नेतिभी विषय नहीं करता। उस शुद्धनय वाले से जबरन कहलाया जा रहा है कि तुमने क्या देखा ? क्या यह देखा ? नहीं। इस परमार्थ आत्मतत्त्वको निरखा है इसने शुद्धनयसे तो जरा बताओ तो तुमने ज्ञानस्वरूप देखा क्या? नहीं। तुमने जीव देखा क्या? ... नहीं [चेतन परमात्मा देखा क्या ? .... नहीं। यों कितने ही सूक्ष्म से सूक्ष्म तुम प्रश्न करते जावो, यहतो यह ही कहेगा—नहीं। तो क्या देखा ? तो वह गूँगा बता नहीं सकता। देख लिया, बता नहीं सकता ऐसा विषय है शुद्धनयका। तो एक नय पक्षमें कहा जा रहा है जीव और एक नयमें बताया जारहा कि जीव है ऐसा नहीं। अच्छा तो नहीं, इस तरह से समझा उसकी तो हम प्रशंसा करेंगे, मगर नहीं" इस प्रकार जो बोला वह विकल्प है। वह निश्चय नय बन गया, शुद्धनय न रहा। देखो शुद्धनयका जो आश्रय करेगा वह आश्रय ही नहीं कहलाता, वहां तो स्वानुभव मग्नता हो जायेगी। तो व्यवहारनय के पक्ष में तो जीव है इस प्रकार पाया और निश्चयनयके पक्ष में जीव है ऐसा नहीं है, यह आया।

७३ — सहजज्ञानानन्दमयसमयसारामृतके पानका विधान—

एक ही चेतनमें, एकही वस्तुमें दो दृष्टियों के दो पक्ष हैं लेकिनजो इन नय पक्षों से अलग हो गया, अतिक्रान्त हो गया और एक सहज अंतस्तत्त्वमें विश्राम जिसने किया उसनेही इस सहज परमात्मतत्त्वमय समयसारामतका पान किया। बाकीतो वह बिगड़ता ही गया। कदम न बढ़ासका तो अब यह देखो कि हमको किस मार्ग से चलना है। प्रयोगका फल मिलता है। वचनका तो इतना ही फल है कि थोड़ा बहुत प्रतिभास करले, कुछ लाइनकी बात कह ले, मगर वचनोंसे आनन्द नहीं मिलता। आनन्दतो प्रयोगमें मिलता है। वह प्रयोग किस तरहसे किया जाता उसकी विधि यह सब चल रही है। कामकी सब बातें आयेंगी। जो प्रयोग करना चाहेगा उसको कामकी सब बातें आयेंगी प्रथम प्रथमके कुछ परिचयमें उपचारका काम आ रहा और आ भी रहा है। काम धीरे धीरे बढ रहे हैं उस उपचारमें, उसने प्रयोजन जाना। बस उपचार भाषाका काम इतना ही है कि वह प्रयोजन समझा देवे। अब आगे बढा वह तो व्यवहारनयसे। उसने वस्तुको भेद पद्धतिसे जाना। भेद पद्धतिसे समझ बिना वस्तुके परिचयका अन्य कोई उपाय नहीं है, क्योंकि यह व्यवहार परमार्थका प्रतिपादक है वस्तुको अभेदसे कैसे समझायें ? तो व्यवहारनयसे कामलें। आगे बढें, अतिक्रान्त हो होकर। निश्चय नयसे एकही पदार्थको देखा मगर निर्विकल्प ढंगसे नहीं देखा। विकल्प तो किया एक का ही, एकमें हीकिया इसलिएतो निश्चयनय रहा मगर निर्विकल्प नहीं बन पाया। निर्विकल्प नही देखा इसलिए वह निश्चय भी एक पक्ष रहा, विकल्प रहा। उसने देखा कि जीव केवलज्ञानी है, शुद्धनिश्चयनय केवल रागी हैं, अशुद्धनिश्चयनय। समझे, आखिर कामकी बातें है ये सब अब वहाँ पर और आगे बढें, इन सब पक्षों का उल्लंघन करके जब यह भव्य जीव उस अखण्ड सहज अनादि अनन्त अहेतुक चित्स्वरूपमें उपयुक्त होता है तो बस वही उसके उपयोगमें वही आयगा। दूसरा कुछ उसके विकल्पमें आयगाही नहीं। जिस लक्ष्यको देखा उस लक्ष्यमें ही उपयोग। ऐसी जब यहाँ प्रयोग द्वारा स्थिति बनती है तब स्वानुभव क्योंन आयगा ? कौनसी वजह है जो स्वानुभव न बने ? जो विधि है उस प्रकार करने से कार्य कैसे न बनेगा ? जब मिथ्या दर्शन ज्ञानचरित्र द्वारा संसारकी विधियाँ बन रही हैं, जो जिसका

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

विधान है उस विधानसे उसका निर्माण हैं, जब यह चल रहा है तो यह सद्भावका विधान है। उस प्रकार अन्तः प्रयोग बने तो स्वानुभव क्यों न बनेगा ? बनकर रहना पड़ेगा। उस ही का एक प्रयोग प्रक्रियामें बताया जा रहा है।

७३५—सर्वअनुयोगोंसे परख करनेमें स्पष्टता—

अब देखो करणानुयोगका कुछ भी विषय समझे बिना यहाँ अध्यात्मतत्त्वकी बातमें कुछ स्पष्टता ही न आ पायगी। केवल एक बात—बात रह जायगी। जैसे कि पर्यायको मनाकरके ब्रह्माद्वैतवादियोंने बनाया तो इतना बढ़िया सिद्धान्त कि सुनते ही मन खुश हो जाता है। उन्होंने कहा कि एक ब्रह्मसर्व—व्यापक, निरञ्जन, निर्लेप पर्यायरहित कूटस्थ नित्य है और देखो थोड़ा—थोड़ा कुछ यहाँ वहाँके विकल्प भी रहते है। उस ब्रह्माद्वैतके स्वरूपकी चर्चामें यहाँ वहाँके विकल्प भी हटते हैं। विकल्प तो यों हट गए कि जब किसीका ध्यान एक ऐसी अनोखी बातमें लग गया कि जब वहाँ ले जाया गया तो आगेका अगल बगलका ख्याल नहीं रहता तो वहाँ कुछ आनन्द जगा और लगा कि है कुछ तथ्य, और यहाँ कुछ तथ्य है नहीं। यों तो जब कोई बच्चा रोता है तो माँ उसे चुप करनेके लिए कहती हैं अरे रो मत, देख हौवा आ जायगा। अब देखो हौवा कोई चीज नहीं, केवल कल्पनाकी चीज है मगर उसका भी प्रभाव उस बच्चे पर पड़ता है। वह बच्चा हौवाका नाम सुनकर चुप हो जाता है। अब भला बतलावो उस बच्चे पर वह प्रभाव किसका है ? क्या उस हौवाका प्रभाव है ? नहीं। उस बच्चेपर प्रभाव हुआ उसके ही ज्ञान विकल्पका। मगर वस्तुमें तथ्य क्या है यह प्रमाणसे, स्याद्वादसे परखा जाता है।

७.६—सम्यग्ज्ञानका फल परमविश्राम—

वस्तुस्वरूप परखकर फिर क्या करना ? तो देखो देखनेकी प्रक्रिया चार प्रकारकी हुआ करती है। दाईं आँखको बँद करके दाहिनी आँखसे देखना, दाईं आंखको बन्दकरके बांई आंखसे देखना, दोनों आँखोंको खोलकर एक साथ देखना और दोनों आँखोंको बद करके देखना। अब देखने देखनेकी बात न्यारी—न्यारी है। सामने कोई अगर बल्ब जल रहा है और आप दाहिनीं आँख बंद करके बाईसे देखें तो वह बल्ब उस स्थानसे कुछ सरका हुआ दिखेगा और उसी बल्बको बाईं आँख बन्द करके दाहिनी आँखसे देखें तो वह बल्ब उस स्थानसे कुछ सरका हुआ दीखेगा, अब दोनों आँखोंसे देखें तो वह बल्ब एक स्थान पर स्थिर दिखेगा, और जब दोनों आँखें बन्द करके देखेंगे, तो कुछ न कुछ सामान्य रीतिसे इस ही ढगका नजर आता है ना ? तो इसी प्रकार निश्चय व्यवहार, प्रमाण, और अनुभव ये चार बातें हुआ करती है। तो निश्चयनय है मानो एक दाहिनी आँख, व्यवहारनय है मानो बाईं आँख, और निश्चय व्यवहार दोनोंका समीक्षण, यह प्रमाण कहलाता है। निश्चयनय असत्य नहीं व्यवहारनय असत्य नहीं, तब ही तो दोनोसे निरखनेका काम प्रमाण करता है। वह असत्य नहीं। असत्य उपचार हुआ करता है। यह सब जगह आप एक समीक्षण पायेंगे। जहाँ व्यवहारको असत्य कहा है उसका अर्थ यह मिलेगा कि यह उपचार वाला व्यवहार है। अच्छा और निश्चयनयमें जो उपयोग न हो, व्यवहारनयमें भी न हो और प्रमाणमें भी न हो, ऐसी कोई स्थिति होती है उसे कहते हैं अनुभव। याने यह अनुभवनय और प्रमाण दोनोंसे अतिक्रान्त है। केवल नयकी ही बात नहीं, तब ही तो बताया हैं—उदयति न नयश्रीरस्ते—मेति प्रमाणं, क्वचिदपिनचविघ्नो याति निक्षेपचक्रं इत्यादि जिस सहज परमात्मतत्त्वका अनुभव होने पर उस अनुभवकी स्थितिमें नयलक्ष्मीका उदय नहीं है। न व्यवहारनयका न निश्चयनयका। और प्रमाण तो अस्तको प्राप्त हो जाता है याने प्रमाणका भी वहां प्रयोग नहीं। और मालूम नहीं कि यह निक्षेप समूह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कहाँ चला जाता है ? और तो मैं क्या बात कहूं ? यह तत्व, यह सहज परमात्मस्वरूप तो सर्वंकष है, सर्वंकषके मायने जो सबको कष्ट देवे, सबको खा लेवे, अलग रहे मायने जहाँ कुछ न रहे, यह विकल्प ऐसा सर्वंकष है यह उपयोग धाम जब अनुभवसे आता है तो अन्यकी बात ही क्या कहें, वहाँ द्वैतभी प्रतिभासित नहीं होता।

७३७—अद्वैतवाद और द्वैतवादको नयपक्षरूपता—

अद्वैतवाद, द्वैतवाद, यद्यपि ये दोंनों एकान्त हैं, अद्वैतवादका शिरोमणि कौन है ? ब्रह्माद्वैत, ज्ञानाद्वैत अच्छा और द्वैतवादका शिरोमणि कौन है ? वैशेषिक आदि। जैन सिद्धान्त उन दोनों को पुचकार कर समझाता है। भाई अद्वैत भी तत्त्व है, मगर वह अद्वैत तत्त्व कहाँ से आया ? वह अनुभवगम्य है। गप्पकी चीज नहीं। और देखो द्वैत भी तत्त्व है, जिसे वैशेषिक कहते हैं कि द्रव्य अलग पदार्थ है, गुण अलग पदार्थ हैं, पर्याय अलग पदार्थ है, सामान्यविशेष, समवाय ये अलग-अलग पदार्थ। जैन दर्शन के अध्ययनसे मालूम पड़ेगा स्पष्ट सही-सही, जैसे बताया गया अभाव प्रमाण है वशेषिकोंका और उसके चार भेदकिए वैशेषिकों ने प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव, अत्यंताभाव और अन्योन्याभाव, यह बनाया गया है वैशेषिक दर्शनमें। इन चारोंकी मुख्यता अभावरूप स्वतंत्र पदार्थकी मान्यता वैशेषिक दर्शनमें है, जैन दर्शनमें तो यह कहनेके लिए है कि ये चार अभाव मात्र अभाव रूप नहीं हैं, किन्तु भावरूप हैं, मायने तुच्छाभाव नहीं होता जबकि वैशेषिक तुच्छाभाव मानते हैं, मायने कुछ नहीं, ऐसी अभावकी मुद्रा है लेकिन जैन दर्शन ऐसा नहीं कहता। जैन दर्शन कहता है कि अभावकी मुद्रा किसीके सद्भावरूप हुआ करती है। जो इस तथ्य को नहीं समझते और इन चार अभावोंको तुच्छ अभावरूप मानते वैशेषिकों की तरह वे और न जाने क्या-क्या कहेंगे कि जो-जो वैशेषिक और क्षणिकवाद सम्मत होता है सब मान लगे। देखो किसीने कहा कि भाई उस कमरेमें से घड़ा उठा लावो। अब घड़ा वहाँ था नहीं। यह देखनेवाला गया और खूब कमरेको देखा और देखकर कहता है कि घड़ा नहीं है वहाँ। ..... अरे तुमने क्या अच्छी तरह देखा ? .... हाँ खूब अच्छी तरह देखा घड़ा नहीं। अब यह देखकर क्या आया ? ... अरे घड़ा रहित कमरेको देखकर आया, घड़ा नहीं, यह भी कोई वस्तु है क्या ? तुच्छाभाव कोई वस्तु नहीं, किन्तु घटशून्य कमरा देखकर आया इसलिए कहा कि वहाँ घड़ा नहीं। घड़ाका अभाव कोई वस्तु नही किन्तु घटरहित कमरेके सद्भावका नाम घटका अभाव है। अब चारों प्रकारके अभावोंमें आप यही प्रक्रिया लगालें। अभावका अर्थ है दूसरेका सद्भाव। इस बातको समझनेके लिए प्रमेय कमलमार्तण्ड, तथा अष्टसहस्री ग्रन्थोंमें काफी विवेचन है। अभाव परके सद्भावरूप होता है, अभाव तुच्छाभावरूप कभी नहीं होता। तुच्छाभावरूप अभाव मानने वालेको वैशेषिक कहते हैं। उनके यहाँ ७ पदार्थ हैं। अच्छा तो वे द्वैतवादमें बढ गए। द्वैतवादियोके वे शिरोमणि बने।

७३८—स्याद्वादसे विशेषैकान्तवादको प्रतिबोधन—

विशेषवादीके मतमें द्रव्य गुण, पर्याय, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव ये ७ पदार्थ अलग-अलग हैं। तो जैन दर्शन उन्हें समझाता है कि भाई वस्तु एक है उसे पदार्थ कहो या द्रव्य। द्रव्य पदार्थके निकट वाली बात है। वस्तुतः द्रव्य भी पदार्थ नहीं, किन्तु द्रव्य, गुण, पर्यायमें रहने वाला जो सत् है वह पदार्थ। जैसा कि प्रवचनसारमें कहा है— दव्वगुणपज्जयत्थो अत्थो अस्थित्तणिब्बत्तो। द्रव्य बिना परिणाम नहीं, परिणाम बिना द्रव्य नहीं। द्रव्य गुण पर्यायमें स्थित जो अर्थ है वह अस्तित्वसे रचा हुआ अर्थ है। लेकिन द्रव्य शब्द उस पदार्थका एक निकट शब्द है। जैन शासन समझाता है कि द्रव्य

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

स्वतंत्र सत् है. गुण, पर्याय, क्रिया, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव ये पदार्थ नहीं, किन्तु क्या ? उसही द्रव्यको जब अन्वय शक्तियोंसे देखा तो गुण समझमें आये। उसही द्रव्यको जब व्यतिरेक दृष्टिसे देखा तो पर्याय समझमें आयी, उसही द्रव्यको जब अन्वयसे देखा तो सामान्य नजर आया, उसही द्रव्य को भेददृष्टिसे देखा तो विशेष नजर आया, और समवाय तो तुम्हारा कल्पित है। जब तुमने द्रव्य गुण पर्यायको न्यारा-न्यारा समझा तो अब यह कैसे कहा जाय कि यह ज्ञान जीवका है ? यों समझानेके लिए तुमने समवायकी कल्पना की। समवाय कल्पित है जो समवाय क्या चीज है ? समवाय एक तन्मयताका नाम है, जैन शासनमें और विशेषवादमें यह बताया गया है याने दो पदार्थोंका ऐसा सम्बंध जो कभी अलग हो ही नहीं सकता है उन्हें समवाय कहा है। अब बतलावो व्यर्थको दड बैठक ही तो लगा रहे ना ? याने वे यह कहते हैं कि जिन पदार्थोंका कभी भी अलगाव हो ही नहीं सकता उन दो पदार्थोंके सम्बंधका नाम है समवाय। मायने आत्मा और ज्ञान। उनके यहाँ आत्मास्वतंत्र पदार्थ है, ज्ञान स्वतंत्र पदार्थ है, ऐसे दो पदार्थोंका स्वरूप सम्बध बताना आवश्यक है, उसके लिए समवाय जोड़ दिया। वैशेषिक सिद्धान्तकी बात कह रहे जो द्वैतवादमें बहुत ऊँचे चढ़ गए। द्रव्य स्वतंत्र पदार्थ, गुण स्वतंत्र पदार्थ, क्रिया स्वतंत्र पदार्थ, सामान्य विशेष सब स्वतंत्र पदार्थ हैं, ऐसा हैं विशेषवादमें किन्तु द्रव्य ही सत् है। शेष सब द्रव्यको निहारनेकी मुद्रायें मात्र हैं। अभाव भी द्रव्यके सद्भावरूप है। देखो पूछो विशेषवादियोंसे कि अभावको तुम एक अलगसे चीज मानते हो, वह अभाव तुच्छ है, कुछ है ही नहीं, अवस्तु हैं फिर भी उसे प्रमाणरूप मानते हो किन्तु अभाव दूसरे पदार्थके सद्भावरूप पड़ता है ऐसा जैन दर्शनने उन द्वैतवादियोंको समाधान दिया। मतलब यह हैं कि अब यहाँ द्वैत अद्वैत दोनों नजर आ रहे। शुद्धनयसे कहा तो अद्वैत नजर आया, व्यवहारनयसे कहा तो द्वैत नजर आया, मगर ये द्वैत और अद्वैत दोनों ही पक्ष हैं।

७३९—निष्पक्षका अन्तर्दर्शन—

यहाँ इस कलशमें बताया जा रहा है कि व्यवहारनयसे यह जीव है, शुद्धनयसे "जीव है ऐसा नहीं है" यह सिद्ध होता है। ये दोनों ही नयपक्ष हैं। इन दोनों नय पक्षोंसे अतिक्रान्त होकर जो एक शुद्धनयके विषयभूत तत्त्वमें केवल प्रयोग ही करता रहे, उपयुक्त ही होता रहे वह ही पुरुष परमात्मतत्त्वका अनुभव करता है और वह ही अनुभव, सहज परमात्मतत्त्वका अनुभव करता है और वह ही अनुभव सहज परमात्मतत्त्व का अनुभव सर्वकष है। देह सम्पर्क क्या, कर्म क्या, विभाव क्या ? ये सब कौन, इसका पता ही नहीं पड़ता और फिर यह अपने आप है। महिमान का आदर आप न करेंगे तो वह कितने दिन ठहरेगा ? आते समय तो ठीक है, हो आदर एक प्रकृति ऐसी बन गई मगर उसका भीतरमें आदर नहीं तो आपका जो व्यवहार बनेगा, महिमानका आदर न बनेगा तो वह आपके यहाँ ठहर कैसे सकेगा ? ये रागद्वेष विभाव महिमान हैं। इन महिमानोंका आदर न बने, ये परभाव है इनसे मेरी बरबादी है उनके प्रति आदर न रहेगा उपेक्षा रहेगी तो ये रागादिक विभाव अड्डा न जमा सकेंगे। अगर कर्म विपाकका निमित्त पाकर विकार जगता है, तो यह भी एक निमित्त-नैमित्तिक योग है अगर यह देखकर सहज स्वभावका आश्रय करें, विभावोंकी उपेक्षा हो जाय तो वहाँ सम्बर निर्जरा बनती है। यह भी एक निमित्त नैमित्तिक योग है। अपनेको कहाँ पहुंचाना है। वह मंजिल कितनी दूर है और कितनी पास है। यह आप सब अंदाज कर रहे होंगे हमें जहाँ विश्राम लेना है, जहाँ उपयोग टिकाना है वह परमार्थ तत्त्व कभी तो आपको लगता होगा कि बड़ी दूर

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है और कभी आपको लगता होगा कि कहाँ दूर है? यह ही तो है ऐसा समझते हैं। तो ऐसी दो तरहकी बातें क्यों लगती हैं? यों लगती है आपकी विशुद्धिकी भेदसे। कभी कभी तो ऐसा भी स्वप्न आपको आ जाता होगा कि कोई कीमती चीज बिल्कुल हाथके पासमें पड़ी है और चाहते है कि उसे उठा लें मगर उठा नहीं पाते। जरा भी हाथ नहीं बढ़ता। दूर तो नहीं हैं मगर दूर हो रही है। ऐसे ही यह सहज परमात्मतत्त्व दूर तो नहीं मगर दूर हो रहा हैं। इसको निकट बनायें। निकट बनानेका यह अंतर्मनन ही साधन है।

७४० संस्कृति में प्रवर्तन का महत्व—

देखो जो इस पद्धति में है कि अपने अनुयायी साधर्मीजन, उन सबमें एक वात्सल्यभाव है तो उनके संग प्रसंग से अपने को सहज परमात्मतत्व के प्राप्त करने का मौका मिल सकता है। और किसी अन्य के प्रति वात्सल्य है या नहीं इस की पहिचान है व्यवहार। कोई कहे कि हमको तो साहब सबसे बड़ा प्रेम है, बड़ा वात्सल्य है सबके प्रति और उसका व्यवहार हो दूसरों के प्रति घृणापूर्ण तो क्या यह कहा जा सकेगा कि उसके दूसरों के प्रति वात्सल्य है? नहीं कहा जा सकता। इस बात को तो उसका व्यवहार बताता है। सर्व विधियों से एक विशुद्ध भूमिका बनाकर हम अपने आप में प्रसन्न हो जायें। जहाँ कषाय नहीं रहती वहाँ प्रसन्नता है। जहाँ कषाय रहती है वहाँ प्रसन्नता नहीं होती। अप्रसन्न आसन पर भगवान का निवास नहीं होता। प्रसन्न आसन पर ही भगवान का निवास होता। ऐसा अपने आपको प्रसन्न निर्मल एक विशुद्ध व्यवहारी बनाकर फिर अन्दर में सर्व पक्ष का उल्लघन करके एक उस शुद्धनय के विषयभूत अखंड तत्व में प्रवेश करना है। काम करने को यह पड़ा है। ऊपर मंजिल में पहुंचना है तो सीढ़ियों पर चढ़कर छोड़कर चढ़कर हम उपर पहुंचते है। सीधी सी बात है। तो हमें जो एक जैन संस्कृति प्राप्त हुई है वह एक बड़े सौभाग्य की बात है, वह एक ऐसी निर्मल संस्कृति है कि जिसमें बने रहे तो हमें आगे बढ़ने का मार्ग मिलता है।

७४१ गन्तव्य स्थान का सुपरिचय होने पर मार्ग लाभ की सुगमता—

यदि बोध रहे हमें कहाँ जाना है तो हमें उसके रास्ते का भी पता हो, रास्ता यह है और रास्ते के साथ साथ अगल बगल की चीजों का भी पता रहना है। अगर अगल बगल की चीजों का पता न हो तो रास्ते का भी पता नहीं रहता। जो भी रास्ते में पेड़, नदी, तालाब, पहाड़ी आदि पड़ते हैं उन सबका भी पता हो तो रास्ते का सही पता होता। उन अगल बगल की चीजों का पता होने से ही हम उस रास्ते से गुजर कर अपने निर्दिष्ट स्थान पर पहुंच जाते हैं। तो ऐसे ही जिसे यह पता ही न होगा कि उसे निश्चय मोक्ष मार्ग में बढ़ना है, चलना है, उस रास्ते में बढ़ना है उनके अगल बगल क्या होता है। ये व्रत, ये नियम, ये संयम ये सकल चारित्र, ये उनके अगल बगल हैं, जिन्हें इसका पता न हो उन्हें स्पष्ट रूप से इसका भान नहीं होता। रास्ते का भी भान हो और अगल बगल की चीजों का भी भान हो तो पता पड़ता है। जो अध्यात्म में बढ़ता है वह ऐसा फकीराना रख लेता है कि कुछ नहीं है उसके पास। हाँ उसे खाना तो होता ही है, भूख तो लगती है कही असमय में मृत्यु न हो जाय इसलिए क्षुधानिवारण के लिए वह आहार ग्रहण करता है। वह आहार भी वह अपमान पूर्वक असम्मान पूर्वक नहीं ग्रहण करता। उसके लिए तो बताया है कि यदि कोई आहार दाता नवधाभक्ति पूर्वक बड़े विनय के साथ आहार दान करता है तो वह आहार ग्रहण करता है। वहाँ कोई यह प्रश्न कर सकता कि जब उसने सम्मान तक की बात की भी परवाह न की तब फिर यहाँ सम्मानकी अपमान बात क्यों सोचता?

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उसे तो जैसे भी जो आहार दे दे उसे ग्रहण कर लेना चाहिए। तो ऐसी बात नहीं है। उसे आहारके प्रति लालसा, लिप्सा तो है नहीं। जो सम्मान अपमानकी परवाह न करे, उसका तो आहारके प्रतिउपेक्षा भाव रहता है। तभी तो जब कोई बड़े विनय से नवधाभक्ति पूर्वक आहार देता है तो वह उसे ग्रहण करता है। ऐसे ज्ञानी संत को मोक्ष मार्ग में पड़ने वाली सब चीजों का पता रहता है जिससे वह निर्बाध रूप से आगे बढ़ता रहता है और धीरे धीरे बढ़ते वह अपने निर्दिष्ट लक्ष्य पर पहुच जाता है।

एकस्य सूक्ष्मो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्तिनित्यं खलु चिच्चिदेव ।। ७७ ।।

७४२—सूक्ष्म विकल्पोंसे भी अतिक्रान्त होनेपर स्वानुभूतिकी संभावना—

समयसारका अनुभव किसे होता है यह प्रकरण चल रहा है। समयसारका अनुभव मायने अपने केवल आत्माका अनुभव। वह सहजस्वरूप जो निरपेक्ष है, अपने आपकी सत्तासे है, परके सम्बधसे रहित है, ऐसा अपना स्वरूप किस तरह अनुभवमें आ सकता है ? इसको बतानेके लिए यह नयपक्षसे उल्लंघन वाला प्रकरण चल रहा है। यहां एक पुरुष कहता है कि आत्मा सूक्ष्म है, एक परिचय दिया और यह परिचय है व्यवहारनयसे। तो शुद्धनय यह कहता है कि आत्मा सूक्ष्म है ऐसा नहीं है। ये दो प्रकारके एक एक पक्ष हैं आत्मा सूक्ष्म है यह बात सही तो है मगर सूक्ष्म है ऐसा कहने पर आत्माके क्षेत्रपर दृष्टि आयी। यह 'सूक्ष्म है या' 'सूक्ष्म है ऐसा नहीं है,' या यह आकाशकी तरह बहुत ही एक सूक्ष्म है, तो ऐसा कहनेसे किसी चीजमें ही तो विकल्प आया और जहाँ विकल्प है वहाँ आत्माका अनुभव नहीं है। तो सूक्ष्म है आत्मा यह व्यवहारका पक्ष है, और इस पक्ष पर जब तक निगाह है तब तक स्वानुभव नहीं होता। तो दूसरा है शुद्धनय, वह कहता है कि सूक्ष्म है ऐसा नहीं। यद्यपि यह दृष्टि आत्माके और निकटकी ओर ले गई—लेकिन विकल्प यहाँ भी रहा। सूक्ष्म है ऐसा नहीं। यह विकल्प भी जब हटे और इससे अंतरंगमें और बढें कि विकल्प कोई न हो और केवल ज्ञानमात्र स्वरूपका अनुभवन ही रहा करें तो यह है निश्चयनयसे शुद्धनयसे ऊपर उठी हुई अवस्था। और, जिसके पक्ष नहीं रहता उसके यह अनुभव होता है सो उसके अनुभवमे तो यह चेतन चेतन ही हैं याने आत्माका जब हम अच्छा परिचय चाहें तो हमें सोचना तोसब तरह से पड़ेगा कि यह गुणपर्यायोंका पिन्ड है यह असंख्यात प्रदेशी है, सूक्ष्म है, अमूर्त है, इसकी प्रतिसमय परिणतियाँ होती रहती हैं और यहतो शक्ति मात्र है जीव स्वरूप है, यह बात सब सोचना तो पड़ता हैं क्योकि आत्माके बारेमें सब तरहकी बात समझे बिना हम अनुभव नहीं पासकते हैं। लेकिन ये सब बहुत जानकारियां है। सब तरहसे आत्माको जानलें और जानकरके फिर इन सब विकल्पोंको तजदें तो निर्विकल्प आत्मका अनुभव बन सकेगा। अब सोचो कि जब ऐसे बारीक विकल्पभी स्वानुभवमें बाधक बन रहे हैं और आचार्य संतोंका उपदेश है कि आत्माका सूक्ष्म है इस तरहके विकल्पसे भी परेहो और सूक्ष्म है ऐसा नहीं है, इस तरह के विकल्पसे भी आगे उठों। जहाँ यह उपदेश है वहाँ एक ओर देखोतो संसारी जीवोंकी मनुष्योंकी आज क्या दशायें हो रही हैं। इतना घोर अंधकार है कि परवस्तुको मानते हैं, कि यह मेरी ही तो है और उसमें इतना अधिक लगाव है कि अपने आत्मस्वरूपकी कुछ सुध नहीं है। उस पर वस्तुके लगावमें इतना बडा हर्ष मानते कि हमने सब कुछ समृद्धि पायी और यह वैभव गिर जाय या नुकशानहो जाय कहीं चला जायतो इसमें यह विषाद करता है कि मेरा बहुत अधिक नुकशान हुआ। मगर नुकशान तो इसका विषय कषायसे है। आत्मामें भ्रम रहे, मोह रहे विषय कषायकी बात जगे तो यह है पूरी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

मलिनता। आत्माकी बरबादी इसमें है कि जहाँ नाना विकल्प कर्मबन्ध बन्धते हैं और उनकर्मोंके उदयमें इसको दुर्गति भोगनी पड़ती है। इससे वह आत्मा धन्य है कि जो निर्मोह रहता है, बाहरी पदार्थोंको ज नता भर है।... यह अभी मेरे साथ है और अभी इसमें जीवन चलाना पड़ रहा है, मगर हैं ये मेरे कुछ नहीं। इस प्रकारका निर्णय जिसका रहता है, वह सुखी शान्त रहता है, क्योंकि बाह्य पदार्थ तो इसके आधीन है नहीं। वे रहें तो, उनका सुधार बिगाड़ इसके हाथ नहीं, अज्ञानी जीव समझते हैं कि इन पर मेरा अधिकार है तो वे दुःखी होते हैं और ज्ञानी पुरुष जानता कि ये सब मेरे से भिन्न हैं, इनसे मेरा क्या मतलब ! वह अपने स्वरूपकी दृष्टि रखकर संतुष्ट रहा करता। तो ऐसे सूक्ष्मसे सूक्ष्म विकल्पोंसे भी अतिक्रान्त होता है, तब हम अपने आत्मामें बसे हुए चैतन्य स्वरूपका अनुभव कर सकेंगे।

एकस्य हेतुर्न तथा परस्यचितिद्वयोद्वोवित पक्षपातौ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्य खलुचिच्चिदेव।।७८।।

७४३—जीवके हेतुत्व अहेतुत्वके नय पक्षसे तत्ववेदीकी अतिक्रान्तता—

एक नयकी दृष्टिमें जीव हेतु है, कारणभूत है और एक नयकी दृष्टिमें जीव हेतु भूत नहीं है ऐसा एक चेतनमें दो दृष्टियोंसे दो नय पक्षपात आते हैं। लेकिन जो तत्ववेदी पुरुष हैं वे पक्षपातसे च्युत होकर एक परमात्मतत्वका अनुभव करते हैं। यहाँ पहला पक्ष क्या बताया गया कि जीव हेतुरूप है, कारण है, जीव अपनी पर्यायोंका कारण है, यह उपादानकी ओरसे पक्ष है जीव पुद्गल कर्मकी दशाओंका कारण है. यह निमित्तकी ओरसे कथन है। जीव कारणभूत है, यह पक्ष व्यवहार नयने बताया तो जीव हेतुरूप नहीं है कारण नहीं है अर्थात् अहेतुक है, यह बात स्वभावदृष्टिमें आती है। पर्यायदृष्टिमें व्यवहारनयमें जीवको सहेतुक हेतुभूत याने अपनी पर्यायोंका कारणभूत और पुद्गल कर्मकी दशाओंका कारणभूत बताया। निमित्त दृष्टिसे एक पक्ष है, उपादानकी ओरसे एक पक्ष है. ऐसे दो रूपसे हेतुभूत है, मगर स्वभावरूपमें शुद्धनयमें न उपादानका हेतुभूत ही है और न निमित्तरूपसे हेतुभूत है, क्योंकि स्वभावदृष्टि, शुद्धनय वह अखण्ड स्वभावको निरख रहा है और अखण्ड स्वभावमें न तो उपादान दृष्टिका कारणपना है और न निमित्त दृष्टिका हेतुभूतपना है इसलिए अहेतुक है।

७४४—योजन, प्रयोग व व्यवहारमें सूक्ष्म ऋजूसूत्रनयकी अप्रतिष्ठा—

यहां यह बात जानना कि पर्यायको ऋजुसूत्रनय भी अहेतुक देखता है, पर ऋजुसूत्रनयकी खुली चर्चाओंमें प्रतिष्टा आचार्यने नहीं की, क्योंकि वह किस प्रयोजनके लिए है? जब आचार्योंने शंका उठाकर समाधान किया कि ऋजुसूत्रनयने जब एकही समयकी पर्यायको बताया है तो वह तो गूंगा है कारणको बात कहने में। तो यह किसी कारणसे उत्पन्न नहीं हुआ, यह भी बात नहीं बताता ऋजुसूत्रनय किन्तु वह तो एक ही पर्यायको देखता है, और उसकी दृष्टिमें कुछ नहीं है। तो कहा कि इस तरह तो व्यवहारका लोप हो जायगा। तो समाधान दिया कि होने दो लोप। हम तो नयका विषय बता रहे है। हम तुम्हारे कामके लिए नहीं बता रहे हैं। ऋजुसूत्रनयका विषय पर्यायार्थिक नयका एक सूक्ष्म विषय है। वैसे पर्यायार्थिकनय ६ प्रकारके होते हैं जैसे नित्यपर्यायार्थिकनय। अब आप सोचेंगे कि क्या कोई ऐसा भी पर्यायार्थिकनय है कि जो अनादि हो और नित्य हो? ... हां है, जैसे सूर्यकी गति। गमन तो पर्याय है, मगर एक संग्रह नय दृष्टिसे देखें तो अनादिसे गमन कर रहा और अनन्त काल तक करेगा, और कोई है सादि नित्य पर्यायार्थिकनय। इसका उदाहरण क्या? मोक्ष दशा। उसकी आदि है पर उसका कहीं अन्त नहीं, ऐसी चलती हुई अनेक बातें बतायी है। तो यहाँ यह जानना कि पर्यायार्थिकनय केवल

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

एक ही समयकी बातकी बातको कहता सो नहीं, किन्तु जब सूक्ष्म ऋजुसूत्रनयको निरखते हैं तब वह एक समयकी पर्यायको कहता है। एक बात और व्यापक रूपसे समझना चाहिए कि व्यवहारनय द्रव्यार्थिकनय का भेद है, पर्यायार्थिकनयका भेद नहीं है ऐसी बात सुनकर आपको अचरज होगा मगर जिन्होंने तत्त्वार्थ सूत्र पढ़ा है वे जानते होंगे कि नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, समभिरुढ शब्दनय एवं भूत इनमेंसे नैगमनय संग्रहनय, व्यवहारनय ये तीन तो है द्रव्यार्थिक और ऋजुसूत्रनय, शब्दनय, समभिरूढ़नय और एवंभूतनय ये सब पर्यायार्थिक हैं। अगर सर्वतोमुखीनयका वर्णन करें तो जो नयकी विद्यामें कुशल नहीं है वह भौचक्का सा रह जायगा अरे क्या कहा ?

७४५– नय चक्रविद्या की झाकी–

यह नयचक्र की विद्या है, इसको एक गहन वन कहा है। सीधी सादी बात कहा अध्यात्म पद्धति से कि भाई एक द्रव्य को देखे सो निश्चयनय और दो द्रव्यो का संयोग, निमित्त, प्रभाव देखे सो व्यवहार नय। यह एक सीधी सी बात है, मगर नय केवल अध्यात्म दृष्टि से बना हो ऐसी बात तो नहीं है। नयों के कितने ही प्रयोजन होते है। अब देखो ये ७ नय इन तीन नयों में आते है—ज्ञाननय, अर्थनय और शब्द नय। ज्ञाननय है नैगमनय, अर्थनय है संग्रहनय व्यवहारनय व ऋजुसूत्रनय और शब्दनय में आते है शब्दनय समभिरूढ़ और ऋजुसूत्रनय एवं भूतनय नयों का विवेचन कितने ढंगसे होता है और उनके फिर कितने ही भेद होते है, यह तो व्यापक होने से मालूम होता है और सब में कुशल हो जाने पर फिर वह नय विद्या एक कौतूहल बन जाती है। जैसे किसी कुशल खिलाडी को गेंद का खेलना एक कौतूहल है, वह बैठ–बैठे, खडे—खडे, लेटकर जमीन में गिरकर, एक हाथ से, कैसे भी हो सब तरह से बडी कुशलता पूर्वक गेंद का खेल खेल लेता है, उसके लिए वह गेंद का खेल एक कौतूहल मात्र है, एक लीला मात्र है. ऐसे ही जिस ज्ञानी पुरुष को इस नय चक्र में एक व्यापक कुशलता प्राप्त हुई वह हर प्रसगों से उन नयों का प्रयोग करता है।

७४६ प्रयोजन, प्रयोग व व्यवहार में ऋजुसूत्रनय की अप्रतिष्ठा एक चित्रण—

ऋजुसूत्र नयका जब वर्णन किया और यहाँ तक बात आयी कि इस दृष्टि में तो तुम यह भी नहीं कह सकते ? देखो यह नय विशेष्य विशेषण को नहीं देखता। कौवा कुल काला कहाँ होता ? उसके शरीर के भीतर खून, हड्डी वगैरह तो और और रंग के हैं। तो कौवा काला है यह कहना कहाँ ठीक रहा। आखिर उस सबका ही तो नाम कौवा है, अगर वे सब चीजें भी काली हो तो कह सकते कि कोवा काला होता है। और फिर जितना काला है वह सब कौवा हो तो बताओ काली चीजें बहुत सी होती है पर उन्हें कौवा तो नहीं कहते। तो इस नयका विषय बडी सूक्ष्मता से बताया है। मानो किसी के पास कपास की दूकान है और मानो उसमें आग लग गई, कपास जलने लगा तो ऋजुसूत्रनय की हठ करने वाला व्यक्ति यह भी न बोल सकेगा कि अरे भाइयो दौडो हमारी कपास जल जायगी। उसके कपास बचाने का कोई उपाय नहीं है, क्योंकि वह कैसे कहेगा कि कपास जल रहा है। जो कपास है वह जल नहीं रहा और जो जल चुका वह कपास नहीं रहा। तो वह तो इतना भी न बोल सकेगा कि वह कपास है। हम ये आगम में दिए हुए उदाहरण बोल रहे। याने सूक्ष्म ऋजुसूत्रनयकी इतनी सूक्ष्म दृष्टि है वह विषय मात्र बताने के लिए है।

७४७– ऋजुसूत्रनय से भी और सूक्ष्म अंशक दृष्टियां—

सूक्ष्म ऋजुसूत्रसे भी और सूक्ष्म दृष्टि होती हैं, शब्दनय याने ऋजु सूत्रनयके

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

विषय को हम किसी भी शब्द से बोलें मगर शब्दनय के मूडमें आवोगे तो हर एक शब्द से न बोलना चाहिए। कैसे ? एक स्त्री शब्द से कह लो, भार्या शब्द से कह लो, कलत्र शब्द से कह लो ऋजुसूत्रनय को शब्द से कहने का कोई नियन्त्रण नहीं, मगर शब्दनय यह न स्वीकार करेगा। स्त्री वह है जिसमें गर्भ रहे, आर्या वह हैं जो घर का सारा भार बोझ, सम्हाले। कलत्र उसका नाम हैं जो घर के लोगों की शरीरिक सेवा करे शरीर की रक्षा करे, रसोई बनाकर व्यवस्था करके सब तरह से घर के लोगों के शरीर की रक्षा करे उसका नाम हैं कलत्र देखो एक स्त्री में भेद पड़ गया ना शब्द भेद से ? पर इससे भी और कोई सूक्ष्म बात हैं क्या ? हाँ है, वह है समभिरूढ़नय। याने शब्दनय से तो इतने विभाग किया था कि भिन्न भिन्न शब्दोंसे बोलना चाहिए। किसी भी बातको जिस चाहे शब्दसे न बोलना चाहिए। भिन्न शब्दोंसे बोले तो भिन्न तत्व ज्ञानमें आयगा मगर समभिरुढ़नय कहता है कि तुम एक ही चीजको एक शब्दसे बोलो तो उसके तो १०—५ अर्थ आते और उस शब्दसे तुम उन १०—५ अर्थोंको न बोल सकोगे। जिसका अभिरूढ़ हो, रूढ़ि हो, सम्बन्ध हो उस ही अर्थको बोल सकते। लो समभिरूढ़ नयसे और सूक्ष्म करदो तो क्या कोई और है इससे सूक्ष्म ? वह है एवंभूत। शब्दके ५० अर्थोंमें एक ही शब्दको बोल पायेंगे, यह तो शब्दनयने कैद की। जैसे गौ शब्दका किरण भी अर्थ है, वाणी भी अर्थ है, और गाय भी अर्थ है। मगर शब्दनय कहेगा कि गौ से गाय शब्द बोलो, पर एवंभूत कहता है कि देखो जब चलती हो तब कहो गाय, बैठी हुई को गाय न कहो क्योंकि धातुओंमें गौ गमन करनेके प्रयोगमें आता है, जो गमन करे सो गाय। तो ये सब धातुकी कलाये हैं देखो ये नय कितना सूक्ष्म विषय करने लगे, मगर इन नयोंकी कोई चर्चा करता है क्या ?

७४८—निश्चय और व्यवहार दृष्टिका आधार अभेद व भेदका प्राधान्य—

व्यवहारनय द्रव्यार्थिकनयका भेद है। यह व्यवहारनय पर्यायको जानता है अभेद पद्धतिसे इसलिए वह द्रव्यार्थिक नयका भेद है। पर्याय निरपेक्ष होकर व्यवहारनय कुछ नहीं और द्रव्यनिरपेक्ष होकर भी व्यवहारनय कुछ नहीं समझ सकता। व्यवहारनय द्रव्यार्थिकनयका भेद इस कारण है कि वह अभेद पद्धतिसे पर्यायको समझाता है पर भेदपद्धतिसे पर्यायको समझाये तो वह ऋजुसूत्रनय बनता है तभी तो उसका न कोई उपादान है न कोई निमित। बस वह तो एक निरंशवादियोंकी तरह है। जो उनकी दृष्टि है वही ऋजुसूत्रनयकी। दृष्टिमें फर्क इतना है कि हमने ऋजुसूत्रनयको अन्यनयसापेक्ष माना। जो यहाँ जीवको हेतुभूत कहे जा रहे हैं सो उपचारित कारणभूत नहीं, कि यह जीव मकान बनाता है, भोजन बनाता है, खाता है, यह भोगता हैं, देखता है, अमुक यों करता है इस तरहका उपचारित कारण रूप नहीं बताया जा रहा, किन्तु यह अपनी पर्यायोंका उपादान करता है, व्यवहारनयकी दृष्टिमें यह बात है। तो शुद्धनय यह बतलाता है कि जीव हेतु रूप नहीं, वह तो एक उपयोग स्वभावको निरखता है, लेकिन यहाँ यह भी घटा देखते जायेंगे कि कोई व्यवहारनयका एकान्त कर बैठे तो वह कौन सा दर्शन बनता है और निश्चयनयका एकान्त कर बैठे तो वह कौनसा दर्शन बनता है। कभी पर्यायार्थिकनयका विषय अभेद हो तो निश्चय बन जायगा और निश्चयनयका विषय भेद हो तो व्यवहार बन जायगा।

७४९—विविध नय जालोंका बीज नयोंका बाहुल्य—

कैसा नयोंकी दृष्टियोंका विचित्र परिणाम है और कैसा क्या, यह नया नया रंग बदलता है, ऐसा जाल क्यों ? यों कि इसमें ७ नय नहीं है ४ नय नहीं है। हजार नहीं हैं, लाख नहीं हैं, तो करोड़ नहीं है।.... तो क्या अनगिनते हैं ?.... हाँ हाँ अनगिनते नय हैं। नय ७ नही है, नय

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तीन नहीं है। नयके दो भेद नहीं हैं, नयके भेद हैं असंख्यात। अब इतने नयोंको अनगिनते भेदोंको एक संक्षेपमें बाँधनाहो तो यह बंधता नहीं, एक ढंगका न बन पायगा। कभी किसी पद्धतिसे संक्षेप किया तो ७ बनाये जा सके। एक पद्धतिसे तीन बने—ज्ञाननय, अर्थनय, शब्दनय। इसका और भी खुलासा समझना हो तो यों समझिये कि जैसे कोई कहता है कि मेरा पुत्रसे प्रेम है तो उसके बारेमें यह निर्णय करें कि पुत्र तीन तरहके होते हैं—(१) ज्ञाननयका पुत्र (२) अर्थनयका पुत्र और (३) शब्दनयका पुत्र। ज्ञानपुत्र, अर्थपुत्र और शब्दपुत्र। कैसे वे तीन हो गए? पु और त्र चाहे बोलकर बोलो चाहे लिखकर बोलो—वह कौनसा पुत्र है? शब्दपुत्र। पु और त्र लिखकर एक कागजमें आपके सामने धर दें तो वह कहलाया शब्दपुत्र। और अर्थपुत्र कौन है? जो दो हाथ दो पैर वाला आपके घरमें है वह कहलाता है अर्थपुत्र। और ज्ञानपुत्र कौन है? उस पुत्रके बारेमें जो भीतर ख्याल बना, विकल्प बना, वह ख्याल वह विकल्प है ज्ञानपुत्र। अब आप यह बतलाओ कि ज्ञानपुत्रसे आपको प्रेम होता है कि अर्थपुत्रसे होता है कि शब्दपुत्रसे? अब एक निर्णय बनाओ। अच्छा शब्दपुत्रसे कोई प्रेम करता है क्या? अगर किसीका पुत्र गुजर गया तो कहेंगे कि भाई रोवो मत, हम तुम्हें तुम्हारा पुत्र मिलाये देते हैं, और लिखकर दो शब्द धर दे पु और त्र, तो क्या वह उस शब्दपुत्रसे प्रेम करने लगेगा? नहीं करेगा। और, अर्थपुत्रसे भी कोई प्रेम करता क्या? मायने आपके घरमें जो दो हाथ पैर वाला है उससे तो कोई प्रेम कर ही नहीं सकता, क्योंकि वस्तुस्वरूप ही नहीं कि परसे कुछ मिले। कोई किसी दूसरी वस्तुमें राग नहीं कर रहा, तो फिर क्या कर रहा? उस पुत्रका आश्रयभूत कारण करके जो यहाँ ज्ञान विकल्प बना उस ज्ञानविकल्पसे प्रेम हो रहा। न अर्थपुत्रसे प्रेम कर रहा और न शब्द पुत्र से। ज्ञानपुत्रसे प्रेम है मायने जो कोई भी रागद्वेष कुछ करता है तो वह अपने आपको पर्यायमें अपनी पर्यायके प्रति प्रेम करता है, दूसरे पदार्थमें प्रेम नहीं करता। अब देखो शायद आपने अनेक उपायोंमें ये तीन भेद न भी सुने हो, लेकिन इन तीन नयोंका दर्शनशास्त्रमें भली प्रकार प्रयोग है। अष्टसहस्री जैसा ग्रन्थ बना है आप्तमीमाँसा ग्रन्थ, पर उसमें बताया है कि बुद्धिशब्दार्थ संज्ञास्तास्त्रिस्त्रोवुद्धयादिवाचकाः" बुद्धि संज्ञा और अर्थ ये तीन प्रकारके नयकी पद्धति मायने ज्ञाननय,शब्दनय,अर्थनय। सुनते सुनते बहुतसे भाईसोचते होंगे कि आज तो व्याख्यानमें कुछ भी पल्ले न पड़ा और लगता होगा कि नयोंका जाल कैसा विचित्र है कि हम इसमेंसे कुछ ले ही नहीं पा रहे, लेकिन इतनी बात तो समझमें आयी ही होगी कि वह नयोंका जाल बड़ा विचित्र है इसमें कुछ भी मेरे पल्ले नहीं पड़ रहा तो ऐसा होता कि एक कूपमंडूक कथा है कि एक हंस पक्षी कहींसे उड़ता हुआ आया और एक कुवेंके घाट पर बैठ गया। नीचे सिर करके देखा तो उस कुवेंके अन्दर एक मेढक बैठा हुआ था। मेढक बोला—भाई तुम कौन हो? .... हस .... कहाँ रहते हो? .... मानसरोवरमें। .... वह मानसरोवर कितना बड़ा? .... बहुत बड़ा। तो मेढकने एक पैर फैलाकर कहा—क्या इतना बड़ा है? .... अरे इससे बहुत बड़ा। फिर दूसरा पैर फैलाकर क्या इतना बड़ा? .... अरे इससे भी बहुत बड़ा, फिर एक किनारेसे दूसरे किनारेमें छलांग मारकर .... क्या इतना बड़ा? .... अरे इससे भी बहुत बड़ा। तो वह मेढक झुझला कर बोला अरे सब झूठ। इससे बड़ी तो दुनिया ही नहीं है। यह एक कूपमंडूपकी बात बतायी। यों ही जब हम एक सँकुचित विधिसे चलते हैं तो व्यापक निर्णय नहीं कर पाते।

७५०—सर्वनयोंसे निर्णय किये जानेका स्पष्ट परिणाम—

व्यापक निर्णयका बहुत स्पष्ट परिणाम होता है, इसके सम्बन्धमें भी एक कथानक आया है

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कि सेठके पास काम करने वाले बहुतसे पल्लेदार थे और एक मुनीमभी। तो पल्लेदार तो कोई ५०—५० रुपये महीने पाते थे और मुनीम कोई १५०) महीने पाता था। तो एक दिन वे पल्लेदार सेठके पास जाकर बोले—सेठजी आपको कुछ विवेक नहीं है, आप बड़ा पक्षपात करते हैं। . . . . . कैसे ?. . . . देखो इस मुनीमसे हम ज्यादह काम करते हैं। दिन भर सैकडों बोरे ढोते और यह मुनीम बस बैठे-बैठे कलम चलाता रहता फिर भी आप उसे १५०) महीने वेतन देते जब कि हम लोगोंको कोई ५०—५०) ही महीने में वेतन देते। तो उस समय सेठजी ने कुछ उत्तर न दिया। एक दिन क्या घटना घटी कि पास ही सड़क में से एक बारात जा रही थी तो वहाँ एक पल्लेदार से कहा—जावो भाई पता लगाकर आवो कि इस सडक में से क्या चीज जा रही। तो पल्लेदार गया और यह जान कर वापिस लौट आया कि बारात जा रही। आकर सेटको बताया कि कोई बारात जा रही है, उसका और कुछ विवरण वह न दे सका। उतनी ही बात मुनीम से कहा—भाई जावो पता लगाकर आवो कि इस सडक में से क्या चीज जा रही। तो वह गया और पूछा—किसकी बारात हैं ? कहाँ से आयी है, कहाँ जायगी, कब लौटेगी . . . . . सब बातों की पूरी-पूरी जानकारी करके आया और सेठसे सारी बातें बतायी। तो वह सेठ ने सब पल्लेदारों से कहा देखो तुममें और मुनीम में इसी बातका अन्तर है कि मुनीम बुद्धिमान हैं, तुम लोग बुद्धिमान नहीं। . . . .कैसे ? . . . देखो उतने ही शब्द तुमसे कहा तो सिर्फ यह जानकर आये कि बारात है, और उतने ही शब्द मुनीम से कहा तो मुनीम ने दसों बातें स्पष्ट विवरण सहित बतायी। तो यह अन्तर किस बात का है ? . . . ज्ञान का। जब ज्ञान बहुत होता है तो छोटी मोटी बातों को बहुत स्पष्टरूप से जान लेते हैं। प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग इन चारोंका जो ज्ञाता है उसके लिए अंतस्तत्त्व कैसा स्पष्ट होता है, उसे वैराग्यमें बढनेकी प्रेरणा मिलती और उसमें एक विशुद्धि जागती। अगर बहुत बहुत ज्ञान कराना लाभदायक न होता तो फिर स्याद्वादके पाठी क्या बनते ? इसके लिए ज्ञान और धन ये दोनों संतोष की चीज नहीं है। आप यह बात तो जल्दी समझ लेते कि धन संतोष किये जानेकी चीज नहीं मायने धनसे संतोष न करें मगर ज्ञानकी बात समझ में नहीं आती कि यह ज्ञान भी संतोष किए जाने की चीज नहीं। कितनाही ज्ञान प्राप्त हो जाये फिर भी ज्ञानमें बढ़ते जावें। उसका सूक्ष्म से सूक्ष्म अध्ययन करें, एक जाननेके सिवाय इस आत्माका क्या रोजिगार है सो तो बतलावो केवल यह जानता भर है, जाननेके साथ रागद्वेष लगे हैं सो उसके रंग भी लग गया। ज्ञान व रागादि रंग ये दो कामकर पाता यह जीव। और तो कुछ नहीं करता किसी पदार्थ से।

७५१—हेतत्त्व अहेतुत्त्वका निणय और उससे ग्राह्य निष्कर्ष—

हेतुकी बात कही जा रही है इस प्रसंगमें हेतु किस तरह हैं कैसे नहीं है। हेतु है तो किस ढंग का है उससे क्या स्पष्ट होता है, क्या बात बनती है ? इन चार विषयोंको अगर संक्षिप्त शब्दमें कहेंतो विकारकी बात कहेंगे सो यह कहना पडेगा कि विकार निमित्त से होता नहीं। और निमित्तके अभावमें होता नहीं है। अब इसमें किसकी बात करें सो बताओ ? क्या निमित्त उपादानमें विकार परिणतियोंको कर देता है ? यह तो वस्तुका स्वाभाव ही नहीं। तो क्या निमित्तके सन्निधान बिना अब तक किसी भी पदार्थमें विकार हुआ है ? नहीं हुआ वह विकार तो पर सम्पर्कमें होता है, दूसरी विधि नहीं, तो हम सब तरहसे जान ले और निष्कर्ष निकाले कि हमको लेना क्या है, आश्रय करना क्या हैं, उसका निर्णय बनाले। आश्रयणीय और सत्य ये एक पर्याय वाचक शब्द नहीं हैं। जो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

आश्रयनीय नहीं हैं वह भी सत्य हो सकता है और जो आश्रयनीय हैं वह तो सत्य है ही। जैसे राग होता है उसे कोई मना करता क्या? पर्यायमें चल रहा मँसारी जीव है इसको कोई मना नहीं कर सकता। तो क्या यह असत्य है? रागद्वेष जो भी जगते हैं ये असत्य तो नहीं हैं। सत्य है, नैमित्तिक है, औपादिक है मगर आश्रयनीय नहीं है क्योंकि आश्रयनीय वह तत्त्व होना चाहिए कि जिसका आश्रय करने पर विकल्प क्लेश न हों। सत्य होने पर भी आश्रयणीय नहीं है, इतना मात्र जानकर विकारको असत्य नहीं कहा सकता। अनुसर्तव्य परमार्थ सत्य है, जहाँ कि हम आश्रय करके अपनेमें विकल्प संकटोंका अभाव कर सकें। यह ही तो फर्क हो जाता है। एक शब्दशास्त्रसे भी बहुत ऊँची मदद मिलती है। अच्छा बतलावो असत्य मायने क्या? तो लोग झट कह देंगे—झूठा। और झूठ का क्या अर्थ है? नहीं है वहां हाँ कहना। है को नहीं कहना। नहीं को है कहना, विपरीत कहना, ये झूठके रूप हैं। अब देखो झूठ और असत्यका भेद बतला रहे शब्दशास्त्रकी दृष्टिसे। तो न को हां बोलनेको झूठ कहते है, पर असत्यके मायने क्या? जो सत्में न हो सो असत्य। जो सत पदार्थमें स्वयं अपने आप अपने ही आश्रयसे निरपेक्ष हो सो सत्य। तब सत्य क्या रहा? केवल वह अतस्तत्त्व चैतन्यभाव। उसे छोड़कर बाकी चीजें सब असत्य। तो इस असत्य का अर्थ झूठ नहीं हैं किंतु जो स्वयं सहज निरपेक्ष नहीं होता है उसे कहते हैं असत्य! तो सापेक्षभी असत्य, विकार परिणाम भी असत्य मगर इस असत्यका अर्थ इस तरह न करना। यह करना कि स्वयं सहज निरपेक्ष नहीं हुआ।

७५—प्रसंगके अनुसार समझकी दिशा—

समझहार श्रोता वह है कि जो प्रसंगको निरखकर छांटले कि इसमें आचार्यों ने यह कहा है। संस्कृतमें एक कातंत्र व्याकरण बना है। संस्कृतको सुगमतया समझनेके लिए बहुत उत्तम व्याकरण है। इसके चयिता एक जैनाचार्य हैं। यह बहुत सुगम है। यह कातंत्र व्याकरण क्यों बनाया, उसकी एक घटना है? एक बार कोई राजा अपनी रानियोके साथ जलमें जल क्रीड़ा कर रहा था। जल क्रीड़ा उसे कहते हैं कि पानीमें नहाये और एक दूसरे पर छींटा मारे। तो जलक्रीड़ा करते हुएमें रानियोंकी आँखे घबड़ा गई तो रानियाँ बोली मोदकं देहि राजन्। तो राजाने झट नौकरोंको हुक्म दिया कि जावो जल्दी एक टिपारेमें भरकर लड्डू ले आवो। लो झट एक टिपारे भर लड्डू आ गए। जब रानियोंको देने लगा राजा, तो रानियोंको बुरा लगा, उन्होंने कुछ मर्म भेदी बात कही। वह बात उस राजाके दिल में चोट कर गई। रानियोंने कहा था— मोदकं देहि राजन् मा उदकं देहि राजन् याने मत पानी डालो राजन। मा मायने मत, उदक मायने पानी ...., पर राजाने क्या समझा? मोदक मायने लड्डू। राजाने समझा कि ये रानियाँ माँग रहीं है इसलिए लड्डू मंगाकर रख दिया। जब वहाँ रानियोंने मर्म भेदीशब्द कहा तो राजाके दिलमें बड़ी ठेस पहुची, राजाको वहाँ नीचा देखना पड़ा। वहाँ राजाने यह प्रतिज्ञा किया कि अब हम संस्कृत सीखकर ही रहेंगे। संस्कृत न समझनेके कारण आज हमें नीचा देखना पड़ा। तो राजा एक कातंत्र व्याकरणके रचयिता जैनाचार्यके पास गया। वहाँ जैनाचार्यने उस राजाको समझानेके लिए जो व्याकरण रचा वह कातंत्र व्याकरण कहलायी। देखो बहुत पहले जब पाटी पढ़ते थे तो ओनामासीधंसे शुरू कराते थे। सीदोबन्ना समामनाया, चतुरो-चतुरो दासा ये पाठ कातंत्र व्याकरणके सूत्रके बिगड़े हुए पाठ हैं। शुद्ध सूत्र ये हैं— ॐ नमः सिद्धँ। इसका अर्थ तथ्य ॐ नमः सिद्धेभ्यः से भी ऊँचा है। यद्यपि सिद्धोंको नमस्कार दोनोंमें है,पर सिद्धेभ्यः में भेदपरक नमस्कार है और सिद्धँमें अभेद-परक नमस्कार है। सिद्धेभ्यः तो चतुर्थी विभक्ति है जिसका अर्थ है सिद्धोंके लिए नमस्कार है। और सिद्धँ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

द्वितीया विभक्ति है जिसका अर्थ है सिद्धके अनुकूल होनेके लिए सिद्धोंको नमस्कार हो। आगेका शुद्ध सूत्र देखिये सिद्धो वर्णसमाम्नायः इसका अर्थ है वर्णोंकी परम्परा स्वयं सिद्ध है। लोक व्यवहारसे सिद्ध है। तीसरा शुद्ध सूत्र देखिये, तत्र चतुर्दशादौस्वराः इसका अर्थ है कि उन वर्णोंमें से आदिके १४ वर्ण स्वर कहलाते है। तो इस पाटीसे यह अनुमान करिये कि इस जैन व्याकरणका सर्व व्यापक अध्ययन था।

७५३—शब्दों के अनुसार अर्थ संघटन होने में अनेक जिज्ञासादों का स्वयं समाधान

शब्दों के अर्थ की बात चल रही है। बताओ मिथ्याशब्द का क्या अर्थ है। लोग कह देंगे कि झूठ अर्थ है लेकिन मिथ्या का अर्थ झूठ नहीं। मिथ्या भाव भी हुआ करते है। मिथ्या मिथ धातु से बना है जिससे मिथुन मैथुन आदि भी शब्द बनते हैं, तो मिथ्या का अर्थ हुआ संयोगी भाव। मिथ्या मायने दो का सम्बंध, दो के सम्बंध में होने वाली बात का नाम है मिथ्या। मिथ्या का अर्थ झूठ नहीं। यह शब्द की ओर से बतला रहें अगर कहे कि जीव के विकार मिथ्या हैं तो उसका अर्थ लेना कि कर्म संयोग में हुए भाव है। कहीं यह अर्थ न लेना कि वे हैं ही नहीं। शब्दों का जो हर तरह से अर्थजानते, जो अर्थ शस्त्र में कुशल है उनकाही तो यहाँ समझिये कि पाँडित्य हो पाता है और समझने में पूर्णतया पात्रता, उसके होती जो हर तरहसे उसका अर्थ समझे। हेतु हिनोति इति हेतुः जितने भी शब्द बनते हैं वे धातु से बनते हैं, और जो धातु का अर्थ है उस अर्थ का प्रकाश शब्द में हुआ करता है जो दूसरे को याने दूसरे से मतलब भिन्न वस्तु नहीं जैसे ज्ञान के लिए दर्शन, दर्शन के लिए चरित्र, दूसरे शब्द भिन्न मत में भी आता है, और जो हम कहना चाहते है उसके अलावा जो हम कह रहे उसके लिए भी आता है। उसके लिए जो एक आदान प्रदान करे, सयोग करे, कुछ भैत्री निभाये उसे कहते हैं, हेतु तो उपा—दान दृष्टि से यह जीव अपनी पर्यायों को करता है, यह बात सर्वत्र दृष्टिगत होती है। पूर्वपर्याय संयुक्त द्रव्य उत्तर पर्याय का उपादान कारण होता है, अब उसमें कोई तर्क करे कि पूर्व पर्याय उस समय है नहीं, तो वह कैसे कारण बनता ? तो भाई कभी भी उपादान व उपादेय एक साथ नहीं होता। निमित्त तो साथ मिल गया याने जिस समय नैमित्तिकपर्याय हैं उस समय में निमित्त मौजूद है तो निमित्त का और नैमित्तिक का एक समय में एक साथ रहना बनता है, पर उपादान का अर्थ है उप आदान याने समीप में ग्रहण करना। तो उपादान शब्द ही यह बताता है कि उपादान पूर्वपर्याय सयुँक्त द्रव्य है। यहाँ हेतु अहेतु निमित्त उपादान सबका यथार्थ निर्णय करके सर्व विकल्पों से अतीत होकर सहज चैतन्य रसका स्वाद पाकर कृतार्थ होना चाहिये यह इस वर्णन का लक्ष्य है।

एकस्य कार्यं न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वावि ति पक्षपाती
यस्तत्त्व वेदी च्युत पक्षपातस्तस्यास्ति नित्य खलु चिच्चिदेव ॥७९॥

७५४—जीव के कार्यत्व व अकार्यत्व का दिग्दर्शन—

एक नय की दृष्टि में यह विदित होता है कि जीव कार्य है और एक नय की दृष्टि में यह विदित होता कि जीव कार्य नहीं है, ऐसा दो नयों की दृष्टियों में दो प्रकार के पक्षपात हैं, किन्तु जो तत्त्ववेदी है, पक्ष से रहित है वह निष्पक्ष होकर स्वानुभव के साथ में बढ़ते हुए स्वानुभव की स्थिति में समझता है और अनुभव करता है कि जो चित है सो चित ही है। तो यहाँ पहला पक्ष क्या बताया जा रहा कि जीव कार्य है। जीव किसी पर द्रव्य का कार्य है यह तो यहाँ कहने का प्रसँग ही नहीं है क्योंकि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य की परिणतिका त्रिकाल भी कर्ता नहीं हैं न कभी हुआ और न हो सकेगा। यदि ऐसा न होता तो आज यह दुनिया में कुछ न होता। कैसे ? मानो चौकी ने पुस्तक का कार्य

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कर दिया तो अब यह चौकी चौकी रूप रही कि पुस्तक रूप। कार्य तो तन्मय होता है। हो जायगा। यों होते-होते कोई वस्तु न रहती, पर ऐसा है ही नहीं। ये सन्सार के इतने पदार्थ दिखते है यही इसको प्रमाणित करता है कि एक वस्तु दूसरी वस्तु रूप कभी नहीं परिणमी। इसी का अर्थहै कि एक दूसरें को करता नहीं है, तो एक की दृष्टि में जीव कार्य है। व्यवहार नय से देखा जा रहा कि जीवमें जो परिणतियां जगीं वह भी तो जीव है। वह जीव कार्य है, शुद्धनयकी दृष्टिमें कार्य हैं ऐसा नहीं है।

७५५—ब्रह्मका आश्रयकर जीवसे आत्मा व आत्मासे परमात्मा होनेकी प्रक्रिया—

देखो शब्दको सावधानीसे कोई प्रयोग करे और उस दृष्टि से देखें तो जैसे और लोग कहते हैं कि जीव भिन्न है, आत्मा भिन्न है, जीव न्यारा है, आत्मा न्यारी है, आत्मा सर्व व्यापक है, जीव तरंग है जैसे कि अन्य दार्शनिक कहते हैं। तो शब्दोंकी दृष्टिसे देखो—जीव, आत्मा और ब्रह्म। जीव, आत्मा, परमात्मा, ब्रह्म ये चार शब्द हैं। यों सामान्यतया किसी भी शब्दसे कह लो, ब्रह्म भी जीव, परमात्मा भी जीव, आत्मा भी जीव। जीव जीव ये सब आत्मा। कैसा भी कहलो। अगर शब्दशास्त्रसे या उसके कुछ और मर्मोंको लेकर कहा जाय तो यों कहो—जीव मायने बहिरात्मा। आत्मा मायने अन्तरात्मा परमात्मा मायने परमात्मा और ब्रह्म मायने चित्स्वरूप। इस तरहके फर्क देखिये। देखिये हर बात जैन शासनमें यह जरूर समझना चाहिए कि यह किस मैदानमें खड़े होकर बोला जा रहा? जो इतनी बातचित्तमें न लाये उसके लिये कुछ उपदेश कार्यकारी नहीं होते। किस मैदानमें, किस स्थानमें स्थित होकर यह बोली जा रही है, इतनी परख कुशल श्रोताओंको होती है तो जीव कार्य है मायने इन इन परिणितियोंमें बसा हुआ जो एक जीव नामक पदार्थ है वह जीव उपादानका कार्य है, एक तो यह अर्थ है, दूसरा चूँकि यह पुद्गल कर्मविपाकका सन्निधान पाकर इस इस प्रकारके परिणामोंसे परिणमता है इसलिए कार्य है। कार्य स्थूल रूपसे वह समझा जाता है कि जिसमें देखो यह न था यह हो गया, ऐसा विषमपना नजर आये तो उसे कार्य कहा जाता है। शब्दकी भाषायें हर जगह समझना चाहिए। किस प्रयोजनसे कौनसी बात है, और यह कार्यपना विकारमें विषम परिणाम होता है और विषम परिणामका ही यह जिकर चल रहा है। यद्यपि यह भी कह सकते कि जो मुक्त जीव है उनमें भी कार्य प्रति समय होता ही रहता है, क्योंकि परिणतियां होती हैं, मगर उनकी परिणतियोंमें यह स्पष्ट न समझमें आयगा कि देखो यह न था यह हो गया, विलक्षण बात हो गई। विलक्षण बात होना उसे कार्यकी समझ रूपसे संज्ञा है। तो जीवमें कार्यकी बात जब देखी जा रही है—नारकी, तिर्यञ्च, मनुष्य, देव होना, क्रोधी होना, मानी होना, मायावी होना, ····। यह कार्यरूप है जीव, यह बात गलत तो नहीं है। देखो व्यवहारनय असत्य नहीं होता, किन्तु व्यवहारनय अनुसरणीय नहीं हैं, क्यों अनुसरणीय नहीं है? क्योंकि वह भेद विकल्प—बहुल है। और, इस नातेसे तो निश्चयनय भी अनुसरणीय नहीं, क्योंकि निश्चयनय भी एक विकल्प है, और उनही दोनों विकल्पोंका यहाँ जिकर चल रहा।

७५६—निष्प्रमाद होकर उत्कृष्ट भावमें आनेके पौरुषका स्मरण—

यह जो अध्यात्ममें गम्भीर वर्णन हुआ है वह इसलिए है कि उसे सुनकर क्यों नहीं भाव ऊंचे निष्प्रमाद होकर उड़ते? स्वच्छन्दताकी शिक्षा क्यों लेते? इसलिए ऊपर उठउठकर निष्प्रमाद होकर कल्याणमें लगें। सत्य होकर भी अनुसरणीय नहीं। यह बात सब यहाँ देखते जाना, और उपचार का कार्य यहाँ कहा नहीं जा रहा। हालाकि कोई उपचार भाषा बोले तो क्या अपराध? उपचार भाषा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

में बोले बिना लोगों का काम भी नहीं चल रहा। वह है संक्षिप्त भाषा जिसमें प्रयोजन जानना चाहिये और उस भाषा में लट्टू न होना चाहिये। अगर उपचारमें भी प्रयोजन कुछ न हो तो यह बतलावो कि लोग अटपट क्यों नहीं बोलते ? एक ढ़ंगसे क्यों बोलते ? उपचारमें भी कोई पागलकी तरह यों नहीं बोलता कि जैसे पागल कभी माँ को माँ कह देता तो कभी माँ को स्त्री कह देता। इसी तरह रसोईघर में भी घी के डिब्बेको कोई यों तो नहीं कहता कि चनेका डिब्बा ले आओ या वह टीनका डिब्बा ले आवो। ऐसा तो कोई नहीं बोलता। सभी कहते घी का डिब्बा ले आवो। तो उपचार भाषामें प्रयोजन ही एक द्रष्टव्य है और भाषाका जो रूप है वह अनुसरणीय नहीं है, तो सब समझ जायेगे। तो उपचार भाषामें यह नहीं कहा जा रहा यहाँ व्यवहारनय, और निश्चयनय दो के पक्ष चल रहे। कार्य है अर्थात पुद्गल कर्मविपाक का निमित्त पाकर होनेवाला यह विकार परिणाम है यह व्यवहारनयने देखा अथवा जीव पूर्वपर्यायसे गुजरकर उत्तर पर्यायमें इस प्रकार से रहा है यों यह कार्य है। उपादेय और नैमित्तिक दोनों कार्य हैं लेकिन निश्चयकी शुद्धनयकी दृष्टिमें जीव कार्य नहीं है। देखो जिस समय यह जाना कि जीव कार्य नहीं है जीव अहेतुक है,जीवकी अहेतुकता स्वभावदृष्टिमें आकर समझना चाहिए। मगर स्वभाव अहेतुक है ये दोनों पक्षपात है। ऐसेही आत्म स्वभाव क्या है जिसको निरखनेकी कोशिशकी जा रही है ? और जिसकी कोई बदल नहीं। देखो बदल है इन सबमें। आप कह रहे हैं कि जीव रागी है तो भाई किस नयसे कहते ? निश्चयनयसे। क्यों निश्चयनय से कहा। जो एक द्रव्यकी बात उसही में कहे सो निश्चयनय, स्वाश्रित वर्णन करे सो निश्चयनय। मगर वह है अशुद्धनिश्चयनय। तब और बढें जीव केवलज्ञानी है, किसनयसे बोलते? निश्चय नयसे। तो इसके बोलने पर पहले का जो बोल था वह व्यवहार बन गया। व्यवहारसे तो यों है निश्चयसे यों है और जब कहा कि जीव चैतन्य स्वभावमात्र है जीव में सहजज्ञान, सहजदर्शन ये शक्तियां हैं तो लो जीव केवलज्ञानी है यह व्यवहार बन गया और जीवमें सहज ज्ञानस्वभाव है यह निश्चय बन गया। अच्छा और जीव ज्ञानमात्र है, जब यह बोला तो जीव में सहज ज्ञानस्वभाव है यह व्यवहार बन गया और जीव ज्ञानमात्र है यह निश्चय हो गया, मगर अनुभवकी दृष्टिमें यह भी विकल्प है वहाँ तो गटागट अमृतपान बसा हुआ है। उसको तो चित् चित् ही है।

७५७–ज्ञानानुभवकी परमश्रेयता व परमश्रेयता—

अच्छा एक बात बतलावो दुनिया में ऐसी कौनसी वस्तु है जो सबसे प्यारी हो ? पहले सर्वाधिक प्रियका लक्षण भी तो समझो। सर्वाधिकप्रिय उसे कहते हैं जिसकी बदल नहीं होती। जैसे जीव चिन्मात्र है इस दृष्टिमें कभी कोई बदल नहीं। भलेही वह बोलनेरूप व्यवहार है, पर निरखनेरूप व्यवहार नहीं। ऐसी चीज बताओ जिसकी बदल न हो। जिसकी बदलहो जाय वह प्रिय वस्तु नहीं। जैसे जब कोई दो चार छैमासका या साल भरका बच्चा होता है तो उसे सबसे प्रिय होती है अपनी माँ की गोद। उसे जरा भी कोई उठाये तो वह झट माँ की गोद में छुपकर अपने को रक्षित अनुभव करता है। उसे माँ की गोद से बढ़कर कुछभी चीज प्यारी नहीं होती। वही बच्चा बढ़कर जब ४–५ वर्षका हो जाता है तो अब उसे माँ की गोद भी प्रिय नहीं रहती। उसे प्रिय हो जाते हैं खेल खिलौना। माँ जबरदस्ती पकड़ कर गोदमें बैठालती पर वह उठकर भग जाता। वही बच्चा जब कुछ और बड़ा होता तो उसे विद्या प्रिय हो जाती। उसे अब खेल खिलौने भी प्रिय नहीं रहते। वह नई नई बातें सीखनेमें खुश रहता है। वही बालक जब कुछ और बड़ा होता तो फिर उसे विद्या भी प्रिय नहीं रहती। उसे डिग्री

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रिय हो जाती है। चाहे जैसी हो डिग्री मिले। कुछ और बड़ा होने पर उसी स्त्री प्रिय हो जाती है, डिग्री भी प्रिय नहीं रहती। जब कुछ वर्ष बीतते, कुछ बाल बच्चे हो जाते तो अब उसे भी स्त्री प्रिय नहीं रहती। उसे बाल बच्चे प्रिय हो जाते हैं, स्त्री कभी उन बच्चोंको डाटे, मारे तो वह उस स्त्री को भी भला बुरा कहता है। उसे अब स्त्री प्रिय नहीं रही, बच्चे प्रिय हो जाते हैं। मान लो उसके दो चार बच्चियाँ हो गई, उनके शादी ब्याहकी बात सामने खड़ी हो गई तो अब उसे वे बाल बच्चे भी प्रिय नहीं रहते। उसे धन प्रिय हो जाता है। देखो कैसी प्रियकी दशा बदलती रहती है। मानलो जिस जगह वह काम करता था वहाँ टेलीफोन पहुंचा कि जल्दी घर आवो, घरमें आग लग गई, तो वह झट बड़ी जल्दी जल्दीसे घर भागा। और दिन तो रास्तेमें मिलने वालोंके पास ठिठक जाया करता था, उस दिन किसीसे बोला नहीं, किसी तरह घर पहुंचा। घर जाकर देखा कि भयंकर आग जल रही है। खैर किसी तरहसे सब सामान निकाला, बाल बच्चे निकाला, रुपया पैसा निकाला, पर बादमें आग अधिक बढ़ गई और एक बच्चा घरके भीतर ही रह गया। उसके निकालनेकी उसकी हिम्मत न पड़ी। अब वह किसी भाई से कहता है भैया हमारा बच्चा घरके भीतरसे निकाल दो। अगर निकाल दोगे हम तुम्हें १० हजार रुपया देंगे। .... बताओ अब उसे क्या प्रिय रहा? धन भी प्रिय न रहा, उसे अपने प्राण प्यारे हो गए। वही पुरुष कदाचित उस घटनामें विरक्त हो जाय तो उसे प्राण भी प्रिय नहीं रहते, उसे चाहे कोई मारे, छेदे, भेदे, कुछ भी करे पर उसे प्राणोंकी भी परवाह नहीं रहती। वह तो अपने ज्ञानस्वरूपमें मग्न रहता है। तो अब उसे प्राण प्रिय न रहे। उसे प्रिय हो गया अपना ज्ञानस्वरूप अब इसकी कभी बदल नहीं है।

७५७—ज्ञानस्वरूपकी प्रियता पानेके बाद उसकी बदलका अनवकाश—

ज्ञानस्वरूपकी प्रियताके बाद क्या बदल होती तो आप लोग बताओ। यहाँ तक तो हम ले आये अब इसके बाद तुम लोग बताओ। हमी हमी कहाँ तक बतायें? तो सबसे अधिक प्रिय चीज है ज्ञान, जिसकी कभी बदल नहीं होती। इस जगह एक घटना याद आयी कि किसी घरका मालिक सेठ गुजर गया, उसकी स्त्री अकेली बुढ़िया घरमें रह गई। वह एक दिन पंचोके पास जाकर बोली, पंच भाइयो हमें इस बातका दुःख है कि हमारी ये जो पचासों दूकानें हैं इनका किराया भाड़ा अब कौन वसूल करेगा, कौन लेगा, क्यो होगा? तो एक पंच बोला—बुढ़ियाँ माँ तुम इसकी फिकर न करो, अब हम सब सम्हाल लेंगे। .... और यह जो ७८—८० बीघा जमीन है इसका क्या होगा? ...उसकी भी फिकर न करो, वह भी सम्हाल लेंगे। .... जो सैकड़ोंकी संख्यामें गाय, बैल, भैंस आदि पशु घरमें बधे हुए हैं उनका क्या हाल होगा? बुढ़िया माँ तुम इसकी भी फिकर मत करो, यह भी हम सम्हाल लेंगे। ... यह जो लाखोंका धन है इसे कौन सम्हालेगा? .... माँ इसकी भी तुम चिन्ता न करो, हम सम्हालेंगे। ... और यह जो १८—५ लाखका कर्जा है इसे कौन सम्हालेगा? ... अरे तो क्या हमी हमी बोलते जायें? यहाँ तक तो हमने सम्हाल दिया अब कोई दूसरा भाई बोले। यह भी कहाँ तक सम्हालनेकी बात कहते जाये? तो भाई ज्ञान प्रिय हो गया इसके बाद तो इसकी बदल ही नहीं है, कोई कहेगा ही क्या?

७५९—अपने उपयोगको उसके स्रोतमें पहुंचाने पर विश्राम—

देखा होगा कि गर्मीके दिनोंमें जो जल समुद्रमें से भाप बनकर ऊपर उड़ जाता है यत्रतत्र डोलता फिरता है वही जल समय पाकर बरस कर पुनः उसी समुद्रमें आकर मिल जाता है। उसकी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भी कितनी ही बदल हो जातीहैं। ऐसे ही सहज ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा एक आनन्दसागर, ज्ञान सागरमें डूबा हुआ है, पर उसमें जब परदृष्टिके कारण संताप आता है तो यह अपने ज्ञानस्वभावको छोड़कर बाहरमें यत्र तत्र डोलता फिरता है। पर संग बिना जीवमें विकार होते नहीं। ये सहेतुक हैं, ये यदि अहेतुक हो जायें तो फिर जीवमें सदा रहेंगे। कभी मिट नहीं सकते। पर होता क्या है? बताया ना पुद्गल क्रोध प्रकृतिका उदय हुआ उसमें तो वहाँ प्रकृति प्रकृतिके ही विपाक हुआ और उसका उसमें ही अनुभवन हुआ। लेकिन उसको प्रतिफलन हुआ तो वह ऐसा आक्रमण है, ऐसा विघ्न है कि यह जीव क्रोधसे उपयुक्त हो गया। क्रोध तो था मूलमें कर्मका और नैमित्तिकमें था प्रतिफलनरूप मगर उपयोगमें प्रतिफलन जुट गयातो यह क्रोधी हो गया। ऐसा निर्माण होता है विकारका। वह तो ठीक ऐसा स्पष्ट है जैसे कि आप रसोईघरकी बात लायें, रोटी रोज रोज सिकती है ना आगमें। आगका सन्निधान पाकर रोटो सिक रही है। अगर आगसे हटा लेते हैं तो रोटी कच्ची रह जाती है। इतना होने परभी प्रत्येक वस्तुका परिणम नखुदका खुदमें हो रहा, निमित्तनैमित्तिक योगको मना किया ही नहीं जासकता। और परकर्तृत्व कभी लादा नहीं जा सकता। तो इस तरह इस जीवमें ये सब कार्य हो रहे, विकार हो रहे। तो कार्य बन तो गया जीव मगर यह सब दिख रहा है व्यवहारनयके पक्षमें। जब स्वभावको देखने चलते है तो जीव कार्य नहीं वह तो एक स्वभाव है। कब परखा, कब जाना हमने अपने अन्तस्तत्वको? जब उसका अनुभव आये, असली जानन तब है। यह आत्मस्वभाव पर पदार्थसे जुदा है, ठीक है, पर रागमयतो है। नहीं नहीं, परभावसे भी जुदा है . . ., ठीक है मगर ज्ञानमय तो है, जिन ज्ञानोंको हम जानते हैं। नहीं नहीं, वह छुपपुट ज्ञानरूप नहीं है, वह पूर्ण ज्ञानमय है। हाँ तो केवल ज्ञानमय है। नहीं नहीं, वह अनादि अनन्त है। वह सादि ज्ञान वाला नहीं है। हाँ ठीक समझ गए। वह है एक चैतन्यस्वरूप। कहो कि नहीं नहीं, अभी तुम नहीं समझे। जब तुम्हारे चित्तमें से 'वह है एक चैतन्यस्वरूप' ऐसा एक ना भी मिट जाय, ऐसी स्थिति आये तो समझो कि हां आत्मस्वभाव यह है। यह तो द्वैतसे हटकर अद्वैतमें जो ले जा जाया गया, वह द्वैतसे हटकर सहज तत्त्वका परिचय करनेके लिए है। यह तो अद्वैतको भी नहीं मानता अगर अनुभवमें पहुचा है तो। स्वानुभवमें चले तो एकके सिद्धान्तमें तो जीव कार्य है और एककी दृष्टिमें जीव कार्य नहीं हैं ऐसे दो नयपक्ष कहाँ?

७६०—विवादबीज नयपक्षसे अतिक्रान्त होनेमें ही परमसमाधान—

देखो कैसे जाने नयपक्षको? ऐसी चर्चामें अगर लड़ाईकी सम्भावना है तो समझो नयपक्ष है। क्या कहीं लड़ाई प्रमाणमें होती है? अनुभवमें तो लड़ाईका काम ही नहीं। जब कभी धर्मचर्चाके नाम पर लड़ाई होती है तो समझो कि सब नयपक्षमें पड़े हैं, नहीं तो स्वभावमें विवाद क्या? अनुभवमें विवाद क्या? और अनुभवके वर्णनमें विवाद है क्या? नहीं। और नयमें भी विवाद नहीं मगर उसकी शर्त है कि सापेक्ष हो तो विवाद है। कहीं पर धर्मके नाम पर जब लड़ाई हो रही हो तो समझो कि ये निष्पक्षनय वाले हैं, सापेक्षमें कहीं विवाद नहीं और अनुभवमें तो विवादका अवकाश ही नहीं, मगर समझोकि हमारे मनमें कषाय जगती, क्षोभ जगता, कोई एक लगावमें यह ठीक नहीं, यह गैर ठीक, यों कितने ही विवाद जगते तो समझो कि निरपेक्ष नय तत्व है और जो मार्ग बताया है आचार्य सन्तजनों ने उस मार्ग पर अनुभव चलें तो उसे बाधा भी नहीं और अपना निर्बाध कल्याण भी करेगा। हम अन्य अन्य प्रकार के तो व्यसन करें, पाप करें, झगड़ा करें, तीर्थविच्छेद करें, बड़ी तेज बात करें तो यह विषम स्थिति कैसे टलेगी ज्ञानी श्रावकजनों

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

की अथवा प्रमत्त अवस्था तक जो तीर्थ प्रवृत्ति है उसके अन्दर ही रहते हुए हम अपने स्वभावकी आराधना करके अपने आपको कल्याण मार्गमें आगे बढ़ावें । तो यहाँ ये दो पक्ष बताये गए । एककी दृष्टिमें जीव कार्य है, एककी दृष्टिमें जीव कार्य नहीं है, इन दोनों से अतिक्रान्त होकर स्वका अनुभव करना चाहिए ।

एकस्य भावो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वावति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युत पक्षपातस्तस्यास्ति नित्य खलु चिच्चिदेव ॥८०॥

७६२—वस्तु का चतुर्दृष्टियों से परिचय

वस्तु का परिचय ४ दृष्टियों से होता है—द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव । जैसे किसी एक वस्तुका कोई परिचय करा रहा हो मानो एक घडी का परिचय किया जा रहा है— घडी जो यह पिन्ड है, जो हाथ में लिए हुए है वह तो है द्रव्य और उसका जो घेर हैं, जितने में वह फैला हुई है वह प्रदेश है क्षेत्र और उसकी जो परिणति है, परिगमन है, पर्याय है नई पुरानी, मजबूत आदिक वह है काल और उसमें जो गुण है वह है भाव । तो ऐसे ही सबकी पहिचान होती है, यह तो एक दृष्टान्त बनाया गया हैं । पहिचान तो इस तरह होती जैसे आत्मा । आत्मा गुण पर्यायों का पिण्ड है । गुण पर्यायवान को द्रव्य कहते हैं । तो जो गुण हैं और पर्याय है उन सबका जो पिण्ड है वह है द्रव्य दृष्टि से आत्मा । क्षेत्र दृष्टि से आत्मा परखा जाता है- असंख्यात प्रदेशी है, देहाकार है, उतने में फैला हुआ है इसी तरह से काल दृष्टि से पहिचाना जाता है उसकी परिणतियाँ देख देख कर, क्या परिणतियाँ हो रही हैं, पुरानी, नवीन, खोटी, अच्छी, कषाय, अकषाय, यह काल से परिचय है । भाव दृष्टिसे परिचय होता है, यह ज्ञान गुण वाला, दर्शन गुण वाला, ऐसी ऐसी अनन्त शक्तियाँ हैं । तो इस कलश में बतला रहे हैं भाव दृष्टि से जीव को पहिचानना । तो एक नय दृष्टि में याने व्यवहार नयके मत में तो यह जीव भावस्वरूप है, चैतन्यस्वरूप ज्ञानस्वरूप अनंत शक्तिरूप । यह जीव भावस्वरूप है तो निश्चयनय के पक्ष में माना गया है कि "भावस्वरूप है ऐसा नहीं है" शुद्धनय से परन्तु आचार्य देव कहते हैं कि चेतन में यह दो पुरुषोंका दो प्रकार का नय पक्ष है । परन्तु जो तत्वज्ञानी जीव है, जिसने सर्व नयों से वस्तुका निर्णय करके प्रमाण से प्रमाणित कर एक अखण्ड तत्व को पहिचाना है ऐसा तत्वज्ञानी पुरुष पक्षपात से रहित हुआ करता है उसके लिए तो यह चेतन चित स्वरूप ही है ।

७६३—छह द्रव्योंमें छह चिन्होंकी प्रधानता—

यहाँ एक बात और परखना है कि सभी द्रव्यों का यद्यपि द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से परिचय है, साथ ही नाम और स्थापना से भी परिचय होता है तो वस्तु को समझने के लिए ६ उपाय होते है— नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, और इसमें किस मुख्यता से किस द्रव्य का पहिचान होती है, इसका समन्वय किया जाय तो द्रव्य से तो पुद्गल क्योंकि सुगमतया वह पिण्ड रूप जाना जाता है, क्षेत्र से आकाश, काल से काल द्रव्य, नाम से धर्म द्रव्य, क्योंकि नाम चलानेका हेतुभूत है व्यवहार चलने का, या कुछ भी आगे प्रसंग चलने का । जैसे नाम एक बीजभूत है ऐसे ही जीव पुद्गल के चलने का हेतूभूत धर्मद्रव्य है स्थापना से धर्म द्रव्य और भाव से यह आत्म द्रव्य समझ में आता है ।

७६४—भाव और नय के विकल्प से उन्मुक्त होकर चित्स्वरूप में स्वत्व के अनुभव का महत्व—

निश्चय नय का विषय क्या था ? आत्मा चैतन्य मात्र हैं चित्स्वरूप है, अभेद भाव में जायतो परमशुद्ध निश्चयनयका स्वरुप बनता है । वह भी एक कथन होनेसे व्यवहार । व्यवहारनयसे जीव भाव

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

स्वरूप है यह जाना गया किन्तु शुद्धनय नेतिको विषय करता है। जीव भावस्वरूप है ऐसा नहीं है, पर स्वानुभूति के लिए दोनों प्रकार के पक्ष बाधक हैं। जब भेद दृष्टि की कि जीव के भाव है तो व्यवहार नय का पक्ष जब तक रहेगा तब तक विकल्प होने के कारण तो स्वानुभूति की अवस्था नहीं बन पाती। और जब उसका निषेध किया जा रहा कि भावस्वरूप है ऐसा नहीं है तो इस निषेधके विकल्पमें भी स्वानुभूति नहीं बनाती। स्वानुभव उनके ही हो पाता है जो दोनों प्रकारके नय पक्षपात से रहित है। अब अपने आपमें अपनी बात समझना है कि हम विकल्पोंमें कितना समय व्यतीत किया करते हैं और उन विकल्पोंमें हम पौरुष क्या किया करते हैं ? किसी न किसी बाह्य आश्रयभूत वस्तुका आलम्बन लिया करते हैं और उस आलम्बनसे हम अपनेमें कितना विषय, इच्छा रूप बनाया करते हैं और दुःखी हुआ करते हैं। यहाँ जीवके खास परिचयका साधनभाव है और उस भावस्वरूपको ही व्यवहारनयका विकल्प बताया है और उसका निषेध करने वाला निश्चयनय अथवा शुद्धनयके विकल्पमें इसको भी स्वानुभूतिमें बाधक बताया है। तो भला जो बड़े खोटे-खोटे विकल्प उत्पन्न हुआ करते हैं उनका फल क्या होता है ? उनका फल है यही अनन्त संसार। संसारमें जन्म मरण करते रहना, दुर्गतियोंमें जन्म लेते रहना और कष्ट भोगते रहना, यह ही उन विकल्पोंका फल प्राप्त होता है। तो यह जानकर कि स्वानुभवही एक अमृत है, जीवकी रक्षा स्वानुभवमें ही है, स्वानुभव ही एक ऐसा बीज है मुक्तिका कि जिसके बिना सम्यग्दर्शन न हो सकेगा चारित्रका अंकुर और वृक्ष न बन सकेंगे और न मुक्ति प्राप्त हो सकेगी। वर्तमानमें भी जितने क्षण आत्मामें निर्लेप रूपमें अनुभव किया जा सकेगा उतने क्षण अद्भुत आनन्द मिलेगा। आत्मा तो स्वयं आनन्दस्वरूप है। विकल्पसे दुःख बन गया और विकल्प मिटा दिये जायें तो स्वयं सहज जो आनन्दस्वरूप है उसका लाभ हो जायगा। तो कर्तव्य हमारा यह है कि हम जगतके प्रत्येक पदार्थोंको स्वतंत्र परस्पर अत्यन्त भिन्न और स्वयं स्वयंकी परिणतिसे परिणमनेवाले हैं ऐसा निरखें और उनकी उपेक्षाका भाव रखते हुए अपने आत्माकी विशुद्ध स्थितिका मनन करें, स्वीकार करें कि यह ही मैं एक विशुद्ध चैतन्यस्वरूप हूं। अन्य कुछ नहीं हूं। इस आत्मप्रतीतिके बल से ही हम यहाँ शान्त रह सकेंगे और अगले भवोंके संकटोंसे छूट सकेंगे।

एकस्यचैकोन तथा परस्य चितिद्वयोर्द्वावितिं पक्षपातौ।
यस्तत्त्ववेदीच्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥८१॥

७६५—एक व एक निषेधके विकल्पसे अतीत शुद्ध चित्स्वरूपका दर्शन—

एक नयकी दृष्टिमें ज्ञात हो रहा है कि जीव एक है तो शुद्धनयकी दृष्टि में ज्ञात क्या हो रहा? जब कोई पूछता तब बताते कि वह तो एक है यह भी नहीं। नयकी दृष्टिमें "एक है ऐसा नहीं" यह विदित हुआ और व्यवहारनय पक्षमें यह जीव एक है ऐसा विदित हुआ किन्तु ये दोनों नय पक्षपात हैं। जो इन नयपक्षोंसे च्युत होता है जिसके स्वरूप दृष्टि होती है बस वह ही जानेगा कि वह तो चित्चित् ही है वह न एक का निषेध है, न नाना है, अब कुछ भी विकल्प वहाँ नहीं है। देखो जीवको पहिचानने की जो चार विधियां कही थीं उन्हें समझें। पिण्डदृष्टिसे जीवको देखो तो यह है गुणपर्यायोंका पिण्ड। जीव क्या है ? वह अमूर्त है, आँखों से नहीं दिखता इसलिए किसीको इस पर विश्वास नहीं हो रहा। हो तो दिखायें, अब दिखायें कैसे ? और सीधी सी बात जो यह कहते हो कि जीव नहीं है तो समझो जो जीवका निषेध करने वाला है वह ही तो जीव है। वह जीव न हो तो निषेधका विकल्प भी कैसे करें। जो मना करते कि मैं नहीं हूं तो ऐसी मनाही जहां उठ रही है वह ही तो जीव है। जीवको

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

समझनेके लिए कुछ अधिक परेशानी है नहीं और सुगम रीति से बताया है अहं प्रत्ययवेद्य। यह जीव अहंप्रत्ययवेद्य है, जिसमें मैं की समझ बन रही है वह ही तो जीव है। हर एक कोई सोचता है मैं। यह क्या यह मैं यह शरीर है ? शरीर तो यहीं पड़ा रहता और वह मैं इसे छोड़कर चला जाता। यह मैं मैं हूं, प्रत्येककों यह बोध है कि मैं हूं, पर यह सुधार करना है कि वह मैं क्या हूं, मैं यह क्या हूं, यहाँ सुधार करनेकी आवश्यकता हुई, मैं हूं ऐसा ज्ञान सबको चल रहा है। अगर उस हूँ का बोध न हो तो जीव सुख दुख नहीं पा सकता। तो उस हूं का ज्ञान सबको हैं पर मैं क्या हूँ, बस इसके निर्णयकी तारीफ है कि कोई संसारमें रुलता है कोइ मुक्तिमार्गमें चलता है। अपना सहज ज्ञानस्वरूप, चैतन्यस्वरूप याने अपने आप परके संबंध बिना परकी अपेक्षा बिना अपने आप स्वयं जो कुछ है सत्त्वमें, उसरूप कोई मानले कि मैं यह हूं वह इस भावमें भी आनन्दमें रहेगा, भविष्य में भी आनन्दमें रहेगा, शाश्वत आनन्द पालेगा।

७६७—आत्माके पारमैश्वर्यकी एक मोटी झांकी —

हूँ का निर्णय पूर्ण एक जिम्मेदार निर्णय है, यहाँ की भूलमें उल्टा खेल बन रहा है' अपनी सही सुधमें उसको सही मार्ग मिल जाता है। जैसे इस जीवको ईश्वर कहते हैं, सचमुच यह अपनी सृष्टि करनेमें समर्थ है ईश्वर उसीका नाम है जो अपनी सृष्टियां करनेमें स्वतंत्र है। अच्छा तो अब यह "ईश्वर देखो इसमे कितना परम ऐश्वर्य हैं। यदि यह बिगड़ जाये तो भी अपना चमत्कार दिखाता है और अगर यह सुधर गया तबतो फिर इसके चमत्कार का कहनाही क्या ? भला बतलाओ यह कोई कम बात है क्या, कि यह कभी पेड़ बन गया तो नाना प्रकारके फूल पत्तियों रूप फैल गया ऐसे नसजाल हो गए, ऐसी ऐसी शाखायें हो गई, ये सब बातें बन गई अथवा और और चीजें कीडा मकौडा बने, अनेक प्रकार के जो परिवर्तन बनते है, देह बनते हैं, और और भी बन रहे है तो यह सब क्या है ? यह सब उस बिगड़े हुए ईश्वर की करामात है, यह भी कोई कम करामात है क्या ? यहाँ कोई वेज्ञानिक बिना जीवके पेड़ खडा करके तो दिखा दे। और तो जाने दो पसीना, मल, मूत्र भी तो बना सकते। तो यह बिगडी लीलाकी बात है। बिगड गया तो यह कला है और सुधर गया तो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र की कला है। अभी यहीं कोई बडा आदमी बिगड जाये तो वह अद्भुत काम कर ही डालेगा। जो लोग कहते हैं कि ईश्वरका जाल है तो वह सब सच है। झूठ नहीं बोलो। मगर वे नय तो बता दें कि किस दृष्टिसे वे यह बात कह रहे हैं। तो देखलो यह बिगड़े हुए उस ईश्वरका जाल है ऐसा उन्होंने समझा मगर यह है बिगड़े हुए अनन्त ईश्वरों का जाल। बिगड़ गया तो भी इसको अद्भुत लीला है और सुधर गया तो भी इसकी अद्भुत लीला है। इसमें पारमैश्वर्य है। देखो जो कुछ है वह सब यहाँके निर्णय पर चल रहा है। यहाँके विचार पर। यहाँके विचार परकथन यों पढ़ा था वेदान्त की जागदीशी टीकामें कि एक पुरूष भीषण गर्मीके दिनोंमें कहीं जा रहा था। बडी कड़ाके की धूप थी। उसके मनमें आया कि यदि कहीं छाया मिलती तो बडा अच्छा होता तो कुछ ही दूर पहुंचने पर उसे एक छायादार पेड मिला। वह पेड़ था कि कल्पवृक्ष। उस कल्पवृक्ष के नीचे वह बैठ गया। वहाँ वह पुरूष विचार करता है। कि छायादार पेड़ तो मिल गया। अब यदि तेज हवा चलती तो बड़ा अच्छा होता। तो तेज हवा भी चल गई। वह कल्पवृक्ष था, उसके नीचे बैटकर जो सोचे सो हो। फिर सोचा कि हवा तो चल गई अब तो यदि पीनेको कहीं पानी मिलता तो कितना अच्छा होता। तो एक लोटा पानी भी सामने

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हाजिर हो गया। पानी पीकर वह पुरुष विचार करता है कि पानीतो मिल गया अब तो यदि कुछ फल फूल मिलते तो बड़ा अच्छा होता। तो थाल में सजे हुए फल भी सामने हाजिर हो गए। उन्हें खाकर वह सोचने लगा कि यह सब क्या हो रहा है? कहीं कोई भूततो नहीं है जो यह सब कामकर रहाहो। तो उसके सामने भूतही हाजिर हो गया। फिर सोचा अरे यह भूत कहीं हमें खा न जायेतो लो खा भी गया, तो जैसे कल्पवृक्षके नीचे बैठकर उसने भला बुरा जो जैसा विचारा वैसा हुआ। ऐसेही यह आत्मस्वरूप भी एक कल्पवृक्ष है, यह भला विचारे तो भला होगा, बुरा विचारे तो बुरा होगा।

७६७—जीवभावोंका प्रासंगिक विश्लेषण—

देखिये मिथ्यात्व नाम किसका? रागमें राग होनेका नाम है मिथ्यात्व। राग होनेका नाम मिथ्यात्व नहीं, रागतो ज्ञानी के भी चलता, १०वें गुणस्थान तक चलता मगर रागमें राग बनना यह है मिथ्यात्व। मोहमें और रागमें अन्तर क्या है। ऊपरसे देखोतो एकसी क्रिया लग रही। ज्ञानीके भी राग है और अज्ञानी के भी मगर इन दोनों में फर्क यह है कि ज्ञानी पुरुष के उस रागमें राग नहीं है और अज्ञानी पुरुषके उस रागमें राग है। अज्ञानी पुरुषतो उस रागमें लगना चाहता और ज्ञानी पुरुष उस रागसे हटना चाहता। कहीं ऐसा नहीं है कि उस रागका प्रभाव अज्ञानी परतो हो रहा और ज्ञानी पर नहीं। प्रभाव ज्ञानी पर भी होता, ज्ञानी पुरुषभी उस रागमें क्षुब्धहो जाता मगर भीतरमें वह सावधान है, वह उस रागमें फसना नहीं चाहता। उस रागको वह अपनाना नहीं चाहता। इसलिए उस ज्ञानीके निरन्तर धर्मरूप निर्जरा है। जीवमें एक समयमें एक ही तो पर्याय है, मानो वह पर्याय ऐसी जगहमें आगई कि १००अंशोंमें ६० अंश राग नहीं रहा ४० अंश राग है ऐसी स्थितिपर वह पहुंच गया। तो वह परिणाम तो एक है वह एक ही परिणाम आश्रव, बंध, सम्बर, निर्जरा चारोंका हेतुभूत बनता है, मगर जितने अंशमें राग नहीं है उतनी कलाके कारणतो सम्वर निर्जरा चल रही है, जितने में राग है उतनी कलाके कारण आश्रव बंध चलता है। परिणाम एक है, ज्ञानीका शुभोपयोग ऐसा नहीं हैं कि केवल शुभ ही शुभ है वहां शुद्धोपयोग अंश नहीं। आँशिक शुद्धोपयोग साथ चला है मगर मुख्यताकी अपेक्षा छठे गुणस्थान तकके जीवों को शुभोपयोगी कहा गया है। तीसरे गुणस्थान तक अशुभोपयोग नाम दिया है, छठे गुणस्थान तक शुभोपयोग नाम दिया है। यहां यद्यपि शुद्धोपयोगका अंश प्रकट है तो भी मुख्यता शुभोपयोगकी है। यह कोई न जाने कि जो शुभोपयोगका परिणाम है उसे सम्वर, निर्जरा, आश्रव, बंध कैसे है क्योंकि वह शुभोपयोग है तो शुद्धोपयोग आँशिक लिए हुए है। यह तो नाम धरनेकी बात है। शुद्धोपयोगही नाम धर दे उसे तो वहां बड़ी गड़बड़ी चलेगी देखो ऐसा होता है कि जहाँ दोष अधिक होता है और गुण वाला नाम धरा जाता है गुणवाला नहीं तो शुभोपयोग में छठे गुणस्थानकी मुख्यता होनेका नाम तो धरा शुभोपयोग। अब विवाद लोग करते हैं तो शब्दपर विवाद कर बैठते हैं कि कहीं शुभोपयोग सम्बर निर्जराका कारण है, पर यह नहीं जानता कि उस शुभोपयोगमें भी शुद्धता बसी हुई है। उस शुद्धताके कारण सम्वर निर्जरा है। जितना शुद्धोपयोगका अंश है उसके कारण सम्वर निर्जरा है। नामसे विवाद न करें। शब्द है, उसका रहस्य समझना चाहिए। रागसे कहीं सम्वर निर्जरा नहीं होती। सम्वर निर्जरा होती है ज्ञान वैराग्यसे मगर वह शुभोपयोग उस पदका है कि जहाँ ज्ञान वैराग्य है और राग भी साथ है। नाम तो एक ही रखा जायगा। राग और मोहका अन्तर बताया ही था कि कोई रईस बीमार हो गया तो उसके आरामके लिए बड़े-बड़े साधन जुटाये जाते, डाक्टर समय पर दवा देता, समय-समय पर वह दवा खाता, उस दवासे उसे बड़ा राग है क्योंकि

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

दवा मिलनेमें देर हो जाय तो वह खूब झुझलाता मगर वह रईस चाहता है क्या कि मुझे जिन्दगी भर ऐसी ही औषधि मिलती रहे ? नहीं चाहता । उससे पूछो तो वह तो यही कहेगा कि मैं दवा इसलिए पीता कि जल्दी ही दवा पीना छूट जाय । तो देखो दवामें राग होते हुए भी उस रागमें राग नहीं है कि मुझे ऐसी दवा जिन्दगी भर मिलती रहे। ज्ञानीके राग होते हुए भी रागमें राग नहीं है कि ऐसी सम्पदा ऐसा वैभव, ऐसी चीज हमें सदा मिलती रहे, जबकि मोही जीवके चित्तमें यह बात बसी हैं कि इससे बढ़कर और ठाठ क्या है ।

७६८—मुक्तिकी प्रतीक्षामें सन्मार्गका दर्शन—

एक आदमी रोज रोज भगवानसे प्रार्थना करता कि हे भगवान मुझे मुक्ति दे । मोक्ष दे । तो एक दिन मानो कोई देव आया और कहा चलो हम तुम्हें मुक्ति दिला दें । तो वह पुरुष बोला बड़ी अच्छी बात है, हम तो मुक्ति चाहते ही हैं, चलो दिलावो मुक्ति । मगर यह तो बताओ कि उस मुक्तिमें धन वैभव भी है क्या ? · · · नहीं, स्त्री पुत्रादिक परिजन भी हैं क्या ? · · · नहीं ? चाय पानी वगैरह खाने पीनेकी सब चीजे हैं कि नहीं ? · · · नहीं । · · · तो फिर नहीं चाहिए हमें ऐसी मुक्ति । इस मोक्षकी अंदरूनी चाह किसके है ? कोई सोचे कि स्वर्गसे भी अधिक आनन्द मुक्तिमें है तो ठीक है, स्वर्गका आनन्द तो सबने सुन रखा है । मगर उससे भी अधिक आनन्द मोक्षमें है, यह बात सुनकर भला ऐसा कौन होगा जिसे मोक्षकी चाह न होगी । मोक्ष तत्त्वके श्रद्धानमें बताया है शिवरूप निराकुलता न जोय याने जो मोक्ष शिवस्वरूप है, निराकुलता रूप है उसकी जो बाट नहीं जोहता वह अज्ञानी है, आपको मानो किसीसे बड़ा राग है, उसने आपसे कह दिया कि हम कल ८ बजे सुबह आपसे मिलेंगे । अब आप दूसरे दिन उसका इन्तजार सबेरे सबेरेसे ही करने लगते । जब ८ बजते समय तक वह नहीं मिल पाता तो आप बड़ा विषाद मानते । तो ऐसी ही मोक्षकी भी बात जोहनी होगी : तत्त्वज्ञानी पुरुषको मोक्ष ही रुचता है, दूसरा कुछ न रुचेगा तो फिर मोक्षमार्गमें चलने वाले लोग रुचेंगे, मोक्ष-मार्गकी सारी बात रुचेगी । तो रागमें राग नहीं ।

७६९—एककी कल्पनामें स्वाभावानुभवका तिरोभाव—

अच्छा सब जान लिया । यह राग विभाव है, राग परभाव है, राग मेरा स्वरूप नहीं, विचार विकल्प ये भी मेरे स्वरूप नहीं । जान गए, वह चैतन्य स्वरूप जो है सो एक है, चैतन्यस्वरूप है और वह एक है ऐसा जो बोध कर रहा बताओ कुछ बिगाड़ कर रहा क्या ? वह चित्स्वरूप एक है, नाना नहीं । नानामें तो उसने पर्याय तकी, तब ही तो कहेंगे कि नाना है मगर वह तो अखण्ड स्वभाव तक रहा । उसे देखकर कह रहा है कि एक है, मगर ऐसा एक माननेमें एक बिगाड़ क्या आया ? उस एक के माननेमें उसका एक व्यक्तिपना आ गया, मायने एक सीमा आ गई । एककी तो सीमा होती है, एक इतनेमें है, एक इतनी जगहमें है, यों सीमा आयी कि नहीं ? तो आत्माका अखण्ड स्वभाव एक है । जैसे कहते हैं कि यह निश्चयनयका विषय है, अरे वह व्यवहारनयका विषय है । आत्मा एक है । तो जहाँ एकके रूपमें जाना वहाँ उसकी सीमा बँध गई । यह मैं एक हूं, एक जहाँ जाना वहाँ क्षेत्र दृष्टि प्रबल बन गई । मैं अकेला एक । तो एकके जाननेमें इतना जाना गया कि इतने लम्बे चौड़े में रहने वाला वह एक । ऐसे ही जीव एक । ऐसा एक जाननके समयमें अखण्डस्वका अनुभव बन रहा क्या ? स्वानुभूति हो रही क्या ? नहीं हो रही । तो एक नहीं एक है, ऐसा नयपक्षमें बोलते । आत्माके अखण्ड स्वभावको निरखकर भी एक है ऐसा बोलना यह भी व्यवहारनयसे बना । तो शुद्धनयमें क्या है ? एक है ऐसा भी नहीं, तब

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ही तो वह स्वभावमें उतरेगा। जब तक उस स्वभावके प्रति एक है इस तरहकी सीमा बाँधेंगे तब तक वह स्वानुभूतिमें न उतरेगा और जब वह एकको भी मना करेगा तो वह स्वानुभूतिमें उतर रहा याने कितना निकटका परिवर्तन जरा चलो, जरा देखो तो सही। तो जो नेति सोच रहा, वह निकट पहुंच रहा, मगर उस कालमें स्वानुभूति नहीं। एक है यह भी पक्ष छूटे, एक नहीं है यह भी पक्ष छूटे तो वहाँ तत्त्ववेदी जानता है कि वह तो चित् चित् ही है। कैसा निकल करके कैसा अन्दरमें प्रवेश कर रहा।

७७०— बाहरसे आकर अन्तः प्रवेशमें निकट निकटतर व निकटतम कदम—

मानलो तुम्हारे इस खण्डवा शहर का ही कोई भाई अमेरिकामें रह रहा है। जब वह वहाँसे रवाना होता है तो कोई पूछता कि भाई कहाँ जा रहे हो? तो वह कहता एशिया जा रहे। जब एशिया के निकट आया वहां किसी ने पूछा कहाँ जा रहे? तो वह कहता इण्डिया, जब इण्डियाके किनारे आया, कहाँ जा रहे? बम्बई। जब बम्बई आया . . . कहाँ जा रहे? . . . . खण्डवा, जब खण्डवा आया, कहाँ जा रहे? . . . रामगंज मोहल्ला, जब रामगंज मोहल्लामें आया, . . . कहाँ जा रहे? . . . अमुकनम्बरके मकानमें। वहाँ पहुचकर अपने आरामके कमरेमें बैठकर विश्राम करता है, तो देखिये जैसे उसने घर आनेका लक्ष्य बनाया तो निकट निकटमें सब बातें आयीं, ऐसे ही मुक्तिके निकट पहुचनेका जिसने लक्ष्य बनाया उसके सामने भी निकट-निकटकी बातें गुजरेंगी। गुजरने की बातें तो अनेक हैं मगर लक्ष्य उसका एक है। जैसे उस पुरुषने अमेरिकासे घर आनेका लक्ष्य बनाया तो पहले घरके लिए पत्र दिया, टिकिट रिजर्व कराया . . . लक्ष्य तो एक है मगर गुजरा कहाँ कहाँ से। गुजरे बिना तो नहीं आता। तो यही चीज यहाँ है मुक्तिके मार्गमें। जिसने मुक्तिका लक्ष्य बनाया उसके सामने श्रावक धर्म, मुनि धर्मकी सब बातें आयेंगी, इनसे गुजरे बिना कोई पार नहीं पाता, यह निश्चित है, मगर जो गुजरने वाला है उसका लक्ष्य पहलेसे वह ही है, जो आनन्दधाम है। अब देखो उपचारसे हटा, व्यवहारमें आया सैकड़ों तरहके व्यवहारनय भी रोका धीरे-धीरे चलते-चलते वहाँसे पार हुआ, फिर निश्चयनयमें आया। निश्चयमें भी व्यवहार पड़ा है। अशुद्ध निश्चयव्यवहार, शुद्धनिश्चयव्यवहार। और व्यवहारके जो चार प्रकार हैं सद्भूत व्यवहार, उपचरित व्यवहार, उपचरित सद्भूत व्यवहार, अनुपचरित असद्भूत व्यवहार, ये भी व्यवहारनय हैं। उपचार नहीं है। नाम भले ही उपचरित पड़ा है, मगर नाम तो उपचरित उपचार है, जैसे अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय। इसका विषय क्या है? वह रागभाव है। बुद्धिमें नहीं आ रहा वह अनुपचरित असद्भूत। कौन सा राग? अबुद्धिपूर्वक राग। श्रेणीमें रहने वाले मुनियों का राग भी अबुद्धिपूर्वक है सो अनुपचरित असद्भूत। और उपचरित असद्भूत जो बिल्कुल कंडम है, वह बुद्धिपूर्वक राग यह जीवका है, ऐसा बोले तो उपचरित असद्भूतने भी निश्चयनयसे सम्बन्ध रख लिया। . . . कैसे? . . . अशुद्धनिश्चयनय भी यह ही कहता है कि राग जीवका है। एक द्रव्यको देखकर बोलता और उपचरित असद्भूत ने भी यह ही कहा कि जीवका राग है मगर नाम यहाँ क्यों धर दिया? उपचरित कारणके विषयमें आया इसलिए तो उपचरित है, जीवका स्वभाव नहीं है, इसलिए असद्भूत है और बोलकर बता रहे इसलिए व्यवहार है। तो अब आप समझिये कि कितनी ही खाड़ियाँ पार करके कहाँ आना पड़ा? नेति, ऐसा विषय करनेवाले शुद्धनयमें, जिसके बाद एकदम डुबकी लगाकर रह जाना है, स्वानुभूतिके निकटका कोई विकल्प है तो शुद्धनय विकल्प है जिसके बाद विकल्प रहे, स्वानुभूतिमें प्रवेश करे। एक नयकी दृष्टिमें जीव एक है, शुद्धनयकी दृष्टिमें जीव एक है ऐसा नहीं है. ऐसा विधि और निषेध दोनों विकल्पों से अतिक्रान्त होकर तत्त्ववेदी जो है उसके लिए तो चित्-चित् ही है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

एकस्य सान्तो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वावितिं पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥८२॥

७७०—सान्तत्व व सान्तत्वके निबंधके विकल्पसे अतीत चित्त्वका वर्णन—

एककी दृष्टिमें तो जीव सान्त है, अन्त सहित हैं और एककी दृष्टिमें सान्त है ऐसा नहीं है। ये दोनों पक्षपात है, किन्तु तत्ववेदी दोनोंसे रहित होकर रहता है तो उसके लिए तो चित् चित् ही है। जीव अन्तसहित है। यह व्यवहारनयने दिखाया। असत्य बात नहीं कही जा रही। पर्यायार्थिक दृष्टिमें पर्याय प्रति समय है। जब जिस पर्यायमें है उसी पर्यायमय ही तो है। "परिणमदि जेण दव्वं तक्कालं तम्मयति पण्णत"। धर्मसे परिणति हुई तो धर्ममय है, रागसे परिणत हुआ तो रागमय हैं, अशुभोपोगसे परिणत हुआ तो अशुभोपयोगमय है। जिस कालमें जिस पर्यायसे परिणमा द्रव्य तन्मय है, तो बिल्कुल भिन्न प्रदेश हों, पर्याय सहित नही हों, वे अपनी स्वतंत्र सत्ता रख रहे हों, द्रव्य अपनी स्वतंत्र सत्ता रख रहा हो ऐसा नही है। द्रव्य है उसकी ही एक ऐसी हालत है। तो पर्यायार्थिकनयसे देखा कि जीव यह है। अब दूसरी पर्याय दिख रही तो कहा कि वह जीव मिट गया। ऐसी एक दृष्टि है इसीसे क्षणिक एकान्तवाद बना है। और कहते भी हैं कि आज हमारा कोई बड़ा मित्र है और कलके दिन कोई ऐसा योग बनें कि वह विकट शत्रु बन जाए तो उसे कहते है कि देखो अब वह नहीं रहा। अरे कोई मरा थोड़े ही है मगर कहते हैं कि अब वह नहीं रहा। पहले कोई अगर बड़ा सदाचारी हो और पीछे वह हो जाए व्यसनी, दुराचारी, तो लोग कहते हैं कि अब तो उसकी चर्चा ही छोड़ दो, अब वह रहा ही नहीं। अरे रहा कैसे नहीं। अभी वह मरा तो नहीं, मगर उसकी परिणतिको देख कर ऐसा कहा जाता। तो पर्यायको देखकर अगर कहा जाए तो कहेंगे कि वह अन्तसहित है। मोक्षमार्गमें चलते चलते जब वह मुक्त हो गया तो अब वह संसारी जीव न रहा। संसार अवस्थाको देखकर नामी जीव माना जा रहा था अब वह नहीं रहा। कोई पहले बहुत बड़ा दोस्त हो और अब वह त्योरी बदल दे तो उसे कहते हैं कि अब वह कुछ नहीं रहा। अब तो वह और हो गया। एक दृष्टि ऐसी है जिसमें कहा जाता कि जीव सान्त है, स्वभाव दृष्टिसे देखे, अवस्थाकी दृष्टिसे देखे, जीव सदा रहने वाला है। ऐसे दो नयोंकी दृष्टिमें दो पक्ष हैं। मगर जो तत्ववेदी है याने जो स्वानुभवमें आये उसे कहते है वेदी, समझदार। जैसे यहाँ बोलते ना कि जो आदमी बहुत बड़ी उमरका हो गया, जो सुख दुख बाल बच्चोंका प्रबंध आदिक सब भुगत चुका तो उसे लोग कहते है कि समझदार तो यह है। भुगत चुका मायने अनुभव कर चुका ऐसे ही जो स्वानुभव भुगत चुका, बुद्धिमान तो वह है। भुगत चुका मायने अनुभव कर चुका। भुगत चुका यह शब्द तो लोग बुरा समझते हैं। तत्ववेदी वह है जो स्वानुभूति पा सका। वह स्वभाव केवल बातों बातोंमें नहीं जाना जाता है। तो यहाँ उस लक्षणको देखकर कह रहे कि यह जीव सान्त है शुद्धनयसे देखा तो सांत नहीं हैं। ऐसा एक चेतनमें दो नयोंके पक्ष हैं जो तत्ववेदी है वह दोनों पक्षपात से रहित है। अतः वह पूर्ण समाधान रूप है। निश्चयसे चित्त चित्त ही है। चिदस्मि कहते हैं ना ? इस चिदस्मि शब्दमें दो शब्द हैं चित्त और अस्मि। जिसका अर्थ है चित् मायने चेतन और अस्मि मायने हूं याने मैं चेतन हूँ। देखिये मुझे मैं बोलना कम पसंद है और हूँ, ऐसा बोलनेकी आदत है। तो देखो इस हूँ में ही सब आ गया। इस हूँ के साथ मैं स्वय आ गया। मैं के बिना हूं नहीं आता। जैसे अन्तस्तत्व देख देखकर बोलते हो ॐ शुद्धं चिदस्मि याने मैं हूँ शुद्ध, चैतन्यरूप हूँ। तो तत्ववेदीकी दृष्टिमें चित चित ही है अन्यरूप नहीं।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

एकस्य नित्यो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वावपि पक्षपातौ ।
यस्तत्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ।८३।

७७१— नित्यत्व व नित्यत्वके निषेधके विकल्पसे अतीत चित्तत्वका वर्णन—

एक नयकी दृष्टिमें तो जीव नित्य है तो एक नयमें जीव नित्य है ऐसा नहीं है । देखो यहाँ एक नयकी दृष्टिसे नित्य है तो दूसरे नयकी दृष्टिसे नित्य नहीं है मायने अनित्य है, ऐसा अर्थ न लेना देखो एक मूड़ की बात होती है । याने आप परखें कि इस तत्व वेदीका मूड कैसा है । नय दो बन गए । एक कहता है कि नित्य है ऐसा नहीं हैं मायने अनित्य है यह अर्थ न लेना । ये दो पक्ष नहीं हैं यहाँ । अनित्य है वह तो आ गया सान्तमें मगर यहाँ देखो शुद्धनय और व्यवहारनय दो की बात । व्यवहारसे देखो तो मालूम पड़ा कि जीव नित्य है । लोग पसंद करते हैं कि निश्चयनयसे जीव नित्य है । जब व्यवहारनयसे अनित्य कहा जा रहा तो निश्चयनयसे नित्य है यह सही है और जब व्यवहारनयसे नित्य है ऐसा कहा जा रहा तो शुद्धनयसे "नित्य है ऐसा नहीं हैं" इतना जाना । अब दृष्टियोसे देखें तो मालूम पड़ जायगा । "नित्य है ऐसा देखने पर यह मूडमें आया कि आत्मा सदा रहेगा, त्रिकाल रहेगा ऐसा जीव है । भला ऐसा सोचते हुए किसीको स्वानुभव हुआ है क्या ? अच्छा, क्योंकि उसने तो तीन कालपर दृष्टि डाली, सदा रहेगा । इतना बड़ा, तीनों कालोंमें व्यापक, जैसा इसने एक विकल्प बनाया वह तत्ववेदी अभी नहीं हो रहा । जो स्वानुभवके अत्यन्त निकट है, अभी नहीं बन रहा । तो जब शुद्धनयसे देखा तो शुद्धनयमें अनित्य है, इसकी तो चर्चा ही नहीं है, वह तो किसी दर्जेका व्यवहार है । उस व्यवहारको पार करके फिर नित्य है के व्यवहारमें आया । वह यों दिख रहा है, जब उसने स्वभावका स्पर्श किया, स्वभावके निकट आ रहा है तो वह स्वभावकी ओर आ रहा । द्रव्य इतना बड़ा, इतना व्यापक, इतना बोझ अपनेमें न लादेगा क्योंकि उसे तो निर्विकल्प तत्वमें जाना है । तीं वह "नेति" यह नित्य है ऐसा नहीं । यह है एक शुद्धनय का विषय । मगर जो ज्ञानी जीव है वह दोनों विकल्पों से अतिक्रान्त होकर कुछ ऐसी स्थिति में है कि वह जानता है चित् चित् कि ही हैं । आप अमृत तत्व का पान करें

७७२ मंगल, लोकोत्तम, शरण्य आश्रेय तत्व—

बात तो चली थी कुछ थोड़ी गहरी मगर उससे प्रयोजन यह निकालें कि हमको ऐसे शान्ति धाममें पहूंचनेका काम पड़ा है जिसको छोड़कर और कोई हमारे लिए शरण नही, आश्रयके योग्य नहीं । कहाँ हम अपना उपयोग लगायें, कहाँ हम ज्ञान करें कि जो हमारे लिए हितरूप हो । ऐसा कोई तत्व है वह तत्व बाहर कहीं नहीं पड़ा है, खुद ही में पड़ा है । जैसे दूध में घी जान सके तो जान ले और निकाल सके तो निकाल, ले, ऐसे ही इस जीव में वह सहज परमात्मतत्व जान सके ती जान लेवे, प्रकट कर सके तो प्रकट लेबे ? बाहर कहीं भटकना नहीं है कि मैं इसकी शरणग गहूं, इसकी शरण और बाहर में व्यवहार में कहीं शरण होता भी है, वह इस प्रयोजन के लिए । पंच पंचपरमेष्ठी व्यवहार में शरण है, वह इस प्रयोजन के लिए शरण हैंतब ही तो देखो जबचत्तारि दंडक पढ़ते हें तो उसमें बोलते हैं कि चार मंगल हैं, लोकोत्तम हैं मैं चारकीशरणकोप्राप्त होता हूं । कौन-कौन ? अरहंत, सिद्ध, साधु और केवली भगवान द्वारा प्रणीत धर्म । ठीक है, अरंहत और सिद्ध तो मंगल होने ही चाहिए क्योंकि वे कर्मबन्धन से रहित है अब तीसरे जो साधु हैं, जिनके अन्तस्तत्व की साधना की धुन बनी है, शरीर मात्र जिनका परिग्रह रह गया है ।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ऐसे जो अंतस्तत्व के रुचिया हैं सो ठीक है वे भी मंगलरूप हैं, मगर इतनी बात सुनकर अभी इस अनुभवी संत को संतोष नहीं होता, उसे सन्तोष होता यहाँ केवलि पण्णत्तो धम्मो मँगलं–केवली भगवान द्वारा कहा गया जो धर्म है वह मंगल है, यह भी एक संकेत हैं, लेना क्या है ? आत्मा का स्वरूप । बस उसका आश्रय, मगल हैं, लोकोत्तम है । वह शरण है इसके मायने यह नहीं हैं कि उन तीनों का अनादर है, मगर वह तीन की पूजा क्यों ? तीन का आदर क्यों ? वह इस ही तत्व के आधार पर है । जैसे मानलो किसी की ससुराल है दूसरे गांव में और स्त्री भी बहुत दिनों से ससुराल में है । अब उस ससुराल के गाँव के कोई दो चार आदमी आ जायें जिनसे इसकी कोई रिस्तेदारी नहीं, मगर उन लोगों को भी वह आदर के साथ बैठाता है, खिलाता पिलाता है उनकी खातिरी करता है, फिर उनसे धीरे से अपनी ससुराल के घर के सब हालचाल पूछता है । सबसे कुशलता पूछता है । ससुराल के जिन जिन पर उसकी आँख लगी है उनके हाल पूछता है । तो उनकी वह खातिरी किसको खातिरी है ? ससुराल वालों की । ऐसे ही समझो कि जिसका स्वरूप साम्य है ऐसे अरहंत सिद्ध परमेष्ठी, इनका आदर किसलिए है ? इसलिए कि अपने में बसा हुआ जो सहज परमात्मत्व है उसकी बात ज्ञात हो । जो शुद्ध नय का विषय है वह तो ऐसा है कि जिसके प्राप्त होने पर फिर कुछ करने को नहीं होता, मगर जब तक नहीं प्राप्त है तब तक ये मन वचन कायम की प्रवृत्ति तो करेंगे ही । तब हमको कहाँ कैसे चलना चाहिये यह सिखाता है चरणानुयोग । अगर चरणानुयोग की अवहेलना करके हम चलें तो इतनी अटपट बात होगी कि जो फिट न बैठ सकेगी, अतः चरणानुयोग शास्त्रों का हमारा प्रयोग विधिसे खास सम्बन्ध है

एकस्य वाच्यो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्ववेदीच्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥

७७३ वाच्यता व अवाच्यता को जान कर विकल्प से अतिक्रान्त होने में परम विश्राम—॥८४॥

व्यवहारनयकी दृष्टि में यह आत्मा वाच्य है अर्थात् वचन गोचर हैं । वचनों द्वारा इस आत्मतत्व की चर्चा हुआ करती है, और उन चर्चाओं से यह दूसरों को सम्बोधन करता है तो निश्चयनय की दृष्टि में आत्मा वाच्य नहीं है क्योंकि निश्चयनय अथवा शुद्धनय एक अनादि अनन्त अहेतुक अखण्ड चैतन्य स्वभाव को विषय करता है और उसको उसी रूप में बता सकने वाला कोई भी शब्द नहीं है । अतः आत्मा अवाच्य है, इस तरह चेतनमें दो नयों की दृष्टि में दोनों ही पक्षपात हैं । जो तत्व वेदी पुरुष है वह समस्त पक्षपातों से हटता हुआ है इसी कारण उसके ज्ञान में तो यह चेतन नित्य मात्र चैतन्यमात्र ही है । जितने शब्द होते हैं वे पदार्थों की विशेषतायें बताया करते हैं क्योंकि शब्द धातुओं से बनता है और धातुओंका अपना अपना एक अर्थ है तो शब्द कोई एक विशेषता को कहता है । वह समग्र वस्तु को नहीं कहता तो भले ही कोई शब्द एक विशेषता को कहता है मगर जानने परखने वाला उस शब्द के द्वारा पदार्थ का ज्ञान कर लेता है । फिर व्यवहारनय से ये शब्द वस्तु के स्वरूप का प्रतिपादन करने वाले हुए । भले ही वहाँ एक ही विशेषता से जाने किंतु वे शब्द जितने हैं वे सब विशेषण रूप होते हैं । किसी पदार्थ का शुद्धनाम रूप कोई शब्द नहीं हो सकता । जैसे एक आत्मा के बारे में किसी शब्द से बोलें तो उन शब्दों से पूर्ण अखण्ड आत्मा वाच्य न बनेगा । जैसे आत्मा ही कहा तो आत्मा का अर्थ है अतति सततं गच्छति इति आत्मा, जो निरन्तर जाने उसे आत्मा कहते हैं । तो आत्मा की एक निरन्तर जाननपन की

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

विशेषता ही तो कही गई आत्मा शब्द में इसके अतिरिक्त और भी विशेषतायें हैं वे शब्द में नहीं आयीं। जीव कहा तो जो प्राणों से जीव सो जीव। एक विशेषता ही तो बतायी गई। इसी तरह जितने भी शब्द है वे पदार्थकी कोई न कोई विशेषता बताते हैं, व्यवहार नय उन विशेषताओं के कथन से वस्तुको दिखता है किंतु निश्चयनयके मतमें अखण्ड तत्त्व शब्दों द्वारा न आनेके कारण वस्तु अवाच्य है। अब वस्तु वाच्य है इस ढगसे भी समझना चाहिये। वस्तु अवाच्य है इस ढंगसे भी समझना चाहिये और सर्व कुछ समझकर उन सब पक्षोंको छोड़ देना चाहिये, क्योंकि समझनेका फल है परम विश्राम।

७७५—मुक्तिका मार्ग आत्मपरमविश्राम—

किसलिए जानन चेष्टा होती है ? परम विश्रामके लिए। तो परम विश्राम पक्षपातोंके त्यागमें है। तो जो तत्त्व–वेदी है वह समस्त पक्षपातोंको छोड़ देता है। अब उसके चित्तमें जब कुछ विकल्प ही न रहा, न व्यवहारनयका विकल्प न निश्चयनयका विकल्प। तो ऐसी अविकल्प भूमिमें सहज परमात्मतत्त्वका अनुभव जग जायगा। इस अनुभवके जगे बाद जब यह जीव विकल्पोंमें आता है तो वह सोचता है और दूसरोंको बताता है कि चेतन तो निश्चयसे चैतन्यमात्र ही है। इस प्रकार वाच्य अवाच्यके विकल्पोंसे छूटकर यह तत्त्व वेदी निज सहज ज्ञानमात्र निज अंतस्तत्त्वके अनुभवमें आ रहा है। इस अनुभवमें परम आनन्द अमृतका पान होता है, जिसके कारण भव—भवमें बाँध हुए कर्म कटते हैं और मोक्षमार्गमें बढ़ता है, जिससे निकट कालमें ही संसारके समस्त संकटोंसे मुक्ति पा लेगा।

एकस्य नाना न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वावपि पक्षपातौ।
यस्तत्त्ववेदीच्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव

नानात्व और नानात्वनिबधके विकल्पोंसे अतिक्रान्त तत्त्वज्ञानका महत्त्व—

व्यवहारकी दृष्टिमें जीव नाना हैं यह विदित होता है, और निश्चयकी दृष्टिमें जीव नाना हैं ऐसा नहीं,। इस प्रकारसे ज्ञान होता है। ये चेतनमें दो दृष्टियोंके दो पक्षपात हैं, तत्त्ववेदी पुरुष इन पक्षपातोंसे हटता हुआ रहता है अतएव उसके उपयोगमें तो हमेशा ही चित्त चैतन्य ही है। पदार्थ सब असाधारण स्वरूपको लिए हुए होते है। साधारण और असाधारण गुणमय पदार्थ हैं अर्थात् प्रत्येक पदार्थमें कुछ गुण ऐसे हैं जो गुण (एक जैसे गुण) सभी पदार्थोंमें पाये जायें, किन्तु कोई गुण ऐसा होता है जो उस विवक्षित पदार्थमें ही पाया जाता है। साधारण और असाधारण गुण रूप जो नहीं वह सत् ही नहीं। तो आत्मामें असाधारण गुण है चैतन्यस्वरूप। प्रत्येक आत्मामें अपने अपनेका ही अनुभव होता है, उस अनुभवकी ओरसे देखो तो जीव नाना है, यह बात एकदम स्पष्ट है एकके सुखसे सब सुखी नहीं हो जाते, एकके दुःख से सब दुःखी नहीं हो जाते। जिनका जैसा परिणाम है उनके वैसा ही अनुभव जगता है। तो जीव नाना हैं यह बात एकदम स्पष्ट है। लेकिन जब एक स्वरूप मात्रसे देखा गया तो स्वरूपमें मात्र सहज ज्ञानस्वरूप ही नजर आता और उस स्वरूपमें व्यक्तिपना नजर नहीं आता। अगर व्यक्तित्व नजर आ जाय तो वहाँ स्वरूप वस्तुतः नजर नहीं आता। तो जब निश्चयसे देखो, शुद्धनयसे देखो तो स्वरूप मात्र ही निरखा गया और उस दृष्टिमें जीव नाना नहीं हैं। इस प्रकार जीवके बारेमें ये दो पक्ष उठते हैं। पक्षपात शब्द कहा तो है मगर यह तो ज्ञानकी ही चीज है। समझना पड़ेगा ऐसा, लेकिन जो विकल्पकी हठ करके रहे उसकी भलाई नहीं है। इस कारण उस हठको पक्ष–पात शब्दसे कहा गया है। तो जीवमें ये दो पक्ष उठे, अनुभवकी ओरसे देखा तो नाना हैं, स्वरूपकी ओरसे देखा तो नाना नहीं है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

७७६—नानात्व व नानात्वनिषेधके विकल्प से स्वानुभूति न हो सकनेका कारण—

अब नाना है, इस तरहसे देखे कोई तो उसने बाहरमें ही तो अपना उपयोग दिया, अन्तः स्वरूपसे हटकर ही तो वह अपनी व्यक्त सीमाओंको तक रहा है। तो नाना है इस प्रकारके पक्ष होते हुए स्वानुभाव नहीं जग रहा। अच्छा शुद्धनय अथवा निश्चयनय नानाका निषेध कर रहा है कि नाना नहीं हैं, तो नाना नहीं है ऐसा निषेध करनेमें भी नानापन का संबन्धित एक विकल्प तो आ ही गया किसी रूपमें। तो नाना नहीं है, इस तरहका ध्यान देता रहे, ऐसा विकल्प करता रहे तो उन विकल्पोंके समय भी तो स्वनुभाव नहीं है। तो जो तथ्यके जाननहार हैं वे विकल्प मात्रका परिहार कर देते हैं। तो यहाँ इन सब पक्षपातोंको हटाया और अपनेमें निष्पक्ष अंतस्तत्त्वका अनुभव किया, ऐसे उस अन्तर्ज्ञानीके उपयोगकी यह बात बिल्कुल स्पष्ट चल रही है कि चेतन तो सदा सहज चैतन्यस्वरूप मात्र है और ऐसे इस चैतन्यस्वरूप मात्रका निर्विकल्पसमाधिमें अनुभव जगता है तो वह साक्षात् सहज परम आनन्दस्वरूप है। यही आनन्द समस्त संसारके संकटोंको मिटाता है और इस ही आनन्दके लिए आत्माका विकास होता है। समस्त रागादिक मल दूर होते हैं। तो दोषोंसे दूर हटना और गुणोंका पूर्ण विकासमें आ जाना, बस यह ही तो कल्याण है। तो पक्षपातोंसे रहित होकर निष्पक्ष ज्ञानमात्र ज्ञानमें ही रहे ऐसी एक निर्विकल्प ज्ञप्ति होनेपर कल्याण है और ऐसा ही पुरुष बता सकता हैं कि चेतन क्या चीज है ? सो शब्दों द्वारा तो कहा क्या जाय ? यही कह सकते हैं कि चेतन तो नित्य चेतन ही है।

एकस्यचेत्यो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥ ८६ ॥

७७७—चेत्य व चेत्यनिषेधके पक्षसे अतीत तत्त्ववेदन—

व्यवहारनयकी दृष्टिमें यह आत्मा चेत्य है, और चैत्य है ऐसा नहीं इस तरहका उपयोग निश्चयनयकी दृष्टिमें बनता है। यों चेतनमें दो दृष्टियोंसे दो पक्षपात हैं, किन्तु जो तत्त्ववेदी है,पक्षपातसे रहित है उसकी दृष्टिमें तो चेतन नित्य चेतन ही है। आत्मा चैतन्यस्वरूप है, उसकी सहज क्रिया है चेततेरहना। तो इस चेतनेमें यह स्वयं भी आता है। यह चेतन जानने और देखनेके भेदको नहीं करता है। यद्यपि जानना देखना यह छूट नहीं सकता, वे चेतनके ही विशेष है,लेकिन अब यहां देखने जाननेका उपयोग नहीं कर रहे, एक मात्र स्वरूपकी ओरसे जान रहे, यह चेतनहार है और उस चेतनेमें यह स्वयं आत्मा तो आता ही है। तो यों व्यवहारके पक्षमें यह आत्मा चेत्य है। तो चेत्य है ऐसा निरखना शुद्धनयको बरदास्त नहीं है। उसका विषय है चेति। आत्मा चेत्य है ऐसा नहीं है, इस प्रकारका विकल्प शुद्धनयमें निश्चयनयमें है, तो ऐसे ये दो विकल्प चेतनमें हो रहे हैं, चेतनके बारेमें हो रहे हैं,पर विकल्प भी कैसा सुन्दर है, आत्माकी एक मात्र चेतना तक जो उपयोग लिया जा रहा है यह तो बहुत ही उत्तम विकल्पहै लेकिन एक स्वरसके अनुभवसे हटकर जानन चल रहा है तो वह विकल्प रूप ही तो है। तो चेत्यके विकल्पसे और चेत्य नहीं है, इस प्रकारके विकल्पोंसे परे होने वाले जीव निपक्ष है, उनकी दृष्टिसे तो यह चेतन नित्य चेतन रूप ही है।

एकस्य दृश्यो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यंखलुचिच्चिदेव ॥ ८७ ॥

दृश्यत्व और दृश्यत्वनिषेधके विकल्पसे अतीतका तत्त्ववेदन—

एक नयकी दृष्टिमें यह जीव दृश्य है तो दूसरे नयकी दृष्टिमें जीव दृश्य है ऐसा नहीं है, ऐसे चेतनमें दो प्रकारके विकल्प उठते हैं। यहाँ दृष्य शब्दसे यह अर्थ न लेना कि आँखोंसे देखने योग्य है,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उपचार भाषामें इस जीवको ऐसा भी दृश्य कह सकते याने आंखोंसे देखने योग्य है। तब ही तो ये पशुपक्षी कीट आदिक जीवोंको देखकर आंखोंसे देखनेवाला इन प्राणियोंको निरख कर उनकी हिंसा से बचता है, तो दृश्य ऐसा भी हुआ, लेकिन यहाँ उपचार भाषा बोलनेका प्रकरण नहीं है। तो दृश्यसे अर्थ लेना कि जो दर्शन गुणके द्वारा निरखा जा रहा है वह दृश्य है, तो जैसे चेतन द्वारा चेत्य हो रहा था जीव, ऐसे ही दर्शन द्वारा दृश्य हो रहा है जीव, याने सामान्य प्रतिभासमें यह जीव विषयभूत हो रहा है, ऐसा दृश्यपना बहुत आन्तरिक बात है, तो भी दर्शन गुणके द्वारा देखने योग्य है, इस प्रकारसे भेद शैली कर देनेके कारण यह व्यवहारनय बन गया, और यों व्यवहारनयसे आत्मा दृश्य है, यह कहा जा रहा है, किन्तु निश्चयनय शुद्धनय अखण्ड अभेद चैतन्यतत्वको निरखता है। उसमें ऐसे विविध विकल्प नहीं होते। जो गुण पर्याप्यका भेद रखता हुआ इस आत्माको दृश्य समझ सके. तो निश्चयनयकी दृष्टिमें यह आत्मा दृश्य है ऐसा नहीं है, अथवा दर्शन गुणके द्वारा देखनेमें आने योग्य है, ऐसा कहनेसे एक खण्डही तो किया गया। आत्मा केवल दर्शन गुण मात्र ही तो नहीं है। तो यों खण्डरूप जाननेके कारण यह व्यवहारनय कहलाया और निश्चयनय अथवा शुद्धनयमें चूंकि अखण्ड परिपूर्ण आत्माकी समझ बनाते है तो किसी भी एक गुण खण्ड भेद द्वारा परिपूर्ण तत्वको नहीं पाया जा सकता, इस कारण यह शुद्धनय एक नेतिको ही विषय कर रहा। न इति जैसा कुछ भी बताया गया है वैसा नहीं। यह ज्ञान शुद्धनयमें चल रहा है। तो इस प्रकार चेतनमें दो नयोंकी दृष्टिमें दो पक्षपात हैं सो इस विकल्पके रहते हुए निर्विकल्प स्वानुभूति कैसे हो सकती है ? कैसा उत्तम विकल्प है कि जो स्वानुभवके निकट वाला है, जो स्वानुभवमें आता है वह ऐसा ही सामान्य प्रतिभासमय होकर आता है। लेकिन उस प्रकारका यह विकल्प है ना ? तो जहां निस्तरंग इस चैतन्य समुद्रमें बिन्दु मात्रभी अलग हुए, व्यक्त हुए तो वहां फिर एकरसपना नहीं रह पाता, तो ऐसे विकल्पके समय स्वानुभव नहीं है अतएव तत्ववेदी पुरुष जिसने सर्व-नयोंसे गुणोंकी बात पर्यायकी बात भेदाभेद सब कुछ निरख लिया और वस्तुके परिचयके बारेमें स्पष्ट हो गया वह तत्ववेदी पुरुष अब पक्षपातसे रहित हो जाता है तो ऐसा निष्पक्ष तत्ववेदी जिसने स्वानुभव कर लिया है, उसकी दृष्टिमें तो यह चेतन नित्य चेतन ही है।

७८०— द्विनयात्मक बुद्धिसे सर्व जानकर द्विनयात्मकतासे अतीत आत्मोत्थ आनन्दका अवसर पानेका अनुरोध—

आत्मतत्त्वका जिस समय प्रतिपादन हो रहा हो उस कालमें तो बुद्धि द्विनयात्मक होती है, क्योंकि वस्तु द्रव्य पर्यायात्मक है, तो द्रव्यकी ओरसे भी जानना और पर्यायकी ओरसे भी समझना। तो आत्म-तत्त्वके परिभाषणके कालमें तो बुद्धि दोनों नयात्मक हैं। किन्तु जब तत्त्व जान लिया जाता है और वह स्वस्थ बनता है, अपने आत्मामें निर्विकल्प स्थित होता है तो उसकी फिर यह द्विनयात्मक बुद्धि दूर हो जाती है, इसी प्रकार हमें तत्त्व और उपादेय तत्त्व इन दोनोंका निश्चय करना भी आवश्यक है। तो यह सब कुछ भी दोनों नयोंसे होता है। तो नयोंसे हेय तत्व और उपादेय तत्त्व जानकर फिर क्या करना होता है कि हेय तत्त्वको तो छोड़ देवें और उपादेय तत्त्वमें स्थित हो वें, तो यों उपादेयको उपादेय मानने का विकल्प काम तो आया मगर ऐसे विकल्पसे भी परे होकर मात्र उपादान ही रह जाए अर्थात एक सहज स्थिति रह जाए ऐसा स्वानुभव निष्पक्ष तत्त्ववेदीके होता है और इस अनुभवसे आत्मोत्थ आनन्द प्रकट होता है, जिसके बलसे रहे सहे संसारमें, रहे सहे कर्मोके उदयमें कष्ट उपद्रव आदिकके कालमें भी इसका आनंद जगता हैं। तपश्चरणमें दूसरोंको तो खेद लगता है कि यह कैसा तपश्चरण कर रहा है,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

किन्तु जो अन्तस्तत्त्वका रुचिया है और उसी अन्तस्तत्त्वकी साधनामें लगा है वह तो अपने आनन्दरसमें मग्न है। उसे कहाँ शारीरिक कष्ट मालूम होता है ? तो ऐसा एक अपने इस सहज आनन्दको प्राप्त करनेमें ही आत्माका कल्याण है।

७८१— विकल्प जालोंसे संसरण और विकल्प जालोंसे पृथक होनेपर समयसारामृतपान—

अब जरा इस ओर दृष्टि तो करो कि अपने आपके अन्दर हो क्या रहा है ? और उसका चिन्तन रख कर क्या किया इस जीवने ? आज तक अनादिसे लेकर अब तक यही रहा कि इसके ज्ञानमें उपयोगमें, चित्तमें पर द्रव्य विषयभूत रहा और वह इस दृष्टिसे कि उस विषयभूत साधनका उपयोग कर ये रागद्वेष सुख दुःख बनाये और इस धाँधलबाजीमें अपने आपका स्वरूप ध्यानमें न रहा। यह स्थिति इस जीवकी बराबर अनादिसे चली आ रही है, ऐसी स्थितिका चित्रण करते हुए अब जरा अपने आपको सम्बोधें कि अरे इस समय इतने समय तक परद्रव्य ही मेरे ध्यानमें रहा और ज्ञानमात्र यह मैं ज्ञानमें न रह पाया। ये दोनों स्थितियां विरुद्ध फल बताने वाली हैं, परद्रव्य ध्यानमें रहे, विषयमें रहे तो उससे होती है व्यग्रता और निजस्वरूप ध्यानमें रहे तो उससे व्यग्रता मिटती है। व्यग्रता मिटनेका कारण यह है कि जब तक ज्ञानमात्र यह अंतस्तत्त्व ध्यानमें रहता है तब तक कषायभाव नहीं जागृत होते, कषाय शान्त हो जाते, मन्द हो जाते। और जितनी भी व्यग्रता है, वह सब कषायभावके कारण है। जीव सब सुखी शान्त हैं। स्वभाव ही उनका आनन्द है। तो स्वभावसे यह जीव आनन्दमय है मगर फिर जो यह अनुभूति में नहीं आ रहा उसका कारण है उपयोगमें कषाय और विषयका जागरण चल रहा। तो जब थोड़ा प्रतिबोध होता है और पर द्रव्यके विषय होनेका और अन्तस्तत्त्वके ध्यानमें रहनेका जब यह अन्तर समझ लेता है तब इसके अन्दर एक यह हूक उठती है कि अहो इतने समय तक पर द्रव्य मेरे ध्यानमें क्यों रहा और क्यों नहीं मेरा निज सहज स्वरूप मेरे ध्यानमें रहा तो ऐसा जब न रहा, पर द्रव्य ध्यानमें रहो, निज द्रव्य ध्यानमें नहीं आ पाया तो इसमें अपना घात ही तो उसने किया। किसी दूसरेका इसमें क्या बिगाड़ ? किसी भी बाह्य पदार्थका मैं कुछ भी नहीं कर सकता, क्योंकि सम्बन्ध ही नहीं हो सकता, सम्पर्क ही नहीं हो सकता। प्रत्येक द्रव्य अपनी सत्तासे है, मैं अपने सत्त्वसे हूं, मैं परद्रव्यका क्या कर सकता हूँ ? पर द्रव्यके बारेमें विचार करूँ, कल्पनायें करूँ, यह तो मैं कर लूँगा, सो ऐसा करनेमें भी परद्रव्यका कुछ आया नहीं। मेरे इस ज्ञानका ही कुछ परिणमन हुआ है उसे तो मैं कर सकता हूँ कि पर-द्रव्यके बारेमें ध्यान करूँ किन्तु परका मैं कुछ कर सकने वाला नहीं हूं, परको विषय किया, परका राग किया, परके बारेमें ध्यान बनाकर अपनेमें इष्ट अनिष्ट कल्पनाओं द्वारा व्यग्रता की तो इसमें उसने अपना ही घात किया। क्योंकि हूँ तो यह ज्ञानमात्र परमात्मतत्त्व याने अपने आपही स्वभावसे अपनेही स्वरूपसे मैं आनन्दस्वरूप, पर लग रहा है सारा दुःख। यह सब पक्षपात, विकल्पजाल ही इनका मूल है। विकल्प-जालोंसे च्युत होकर ही तत्त्ववेदी आत्मानदी होते हैं।

एकस्य वेद्यो न तथा परस्य चिति द्वयं द्वाविति पक्षपातौ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥८८॥

७८२— विकल्पच्युत स्थितिमें कल्याण—

हम आपको चाहिए क्या ? आनन्द, शान्ति। आनन्द है निराकुलतामें, जहाँ आकुलता रंच नहीं वहां ही तो आनन्द है और निराकुलता है निर्विकल्प दशामें। जहाँ किसी भी प्रकारका विकल्प

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

नहीं है वहाँ ही निराकुलता है । अब तक संसार में विकल्प करके ही तो जीव भटका चला आया है । विकल्प भी अलूलजलूल । जैसे पर पदार्थों को मानना कि ये मेरे हैं । दूसरे जीवों को मानना कि ये मेरे हैं, ऐसे भद्दे भद्दे विकल्प मिथ्या विकल्प हैं, जिनमें वस्तुस्वरूप की गंध भी नहीं है, ऐसे विकल्प करता चला आ रहा है यह जीव । तो उसका फल है संसार में रुलना और दुख पाना । अच्छा, आत्म तत्व के बारे में भी विकल्प उठें जो कि उन विकल्पों से तो भले हैं, लेकिन आत्म तत्व के बारे में भी किसी प्रकार के विचार और विकल्प जब तक बनते हैं । तब तक निर्विकल्प दशा नहीं ? उन विकल्पों से भी परे होकर स्वानु-भूति दशा बनती है । तो आत्मकल्याणार्थी आत्मतत्व का परिचय कर रहा है । अभी तक बहुत-बहुत परिचय किया । यह जीव एक है, एक नहीं है, कर्म से बद्ध है नहीं है आदिक नाना विकल्प और निर्णय किया। अब यहां यह पक्ष चल रहा कि एकका सिद्धांत है कि आत्मा वेद्य है याने वेदने योग्य आत्मा समझमें आने योग्य है,तो दूसरा कहता हे कि आत्मा वेद्यहै ऐसा नहीं । एक दो पक्ष सामने हैं, याने वेदनमें आती है आत्मा यह तो हुआ व्यवहारकापक्ष औरवेदनेमें आ रहा आत्मा ऐसा नहीं है, यह है निश्चयकापक्ष । निश्चय का विषय है न इति ऐसा नहीं, यहनहीं, किसी भी वस्तु के बारे में हम पूरी बात नहीं कह सकते तब जो भी बात कहेंगे, निश्चय कहेगा ऐसा नहीं । तोआत्मा वेद्य है—अपने अनुभव में आता है ऐसा विकल्प यह व्यवहार नयका पक्ष है और वेद्य है ऐसा नहीं है, इस तरह का विकल्प निश्चयनय का पक्ष है । जो इन दोनो विकल्पों से परे होते हैं तत्वज्ञानी पुरुष उनकी दृष्टि में तो आत्मा आत्मा ही है, चित चित ही है, उसके बारे में तो विकल्प नहीं है । यह है नय से अतिक्रान्त दशा । अपने को देखो आत्मा ज्ञान रूप है, बोलने की बात नहीं कह रहे, किन्तु निरखने की बात । यह एक ज्ञानस्वरूप हैं । अब उसके बारे में किन्हीं शब्दों से बोलते हैं तो आनन्द घट जाता है, अनुभव नहीं हो पाता और अन्तर्जल्प, बहिर्जल्प कोई सा भी शब्द न आये और केवल यह पूर्ण अन्तस्तत्व जो कि ज्ञान के रूप में ही जाना जाता है, उपयोग में हो, वह तत्ववेदी जानता है कि यह चेतन तो चेतन ही है ।

एकस्यभातो तथा परस्य विति द्वयोर्द्वावितिपक्षपातौ ।
यस्तत्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥८६॥

७८३- प्रतिभात अप्रतिभातके पक्षोंसे भी अतिक्रान्त भव्यकी मंगलरूपता—

आत्माकी जानकारी चल रही है कि यह आत्मा कैसा है । बोले बिना गुजारा नहीं और बोलकर भी गुजारा नहीं, यह स्थिति इस प्रसंग में स्पष्ट दिख रही है । आत्मा को जाना कुछ समझ में आया प्रतिभास हुआ, ज्ञानरूप में जाना, वह ज्ञान में झलका, यह बात तो ठीक चल रही है मगर उसके बारे में जब कुछ बोलना शुरू किया जायगा तो पक्ष बन जायगा । यह व्यवहार का पक्ष है कि यह जीव प्रतिभात है प्रतिमासमें आया हुआ है, तो निश्चयका पक्ष है कि प्रतिभात है । ऐसा नहीं हैं, ये दोनों ही एक विकल्प हैं एक चेतन के बारे में। इन दोनो नयपक्षों से जो अतिक्रांत हो तत्व वेदी जानता है उसकी दृष्टि में तो यह चेतन चेतन ही है याने आत्मा अनुभवगम्य है, शब्द गम्य नहीं, और अनुभव तब बनता है कि जब वह पूर्ण तत्व अखण्ड रूप से ज्ञान में आ रहा हो । ज्ञानमें ज्ञान रूप समाया हो यह मैं ज्ञानमात्र हूँ, ज्ञानसिवाय मैं और कुछ नहीं हूं । देखो यहाँ स्वानुभूति में ऐसे अच्छे अच्छ विकल्प भी बाधक बन रहे । आत्मा के बारे में सोचना कि यह प्रतिभास स्वरूप है, वेदन में आता है, यह

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

दृश्य है, ज्ञेय है, सूक्ष्म है यह कथन एक आत्मा केस्वरूप का परिचय कराने वाला है, लेकिन यह भी एक नयपक्ष बन गया। जिसको स्वानुभूति के महल में पहुचाने की चाह है उसके लिए ये सारे विकल्प बाधक मालूम पड़ रहे हैं। तो एक ऊंचा धर्म पाने के लिए ऐसे सुन्दर सुन्दर विकल्पों से भी परे होने की आवश्यकता है। तब जो जीव एकदम स्पष्ट बाहरी पदार्थों में हठ बनाये हुए है कि यह मेरा स्वरूप है, इसके बिना मेरा गुजारा नहीं, इससे ही मेरा बड़प्पन है ऐसी जो हठ बनाये है वह तो पूर्ण अन्धकार में है। वह तो संसार में रुलने वाला ही है एकदम। जीव को जब अपने स्वरूप की सुध नहीं होती तो वह कर्मदशा को अपनाता हैं जो विचार ख्याल उठे उनमें इसका पक्ष हो जाता है, मैं इसको ऐसा कर दूं, लोग मुझे क्या समझते ? मेरी बड़ी इज्जत है, मेरी बड़ी महिमा है, न जाने क्या क्या नहीं बकता है यह अज्ञानी जीव। जब ज्ञानभाव की सुध नहीं है तो वह तृप्त कैसे होगा ? वह अतृप्त है। जैसे जब किसीका दिमाग बिगड़ गया तो वह अट्ट-सट्ट बकता है ऐसे ही इसकी बुद्धि बिगड़ गई ज्ञानस्वरूपकी सुध न होनेसे तो यह भी अटपट बकता है, सोचता है, पर मनुष्य भव पाकर करनेका काम ये सब बाहरी प्रसंगके लगावके नहीं हैं। अपनेको ज्ञानमात्र अनुभव कर सके केवल ज्ञान स्वरूप, ज्ञानमात्र तो यह अनुभव वास्तविक मंगल है। देखो निजमें इसको कोई जानता ही नहीं, जब कोई उसका समझने वाला नहीं तो मै किसमें अपना सिर रगड़ूँ, किससे राग बढाऊँ, मेरा कौन सहाय है ? जगतमें कोई भी वस्तु मेरे लिए शरण नहीं हैं, बड़े–बड़े वैभव हों तो क्या वे मेरे कष्टसे दूर कर देंगे ? बड़े–बड़े धर्मात्माजन भी हों, उनके बीच रहूँ तो क्या वे कष्ट दूर कर देंगे ? खुद को ही ज्ञान प्रकाश लाना होगा। खुदको ही अपनेमें उस ज्ञानमात्रस्वरूपकी दृष्टि बनानी होगी तो यह खुदके लिए शरण होगा अन्यथा कोई इसका शरण नहीं है। विकल्प जालसे दूर होकर ही इस जोवको अपनेमें अपना शरण प्राप्त होता है।

स्वेच्छा समुच्छलरनल्प विकल्पजालान्येवं व्यतीत्य महतीं नयपक्षकक्षां।
अन्तर्बहि समरसैकरस स्वभावं स्वंभावमेक मुपयात्यनुभूतिमात्रम् ।।९०।।

७८४—विकल्पजालोंसे परे होने पर ही सिद्धि समृद्धि—

यह जीव इतना स्वच्छन्द हो गया है, यहाँ मनुष्य इतना स्वच्छन्द हो गया है, इसकी इच्छायें इतनी बिढंगी बढ़ गई हैं कि यह मौज मानता हैं अपनी इच्छानुसार कुछ भी विकल्प बनानेमें, सोचने में, पुलावा बाँधनेमें इनमें यह संतोष मानता है, कोई कितना ही समझाये कि इन बाहरी पदार्थोंके बारेमें विकल्प, विचार, तृष्णा, इच्छा न करो, कुछ क्षण सीधे ही बैठे रहो, विकल्पोंको रट न बनाओ, मगर एक क्षण भी तो नहीं गुजर पाता ऐसा कि अपनी स्वच्छन्द, इच्छानुकूल यह शेखचिल्लीपन जैसे अपने मन में पुलावा बाँधनेसे कुछ तो बाज आये और फिर कुछ समझदार हो तो वह धर्मचर्चामें आत्माके प्रसंगमें वह अपनी इच्छासे नाना प्रकारके विचार और नयोंको बनाता है, लेकिन जो पुरुष ऐसे बड़े बड़े नय पक्षोंका भी उल्लंघन करे और भीतर बाहर समतारससे परिपूर्ण बन जाय वह ही पुरुष अनुभूति मात्र निज एक अंतस्तत्त्वको प्राप्त कर पाता है। यह मन बड़ा परेशान कर रहा। मन नहीं परेशान करता किन्तु कषाय परेशान करतीं। कहीं यह मन स्थिर नहीं हो पाता। तो ठीक है, वह तो सही मार्ग बताता है कि दुनियामें कोई पदार्थ ऐसा नहीं है कि जहां यह मन स्थिर हो सके, जहां अपनी स्थिरता बन सके, ऐसा है ही नहीं अन्य कुछ। जो अपने हितरूप हो, फिर उसपर मन जमे कैसे ? इसी मनको जिन्होंने मारा, वश किया उन्हींकी तो हम भक्ति करते हैं, गुणगान करते हैं,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जिन्होंने इन विषय कषायोंको दूर किया ऐसे ही पवित्र पुरुष तो आदर्श बनते हैं। वह कोई दूसरे नहीं हैं, खुद ही तो हैं।

७८५—निज सहज ज्ञान मात्र अन्तस्तत्त्वकी उपासनामें सकल विषदाओं का परिहार—

भैया आनंद चाहिएतो ज्ञानप्रकाश अपनेमें उत्पन्न करें और अपने स्वरूपमें अपना अनुभव करले और मानलें कि मैं यह ही हूँ। कोई घटना चाहे, कितना ही बरगलाये, यह कर्म रस चाहे कितना ही कार्व पर यह बहकमें न आये और अपनेमें दृढ़ अनुभव करे कि मैं तो विशुद्ध ज्ञानमात्र हूँ, एक चैतन्यमात्र। इसमें विकार नहीं हैं, इसमें कोई दूसरा पदार्थ नहीं है, सब बाहर लोट रहे हैं, बाहर पड़े हैं, मुझमें किसीका प्रवेश नहीं। मैं तो ज्ञानमात्र अंतस्तत्त्व हूँ, अपने इस ज्ञानरूपताके अनुभवको न त्यागे, बसतो ही ज्ञानी पुरुष है। प्रतीति ऐसीही रहे कि मैं ज्ञानसिवाय कुछ नहीं हूँ, ज्ञान ही ज्ञान हूँ, ज्ञात ही मेरा वैभव है, ज्ञान ही मेरा लोक है, परलोक है, ज्ञान ही रक्षक है, शरण है, सर्वस्व है, मैं ज्ञानको ही करता हूं, ज्ञान ही मेरेमें सब कुछ है। इसके सिवाय मेरा कुछ नहीं। ऐसा एक दृढ़ अनुभव बन जाय उसको फिर कोई कष्ट नहीं, कोई दुःख नहीं। सब बाहरी पदार्थ हैं, वे अपने ढंगसे परिणमते हैं, इनसे मेरेको क्या कष्ट आये? कष्ट तो अपने ज्ञानस्वरूपकी सुध खोकर बनाया जाता है अटकी क्या है किसी भी पर पदार्थको मैं कि मेरेको कष्ट आये? कष्ट तो अपने ज्ञानस्वरूपकी सुध खोकर बनाया जाता है, अटकी क्या है किसी भी पर पदार्थको, मैं मानूँ कि ये मेरे हैं, ऐसा माननेको कुछ अटक पड़ी है क्या? झूठे आग्रहकी कुछ अटकी भी है क्या? झूट आग्रह छोड़ दिये जायें और अपने सत्यस्वरूपमें रमा जाय तो इसका कष्ट आज ही खतम हो जाय। ग्रन्थोंमें भी आया है कि सम्यग्ज्ञान होते ही उसका अनन्त संसार समाप्त हो जाता है तो उसका और अर्थ क्या है? अपने आपके सही स्वरूप की अनुभूति होने पर फिर पर पदार्थों में लगाव रहता ही नहीं है। उसका संसार खतम हो ही जायगा। तो मिथ्या विकल्प, चर्चा के विकल्प, सभी विकल्पों से परे होना हैं और एक अपने में सत्य आराम पाकर रहना है तब इसके अनुभव में आयगा कि मैं तो यह चेतन चेतन ही हूं। कष्ट रहित हूं, पवित्र हूं, प्रभुस्वरूप हूं, बस यह अनुभव ही हम आपको शरण हैं। अन्य की दृष्टि, अन्य में लगाव हम आपको रंच भी शरण नहीं है।

इन्द्रजालमिदमेवयुच्छत्तत्पुष्कलोच्चल विकल्पवीचिभिः
यस्य विस्फुरणमेव तत्क्षणं कृत्स्नभस्यति तदस्मि चिन्महः ॥९१॥

७८६—चैतन्यतेज विस्फुरनसे इन्द्रजालका समापन—

मनुष्यों के चित्त में निरन्तर दुःख बना रहता है, कोई दुःख प्रकट होता है, कोई दुःख सुख के रूप में प्रकट होता है। संसार के सारे सुख भोगते समय भीतरी हालत देखो तृष्णा, प्रतीक्षा, इच्छा और पर का झुकाव ये सब बातें होने के कारण अन्तः क्लेश ही रहता है, मानता वह सुख है, बस यह ही सब एक इन्द्रजाल है। इन्द्रजाल का अर्थ है इन्द्र का जाल, इन्द्र मायने आत्मा, आत्मा का जो विकल्प जाल है उसे कहते हैं इन्द्रजाल। यह इन्द्रजाल कैसा बढ़ रहा है। इससे बड़े बड़े विकल्पों की लहरें उठ रही है। इस इन्द्रजाल को समाप्त करने का ध्यान किसी बिरले भव्य को होता है, नहीं तो धर्म का भी नाम लेकर इन्द्रजाल किया जा रहा। धर्म वह जाने ही क्या जिसने कर्म शरीर विकारों से निराला केवल विशुद्ध एक चैतन्य स्वरूप को अनुभव में नहीं लिया उसके लिए धर्म कोई वस्तु ही नहीं है। वह जानता ही नहीं कि धर्म क्या है? अगर लोक में धर्म की प्रशंसा सुनते हैं और भीतर में

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सुख की आशा लगी है, इस भवमें भी सुखी हों, अगले भवमें भी इन्द्र वगैरह बन जायें ऐसी उसकी एक खोटी रुचि है और धर्मके प्रसादसे सब होता है ऐसा सुन रखा है सो इस कारण धर्मके नाम पर बड़े बड़े श्रम करते हैं ये पुरुष और कोई तो धर्मके नाम पर ऊंचे से ऊंचे व्रत रखते, सब कुछ त्याग भी देते निर्ग्रन्थ भी होते, मुनिपदमें भी रहते और भीतर में मैं व्रत पालता हूं, मुझे यो चलना चाहिए. मैं मुनि हूं, साधु हूं, मुझे यों चलना चाहिए, इन विकल्पोंको गूथता है। धर्म वहाँ किया नहीं। गृहस्थ भी धर्मके भावसे काम तो करता है मगर जब तक उस ज्ञानस्वभावका अनुभव न बने तब तक यहाँ भी वह धर्म नहीं पा सकता हाँ दान करना, त्याग करना, व्रत करना, सेवा करना, धर्म होगा, पार हो जायेंगे, इतना विकल्प रहता है। हालाँकि ये सब बातें करनेमें आयेंगी। व्रत, समिति, गुप्ति, निर्ग्रन्थ दशा ये भी सब आयेंगे दान, पूजा, त्याग ये भी गृहस्थके आयेंगे, मगर वह एक बूटी नहीं पायी, जिस बूटीके पा लेने पर नियमसे यह इन्द्रजाल दूर हो जायगा। वह बूटी क्या है जिसका विस्फुरण सारे विकल्प जालों को इन्द्रजालोंको नष्ट कर देता है? वह मैं यह चैतन्य तेज ही तो हूं।

७८७—भिन्न पदार्थोंका विकल्प तोड़कर अविकल्प चित्स्वरूपके आश्रयका प्रभाव—

कोई भी चीज होती है अपने आपही तो है दूसरेकी दया पर किसीकी सत्ता नहीं होती। जो है सो अपने आप है। मैं अपने आप क्या हूं, यह दृष्टिमें आये बिना धर्म रंच नहींहो सकता। पुण्यतो कीड़ियों को भी कुछ खिला पिला दिया तो हो गया, पशुपक्षियोंकी कुछ दाने डाल दिया तो पुण्य हो गया, मगर पुण्य-पुण्यसे पूरा नहीं पड़ता। संसारके सुख भोगनेसे पूरा नहीं पड़ता। उपाय वह बनाना होगा कि जिससे यह जन्म मरण सदाके लिए मिट जाय। यह क्या खटपट कि पहले भवमें वहाँ जो बालबच्चे होंगे उनमें ममताकी, सब वहाँ छोड़ कर आये, इस भवमें जिनका समागम मिला उनमें ममता कर रहे, छोड़कर तो सब जाना ही होगा, आहा कितना अज्ञान। हालाकि गृहस्थीमें रहकर प्रेमसे रहना चाहिए, वह तो कर्तव्य है, मगर अज्ञान सहित रहना चाहिए क्या यह भी कर्तव्य है? जैसीजो बात है सही-सही उसे जानते हुए घरमें रहना अच्छा है या झूठा ज्ञान रखकर कल्पनायें करना, अज्ञान बसाकर रहना अच्छा है? यह तो विवेक बतायेगा कि घरमें किस तरह बोलें, कैसा प्रेम रखें, कैसे अर्थ पुरुषार्थभी करें, कमाई भी करें, उसमें फर्क नहीं आता, मगर जो अज्ञानपूर्वक रह रहा, ये ही मेरे सब कुछ है, इन्हींके लिए मेरा तन, मन, धन, प्राण सब कुछ है, मेरा और कुछ दुनियामें है ही नहीं, ये ही मेरे लिए सब कुछ हैं ऐसा जिसके अज्ञान बसा हो वह धर्मके नाम पर चाहे तपश्चरण करे, व्रत करे, धन भी खर्च करे, कुछ भी करे मगर धर्म रंच मात्र भी नहीं होता। धर्म हाथसे नहीं टपकता, धर्म शरीरसे नहीं टपकता, धर्म तो ज्ञानका नाम है। सही ज्ञान हो और उस पर हम अडिग रह सके बस उसीका नाम धर्म पालन है तो जो विकल्पसे पक्षपातसे अलग हो गया है, जिसको अपने आत्मकल्याणकी तीव्र रुचि बन गई है ऐसा पुरुष अपने आपमें अनुभव कर पाता है कि मैं वह तेज हूं, मैं वह चैतन्य प्रभावान हूं कि जिसकी कणिका भी स्फुरित होवे याने इस ज्ञानस्वरूप पर हमारी दृष्टि जाय और यह मानकर रह जाऊं कि यह मैंज्ञान-मात्र हूं। तो यह जागरण इतने अद्भुत प्रताप वाला है कि भव—भवके बांधे हुए कर्म और ये सारे विकल्प इन्द्रजाल ये क्षणभरमें ध्वस्त हो जाते हैं।

७८८—अनहोनीका लगाव त्याग देनेसे दुःखोंका प्रशमन—

दुःख क्या है जीव पर? परवस्तु के बारेमें कुछ ख्याल बनाना और चाहें कि यह वस्तु यों बन जाय और यों नहीं बन रही, लो बस यह दुःखी हो रहा। अब बतलावो ये दुःखी हो रहे तो क्यों दुःखी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हो रहे ? जीव है तो उनके साथ कर्म हैं, अजीब पदार्थ हैं तो उनका उनमें परिणमन है । मेरे से क्या नाता है, क्या बात है जो किसी पदार्थके किसी भी तरहके परिणमनसे मेरेमें कोई उथल पुथल ऊँच नीच बात बने जैसे अग्निमें कितना ही तपाया जाय सोना तो वह सोना कहीं लोटा नहीं बन जाता, सोना सोना ही रहता है ऐसे ही जिसने अपने ज्ञानस्वरूपका दर्शन किया है, अपने सहज ज्ञानस्वरूपका अनुभव किया है । उस पर कितने ही कर्म लद जायें, कितने ही कर्म उदयमें आयें, प्रचंड विपाकसे भी उपद्रवित हो, फिर भी उसे कोई कष्ट नहीं होता । लोग अचरज करने लगते, सुकुमाल जिनका शरीर इतना सुकुमाल और निर्ग्रन्थ होनेके बाद गींदड़ी खा रही है और उसे कोई कष्ट नहीं । वह कौन सी बूटी पा लिया कि ऐसी दशा भी होकि गीदड़िया खायें, शेर चीथें तो भी कष्टका अनुभव न हो ? तो वह बूटी बस यही है निज चैतन्यस्वरूपमें अहकी दृढ़ता । शरीर जरा निकटकी चीज है सो इसके बारेमें कुछ समझना कठिन सा लग रहा, मगर जो मकान आपका आपसे काफी दूर है, क्या उसके बारेमें कभी ऐसा ख्याल आता है कि यह मकान न तो मेरे साथ आया है,न मेरे साथ अब भी रह रहा है और न मेरे साथ जायगा, फिर इससे मेरा क्या मतलब ? यदि इस प्रकारका कभी विचार बन जाय तो समझोगे कि उस घर विषयक कष्ट दूर हो गया कि नहीं । तो इन बाहरी पदार्थोंमें जो भी बात बने उसमें कष्ट न माने । यह बात बन सकती है शुद्धविचारके द्वारा । तो शरीर पर भी कोई आफत आये और रंच भी खेद न माने यह भी बात बन सकती है इसी अन्तः प्रकाशमान चैतन्य महाप्रभुकी लगनसे ।

७९९—आत्स्वभाव धर्मकी लगनवालेके धर्म प्राप्तिकी संभावना—

धर्म कोई करना चाहता है क्या, पालना चाहता है क्या ? अगर भीतरी भाव बन गया कि मुझे धर्म सिवाय कुछ मतलब नहीं और फिर मुझे धर्म न मिले यह हो नहीं सकता । जिसके भीतरी भावना बन गई कि आत्मज्ञान बिना सब बेकार, आत्मज्ञान ही मेरा सर्वस्व शरण है, उससे ही मेरा सम्बंध हैं । वही एक धुन रहे अन्यसे क्या मतलब । उसको आत्मज्ञान मिलकर ही रहेगा । तो संसारके बहुत विकल्प जाल हैं उनसे छुट्टी पा लेना चाहिए । धर्मके बारेमें नाना ख्याल कर करके जो हैरानी बनाया है उससे छुट्टी पा लेना चाहिए । कभी तत्त्वचर्चाका प्रसंग आये उसमें यह भी बोल रहे वह भी बोल रहे, विवाद मच गया, ऐसा विकल्पजाल उठ गया, इन विकल्प जालोंसे भी छुट्टी पाना चाहिए । कभी सामायिकके नाम पर अकेले बैठे हैं वहाँ ही मनमें बात आ रही कि बहुत बढ़िया बात है, मैं अपने मित्रोंका बताऊँगा यह बहुत अच्छी बात है मैं उसको सुनाऊँगा, इनको धर्ममें लगानेकी बात करूँगा ··· यों नाना विकल्पजाल उठें, इन सब विकल्प जालोंको खतम कर दें, विकल्पोंसे खतम कर दें, विकल्पोंसे रहित बन सके,ऐसा कोई प्रयोग है तो यही है कि अपने आपका जो सहज ज्ञानज्योतिस्वरूप है बस उससे ही लगाव लगाना कि मैं तो यह ही हूं, अन्य कुछ नहीं हूं, यह ही मेरा है अन्य कुछ मेरा कहीं नहीं । मैं इसमें ही रहता हूं,अन्य किसीमें नहीं रहता, यह ही मैं हूं अन्य कुछ नहीं करता यह ही मैं भोगता हूँ अन्य कुछ नहीं भोगता हूँ । ऐसा आत्मज्ञानके प्रतिदृढ़ लगाव बने तो ये सारे विकल्पजाल ये सारे कष्ट एक साथ समाप्त हो सकते हैं। मगर धुन चाहिए। अगर कुछ फालतू समय मिला तो उस समय कुछ धर्मकी बात कर लिया, यह ढंग नहीं है धर्मका । जितना जरूरी समझा जा रहा है, कमायी, दूकान, खाना, पीना, घरमें कुछ बात करना, इससे भी अधिक जरूरीहै एक घंटा आधा घंटाकी नियमित बात, जिसे समझें कि इसके बिना तो मेरा गुजारा नहीं, हमें स्वानुभाव करना है, हमें अपने ज्ञानमें अपने ज्ञानको बसाना है यह काम हमारा सबसे अधिक मुख्य है, क्योंकि घर तो मिटेगा, सँयोग विघटेगा, शरीर छूटेगा, क्षेत्र यह

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सब दूर हो जायगा, इनके लगावसे मिलना क्या है हमें ? और मेरा आत्मस्वरूप, मेरा यह ज्ञानस्वरूप मेरे साथ रहता है, इसकी सम्हाल करलें तो जहाँ होऊँगा वहीं आनन्द है। तो जिसके चित्तमें यह बात समा गई कि आत्मज्ञान, आत्मरमण, आत्मप्रतीति ये ही मेरे लिए मुख्य काम हैं इस दुर्लभ मानव-जीवन में अन्य कुछ दूसरा कोई काम मेरे करनेके लिए नहीं है, कदाचित मानलो नुकसान होते होते आधा धन रह गया तो उससे इस आत्माका कोई नुकसान हुआ क्या ? और एक आत्माकी सुध छोड़ दो तो उससे नुकसान तुरन्त हो गया।

७८९—ज्ञानबल व आत्म साहस से आत्म समृद्धि की अवश्यंभाविता—

जब तक अपने आपका लगाव न बने, कल्याण की बात मन में न आये कि मुझको तो आत्मा का उद्धार करना है विशेष इनमें नहीं पड़ना है, कर्तव्य निभाते रहना है, बाकी इनकी ये जाने। इनके कर्म इनका उदय इनके साथ है, इनका मैं कुछ नहीं कर सकता। तब फिर जिस पर हमारा अधिकार है आत्महित पर, आत्मज्ञानपर, अपनी सम्हाल पर, अपने में अपने आप निरखते रहें, इस बात पर हमारा अधिकार है। हम चाहें सो नियम से करके रहेंगे, बाकी बाहरी बातों पर हमारा रंच भी अधिकार नहीं। जिन जिनके भोगोपभोग में आपका धन लगेगा उन उनके पुण्य का उदय निमित्त है जो आप इतनी सेवा श्रम तकलीफ उठाकर अपनी जिन्दगी बिता रहे। आप तो मानते हैं कि मैं धन कमाने वाला हूं पर आप धन कमाने वाले नहीं। जिन जिनके काम वह धन लगेगा उन उनका पुण्य कमाने वाला है। होने दो, ये सब बातें गौण हो जायें और मुख्य रह जाये केवल आत्महित फकीर सा बनकर उसके धुनिया बनकर आत्महित करना। जिसकी धुन होती है वह जगह-जगह पूछता है, उसकी चर्चा करता है, रात दिन उसे चित्त में बैठाले रहता है, तो आप अपने आत्मस्वरूप को रात दिन बैठालते हैं क्या? आत्मस्वरूप के लिए कुछ तन, मन, धन, वचन लगाते हैं क्या? उस आत्मबोध के लिए आपको भीतर में कुछ तड़फन होती है क्या? यह ही चाहिए और कुछ न चाहिए, ऐसा कभी दृढ़ निर्णय बना है क्या? अगर नहीं बना तो बस यही समझिये कि धर्म के नाम पर भी एक आरामतफरी विनोद हुआ करता है तो वह विनोदमात्र है। उससे कहीं मोक्ष मार्ग नहीं मिलता। मोक्षमार्ग कैसे मिलता? बाहरी विकल्पों को छोड़कर आत्मा का ज्ञान किया जाय और स्याद्वाद से, अनेकान्त से आत्मा की समस्यायें सुलझायें और फिर किसी भी नयका पक्ष न कर जानकर एक परम विश्राम लें है। ऐसा जब हम अपना उपयोग बनायेंगे तो मेरे ज्ञान में जगता हुआ चैतन्य चकचकायमान होगा। उस उज्ज्वल ज्ञानस्वरूप को हम एकमत होकर जब उस पर दृढ़ होंगे तो सारी विघ्न बाधायें दूर होंगी, पापरस दूर होगा, पुण्यरस बढ़ेगा, फिर भी उस पुण्यरस से लगाव नहीं रखना ऐसी कोई अपनी स्थिति बना सके तो समझिये कि हम धर्म पर चल रहे।

--धर्म मार्ग पर चलने वाले का-परिचय व प्रभाव—

धर्म मार्ग पर चलने वाले की पहिचान यह है कि जो धन चाहता है वह धनिकों के पास अधिक बैठेगा, जो गप्प चाहता है वह गप्प करने वालों का संग अधिक करेगा। जो संसार का सुख चाहता है वह जिस किसी को भी धर्म पुण्य मानकर उनकी क्रियावों मे समय गुजारेगा। जो आत्मज्ञान चाहता है वह आत्मज्ञान की साधना बनायेगा, शास्त्रावाध्याय, अध्ययन, चिन्तन, मनन, आत्मज्ञानियों का संग प्रसंग अधिक करेगा। तो जिससे अपने आत्मतत्त्व का ज्ञान सुदृढ़ हो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ऐसा उपाय मनुष्यभव में बना सके तब तो यह दुर्लभ नरभव सफल है, नहीं तो जैसे अनन्त भव गुजरे, देव भी बने, राजा महाराजा भी बने लेकिन जैसे वे भव बेकार गए, व्यर्थ गए, बरबादी के साधन बनकर गए, ऐसे ही यह मनुष्यभव भी बरबादी का साधन मात्र बनेगा। इसमें कोई लाभ न मिलेगा। इन सांसरिक प्रसंगों में सिर हाथ पटकेंगे, परिश्रम करेंगे, विह्वल होंगे और इस इस तरह से जिन्दगी पार करेंगे तो हाथ कुछ न आयगा। हस्तगत तो रत्न उनके हैं जिन्होंने अपने इस सहज आत्मस्वरूप का परिचय पाया ध्यान करके, मनन करके, सुन सुन करके। कोई एक दिन में यह बात नहीं आती। सब जिन्दगी लगाना पड़ेगी। जितने दिन शेष रह गए हैं सब दिन पूरेके पूरे कुछ न कुछ समय प्रतिदिन अनिवार्य लगाना पड़ेगा और उसका मनन ध्यान बनाना होगा। जिस क्षण अपने आपको एक विशुद्ध ज्ञानस्वरूप ज्ञानमें आ जायगा उस दिनसे आपका नया दिन बनेगा और एकदम उन्नति तरक्की आयगी. आप शान्त होंगे, धीर होंगे, वीर होंगे, निराकुल होंगे। तो वह चैतन्य-रूप तेज जिसकी मुद्रा भी स्फुरित हो जाय तो सारे इन्द्रजालको खा डाले, ऐसा अद्भुत तेज यह मैं ही तो हूँ। आनन्दधाम ज्ञानमात्र सर्वस्व यह मैं स्वयं अपने स्वरूपमें हूँ, ऐसा ध्यान बने तो यह तो है अपने लिए शरण, बाकी किसी भी चीजका शरण गहना चाहें तो धोखा मिलेगा। अपने आत्मा भगवानकी शरण गहनेसे ही अपना कल्याण है।

चित्स्वभावभरभावितभावाभावाभावभावपरमार्थतयैकम्।
बन्धपद्धतिमपास्य समस्त चेतये समयसारमपारम्॥ ९२॥

७९२—ज्ञानीका कार्यक्रम—

ज्ञानी जीवने अपने आपमें शाश्वत अन्तः प्रकाशमान चैतन्यमात्र स्वरूपको देखा है, जाना है, अनुभव किया है। उस ही पर दृढ़ रहा है, अतएव उसके कोई नयपक्ष नहीं है। तो ज्ञानी जीवकी दृष्टि अपने आपके सहज ज्ञानस्वरूप है और इस ही स्वरूपमें यह मैं हूँ ऐसा दृढ़ निर्णय किया है तो अब इस दृष्टिसे भगवान केवलीकी पद्धति और इस ज्ञानीकी इस पद्धतिमें कोई खास अन्तर नहीं रहा, क्योंकि भगवान केवली केवल विश्वके साक्षी हैं जाननहार हैं, इस कारण श्रुतज्ञानके अंशरूप निश्चय और व्यव-हारका कोई पक्ष नहीं है क्योंकि विषयको जानताभर है तो यहाँ भी ज्ञानीने यद्यपि केवल ज्ञानकी तरह प्रकट ज्ञानामात्रकी स्थिति तो नहीं पायी लेकिन उसकी केवल एक अखण्ड ज्ञानस्वरूप ही दृष्टि है, इस कारण वह भी नयपक्षको जानता भर है किन्तु ग्रहण नहीं करता। वह विकल्प मात्रको भी हितरूप नहीं समझता। तो ऐसी स्थितिमें इस ज्ञानीने इस परमार्थ चैतन्यस्वरूपको ग्रहण किया और बंधकी पद्धतिको दूर किया अब यह समस्त विकल्पोंसे दूर होता हुआ अपने आपमें उमंग ला रहा है कि यह जो आत्मस्वरूप अनुभूतिमात्र समयसार हूँ सो मैं इस अखण्ड समयसारका ही चेतन करता हूँ, मैं विकारमें नहीं पड़ता क्योंकि विकार मेरा स्वरूप नहीं, मैं बाहरी पदार्थोंमें न पड़ूंगा, क्योंकि ये सब प्रकट भिन्न हैं मैं तो अपने परमार्थ स्वरूपको ही चाहूँगा अर्थात् उस ही में यह मैं हूँ ऐसा अनुभव करता हुआ विश्राम पाऊंगा।

स्वकामन्न विकल्पभावमुल्लं पक्षैर्नयाना बिना सारोयःसमयस्यभाति निभृतैरास्वाद्यमानःस्वयम्।
विज्ञानैकरसः स एव भगवान् पुण्यःपुराणःपुमान् ज्ञानं दर्शनमप्ययं किमथवा यत्किञ्चनैकोऽप्ययम् ॥९३॥

७९३ स्वयंसमृद्ध स्वयंकी प्रतीतिका परिणाम=

ज्ञानी जीवने पहले तो समस्त विकल्पभावोंका उल्लंघन किया और अविकल्प भावका भी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उल्लंघन करता है मायने इससे भी परे होता तो सभी प्रकारके नयपक्ष इसके छूट जाते। न अभूतार्थका पक्ष रहा न भूतार्थका पक्ष रहा। वह तो अपने आपमें स्वयंका आस्वाद ले रहा है याने जब ज्ञानमें यह ज्ञानस्वरूप समा जाता है तो उस समय यह अपने ज्ञानस्वभावका ही स्वाद ले रहा होता। यह तो एक विज्ञानैकरस है, अर्थात् आत्मामें मिलेगा क्या? जैसे इन दिखने वाले पदार्थोंमें रूप, रस, गंध, स्पर्श ये मिलते हैं तो इस आत्मामें भी कुछ मिलना तो चाहिए, क्योंकि आत्मा सत् है। तो इस आत्मामें क्या तत्त्व है, क्या स्वरूप है आत्माका, तो बस एक ज्ञानमात्र। बस ज्ञानभाव। यह ही इसका एक स्वरूप है, ऐसा बिलक्षण पदार्थ है, यह समस्त पदार्थोंसे विलक्षण है, यह कैसा ज्ञानमात्र है, कैसा भावात्मक पदार्थ है कि एक सत्तावान है, जाननहार है, बस जानन ही इसका सर्वस्व स्वरूप है और है सद्भूत इस आत्मा में प्रदेश भी हैं, अपने आपकी सत्ता रख रहे। समस्त परसे भिन्न है ऐसा यह ज्ञानमात्र अन्तस्तत्त्व यह ज्ञानरससे भरा हुआ है, सो यह ही भगवान है, लोग प्रभुके दर्शनके लिए बड़े उतावले रहते है। कहते हैं-कहीं भगवानके दर्शन मिलें। तो वह भगवान् यह खुद साक्षात् भगवान है। तो इसका जो निज सहज स्वरूप है, अपने आपका जो कुछ भी स्वभाव है वह वही तो है जो प्रकट भगवन्तोंके हैं, जो अरहन्त और सिद्धका स्वरूप है वही हम आप सब आत्माओंका स्वरूप है। तो वह एक भगवान पुरुषोत्तम क्या है? ज्ञान और दर्शन। जो कुछ ज्ञानदर्शनात्मक चैतन्यस्वभाव है वह ही एक यह आत्मा-तत्त्व है। मैं क्या हूं इसका एक ऐसा दृढ़ निर्णय हो कि अन्य सब पदार्थोंसे निराला नजरमें आने लगे। समस्त अचेतन पदार्थोंसे तो जुदा है ही, पर चिदाभास विभावोंसे भी जुदा है यह प्रकट ज्ञानमें आये

७६४— आत्ममिलनमें दु:खका अनवकाश—

इस जीवको दु:ख कुछ नहीं है यह अपने आपमें सत् है इसका अपनेमें अपना परिणमन है। दु:खका क्या मतलब? हर एक पदार्थ भी तो ईसी तरह है, उनकी सत्ता है और उनका उनमें परिणमन है, ऐसा ही यह आत्मस्वरूप है। दु:खकी क्या बात है? कहाँ है गुंजाइश, पर कोई अपराध करे, है तो बिल्कुल प्रकट भिन्न अन्य सब वस्तु और माने कि यह मेरा है तो उसको तो कष्ट होगा ही। समस्त चेतन जीव मुझ जीवसे अत्यन्त भिन्न हैं। कोई कहे कि घरमें रहने वाले जीव उतने जुदे नहीं हैं जितने कि अन्य जीव जुदे हैं सो बात सही नहीं। जितने अन्य घर के लोग अन्य देशके लोग तथा कीड़ा मकोड़ा पशुपक्षी वगैरह ये जीव जैसे हमसे अत्यन्त निराले हैं ठीक उतने ही पूर्ण घरमें बसने वाले ये जीव है। यह तो एक उस गृहस्थकी अपनी अटकी हुई है कि उसका क्षुधा तृषा आदि में गुजारा बन सके सो एक कमेटी बना ली है। घर भी क्या है? एक गुजारा कमेटी। एक कमाने वाला है तो एक घरमें भोजनपानकी व्यवस्था बनाने वाला है, फिर और-और प्रकारके जो कुछ भी काम यह करता है उसकी ही ये सब परिस्थितयाँ हैं। सो गुजारा कमेटी है यों जानो परिवार में। उसका कुछ रच मात्र भी चित्तमें अज्ञान रहेगा तो उसका फल अनन्त संसार है, आज मनुष्य हैं और मरकर हो गए एकेन्द्रियवगैरह, तो सब मटियामेट हो गया। यहाँ तो सब कुछ जान रहे थे, ज्ञानकी बड़ी कलायें चल रहीं थीं, साहित्यिक ढग भी था। अपने भाव दूसरोंको बतादेना परके भाव खुद समझ लेना, ये सब बातें निभ रही थीं और फिर मरकर बन गए एकेन्द्रिय आदिक, तो जैसे कि मकान बनाया और ढा गया ऐसे ही एक मनुष्यभवमें आये इतनी उन्नतिके शिखरपर आये और गिर गए फिर भ्रमण करने लगे। तो इस मनुष्यभवमें एक बहुत बड़ी जिम्मेदारी है कि हम सबसे निराले अपने आपके स्वरूपमें यह मैं हूँ ऐसा अनुभव करें, सब कष्ट दूर हो जायेंगे। इन अन्य जीवोंसे, अन्य अचेतन

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पदार्थोंसे यह निराला है, भिन्न है, इससे मेरा कुछ सम्बन्ध नहीं, ऐसा दृढ़ निर्णय होनेसे बहुत सी आकुलतायें दूर होजाती हैं, तो शरीरमें भी अपनी एकदम भिन्नताका बड़ा अभ्यास हो जाय और एकदम स्पष्ट जुदा यह जीव दिखनेमें आये, और शरीरसे जुदा क्या, विकारोंसे भी जुदा। कर्म उदयमें आये हैं, उनका फोटो आया है वे सब परभाव हैं, उनसे भी निराला मैं ज्ञान स्वरूप हूं। ऐसा जब अपने सहज स्वरूपमें अपना निर्णय बन जाय कि मैं यह हूं, उसके लिए फिर कोई कष्ट नहीं है। जहाँ असावधानी हुई, सावधानी हटी कि दुर्घटना हुई। जहाँ किसी भी परमें अपना कुछ सम्बन्ध माना, समझा, बस वहीं से कष्ट होने लगा। सहज कोई कष्ट नहीं हम आपको। हम उपद्रव करते हैं और कष्ट पाते हैं, मोह और अज्ञान रखते हैं और कष्ट पाते हैं। सीधे सादे रहें जैसा स्वरूप है जैसा स्वभाव है उस ही रूप अपनी वृत्ति बनायें तो कष्टका वहां फिर कोई काम नहीं। तो ऐसा आपत्तिरहित केवल विशुद्ध चैतन्य स्वरूप यह इस भगवान आत्मामें जो पूर्ण है बस यह ही एक मात्र मेरा सर्वस्व है।

७६६—धर्मपरिचयसे धर्मपालनकी सुगमता—

धर्ममार्गपर चलना कठिन भी है सरल भी है। कठिन यों बन गया कि जब हम इन चर्म की आँखोंसे बाहर कुछ निरखते है, तो कुछ भीतरमें राग तो है ही, एक तृष्णा बन जाती है और जहां तृष्णा है वहाँ नियमसे कष्ट है, तो कठिन तो यों है आत्मकल्याणका करना, आत्मस्वरूप निहारना, तृप्त होना, दुःखसे दूर होना। मगर, जिसको दर्शन हुए, अपने प्रभुके जिसने अपनेमें अपना अनुभव पाया उसके लिए तो बहुत सरल है, वह जानता है कि मैं यह हूं इतना हूं अन्य कुछ नहीं हूँ तो उसे विकल्प नहीं जगते। तो यह ज्ञानी पुरुष अपने आपमें यह अनुभव कर रहा कि मैं ज्ञानदर्शनस्वरूप हूं अथवा जो कुछ हूं यह एक हूं। दृष्टिमें रख रहा है अपने स्वरूपको और अनुभव रहा है कि मैं मात्र यह एक चित् स्वरूप हूं।

दूरं भूरिविकल्पजालगहने भ्राम्यन्निजौघाच्च्युतो। दूरादेव विवेकनिम्नगमनान्नीतो निजौघं बलात्।
विज्ञानैकरसस्तदेकरसिनामात्मानमात्मा हरन्, आत्मन्येव सदा गतानुगततामायात्ययं तोयवत् ॥६४॥

७५६—स्वाभिमुख होकर स्वमग्नता पानेमें आत्महित—

जब ही इस जीवको अन्य सबसे निराले ज्ञानमात्र अपने सहज स्वरूपका अनुभव हुआ तब ही वह अनेक विकल्प जालोंमें जो भ्रमण कर रहा था उससे दूर हो गया, आंख खुल गई, भीतर का ज्ञान स्पष्ट हो गया। मेरा मात्र मैं हूं मेरा अन्य कुछ है ही नहीं। जिसने अपने आपके इस सहज स्वरूपका अनुभव किया वह अपने इस तेजसे प्रेम किए ही रहता है, जब यह ज्ञानस्वरूपकी दृष्टि न थी तो कहीं तो अपनापन मानता ही यह जीव। यह तो इसका गुण है श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र। तो अपनी सुध तो हुई नहीं, अपना परिचय तो हुआ नहीं, तो हुआ क्या कि अपने ही इस स्वरूपमें, उपयोगमें भूमिकामें जो कर्मविपाकके रस झलक रहे हैं उन्हें अज्ञानी अपना मान रहा और जब उन परभावोंको अपना मान बैठा तब यह मोही विकल्प गहनमें भ्रमण करने लगा। अपने आपका जो एक स्वरूप है उससे यह च्युत हो गया। ऐसा तो रहा आया अब तक, लेकिन ज्ञानका उदय होता तो किस तरह होता कि वह विवेकके द्वारा बहुत निम्न गमन करता अर्थात् अपने आपके आत्मा की ओर अभिमुख होता। बाहरके पदार्थोंमें उपयोग देना यह कहलाता है ऊपर ऊपर डोलते चढ़ते ऊंचे उड़ गए, लेकिन जब विवेक जगा तो उस विवेककी प्रकृति है निम्नगा अर्थात् वह नम्रताके

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ओर ले जाता है। तो इस तरह अपने आपके इस ही ओघमें रह गया, जिससे यह उपयोग निकला उसी में ही यह मिल गया। जैसे गर्मी के दिनोंमें सूर्यके सँतापसे समुद्रका पानी अपनी जगह छोड़कर ऊपर उठ जाता है, भाप बनकर ऊचे चढ़ जाता है तो जब तक वह ऊँचे चढ़ा है तब तक वह डोलता रहता है, गरजता रहता है, स्थिर नहीं होता, कहीं का कहीं दौड़ता रहता है, और जब उसका गर्व मिटता है अपने आपमें गम्भीर बन जाता है तो वह बरष पड़ता है और उस जलकी प्रकृति है निम्नगा, पानी नीचा स्थान मिले उस ओर बहे। तो यों बहकर वह पानी उसी जगह मिल गया जहाँ से वह उठकर बिछुड़ गया था, ऐसे ही यह यह उपयोग जो पहले अज्ञान संताप के कारण अपने ओघसे, अपने पिण्ड से, अपने स्वरूप से विकल्पों द्वारा हटकर बाहर उड़ गया था, अब विवेक पाया तो बरष कर अपनेसे आपमें यह अभिमुख हो गया। तो लो यह ही ज्ञान जो अज्ञान संतापसे अपनेसे हटकर बाहर उड़ गया था, अब विवेक पालेने से गंभीर बनकर यह अपनी ओर अभिमुख हो जाता हो है और अपने में मिल जाता है। अपना स्वरूप अपने से हटा, लो दुःखी हो गया अपना स्वरूप अपनेमें मिला लो शान्त हो गया।

७९६—ज्ञानैकरस अन्तस्तत्वकी उपासना में समृद्धिसिद्धि —

जिस समय आत्माका उपयोग अपने आपमें आता है तो बस एक ज्ञानरस रहता है, ज्ञानरस के स्वादमें कोई प्रकारका कष्ट नहीं और विकल्पोंके तनावमें कष्ट है, बरबादी है। देखो बड़ी सुविधा और मौजकी सारी बातें हैं। कष्ट जरा भी नहीं है। अपने स्वरूप को सम्हालें, उसमें अहं का अनुभव करें। और ऐसी प्रतीतिसे च्युत न हो तो इसका क्या बिगड़ता? गुजारेका कामकाज तो अपने आप चल रहा। गृहस्थीमें रहकर सारी बातें इसकी अपने आप उदयानुसार चल रहीं, कष्ट क्या ? और एक अपने आपको पाया तो अपनेमें एक ज्ञानरस बना, शान्त रहा, विकल्प नहीं रहते। तो ऐसा यह आत्मा अपने आपमें ही आ जाता है तब इसके सम्यक्त्व का अभ्युदयहोता है। मतलब अपनेको ज्ञानमात्र स्वीकार करलें तो सारे कष्ट मिट जायेंगे। मैं अपने आप में ही सर्वस्व हूं, इससे बाहर मेरा कुछ नहीं। ऐसा विश्वास बनालें फिर इसको कोई कष्ट नहीं। तो विकल्पोंका क्या करना? अपने आपके इस अखण्ड स्वरूपको दृष्टिमें लेना और ऐसा ही दृष्टिमें लिए रहना यह ही एक आत्माके उद्धारका सही उपाय है।

विकल्पकः परं कर्ता विकल्पः कर्म केवलम्।
न जातु कर्तृकर्मत्वं सविकल्पस्य नश्यति ॥९५॥

७९८—कर्तृत्वका तथ्य—

यह समयसार ग्रन्थकी आत्मख्याति टीकाका ९५ वाँ कलश है। यहाँ बतला रहे हैं कि कर्ता कौन जीव कहलाता ? कर्ता, अज्ञानी, मोही ये सब एक ही बाते हैं। यद्यपि वस्तुत्व दृष्टि से देखो याने सर्व वदार्थोंमें सामान्य निगाहसे देखें तो कर्ता कहते हैं परिणमने वालेको परिणति करने वालेको, याने एक पर्यायसे दूसरी पर्याय होनेका नाम है कर्तापन, मगर ऐसा कर्तापन तो सब पदार्थोंमें है, जो अचेतन है, पुद्गल है, धर्म अधर्म है, आकाश, काल है, सभी पदार्थोंमें परिणमन होता है और जो परिणमता है सो कर्ता है। तो जो बात सब पदार्थोंमें एक समान हो उस पर चर्चा नहीं होती, विधि निषेध रूपमें। कर्ता कौन है और कर्ता कौन नहीं है यहाँ ये दो बातें चर्चनीय चल रही हैं, किन्तु जहाँ विशेषता हो वहाँ दो बातें लगा करती हैं। तो यहाँ मलिनता और निर्मलताकी अपेक्षासे बात चल रही है। कर्ता कहते हैं अज्ञानीको। अज्ञानी ही कर्ता है, क्योंकि अज्ञानी सदा विकल्प करता रहता है। विकल्प करने

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

वाले को कर्ता कहते हैं। पर द्रव्यका कर्ता यहाँ नहीं समझना। अच्छा बतलावो एक द्रव्य दूसरे द्रव्यका क्या कुछ कर सकता है? आप ही हो, घरमें रहते हुये अनेक बातोंपर चिल्लाते भी हो, झल्लाते हो रूसते भी हो, डाटते भी हो, तुमने यों कर दिया, मैं यों कर दूंगा, यों कर दूंगा तो बताओ आप उस समय अपने भीतर ख्याल ही ख्याल कर रहे या चीजको भी बना रहे? किसी भी चीजको आप नहीं बना सकते। निमित्त भले हो कुछ, मगर प्रत्येक चीज बनती है अपने आपकी परिणतिसे, देखें तो इस निगाह से एक द्रव्य दूसरे द्रव्यका कर्ता है ही नहीं, चाहे अज्ञानी हो, मोही हो, मिथ्यादृष्टि हो, कोई भी जीव किसी दूसरे पदार्थको कुछ नहीं कर सकता। लोक सोचते कि मैं शरीरको यों तंदुरुस्त बनाऊँगा तो बना लो। मान लो आप ६०—७० सालके बूढ़े हो गए तो अब रोक लो इस बुढ़ापाको। शरीरमें बुढ़ापा न आने दो, उसे जवान बनाये रहो, क्योंकि आप तो शरीरका सब कुछ कर सकते ना? और अन्त समय आये तो यह हठ बनालो कि मैं तो यहाँसे न जाऊँगा। यहां तो बहुत हठ बनाया करते हैं, मैं इसको यों करूँगा, मैं मकान खाली न करूँगा, मैं यों करूँगा ··· अब जरा एक यह भी हठ बनालो कि मैं इस शरीरका न छोड़ूंगा। यह तो हठ आपकी बन जायगी कि मैं शरीरको न छोड़ूंगा क्योंकि यह शरीर छोड़ा, नया शरीर पाया, मगर यह हठ तो बना दो कि मैं इस शरीरको न छोड़ूंगा, इसी शरीरमें रहूंगा। यह हठ आपका चल जायगा क्या? न चल पायगा। यह शरीर छूटेगा। तो आपका किसी भी वस्तुपर कुछ अधिकार है ही नहीं, आप तो केवल ख्याल ही ख्याल बनाते हैं। तो जो पर वस्तुमें कुछ करने या बदलने का ख्याल बनाये उसे कहते हैं अज्ञानी, कर्ता। तो जो विकल्प करने वाला है उसका नाम है कर्ता।

७९९—कर्तृत्व अनर्थकारी अहंकार—

भैया, चीजको कोई न करेगा, विकल्पको ही करेगा और विकल्प करनेसे मिलेगा क्या? किसी आत्मामें कोई चीज आ जाय या धरी है, या आत्मा बड़ा बन जाय ऐसा कुछ होता नहीं, केवल ख्याल ही ख्याल होता। जहाँ गया वहाँ विकल्प, जिस भवमें गया वहाँ विकल्प, साथ कुछ नहीं है, चीज कुछ नहीं मिलनेकी। फायदा कुछ नहीं है, मगर अज्ञानी विकल्प कर रहा है! कोई करोड़पती अरबपती भी हो तो उसके पास एक छदाम भी है क्या? एक पैसा भी है क्या? रहेगा क्या, साथ चिपका है क्या? किसी परवस्तुका आत्मामें प्रवेश ही नहीं है। सब जीव एक समान है, अकेले अकेले अपने—अपने स्वरूपको लिए हुए सब जीव हैं, चाहे अरबपती हो चाहे करोड़पती हो, विद्वान हो, सब अपने अपने स्वरूपको लिए हुए हैं, इससे आगे इसमें कुछ है ही नहीं, पर व्यर्थका अहंकार, अभिमान, मूढ़ता बन गई है। यह ही रहस्य जिन्होंने जाना चाहे उन्हें कुछ करना पड़े, मगर जो एक तथ्य जाना गया उसे आकुलता नहीं। क्यों आकुलता नहीं? अरे बड़ेसे बड़े प्रतिकूल कार्य हो जाते हैं वे भी आप देखते हैं, आपको जो प्रिय हो—माता, पिता स्त्री पुत्रादिक, वे जब गुजरते तो आप बस देखते ही तो रह जाते। जान गए—यह हो गया। अब विकल्प करके कुछ दिन दुःखी हो लें यह बात तो आपकी अलग है, मगर उसमें आपका कुछ उठता है क्या? तो आपको बड़ी मानी हुई विपत्ति आती है वह भी आप सहते हैं। सहना पड़ता है तो ऐसे ही सब पदार्थोंके लिए कोई यह जान जाय पहलेसे कि जो भी पदार्थ मिले हैं वे सब एकदम भिन्न हैं, भिन्न जातिके हैं, मेरेमें उनसे कुछ सुधार बिगाड होता नहीं। केवल ख्याल ही ख्याल यह बनता। तो ख्यालमें बरबादी है। तो ऐसा तथ्यज्ञानी विकल्प जालसे लगाव छोड़ देता है। कल्याण तो इसमें ही है कि ख्यालात विकल्प छोड़कर एक शुद्ध ज्ञानस्वभावमात्र सामान्य चैतन्य यही उपयोगमें रहे, बस रक्षा जीवकी इसमें है। बाकी विकल्पोंमें जीवकी रक्षा नहीं है। तो जो विकल्पक है सो कर्ता और

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

विकल्प कर्म है, तो यह कर्ताकर्मपना तब तक चलेगा जब तक यह जीव विकल्प करता रहेगा।

८००—प्रभुभक्तिमें दृष्टव्य तथ्य—

हम आप भगवानके दर्शन करने आते, प्रभुमूर्तिके सामने आते, रोज रोज आते, दर्शन करके यह धुन, यह विकल्प, यह लगन नहीं बनती कि प्रभो सार काम तो यही है जो आपने किया, जैसे आप अकेले रह गए। केवलज्ञान सम्पन्न अपने आपमें लवलीन जो आपकी स्थिति है सार तो यही है और मुझे यह ही चाहिए, और कुछ न चाहिए, ऐसी बात चित्तमें नहीं उठती और काम सारे कर रहे, जितनी भी क्रियायें हैं, पूजा पाठ, चीज सामानका उठाना धरना, हाथ जोड़ना,सिर नवाना आदि सब कुछ कर जाते है मगर चित्तमें यह बात नहीं आ पाती कि हे प्रभो सारभूत बात तो यह है कि जो आपकी स्थिति है। और मेरे जैसे आप भी थे आपने उपाय बनाया तो आप इस परमपदमें आ गए। मुझे भी आना हैं, यह ही चाहिए। इतनी बात किसी के मनमें आती है क्या दर्शन करके, पूजा करके ? अगर नहीं आती तो आप समझ लो—कुछ लाभ पाया क्या ? अविकल्प होनेकी रुचि होनी चाहिए। मुख्य बात यह भी हो कि अपने इन सारे बिकल्प विचारोंको धिक्कारा दो। जो भी ख्यालात यहा आते, हैं, करते उन्हें धिक्कारा दो तब तो आपका ज्ञानपना है और जो ख्यालात बिचार आते, उनमें लग जाते और यह समझते कि उनसे तो मैं महान हुं, कैसी कैसी बात करते हो, सोचते हो, मैं इतता अद्भुत काम कर लेता हूं इससे ही सही मेरा बड़प्पन है, अरे भैया जो धिक्काराकी बात थी उसमें बड़प्पन मान लिया। यह इसकी कितनी बड़ी भारी भूल है और फिर यह कहे कि हम भगवानके भक्त है तो भला बतलावो वह प्रभुका भक्त कैसे कहा जा सकता है ? भगवानकी बात न मानें, भगवानकी स्थितिकी सराहना न करें कि आप बड़े अच्छे पदमें हैं, मुझे भी आप जैसी स्थिति चाहिये और कहें कि मैं तो भगवानकी खूब भक्ति करता हूं तो इस तरह काम कुछ न बनेगा।

८०१—अन्तस्तत्त्वके सही समाधानका सर्वोपरि महत्त्व—

सहज परमात्मतत्त्वके प्रति एक लगन चाहिए, धुन चाहिए और एक निर्णय बना लेना चाहिए कि इस जीवनमें मेरा सब जाय, तो जाय यहाँ की स्थितियोंमें मेरा गुजारा हो सकता है, मगर आत्माका श्रद्धान, ज्ञान, आचरण बिना मेरा गुजारा नहीं हो सकता। चने खाकर गुजारा हो सकता, क्या हर्ज है ? कई बार पानी पीना पड़ेगा, हाँ दूध घी न मिला। न मिला तो न सही, मगर अनेकों बार पानी पीकर गुजारा कर सकते। सब तरहसे गुजारा हो सकता, मगर आत्माके श्रद्धान, ज्ञान, आचरण बिना इस जीवका गुजारा नहीं हो सकता। तब आप तराजूके दोनों पलड़ोंपर धर कर एक तरफ धर्मध्यान और एक तरफ सोना चांदी वैभव धर लो, बोलो आपको कौन सा पलड़ा महत्त्ववाला जचेगा ? बस जचना चाहिए—धर्मका पलड़ा महत्त्वका है। अभी कुछ रहे या न रहै एक दिन ऐसा आयगा कि सब कुछ छोड़कर चले जायेंगे, पास कुछ न रहेगा। तो सब छोड़ने का पूरा निश्चिय है कि यह छूटेगा एक दिन, फिर उसमें जो एक लगन लगी—और धन वैभव बढ़ायें, अच्छा हुआ, या किसी समय कुछ घाटा रहा, व्यापार न चला, हाय यह हो गया यह हो गया—अरे ये सब बातें कुछ नहीं। जब शुभकर्मोदयवश मनुष्य हुए है तो इसका गुजारा भी चलेगा। गुजारा कोई भी ढंगसे चले वह विशेष चिन्ताकी बात नहीं है। चिन्ताकी बात तो यह है कि मेरे को आत्माका ज्ञान बने, आत्माके ज्ञानमें ही मेरा उपयोग रहा करे। अगर ज्ञानस्थ कुछ समय

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

गुजर जाय तो अपनेको धन्य समझें। बाकी अन्य चीजोंसे अन्य स्थितियोंसे अपनेको महान न समझें, धिक्कारा दें। तब वह पात्रता जगेगी कि हम अपने निर्विकल्प अभेद चैतन्य स्वभावमात्र परमात्म स्वरूपका अनुभव कर सकेंगे। विकल्पोंमें क्या रखा? विकल्प जाल तो आफत है। पड़ गया यह जीव चक्कर में। विकल्प बिनाकाम के हैं, आना जाना कुछ नहीं, रहना कुछ नहीं, अपना कुछ नहीं, मगर विकल्पजाल चल रहा, उसचक्की में दल रहा है और यह जल रहा, झुलस रहा, कर्मबन्ध कर रहा। यह साहस नहीं बनाता कि कुछ भी हो, उसमें मेरा बिगाड़ क्या? मैं तो अपने स्वरूपको तकूँगा, तृप्त रहूंगा। सोचते हैं अपने लिए कि हम तो सब कुछ कर लेंगे, गरीबीसे रह लेंगे थोड़ा खाकर रह लेंगे, सात्विक रह लें। सात्विक रह लेंगे मगर बच्चों का क्या करेंगे? स्त्रीको बच्चोंको, इनको सजाकर रखे बिना दुनियामें एक इज्जत न रहेगी। अब बतलाओ कि भाषामय परके लिए इन माया-मयपर जीवोंमें मायामय इज्जत रखनेके लिए अपने आपको कितना विकल्पविपत्तिमें डाला जा रहा है, होगा सब अपने आप। चक्रवर्ती भी कुछ कमाई कर लेता है क्या? छह खण्डका राज्य वह कहीं से कमाकर लाया क्या? अरे उदय आया ऐसा कि सब कुछ उसके वश हो गया। तो जिस वैभवको लोग पसन्द करते वह वैभव चाहनेसे नहीं मिलता, कमानेसे नहीं मिलता। देखनेमें आता कि कमाने से मिलता, मगर आपका पूर्व सुकृत उदयमें हो तो मिल जायगा नहीं तो नहीं। अरे बाहरी फोकट मिले तो क्या? न मिले तो क्या? अपने इस नग्न स्वरूपको तो देखो। जैसे कपड़ेके भीतर शरीर नग्न हैं ऐसे ही शरीरके भीतर आत्मा नग्न है। आत्मामें क्या चीज रखी हुई है। वह अमूर्त है। इस नग्नस्वरूपको तो देखो यह आत्मा अकेला है, केवल विचार बनाता, ख्याल बनाता, विकल्प करता, और कुछ नहीं करता,

८०१ शांतिके लिये आत्मसमाधानकी मार्गरूपता—

अपनी शान्तिके लिए अपने आत्माके ही विकल्प विचारमें सुधारकी आवश्यकता है। बाहरमें कुछ अन्य की आवश्यकता नहीं। बाहरकी बात स्वयं होती है, अपने आपका चिन्तन मनन स्वयं के पुरुषार्थसे होता है। तो जब तक जीव विकल्प वाला है तब तक इसके कर्ताकर्मपनेका विभाव दूर नहीं हो सकता, और जब कर्ता कर्मकी बात लगी है बाह्य वस्तुमें, मैं इसको करता हूं, मैंने यह कर दिया, मैं ऐसा कर दूंगा, तब सोचिये तो वह जीव कितना अन्याय कर रहा? पहला अन्याय तो यह कर रहा कि कि खुदको अज्ञानमें डाल दिया। विकट कर्मबन्ध किया उसका उदय आयगा तो क्या आसानीसे निपट लिया जायगा? अरे वह तो बड़ा विकटलगेगा। इस वजहसे इन विकल्पों से अपनेको महान न समझें महान समझें प्रभु जैसी स्थिति मिले उससे। निर्लेप निरञ्जन वीतराग अपने आत्माका अनुभव उससे तृप्त विशुद्ध ऐसा अपना परिणमन बने, उससे महान समझें और वर्तमानमें जो कुछ मिल रहा, किया जा रहा, संग है प्रसंग है, इससे अपनेको महान न समझें पहली बात यह ही निरखना है। प्रभुके दर्शन करनेसे, भक्ति करनेसे, पूजा करनेसे पहली बात तो यह सीखना है, यह अ आ इ ई है धर्मकी और प्रभु भजनकी धर्मपथमें एक प्रारम्भिक बात है। पहली बात यह सीखो कि प्रभो आपको ही स्थिति सारभूत है और मेरी जो वर्तमान स्थिति है वह सब निःसार है, अहितरूप है, मुझे यहां ही आना चाहिए मुझे तो यही चाहिए। मुझे तो यही चाहिए जो आपकी स्थिति है, एक अनुभवसे यह बात जानी चाहिये। वैसे कुछ भजन बन गये हैं, उन्हें आप बोल तो जाते है, यह बात नहीं कह रहे कि आप उन्हें मुखसे बोलते नहीं, प्रायः करके आप लोग गाते ही हो—आतमके अहित विषय कषाय, इनमें मेरी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

परिणति न जाय, यों सब कुछ बोल जाते, मगर भीतरमें उसकी लगन नहीं बनती। अपने विकार विचार कषाय, आदिमें घणा नहीं जगती कि ये सब अनर्थ हैं। सार्थक तो प्रभु स्वरूप है, ऐसी भीतरमें लगन नहीं बनती तो हमने क्या पूजा की, क्या भक्ति की, क्या दर्शन किया? कहां धर्म किया? विकल्प मात्र जीव के लिए विपदा है।

८०२ बाह्यवस्तुविषयक कल्पनायें छोड़कर अखंड सहज ज्ञानानन्दमय स्वरूपमें रमनेके पौरुषका अनुरोध—

बाह्य वस्तुके बारेमें ख्यालात बनेंगे तो उसका संसार दूर न होगा। कभी भी विकल्प करने वालेके कर्ताकर्मबुद्धि दूर नहीं हो सकती। यह बात इस प्रकरणमें चल रही है जहाँ आत्माकी बड़ी सूक्ष्म चर्चायें की जा रही थीं कि आत्मा अमूर्त है, सूक्ष्म है, गुप्त है, द्रष्टा है, जाननहार है, ऐसी भली बातें आत्माके बारेमें सोची जारही थीं, उन विकल्पोंको भी बुरा बताया जा रहा कि ये विकल्प भी जब तक हैं तब तक आत्माका अनुभव नहीं, तब फिर दंदफंदके, मोहके विकल्प हों उनकी तो बात ही क्या कही जाय! वह तो एकदम स्पष्ट आग है जिसमें झुलस रहे हैं ये संसारी प्राणी। एक इतनी बात तो आनी चाहिए, यहां जो कुछ भी बात बन रही है यह मेरा स्वरूप नहीं है, वह तो दूर होना ही चाहिए। और मुझे तो जो सिद्ध स्वरूप है, सहज स्वरूप है, विशुद्ध आत्मतत्त्व है, अकेला केवल रह जाना है, मात्र ज्ञाता दृष्टा रहना है यह स्थिति मुझको प्राप्त हो, ऐसी एक तीव्र लगन बना लें तो दुर्लभ मानव जीवन सफल हो जायगा और एक यह ही लगन न बनी तो चाहे कुछ भी बात बन जावे, पर उससे आत्माका कुछ भी भला होनेका नहीं है। तो ऐसी स्थिति पानेके लिए सारे जीवन भर घन्टा दो घन्टा प्रतिदिन ज्ञानमें, स्वाध्यायमें, आत्मतत्त्वके जाननहारकी संगतिमें अपना समय गुजारना चाहिए।

यः करोति स करोति केवलं यस्तु वेत्ति सतु वेत्ति केवलं।
यः करोति न हि वेत्ति स क्वचित् यस्तु वेत्ति न करोति स क्वचित् ॥९६॥

८०३ कर्तृत्व और ज्ञातृत्वका विश्लेषण—

जो कर्ता है वह कर्ता ही है और जो जानने वाला है वह जानने वाला ही है। जो कर्ता है वह जानता नहीं कभी, और जो जानता है वह कभी कर्ता नहीं। करना और जानना ये दो काम क्या हैं? यह जिसके ध्यानमें आ जाय उसके संसारके सारे संकट नियमसे छूटेंगे। वह महा भाग्यवान है, वह धन्य है जिसको करने और जाननेका भेद समझमें आ गया। बात क्या हो रही है यह जानियेगा तब भेद समझमें आयगा। अनादि कालसे यह जीव अशुद्ध भाव करता चला आ रहा है और कर्मबन्ध होता आ रहा है। जिन कर्मोंका बन्ध हुआ था, बंधते समय ही उस कर्मस्कन्धके ये चार भेद बन गए थे कि इस प्रकृतिका बन्ध है, इतनी स्थितिका बन्ध है, इस दर्जेका फल देने का बन्ध है अर्थात् उस कर्ममें इतने दर्जेका फल अनुभाग पड़ा हुआ है और इतने प्रदेशोंका बन्ध है, यह सब निर्णय उसी दिन उसी क्षण हो गया था जिस क्षण कर्मबन्ध हो गया था। अब उस कर्मकी स्थिति आयी उनका उदयकाल आया तो उदयकालमें उस कर्ममें ही कर्मके विपाकका विस्फोट हुआ। जैसे किसी विस्फोटक पदार्थको म्याद होती है, स्थिति पूरी हुई कि उसमें कट विस्फोट हो जाता है। तो यह कर्म विस्फोटक है। इसकी अब स्थिति पूरी हुई तो उनके विपाकका विस्फोट हुआ। तो कर्म में कर्मको एक भय वही मुद्रा बनी, क्योंकि निकल रहे हैं ना कर्म? जब कोई मौजमें सत्तामें रहा करता

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हो और उसका वहाँ से हटनेका अवसर आ जाय तो बड़ी खोटी मुद्रा, क्रोध, बिगाड़के साथ निकलते हैं, तो ये कर्म शान्त सत्तामें पड़े हुए हैं और भगवान आत्माके प्रदेशोंमें इनका निवास मिला है। अब जब इनका उदय होता है तो हटनेवाला, निकलनेवाला तो बड़ी एक भयावनी मुद्रा रखकर निकलेगा। तो कर्मविपाक इसीका ही नाम है कि जब इस कर्मका उदय अथवा उदीरणा होती है उस समय इस कर्ममें फल प्रकट होता है, विस्फोट होता है और उस कालमें चूंकि आत्माके साथ एक क्षेत्रावगाहमें है, निमित्त नैमित्तिक बन्धन है तो यह कर्मविपाक इस उपयोगमें इस भूमिकामें प्रतिबिम्बित हुआ, प्रतिफलित हुआ, उस कालमें यह जीव अपनी सुध भूल रहा है और उस प्रतिफलनमें, उस कर्मरसकी छायामें इसने मान लिया कि यह मैं हूं और जब उस कर्मविपाकमें इसकी श्रद्धा बन गई कि मैं यह हूं और अपने स्वरूपको इसने छोड़ दिया उपयोगमे तो जिसको जैसी श्रद्धा होती है उसकी क्रिया उसके अनुरूप हुआ करती है। जैसे जो यह मान बैठता है कि मैं इसका पिता हूं, दादा हूं, बाबा हू · · · तो उस तरहकी उसकी मन, वचन, कायकी क्रिया हो बैठती है, तो ऐसे ही जब इस अज्ञानीने उस कर्मरसके प्रतिफलनको माना कि मैं यह हूं तो बस क्रोध, मान, माया लोभ विकल्प आकुलता, विह्वलता, व्यग्रता, कुछ ठिकाना न रहना, चिन्तित रहना ये सब क्रियायें बनती हैं। तो जो इस इस तरहका विकल्प कर रहा है उसे कहते है करना और जानना क्या होता है ? इस तथ्यको समझ जानेके कारण कि यह कर्मरस झलक रहा है यह सब कर्मका नाटक है, मै तो चैतन्यस्वरूप हूं, ज्ञानमात्र हूं जाननहार हूं, मेरा स्वरूप अडिग है, मेरेमें कोई बाधा नहीं है, मैं अपने स्वरूपमें ही हूं, ऐसे विश्वासके कारण वह स्वरूप जान रहा है, और कभी यह ज्ञानी कर्मफलनकी ओर चिन्तन करे तो उसे भी जान रहा है, कि यह कर्मरस आया।

८०४ कर्तृत्व और ज्ञातृत्वके विश्लेषणके प्रतिबोधकविषयमें एक नाटक दृष्टान्त—

कोई नाटक हो रहा हो और उसे देखने वाले दार्शनिक लोग जब उस भावमें आ जाते हैं कि यह तो सही बात हो रही है यह नाटक है, जो घटना हुई थी, जिसका नाटक दिखाया जा रहा उस घटनापर दृष्टि देता है और उस ही मे एक नेक बन जाता है तो वह कभी रो पड़ता, कभी हस पड़ता याने वह दर्शक बिह्वल हो जाता, और जो दर्शक यह समझ रहा कि यह तो फलानेका लड़का है, यह बड़ी होशियारीसे अपना पार्ट अदा कर रहा है, अभी यह काम किया था, अब यह कर रहा है इस तरहसे कोई जान रहा हो तो वह रोनेकी बातमें भी रोवेगा नहीं क्योंकि वह तथ्य जान रहा है कि यह तो खेलका नाटक है अमुक का लड़का है, इसमें कितनी होशियारी है, ऐसा जब कोई दार्शनिक समझता तो वह रोवेगा नहीं, और जो दार्शनिक यह समझता कि देखो कितना गजब हो गया, कितनी गड़बड़ कर रहा, जब इस तरह उस घटनाको ही सही समझ रहा है तो वह रो पड़ेगा, तो ऐसे ही जिसने उस कर्मरसको, उस प्रतिफलनको यह मान लिया कि यही सही तो मैं हूं, तो वह कर्ता है, अज्ञानी है, मोही है, व्यग्र होता, आकुलित होता, संसारपरम्परा बढ़ाता, और जब यह मान लेता कि यह अमुक कर्मरस है तो वह मजाक जैसा हसता है, यह कर्मलीला हो रही, उसमें व्यग्र नहीं होता। ज्ञानी दोनों तरफ जान रहा है, अपने आपके स्वरूपको जानता कि मैं ज्ञानस्वरूप हूं, प्रतिभास मात्र हूं, निर्विघ्न हू, मेरे में कुछ दूसरा आता नहीं, मेरे में कुछ गड़बड़ी नहीं, जो सहज है, वही सही हूं, ऐसा ज्ञानी स्वको जान रहा है, और इससे बाहर जाने तो वहाँ उस कर्म घटना पर हंस रहा ज्ञानी। कैसा कर्मरस, कैसी लीला, यह कर्मका नाटक है, अब यह फलानी प्रकृतिका उदय है, विपाक इस प्रकार चल रहा है, ऐसा तथ्यज्ञाता पुरुष उसमें व्यग्र नहीं होता, क्योंकि उसमें उसने मोह नहीं किया। तो अब समझ लेना

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

(कलश ९६)

चाहिए कि जानन किसे कहते और करना किसे कहते ।

८०५— कर्तामें ज्ञातृत्वका अभाव और ज्ञातामें कर्तृत्वका अभाव—

जो करेगा सो बरबाद हो जायगा जो जानेगा सो आबाद रहेगा । केवल जाननहार रहना बस यह ही मोक्ष मार्ग है, यही आत्माको शान्ति पानेका उपाय है । तो अब समझ लीजिए कि दो प्रकार के जीव रखें सामने, एक तो ऐसा मनुष्य जो उस कर्मरसमें आपा मान रहा, मग्न हो रहा बही मैं हूं, ऐसा एक अध्यवसायमें आ गया और अपने स्वरूपकी सुध कुछ भी नहीं है ऐसा जीव कुछ विकल्पमें रच रहा और उस कर्मरसको अपनानेकी श्रद्धामें नाना विसम्बाद भी बना रहा । रोता है, हँसता है सुख दुःख मानता है, कोई दो चार मित्रजन बैठे गप्प कर रहे हों, हंस रहे हों, अच्छा हो रहा, यह क्या हो रहा? उस कर्मरस में आया कि उसने श्रद्धा की तो उसके अनुकूल क्रिया भी करेगा । कभी कोई विपत्ति आ गई, घबड़ा गया, रो रहा, क्या कर रहा ? अरे जैसी उसकी श्रद्धा है उसके अनुकूल काम हो रहा । तो एक तो पुरुष ऐसा है, इसे कहते हैं करनहार, करने वाला, जो विकल्प करे, अपनी सुध भूले और बाह्य पदार्थोंमें मग्न हो जाय उसे कहते हैं कर्ता, और जाननहार किसे कहते हैं ? जो स्वरूपका जाननहार है उस कर्मविपाकका जाननहार है वह कर्मविपाकको अपनाने वाला तो होता नहीं है । कोई जब ज्ञानी जाननहार है यहाँ देखा तो यों जाना, वहाँ देखा तो जाना, जब स्वरूपको निरखा तो जाना, बस तृप्त ज्ञानानन्दमात्र हूं, सहज प्रतिभास मात्र हूं, इसमें कुछ अटक ही नहीं, किसी परका जब प्रवेश ही नहीं तो इसमें कोई बाधा ही नहीं, ऐसा निर्बाध स्वरूप हूं ऐसा अनुभव करता है ज्ञानी । देखो ऐसा जाननेके साथ उसके सारे संकट एक तरफ हो गए । दूर हो गए, जब कुछ अगल बगल देखा तो वह कर्मरस, उसका नाटक, उसकी लीला, उसकी विचित्रता सबको मजाकपूर्वक देख रहा कि यह हो रहा, यह कर्ममें जल रहा, यह कर्ममें चल रहा । कर्मकी बातें ही समझमें कर्म में आये तो ऐसा पुरुष कहलाता है जानहार । तो जो कर्ता है वह जानता नहीं, जो जानता है वह कर्ता नहीं, अच्छी प्रकार अन्तर समझ लीजिए । कोई विकल्प करने वाला है बस उसकी दुनिया और हो गई । कर्मरस, कर्मविपाक अशुद्धता ,व्यग्रता, अपनेसे हटकर अन्धेरेमें पहुचना, बस वहाँ यह गुम हो रहा । यह उस मायामयी दुनियामें पहुच गया जो कर्ता है । और, जो जानता है अपने अन्दर अपनेको जानता है, अपने अगल-बगल भी उस कर्मरस को जानता है, तो ऐसा जाननहार पुरुष धीर है, वीर है, शूर है, निर्दोष है, तृप्त है, उसे कुछ करनेको पड़ा ही नहीं है । वह अब भी समझ रहा है कि मैं बस आत्मसर्वस्व पाये हुए हूं । कुछ अटका ही नहीं, व्यग्रता आये कहाँ से ! तो जो जाननहार नहीं, । जो कर्ता है वह केवल कर्ता ही है, जो जानता है वह केवल जानता ही है ।

८९६— ज्ञाता और कर्तामें विलक्षणता—

देखो दोनों ही पुरुषोंकी घटना समझ लो । जाननहार क्या कर रहा और करनहार क्या कर रहा ? जाननहारमें क्या हो रहा, करनहारमें क्या हो रहा । तो जो कर्ता है वह जानता नहीं, जो ज्ञाता है वह कर्ता नहीं । जो कर्मरस है, जो कर्मका प्रतिफलन है, छाया बनी है, बड़े विचित्र ढंगसे वह कैसे ? बाहरी ज्ञेयोंको तो हम समझते हैं, जानते हैं कि यह है, मगर कर्मका विधान ज्ञेय होता है वह और ढंगसे । बुद्धिमें नहीं आ रहा, और उसके अनुकूल दिमाग बन गया । यहाँ तो हम भी पत्थर आदि जो कुछ भी जानते तो जाननेमें आ तो रहे हैं, फिर चाहे राग करें या द्वेष करें, विपाक यो जाननमें न आकर वेदनमें आते हैं । कैसा एक विचित्र ढंग चल रहा । कुछ भी कहो, जो अपनी सुधसे हटा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

और उस कर्मके फलमें लगा ऐसा पुरुष कर्ता है, मगर जानता नहीं। जानता होता तो करता क्यों ? जो इस दुनियाके तथ्यको जान जाय, बाहरकी दुनियाकी बात में आस्था क्यों करेगा ? अपने अन्दरके रहस्यको जो जाने कि है क्या और दोनों जगह हो क्या रहा है इस तरह जो एक अपने अन्तर्गत तथ्य को जान जाय, वह आत्मा तो जाननहार है, करनहार नहीं। तो जो कर्ता है वह जानता नहीं और जो जानता है वह ज्ञानी है अतःकभी कर्ता नहीं।

८०७— कर्ता बननेमें या ज्ञाता बननेमें समृद्धिके निर्णयकी गवेषणा—

अब अपनेमें निर्णय बनाओ कि तुम्हें कर्ता बनना है या जाननहार ? अज्ञ पुरुषोंमें तो उमंग ऐसी रहती है कि मैंने किया था, मैं कर दूंगा, यह काम किसी दूसरेके वशका नहीं है, मैं ही कर सकता हु, यहां तो मैं और करना ऐसा खूब दंभ चल रहा तथा कर मैंने की बात कहनेमें, करनेमें, प्रयोग में उसको उमंग मच रही और सभी पुरुष करनेके प्रोग्राममें भीतर प्रगतिकी कामना करते हैं, मैंने अभी इतना काम किया अभी इतना और करूँगा, यह तो मामूली सी हमारी करतूत है। अभी अभी तो बहुत बातें करनेको पड़ी हैं, उन्हें भी करके दिखाऊंगा। किस किस प्रकारकी कल्पनाओंमें विकल्पजालोंमें यह मनुष्य डूबा हुआ है। ऐसे विकल्पोंमें मग्न पुरुषोंको क्या कहा जाना चाहिए था ? अज्ञानी, मोही, दोषी संसारी, बेहोश, बेचारा, अशरण, अनाथ आदि अनेक शब्दोंमें कहो। उनकी कौन रक्षा कर सकेगा ? तो दुनिया तो करनेमें मग्न हो रही है, बोलो ऐसा करनहार ही बनना है, क्या उसका फल है संसारमें जन्म मरण करते रहना, कुत्ता, गधा, बैल, भेड, बकरी, कोडा मकोड़ा आदि बनते रहना। जब फल सुनायेंगे तब तो एक बार चित्त कह ही उठेगा कि मुझे करनहार नहीं बनना है मगर जब करनेकी उमंग होती है अज्ञान वसा है तो उसके फलमें दृष्टि नहीं रहती है कि इसका क्या फल भोगना पड़ेगा। वह तो करने की धुनमें रहता है। तो करनहार बननेका तो है दुर्गति फल और जाननहार बननेका क्या फल है ? शान्त निरञ्जन निरुपद्रव, निर्विघ्न होना जिसमें किसी का प्रवेश नहीं जिसमें कोई धक्का नहीं लगा सकता। क्योंकि जो अपने स्वरूपका और इस कर्मरसका भेद जान चुका, बिल्कुल भिन्न बातें हैं तो अब इस जानकारीको रोकेगा कौन ? बतलाओ इसमें कोई दूसरा बाधा डालेगा कौन ? तो जो जाननहार है कि यह मैं ज्ञानानन्द स्वरूप हूं और यह सब कर्मरसका फोटो हैं, मनुष्य भी बन गए पर वह ज्ञानी पुरुष अपनेको मनुष्यभी नहीं मान रहा। ज्ञानी तो अपने को एक अमूर्त चैतन्य स्वरूप मान रहा। यह तो निमित्तनैमित्तिक योगका एक मायामय दृश्य है, मैं मनुष्य नहीं हूँ, तो जो अपने आपके यथार्थ स्वरूपका जाननहार है उसे व्यग्रता किसकी ? मानो अचानक खबर मिली ज्ञानी गृहस्थको कि इस फर्ममें इस साल एक लाखका घाटा हो गया तो वह मुस्करा कर हंस देगा कि यह तो बाहरमें बाहरकी बात है, यहाँ था अब दूसरी जगह चला गया। यह धन वैभव इस जगह पड़ा था अब दूसरी जगह चला गया, अपनेमें वह बाधा नहीं समझता। क्या बाधा है ? इस बातको वह तुच्छ समझता है कि कम वैभव होगा तो लोगोंमें इज्जत क्या रहेगी ? अरे जिन लोगोंमें इज्जतकी बात सोच रहे वे खुद विपत्तिमें पड़े हुए हैं। ये सब मनुष्य जब अज्ञानमयी कल्पनाओंमें गुजर रहे हैं तो ये तो सब बेचारे हैं, दयापात्र हैं, अज्ञानी हैं, बेहोशीमें पड़े हैं। भला यहाँ भी किसी को यह इच्छा जगती है क्या कि मैं इन कठिन दुःखियोंमें तुच्छ लोगोंमें, भिखारियोंमें बड़ा अच्छा, श्रेष्ठ माना जाऊँ ? मैं बड़ा अच्छा कहलाऊं ऐसी कोई अभिलाषा रखता है, क्या ? मोही जीव भी अभिलाषा रखते हैं तो यह कि मैं इन अधिकारियोंमें, अपने पुरा पड़ोसियोंमें, समाजमें,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अच्छा कहलाऊँ । मैं इन दुःखियोंमें, तुच्छोंमें कुछ अच्छा कहलाऊँ, ऐसी तो कोई यहाँ इच्छा नहीं रखता तो अब समझो कि सारा संसार, सारे प्राणी, सभी मनुष्य बिरले ही २–४ को छोड़कर ये सब दुःखी हैं, अज्ञानी हैं, बेहोश हैं, इन्हें कुछ पता नहीं, ऐसोंमें कोई इज्जत क्यों चाहे कि ये लोग मुझे अच्छा माने ? उनके अच्छा माननेसे बनेगा क्या ? कौन सा सुधार बन जायगा ? तो जो जाननहार है, ज्ञानी जीव है, तथ्यका ज्ञाता है उसे किसी परिस्थितिमें उद्वेग नहीं होता । मान लो लाखोंका टोटा पड़ गया, निर्धन हो गया, उससे कोई उद्वेग नहीं, क्योंकि वह तथ्यका ज्ञाता है ।

८०८—असली नाटक और नकली नाटक—

लोग नकली नाटक देखनेके लिए, उसकी टिकट लेनेके लिए लाइन बनाकर खड़े होते, रात्रि भर आँखे फोड़ते, बड़ा परिश्रम करते, धन भी खर्च करते । जिसका फिल्म बना है, जिसका नाटक खेला जा रहा है, वह कोई घटना ही तो थी, तो वह घटना जो हुई थी वह है असली नाटक । हम आप अपनी जिन्दगीमें जो काम कर रहे हैं सुबहसे साम तक, यह है हमारा असली नाटक । और जो सुबहसे लेकर साम तक असली नाटक खेल रहे उसको देखनेकी उमंग किसीको नहीं होती और इसीका अगर फिल्म दिखाया जाय तो उसमें भीड़ हो जायगी । अरे जो असली नाटक खिलता रहता है उसके दर्शन क्यों नहीं करते ? और उस फिल्मके दर्शन करने क्यों जाते ? जो असली नाटक कर रहा वह बाहरमें होने वाले नाटकको देखेगा ही क्यों ? वह तो यह समझेगा कि हम ही नाटक करने वाले हैं, दूसरेका क्या नाटक देखना ? जो इस नाटकका करनहार है, अपने स्वरूपका देखनहार है उसे व्यग्रता क्यों आयगी ? क्योंकि नाटक ही नाम उसका है– न अटक सो नाटक । संधि करें, यानें अटको नहीं, जिसमें अटकना न चाहिए उसे कहते हैं नाटक । क्या कोई ऐसा भी मूर्ख होगा जो नाटकमें अटक जाय ? याने नाटक शब्द तो मना कर रहा यह कोई मायाकी चीज दिख रही, इसमें न अटको, मगर यह मन ही कहता कि हम तो अटकेंगे । ऐ रागद्वेषादिक भाव, तुम ही हमारे प्रिय हो, श्रेय हो सब कुछ हो, सा मोही जीव समझता । तो अपना नाटक देखो । नाटक याने अटको नहीं, देखते जावो ।

८०९—भ्रम समाप्त करके शान्त शुद्धज्ञाता रहनेमें कल्याण—

स्वभावके अतिरिक्त जो भी जितनी बातें हैं उन सबके प्रति चिन्तन करें, मनन करें, उनको धिक्कारें कि यह सब कर्मलीला है, इसमें मेरा कुछ भी नहीं है, मैं तो एक जाननमात्र हूँ, इसे कहते हैं जानन, और एक अपनी सुध न रहे और जो कर्म उदयमें आये, क्रोध, मान, माया, लोभ, इच्छा आदिक जो जो भी विकार इसके फोटोमें आये, उसे ही जो सर्वस्व मान बैठे उसे कहते हैं करनहार । जो करनहार है सो जाननहार कैसे हो सकता है ? वह तो उन वैभवोंमें मग्न है । जो जाननहार है सो करनहार कैसे हो सकता है । भला जिसने दूर पड़ी हुई रस्सीको साँप समझ लिया तो वह तो घबड़ायगा । अरे साँप निकल आया, अब न जाने मेरा क्या हाल होगा । यों बहुत घबड़ायगा और जिसने जान लिया कि यह तो कोरी रस्सी है, सांप नहीं है, तो उससे कहो कि जरा तुम घबड़ाकर दिखाओ तो सही, जैसे कि पहिले घबड़ा रहे थे, पसीना भी आ गया था, काँप गया था, घबड़ा गया था, जरा ऐसा करके अब भी तो दिखा दो । तो वह वैसा करके नहीं दिखा सकता । तो जैसे भ्रम करने वाला पुरुष कभी शान्त नहीं रह सकता इसी प्रकार सही जानने वाला पुरुष कभी घबड़ा नहीं सकता । यह ही बात यहाँ है कि जो अपनी सुध भूल कर कर्मरसमें मग्न हो गया वह है कर्ता । जो करनहार है वह जान नहीं सकता और जो जाननहार है, जिसने सही–सही जान लिया कि यह रस्सी है, साँप नहीं, यह कर्मरस है मेरा स्वरूप

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

नहीं, ऐसा जिसने जान लिया वह अब घबड़ा सकेगा क्या? वह तो शान्त, धीर, सूरवीर रहेगा, वह घबड़ाता नहीं। अब समझ लो कि जाननहार रहनेमें कल्याण है और करनहार रहनेमें जन्ममरणका कुचक्र है। अब जो इच्छा हो सो अपना निर्णय बना लो। यहाँ प्रकरण चल रहा था कि यह जीव नयपक्ष करता है और उसमें भी आत्मा सूक्ष्म है, अमूर्त है, एक है ऐसी ऐसी बातें भी कही गई हैं और उन तत्त्वोंको मना किया गया हो तो विकल्पोंको ही मना किया गया, उसके लिए यहाँ कहा जा रहा है कि जो पक्षसे अतिक्रान्त हो गया वही समयसार अमृतका पान करता है और फिर यहाँ के इन मोहियोंमें जो कर्ता बन रहा है उसकी तो दशा ही क्या कही जाय? तो अब समझ लीजिये कि अपनेको कर्ता नहीं बनना है, विकल्प करनहार नहीं बनना है अज्ञानी नहीं बनना है। कर्मरसमें स्वभावमें भेद करके ज्ञाता बनना है। ज्ञाता बननेमें ही अपने आपकी भलाई है।

ज्ञप्तिः करोतौ न हि भासतेऽन्तः ज्ञप्तौ करोतिश्च न भासतेऽन्तः।
ज्ञप्तिः करोतिश्च ततो विभिन्ने ज्ञाता न कर्तेति ततः स्थितं च ॥९७॥

८१०— ज्ञप्ति और करोति का विवरण—

जानन किसे कहते हैं और करना किसे कहते हैं यह तथ्य ऊपरके कलशसे जान लिया होगा। जानना नाम है आत्माके सहज स्वरूप अखण्ड चैतन्यभाव, वह ज्ञानमें आये और करना नाम है निज अखण्ड स्वभावकी सुध न होकर बाहरी कमलीलाओंमें, कर्मरसोंमें अपना उपयोग लगाना। तो जानने की क्रिया किस तरह होती? यह जीव अपने आपके स्वरूपमें ही है और अपने आपमें ही परिणम रहा है, सारी क्रियायें अपने आपमें कर रहा है मगर जानन क्रिया कैसी निरपेक्ष है, अपने आपके स्वभाव से उठी हुई है, इसमें परकी रंच भी अपेक्षा नहीं, जिसे कहते कि कुछ करना ही नहीं पड़ रहा, कुछ श्रम नहीं हो रहा, बस जो है सो है, विश्राममें बना हुआ है। अब चूंकि पदार्थका स्वभाव है ऐसा कि यह कुछ परिणमन निरन्तर करता ही रहे। सो यह आत्मस्वभावके कारण अपने आपमें एक प्रति भास क्रिया, हो रही है, यह तो है ज्ञप्ति क्रिया और अब दूसरी ओर देखो तो उपयोगमें खुद कुछ नहीं है पर अन्य अन्य रूपसे अपने आपका अनुभवन चल रहा। मैं सुखी दुःखी मैं रंक राव। मेरे गृह धन गोधन प्रभाव। मेरे सुत तिय मैं सबल दीन, बेरूप सुभग मूरख प्रवीन॥ अन्य अन्य नाना रूपों से अपने आपका अनुभवन चल रहा है। मैं सुखी, मैं दुःखी, धन वैभव परिवार आदिमें कैसा लगाव चल रहा। परिजन तो, कुटुम्बीजन तो मेरे उपयोगके आश्रयभूत हैं और चल रहा है लगाव इसका अपने विभावोंमें, मै सबल हूं, दीन हूं, रूपवान हूं, कुरूप हूं.. अपने आपके शरीरमें इतना झुक रहा। और मूरख प्रवीण। अपने गुण उसे इस तरह जच रहे इस अज्ञानीको, इस करने वाले को, जो करोति क्रियामें मग्न हो रहा है। इस तरहके मिथ्या विकल्प चल रहे हैं, तो यह कर क्या रहा है? हो रहा है सब आत्ममें ही, पर किस मुख होकर हो रहा है, कैसी धुन और तानसे हो रहा है किस प्रकारकी परिणतियाँ चल रही हैं। बाहरी पदार्थ इसके उपयोगमें आश्रयभूत हैं और अपने आपमें जो छाया है, माया है, जो छा गया, कर्मोदय कर्मविपाक, कर्मरस जो इसमें छा गया, बस उस रूप अपना अनुभवन बनाना यह है करोति क्रियाका काम।

८११—आत्माके मूलधनका प्रताप—

करोति क्रिया में भी ज्ञान मदद दे रहा है अर्थात् आत्मवस्तु ज्ञानस्वरूप न हो, कछ जानने की बात वहां न हो तो करोति का ही विकल्प कहाँ से आये? उस ज्ञानकी उस सुध ही नहीं जिस ज्ञानके

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रतापसे वह करनेके विकल्पमें मौज मान रहा है। जैसे भोजनलुब्ध थोड़े से नमकके प्रतापसे पकौड़ीके लोभमें उस नमककी याद नहीं करते और दिख रहा जो यह पिण्ड है पकोड़ी बस उसकी उसी पर ही दृष्टि है, उसी में स्वादका अनुभव करता है इसी तरह विषय, कषाय, इच्छा, अभिलाषा आदिक नाना विकल्प मचते हैं और जिन विकल्पोंमें रहकर यह जीव राजी हो रहा है उनमें प्रताप किसका है? इस जाननका, ज्ञान का। वह ज्ञान जानन वहाँ साथ है। तो जिस ज्ञान के प्रतापसे भीतरसे एक प्रेरणा हुई है, एक प्रतिभास है जिसके बिना करोति को भी अवकाश नहीं मिलता देखो क्रिया भी आ गई, विकल्प आ गए उस ज्ञानकी सुध नहीं है, और मैं क्रोध करता हुं, मान करता हूं, लोभ करता करता हूं माया करता हूं, अध्यवसित हूं इन कषायोंमें एक अभिमान होने से उस ही रूप क्रिया इसकी बन रही है। तो अब यहाँ ध्यान दीजिए कि जानन क्रिया और करन क्रिया, ज्ञप्ति और करोति इन दोनोंमें कितना अन्तर है, तो जैसे कोई बड़ा योगी हो संन्यासी हो और दूसरा कोई गुंडा हो तो उन दोनोंमें साफ अन्तर नजर आता है। ऐसे ही ज्ञप्ति क्रियामें अर्थात् केवल शुद्ध जानन मात्र क्रियामें और इन नाना प्रकार की विचित्र क्रियाओं में कितना अन्तर है। ज्ञप्ति क्रियायों में कितना अन्तर है। ज्ञप्ति क्रिया शान्त रस से भरी हुई है और करोति क्रिया नाना आकुलताओं से भरी हुई है। आखिर दो भिन्न क्रियायें हैं ना? ये दोनों क्रियायें आत्मा में एक साथ नहीं हो रही है, किसी आत्मा में करोति क्रिया हो रही, जो बहिरात्मा है, मूढ है, अज्ञानी है वह करोति का धनी है और जो तत्त्ववेदी है, ज्ञाता है, स्वरूपका रुचिया है वह ज्ञप्ति क्रिया का रुचिया है तो इस ज्ञानीकी क्रिया में और उस अज्ञानीकी क्रियामें कितना अन्तर है, तब कह देना कि ज्ञप्ति में करोति नहीं बसी और करोतिमें ज्ञप्ति नहीं बसी 'सन्मार्गमें कुमार्ग नहीं और कुमार्गमें सन्मार्ग नहीं। अतः सन्मार्गके आधारको, स्वरूपको देखो।

८१२ करोति से हटकर ज्ञाप्ति में आने के लिये आत्म करुणा करने का अनुरोध—

कुछ जस अपने पर करुणा करके देखो तो सही कि इन २४ घन्टों में हम कभी ज्ञप्ति क्रिया भी करते हैं क्या? या करोति क्रिया ही निरन्तर कर रहे हैं। धन वैभवमें इतना अधिक मोह छाना, अपने परिजनोंको माना कि ये दो मेरे सर्वस्व हैं, और जीवोंको गैर मान लेना, ये सारी उन्मत्त चेष्टायें हैं, ये सब बहिरात्मापनकी चेष्टायें हैं, ऐसे विकल्पों में रहते सुनते यह क्या अपनी ज्ञप्ति क्रियाका शुद्ध आनन्द ले सकता है? नहीं ले सकता। जिन्होंने ज्ञप्ति क्रियाका विशुद्ध आनन्द लिया है वे ही अरहन्त हो पाये, वे ही सिद्ध हुए और सदा के लिए सर्व संकटोंसे मुक्त हुए। रास्ता ही यह है, जैसे आपको घरसे मन्दिर जानेका रास्ता हो एक है रोज रोज वहीं से गुजरते हैं ऐसे ही मोक्ष महलमें पहुंचनेका रास्ता केवल एक ही है—अपने आपके भीतर एक ज्ञप्ति क्रियासे हटना। अपने आपके उस स्वच्छ चैतन्य चमत्कारमें अपना विश्राम पाना, भीतर ऐसा विशुद्ध परिणाम यह ही मोक्ष का मार्ग है। मोक्षका मार्ग दूसरा नहीं। निर्ग्रन्थ हुए, नग्न हुए, मुनि हुए, दिगम्बर हुए निश्चयतः मोक्षका मार्ग यह नहीं है, पर मोक्षमार्गका जो रुचिया है, मोक्ष मार्ग में जो चलेगा उसे सबका वैराग्य रहेगा, तो ऐसी स्थितिमें वह परिग्रहसे लदेगा नहीं। उसका परिग्रह छूटेगा। जब एक ज्ञान-स्वरूप अन्तस्तत्त्व का रुचिया बना है कोई, उसकी ही तो धुनके कारण उसके वस्त्र हटेंगे, घर छूटेगा, अकेला विचरेगा, क्योंकि उसकी धुन ज्ञप्तिकी लगी हुई है तो उस धुनियाकी ये बाहरी बातें बन जाती हैं और मात्र इन बाहरी बातोंमें, भेषमें ही थोड़ा ऐसा योग मिलता है कि आत्म ध्यानमें और भी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

विशेष चले मगर जिसको आत्मतत्त्व की धुन नहीं, समाजमें, पुरुषों में स्त्रियों में सेठोंमें, लोगोंमें मिलना जुलना, बात करना, उसमें खुश होना यह बात जहाँ पायी जाती हैं वहाँ क्या आप सम्यक्त्वकी भी कल्पना कर सकते कि इसको सम्यग्दर्शन हुआ और जिसको सम्यग्दर्शन नहीं उसे मुनि माना जा सकता है क्या ? मुनिपना क्या कहलाता है ? एक आत्मतत्त्वका प्रकृष्ट रुचिया, उसकी ही धुन, वह असंयमी जनोंसे बात नहीं करता, ये आगमके वाक्य हैं। यदि कोई ऐसा आवश्यक काम पड़ जाय, कोई साधु समाधिमरणमें है उसके लिए कोई बात करना है तो बात करेगा। गप्प करना तो बहुत दूर बात है क्योंकि आत्मतत्वकी धुन लगी है, ऐसा पुरुष मोक्षमार्गी है, और जो जान जानकर निर्ग्रन्थ रूप धारी समझ समझ कर कि मुझे मुनि बनना है मुनि बननेसे अच्छी आवभगत है उसके क्या मोक्षमार्गचल रहा है। मोक्षमार्ग बाहर मेंनहीं है, अन्तः परिणाममें है। बड़े-बड़े ऋषिराज हुए, उन सबके आत्माकी बड़ी धुन थी और इस जानन क्रिया के अनुभवमें उनका समय गुजरता था और इसी कारण उनके अनेक ऋद्धियाँ प्रकट हो जाती थीं, जिनका उन्हें स्वय को भी पता न रहता था। ऐसे अन्तस्तव कीं धुनमें निर्ग्रन्थ भेष होता, और जिन्हें आत्मतत्वकी पहिचान नहीं वे विषय कषायादिक रूप ही रहे आये तो वहां मोक्ष मार्ग नहीं है। जो निर्ग्रन्थ थें उन्होंने भी शरीरकी ममता छोड़ी इस द्रव्यलिंगसे, इस मुनि भेषसे अपना उपयोग हटाया, इस मुनि होते हुए भी उन्होंने इस मुनि वेष की खबर नहीं रखी, इसकी याद नहीं की किन्तु एक ज्ञान-स्वरूपकी अंतस्तत्वकी धुनमें ही रहे तब उन्हें मुक्ति प्राप्त हुई। मोक्षमार्ग कहाँ है ? बाहर नहीं, अपने आपके आत्मतत्व में ही है, तो जानन क्रिया और करण क्रिया इन दोनोंका अन्तर जानें। ये हो रहे आत्मामें ही। थोड़ा मुख मोड़नेकी बात है, अपने सहज स्वरूपकी ओर जिन्होंने अपना उपयोग मोड़ा जानन क्रिया बनी और स्वरूप से विमुख होकर जिन्होंने कर्मरस को ओर मुख किया उनके करोति किया बनी।

८१३ करने का विकल्प तजकर जाननहार रहने में ही भलाई—

हमें यह करना है, वह करना है यह पड़ा है, यह, करूँगा। करूंगा विचार कर यह अपना जीवन खो देता है और मरूंगा, मरूँगा, मरूँगा, इसका कुछ ध्यान भी नहीं करता। यह है इस अज्ञानी जीवकी एक आदत। आत्मप्रदेश में ही ज्ञान और अज्ञान है, कहीं बाहर शरीरकी क्रियामें ज्ञान और अज्ञानका भेद नहीं। अपने आपमें उपयोग दें, अपने आपका आनन्द लूटें। बाहरी ममता छोड़ें यह सब संग प्रसंग रहनेका नहीं, अनादि कालसे अब तक क्या क्या नहीं किया। धनी हुए प्रतिष्टा पायी, राजा बने पर कुछ रहा क्या साथ ? और इसी भव में क्या क्या इसने भोग सुख, नहीं भोगे मौज नहीं माना। बचपनसे लेकर अब तक की जिन्दगी में समझ लो कहाँ कहाँ मौज मानते रहे अपने को इन्द्र तुल्य माना, सबसे महान माना, खूब मौज रहा, भोग विषयोंका बड़ाबड़ा सुख नहीं भोगा पर अब बताओ इस समय कि आपके आत्मामें कुछ है क्या ? सभृद्धि हुई, सुखी हुआ, शान्त हुआ ? तो इतनी निर्दयता तो न रखना चाहिए अपने आपपर 'दूसरोंपर निर्दयताकी बात नहीं कह रहे, अपने आपपरही दया लावो और इस कर्मरस में लीन होकर अपने को बरबाद करना और उसमें यह मानना कि मैं बड़ा चतुर हूं बुद्धिमान हूं ऐसा अपनें कोमानना यह तो बड़ी मूढ़ता है। अपने स्वरूप का उपयोग छोड़कर कर्मरस में उपयुक्त होना और उसमें अपनी बुद्धिमानी समझना यह चतुराईहै कि मूर्खता ? बुद्धिमानी तो ज्ञानवानपना में अर्थात् यथार्थ यथार्थ जानने में है। अपने को सही देखें, सही जानें, मैं वास्तवमें अपने आप निरपेक्षतया क्या हूं ? एक चैतन्य चमत्कारमात्र आनन्दरससे भरा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हुआ । इसे हिलावो डुलाओ नहीं । अगल बगल उपयोग किया और यों इसे हिलाया डुलाया तो यह तो दुःखी होगा, कष्ट मानेगा शान्त अपने सहज स्वभावको देखो, विश्रामसे रहो, आनन्द मिलेगा

८१४ मोहकी कुटेवमें आत्महत्या—

अच्छा चौबीसों घन्टे मोह करते हैं, परवस्तु चित्तमें लादे रहते हैं कि मैं अमुक हूं, मेरा यह घर है मेरी यह माता है, मेरी यह स्त्री है, मेरा यह पिता है···जो उपयोगमें बाह्य पदार्थोंके प्रति ममता लगी रहती, बताओ एक आधमिनट को अगर यह ममता न करें तो ये कुटुम्बीजन गुजर जायेंगे क्या ? क्या घर गिर पड़ेगा ? आपका धन कहीं भाग जायगा क्या ? सब ज्यों के त्यों रहेंगे, पर जरा एक मिनटको भी ममता नहीं हटा सकते । भले ही किसीकाम में उपयोग लग जाय ओर घरकी खबर न हो, दूकानमें खूब दूकान चल रही, बातें हो रहीं, रूपये पैसे गिन रहे उस समय आपको कुछ ख्याल है क्या परिवारके लोगोंका, मगर भीतर में ममता खतम हो गई है क्या ? नहीं । सम्यग्दर्शन हुए बिना ये अहंकार ममकार समाप्त नहीं होते और जब तक अहंकार ममकार है तब तक अपने आप पर निर्दयता है । वह अपने आत्माका हिंसक है, अपने आपको बरबाद करनेके लिए कषायी है । सो विचित्रता देखो कि अपन आप अपनेपर कुल्हाड़ी मार रहे हैं और हँस खेल रहे हैं । अरे यह सब संगम कुछ नहीं रहना है । हर भवमें आप नई पाटी पढ़ते हैं, अगले भवमें जायेंगे, कहीं होंगे, कुछ फिर ममता बनेगी । नई पाटी फिर पढ़े, जिसमे खतम हुआ वह तो मिट गया, दूसरे भव में गया वहां नये प्रसंग मिले तो नई पार्टीकी फिर ममता बन गई इतने बीचमें भी ममतारही । ममता खतम नहीं होती है, वह भीतर बीज पड़ा हुआ है, केवल नये–नये अंकुर उत्पन्न हो रहे है । जैसे गन्ना वो देने पर भी दो तीन साल तक उसे खोदा न जाय तो उसमें अंकुर तो बनें, मगर बीज हैं भीतर तब ही बनें । ऐसे ही एक भव छोड़कर नये भवमें जाना है तो छोड़े हुए भवका कुटुम्ब वैभव मकान आदिक सब पड़े रह गए । यह गया दूसरेभव में । वहाँ अब नई चीज मिलेगी । नई तो कुछ नहीं है, अनादि काल से अनन्त बार भोगा, पर वियोग हो गया फिर मिले । अब उसमें नई ममता, नई पाटी बढ़ गई, बीज ममताका पड़ा हुआ है, ऐसी कठिन दशामें रह रहा यह जीव जिसको अपना होश नहीं । वेदना पा रहा, ऐसी तो यह अपनेपर निर्दयता कर रहा और अपना घात करते हुए भी अपनेमें व्यर्थ मौज मान रहा । उपयोग पर सदा लदा रहता है वैभव मकान धन धाम पुत्र आदिक, ये मैं हूं, और ये जगतके जैसे अनन्त जीव हैं वैसे ही तो ये घरके दो चार जीव हैं अनन्त जीवोंमें और घरमें बसे हुए जीवों में कुछ फर्क है क्या ? हाँ है । जिन्हें गैर माना वे इसके दुःखके कारण तो नहीं बने और जिन्हें अपना मान लिया वे दुःख के कारण बन रहे, फर्क यह मिलेगा और दूसरा नहीं । तो ऐसा अहंकार ममकार जो उपयोगपर चढ़ा हुआ है उसमें भलाई है क्या ?

८१५ धर्मके नामपर की जानेवाली मोहमयी चेष्टावोंसे भी लाभ का अभाव—

धर्म के नामपर भी बातेंहैं—जैसे कोई दान भी करे तो पहले सब गुन्तारा सोच लिया जाता कि इसमें कितना नाम होगा, कहाँ कहाँ के लोग जान पायेंगे । वहाँ भी ममता मिटी क्या ? त्याग हो सका क्या ? प्रथम तो त्यागकी बुद्धि ही नहीं जगी बल्कि यह मेरा धन है, मेरा अमुक है, यह घट जायगा और देंगे भीतो पहले सब सोच लेगेकि इसमें हमारा इतना यश हो सकता, इतना बड़ा नाम हो सकता बोलो ममता हटी क्या? धर्म करने आते, पूजा कररहे, लोग कहते कि यह रोज रोज पूजा करते बड़े अच्छे हैं,,बड़ी भक्ति है, यों तारीफ सुनकर अच्छा लग रहा है, इसलिए पूजा करने आते । वहाँ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बतलाओ धर्म हो सका क्या ? धर्म तो ज्ञानभाव से होता और वह गुप्त होता है । धर्मात्माके जानन क्रिया जो साथ चलती है, वह ऐसी धुनमें है कि शुभ विकल्प पूजादिकिए बिना रहेंगे नहीं याने भीतर से चलकर क्रिया होनी चाहिए । अगर यह हो तो आपका पूजा त्याग सफल, दान सफल, तपश्चरण सफल । औरबाहर में धर्म मानकर उस क्रिया में चले तो मोक्षमार्ग तो नहीं मिलता । फिर तो ऐसा है कि जिसको धानके भीतर रहने वाले चावलकी खबर नहीं उसने पड़ोसके किसी दूसरे सेठको देखा कि यह धानके व्यापारसे इतना अधिक धनी बना तो उसकी देखादेखी किसी धान मिल से धानके छिलके उसी भावमें खरीद डाले जिस भावमें धान थे । उसे तो धानके रूपका पता था, उसके भीतर स्थित चावल का नहीं । देखा होगा कि कुछ मशीनें ऐसी भी होती है जिनमें धान कूटने से चावल निकल जाता है और छिलका समूचा रह जाता है । तो उसने वह छिलका खरीद तो डाला धानोंके भाव में, पर बेचा तो घाटा हुआ । तोवह घाटा क्यों हुआ ? इसलिए कि आन्तरिक चावलका उसे पता न था, ज्ञान न था जो कि धानके भीतर चॉवल होताहै। ठीक इसी प्रकार जो अजानी जीव अपने आत्मा के स्वरूपका ज्ञान नहीं रखता वह बाहरी क्रियाओं में उलझ जाता और उससे कुछ लाभ नहीं उठा पाता । नग्न भी हो गया, तपश्चरण भी खूब किया, एक बार खाया, ईर्यासमितिसे चला,—बाहरी सब क्रियायें कर डालीं, पर सहज एक आत्माकी सुध न होनेसे वह मूढ़ रहा, बहिरात्मा रहा । वह भीतर शान्ति न पा सका, मोक्षमार्ग में वह चल न सका बढ़ न सका ।

८१६ अन्तः यथार्थ ज्ञानप्रयोगमें ही धर्मका लाभ—

भैया धर्मके लिए कुछ भीतर ही प्रयोग करना है भीतर ही समझ बनाना है। विशुद्धजानन क्रिया क्या है, उसको समझें । और नहीं तो सबका ख्याल छोड़ दें, विश्रामसे बैठ जावें, ऐसी ही सरलता अपनावें तो बस अपनेको निरखकर यह मैं ज्ञानमात्र, बाकी सब कर्मरस है कर्मलीला हैं, उनमें मैं क्यों जुटूं ? जो ऐसा सोच रहा है कि कर्मरस में भी में क्यों जुटुं, उसका इन बाहरी पदार्थों का जोड़ना तो छूट ही गया । जब वह कर्मरस में ही जुटना नहीं चाहता तो इस में जुटेगा क्या ? उसको तो एक सही जाननक्रिया की स्थिति होती है । तो यह जाननकी क्रिया और विकल्पकी क्रिया इन दोनों में परस्पर विरोध है । ज्ञप्तिमें करोति नहीं जब करोति में ज्ञप्ति नहीं ये दोनों ही क्रियायें परस्पर भिन्न हैं तो यह निश्चित होगया कि जो ज्ञाता है वह कर्ता नहो, जो कर्ता है वह ज्ञाता नहीं, कर्ता मत बनो । सर्व जगत के ज्ञाता मात्र रहो तो इसमें अपने आपको रक्षा है और यह ही अपने आपकी बड़ी विभूति है । कर्ता कर्मणि नास्ति नास्ति नियतं कर्मापि तत्कर्तरि, द्वन्द्व विप्रतिषिध्यते यदि तदा का कर्मकर्तृस्थितिः । ज्ञाता ज्ञातरिकर्म कर्म कर्मणिसदा व्यक्तेति वस्तुस्थितिनैंपथ्येवतनानटीतिरभसामोहस्तथाषप्येष किम् ।१८।

८१७ परकर्तृत्वकी असंभवताका संस्मरण—

कर्तृकर्माधिकार अब सम्पूर्ण होने वाला है । तो जो बात पहलेसे उठाई गई थी कि यह जीव किसी परपदार्थका कर्ता नहीं है, पुद्गल कर्म का कर्ता नहीं है । इस तथ्य को उपसंहारमें कहा जावेगा । देखो ये जो सन्सारी जीव हैं मनुष्य, पशू पक्षी आदिक ये सब तीन पदार्थों के पिण्ड है जीव, कर्म और शरीर शरीर की बात होती जा रही , कर्म में कर्म की बात होती जा रही है और जीव मेंजीव की बात होती जा रही है । इन तीनोंकी बात जुदी जुदी नहीं मालूम होती इस अज्ञानी जीवको, और इन तीनोंके पिण्डोलेमें ही यह मैं हूं, ऐसा अनुभव करता है । कोई रास्तेमें कुछ बोझा लादे जा रहा था , थक गया, कुछ देरको नीचे रख दिया अब वह उठाये तो अकेले उठे नही । किसी से

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कहा भाई बोझा उठा दो तो वह कह देता मैं क्यों उठाऊं ? देखो शरीरमें कितना मोह बसा है कि इसे जरा भी कष्ट नहीं देना चाहते बड़े आरामसे इस शरीरको रखना चाहते । दूसरे के चाहे गये छोटे छोटे कामों में भी में ऐसा क्यो करूं इस प्रकार सोचता है । अच्छी बात है, कुछ भी न करें उसकी तो महिमा हैं, मगर कर तो रहे सब कुछ पर शरीरमें इतना तीव्र मोह है कि छोटे छोटे काम भी दूसरेका करना नहीं चाहते ।देहमें यह जान करके कि मैं यह हूँ और मैं अपनी देहको तकलीफ क्यों दूं ? इतना इसको मोह बस गया हैं तो मुख्यतासे बताया जा रहा है कि जीव पुद्गल कर्मका कर्ता नहीं है और पुद्गल कर्म जीवकाकर्ता नहीं, बात दोनों ओरसे है। पुद्गल कर्म जीवका कर्ता नहीं है यह बात इसमें बतायी गई है ।

८१८—विकारको ज्ञानविकल्प व पौद्लिक समझ लेनेका प्रभाव—

लोग झट समझ जाते हैं कि रागद्वेषको पुद्गल कर्मने किया । देखो जो लोग ज्ञानमें कुशल नहीं है वे कुछ नहीं समझ पाये । यह भी समझना चाहिए कि रागद्वेषका करनेवाला जीव नहीं है, पुद्गल कर्म है और यह भी समझना है कि रागद्वेषको पुद्गल कर्म नहीं करता, जीव करता है । सुननेमें तो आ रहा होगा कि दोनो परस्पर विरोधी बातें हैं लेकिन ज्ञानी इतने संतुलनसे समझ रहा है कि वहाँ विरोध नही है । राग नाम किसका ? जो ज्ञानमें विकल्प आया, जो ज्ञानमें दशा बदली, जो ज्ञानमें बात समा गई उसीको ही तो रागद्वेष कहते हैं । तो ज्ञानके इस प्रकारके परिणमनको ज्ञानके विकल्पको ऐसे रागद्वेषको कर्म करता कि जीव ? कर्मविपाक निमित्त है और परिणमने वाला जीव ही है ऐसा क्यों समझनेकी जरुरत है कि कहीं यह न मान लिया जावे कि कर्म इस जीवकी रागी बनाता है तो अब जीवका इसमें वश क्या है ? वह तो कर्मकी दशा है । कर्म जब जीवको छोड़ें तो उसे छुट्टी मिले, कर्म न छोड़ें तो छुट्टी न मिले । ऐसा मान लेने पर तो जीव कायर हो जायगा, बिल्कुल गिर जायगा, मैं कुछ करनेमें समर्थ ही नहीं, फिर तो जेसे अन्य लोग ईश्वरको मानते हैं कि ईश्वर सब जीवोंको सुखदुःख पुण्यपाप कर देता है, जीव उसमें क्या करे ? यह ही दशा इस कर्मवादीकी होती है तो मोक्ष मार्गके प्रकाशके लिये कहा जा रहा है, समझाया जा रहा है, कि रागद्वेष तो ज्ञानविकल्पका नाम है और ज्ञानके विकल्प, ज्ञानकी बदली हुई दशामें जानकारी आदिक इनको तो यह जीव कर रहा है । यह तो जीवको परिणति है । समझ जाय, चेत जाय, तथ्य जान जाय तो विकार विकल्प न करेगा । लो उसको पुरुषार्थका मौका मिल गया । अच्छा और एक भेद समझनेके लिए कि यह मैं जीव समग्र परभावोंसे निराला हूँ, केवल चैतन्य स्वभाव मात्र हूँ, यह तथ्य समझनेके लिए यह बात जानना आवश्यक है कि राग द्वेषादिक जो विकार हैं सो ये उदयमें आये हुए कर्मकी छाया मात्र हैं, ये मेरे स्वरूपसे नहीं उठे हुए हैं, तब ये कर्मकृत हैं, कर्मविपाक हैं, नैमित्तिक हैं औपाधिक हैं, पर भाव हैं, इन्हें मैं नहीं करता । इन्हें तो कर्म करता है और कर्मके ये परिणमन हैं । जैसे किसी बीमारकी चिकित्सा करनेवाजे वैद्यको बड़ा होशियार होना चाहिए । दवा दे रहा उस दवामें एक साथ ही गरम दवा भी और ठंडी दवा भी चल रही है । कौन कितनी मात्रामें, किस ढंगमें देना चाहिए, यह कुशल वैद्यको विदित है, अगर उल्लघन हो जाय उसका तो रोगीको तो बड़ा कठिन पड़ेगा । समझना पड़ेगा सब अन्दरमें ही, सारा नाटक एक अन्दरमें ही चल रहा है । यह कर्मरस, कर्मके उदय हैं, इसमें मेरा क्या मतलब ? और जब कभी ऐसा अज्ञान बस जाय कि इन सबको तो कर्म ही करता है जीव इसमें क्या करे, तो यह अनुचित औषधि बन गई, वहां समझना होगा कि आत्मा ज्ञान—स्वरूप है, वह ज्ञानके विकल्प करता है उस फोटोका उस छायाका सम्बंध पाकर ज्ञानका उल्टा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

विकल्प कर दिया गया । यह जीव ज्ञानको ही करता है तो सही ज्ञान बनायें और उल्टा ज्ञान छोड़ देवे तो छुट्टी मिल जायगी । ऐसे ही इन सब तथ्योंका इस परिच्छेदमें उचित वर्णन हुआ ।

८१९—ज्ञानविकल्पोंसे वस्तुविज्ञान करके ज्ञानविकल्पोंको तजकर ज्ञानमात्र अनुभवनमें आत्मलाभ—

तथ्योंका प्रकाश करते-करते अन्तमें यह कहा गया कि ये दोनों ही नय पक्षपात हैं कि जो कुछ भी सोचे वह सब पक्ष है । सोचें तो जरूर । सोचे बिना आगे बढ़ न सकेंगे । चिन्तन मनन करें मगर चिन्तन मनन करने पर सब कुछ समझ लिया तो अब वह समझ ही समझ बनाये रहना है क्या या उस समझ विकल्पको छोड़कर एक विश्राम लेना । कोई आदमी रसोई बनाता है तो बनाता ही बनाता जाता है क्या या बना चुकने पर अच्छी जगह पाल्थी मारकर अच्छी प्रसन्न मुद्रा बनाकर थालीमें कटोरेमें खुद परोस कर खाने का मजा भी लेता है ? खूब तो परिश्रम किया, लकड़ी जलाया, गर्मी सहा, धुवाँ भी आँखोंमें लगा, हाथ भी जले, बहुत-बहुत काम तो किया, यह ही काम वह दिन भर करता रहेगा क्या ? या ठसकके साथ बैठकर थाली सजाकर उसके खानेका भी ध्यान है ? बोलो इसमें तो कह दोगे कि रसोई बनातेही नहीं रहना है, ऐसी क्या पड़ी है ? खानेका भी आनन्द लेना है । ऐसेही इन सब तत्वोंका स्वरूप जान लिया, जान रहे, समझ रहे, विकल्प कर रहे, परख रहे, युक्तियाँ लगा रहे, आगम का प्रमाण दे रहे, तो ऐसाही जिन्दगी भर करते रहना है क्या ? या सब कुछ जाननेके बाद इन सब जानन विकल्पोंको भी छोड़कर विश्रामके साथ ज्ञानमें ज्ञानोपयोगको बसाते हुए उस विशुद्ध ज्ञानपरिणाम का आनन्द लेना है ? तो उस आनन्दलाभके लिए अन्तिम दो तीन गाथाओंमें बताया गया कि व्यवहार नयका कोई पक्ष ले तो वह भी विकल्प और निश्चयनयका कोई पक्ष ले तो भी वह विकल्प । उन समस्त विकल्पोंसे हटकर एक ज्ञानस्वभाव मात्रको अनुभवमें लेना और उस सिलसिलेमे बताया कि देखो अपने भीतर जो झलक हुई, कर्मरसमें उपयोग दिया और उसे माने कि यह मेरा है उसे तो कहा है कर्ता और जो कर्मरसको मजाकके साथ देखता है ओह यह हो रही है उसकी लीला और अपना सहजस्वरूप उपादान बुद्धिपूर्वक रुचिपूर्वक अभिमुख होकर निरखता है वह कहलाता है ज्ञान ।

८२०—स्वयंपूर्ण पदार्थोंमें एकमें दूसरेकी कृतिकी असंभवता—

ज्ञातृत्वमें कर्तृत्व नहीं, कर्तृत्वमें ज्ञातृत्व नहीं, यह बात बतायी गई अज्ञानी और ज्ञानी जीवके निश्चय परिणमनमें । आखिर जो जीव कर्ता हो रहा है और अभी बताया गया था कि वहाँ पर द्रव्यके कर्ताकी बात नहीं बतायी गई किन्तु झलके हुए कर्मरसमें यह मैं हूं, मैं करने वाला हूँ उसको मैं कहकर उस क्रियामें अहंकार रखने वालेको कर्ता कहा है । आखिर इस प्रकरणमें सूक्ष्मसे सूक्ष्म समालोचना करते करते अन्तर तक पहुंचे । अब चूँकि कर्तृकर्माधिकार पूर्ण हो रहा है तो जो सबसे पहले बात उठायी थी उनका उपसंहार करते हुए कह रहे हैं । तो यहाँ सीधे दो द्रव्योंकी बात लेना चाहिए । कर्ता मायने अज्ञानी जीव, कर्म मायने ज्ञान वरणादिक पुद्गल कर्म । कौनसा जीव कर्ता ? अज्ञानी जीव । अज्ञानी जीवभी पुद्गल कर्मका करने वाला नहीं है, यह बात भी कहीं अगर कोई अज्ञानी ऐसा मान बैठे कि यह मकान मेरा है तो वह मकान उसका हो जायगा क्या ? अगर माननेसे वैसा बन जाय अज्ञानीको तब तो फिर वह अज्ञानी भगवानसे भी बढ़कर हो गया । क्या है अपना मानलो, मगर अपना माननेमे कोई अपना बनता है क्या ? अज्ञानी इसी बातसे तो दुःखी है कि वह परको अपना मानना छोड़ नहीं सकता और पर अपना बन सकता नहीं । उसके सामने बहुत बड़ी गहरी यही तो समस्या है । तो अज्ञानी जीव भी पुद्गल कर्मका कर्ता नहीं वह तो अपने विकल्पोंका ही करने वाला है कितना भेद है दो द्रव्योंमें

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जबकी कितनी अपने आपकी पूर्णता है, स्वतंत्रता है। कोई एक द्रव्य का त्रिकाल भी कुछ परिणमन नहीं कर सकता, उसकी परिणति नहीं कर सकता। तो फिर यहाँ मोही जीव मैं इसको यों बना दूँगा इन बच्चों को इतना पढ़ा लिखा दूंगा इतना होशियार बना दूँगा यह व्यर्थ का अध्यवसान है।

८२१ कर्त्तव्य और प्रतीतिका वातावरण—

देखो आप घरमें रहतेहैं, आपके बच्चे पढ़ते हैं, आप उनके प्रति विकल्प करते है, हैं, उनका पढ़ना बनता है यह तो ठीक है, और घर में इसी ढंग में सुख शान्ति है, बच्चों को सूखे रखने में खुद भी कैसे अच्छी तरह रह सकेंगे। बच्चे पढ़ लिख जायेंगे, अच्छी कमाई करने लगेंगे तो यह बाप चिन्तामुक्त होगा, लौकिक हिसाब से बात कही जा रही। सो काम तो यह होता है, मगर जिसकी श्रद्धा में यह बसा है कि मैं पढ़ाता हूं, मैं पढ़ा दूंगा तो इस श्रद्धा के कारण भीतर में उसके चोट निरन्तर रहा करती है कर्तव्य बात और है, अज्ञान की बात और है। कर्तव्य में क्लेश नहीं अज्ञान में क्लेश है। कर्तव्य में कोई बच्चा यदि मूर्ख है, बुद्धि में कमजोर है, वह नहीं पढ़ पाता तो यह बाप उसके पीछे दुःखी तो नहीं होता। वह जानता है कि इसका तो उदय ही ऐसा है इसको जो होगा वह इसके कर्म की बात है। दुःखी नहीं होता और जो अज्ञान में रहता है मेरा यह बच्चा है, मैं इसे पढ़ाकर रहूंगा और वह पढ़ता है नहीं, उसके पास बुद्धि है नहीं तो वह दुखी होता है, माथा धुनता है, हाय मेरे इतना बड़ा पापका उदय है, मैं तो मर गया। जो अज्ञानी होगा सो यों मरेगा ही। तो भीतर में जिसका ज्ञान बिलकुल स्पष्ट है—मैं मैं हूं, मैं अन्य कुछ नहीं करता मैं अपने परिणाम को ही भोगता हूं, अन्य कुछ नहीं भोगता, इस प्रकार जो अपने आपके भीतर स्पष्ट है उसको कष्ट नहीं। स्पष्टता में कष्ट नहीं। तो यह समझना कि प्रत्येक द्रव्य मात्र अपने अपने परिणमन को करता है, कोई किसी दूसरे का परिणमन नहीं करता। प्रकरण में यहाँ जानो, ये दो पदार्थ रखे आलोचना करने के लिये। जीव कर्ता और पुद्गल कर्म। अज्ञानी जीवका नाम है कर्ता। कर्ता कर्म में नहीं है और कर्म कर्ता में नहीं है यह बात पूर्णतया निश्चित है, दो पदार्थ हैं उनमें एक दूसरे को कैसे प्रवेश करेगा? तो जब दोनों परस्पर स्वतंत्र जुदे हैं तो उनमें कर्त्ता कर्म की बात बताना कैसे युक्त हो सकती है? कर्ता कर्मपना वहां ठहर ही नहीं सकता तो हो क्या रहा? अब जो ऐसा जान गया वह आत्मा जो अज्ञान अवस्था में कर्ता था सो अब। ज्ञाता हो गया सो यह नहीं रहा ज्ञाता ज्ञाता में रह रहा है और कर्म कर्म में रह रहे, बात तो वहाँ भी ऐसी ही है। अज्ञानी जीव भी अपने आप में रह रहा है, कर्म कर्म में रह रहे है, पर इस तथ्य को जानने के बाद यह जीव तो ज्ञाता बन गया जाननहार, बिलकुल स्पस्ष्ट बात है। अब यहाँ नजर आ रहा है कि ज्ञाता ज्ञाता में रह रहा है और कर्म कर्म में रह रहा है, यह विशेष स्थिति एकदम व्यक्त है।

८२२—निष्पक्ष ज्ञाता रूप नेपथ्य में मोह भेषी के नाचनेपर आश्चर्य—

आचार्य कहते हैं खेद के साथ, आश्चर्य के साथ, कि जब ज्ञाता ज्ञाता में है, कर्म कर्म में है तो फिर इस नैपथ्य में बड़े बेग के साथ यह मोह नच कैसे रहा है? नाटक में आप जानते होंगे, नैपथ्य याने नाटक में पार्ट करने वाले और हैं और और नैपथ्य वाला कोई दूसरा ही है। तो वह रहता है ज्ञाता की भांति और पार्ट अदा करने वाले रहते हैं कर्ता की भाँति। तो जहां नाटक करने वाले पार्ट अदा करने वाले हैं उनमें तो करना, नचना, खेलना, हंसना पीटना, मारना चल रहा है, पर जो नैपथ्य में बैठा है, उस पर्दे के पीछे उस नाट्य भूमि से अलग जो बैठा है उसमें तो कोई पार्ट अदा नहीं हो रहा, वह तो सीधे से पीछे उस घटना का चित्रण कर रहा है, तो ऐसे ही जब कर्ता कर्म का भेद जान लिया द्रव्यकी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

स्वतंत्रता पहिचान ली, ज्ञाता बन गया 'अब तो वह एक नेपथ्य की तरह है। पार्ट अदा करने वालों में अब वह सामिल नहीं रहा। तो यह समझ रहा है कि सब बातें यहाँ भिन्न भिन्न हैं ऐसा समझने में नैपथ्य में यह मोह वेग पूर्वक कैसे नाचेगा ? नहीं नच रहा। एक बड़ी दृढ़ता पूर्वक उन सब बिगाड़ों का खण्डन कर रहा है। कुछ नहीं सीधो सही बात है, सब कुछ समझ गए, घटना यथार्थ जानी, और नैपथ्य में रहता है माने बात बोलता है वह पुरुष शान्त होगा। खूब समझ लो, देखो आप लोग कभी-कभी नाटक देखते भी होंगे। जो पर्दे के पीछे से संचालक बोलता वह बड़ा शान्त है और ललित है, सुन्दरता से बोलता है मुख से, एक रस से। उदार है, धीर है, कोई क्रिया नहीं, ऐसे ही जो नैपथ्य में आ गया याने सब घटनाओं को सही–सही बतला रहा ऐसे इस ज्ञाता में भी ये चार गुण हैं। वह शान्त है, ललित है। अरे सही ज्ञान करने वाला पुरुष तो आनन्द में है, उसकी ललितता को कौन मना कर सकता ? वह तो उदात्त है। बड़ा ऊंचा दिल है क्योंकि जो ऐसा जान गया सही सही वह सारे जगत के जीवों को अपने समान स्वरूप में समझता है। उदारता तो तब नष्ट होती है जब यह द्वैत आता कि यह मेरा हैं यह गैर है। तो जिसने अपने स्वरूप का परिचय पाकर समस्त जीवों का स्वरूप अच्छी प्रकार समझा उसको इष्ट अनिष्ट कहाँ आयगा ? मेरा और गैर यह बुद्धि कहाँ जगगी। इस कारण वह उदात्त है, और धीर है। धीर उसे कहते हैं जहां बुद्धि काम कर सके, और अधीर उसे कहते है जहाँ बुद्धि काम न कर सके। यह तो आप जानते ही हैं, ऐसा होता। जो आधीर होता है उसकी बुद्धि काम नहीं करती। जो धीर होता है उसका ज्ञान, उसकी बुद्धि बड़ी व्यवस्था से काम करती हुई चलती है। देखो यह बात धीर शब्द में खुद बसी हुई। धी मायने बुद्धि, र मायने देना जो बुद्धि को दे, बुद्धि का विकास करे उसे कहते हैं धीर। धीं बुद्धि राति ददाति इति धीरः। तो जिसने जीव और पुद्गल की इस कपट भरी साझेदारी को समझ लिया और साझा तोड़ दिया, वह ज्ञाता ही है, है वहाँ है कर्म कर्म में ही बुद्धि जिसकी स्पष्ट हो गई वह भव्य धीर है, करने काम क्या है ? मैं मैं हूं मैं अपने को ही करता हूँ, मायने मैं ज्ञान स्वरूप हूं, तो ज्ञान के परिणमन को ही करता हूं, मायने मैं ज्ञानस्वरूप हूं, तो ज्ञानको ही भोगता हूं। शुद्ध ज्ञान भोगूँ, विकल्पको भोगूं अन्य कुछनहीं भोगता तब अन्य बुद्धि त्याग दे कि मैं इस देहको करता, कर्म को करता इस जीव को यों बनादेता।

८२३ तत्त्वोपलब्धि की महनीयता—

तथ्यप्रकाश क बुद्धि, ऐसा ज्ञान प्रकाश किसी ही एक बिरले को होता है, किसे होता ? जो मोक्षमार्गी है उसे होता। ऐसे जीव कितने होते ? बिरले कोई अंतरंगमें अन्तस्त—त्वका ज्ञान प्रकाश पाने वाले जीव विरले ही होते हैं। उन विरलोंमें अपनी गिनती करलो। आप कहेंगे कि यहाँ तो इतने लोग बैठे हैं, आप बिरलेकी बात कह रहे। अगर ये सभी लोग जो यहाँ बैठे हैं वह अनुभव करें कि मैं उन विरलेमें से हूं, ज्ञान प्रकाश पाने वाला हूं। अरे लाखों करोड़ों अरबो मनुष्योंके समक्ष तो आप लोग विरले ही तो हो। मानलो यहाँ तुम थोड़े ही लोग हो, पर तुम्हारे अलावा दुनियामें बाकी और भी तो अनगिनते जीव हैं। अभी इसी जगह कोई फिल्म देखनेकी सूचना मिल जाय तो मन्दिर खड़े होनेकी जगह न मिले और कोई शुद्ध आत्मज्ञानकी बात हो रही हो तो वहाँ देख लो कितने कम लोग आते हैं तो उपस्थितिका यह भेद यह जाहिर करता है कितने मनुष्य ससारमें सलने वाले हैं। उनकी कितनी संख्या है ? शरबों खरबोंकी। उनमेंसे आप सब थोड़ेसे लोग बिरले हो तो कहा गये जो इस ज्ञानप्रकाशको पानेके अधिकारी बन सकते। इस तरह अब कर्तृकर्माधिकारमें यह बात भली भाँति सिद्ध

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

की गई कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्यका कर्ता नहीं हो सकता। जीव भी कर्मका कर्ता नहीं। तो जब कर्मसे कुछ सम्बन्ध नहीं तो ये कर्म यहाँ फिर जबरदस्ती क्यों नाचते? जैसे किसी का हम आदर नहीं करते, उससे बात भी नहीं करते, पर वह बिना पूछे ही, बिना आज्ञाके ही आगे आगे नचता, तो ऐसा क्यों हो रहा है? यह तो ज्ञाता है, केवल ज्ञायक है, जान रहा है, तो इसकी कमजोरी है, यह ललकार नहीं सकता तो दूसरे यहाँ अड्डा जमाये हैं। तो थोड़ी भीतरसे एक ललकार चाहिए इन विभावों को हटानेकी और वह ललकार उसीमें बन सकती जो अपने आपमें मजबूत हो। कोई कमजोर तो ललकार नहीं दे सकता। तो अपने ज्ञानस्वभावमें ही अपने आपका अनुभव रखनेवाला पुरुष दृढ़ होता है और ऐसा दृढ़ पुरुषही उन विभावों को ललकार सकता है, और इस घरको उन उन ऊधमियोंसे सूना रख सकता है। इस तरह यह कर्ता कर्म के तथ्यका जाननहार पुरुष अपनेको ज्ञाता अनुभव कर रहा है। अब इसके बाद अंतिम दृढ़ताकी सूचना देने वाला एक कलश और आयगा।

कर्ता कर्ता भवति व यथा कर्म कर्मापिनैव, ज्ञानं ज्ञानँ भवति च यथा पुद्गलः पुद्गलोऽपि।
ज्ञानज्योतिर्ज्वलितमचलं व्यक्तमँतस्तथोच्चैश्चित्तीनाँ निकरभरतोऽत्यन्न गम्भीरमेतत् ॥९९॥

८२४—मोक्ष मार्गविधायी भेदविज्ञानका दिग्दर्शन—

सर्व पदार्थ अपने अपने स्वरूपमें परिपूर्ण स्वतंत्र सत् हैं, उनमें परस्पर कर्ताकर्मभाव नहीं, लेकिन यहाँ अज्ञानी जीवमें कर्ता कर्मका आशय बन रहा सो अब उस सिल्सिलेमें कौनसे भ्रममें यह कर्ताकर्मका आशय बन रहा? पर भ्रम यह है कि पदार्थ हैं यहाँ दो, जीव और कर्म। जीवने कर्म—वन्धन कियाथा तो उसमें प्रकृति, स्थिति, प्रदेश और अनुभाग इन चारोंका वन्धन था। अब उदयमें आया तो उसका अनुभाग खिला और उस अनुभागका कर्ममें विकास हुआ उसका प्रतिफलन हुआ उपयोगमें, तो यह जीव अपने ज्ञानस्वरूपकी सुध भूलकर उस छायामें लग गया कि यह मैं हूं, तो यह कर्ता बन गया। ज्ञाता कब होता है कि कर्म उदयमें आ रहे हों तो भी यह प्रतीतिमें रखे कि मैं तो ज्ञानमात्र हूं, ज्ञाता हूं और यह छाया प्रतिफलन जो कुछ हो रहा है ये सब परभाव हैं, यहाँ ऐसा ज्ञान हुआ कि यह कर्मरस है, यह मैं ज्ञानमात्र हूं तो वह ज्ञाता कहलाता है। तो जिस कालमें इस जीवको सही ज्ञान हो गया कि मैं ज्ञानमात्र हूं, मात्र ज्ञाता हूं तो इससे पहले जो कर्ता बन रहा था तो अब कर्ता नहीं बनता, क्योंकि एक अचलित स्वरूप का ज्ञान बन गया। उसकी अचल ज्ञान ज्योति प्रकट हो गई। साक्षात् जानता है कि ये सब कर्मरस हैं, यह मैं ज्ञानमात्र हूं। भेदविज्ञान तो और बहुत से लोग करते हैं। देहातों में देहाती लोग भी भेद विज्ञान की बात करते हैं। शरीर निराला है, जीव निराला है। शरीर छोड़कर जाना पड़ता है। हंसा निकल जाता है, शरीर पड़ा रह जाता है, छोटे—छोटे सोगभी बात करतेहै, मगर वास्तविक भेदविज्ञान नहीं बनता, कब तक नहीं बनता, जब जब तककि यहाँ भेद न जानलें कि मैं तो ज्ञप्ति क्रिया वाला हूं और ये सब कर्मरस हैं। तो कर्मरसमें, विभाव में और अपने स्वरूपमें जब तक अन्तर नहीं पहिचाना तब तक यह जीव ज्ञानी नहीं कहलाता।

८२५—कर्मका कर्मरूप न रहनेका तात्पर्य—

जब इसने जान लिया यथार्थस्वरूप तो एकतो स्पष्ट ज्ञान हो गया और फिर चेतनको शक्तियोंका इतना विकास होता है कि जिस व्यापक प्रकाशके कारण यह ज्योति गम्भीर हो जाती है। अब यह जीव कर्ता नहीं रहा, था पहले कर्ता, पर अब कर्ता नहीं रहा और ये पौद्गलिक कर्म भी कर्म

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

नहीं रहे, ज्ञान ज्ञान ही रह गया, कर्म कर्म ही। एक तो जिस आत्मामें पहले कर्तापना था उसका विनाश होकर ज्ञातृत्व आया, ऐसे ही पुद्गल कर्म में पहले कर्मत्व था, अब इस ज्ञान ज्योति के कारण उनका कर्मत्व दूर हो गया, एक तो यह बात। दूसरे उस वस्तु में, उस पुद्गल कर्म में चाहे कर्मत्व नहीं मिटा फिर भी ज्ञान में तो अकर्मत्व आ गया। जैसे यहाँ चतुर लोग दूसरे की गाली सुन लेते हैं और उसका जवाब नहीं देते तो उसका अर्थ लोग यह लगाते कि उसने गाली दी और इसने नहीं ली। अरे गाली लेवे तब तो क्रोध आये तब तो बिगाड़ होवे। जब उसने गाली ली ही नहीं तो वह गाली या तो देने वाले के पास वापिस हुई अर्थात गाली देने वाला सर्मिन्दा हुआ या बीच में ही खतम हो गई, ऐसे ही जब कर्मरस उदय में आता है और उनको हम लेवें नहीं, उनसे विरक्त रहें, उन्हें स्वीकार न करें, उनके मात्र ज्ञाता रहें तो कर्मरस इसने स्वीकार नहीं किया, इस कारण कर्मरस अब यहाँ नहीं रह पाता। अथवा होते हुए भी कर्मरस उदय में आया तब भी हमने उसको लिया नहीं, ज्ञान में उपयोग में अपनाया नहीं, लिया नहीं, तो ऐसी स्थिति में पुद्गल पुद्गल ही रहा, जीव जीव ही रहा, ।

८२६-कर्म परिचय और उसका बहुरूपियापन ज्ञात होने पर बहुरुपियापन का निष्क्रमण—

कर्म क्या चीज है ? जैसे जगतमें ये पदार्थ दिखते हैं नाना प्रकारके भीट पत्थर आदिक तो ये तो स्थूल पुदगल हैं, आंखों से दिखने आने बाले पुद्गल हैं, पर जो कर्माणवर्गणा जाति के पुद्गल हैं वे कर्मरूप न हों तो भी जीव के साथ एक अवगाह रूप रहा करते हैं, याने इस जीव के साथ जो कर्म बन्धे हैं, अभी वे तो बन्धे हैं मगर उससे भी अधिक विश्रसोपचय कर्मवर्गणायें इस जीव के साथ लगी हैं, देखो जीव के साथ जो कर्मपरमाणु लगे हैं, कार्माणस्कंध लगा है उसमें दो तरह हैं – एक कर्मरूप बन चुके वे भी लगे हैं और जो कर्मरूप नहीं बने हैं जो कर्मरस बननेके उम्मीदवार है वे भी लगे हैं तो हमने यहजान लिया कि ये पौद्गलिक हैं ये मेरे कर्म नहीं हैं, इन्हें मैं नहीं करता, मैं तो अपने ज्ञान की परिस्थतियों को ज्ञानके परिणमनों को ही करता रहता हूं। तब कोई ऐसा जानकर कि ये तो कर्म बहुरूपिया हैं नाना रूप भेषों को बदल-बदल कर इस नाट्य भूमि में आते हैं और इस जीव के विभावों को भी जान ले कि ये भी बहुरुपिया हैं, तो बहुरूपिया जानलेने पर फिर वह बहुरूपिया नहीं रहता। अपने स्वरूप में आ जाता है, अथवा रहा आये तो कितने दिन रहा आयगा। जैसे कोई बृक्ष जड़ से कट गया तो हरा तो कुछ दिन वह रहता है, पर यह बतलावो कि कितने दिन तक वह हरा रह सकेगा ? यहाँ भी जब कभी कोई बहुरूपिया आपकी दूकानपर आता है, और आप उसे अच्छी पहिचान जाते है कि यह तो अमुक व्यक्ति है, इसने बहुरूपिया का भेष बनाया है तो फिर उस बहुरूपिया की दशा देख लो, पहले तो वह बड़ी अपनी ऐंठ में रहेगा, मगर जब दूकानदार द्वारा कह दिया जाता कि तुम तो फलाने चन्द हो तो फिर वह अपनी मिजाज में नहीं रहता। बहुरूपिया फिर आपके सामने बहुरूपियापन पेश नहीं करता, सीधे वहाँ से आगे की रास्ता नापता है ठीक ऐसे ही इन विभाव और कर्मों की पोल खुल गई, सत्य तथ्य ज्ञात हो गया फिर यह विरूप कैसे रह सकेगा ? वह अपने असली स्वरूप में आ जायगा। तो संसार के दुःखों से छूटने का उपाय पदार्थों के सहज स्वरूप का परिचय पा लेना है। इसके बिना कोई उपाय नहीं कि यह जीव उत्तरोत्तर ज्ञानानन्द प्रकाश पाये और कर्म रहित हो जाय। हां तो एक अन्धेरा चल रहा था इस जीव की उपयोग भूमिपर 'दमादम बड़ी चोट और धक्के से यह नाटक

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

रहा था । कब तक खेल रहा, जब तक कि उन पार्ट करने वाले तत्त्वों का सही परिचय नहीं पाया यह आत्मा दर्शक है, देखनहार है मगर उन द्रव्य कर्मों का और भाव कर्मोंका जब तक वह स्वरूप नहीं ज्ञान में आया था तब ही तक तो यह दर्शक आत्मा दृष्टा उन विभाव कर्मों से चिपट रहा था, पर जैसे ही सही तत्त्व का बोध हो गया तो वे विभाव और कर्मकान्तिहीन हो गए । अब वे अपनी शान न बना सके । फल यह होगा कि वह अपना भेष छोड़कर सही स्वरूप में सामने आयगा । वह सही स्वरूप क्या ? कर्म का स्वरूप तो कर्म पुदगल, पुद्गलवर्गणायें, वह पुदूगल के नाते से ज्ञात होता है तो जब तक कोई कर्ता है तब तक ही कर्म में कर्मत्व गहरा होता जाता है करे नहीं तो कर्मपना कहाँ से आये ?

८२७ स्वरूपसुध बिना जीव की बिडम्बना—

यह जीव और अजीव कर्ता और कर्मके भेषमें उपयोग पर नच रहा है, जीव कर्ता और पुदगल कार्माणवर्गणा कर्मपु द्गलकर्म कर्ता तो जीव के रागादिक भाव कर्म यों अज्ञानसे कर्ता कर्म भाव चलता है जिसमें यह जीव दुःखी रहता है करने के विकल्प स्वयं कष्टरूप हैं । इस असार संसार में करने को क्या पड़ा है बाहर में सो सही सार रूप में बतावे एकभी बात बताओ जो बाहर में कोई करने की चीज पडी हो । क्या पड़ा है ? कोई कहे कि मकान पड़ा है, —अरे तो तू, उस मकान का करने वाला कौन ! और अचानक इस भवको छोड़ गए तो अब तेरा उससे वास्ता क्या ? क्या पड़ा है बाहरमें करने को सही बताओ ? पुत्र मित्रों को खूब बड़ा बना देना यह करने को पड़ा है क्या ? अरे एक तो तू कर नहीं सकता, उनका जैसा कर्मोदय है उसके अनुसार साँसारिक बात बनतीं है और फिर मानो बन भी जाय तो उसमें तूने क्या किया । यह तो मोह में अपनी शान समझ रहा है बेंबकूफ बनकर । किसीके मानो चार लड़के हैं–बड़ी ऊँची–ऊँची पोस्ट पर हैं–कोई मिनिस्टर है, कोई डाक्टर है, कोई कलेक्टर है, कोई मास्टर है, अब उस सेठकी कोई प्रशंसा करे कि साहब इन सेठजी का क्या कहना है । इनके चार लड़के हैं, चारो ही बड़े ऊंचे–ऊंचे पोस्ट पर हैं—कोई मिनिस्टर, कोई कलेक्टर, कोई डाक्टर, कोई मास्टर, तो उस बातको सुनकर वह सेठ खुश होता है उसमें वह अपनी प्रशंसा समझता है, पर दी गई वास्तवमें उसको गाली । अरे उस प्रशसा करने वाले ने क्या कहा कि इन सेठ जीके लड़के तो ऊचे-ऊंचे पोस्ट पर हैं पर यह सेठ तो कोरे बुद्धू हैं, इनमें कोई गुण नहीं है । अगर सेठमें कोई गुण होता तो उसके गुणकी बात कही जाती कि सेठ जी बड़े दानी है, धर्मात्मा हैं . . . . ऐसा तो नहीं कहा गया, मगर वह सेठ उसमें अपनी प्रशंसा समझता है । ऐसे ही वहाँ संसारमें जो-जो बातें प्रशंसाकी की जा रही हैं वे सब इस आत्माको गाली हैं, एक बातको क्या, सभी बातोमें लगाओ यह तो एक मोटी गाली है । कोई कहे कि साहब इन्होंने अपना बड़ा मकान बनाया तो यह तो एक गाली हो गई । यह जीव तो अमूर्त है, अकर्ता है । सिद्ध प्रभुकी तरह है और उसे कहते हैं कि इसने मकान बनाया मायने इसमें अज्ञान है, इसने मकान बनानेका विकल्प किया है, यह अंधेरेमें है, इसकी ऐसी चेष्टा हुई है, बताओ गाली दी कि नहीं ? मगर यह खुश हो रहा । कोई तो बात बताओ ऐसी जो आत्माको गाली रूप न हो दुनिया की प्रशंसामें ? कोई कहे कि इसके इतने लड़के हैं, इसका इतना कुटुम्ब है, इसके ऐसे-ऐसे रिश्तेदार तो उसका अर्थ क्या हुआ कि यह जीव कितना अज्ञानी बना फिर रहा है कि कुछ थोड़ेसे जीवोंको इसने अपना मान लिया है, उससे यह अपना महत्त्व समझता है, यों दी तो गई गाली, पर अब उसका कोई समझने वाला हो तो समझे । मगर यह सुनकर खुश होता दुनियाकी जितनी प्रशंसा है वह सब

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

इस आत्मा के लिए गाली है क्योंकि आत्मा तो मात्र भाव ज्ञाता है । और उसका कार्य तो केवल ज्ञाता दृष्टा रहना है, प्रतिभास मात्र रहना है । यह स्वरूप सुध से चिगा तो इसकी नाना विडम्बनायें होती हैं, उनकी लोग प्रशसाये करते हैं वह आत्मा के लिए गाली है, निन्दा है, सही-सही प्रशंसा कौन करता है कि साहब यह आत्मा बड़ा पवित्र है, अकर्ता है, ज्ञाता दृष्टा रहता है, विभावों से विरक्त रहता है, अपने ज्ञान स्वरूप को निहारनेमें ही इसका समय लगता है, ऐसी प्रशंसा आपकी किसी ने की क्या ? आप तो कहेंगे कि हम ऐसे हैं ही नहीं, क्यों करेगा कोई ऐसी प्रशंसा ? हैं और नहीं की बात तो दूर रही दुनिया के लोग इस अमूर्त शरीर को निरखकर, इसको ही सर्वस्व जानकर इसकी प्रशंसा करते हैं और यह भी ऐसा ही समझकर अपने आप में खुश हो रहा है । इसने भेद नहीं जाना ।

८२८— अन्तर्ज्ञानबिना सर्वदा कष्टरूपता—

मैं चैतन्य ज्योति मात्र हूँ, अन्य रूप नहीं हूँ, ऐसा इसने अपना अंतस्तत्त्व नहीं माना । और यही कारण है कि अब तक इन सारे कामोंसे आटोमेटिक संसारकी लीला इसकी चल रही है । इसने तो किया विभावोंमें प्रेम अपना मानकर मैं तो यह ही हूँ इन विषय इच्छा कषायों रूप अपनेको माना, तो इसने विभावोंको अपनाया और आटोमेटिक क्या हो गया ? ये हुए आत्माके एक क्षेत्रावगाहमें जो कार्माणवर्गणायें विश्रसोपचय पड़ी हैं वे लम्बी स्थितिके कर्मरूप बन गई । सारी नहीं बन गई । जो कर्म बाँधे थे वे उदयमें आयेंगे तो उनका फल भोगना पड़ेगा । क्या भोगना पड़ता? जन्म लिया, शरीर बना, शरीर में रम गया फैल गया, अब शारीरिक कष्ट, वाचनिक कष्ट और मानसिक कष्ट और उन कष्टोंमें विह्वल हुआ, आकुलित हुआ, संक्लेश किया तो उसमें और कर्म बाँधे, परम्परा बन गई, इसका जन्ममरण चल रहा । अज्ञानका यह फल है । जन्मके समयमें जो जन्म लेता है वह तो रोता है और यहाँ दूसरे लोग हँस रहे । मोह ममतामें इसके लड़का हुआ, लड़का हुआ ऐसा कह कर सभी लोग हँस रहे, पर वह जन्म लेने वाला बच्चा रो रहा, उसे गर्भमें दुःख, गर्भसे निकलते समय दुःख, वह तो बेचारा रोता हुआ निकलता है पर यहाँ ये लोग खुशियां मनाते । पर कुछ पता भी है, उस बच्चेके कारण जिन्दगी भर दुःखी रहे, उसके पीछे बड़े-बड़े शल्य रहें । आखिर उससे मोह करके कौनसा लाभ लूट लिया जायगा ? जैसे यहाँ कोई लोग रोते हैं कि साहब हमारा तो सारा जीवन दुःख ही दुःखमें गया, और अपनी दुःख की कहानी भी सुनाते, तो वैसे ही जरा अपनी भी पूरी कहानी सुनाओ ना ? तुम एक जिन्दगीकी ही कहानी क्यों सुनाते ? अनादिकाल से लेकर अब तक अज्ञान भावमें रहनेके कारण दूसरा सारा अनन्त काल दुःख ही दुःख में गया । अच्छा तो कहानी सुनने सुनाने से मिलेगा क्या ? एक यह उपाय बनावें कि यह मोह जो दुखरूप है उसको नष्ट करें ।

८२९ सम्यग्ज्ञानसे सर्व संकटों का परिहार—

देखो हम आप सबकी जिन्दगी यों दुःख दुःख में ही गई । करीब करीब सब विवेकी जनों ने यह सोच रखा था कि भाई अभी ५ वर्ष की और देर है, इसके बाद तो हम सारे झंझटों से निपट लें और धर्मसाधना में ही अपना सारा समय लगायेंगे, मगर होता क्या है कि वह सोचा हुआ सारा का भी गुजर जाता है, पर झंझटोंसे निपट नहीं पाते, बल्कि नई नई उलझने और सामने खड़ी हो जाती हैं । मान लो किसी ने मन ही मन में यह सोच रखा था कि हम धनका परिमाण रखकर अपने जीवन में चलेंगे, पर चित स्वच्छन्द होने से वह उस परिमाण को नहीं रख पाता । फल यह होता है कि जीवन भर वह धनार्जन करते रहने के लिए दुःखी रहा करता है । कोई सोचे कि हम १०–५ साल में सारे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

झझंटों से निपट लेगे तो वह निपट नहीं सकता, क्योंकि उसके अज्ञान बसा है, मोह लगा है। जिसके अज्ञान बसा है, मोह लगा है उसका कष्ट कभी दूर नहो होता। अब बताओ ये ये कष्ट कैसे दूर हों ? तो कहते कि ये कष्ट थोड़े थोड़े करके दूर नहीं हो सकते, एक जिन्दगी के कष्ट दूर नहीं हो सकते, किन्तु सदा के लिए कष्ट दूर होंना सुगम है। तो फिर एक भव के ही कष्टों को दूर करने को क्यों चिन्ता करते ? सदा के लिए यह जीव संसार संकटों से दूर हो जाय, वह चिन्तन कीजिए। वह उपाय यह ही है कि तुम समग्र पदार्थों को स्वतन्त्र स्वतंत्र सत् जानो। चूंकि दूसरों पर अधिकार नहीं, एक की दूसरे में क्रिया नहीं, एक का दसरे में प्रवेश नहीं, सर्व जीव अपने आपमें स्वतंत्र स्वतंत्र सत् हैं। इसका फल क्या होगा ? मोह न रहेगा। यह मेरा है, यह ख्याल न रहेगा, क्योंकि ज्ञान जग गया ना ? जिस किसी भी पदार्थ का ज्ञान हो जाता उसे भूलते हैं क्या कभी या उससे उल्टा सोचते है क्या कभी ? जैसे जान तो ली गाय पर उसे कभी ऐसा भी सोचते क्या कि जानने में तो गाय आ रही है पर वह कहीं भैंस या गधी वगैरह न बन जाय ? ऐसा नहीं सोचते। उसे तो उसके प्रति दृढ़ निर्णय है, ठीक ऐसे ही जब अपने आत्मा के सहज स्वतंत्र स्वरूप का ज्ञान हो जाता है तक कोई चिन्ता की गुजाइस है क्या ? कभी कोई शल्य की गुंजाइस हैं क्या ? जान लिया, ऐसा जब सही ज्ञान हो जाता तब यह जीव कर्ता नहीं रहता।

सहज स्वरूप के सुपरिचय से कर्तृकर्मत्व सम्बन्धरूप विपत्ति का विनाश—

कर्ता यह जीव था अज्ञान तक। और, सही ज्ञान हो जाने पर फिर कर्म कर्म नहीं रहता, यह कर्म तो कार्माण वर्गणा द्रव्य है, यह मेरा काम नहीं है, यह तो स्वतँत्र पदार्थ है, उनकी उनमें परिणति होती है, यह ज्ञान रहता है। कर्म है मेरा यह काम है, मैंने यह कर दिया—यह ज्ञान नहीं। तो जिस समय यह यथार्थ ज्ञान हो जाता, ज्ञान तो ज्ञान ही ज्ञान रहता, उसमें कोई विकल्प तरंग या भ्रम की बात नहीं आती, और ये कर्म पुदगल, इसकी निगाहमें कर्म है ऐसा ज्ञान नही रहता। तो जहाँ यह ज्ञान हुआ वहाँ ये जीव और अजीव दोनों अपने कर्ता कर्म का भेष छोड़कर इस उपयोग से निकल जाते हैं, जो अज्ञान में इस उपयोग में कर्त्ता कर्म के भेष में ये भाव कर्म, द्रव्य कर्म लदे हुए थे, जिससे कि आकुलित हो रहे थे, अब उनका यथार्थ स्वरूप जान लिया गया है अतः वे अपना कर्ता कर्म छोड़-कर भाग गये। बहुरूपियेका बहुरूपियापन पहिचान लिया गया है, यह तो हमारा पड़ोसी है, यह तो अमुक का लड़का है, फिर वह बहुरूपियापन बताने को सामने खड़ा रहेगा क्या ? निकल जायगा, ऐसे ही कर्ता कर्म भेष जों पहिचान लिया, यथार्थ जान ली तो कर्ता कर्म को छोड़कर ये विभावभाव सब इस जीव निकल जाते है। अब यह ज्ञानी अन्तरात्मा निर्भर होकर अपने ज्ञानस्वरूप का निर्विकल्प होकर निर्विघ्न अनुभव करता रहता है। है तो यह उपयोग रूप। बस इसी में बिवेक है कि हम उपयोग को किस बात में लगायें और किसमें अपना उपयोग फसायें जाय कहाँ आश्रय करे ? इसका सही निर्णय करना एक महान कार्य हैं। इन विभावों में अपना उपयोग न लगावे पर भावों में न लगावें और अपना जो सहज चैतन्यस्वरूप है उसमें हो अपने उपयोग को जुटाते रहें यह ही एक मुक्ति का मार्ग है और इस उपाय से क्रिम से सर्व कर्मों से छुटकारा होगा।

नवीन प्रिंटिंग प्रेस, कछियाना जबलपुर

Report any errors at vikasnd@gmail.com